भारत का इतिहास

को॰ अ॰ अंतोनोवा
ग्रि॰ म॰ बोंगर्द-लेविन
ग्रि॰ ग्रि॰ कोतोव्स्की

—संक्षिप्त रूपरेखा



मास्को
प्रगति प्रकाशन
१९८१

अनुवादक नरेश वेदी, ददन उपाध्याय
सपादक नरेश वेदी

К А Антонова, Г М Бонгард Левин,
Г Г Котовский

ИСТОРИЯ ИНДИИ

На языке хинди

मौलिक प्रकाशन ० १९७३
सशोधित संस्करण ० प्रगति प्रकाशन ० १९८१
हिंदी अनुवाद ० प्रगति प्रकाशन ० १९८१

सोवियत सघ मे मुद्रित

10605-935 / 014(01)-81 663-81

0506000000

विषय-सूची

प्राचीन भारत

(ग्रि०म० बोगर्द-लेविन)

प्रारभिक काल

पाषाण युग मे भारत १७
हडप्पा सभ्यता २१
मध्य, पश्चिमी तथा पूर्वी भारत मे ताम्रपाषाण सस्कृतिया ४०
भारतीय-आर्य तथा गगा घाटी की सभ्यता ४२
प्राचीन राजवश और उत्तर भारतीय राज्य ५८
वैदिककालीन धर्म तथा सस्कृति ६०

मगध तथा मौर्य कालो मे भारत

राजनीतिक विकास के नये चरण ७७
अशोक के अधीन मौर्य साम्राज्य ८७
मगध-मौर्य कालो मे दकन और दक्षिणी भारत १०६
आर्थिक विकास और सामाजिक ढाचा ११०
प्राचीन भारत के गणराज्य १२६
मौर्यकालीन सस्कृति १३३
मौर्यकालीन धर्म तथा सप्रदाय १३८

कुषाण तथा गुप्त कालो का भारत

पहली शती ई०पू० – पहली शती ई० मे उत्तर-पश्चिमी भारत १५२

पश्चिमी क्षत्रप तथा सातवाहन वंश
आर्थिक विकास तथा सामाजिक ढाचा
ईसवी सवत की पहली सदियो मे धार्मिक पथ तथा दार्शनिक सिद्धात
कुषाण तथा गुप्तकालीन संस्कृति
प्राचीन भारत तथा अन्य देशो म ऐतिहासिक एव सांस्कृतिक सबध

मध्यकालीन भारत

(को०अ० अतोनोवा)

छठी से बारहवी सदियो का भारत

छठी से बारहवी शताब्दी तक भारत का राजनीतिक इतिहास
सामती सबधो का विकास (छठी से बारहवी सदी)
छठी से बारहवी सदियो की भारतीय संस्कृति

दिल्ली सल्तनत के समय का भारत (तेरहवी सदी से चौदहवी सदी के आरभ तक)

दिल्ली सल्तनत का राजनीतिक इतिहास
दिल्ली सल्तनत की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति
दक्षिणी तथा पश्चिमी भारत
तेरहवी से सोलहवी सदियो म भारतीय संस्कृति

मुगलकालीन भारत (सोलहवी से अठारहवी सदी तक)

मुगल राज्य की स्थापना
अकबर का राज्यकाल
जहांगीर का राज्यकाल
शाहजहा का राज्यकाल
औरंगजेब का राज्यकाल
सत्रहवी-अठारहवी सदियो म भारतीय संस्कृति

आधुनिक भारत

(को० अ० अतोनोवा, ग्रि० ग्रि० कोतोव्स्की)

भारत पर अग्रेजो का आधिपत्य
(अठारहवी शताब्दी)

मुगल साम्राज्य का पतन ३५३
भारत के लिए अग्रेजो और फ्रासीसियो के बीच सघर्ष (१७४६–१७६३) ३६५
दक्षिणी भारत पर अग्रेजो की विजय ३८२
अठारहवी शताब्दी के अत और उन्नीसवी शताब्दी के आरभ मे भारत मे औपनिवेशिक अधिकारियो की नीतिया ४०७
उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध म भारत का आर्थिक विकास ४२१
भारत की विजय का अतिम चरण ४२४
औपनिवेशिक शासनविरोधी आदोलन ४२८
पूजीपति वर्गीय आन्दोलन का उदय ४३१
१८५७–१८५९ का महान जन-विद्रोह ४३४
अठारहवी शताब्दी और उन्नीसवी शताब्दी के प्रारभ मे भारतीय सस्कृति ४४२

साम्राज्यवादी युग के प्रारभ के समय भारत
(१८६०–१८९७)

औपनिवेशिक प्रशासन प्रणाली मे परिवर्तन ४५२
उन्नीसवी शताब्दी के सातवे और दसवे दशको के बीच भारत का आर्थिक विकास ४५८
उन्नीसवी शताब्दी के सातवे और अतिम दशको के बीच भारतीय जनता का राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष ४७३
पूजीवादी राष्ट्रवाद और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियो का उदय ४८५

युद्ध-पूर्व साम्राज्यवाद के काल तथा एशिया के जागरण के दौरान भारत (१८९७–१९१७)

ब्रिटेन और भारत के बीच बढते अतर्विरोध
१९०५–१९०८ मे क्रातिकारी आदोलन की बढती लहर
प्रथम विश्व युद्ध से पहले और युद्ध के वर्षों का भारत

समकालीन भारत

(ग्रि०ग्रि० कोतोव्स्की)

पहला क्रातिकारी प्रहार और राजनीतिक जन-सगठनो का उदय (१९१८–१९२७)

राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन का ज्वार
ब्रिटिश साम्राज्यवाद का जवाबी आक्रमण
भारत मे कम्युनिस्ट आदोलन का उदय और मजदूर तथा किसान राजनीतिक सगठनो का गठन

साम्राज्यवादविरोधी आदोलन का उदय और सयुक्त मोर्चे के लिए सघर्ष (१९२८–१९३९)

राष्ट्रीय मुक्ति-सघर्ष मे नया दौर
राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन मे वामपथी शक्तियो का अधिक मजबूत होना। नेतृत्व के लिए सघर्ष का तीव्रीकरण
सयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे की दिशा मे प्रगति। काग्रेस के भीतर सघर्ष का तीव्रीकरण

द्वितीय विश्व युद्ध मे भारत

युद्ध के प्रारभिक वर्षो म राजनीतिक पार्टियो की स्थिति और साम्राज्यवाद-विरोधी आदोलन (१६३६–१६४१) ६२१

१६४२ की अगस्त क्राति और औपनिवेशिक शासन की नीति ६२८

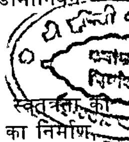
युद्ध के अतिम वर्षो (१६४३–१६४५) म आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति ६३२

स्वतत्रता-सघर्ष की आखिरी मजिल (१६४५–१६४७)

१६४५–१६४६ मे जन आदोलन और ब्रिटिश साम्राज्यवादियो की राजनीतिक जोडतोड ६४०

स्वाधीनता के मार्ग पर ६५३

भारतीय डोमीनियन



स्वतत्रता के पथ पर पहले कदम

वर्ग सघर्ष का तेज होना

भारत गणतत्र स्वतत्रता की आधारशिला का निर्माण (१६५०–१६६४)

छठे दशक के प्रारभ मे आतरिक राजनीतिक स्थिति ६८२

आर्थिक और सामाजिक नीति ६६२

नेहरू पथ के अनुसरण के लिए सघर्ष (१६६४–१६७२)

बढता आर्थिक और राजनीतिक सघर्ष ७३४

वामपथी शक्तियो का दृढीकरण ७४६

आठवे दशक मे भारत (१६७३–१६७६) ७५५

कालानुक्रम ७८३

नाम निर्देशिका ७६८

ग्रथ-सूची ८२३



भूमिका

भारत मानव सभ्यता के उद्गमस्थलो मे एक है। भारत की सस्कृति अनेक जनगण की सस्कृति से घनिष्ठत सबद्ध रही है और उसने उनके विकास पर उल्लेखनीय प्रभाव डाला है। किंतु शताब्दियो के इस पारस्परिक समृद्धिकरण के बावजूद भारत ने अपनी मौलिकता और विलक्षण विशिष्टता को बनाये रखा है। हजारो वर्षो के दौर मे प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत की विज्ञान, साहित्य तथा कला मे उपलब्धियो ने दूर-दूर के राष्ट्रो के सृजनात्मक चितन को प्रेरित किया है। भारत मे उत्पन्न हिंदू तथा बौद्ध धर्मो ने और इस बुनियाद पर विकसित होनेवाले अन्य धर्मो तथा दार्शनिक मतो ने केवल अनेक पूर्वी सभ्यताओ के विकास ही नही वरन ससार के अनेक अन्य भागो मे सामाजिक चितन पर भी प्रभाव डाला है।

लगभग दो सौ साल के औपनिवेशिक उत्पीडन के बावजूद भारतवासी अपनी सास्कृतिक थाती की परपराओ को कायम रख सके है, जिसकी सबसे मुख्य विशेषता मानवतावाद के उदात्त विचार और शाति से गहन अनुराग है। हाल के वर्षो मे समकालीन भारत की सस्कृति और विज्ञान का विकास भारतीय सास्कृतिक परपराओ तथा यूरोपीय सस्कृति के लोकतात्रिक सिद्धातो के एक निराले समन्वय के आधार पर होता रहा है। महान भारतीय लेखक, सगीतज्ञ और उद्बोधक रवीद्रनाथ ठाकुर को सारी ही मानवजाति का प्रेम प्राप्त हुआ।

भारत का विगत शताब्दियो का इतिहास कई पीढियो के औपनिवेशिक तथा सामती उत्पीडन से मुक्ति की खातिर लबे और वीरतापूर्ण सघर्ष का इतिहास है। राष्ट्रीय क्राति के विजयातक अभियान का नेतृत्व करनेवाले महान चितक और देशभक्त – बाल गगाधर तिलक, महात्मा गाधी और जवाहरलाल नेहरू – के नाम भारतीय स्वतत्रता सग्राम के सबसे अग्रणी सेनानियो मे हैं।

१६४७ मे भारत का एक स्वतत्र राष्ट्र के रूप मे अभ्युदय भारतीय जनता के इतिहास मे एक नये युग के समारभ का द्योतक था। देश के सामने उस समय अभूतपूर्व कार्यभार पेश थे – उसे अपने औपनिवेशिक अतीत के अवशेषो पर पार पाना था और भविष्य के मार्ग का निर्धारण करना था।

आधुनिक भारत के ऐतिहासिक विकास की मुख्य विशेपता सतत आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सास्कृतिक प्रगति रही है, जो इस महान देश की नियति म गहन परिवर्तन का पथ प्रशस्त कर रही है।

भारत के इतिहास तथा सस्कृति के वैज्ञानिक विश्लेषण का आरभ यूरोप द्वारा भारत के एक बार फिर 'खोजे जाने" के साथ अठारहवी सदी मे हुआ। तब से भारतविद्या मे नाना धाराओ और मतो का उदय हो चुका है। पश्चिमी यूरोपीय विद्वानो द्वारा लिखित भारत विपयक अनेक कृतियो पर यूरोपीय दृष्टिकोण बहुत ज्यादा हावी है और भारतीय इतिहास के विभिन्न घटनाक्रमो को यूरोपीय सस्कृति की परिघटनाओ या यूरोप के अधिक निकट और परिचित प्राचीन सभ्यताओ जैसे नजरिये से ही देखा गया है।

स्वय भारत म राष्ट्रीय स्वाधीनता आदोलन के जड पकडते जाने के साथ-साथ १६ वी और २० वी शताब्दी के सधिकाल में देश के इतिहास तथा सस्कृति के अध्ययन म बहुत दिलचस्पी ली जाने लगी। भारतीय विद्वानो ने इस समय अपने देश के इतिहास के अध्ययन मे जबरदस्त प्रगति की और अनेक रोचक साहित्यिक कृतियो तथा ऐतिहासिक स्रोत सामग्रियो का वैज्ञानिक विश्लेषण किया। उन्होंने ही सबसे पहले आधुनिक भारत के इतिहास को स्वाधीनता के सघर्ष के इतिहास के रूप म प्रस्तुत किया।

रूसी भारतविदो न इस कार्य मे महत्वपूर्ण योगदान किया है। इनमे मिनायेव श्चेरबात्स्कोय और ओल्देनबुर्ग प्रमुख थे, जिनकी कृतिया असाधारण अध्ययन तथा पाडित्य के उदाहरण है। रूसी धारा के भारतविदो ने भारत के जनगण की सास्कृतिक थाती के प्रति सदा गहन आदर दर्शाया है और इस देश के इतिहास तथा सस्कृति के अध्ययन मे वस्तुपरक तथा शुद्धत वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही अपनाया है।

१६१७ की महान अक्तूबर समाजवादी क्राति के बाद हमारे देश मे भारतविद्या की मार्क्सवादी धारा का उदय हुआ—इसकी प्रारभिक मजिलो म इसक सबसे प्रमुख प्रतिनिधियो मे ई० म० रेइसनेर, व० व० बालाबुशविच, अ० म० द्याकोव अ० म० ओसिपोव और न० म० गोल्दबेर्ग के नाम लिये जा सकते हैं।

सोवियत सघ म भारत के प्रति दिलचस्पी वर्ष प्रति वर्ष बढती ही जाती है। भारत ने ससार के ऐतिहासिक विकास मे जो भूमिका अदा की है और अब भी कर रहा है और सोवियत सघ तथा भारत के बीच जो व्यापक राज नीतिक आर्थिक तथा सास्कृतिक सबध पैदा हो गये है—य दोनो ही इसके

कारण हो सकते हैं। सोवियत जनो को भारत के लोगो से गहन अनुराग और अतर्राष्ट्रीय एकजुटता की भावना इसके लिए प्रेरित करते है कि वे भारत के अतीत और वर्तमान का विस्तार के साथ परिचय प्राप्त करे। पिछले दस वर्षो के भीतर ही सोवियत सघ मे भारत के इतिहास तथा सस्कृति के बारे मे अनेक शास्त्रीय तथा सामान्य कृतियो का प्रकाशन हुआ है और भारतीय लेखको की बहुत सी कृतियो का रूसी मे अनुवाद किया गया है।

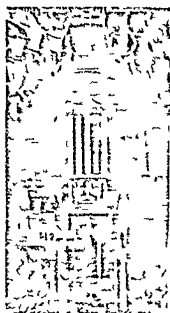
सोवियत इतिहासज्ञो ने १९५९–१९६६ मे एक चार खडीय भारत का इतिहास' लिखा और प्रकाशित किया था, जिसका भारत मे भी अच्छा स्वागत किया गया था। हमारे इस नये प्रकाशन 'भारत का इतिहास मे भी, जिसम पूर्ववर्ती कृति के कुछ लेखको ने योग दिया है, उसका पर्याप्त उपयोग किया गया है। साथ ही इस नयी कृति मे सोवियत सघ तथा अनेक अन्य देशो मे भी विद्वानो द्वारा भारतीय इतिहास मे किये अनुसधानो का उपयोग भी किया गया है।

आशा की जाती है कि यह पुस्तक पाठको को भारत तथा उसके इतिहास और सस्कृति का और भी गहरा ज्ञान प्रदान करेगी और इस तरह भारत तथा सोवियत सघ मे मैत्रीपूर्ण सबधो का और भी सवर्धन करेगी।

इस कृति के लेखक ये है – ग्रि० म० बोगर्द-लेविन (भाग १), को० अ० अतोनोवा (भाग २ तथा 'साम्राज्यवाद मे सक्रमण के दौरान भारत' शीर्षक परिच्छेद तक भाग ३) तथा ग्रि० ग्रि० कोतोव्स्की (भाग ३ का शेषाश और भाग ४)।

प्राचीन भारत

ग्रि॰म॰ बोंगर्द-लेविन



प्रारभिक काल

पाषाण युग मे भारत

पुरापाषाणयुगीन स्थलिया

भारत ससार की सबसे प्राचीन सभ्यताओ मे से एक की जन्मभूमि है – यहा एक ऐसी अति विकसित सस्कृति ने रूप लिया, जिसने इस देश के आगामी विकास पर और मध्य तथा दक्षिण पूर्वी एशिया और पूर्व तथा सुदूर पूर्व के अनेक जनगण की सस्कृतियो पर जबरदस्त प्रभाव डाला। पुरातात्विक खोजो से पता चलता है कि भारत मे प्राचीनतम काल मे भी मनुष्य का निवास था।

देश के कई भागो मे पूर्वपुरापाषाणयुगीन प्रस्तर उपकरण खोजे गये हैं। पूर्वपुरापाषाण सस्कृति के दो केद्र एक दूसरे से स्वतत्र रूप मे उभरकर सामने आते हैं – उत्तर मे सोन या सोहन सस्कृति (वर्तमान पाकिस्तान मे सोहन नदी के किनारे) और दक्षिण मे, दकन मे तथाकथित मद्रास सस्कृति। ये पुरापाषाण स्थलिया नदियो की घाटियो मे थी, जो मानव जीवन के लिए अधिक अनुकूल परिस्थितिया उपलब्ध करती थी। इनमे से पहली स्थली १८६३ मे मद्रास मे खोजी गयी थी और इसी कारण दक्षिण भारत मे मिले पूर्वपुरापाषाण युग के लाक्षणिक प्रस्तर उपकरण – हस्तकुठार – मद्रास कुठारो के नाम से विज्ञात हुए। देश के उत्तरी भागो की पुरापाषाण स्थलियो मे बिलकुल दूसरी तरह के उपकरण – बडे-बडे वटिकाश्म कर्तन उपकरण – मिले थे, जो खडक कहलाते है। पुरापाषाण उपकरण देश के अन्य भागो मे भी मिले हैं – मध्य तथा पश्चिमी भारत मे, जहा मानो सोहन और मद्रास परपराओ का अतर्ग्रंथन होता है। नये अनुसधान ने दिखलाया है कि दक्षिण मे मद्रास कुठारो का प्राधान्य है और जैसे-जैसे हम उत्तर की तरफ बढते है, वैसे-वैसे सोहन उपकरणो की सख्या बढती जाती है।

इन दोनो प्रकार क उपकरणो मे अतर का सबसे मुख्य कारण प्राकृतिक परिस्थितियो की भिन्नता उपकरण निर्माण के लिए उपयुक्त पत्थर की उपलभ्यता है। यह कोई सायोगिक बात ही नही है कि सबसे अधिक स्थलिया दक्न की नदी घाटियो मे स्थित गुफाओ म और उत्तरी भारत के पहाडो की तराइयो मे खोजी गयी है। इन इलाको मे जलवायु अधिक अनुकूल है और जीवजतुओ का बाहुल्य है। उस काल के लोगो का मुख्य उद्यम शिकार और खाद्य पौधो का सग्रहण था। लोग बडे-बडे समूहो मे रहा करते थे – उस समय के जीवन की अत्यधिक दुष्कर परिस्थितियो मे यह अपरिहार्य भी था।

मानव समाज के विकास म एक महत्वपूर्ण चरण उत्तरपुरापाषाण काल म सक्रमण था जिसमे मनुष्य का उस रूप मे आविर्भाव हुआ, जिसमे हम उसे आज जानते है।

हाल के वर्षो मे भारतीय पुरातत्वज्ञो ने कई उत्तरपुरापाषाण स्थलिया खोजी है। इस जमाने म गोत्र (क्लान) समुदाय के उदय के परिणामस्वरूप सामूहिक सगठन म महत्वपूर्ण परिवर्तन आये।

नृविज्ञानियो की मान्यता है कि उत्तरपुरापाषाण काल मे नीग्रोसम प्रजाति के प्रतिनिधियो का प्राधान्य था जबकि मध्यपाषाण काल मे पश्चिम मे काकेशियाई और पूर्व म मगोलाभ प्रकट हुए। पशुओ का पाला जाना मध्यपाषाण युग म शुरू हुआ और मृद्भाडो का उदय और कृषि मे क्रमिक सक्रमण इस युग के अत के परिचायक थे।

मध्यपाषाण तथा नवपाषाण काल

भारत मे मध्यपाषाण काल की सबसे प्रसिद्ध स्थली लगनाज (गुजरात) है। इस वस्ती मे खोजी सामग्री ने मध्यपाषाण तथा प्रारभिक नवपाषाण काल म आदिम मनुष्य की जीवन प्रणाली पर प्रकाश डाला है। उत्खननो ने दिखलाया है कि उस समय प्रयुक्त मुख्य उपकरण पत्थर के फलक और नियमित ज्यामितीय आकार के सूक्ष्माश्म थे, जिनका वाणाग्रो की तरह प्रयोग किया जाता था।

पुरातत्वज्ञो ने लगनाज के इतिहास को दो पृथक कालो म विभक्त किया है। पहले काल के अत म हस्तनिर्मित मृद्भाड प्रकट हुए, जब कि दूसरे काल क पूर्वनवपाषाणकालीन मृद्भाड चाक पर बनाये गये है और अलकृत है। पहले काल मे शिकार और मछली पकडना लोगो के मुख्य उद्यम थे जब कि दूसरे काल की विशेषता कृषि मे सक्रमण थी।

लगनाज क्षेत्र मे हिरनो, बारहसिघो गैडो, जगली सूअरो और बैलो की हड्डिया मिली हैं।

भारत के अन्य क्षेत्रो – दक्षिण मे (तिन्नैवेली के निकट) और पूर्व मे (बीरभानपुर पश्चिम बगाल) भी मध्यपापाण बस्तिया पायी गयी है। इन स्थलियो म बडी सम्या म सूक्ष्माश्म मिले हैं, जिनकी आकृतियो मे बहुत वैविध्य है। सूक्ष्माश्मो को गढने की प्रविधियो का काफी बादवाली अवस्था मे भी चलन था जब मनुष्य ने धातु का उपयोग करना शुरू कर दिया था।

मध्यपापाण काल म भी भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशो म विकास का क्रम असमान था। ई० पू० चौथे सहस्राब्द के आरभ मे दक्षिण भारत म मध्य-पापाण बस्तियो के निवासी शिकार करने और मछली पकडने मे ही लगे हुए थे, जब कि उत्तर मे सिंध मे कृपि पर आधारित समुदाय तेजी से जड जमाने लग गये थे। इसके बाद आनेवाले नवपापाण तथा ताम्रपापाण कालो मे भी विकास क क्रम मे ऐसी ही असमानता थी।

नवपापाण काल मे कृपि और पशुपालन का और भी विकास हुआ और धीरे-धीरे यायावर रहन-सहन को त्यागकर अधिक स्थायी जीवन प्रणाली को अपना लिया गया। बलूचिस्तान और सिंध की नवपापाण सस्कृतिया इस काल की सबसे विकसित सस्कृतिया थी जो एक तरह से सिधु घाटी की नागर सभ्यता की पूर्वगामी थीं।

किली गुलमोहम्मद (क्वेटा घाटी पाकिस्तान) मे किये उत्खनन कार्य से अनुमान लगाया जा सकता है कि उत्तरी बलूचिस्तान मे ई० पू० चौथे सहस्राब्द के आरभ मे ही पशुपालन और कृपिकर्म मे प्रवृत्त नवपापाण गण (कबीले) पैदा हो चुके थे। उनके मकान कच्ची ईंटो के बने हुए थे और उनके पास पालतू पशु (भेड और बकरी) थे। धातुए अभी अज्ञात थी और उनके औजार मुख्यत पत्थर के ही थे, जिनमे कुछ हिस्से सूर्यकात (जैस्पर), चकमक और स्फटिक के होते थे। बाद मे मृद्भाड प्रकट हुए और अत मे धातु के इस्तेमाल किये जाने के पहले सकेत मिलते है। यहा प्राप्त पशुओ की स्थानीय नसलो की हड्डिया इस तथ्य की ओर इगित करती है कि बलूचि-स्तान मे कृपि की उपजे स्थानिक मूल की ही थी। राना घुडई (पूर्वी बलूचि-स्तान) मे भी इसी प्रकार की सस्कृतिया खोजी गयी है, जो ईरान की नवपापाण सस्कृति के साथ निश्चित समानताए प्रकट करती है।

दब सदात (किली गुलमोहम्मद के निकट) मे उत्खनन के परिणामस्वरूप नवपापाण तथा प्रारभिक ताम्रपापाण कालो का सुनिश्चित स्तर अभिलेखन

सभव हो गया है। रेडियो कार्बन प्रणाली से पुरातत्वज्ञो ने प्राचीनतम स्तर का काल सत्ताईसवी अथवा छब्बीसवी शती ई० पू० निर्धारित किया है। इसके बादवाले काल (छब्बीसवी से तेईसवी शती ई० पू०) का स्तर मृण्मूर्तियो काचित (लुकदार) मृद्भाडो और विभिन्न ताम्र वस्तुओ के कारण अलग पहचाना जा सकता है।

इस बीच कश्मीर जैसे उत्तरी प्रदेशो (उदाहरण के लिए, श्रीनगर के पास बुर्जहोम बस्ती) मे अधिक आदिम किस्म की नवपाषाण सस्कृतिया खोजी गयी है। प्राचीन आवास चिकनी मिट्टी मे खुदे गढो मे स्थित है। चूल्हे गढो के प्रवेशमार्ग के पास है और मृद्भाड हस्तनिर्मित तथा अनगढ है। यहा बडी सख्या मे हड्डी के मत्स्य भाले, सूए, सूइया, आदि भी मिले है। लोगो का मुख्य उद्यम मछली पकडना था। यहा कृषि मे सक्रमण बाद मे, ई० पू० उन्नीसवी और सत्रहवी सदियो के बीच हुआ। इस बीच मे निर्मित मिट्टी अथवा कच्ची इटो के बने इक्के-दुक्के आवास भी मिलते है।

देश के दक्षिणी भाग मे सबसे प्रसिद्ध नवपाषाण बस्तिया सगनकल्लू (बेलारी के पास) और पिक्लीहाल मे खोजी बस्तिया है। यहा मिले लगभग इक्कीसवी शताब्दी ई० पू० के ओपयुक्त (पालिशदार) पाषाण उपकरण और हस्तनिर्मित मृद्भाड प्रारभिक नवपाषाण काल के है। इस समय तक भेडो और बकरियो को साधा जा चुका था और आवास मुख्यत पहाडियो पर, या पहाडियो के बीच छोटे छोटे खड्डो मे बनाये जाते थे।

पिक्लीहाल के निवासी पशुपालक और खेतिहर थे। यहा खासकर पशुओ के लिए बनाये गये बाडे मिले है और आवास मिट्टी या बास के बने हुए थे। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि ये आवास ईरानी गणो के बनाये हुए है, जो यहा तक आ पहुचे थे। लेकिन यह दृष्टिकोण विद्यमान प्रमाण के विरुद्ध जाता है, जो स्थानीय परपराओ की ओर इगित करता है।

पूर्वी भारत की नवपाषाण सस्कृतियो को दो विशिष्ट क्षेत्रो — बिहार ओडिसा और असम — मे पृथक किया जा सकता है। अतोक्त सस्कृति दक्षिण पूर्वी एशिया की नवपाषाण सस्कृतियो के प्रभाव को दर्शाती है, जब कि बिहार-ओडिसा की प्रारभिक सस्कृतियो मे स्थानिक लक्षणो का प्राधान्य है।

जब उत्तरी पूर्वी और दक्षिण भारत मे नवपाषाण तथा ताम्रपाषाण सस्कृतिया विकसित हो ही रही थी, उस समय सिधु घाटी मे एक उन्नत कास्ययुगीन नागर सभ्यता फूल फल रही थी।

हडप्पा सभ्यता

किसी समय विद्वानो की यह सामान्य धारणा थी कि भारत मे सभ्यता का उदय देर मे हुआ था। वस्तुत कुछ हलको मे यह मान्यता थी कि यहा सभ्यता आर्य गणो द्वारा बाहर से लायी गयी थी। प्राचीन भारतीय सस्कृति के एकाकी स्वरूप और प्राचीन पूर्व के अन्य देशो की सस्कृतियो के मुकाबले उसके पिछडेपन का अक्सर उल्लेख किया जाता था।

हडप्पा सभ्यता की खोज और अन्वेषण ने भारतीय सस्कृति के प्राचीन और अति मौलिक स्वरूप का विलक्षण प्रमाण प्रस्तुत किया। १८७५ मे अग्रेज पुरातत्वज्ञ अलैक्ज़ैडर कनिघम ने हडप्पा (मुलतान के निकट, पश्चिमी पजाब, पाकिस्तान) मे एक अज्ञात लेख से युक्त मुद्रा खोजी। लेकिन वैज्ञानिक उत्खनन का आरभ इस सदी के तीसरे दशक मे जाकर ही हो पाया। भारतीय पुरातत्वज्ञ दयाराम साहनी और राखालदास बनर्जी ने हडप्पा और मोहन-जो-दाडो (जिला लरकाना सिध पाकिस्तान) मे प्राचीन नगर अनावृत्त किये। तभी से यह सभ्यता विभिन्न देशो के इतिहासकारो और पुरातत्वज्ञो के लिए अत्यधिक रुचि का विषय बनी हुई है।

हडप्पा सभ्यता का उद्गम

हडप्पा सभ्यता के अध्ययन से सबद्ध सबसे जटिल प्रश्नो म से एक उसके उद्गम का प्रश्न है। इसके बारे मे तरह-तरह के विचार प्रस्तुत किये गये है – हडप्पा सस्कृति को सुमेरी सस्कृति की नीव पर आधारित बताया गया है और उसे भारतीय-आर्य गणो द्वारा सस्थापित भी माना गया है जिसका मतलब यह है कि हडप्पा सभ्यता को वैदिक सभ्यता होना चाहिए। प्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ हाइने-गेल्दनर की तो यह मान्यता थी कि सिधु घाटी की सभ्यता जैसे यकायक ही पैदा हो गयी थी, क्योकि उत्खनन के प्रारभिक दौर मे पूर्ववर्ती विकास के कोई सकेत नही प्राप्त हुए थे। हाल के वर्षो मे इस सस्कृति के स्थानीय उद्गम के बारे मे महत्वपूर्ण नयी सामग्री एकत्र की गयी है। दुर्भाग्यवश भूमिगत सरिताओ के कारण पुरातत्वज्ञ अभी तक मोहन-जो-दाडो मे निम्नतम स्तरो का अनुसधान नही कर पाये है।

बलूचिस्तान और सिध मे उत्खनन दिखलाते है कि वहा ई० पू० चौथे

और तीसरे सहस्राब्द मे कृषि पर आधारित सस्कृतिया विद्यमान थी, जो प्रारभिक हडप्पा सम्यता के साथ बहुत कुछ समानता प्रकट करती है और जिनके साथ हडप्पाई बस्तियो ने काफी लबे समय तक सपर्क बनाये रखा था (डब्ल्यू० ए० फेयरसर्विस बी० दे कार्दी, जे० एम० कज़ाल, आदि की खोज)। सिंध मे कृषि का उदय बाद मे हुआ था जिसके आधार पर यह माना जा सकता है कि बलूचिस्तान और दक्षिणी अफगानिस्तान के कुछ गण इतनी दूर तक पहुच गये थे।

यह स्पष्ट है कि सिंधु घाटी मे हडप्पाई बस्तिया यकायक ही और एकमात्र ही नही पैदा हुई थी। प्रत्यक्षत कोई एक ऐसा विशेष केंद्र रहा होगा, जहा नागर सस्कृति सबसे पहले विकसित हुई थी और जहा से चलकर लोगो ने और आगे जाकर बस्तिया बसायी होगी। इस सदर्भ मे फ्रासीसी पुरातत्वज्ञ जे० एम० कज़ाल का आम्री बस्ती से सबद्ध कार्य विशेषकर दिलचस्पी का है। उन्होंने प्राक् हडप्पा काल स लेकर उत्तर हडप्पा काल तक का स्तरिक विन्यासक्रम निर्धारित किया। इसमे उस समय से लेकर, जब अधिकाश मृद्भाड चाक के बिना हाथ से बनाये जाते थे, जब इमारते नही थी और धातुओ का प्रयोग नही के बराबर था अलकृत मृद्भाडो और अनपकी ईटो से बनी अधिक टिकाऊ इमारतो की अधिक उन्नत मज़िलो तक के स्थानीय विकास का अनुगमन किया जा सकता है। प्राक्-हडप्पा काल के निम्न स्तर बलूचिस्तान मे कृषि पर आधारित प्रारभिक सस्कृतियो के साथ समानताए प्रकट करते है और बादवाले स्तरो मे सिंधु घाटी की प्रारभिक हडप्पाई बस्तियो के समय के मृद्भाड मिलते हैं। अत मे उत्खनन ने यह दिखलाया कि आम्री सस्कृति की लाक्षणिक परपराए हडप्पा परपराओ के साथ-साथ विद्यमान थी।

हडप्पा सस्कृति तथा पूर्ववर्ती आम्री सस्कृति के बीच सबध का प्रश्न वैज्ञानिक साहित्य मे प्रचड विवाद का विषय है। जहा ए० घोष दोनो सस्कृतियो म जननिक सबध स्वीकार करने के लिए तैयार हैं वहा जे० एम० कज़ाल की मान्यता है कि हडप्पा सस्कृति आम्री मे अपने आप ही नही पैदा हो गयी थी, बल्कि उस पर धीरे-धीरे 'अध्यारोपित" हुई थी।

स्वय हडप्पा म शहरपनाह के नीचे आम्री सस्कृति के मृद्भाड पाये गये थे और मोहन जो-दाडो के निम्न स्तरो मे बलूचिस्तानी सस्कृतियो के मृद्भाड मिले थे और यह तथ्य स्पष्टतापूर्वक दर्शाता है कि सिंधु घाटी की बस्तियो और बलूचिस्तान तथा सिंध की कृषि सस्कृतियो मे न केवल घनिष्ठ सपर्क ही थे वरन हडप्पा सम्यता का मूल स्थानीय था। यह इस प्रदेश की और

सबके ऊपर सिधु घाटी की कृषि [illegible] के आधार पर विकसित हुई थी, यद्यपि वह एक नयी मंजिल, कास्य युग की नागर सस्कृति को प्रकट करती है।

पाकिस्तानी पुरातत्वज्ञो द्वारा कोट दीजी (वर्तमान खैपुर के निकट) मे किये उत्खननो ने यह दिखलाया है कि इस इलाके मे प्राक् हडप्पा काल मे खासी विकसित सस्कृति विद्यमान थी – विद्वानो ने यहा एक गढ या कोट और बकायदा बने रिहायशी मकानो को अनावृत्त किया है। कोट दीजी के प्रारभिक मृद्भाड सिध और बलूचिस्तान की कृषि बस्तियो के मृद्भाडो के साथ और सिधु घाटी मे प्राक्-हडप्पा मृद्भाडो के साथ भी समानता प्रकट करते हैं, जब कि बाद के मृद्भाड हडप्पा मृद्भाडो जैसे है। इसने स्थानीय परपराओ के विकास क्रम का अनुगमन करना सभव बना दिया। कालीबगन (राजस्थान) मे उत्खनन करते हुए भारतीय पुरातत्वज्ञो ने एक स्थली पर हडप्पा सभ्यता के प्रत्यक्षत ठीक पूर्ववर्ती काल को अनावृत्त किया है, जहा एक टीले पर हडप्पा-वासियो के पूर्वगामियो की बस्तिया और उसके पासवाले टीले पर बाद मे बनी इमारते मिली है, जो स्पष्टत स्वय हडप्पा सस्कृति के सस्थापको द्वारा ही बनायी गयी थी। प्राक् हडप्पा बस्तियो के मृद्भाडो और आम्री तथा कोट दीजी मे प्राप्त हुए मृद्भाडो मे अनेक सामान्य लक्षण है। इससे विद्वानो के लिए हडप्पा सस्कृति के उदय तथा विकास का और प्रारभिक हडप्पा सस्कृति तथा परपराओ के अधिक विकसित हडप्पा काल की सस्कृति तथा परपराओ के साथ सहअस्तित्व का अनुगमन करना सभव हो गया।

हाल के वर्षो मे भारतीय पुरातत्वज्ञो ने हडप्पा सस्कृति तथा प्रारभिक हडप्पा सस्कृति के अनेक नये स्मारक खोजे हैं। इन्होने हडप्पा सभ्यता के उदय के बारे मे नये सिद्धातो को जन्म दिया है। इस सिद्धात के अलावा कि हडप्पा सभ्यता स्थानीय प्राक् हडप्पा सस्कृति तथा प्रारभिक हडप्पा सस्कृति से विकसित हुई थी, यह विचार भी पेश किया गया है कि यह सभव है कि प्रारभिक हडप्पा *सस्कृतिया – जो ग्रामीण सस्कृतिया थी – और हडप्पा सभ्यता – जो* नागर सभ्यता थी – साथ साथ विद्यमान रही हो और उनका विकास भी साथ साथ हुआ हो। वस्तुत नागर जीवन का उदय और बडी शहरी बस्तियो का प्रकट होना अपने सभी विशिष्ट लक्षणो (मुद्राओ, लेखन कला, मौलिक मृद्भाड अलकरण आदि) से युक्त विकसित हडप्पा सभ्यता के जन्म का सूचक था।

ग्रामीकरण का रुझान अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और सिध मे प्रारभिक

हडप्पा काल की कई स्थलियो मे लक्षित होता है, किंतु इतनी उन्नत नागर सभ्यता का उदय केवल सिधु घाटी मे ही हुआ था।

निस्सदेह सिधु और उसकी सहायक नदियो के जाल सहित इस इलाके की भौगोलिक अवस्थाए इस सभ्यता के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण थी, जिन्होंने भौतिक सस्कृति तथा कृषि के विकास के लिए और शहरी बस्तियो – व्यापार तथा दस्तकारी के केद्रो – की स्थापना के लिए अत्यत अनुकूल परिस्थितिया प्रदान की। यह कोई सायोगिक बात नही है कि बहुत सी हडप्पाई बस्तिया सिधु और उसकी सहायक नदियो के तटो पर स्थित है। गगा तथा यमुना की ऊपरी पहुचो मे भी हडप्पाई बस्तिया खोजी गयी है।

हडप्पा सस्कृति के मूल के बारे मे काफी कुछ अब भी स्पष्ट नही है और उसकी अधिक विस्तार से व्याख्या करने की जरूरत है, लेकिन वे सिद्धात अब केवल शास्त्रीय महत्व के ही रह गये है, जो इस सभ्यता के उदय को आर्य अथवा सुमेरी प्रभाव जैसे बाह्य कारको से सबद्ध करते है।

हडप्पा सभ्यता की सीमाए और विस्तार

इस शताब्दी के तीसरे दशक मे जब हडप्पा सभ्यता के अनुसधान का कार्य शुरू ही हुआ था यह सोचा जाता था कि इस सभ्यता की सीमाए अपेक्षाकृत सकीर्ण है। वस्तुत हडप्पाई बस्तिया आरभ मे केवल सिधु घाटी मे ही मिली थी। तथापि वर्तमान पुरातात्विक खोज ने प्रकट किया है कि हडप्पा सभ्यता एक विशाल क्षेत्र पर फैली हुई थी, जिसका प्रसार उत्तर से दक्षिण तक ११०० किलोमीटर से अधिक और पश्चिम से पूर्व तक १६०० किलोमीटर से अधिक था।

काठियावाड प्रायद्वीप मे उत्खनन ने दिखलाया है कि आबादी धीरे धीरे दक्षिण की तरफ बढती हुई नये इलाको मे बसती गयी थी। अभी तक खोजी सबसे दक्षिणवर्ती हडप्पाई बस्ती नर्मदा के मुहाने पर है, पर यह सभव है कि हडप्पाई लोग और भी अधिक दक्षिण तक गये हो। उन्होंने पूर्व की तरफ बढना शुरू किया और उसके साथ-साथ वे अधिकाधिक इलाको का 'अधिग्रहन' करते गये। इसका मतलब है कि हडप्पा सस्कृति के कुछ रूपभेद भी पैदा हो गये, यद्यपि समूचे तौर पर वह सुसस्थापित परपराओ से युक्त एकरूप सस्कृति थी।

हाल ही मे सौराष्ट्र तथा काठियावाड मे खोजी हडप्पाई बस्तियो ने एक बार फिर इस प्रश्न पर ध्यान केद्रित कर दिया है कि हडप्पाई लोगो के इतने

दूरवर्ती इलाको तक पहुचने के मूल मे क्या कारण थे और वे क्योकर वहा तक पहुचे।

पहले कुछ विद्वान यह सोचते थे कि हडप्पाई लोगो ने दक्षिण तथा पूर्व की तरफ सिधु घाटी सम्यता के तथाकथित अतिम दौर मे केवल तब ही जाना शुरू किया था कि जब मुख्य शहरी केद्रो का महत्व घटने लगा था, जब कि अन्य लोग इन बडे पैमाने के 'देशातरण' का कारण भौगोलिक अवस्थाओ मे परिवर्तनो को अथवा बाहरी आक्रमणो को बताते थे। लेकिन अब हाल मे सौराष्ट्र, गुजरात तथा काठियावाड मे परिपक्व हडप्पा सम्यता के शहरी केद्रो (उदाहरणार्थ, गुजरात मे सूरकोटडा नामक शहरी बस्ती) की खोज के बाद से यह प्रकट होता है कि सिधु घाटी के नगरो के निवासी अपनी कृषि, व्यापार और दस्तकारियो के विकास के लिए उपयुक्त भूमि की तलाश मे नये प्रदेशो मे जाकर बसते रहे होगे। यहा हमारा हडप्पा सम्यता के प्रसार" की नैसर्गिक प्रक्रिया से सामना होता है।

इतिहासकारो का खयाल है कि हडप्पाई लोग आम तौर पर स्थल मार्ग से और नदियो के साथ-साथ जाया करते थे (एस० आर० राव के इस सिद्धात मे ज्यादा वज़न नही है कि वे लोग समुद्र मार्ग से यात्रा करते थे)। काठियावाड मे उत्खननो ने हडप्पा सस्कृति और ताम्रपाषाण स्वरूप की स्थानीय सस्कृतियो के बीच प्रभावो के आदान प्रदान को प्रकट किया है।

इस प्रकार यह माना जा सकता है कि इस विराट सम्यता मे रूपभेद जिन इलाको मे हडप्पा सम्यता के सस्थापक पहुचे थे उनमे अनेक भिन्न-भिन्न सजातीय समूहो के अस्तित्व को और विकास स्तरो की असमानता को प्रतिबिबित करते हैं।

कालानुक्रम

विद्वानो के लिए अब हडप्पा सम्यता का विभिन्न प्रकार के साक्ष्यो के सदर्भ मे कालक्रम निर्धारण करना सभव हो गया है। इनमे सिधु घाटी और मैसोपोटामिया मे प्राप्य अवशेषो (जैसे दजला और फरात नदियो के बीच के नगरो मे मिली सिधु घाटी की लिपि मे लेखो से युक्त प्रस्तर मुद्राए) की तुलना, मृद्भाडो का स्पेक्ट्रमी विश्लेषण, हाल के वर्षो मे प्रयुक्त कार्बन १४ पद्धति और पूर्व के साथ व्यापारिक सबधो के बारे मे अक्कादी मूल सामग्री के हवाले सर्वोपरि हैं। आरभ मे विद्वान सुमेर तथा भारत मे सम्यताओ क

विकास मे समानताओ के बारे मे सामान्य निष्कर्षो के आधार पर हडप्पा सस्कृति का काल बहुत पीछे निर्धारित किया करते थे। प्रमुख अग्रेज पुरातत्वज्ञ और भारतीय पुरातत्व' के जनको मे से एक सर जॉन मार्शल ने सिधु घाटी सम्यता का काल ३२५०–२७५० ई० पू० निर्धारित किया था। बाद मे प्राचीन मैसोपोटामिया के नगरो म उत्खननो के दौरान सिधु घाटी किस्म की मुद्राओ के पाये जाने पर यह पता चला कि उनमे से अधिकाश सरगोन (२३१६–२२६१ ई० पू०) के शासनकाल और इसीन काल (२०१७–१७६४ ई० पू०) तथा लार्सा काल (२०२५–१७६३ ई० पू०) से भी सबद्ध थी। इन खोजो क परिणामस्वरूप विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुचे कि मैसोपोटामिया और भारत के बीच निकटतम सबधो का काल चौबीसवी और अठारहवी शती ई० पू० हो सकता है।

यह उल्लेखनीय है कि अक्कादी अभिलेखो मे पूर्वी देशो के साथ व्यापार के जिनमे दिलमुन तथा मेलूहा के साथ व्यापार भी सम्मिलित है, जिन्हे विद्वान सिधु प्रदेश अथवा उसके निकटवर्ती प्रदेश मानते है अधिकतम हवाले ऊर के तीसरे राजवश (२११८–२००७ ई० पू०) और लार्सा के राजवश के समय म मिलते हैं। लार्सा के राजा गुगूनुम के शासनकाल के दसवे वर्ष (१९२३ ई० पू०) की एक कीलाक्षर पट्टिका पर सिधु घाटी किस्म के छापचिह्न की खोज ने बडी दिलचस्पी पैदा की थी। ये सभी तथ्य इस विचार को बल प्रदान करते है कि सिधु घाटी मे नगरो का मुकुलन काल ई० पू० तीसरे सहस्राब्द के अत और दूसरे के आरभ के आसपास है। मैसोपोटामियाई नगरो के उत्खनन के दौरान सिधु घाटी की मुद्राए कस्सीत काल से सबद्ध स्तरो मे भी मिली थी, जिससे यह प्रकट होता है कि उस समय भी सपर्क बने रहे थे। हडप्पा स्थलियो के ऊपरी स्तरो मे फायन्स (प्रकाचित) मनके मिले है, जिन्हे स्पेक्ट्रमी विश्लेषण न क्रीट टापू पर नोसास (सोलहवी शती ई० पू०) म मिले इसी प्रकार के मनको जैसा ही सिद्ध किया है। इससे हडप्पा सम्यता के इतिहास के अतिम दौर का काल सोलहवी शताब्दी ई० पू० निर्धारित किया जा सकता है।

कार्बन १४ तिथि निर्धारण ने इस कालक्रम मे कुछ सशोधन आवश्यक कर दिये हैं। इसकी सहायता से विद्वानो ने यह निर्धारित किया है कि कालीबगन मे हडप्पा सस्कृति के प्रारभिक स्तरो की तिथि बाईसवी शती ई० पू० है और अतिम स्तर को अब अठारहवी तथा सत्रहवी शती ई० पू० का बताया जाता है। मोहनजो-दाडो म खोज भी समान कालक्रम की ओर ही इगित करती

है – इस सभ्यता का चरमोत्कर्ष काल बाईसवी और उन्नीसवी शती ई० पू० के बीच था और सभवत वह अठारहवी शती ई० पू० तक विद्यमान रही थी (—११५ वर्ष)।

अभी कुछ ही पहले तिथि निर्धारण की एक और पद्धति निकाली गयी है और वह है वृक्ष कालानुक्रमिकी (डेड्रोक्रोनोलॉजी)। हडप्पा बस्तियो के प्रसग मे इस पद्धति से निर्धारित तिथिया विद्वानो को इसी सिद्धात पर वापस लाती है कि सिधु घाटी सभ्यता को कालक्रम मे और अधिक पीछे का माना जाना चाहिए।

सिधु घाटी सभ्यता का काल निर्धारण करने का प्रयास करते समय यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि विभिन्न सबद्ध प्रदेशो मे नगरो और बस्तियो के अस्तित्व काल मे काफी कालातर है। उदाहरण के लिए, काठियावाड मे उत्खननो ने दिखलाया है कि सिधु घाटी मे मुख्य केद्रो के ह्रास के बाद भी अन्य प्रदेशो मे हडप्पा सस्कृति के नगर बने रहे थे यद्यपि कुछ भिन्न रूप मे। भारतीय विद्वानो द्वारा पजाब तथा हरियाणा मे की गयी नयी पुरातात्विक खोजे यह दिखाती हैं कि हडप्पा सभ्यता के ' पूर्वी परिसर की हडप्पाई बस्तिया बाद की हैं।

नगर और उसके लक्षण

बडे नगरो का अस्तित्व और नगर योजना तथा स्थापत्य की सुस्पष्ट पद्धति हडप्पा सभ्यता द्वारा प्राप्त विकास के उच्च स्तर के परिचायक हैं।

पुरातत्वज्ञो ने इस सभ्यता के कई बडे नगर खोजे हैं, जिनमे हडप्पा और मोहन-जो दाडो सबसे बडे है।

मोहन जो-दाडो का क्षेत्रफल लगभग ढाई वर्ग किलोमीटर था और उसकी आबादी ३५,००० के आसपास थी (यद्यपि कुछ विद्वान उसे और अधिक – एक लाख तक भी – बताते है)।

इन उत्खननो से अनुमान लगाया जाता है कि हडप्पा सभ्यता के सभी शहरी केद्र समान योजना पर ही आधारित थे। बडे नगरो के दो मुख्य भाग होते थे – दुर्ग या गढी अथवा कोट, जिसमे नगर के अधिकारी रहा करते थे और तथाकथित निचला शहर या निचली बस्ती, जिसमे रिहायशी मकान सकेद्रित होते थे। नगर का यह दूसरा हिस्सा आम तौर पर आयताकार बनाया जाता था। दुर्ग शेष नगर से ऊपर उठे ईंट के ऊचे चबूतरे पर बनाया जाता

था। यह चबूतरा बाढ के विरुद्ध सरक्षण भी प्रदान करता था, जो सिधु घाटी के नगरो पर आनवाली सबमे भयावह दैवी आपदाओ मे एक थी। नगर के दोनो भागो मे सपर्क प्रत्यक्षत बहुत सीमित थे। उदाहरण के लिए, कालीबगन मे उत्खननो न प्रकट किया है कि कोट को निचले नगर से केवल दो प्रवेश मार्ग जोडते थे। लगता है कि आवश्यकता पडने पर इन प्रवेश मार्गो को काटा जा सकता था और इस तरह से नगर अधिकारी जनसाधारण से अलग हो जाते थे। सूरकोटडा मे दुर्ग को एक आरक्षित परकोटा निचले नगर से अलग करता था।

हडप्पा म कोट के छोर पर एक विशेष शोभायात्रा पथ बना हुआ था, जिस पर होकर प्रत्यक्षत सैनिक प्रयाण करते थे अथवा जलूस जाया करते थे। दुर्ग की मोटी दीवारो और बुर्जो से अच्छी तरह से किलेबदी की गयी थी। कालीबगन मे उत्खननो से गढी की बाहरी रक्षापातो का निर्माण करने वाली ईट की एक मोटी दीवार का पता चला है, जिसके भीतर धार्मिक और – प्रत्यक्षत – प्रशासनिक कार्यो से सबद्ध इमारते थी। मोहन जो-दाडो मे कोट मे एक विशाल तालाब मिला है (चौडाई – ७ मीटर, लबाई – १२ मीटर और गहराई लगभग २ ५ मीटर), जो सभवत किसी धार्मिक इमारत का अग था और विशेष आनुष्ठानिक स्नानो के काम आता था। एक विशेष नाली प्रणाली कूए से इस तालाब को ताजा पानी के निरतर प्रवाह को सुनिश्चित करती थी। तालाब के पास ही सार्वजनिक अन्नागार और एक खभेदार चौकोर कक्ष था, जो सभवत सभागार का काम देता था (या कुछ विद्वानो के मतानुसार बाजार का) – खभो के सिर्फ आधार ही बच पाये है, क्योकि स्वय खभे प्रत्यक्षत लकडी के बने हुए थे।

हडप्पा म भी गढ के उत्तर म सार्वजनिक अन्नागार मिले है। अन्नागारो की बगल मे पत्थर के विशेष चबूतरो का होना यह दर्शाता है कि वहा अनाज की गहाई भी होती थी – पुरातत्वज्ञो को फर्श की दरारो मे गेहू और जौ की बालिया मिली हैं। अनाज शहर मे सभवत नावो द्वारा नदी के रास्ते लाया जाता था और धान्यागारो मे जमा कर लिया जाया करता था।

निचले शहर के सामान्य रिहायशी इलाके भी सुनिर्धारित योजना के अनुसार बने हुए थे। उनमे मुख्य सडके भी देखी जा सकती थी जो मोहन जो-दाडो मे १० मीटर तक चौडी थी। इन सडको को छोटी छोटी सडके समकोण पर काटती थी जो कभी-कभी तो इतनी सकरी होती थी कि उन पर बैलगाडी भी नही गुजर सकती थी।

मकान अलग-अलग आकार के थे। किसी-किसी मे तो तीन मजिले तक भी थी (इसका अनुमान सीढियो के अवशेषो से लगाया जा सकता है) और उनकी छते सपाट थी। ये स्पष्टत सपन्न नागरिको के मकान थे। उनमे विशेषकर बनी खिडकिया नही थी और मकानो मे हवा और रोशनी दीवार के ऊपरी सिरे के पास बनाये छोटे-छोटे छेदो के जरिये पहुचती थी। मकानो के दरवाज़े लकडी के थे। निमाण मे लकडी के अलावा पिटी हुई गाद कभी इस्तेमाल किया जाता था। हर मकान मे एक विशेष उपभवन और आगन होता था, जिसमे एक रसोईघर होता था। रसोईघर मे विशेष चूल्हे और अनाज तथा तेल रखने के लिए बडे-बडे पात्र होते थे। रोटी विशेष तदूरो मे पकायी जाती थी। आगन मे छोटे पशु भी रखे जाते थे।

गरीब लोग झोपडो और छप्परो मे रहा करते थे। हडप्पा मे दुर्ग प्राचीर और गहाई मच के पास आवासो की दो कतारे मिली है जिनमे से प्रत्येक एक एक छोटे कमरे का था। इसी तरह के मकान मोहन-जो-दाडो मे भी मिले है, जिनमे शायद गरीब दस्तकार अनियत मजदूर और दास रहा करते थे। शहर की सडको पर दूकाने और कार्यशालाए भी मिली है।

निचले नगर मे धार्मिक इमारते भी हो सकती थीं। अग्रेज पुरातत्वज्ञ मोर्टीमर ह्वीलर ने मोहन जो-दाडो मे अब अविद्यमान ऊपर की मजिल की तरफ जाती सीढियो सहित एक विशाल चबूतरे पर बनी इमारत और पत्थर की मूर्तियो के टुकडे खोजे है। उन्होने यह निष्कर्ष निकाला है कि यह सारी इमारत कोई मदिर रही होगी।

मुख्य निर्माण सामग्री पकायी हुई ईट थी यद्यपि कच्ची ईटे भी मिलती है। कालीबगन मे पकायी हुई ईटो का मुख्यत कूए और स्नानकक्ष बनाने मे उपयोग किया जाता था।

शहरो की जल सभरण तथा जलनिकास व्यवस्था की तरफ काफी ध्यान दिया जाता था। लगभग हर ही मकान म कूआ था और सडको मे सार्वजनिक कूए बने हुए थे। सिधु घाटी सभ्यता के नगरो मे जलनिकास व्यवस्था प्राचीन पूर्व की सबसे उन्नत जलनिकास व्यवस्थाओ मे थी। सडको मे विशेष गढे बने हुए थे, जिनमे मल बहकर आता था इसके बाद तरल मल को विशेष वाहिकाओ मे प्रवाहित कर दिया जाता था और उन्ह प्रकटत नियमित अवधियो के बाद साफ किया जाता था। वाहिकाए ईटो की बनी हुई थी और ईटो अथवा पत्थर की सिल्लियो से ढकी हुई थी। स्थानीय जलवायवी अवस्थाओं, जनसख्या घनत्व और सफाई तथा स्वच्छताविनान के निम्न स्तर के दृष्टिगत

यह कारगर जल सभरण तथा निकास व्यवस्था अत्यधिक महत्व की थी।

पुरातत्वनो ने लोथल (सौराष्ट्र) मे मौलिक योजना पर बने एक नगर का पता लगाया है जो केवल व्यापारिक केंद्र ही नही, बल्कि प्रत्यक्षत बदरगाह भी था। यह पत्थर की शहरपनाह से घिरा हुआ था और मकान बाढ से बचाने के लिए एक विशेष मच पर बने हुए थे। बस्ती के पूर्व म एक जहाजघाट (२१८×३७ मीटर) था, जो नहरो द्वारा नदी से और उसके जरिये समुद्र से जुडा हुआ था। उत्खनन से ढाई किलोमीटर से अधिक लबी एक नहर के अवशेषो का पता चला है। शहर के शेष भाग मे रिहायशी मकान थे। बडी सडके चार से छ मीटर तक चौडी थी और सकरी गलियो की चौडाई दो मीटर से अधिक नही थी। मुख्य राजमार्ग के दोनो ओर दस्तकारो की कार्यशालाए थी।

मुख्य उद्यम

नगर निर्माण के उन्नत स्तर के बावजूद उस समय सिधु घाटी मे अधिकाश आबादी देहाती बस्तियो मे रहती थी और उसका मुख्य उद्यम कृषि ही था। सिधु घाटी पूर्व मे कृषि के सबसे पहले केंद्रो मे एक थी। यहा प्राचीन काल से ही तरह-तरह की फसलो की काश्त होती आयी है – पुरातत्वज्ञो की खोजो से पता चलता है कि हडप्पाई लोग गेहू (दो किस्मो) जौ, तिल और फलियो की काश्त से परिचित थे। सिधु घाटी की बस्तियो मे चावल के दाने नही मिले हैं, लेकिन लोथल और रगपुर (सौराष्ट्र) मे मिट्टी के स्तरो और मृद्भाड खडो मे धान की भूसी मिली है। इससे यह माना जा सकता है कि इन इलाको के निवासी धान की खेती करते होगे। मोहन जो दाडो म उत्खनन म सूती कपडे का एक छोटा सा टुकडा मिला था, जो यह स्पष्ट दर्शाता है कि उस समय कपास की खेती की जाती थी। बागबानी का भी प्रचलन था। तत्कालीन कृषिजीवी सिधु की बाढो का सदुपयोग करते थे और सभवत सिचाई भी करते थे। कुछ विद्वानो (जैसे डॉ० डी० डी० कोशाबी) के मतानुसार अभी हलो का उपयोग शुरू नही हुआ था और जमीन को हलके ढग से जोता जाता था।

लेकिन कालीबगन म प्राक्-हडप्पा स्तरो के उत्खनन के समय हलो के टुकडे मिले थ और यह तथ्य प्राक-हडप्पाई लोगो द्वारा भी हलो का उपयोग किये जाने की ओर इगित करता है। इसलिए इसम कोई सदेह नही

कि हडप्पाई लोग इस अत्यत महत्वपूर्ण कृषि उपकरण का इस्तेमाल करते थे।

पशुपालन का भी काफी महत्व था। सिधु घाटी मे पाले जानेवाले घरेलू पशु भेड, बकरी, गाय और कुत्ता थे। मुर्ग भी पैदा किये जाते थे। लगता है कि हाथी भी साधे जाते थे। अभी तक इसका कोई प्रमाण नही है कि घोडो से वे लोग परिचित थे या नही यद्यपि इस प्रश्न पर अनुसधान चल रहा है।

औजार, बरतन, हथियार तथा अन्य चीजो के निर्माण मे प्रयुक्त मुख्य धातुए तावा और कासा थी। इस युग म गलाई ढलाई और गढाई की प्रविधियो का प्रचलन हो चुका था। धातु की चीजो के विश्लेपण से अल्प मात्राओ मे निक्ल तथा सखिया के मिलाये जाने का पता चला है। धातुओ से लघु मूर्तिया बनाने के लिए तथाकथित भ्रष्ट मोम विधि (मोम साचा विधि) का उपयोग किया जाता था।

लेकिन पत्थर का महत्व अभी खत्म नही हुआ था और उससे अनेक उपकरण तथा आभूपण बनाये जाते थे, तथापि सिधु घाटी सभ्यता की बस्तियो मे लोहे के उपयोग का कोई चिह्न नही मिला है। भारतीय इतिहास मे लोहे का आविर्भाव बाद की मजिल मे होता है।

इस युग के जौहरी सोने और चादी का काम भी करते थे। मूल्यवान-आभूपणो को सभ्रात नागरिको मे स्पष्टत बहुत लोकप्रियता प्राप्त थी।

हडप्पा सभ्यता के जमाने मे कताई और बुनाई, हड्डी के तराशे जाने धातु पर उत्कीर्णन और मृद्भाड बनाने जैसे शिल्प भी व्यापक पैमाने पर प्रचलित हुए। उत्खनन कार्य के दौरान चरखे कई मकानो मे मिले है। इस काल के मृद्भाड सुअलकृत है और उन पर खासकर ज्यामितीय अथवा पौधो के नमूने हैं। कटारो और तश्तरियो को चाक पर बनाया जाता था और विशेप आवो मे पकाया जाता था। लुक्दार बरतन (काचित मृद्भाड) भी बनाये जाते थे।

राजनीतिक सगठन और सामाजिक सरचना

सिधु घाटी सभ्यता का राजनीतिक सगठन अब भी विद्वानो मे विवाद का विषय बना हुआ है, यद्यपि मोहन जो-दाडो, हडप्पा, कालीबगन तथा अन्य नगरो मे गढियो की खोज वर्ग स्तरीकरण की कल्पना का समर्थन करती है। अब तक प्रकाश मे लाये तथ्यो के दृष्टिगत कतिपय पश्चिमी विद्वानो के इस दावे का काफी आधार नही है कि सिधु घाटी की सभ्यता वर्ग-पूर्व स्वरूप की है।

इन नगरो म दुर्ग बहुत करक शासक (अथवा शासको) का मुख्यालय और प्रासाद होता था। यह नगर प्रशासन का केंद्र बिंदु भी था, जो नगर जल सभरण तथा निकास की जटिल व्यवस्था को भी नियत्रित करता था। यह भी प्रतीत होता है कि सार्वजनिक धान्यागार भी नगर सत्ता के इन्ही निकायो क अधीन थ। नगरो मे प्रत्यक्षत एक नगर परिषद हुआ करती थी। यह सभव है कि इस परिषद के सदस्यो की बैठके मोहन-जो-दाडो की स्थली पर मिले तथाकथित सभा कक्ष म ही होती हो।

भारतीय पुरातत्वज्ञो द्वारा कालीबगन मे उत्खनना क परिणामस्वरूप रोचक तथ्य प्रकाश म आये है। गढी ही नही, बल्कि निचली बस्ती भी दीवार से घिरी हुई थी और किलेबद थी। कालीबगन मे गढी के दो भाग थे—उत्तरी और दक्षिणी। उत्तरी भाग मे रिहायशी मकान थे, लेकिन दक्षिणी भाग म कोई मकान नही था जहा कच्ची ईंट के बन अनक चबूतरे मिले हैं। इनम स एक चबूतरे क शिखर पर वेदियो के अवशेष मिले थ। इसके आधार पर कुछ भारतीय विद्वानो (उदाहरण के लिए, बी० बी० लाल) न यह अनुमान लगाया है कि गढी का दक्षिणी भाग विशेष धार्मिक भवन समूह था, न कि किसी शासक का निवास। इस प्रसग मे यह सभव है कि गढ के उत्तरी भाग के रिहायशी मकान पुरोहितो के आवास रहे हो।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है सबस बडे दो नगर मोहन जो-दाडो और हडप्पा थे और कुछ विद्वान उन्हे या तो एक ही अथवा दो भिन्न राज नीतिक इकाइयो की दो राजधानिया समझते है। सबद्ध विस्तृत प्रदेश पर फैली बस्तियो के केद्र बिदु और प्रशासन के तरीको के प्रश्न का उत्तर दिया जाना अभी शेष है—इस प्रसग मे माप तथा तौल की एक ही प्रणाली, लेखन की एक ही विधि और नगर विन्यास तथा निर्माण प्रविधियो, आदि मे घनिष्ठ समानताओ का होना बहुत अर्थगर्भित है।

इसी प्रकार हडप्पाई नगरो मे राजनीतिक सत्ता के स्वरूप का और इस सभ्यता की समग्र वर्ग सरचना का प्रश्न अब भी बहुत विवादास्पद है। कुछ विद्वानो (जैसे सोवियत सघ के व० व० स्त्रूवे और जर्मन जनवादी जनतत्र के डब्ल्यू० रूबेन) न यह परिकल्पना प्रस्तुत की है कि हडप्पा सभ्यता दास स्वामित्व पर आधारित थी। तथापि इस सिद्धात के समर्थन मे तथ्य और प्रमाण अभी अपर्याप्त है। अन्य विद्वानो ने यह मानते हुए इसके राजनीतिक सगठन की प्राचीन मैसोपोटामिया से तुलना की है कि सिधु घाटी मे भी सत्ता पुरोहितो के हाथ मे थी, जिनका सारी जमीन पर कब्जा था। यह भी

सभव है कि हडप्पाई नगरो मे सत्ता का रूप अल्पतत्रीय गणतत्र का रहा हो।

उत्खननो ने सपत्ति के बारे मे सुस्पष्ट असमानता को प्रकट किया है। बडे-बडे मकानो मे स्पष्टत धनी नागरिको – व्यापारियो अथवा सपन्न दस्त कारो – का निवास था, जब कि गरीबो को छोटे छोटे झोपडो मे बसेरा करना पडता था। शवाधान रीतियो मे सपत्ति के मामले मे असाधारण अतर प्रतिबिबित होते है। धनी नागरिको को आभूषणो और अलकृत पात्रो के साथ दफनाया जाता था। निर्धनो की अतिम त्रिया कही अधिक सीधी सादी होती थी। विद्वानो का खयाल है कि हडप्पाई नगरो मे दास थे, जो झोपडो मे रहते थे ओर अनाज गहाते थे, भारी बोझ ढोते थे और सभवत जलनिकास व्यवस्था की सफाई मे सहायता करते थे। हडप्पा मे दुर्ग के प्राचीर के बाहर सार्वजनिक धान्यागारो के निकट और अनाज गहाने के चबूतरो की बगल मे ही घटिया आवास मिले थे, जिनमे स्पष्टत बधुआ मजदूर या दास ही रहते होगे। कालीबगन और लोथल मे ऐसे कोई आवास नही मिले थे, जिससे विद्वान (जैसे फ्रासीसी पुरातत्वज्ञ जि० एम० कजाल) इस निष्कर्ष पर पहुचे है कि हडप्पा मे रायज निरकुश शासन की अपेक्षा इन नगरो मे सत्ता की सरचना अधिक उदार किस्म की थी। यद्यपि यह प्रतीत होता है कि नगर-नगर मे राजनीतिक सगठन भिन्न-भिन्न था, किंतु इसका भी निर्णायक प्रमाण नही है। अग्रेज विद्वान डी० एच० गोर्डन द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण दिलचस्प है, जो कहते है कि कुछ मृण्मूर्तियो को दासो की आकृतिया माना जाना चाहिए (उनमे सिरो पर गोल टोपिया पहने और घुटनो को बाहो मे लिये उकडू बैठे स्त्री पुरुषो को दिखाया गया है)। इस प्रसग मे कजाल बहुत सादी और सक्षिप्त "इबारत" से युक्त छोटी मुद्राओ के एक समूह को अलग रखते है और उन्हे मजदूरो अथवा दासो के पहचान पत्र" कहते है।

समूचे तौर पर उत्खनन कई सामाजिक समूहो – जैसे पुरोहितो, व्यापारियो, दस्तकारो और बधुआ मजदूरो – के अस्तित्व की ओर इगित करता है। इसके अलावा सेना का भी एक विशिष्ट समूह रहा होगा। इस स्तरीकरण के आधार पर कुछ विद्वान हडप्पा सभ्यता को श्रेणीबद्ध सामाजिक सगठन का भ्रूण रूप मानते है।

व्यापार तथा विदेश सबध

हडप्पा सभ्यता के नगर आतरिक तथा विदेश व्यापार के केद्र थे। विदेश व्यापार समुद्री तथा स्थल मार्ग – दोनो तरह से किया जाता था। पुरातात्विक

खाजो और मध्य पूर्वी स्रोतो के लिखित अभिलेखो दोनो, से इस व्यापार के विकास और व्यापार मार्गो की दिशा पर प्रकाश पडता है। मोहन जो-दाडो मे उत्खनन के दौरान एक शकटिका (दो पहियेदार गाडी का प्रतिरूप) मिली थी। ऐसी गाडियो का सिंधु घाटी की सीमाओ के भीतर माल का परिवहन करने के लिए इस्तेमाल किया जाता होगा। हडप्पाई नगरो और दक्षिण भारत के कुछ भागो के बीच व्यापार सबध थे जहा से मूल्यवान धातुए प्राप्त की जाती थी। अभी हाल ही मे यह सिद्ध किया गया है कि हडप्पा सभ्यता के नगरो और दक्षिण तुर्कमानिया की बस्तियो के बीच व्यापार सबध विद्यमान थे (यथा अल्तीन तेपे मे व० म० मस्सोन की खोजे)।

मुद्राओ मनको शखो तथा अन्य लाक्षणिक हडप्पा वस्तुओ की मैसोपोटामियाई नगरो मे और मैसोपाटामिया जैसी मुद्राओ की सिंध घाटी के नगरो मे भी खोज से सिंधु घाटी तथा सुमेर के बीच घनिष्ठ व्यापार सबधो के अस्तित्व का पता चलता है। सुमेर मे उत्खनन के दौरान कपडे का एक टुकडा मिला था जिस पर एक हडप्पाई मुद्रा की छाप थी। सुमेर के साथ व्यापार सबध बहरीन के जरिये समुद्र मार्ग से स्थापित किये गये प्रतीत होते है, जहा हडप्पाई चीजो से मिलती जुलती वस्तुए पायी गयी है। लोथल मे खोज भी विदेश व्यापार के व्यापक पैमाने को प्रकट करती है। वहा उत्खनन मे एक बडे जहाजघाट गोदियो और पत्थर के लगरो को पाया गया है। मोहन जो दाडो और हडप्पा मे मिली कुछ मुद्राओ तथा मृण्मूर्तियो पर जहाज का एक मृत्तिका प्रतिरूप भी मिला है जिस पर एक छेद भी बना है, जो प्रत्यक्षत मस्तूल घुमाने के लिए था।

लोथल मे एक गोल मुद्रा भी मिली है जो बहरीन तथा मैसोपोटामियाई नगरो मे मिली अन्य गोल मुद्राओ से मिलती-जुलती है।

अक्कादी स्रोतो मे व्यापारियो द्वारा समुद्र पार दिलमुन मगन तथा मलूहा देशो की यात्राओ के हवाले मिलते है।

कुछ विद्वान दिलमुन को पूर्वोल्लिखित बहरीन समझते है जब कि अन्य विद्वान इस नाम को हडप्पा सभ्यता के भीतर के कुछेक क्षेत्रो का द्योतक मानते है। मगन को कभी कभी बलूचिस्तान के भीतर स्थित बताया जाता है जब कि मलूहा को तो मोहन-जो-दाडो या हिंदुस्तान के पश्चिम तट पर स्थित नगरी समझा जाता है। इन नामो की वास्तविकता के निर्धारण का प्रश्न अभी तक हल नही हो पाया है किंतु हडप्पाई नगरो और मैसोपोटामिया के बीच व्यापार तथा सास्कृतिक सबधो का होना निर्विवाद है।

पुरातात्विक खोज हम हडप्पा सभ्यता के लोगो के धार्मिक विचारो के बारे मे अनुमान लगाने के लिए कुछ सामग्री प्रदान करती है। दुर्ग और नगर के रिहायशी इलाका के भीतर भी कुछ इमारत मिली है जिन्हे मदिर मानने मे विद्वानो के पास काफी आधार है। इन मदिरो और अनुष्ठानिक स्नान तालो तथा मोहन जोदडो और हडप्पा मे भी मिली कुछ प्रस्तर प्रतिमाओ के बीच प्रत्यक्षत सबध है बहुत से विद्वानो के मतानुसार ये मदिर और कुछ प्रस्तर प्रतिमाए एक देवता से सबद्ध है जिसकी तुलना आद्य शिव से की जाती है। एक मुद्रा पर एक नीची सी पाठिका पर विशिष्ट योग के आसन मे बैठे त्रिमुखी देवता को दिखाया गया है जिसके साथ हिरनो की छोटी-छोटी आकृतिया माना सलग्न हैं। देवता की जटाए सीगो जैसी लगती है। उसके दोनो ओर वन्य पशु खडे हुए है। सर जान मार्शल ने जो उत्खनन कार्य का निदेशन कर रहे थे इस देवता को शिव पशुपति माना था। यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन हिंदू ग्रथो मे शिव को योगीनाथ माना गया है जिसकी जटाए श्रृगवत है। अब विभिन्न विद्वानो द्वारा भी समर्थित यह व्याख्या हिंदू धर्म और हडप्पा सभ्यता के लोगो मे प्रचलित धार्मिक मान्यताओ के बीच सबध की ओर इगित कर सकती है। एक और तथ्य जो इस सिद्धात का समर्थन करता प्रतीत होता है, मुद्राओ पर बैलो बाघो तथा अन्य पशुओ का अकित किया जाना है। जैसा कि ज्ञात ही है हिंदू परपरा मे विभिन्न देवता भिन्न भिन्न पशु पक्षियो से सबद्ध है, जैसे शिव बैल (नदी) से और शिव की सहचरी पार्वती बाघ से। यह सभव है कि विभिन्न पशुओ का यह चित्रण टोटमी धारणाओ का अवशेष रहा हो और कुछ पशु विभिन्न गण समूहो के गणचिह्न (टोटम) रहे हो।

हाल के वर्षो मे कुछ विद्वानो (ए० घोष सहित) ने इस मान्यता पर सदेह प्रकट किया है कि हडप्पा परपराओ ने प्राचीन भारत के उत्तरवर्ती एतिहासिक तथा सास्कृतिक विकास पर कोई प्रभाव डाला होगा और इस विचार का अस्वीकार किया है कि यह त्रिमुखी देवता कोई आद्य हिंदू देव था।

बच रही मुद्राओ से अनुमान लगाया जा सकता है कि सिंधु घाटी के नगरो मे अग्नि जल तथा वृक्ष उपासना का प्रचलन था। लोथल और कालीबगन मे वेदियो के खड मिले है।

इतिहासज्ञो ने हडप्पा मुद्राओ का विस्तृत अध्ययन किया है और इसके

आधार पर हडप्पाई लोगो की सृष्टिविषयक तथा पौराणिक धारणाओ का निरूपण करना सभव हो गया है। इस धारणाओ म से अनेक हिंदू धार्मिक विचारो के साथ प्रत्यक्ष सादृश्य प्रकट करती है।

कुछ सुमेरी विषयो, विशेषकर गिलगामेश की प्रसिद्ध कथा की कुछ घटनाओ मे सादृश्य विशेषकर रोचक है। किंतु प्रसगाधीन हडप्पा मुद्रा म नायक बाघो को वश मे करता है न कि सिहो को।

स्त्रिया को चित्रित करती कई लघु मृण्मूर्तिया पायी गयी है और यह तथ्य मातृदेवी की उपासना की ओर इगित करता है।

हडप्पाइयो क धर्म और उनकी सस्कृति क विकास के बारे म पेश किये गये बहुत स विचार परिकल्पनाए मात्र है, जिनकी व्यवहार्यता की पुष्टि केवल तब ही हो पायेगी कि जब विद्वान आद्य भारतीय लिपि का उद्घाटन करने म सफल हो जायेगे। किंतु अब भी इससे इन्कार करना कदाचित ही सभव होगा कि हडप्पा सभ्यता की परपराओ ने वैदिक गणो क विकास पर निश्चित प्रभाव डाला है।

भाषा तथा लिपि

अभाग्यवश हडप्पा सभ्यता की लिपि का अभी तक उद्घाटन नही हो सका है किंतु इसका अस्तित्व ही इस सस्कृति के विकास के उच्च स्तर का परिचायक है। अब तक लेखयुक्त दो हजार से अधिक मुद्राए खोजी जा चुकी है और इसके अलावा मृद्भाडो और धातु से बनी चीजो पर भी लेख मिले हैं। विद्वानो की राय है कि य मुद्राए माल की रसीद अथवा तावीज भी हो सकती है क्योकि उनम स अनेक मे छोटे-छोट छद है। यह सभव है कि ये लेख केवल मुद्राओ पर ही नही, वरन ऐसी सामग्रियो पर भी अकित किये गये हो, जिन पर लिखना आसान था उदाहरण के लिए ताडपत्र। लेकिन वे बहुत जल्दी ही नष्ट हो जानेवाले रहे होगे और यही कारण है कि वे बच नहीं पाय है। इसके दृष्टिगत मिट्टी की एक दवात की खोज विशप दिलचस्पी की थी।

मुद्राओ पर मिले वर्णो की कुल सख्या ४०० के लगभग है। विद्वानो न सिद्ध कर दिया है कि य अधिकाशत स्वनिक सकेत थे, यद्यपि कुछ भाव लेख–चित्राक्षर–भी थे। ये लेख अपेक्षाकृत सक्षिप्त ह। अको को व्यक्त करन के लिए विशेष रेखाओ का उपयोग किया जाता था। कालीबगन मे एक मृद्भाड खड मिला था जिसने यह पूर्णत स्पष्ट कर दिया कि लिखायी दाये म बाय की जाती थी।

विद्वान कई दशक से इस लिपि का उद्वाचन करने का प्रयास कर रहे है। इसके बारे मे कई सिद्धात पेश किय गये है। प्रसिद्ध विद्वान बदरिख ह्रोज्नी ने हडप्पा लिपि का सबध हित्ती चित्रलिपि मे जोडा था यद्यपि अनुसधान की इस दिशा से कोइ फल प्राप्त नही हुए। इन लेखो का उद्वाचन करन के लिए पहले यह निधारित करना आवश्यक है कि सिधु घाटी के निवासी कौनसी भाषा बोलत और लिखत थे। कई प्रसिद्ध विद्वान (उदाहरण के लिए टी० बरो तथा एम० इमेनो) इसे द्रविड (आद्य द्रविड) भाषा समूह की मानते है।

हडप्पा पाठो का कप्यूटर की सहायता से विश्लेषण करनेवाले विद्वान भी समान निष्कर्ष पर ही पहुचे थे (एक दूसरे से स्वतत्र काम करते हुए सोवियत और फिनलैडी अनुसधानकर्मियो न एक जैसे परिणाम प्राप्त किये थे)। उनकी मान्यता है कि आद्य भारतीय भाषा (हडप्पा पाठो की भाषा) को यह ध्यान मे रखते हुए द्रविड समूह की भाषा माना जा सकता है कि इसका मतलब भारत की वर्तमान द्रविड भाषाए नही, बल्कि एक आद्य द्रविड भाषा है, जिसकी सबद्ध विशेषज्ञो द्वारा आजकल सफलतापूर्वक पुनरचना की जा रही है। यदि कोई द्विभाषी पाठ – ऐसा लेख जिसमे पाठ के दो रूप दो भाषाओ म दिये हुए हो – मिल जाये तो हडप्पा अक्षरो को उद्वाचन सभव हो जायेगा। अगर हम पुरातात्विक उत्खननो से प्राप्त उस सामग्री को ध्यान मे रखे, जो हडप्पा सभ्यता के और मैसोपोटामिया के नगरो मे घनिष्ठ सपर्को की ओर इगित करती है, तो यह मानन का आधार है कि ऐसा कोई लेख अवश्य मिलेगा।

सिधु घाटी के नगरो का ह्रास

हाल के उत्खननो ने हडप्पा सभ्यता पर नया प्रकाश डाला है, जिसके परिणामस्वरूप अब उसे अनम्य और गतिहीन नही माना जा सकता। हडप्पा सस्कृति के आतरिक विकास के अनुसधान न उसके नगरो के जीवन मे अनेक सुस्पष्ट दौरो को प्रकट किया है। उनके चरमोत्कर्ष के बाद ह्रास का दौर आया। मोहन जो दाडो, हडप्पा, कालीबगन, आदि मे उदघाटित प्रमाणो से यह बात खासकर स्पष्टता के साथ सामने आती है। तथाकथित उत्तरवर्ती काल मे मोहन जो दाडो मे निमाण कार्य किसी सुनिश्चित योजना के बिना हुआ था और उस समय तक कुछ बडी सार्वजनिक इमारत खडहर भी होन लगी थी और उनके स्थान पर छोटी इमारते बन चुकी थी। जल सभरण

व्यवस्था भी इस समय तक टूटने फूटने लग गयी थी। हडप्पा में भी कई इमारतें खंडहर हो रही थी। पहलवान और के मत्रिय ज्यापार का भी ह्रास होने लगा था। मृद्भांड बनाने की प्रविधियां भी बदल गयी थी अलंकरण कम हो गया था और घटिया किस्म का था।

यह प्रश्न कि हडप्पाई नगरों ने ह्रास के युग में क्या प्रवेश किया विशेषज्ञों में प्रचंड विवाद का विषय है। पहले ज्यादा तर उभरी सबसे प्रचलित व्याख्या यह थी कि हडप्पाई नगरों के और सारी हड़प्पा सभ्यता के पतन का तात्कालिक कारण आर्य गणों का आक्रमण था। लेकिन अपेक्षाकृत हाल के अनुसंधानों ने प्रकट किया है कि कई नगरों का अपकर्ष आतरिक कारकों के फलस्वरूप विदेशी कबीलों के आने के पहले ही शुरू हो चुका था। इन स्थानीय कारणों में से कुछ जमीन का खारी होना बाढ़ राजस्थान मरुस्थल का प्रसार और सिंधु की धारा का बदलना हो सकते हैं

मोहन जो दडो क्षेत्र में अनुसंधान में एक जलविज्ञान अभियान ने यह निष्कर्ष निकाला कि बहुत समय पहले हुए एक विवर्तनिक विक्षोभ का अधिकेंद्र इस नगर के पास ही था जिसके कारण वह नष्ट हो गया। अन्य विशेषज्ञों की मान्यता है कि मोहन जो दडो के विनाश का मुख्य कारण बाढ़ थी। नगर कई बार जलप्लावित हुआ और अंत में निवासियों को उसे त्यागकर अन्यत्र जाना पड़ा। यह संभव है कि कई और शहर भी बाढ़ों के शिकार हुए हों। मोहन जो दडो के अवसान की व्याख्या करने के लिए हाल ही में एक और सिद्धांत पेश किया गया था – सिंधु की धारा के बदलने से भयंकर सूखा पड़ गया जिसने नगर को अशक्त कर दिया और विदेशी आक्रमणकारियों के लिए उसे सर करना सुगम बना दिया।

ये सभी सिद्धांत विशेष बस्तियों अथवा नगरों से ही संबद्ध है और इसकी व्याख्या नहीं करते कि ई० पू० अठारहवीं और सत्रहवीं शतियों में हडप्पा सभ्यता का समूचे तौर पर पतन क्या हुआ। यह संभव है कि हडप्पाई समाज में इन भारी परिवर्तनों का मूल प्रदेश के तीव्र विस्तार और विकास में पिछड़े हुए इलाकों के संयोजन के परिणामस्वरूप इस संस्कृति के बर्बरीकरण में रहा हो। इस विषय का और अधिक अनुसंधान करना आवश्यक है किंतु यह अब भी स्पष्ट है कि हडप्पा सभ्यता के अवसान और उसके नगरों के ह्रास का मुख्य कारण आतरिक परिघटनाएं ही थी।

यह उल्लेखनीय है कि ऐसा ही ह्रास सिंधु घाटी सभ्यता के बहिर्वर्ती प्रदेशों में भी देखने में आता है जैसे काठियावाड प्रायद्वीप में। लोथल में

इस ह्रास के पहले सबसे ठोस उन्नीसवीं शती ई० पू० में देखे जाते हैं और अगली दो सदियों में उस विशाल वर्ग और अब आतरिक सकट में ग्रस्त प्रमुख सिधु घाटी नगरों के बीच सबध कमजोर होते जाते है और अत में टूट जाते है। काठियावाड में तथाकथित हडप्पा काल के बाद एक नया उत्तरहडप्पा काल आता है जिसमें स्थानीय संस्कृति कुछ हद तक आपरिवर्तित होती है यद्यपि उसके विकास का सातत्य भग नहीं होता। उत्खननों ने दिखाया है कि इस क्षेत्र मे हडप्पा सस्कृति का ह्रास किसी भी प्रकार बाहरी आक्रमणकारियो के साथ सबद्ध नही है जैसा कि सिधु घाटी में शायद हुआ हो जहा कई नगरो के विकास का उत्तरवर्ती काल वस्तुत उस प्रदेश में विदेशी कबीलो के प्रवेश के साथ मेल खाता है इस प्रसग में हडप्पा की विदेशियो के आक्रमण से रक्षा करने के लिए बाद के काल में निर्मित पक्की किलेबदी का काम बहुत महत्वपूर्ण है। इन नगरो में विनाशोन्मुखताओ के निशान और सडको के बीच में मानव अस्थियों की खोज (उन लोगों की हड्डिया जो प्रत्यक्षत शत्रु के साथ मुठभेड में मारे गये थे) नगरवासियो और बाहरी कबीलो के बीच सघर्ष की ओर इंगित करते है।

उत्खननो के निराले निष्कर्षों के आधार पर कहा जा सकता है कि सिधु घाटी में प्रवेश करनेवाले कबीले विभिन्न सजातीय समूहों के थे। उनमे बलूचिस्तान के कबीले भी थे और ईरान के पठारो से बहुत मिलते-जुलते कबीले भी थे। कुछ स्थायली समूह सजातीय दृष्टि से हडप्पाई लोगो से भिन्न नही थे और वे हडप्पाई नगरो के एकदम पडोस में ही रहते थे। हडप्पाई नगरो पर आक्रमण करनेवाले विदेशी कबीले सख्या में बहुत बडे नही थे। कभी-कभी तो किसी विशेष कबीले के निशान एक हडप्पाई बस्ती में ही मिल पाते हैं। लेकिन साथ ही यह कहना भी सही होगा कि इन आक्रमणकारियो ने हडप्पा सभ्यता के केंद्रो के ह्रास को उसकी तर्कसगत परिणति पर पहुचाया। सभवत इनमे से कुछ कबीलो को भारतीय-आर्य गण कहा जा सकता है किंतु समूचे तौर पर इस पारपरिक सिद्धात पर बुनियादी तौर पर फिर से विचार किया जाना चाहिए कि हडप्पा सभ्यता के पतन को आर्यो के आगमन के साथ प्रत्यक्षत जोडा जा सकता है यद्यपि यह भारतीय-आर्य गणो द्वारा भारत मे दाखिल होने के वास्तविक तथ्य का किसी भी प्रकार खडन नही करता है।

मध्य, पश्चिमी तथा पूर्वी भारत में ताम्रपाषाण संस्कृतियां

सिंधु घाटी सभ्यता के स्वर्ण काल में हड़प्पा सभ्यता के क्षेत्र के बाहर धातु का उपयोग अपनी सबसे प्रारंभिक मंजिलों में ही था। भारत के विभिन्न भागों का असमान विकास ताम्रपाषाण काल में और अधिक स्पष्टता के साथ देखने में आता है।

इस काल की पुरातात्विक खोज मध्य तथा पश्चिमी भारत में विकसित हड़प्पा परंपराओं के प्रभाव को प्रतिबिंबित करती है। देश के दक्षिणी तथा पूर्वी भागों में यह प्रभाव कहीं कम स्पष्ट है।

काठियावाड़ क्षेत्र की लाक्षणिकता विकसित हड़प्पा परंपराओं और स्थानीय नवपाषाण संस्कृतियों के अधिक पुरातन लक्षणों का संयोग है यही नहीं, समय के साथ-साथ हड़प्पा परंपराओं के चिह्न शनैः शनैः मिटते जाते हैं।

काठियावाड़ के उत्तर-पूर्व में तथाकथित बनास संस्कृति (इसी नाम की नदी से) की बस्तियां मिली हैं। इन विशिष्ट बस्तियों में प्राचीनतम २००० (अथवा १८००) ई० पू० की हैं। प्रस्तर उपकरणों की अनुपस्थिति ("प्रस्तर फलक उद्योग" सिंधु घाटी में हड़प्पा संस्कृति और काठियावाड़ की उत्तरहड़प्पा संस्कृति का एक विशिष्ट लक्षण था) और तांबे की चीजों की बड़ी संख्या में मौजूदगी इस बस्ती को उस काल की अन्य बस्तियों में अलग करती हैं। लोग खासे पुराने ढंग के पत्थर और मिट्टी के मकानों में रहते थे। यहां मिले मृद्भांड काठियावाड़ संस्कृति के मृद्भांडों से भिन्न हैं। इस संस्कृति की एक बस्ती में वैसे ही चबूतरे के टुकड़े मिले थे जैसे हड़प्पाई बस्तियों के लिए भी लाक्षणिक थे।

भारतीय पुरातत्वज्ञों द्वारा नवदाटोली, निवासा, नासिक तथा जोर्वे में किये अनुसंधानों से मालवा तथा महाराष्ट्र के प्राचीन निवासियों के जीवन के बारे में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। ताम्रपाषाण काल में इस क्षेत्र के रहनेवाले कृषि और पशुपालन करते थे। वे गेहूं, धान और कुछ किस्मों की फलियां उगाते थे। वे भेड़-बकरियां भी पालते थे। तेरहवीं शती ई० पू० के एक स्तर में एक धागे का टुकड़ा मिला था, जो कच्चे रेशम और कपास का मिश्रण था। इससे प्रकट होता है कि इस समय तक वे कपड़ा बुनने की कला सीख चुके थे। हड़प्पाई बस्तियों की ही भांति यहां भी बड़ी संख्या में प्रस्तर फलकों का उपयोग किया जाता था और तांबे के उपकरण बहुत कम थे।

यहा भी वैस ही चाक व बन वाले और लाल मृद्भाड मिले है, जैस इस क्षेत्र की सभी ताम्रपाषाण सस्कृतियो के लिए लाक्षणिक है। मकान टिकाऊ सामग्रियो के बनाये जाते थे और उन पर मिट्टी का लेप होता था। झोपडिया कभी-कभी लकडी की भी बनायी जाती थी। नवदाटोली मे उत्खननो से तीन प्रकार के आवास प्रकाश मे आये है — गोलाकार वर्गाकार और आयताकार। आकार मे वे छोट थे — सबसे बडा भी लबाई मे साढ चार मीटर और चौडाई मे तीन मीटर से अधिक नही है। कार्बन १४ विश्लेषण ने प्रकट किया है कि इस क्षेत्र म ताम्रपाषाण काल का समय सत्रहवी या सोलहवी शती ई० पू० के आसपास है।

कुछ हडप्पा प्रभाव और भी दक्षिणवर्ती प्रदशो — नासिक और जोर्वे — म भी देखा जा सकता है। यहा भी इसी प्रकार के मृद्भाड और धातु उपकरण मिले है लेकिन आम तौर पर दक्षिणी प्रदेशो मे हडप्पा प्रभाव कही अधिक कमज़ोर है। पूर्वी भारत की ताम्रपाषाण सस्कृति से कुछ सबध भी लक्षित होते है। जोर्वे मे ताम्रपाषाण स्तर चौदहवी से ग्यारहवी शती ई० पू० का है।

मध्य भारत तथा दकन मे ताम्रपाषाण सस्कृति के उदगम का प्रश्न अब भी विशेषज्ञो म विवाद का विषय है। इसे ईरानी मूल का सिद्ध करने क सिद्धात भी रखे गये है और इस पर भारतीय आर्य प्रभाव दिखलाने के प्रयास भी किय गय है। तथापि यह अधिक सभव प्रतीत होता है कि मध्य भारत की ताम्रपाषाण सस्कृति विदेशी प्रभावो के बावजूद इसी इलाके की नवपाषाण सस्कृतियो स ही विकसित हुई थी। यह सभव है कि इस इलाके मे सजातीय दृष्टि मे हडप्पाई लोगो से निकट समानता रखनेवाले लोगो का निवास रहा हो। बेशक यह ध्यान मे जरूर रखना चाहिए कि ताम्रपाषाण काल मे भारत क विस्तृत प्रदेशो मे मनुष्य का निवास नही था और कई इलाको मे विकास के अत्यत निम्न स्तर के कबीले रहा करते थे।

भारतीय पुरातत्वनो ने पूर्वी भारत म एक विशिष्ट ताम्रपाषाण सस्कृति — तथाकथित ताम्र सचय तथा गेरुए बरतन सस्कृति — का पता लगाया है। इस सस्कृति के सस्थापक कृपिजीवी थे, लेकिन शिकार और मछली पकडने का अब भी उनके जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान था। वे कई प्रकार के ताम्र उपकरण बनाते थे, जैसे फरसे, छेनिया बसूले और मत्स्य-भाले। इस सस्कृति क सस्थापको के उद्गम क बारे मे विभिन्न सिद्धात प्रस्तुत किय गये है। कई विद्वान इस सिद्धात का समर्थन करते है कि मध्य भारत से कबीले पूर्व की तरफ देशातर कर गये तो कई यह कहत है कि इस सस्कृति का मूल हडप्पाई

था आर पामद पुरातत्व आर० हाइन गल्डन नी यह मान्यता थी कि इस तान्न सचय सस्कृति क सस्थापक आय गण थ

तथापि भारत म हाल क अनुसधान ताम्र-सचय सस्कृति का अधिकाधिक निर्णायक रूप स मृदा कर्बीना क पूवगा क साथ सबद्ध करत लगत है। गगा यमना द्वाबा स्थ ताम्र सचय सस्कृति स्थान रहन सा सम्मिलता म गारहवी और ग्यारहवा सदी ई० पू० म निर्मित धूसर मृद्भाड सस्कृति न ल लिया। क अय शब्दा म ताम्र सचय सस्कृति कही अधिक समय तक जनी रहा और वह बहुत बाद म जाकर ही आधिक उन्नत सस्कृतियो क सपर्क म आयी।

हाल क वर्षो म पूर्वी भारत म एसी नयी ताम्रपाषाणयुगीन खोज की गयी है जिनकी ताम्र सचय सस्कृति स कोई समानता नहीं है। उदाहरण के लिए चिरद (उत्तर बिहार) म ताम्रपाषाण सस्कृति (जिसकी विशेषता काल और लाल मृद्भाड है) सीधे स्थानीय नवपाषाण सस्कृति स उदभूत है। रोचक बात यह है कि चिरद क काल और लाल मृद्भाड पश्चिमी तथा मध्य भारत क ताम्रपाषाणयुगीन मृद्भाडो क समान है। कार्बन १४ विश्लेषण म चिरद क उत्तरताम्रपाषाण स्तर आठवी शताब्दी ई० पू० क सिद्ध होत है। इसक शीघ्र बाद ही इस क्षत्र म लोहा और तथाकथित उत्तरी ओपयुक्त कृष्ण मृद्भाड प्रकट होत है।

कुल मिलाकर नवपाषाण तथा ताम्रपाषाण कालो म व्याप्त सजातीय वैभिन्य और असमान विकास न दश क एतिहासिक सांस्कृतिक तथा सामाजिक विकास क आगामी क्रम पर सुस्पष्ट प्रभाव डाला।

भारतीय-आर्य तथा गगा घाटी की सभ्यता

"आर्य समस्या"

दशको स विद्वानो म आर्य समस्या पर विवाद चलता चला आ रहा है और व इसका निर्णय करन म लगे रहे हैं कि भारतीय आर्य गण कब, कहा से और कैसे भारत आय। आर्यो क मूलस्थान का प्रश्न भी आज तक विवाद का विषय बना हुआ है।

कुछ विद्वानो क मतानुसार आर्यो का आगमन पिछड हुए आदिवासियो का अति उन्नत आर्यो द्वारा वशीकरण है जो भारत मे सभ्यता लाये और जिन्हान

यहा एक उन्नत समाज की स्थापना की। प्रजातीय सिद्धात के पैरोकारो ने इसकी दृष्टि से विशुद्ध आर्यों और भारत के निवासियो मे कथित रूप से विद्यमान नसली भेदो पर जोर दिया और स्थानीय आबादी के स्वतत्र विकास और प्रगति की किसी भी सभावना का अस्वीकार किया। इन विज्ञानविरोधी सिद्धान्तो के अनुसार भारत मे वर्ग समाज का उदय और राज्य का आविर्भाव आर्यों के आगमन के बाद ही हुआ

सिधु घाटी मे उन्नत सभ्यता की खोज ने कई विद्वानो को अपने पुराने विचारो का पुनरीक्षण करने के लिए विवश कर दिया किंतु इन कालातीत सिद्धातो की गूज अब भी सुनाई पड़ती है जिन लोगो को आर्य कहा जा सकता है वे उन प्राचीन ईरानी और प्राचीन भारतीय लोग है जो अपने को आर्य और जिन इलाको मे वे रहते थे उन्हे आर्यदेश कहते थे। आर्य शब्द का अर्थ वैदिक काल मे विदेशी अथवा अजनबी हुआ करता था और आर्य का अर्थ नागरिकता से सबधित था जो कालातर मे श्रेष्ठ जन' का पर्याय हो गया

तुलनात्मक भाषाविज्ञान तथा अन्य विज्ञानो की खोजो ने दिखाया है कि एक समय प्राचीन ईरानी और प्राचीन भारतीय तथाकथित भारतीय ईरानी समुदाय के रूप मे साथ-साथ रहा करते थे। यह उदाहरण के लिए दोनो जातियो की भाषाओ और उनकी साहित्यिक थाती (प्राचीन ईरानियो का अवेस्ता और प्राचीन भारतीयो का ऋग्वेद) मे निकट सादृश्य उनके धार्मिक विश्वासो मे समानता और उनकी अनेक प्राचीन सामाजिक संस्थाओ मे समानता से प्रमाणित होता है। आर्यों के मूलस्थान अथवा उनके पूर्वजो द्वारा आबाद इलाके को कुछ विद्वान मध्य एशिया तो अन्य दक्षिण रूस के स्तेपी (मैदानी) प्रदेश मानते है। न ईरानी-आर्यों के पूर्वजो द्वारा ईरान और भारतीय आर्यों के पूर्वजो द्वारा भारत जाने के रास्तो के बारे मे ही कोई सहमति है।

यह बिलकुल सभव है कि यह लबा देशातरण दो या अधिक रास्तो से और कई लहरो मे हुआ हो।

अभाग्यवश अभी तक इस प्रश्न का उत्तर भी नही दिया जा सका है कि भारतीय-आर्यों ने भारत के किस भाग मे सबसे पहले प्रवेश किया था। खुद भारतीय-आर्यों के लिखित ग्रथो से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे पूर्वी पजाब और यमुना तथा गगा की ऊपरी पहुचो मे बसे थे। इससे यह प्रकट होता है कि भारतीय-आर्य गण हड़प्पा सभ्यता के मुख्य केद्रो से सबद्ध इलाको मे नही बसे थे और पुरातात्विक खोजो द्वारा निर्धारित तिथिक्रम

भी यही दिखलाता है कि सिधु घाटी सभ्यता के केद्रो के ह्रास और भारतीय आर्यो क भारत मे आगमन के बीच काफी लबा अतराल है। सिधु म हडप्पा केद्रो का अवसान भारत म भारतीय आर्यो के प्रवेश के सदियो पहले हो गया था।

ऋग्वेद तथा पुरातात्विक प्रमाण

प्राचीनतम भारतीय आर्य साहित्यिक स्रोत ऋग्वेद है, जिसे अधिकाश आधुनिक विद्वान ग्यारहवी या दसवी शती ई० पू० का मानते है (इस तिथि का आशय प्राचीन ऋचाओ के सकलित तथा लिपिबद्ध किये जाने के समय स है)।

वैदिक परपरा क बादवाले ग्रथ – सहिताए आरण्यक और ब्राह्मण – आठवी और छठी शती ई० पू० के बीच के है।

हाल के वर्षो म रोचक पुरातात्विक खोजो ने वैदिक युग के भारतीय आर्यो के बार म ठोस प्रमाण प्रस्तुत किय है। भारतीय पुरातत्वज्ञो (बी० बी० लाल बी० के० थापड आर० एस० गौड, जे० पी० जोशी) ने चित्रित धूसर मृद्भाड सस्कृति का पता लगाया है जो अनुसधानो के अनुसार पूरे पजाब मे गगा तथा यमुना की ऊपरी पहुचो म और इन नदियो की घाटियो मे (वर्तमान इलाहाबाद के आसपास के इलाके सहित) तथा उत्तर पूर्वी राजस्थान मे भी फैली हुई थी अर्थात जिसमे समूचे तौर पर भारतीय आर्य गणो द्वारा पूर्व-वैदिक काल मे आबाद किये सभी इलाके आ जाते थे। स्वय ऋग्वद की भौगोलिक सामग्री के विश्लेषण से विद्वानो के लिए यह निर्धारित करना सभव हो गया है कि उसके विभिन्न भागो की रचना कहा की गयी थी और वह है उत्तर पूर्वी पजाब। कुछ विद्वान तो और भी अधिक यथातथ्यतापूर्वक सीमा निर्धारण करने का साहस करते है – उनक अनुसार यह इलाका था वर्तमान अबाला जिला।

अतरजीखेडा म की गयी पुरातात्विक खोजो से अनुमान लगाया जाता है कि चित्रित धूसर मृद्भाड सस्कृति बारहवी या ग्यारहवी सदी ई० पू० से अधिक पहले की नही है और ये तिथिया ऋग्वेद से भी मेल खाती है। इसके आधार पर विद्वानो न यह अनुमान लगाया है कि ऋग्वद के रचना काल के भारतीय आर्य गण चित्रित धूसर मृद्भाड सस्कृति से सबद्ध थे।

हाल क वर्षो मे अन्य स्थलियो (हस्तिनापुर और नूह) पर किये कार्बन १४ विश्लेषण ने प्रकट किया है कि चित्रित धूसर मृद्भाड सस्कृति वही

अधिक बाद की–नवी या आठवी शती ई० पू० की–परिघटना है (यथा धर्मपाल अग्रवाल का अनुसंधान कार्य) जिसका मतलब यह है कि गंगा यमुना के ऊपरी प्रदेश में इस संस्कृति के प्रकट होने के समय को तदजनित सभी परिणामों के साथ और आगे की तरफ लाना होगा। कुछ विद्वानों ने चित्रित धूसर मृद्भाड वाले लोगो की भौतिक संस्कृति की चीजों और बाद के वैदिक ग्रंथों में प्राप्य प्रमाणों में सादृश्य दिखलाने का अर्थात इस विशेष संस्कृति को उत्तर-वैदिककालीन गणो–पहले सहस्राब्द ई० पू० के प्रथमार्ध के भारतीय-आर्यो–से संबद्ध करने का प्रयास किया है (यथा आर० एस० शर्मा तथा ए० घोष का अनुसंधान कार्य)।

इस समय कहा जा सकता है कि चित्रित धूसर मृद्भाड संस्कृति के अनेक चरण उन वैदिक गणो से संबद्ध थे जो आरंभ में पूर्वी पंजाब और यमुना तथा गंगा के ऊपरी इलाकों में बसे थे और फिर दक्षिण की तरफ बढ़े थे।

इस प्रसंग में स्वात में इतालवी तथा पाकिस्तानी पुरातत्वज्ञो के उत्खनन विशेषकर रोचक है। स्वात में नवी अथवा आठवी सदी ई० पू० के आसपास के समाधिस्थल खोजे गये है। वहा धूसर और लाल दोनो तरह के मृद्भाड मिले हैं, जिनका कई विद्वानों के मतानुसार चित्रित धूसर मृद्भाडो से निश्चित सादृश्य है। वहा लोहे की बनी इक्की-दुक्की चीजे भी मिली है। यह माना जा सकता है कि स्वात के समाधिस्थल आर्य गणो के एक समूह के है, जो दूसरे सहस्राब्द ई० पू० के अंत में भारत में पहुचा था।

हाल के वर्षों में पंजाब और हरियाणा में ऐसी बस्तिया खोजी गयी है जिनमे चित्रित धूसर मृद्भाड संस्कृति उत्तरहडप्पा संस्कृति के संस्तरो पर अध्यारोपित पायी गयी है। इस प्रकार यह मानने का आधार है कि इस विशिष्ट क्षेत्र में हडप्पा संस्कृति भारतीय आर्य गणो के आगमन के समय तक अस्तित्वमान थी।

नये उत्खननो के आधार पर चित्रित धूसर मृद्भाड संस्कृति के सृजको की भौतिक संस्कृति के बारे में अधिक निश्चित रूप में कहा जा सकता है। पहले चरण में (पंजाब में और हरियाणा के उत्तर में) वैदिक गण ताम्र उपकरणो का उपयोग करते थे और लोहे का प्रयोग उन्होंने बाद में दक्षिण और पूर्व को जाते समय (नवी तथा आठवी शती ई० पू०) ही शुरू किया था।

भारतीय आर्यों का प्रसार और
स्थानीय संस्कृतियां

[illegible] ... [illegible] ... [illegible] ... गणों से पृथक ... [illegible] ... और ... [illegible] ... विभिन्न ... [illegible] ... प्रदेश ... [illegible] ... [illegible] ... [illegible] ... [illegible] ... होता था।

आरम्भ ... [illegible] ... [illegible] ... और ... [illegible] ... और ... [illegible] ... है। गंगा का ... [illegible] ... एक बार मिलता है (... [illegible]) ... [illegible] ... भौगोलिक ज्ञान के आधार पर ... [illegible] ... हिमालय से सुपरिचित थे किन्तु विन्ध्याचल से ... [illegible] ... में उसका नाम ... [illegible] ... है। बाद के वैदिक ग्रंथों में पूर्वी भारत के विभिन्न भागों के अनेक उल्लेख मिलते हैं।

घने वनों से आच्छादित इलाकों से होते हुए भारतीय आर्यों का प्रसार किसी भी प्रकार सुगम नहीं था। उन्हें आगे बढ़ने से पहले जंगल को साफ करना होता था और यह सीधा सा उपाय था जलाना जो उस समय स्वाभाविक ही था। शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार का एक रोचक कथा मिलती है। यह सरस्वती (हरियाणा) और सदानीरा (प्रायः गंडक, उत्तरी बिहार की गंडक नदी) के बीच के इलाके की भस्म करनेवाले अग्निदेव और विदेह माधव (विदेह माधव) की कथा है जिसमें विदेमाधव ज्वालाओं के साथ साथ पूर्व की प्रयाण किया था। इस कथा के अनुसार राजा और उसके प्रजाजन सदानीरा नदी के पूर्व में भी आवासयोग्य प्रदेशों पर अधिकार करने में सफल हो गये। यह वैदिक कथा भारतीय-आर्यों के प्रसार पथ की ओर इंगित करती है और यह दर्शाती है कि ब्राह्मण ग्रंथों के काल में विदेह (वर्तमान बिहार का उत्तरी भाग) वैदिक गणों द्वारा आवासित सबसे पूर्ववर्ती प्रदेश था।

निस्संदेह भारतीय-आर्यों का विभिन्न प्रदेशों में आवासन हमेशा एक ही तरह से नहीं हुआ और स्थानीय गणों के साथ उनका साबिका अलग-अलग तरह से हुआ। भाषाई तथा पुरातात्विक प्रमाणों से यह प्रतीत होता है कि पंजाब में आर्यों का मुख्यतः द्रविड गणों से ही साबिका पड़ा। चूंकि इस प्रदेश

क कुछ भागा मे कभी की उन्नत मस्कृति की परपराए अभी तक विद्यमान रही थी इसलिए आर्यो आर स्थानीय आबादी म घनिष्ठ सपर्क होना सभव था। पूर्वी पजाव क कुछ भागो म आर्यो को स्थानीय गणो क गभीर प्रतिरोध का सामना नही करना पडा और व काफी तजी स आग बढकर नय इलाका म जा बस। अपनी बारी म इसने वैदिक गणा की भाषा का प्रभावित किया। ऋग्वद तथा अन्य सहिताओ क भाषावैज्ञानिक विश्लेषण स प्रकट होता है कि द्रविड भाषाओ न भारतीय-आर्य भाषाओ पर स्पष्ट प्रभाव डाला यद्यपि उनकी अन्योन्यक्रिया अल्पकालीन ही थी।

किंतु भारतीय आर्यो और देश के पूर्वी भागो म रहनवाले मुडा गणा की अन्योन्यक्रिया सर्वथा दूसरी तरह की थी। गगा घाटी मे आत्मसात्करण इतनी तजी क साथ नही हुआ – इस समय तक वैदिक गण विकास की उच्चतर मजिल मे पहुच चुक थे। अब तक स्वय उनका भी अधिक ' भारतीयकरण हो चुका था (व अब स्थानीय निवासियो की परपराओ और सस्कृति स सुपरिचित हो चुक थ और उन्ह अपना चुके थ)। वैदिक गणो ने अनक मुडा गणा को जगलो म खदेड भगाया और भारतीय आर्यो ने उनके साथ घनिष्ठ सबध नही स्थापित किया यद्यपि व उनके साथ काफी समय तक सपर्क म रहे। परिणामस्वरूप वैदिक सस्कृत पर मुडा भाषाओ (मुडा अधस्तल भाषा) का प्रभाव कम स्पष्ट है।

इस काल से सबद्ध पुरातात्विक प्रमाणो से भी ऐसा ही चित्र प्राप्त होता है। कुछ बस्तियो मे चित्रित धूसर मृद्भाड जिन्ह कई विद्वान वैदिक गणो क साथ जोडते है मध्य तथा पश्चिमी भारत के कबीलो की (जो प्रत्यक्षत द्रविड भाषाए बोलते थे) ताम्रपाषाण सस्कृति क विशिष्ट काले तथा लाल मृद्भाडो क स्तर के ऊपर मिलत है। जैसा कि बताया जा चुका है पजाब और हरियाणा म हाल क उत्खननो ने चित्रित धूसर मृद्भाड सस्कृति और उत्तरहडप्पा सस्कृति क बीच जिसके सृजक द्रविड भाषाई गणो क थ अन्योन्य प्रभावो को प्रकट किया है। कई अन्य बस्तियो म चित्रित धूसर मृद्भाड सस्कृति का ताम्र-सचय सस्कृति क बाद आना लक्षित हो सकता है जो बहुत करक पूर्वी भारत के प्राचीन मुडा गणो की सस्कृति थी। इसक अलावा पुरातत्वज्ञो ने कई ऐसी बस्तिया भी खोजी है जिनमे चित्रित धूसर मृद्भाड सस्कृति और पूर्ववर्ती सस्कृतियो के बीच कोई सबध नही पाया जाता है।

जिन इलाको मे आर्य गणो का कभी की उन्नत सस्कृतिया क परपरावाहका स साबिका पडा उनम आर्यो क स्थानीय कबीलो क साथ आत्मसात्करण और

उनके पूर्व की ओर प्रसार की ही भांति स्वयं उनका विकास भी कहीं अधिक तेजी से हुआ। इसके विपरीत जिन इलाकों में आर्य व्यवहारतः "पहले अधिवासी" थे उनमें इन इलाकों को आबाद करने के लिए अधिक समय आवश्यक था और अपनी बारी में इसने नवागतुकों की संस्कृति के समग्र विकास की गति को धीमा किया।

जैसे जैसे भारतीय आर्य गण उत्तरी भारत में प्रसार करते गये (बाद में उन्होंने दक्षिण की तरफ भी बढ़ना शुरू किया), वैसे वैसे वैदिक गणों का सामाजिक तथा राजनीतिक सगठन अधिक उन्नत होता गया। यह वैदिक ग्रंथों में भी प्रतिबिंबित हुआ – इस प्रसग में प्रारंभिक वैदिक संहिताओं का वैदिक काल के उत्तरवर्ती भाग में रचित ग्रंथों से तुलना विशेषकर रोचक है। वैदिक समाज की सरचना में इन परिवर्तनों ने भारतीय-आर्यों तथा स्थानीय गणों की अन्योन्यक्रिया पर प्रत्यक्ष प्रभाव डाला।

शनै शनै एक नयी संस्कृति का उदय हुआ जिसमें आर्यों और स्थानीय कबीलों – दोनों – की ही उपलब्धियों का सयोग था और जो शीघ्र ही उत्तरी तथा पूर्वी भारत की आबादी के एक बड़े भाग की सामान्य संस्कृति बन गयी। इस संस्कृति को बाहर से लायी गयी भारतीय-आर्य संस्कृति नहीं माना जा सकता – इसे हद से हद ऋग्वैदिक काल के वैदिक गणों की संस्कृति ही कहा जा सकता है क्योंकि यह अब तक प्रथम सहस्राब्द ई० पू० की विशिष्ट भारतीय संस्कृति बन चुकी थी।

पुरातात्विक प्रमाण स्पष्टत दिखलाता है कि धूसर मृद्भाड संस्कृति का स्थान उत्तरी ओपयुक्त कृष्ण मृद्भाड संस्कृति ने ले लिया, जिसका समय मुख्यत प्रथम सहस्राब्द ई० पू० के उत्तरार्ध में है (छठी से दूसरी सदी ई० पू० के बीच)। अतोक्त संस्कृति कई दृष्टियों से पूर्ववर्ती काल की परपराओं की ऋणी है, किंतु अब तक वह वैदिक भारतीय आर्यों की संस्कृति नहीं रह गयी थी वरन उत्तरी भारत के भारतीय गणों की संस्कृति बन चुकी थी – जिन बस्तियों में इस संस्कृति की खोज की गयी है वे पंजाब से लेकर गंगा के निचले इलाकों तक फैली हुई है। प्रथम सहस्राब्द ई० पू० के मध्य तक भारतीय आर्य गंगा घाटी के मुख्य प्रदेशों में लगभग समस्त उत्तरी भारत में पहुच चुके थे। इस काल को वैदिक काल के अंत और अगले, मगध मौर्य काल के आरंभ के बीच की विभाजक रेखा माना जा सकता है।

वैदिक गणो के मुख्य उद्यम

वैदिक काल की आबादी के मुख्य उद्यम कृषि और पशुपालन थे। कृषि के विकास और आबादी के अधिकाश द्वारा कृषि पर आधारित स्थायी जीवन प्रणाली के अपनाये जाने को लौहकर्म के उदय से बढावा मिला था। लोहे का विभिन्न उत्पादन कार्यों में प्रयोग किया जाता था। पुरातात्विक प्रमाण से अनुमान लगाया जा सकता है कि थोडी मात्रा में लोहा ग्यारहवी शती ई० पू० मे उत्तर भारत मे मिलता था किंतु उसका व्यापक उपयोग काफी बाद में जाकर ही शुरू हुआ (विद्वानो का खयाल है कि गगा घाटी के मध्यवर्ती प्रदेश मे वह सातवी शती ई० पू० मे व्यापक उपयोग में आया था)। यह सभव है कि ऋग्वेद के रचयिता लौहकर्म से परिचित रहे हो यद्यपि विद्वानो में इस बारे में अब भी मतभेद है कि उस समय लोह के लिए कौनसे शब्द का प्रयोग किया जाता था। उसके लिए प्रयुक्त शब्द अयस का स्थान बाद के वैदिक ग्रथो मे श्याम, श्यामस् या कृष्ण अयस् ले लेता है।

लोहे के उपकरणो की सहायता से आबादी के लिए गगा घाटी के वन्य प्रदेशो को आबाद करना जमीन को काश्त करना और – जहा आवश्यक हो – अपनी जमीन को सीचना अधिक आसान हो गया। इसी प्रकार लोहे ने शिल्प के विकास को भी बढावा दिया। पहले खेतो को लकडी के हलो और कुदालो से जोता जाता था और फसल को पत्थर के फलवाली हसिया से काटा जाता था, लेकिन अब लकडी के आदिम हल का स्थान लोहे का फाल लगे हलो ने ले लिया जिसने पथरीली जमीन को काश्त करने की एकदम नयी सभावनाओ को उन्मुक्त कर दिया। वैदिक ग्रथो में जुताई, बुआई, कटाई और गहाई सहित कई कृषि कार्यों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद मे ही हमे "रुद्ध" जल और जलचक्रो के उल्लेख मिलने लगते है जिनका सिचाई कार्यों के लिए उपयोग किया जा सकता था। वैदिक सहिताओ मे भी विशेष सिचाई नहरो के उल्लेख है।

इस काल के लोग जौ, धान गेहू और फलियो सहित कई अनाजो से भी परिचित थे (ग्यारहवी और नवी शती ई० पू० के बीच की चित्रित धूसर मृद्भाड सस्कृति की बस्तियो मे उत्खनन के दौरान चावल और गेहू के दाने मिले है)। आर्यो के गगा घाटी के अधिकाश को आबाद करने के परिणाम-स्वरूप धान की व्यापक पैमाने पर खेती होने लगी। बहुत से विद्वानो की मान्यता है कि भारत आने के पहले आर्य धान की खेती नही करते थे

और उत्पादन [illegible] ग्रामीण [illegible] पर ही टिकी था।

खाद्य के मामले में पशुपालन का भी वैदिक गणों के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका थी। वैदिक ग्रंथों में इस आशय के नाना उल्लेख मिलते हैं कि मनुष्य को [illegible] होता है। वैदिक ऋचाओं के रचयिता [illegible] है कि वे लोगों को गाय [illegible] और युद्ध का आधार [illegible] का साधन ही माना जाता था। पशुधन का हरण वैदिक गणों में लड़ाई का मुख्य कारण था। गाय के लिए प्राय अघ्न्या (अवध्य) शब्द का प्रयोग किया गया है, जो सम्भवत इस समय भी उसके किसी हद तक पूजनीय होने का द्योतक है। पशुधन की और फसल का विभिन्न प्रकार की आपदाओं से बचाने के लिए विशेष अनुष्ठान किये जाते थे। हस्तिनापुर में चित्रित धूसर मृद्भाण्ड स्तर के उत्खनन में सांड बकरे मेढ़ सूअर और घोड़े की हड्डिया मिली हैं।

इस समय परिवहन के मुख्य साधन बैलगाड़िया और घोड़जुते रथ थे।

वैदिक गण छोटी छोटी परकोटेदार बस्तियों में रहा करते थे जिनको—जैसा कि गंगा घाटी में पुरातात्विक उत्खननों से पता चलता है—हड़प्पा सभ्यता के बड़े-बड़े नगरो से कोई भी सामान्यता नहीं थी। ऋग्वेद की ऋचाओं में जिन पुरों (नगरों) का उल्लेख है वे लकड़ी या गारा मिले भूसे के बने छोटे छोटे घरों और पत्थर की एकाध इमारत से युक्त और मिट्टी के परकोटे से किलेबंद ग्रामीण केंद्रों जैसे ही अधिक थे। स्पष्टत इस प्रकार के परकोटे किसी भी तरह टिकाऊ नहीं होते थे क्योंकि ऋचाओं में पुरों के आक्रमणों का शिकार होने और नष्ट किये जाने के बहुत से उल्लेख हैं। भारतीय पुरातत्वज्ञों द्वारा कौशांबी में किये उत्खननों ने दिखलाया है कि यह सभव है कि हड़प्पाई नगरों की कुछ निर्माण प्रविधिया और परपराए पूर्वी भारत के वैदिक गणों को भी ज्ञात रही हों किंतु उन्होंने इन गणों के निर्माण कौशल पर कोई निर्णायक प्रभाव नहीं डाला। (हाल के वर्षों में ए० घोष जैसे कुछ भारतीय पुरातत्वज्ञों ने वैदिक गणों के हड़प्पाई निर्माण प्रविधियों से किसी भी प्रकार परिचित होने की सभावना को अस्वीकार किया है क्योंकि कौशांबी में किलेबंदी को कहीं अधिक बाद का बताया जाता है।)

पुरातात्विक खोजों ने भी यही दिखलाया है कि गंगा घाटी में नगरीय केंद्रों का विकास शिल्पों में उन्नति के साथ-साथ हुआ था। वैदिक ग्रंथों में अनेक प्रकार के शिल्पकर्मियों—लोहारों कुम्हारों बढ़इयों जौहरियों शस्त्रसाजों आदि—के उल्लेख मिलते हैं। बढ़ई और लोहार के शिल्पों की

सबसे ज्यादा कद्र की जाती थी जो कृषि उपकरण और हथियार बनाते थे और मकानों का निर्माण करते थे। केवल अलग-अलग गणों में ही नहीं विदेशों के साथ भी व्यापार का विकास हुआ। विदेश व्यापार संभवतः समुद्र के रास्ते होता था। उदाहरण के लिए वैदिक ऋचाओं में सौ-सौ डांडों से युक्त समुद्रगामी पोतों के और समुद्र की सपदाओं के भी उल्लेख मिलते हैं। यह भी संभव है कि नदियों में आने-जाने के लिए भी पोतों का उपयोग किया जाता था। धीरे-धीरे पेशेवर व्यापारियों के विशिष्ट समूह भी पैदा हो गये।

संपत्ति के स्वामित्व और सामाजिक स्थिति में अंतरों से जनित असमानता

वैदिक समाज में भी संपत्ति के स्वामित्व पर आधारित अंतर पैदा हो चुके थे। बड़े-बड़े पशु-यूथों के स्वामी संभ्रांत लोगों के साथ-साथ आबादी के अत्यधिक निर्धन तबके भी थे। धनियों और निधनों का उल्लेख वैदिक ग्रंथों में बारबार आता है। उनमें धनियों के भव्य बलिदानों और मुक्तहस्त दानों का और सामान्य ग्रामीणों के अकिंचन अर्पणों का उल्लेख है। ऋग्वेद में पशुओं के दागे जाने के उल्लेख आते हैं जो स्पष्टतः यही दिखलाने के लिए किया जाता था कि कौनसे पशु किस व्यक्ति के हैं।

वैदिक ग्रंथों में (विशेषकर उत्तरवैदिक काल के) भूमि के दान और क्रयों के बारे में हवाले मिलते हैं यद्यपि सांपत्तिक अधिकार काफी हद तक 'गणेच्छा' के अधीन थे। गण के अलग-अलग सदस्यों को कृष्ट भूखंड दे दिये जाते थे और इसी अपारी वारी में सांपत्तिक अधिकारों अथवा सामाजिक स्थिति में अंतरों से जनित असमानता के विकास का पथ प्रशस्त किया। उत्तराधिकार के प्रश्न ने महत्व प्राप्त कर लिया और जमीन के लिए व्यक्ति और पूरे के पूरे गण भी दावा करने लगे। धीरे-धीरे गण समूह के कुछ सदस्य धनी हो गये और पहले के संयुक्त समुदाय में एक विशेषाधिकारप्राप्त श्रेणी बन गये। उनके पास दास तक थे जब कि समुदाय के निर्धन सदस्य अपनी स्वतंत्रता गंवा बैठे और अपने ही गण के भीतर पराश्रित सदस्य बन गये।

दासता का आविर्भाव आर्थिक तथा सामाजिक असमानता के विकास का सुस्पष्ट परिचायक है। आरंभ में युद्धबंदी ही दास बनते थे। (दास शब्द दस्यु से व्युत्पन्न है जिसका आरंभ में शत्रु के लिए प्रयोग किया जाता था।) किंतु कालांतर में गण के निर्धन सदस्य भी अपने के अपने ही गण के भीतर

दासता के समान पराधीनता की स्थिति मे पान नगे। कुछ विद्वान भ्रातिपूर्वक यह मानते है कि दास शब्द का प्रयोग आर्यों से जातीय दृष्टि म भिन्न गणो को व्यक्त करन क लिए किया जाता था, अर्थात वे दासता के आविर्भाव की व्याख्या सामाजिक कारको से नही वरन जातीय अतरो मे करन का प्रयास करते है यद्यपि यह सभव था कि दासो म देसज गणो के सदस्य भी होते हो। अथर्ववेद म अनाज पीसन क लिए दासियो के श्रम के उपयोग के बारे मे रोचक सूचना पायी जा सकती है। वैदिक ग्रथो म, और ऋग्वेद तक म, बडी सख्या म दासो के उपयोग के हवाले है (कभी कभी ऐसे लोगो का उल्लेख आता है जिनके पास सैकडो बल्कि हजारो भी दास थे), किंतु यह कहना कठिन है कि य सख्याए यथार्थ के साथ कहा तक मेल खाती है। यह मानना अधिक तर्कसगत रहेगा कि यह स्पष्टत अतिरजना है यद्यपि वैदिक काल म दासता क उदय के बारे म किसी भी तरह कोई सदेह नही हो सकता।

वैदिक समाज के समग्र विकास स्तर के दृष्टिगत जो अभी गोत्र गण सगठन से अधिक उन्नत नही हुआ था उस समय (और विशेषकर ऋग्वैदिक काल म) विद्यमान दासता को मोटे तौर पर अविकसित पितृतत्रात्मक दासता कहना चाहिए।

राजनीतिक सगठन

वैदिक गणो के राजनीतिक सगठन का वर्णन करना खासा जटिल कार्य है। इसका कारण केवल यही नही है कि विद्वानो क पास देने को अधिक प्रमाण नही है बल्कि यह भी है कि ऋग्वैदिक काल के गणो और उत्तर वैदिककालीन गणो मे अपने-अपन राजनीतिक सगठन के स्वरूपो म और अपने द्वारा समूचे तौर पर प्राप्त एतिहासिक विकास के स्तरो मे भी काफी अतर था।

इस प्रश्न पर वैदिक गणो के समग्र विकास के सदर्भ म विचार करना महत्वपूर्ण है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो कई सदियो तक चलती रही और जिसके दौरान आर्थिक जीवन तथा सामाजिक और राजनीतिक ढाचो म भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आये।

जहा वैदिक गण प्रारभिक काल मे गोत्र गण सगठन की मजिल मे थे वहा उत्तरवैदिक काल और विशेषकर महाकाव्य काल तक वर्ग समाज और राज्य का उदय होना शुरू हो गया था।

वैदिक लोग गणो म रहा करत थे, जिनमे आरभ म गोत्र और गण

(कबायली) समूह थे, जो कालातर मे वर्गीय स्वरूप के हो गये। ऋग्वेद की ऋचाओ में उस विगत युग की कथाए मिलती ह जब आर्य लाग ऐक्यबद्ध सद्भावपूर्ण समूहो मे रहा करत थे साथ माथ काम करते और देवताओ को बलि चढाया करत थे और अपनी मेहनत के फलो का आपम म ममान वितरण किया करते थे। गण का प्रमुख गणपति हुआ करता था।

वैदिक ग्रथो म इस आशय क प्रत्यक्ष उल्लेख ह कि म्त्रियो को गण की सभाओ मे उपस्थित होने का अधिकार नही था और लगता है कि वे समस्त राजनीतिक अधिकारो से भी वचित थी। गण के आतरिक जीवन और प्रशामन के सभी प्रश्नो का निर्णय गण के विधिवत मदम्यो द्वारा विदथ, सभा अथवा समिति क नाम से विज्ञात सभाओ में किया जाता था।

विद्वानो म इस पर कोई सहमति नही है कि ये नाम क्या सूचित करते थे क्योकि इन गण सभाओ के बारे म स्रोत मामग्री अक्सर अन्यधिक अतर्विरोधी है। सभवत विदथ मवसे पुरानी मस्था था और गण-ज्येष्ठो की वैठक होता था – समिति के विपरीत इसमे सर्वोपरि रूप मे राजनीतिक मामलो पर विचार किया जाता था। समिति अधिक व्यापक म्वरूप की सभा प्रतीत होती है, कितु यह कहना कठिन है कि उसका कार्य वास्तव मे था क्या।

इन गणो के लोग ग्रामो मे रहते थे, जिनमे वडे-वड पितृतत्रात्मक कुल (परिवार) होते थे। गोत्र सबध अब भी बहुत मजबूत थे और गोत्र का प्रभाव अपने को जीवन के सभी क्षेत्रो मे व्यक्त करता था। ग्राम का अपना प्रशासनतत्र था। धीरे धीरे सपत्ति तथा सामाजिक म्थिति पर आधारित असमानता क जडे जमाने के माथ माथ गण समूह स्तरित हो गये और गण प्रशासन के निकाय राज्यमत्ता के निकायो मे परिणत हो गये – गणपति की स्थिति भी बदल गयी, वह अब एक गण नेता नही रहा बल्कि एक राज्य सगठन का शासक बन गया।

यहा शासकीय मत्ता के आविर्भाव के बारे मे प्राचीन भारतीय कथाओ का उल्लेख करना रोचक होगा। एक कथा के अनुसार पहले कोई राजा नही थे और सभी लोग समान थे और वे स्वीकृत नैतिक मान्यताओ का निष्ठापूर्वक पालन करते थे। बाद मे बहुत से लोग सुखभोग मे लिप्त होने लगे विधि और व्यवस्था को भग करने लगे और शक्तिशाली अशक्तो को खत्म करने लगे। इस घडी मे ही ब्रह्मा ने शासकीय मत्ता और दडशास्त्र की सृष्टि की।

एक और कथा यह बताती है कि किस प्रकार लोगो न स्वय इसलिए राजा को चुना कि वह उनकी रक्षा करे। शासकीय तथा राज्यसत्ता क आविर्भाव

की व्याख्या करने के लिए चाहे जो भी कारण क्यों न दिये जाते हों, प्राचीन भारतीयों द्वारा राज्यसत्ता के उदय की आवश्यकता की स्वीकृति ही अपने महत्वपूर्ण है।

प्रारंभिक वैदिक ग्रंथों के अनुसार राजा को आरम्भ में लोगों द्वारा चुना जाता था जो उस कार्य के लिए विशेष सभाओं में एकत्र होते थे। ऋग्वेद और अथर्ववेद में राजाओं के निर्वाचन के बारे में ऋचाएं हैं। अथर्ववेद की एक ऋचा की एक पंक्ति है — जनता ने तुम्हें शासन करने के हेतु निर्वाचित किया है। ऋग्वेद की ही भांति यहां भी जनता को विश कहा गया है। राजा का एक कार्य अपने प्रजाजनों की रक्षा करना था — उसे अपने लोगों का रक्षक माना जाता था।

राज्य का संघटन एक लंबी प्रक्रिया थी जिसके दौरान पुराने राजनीतिक स्वरूप के अवशेष काफी समय तक बने रहे। गण सभाएं — विशेषकर सभा और समिति — महत्वपूर्ण भूमिका निबाहती रही और वे राजा की नियुक्ति को भी प्रभावित करती थीं। धीरे धीरे इन गण सभाओं का स्थान अभिजनों की अथवा राजा के परिजनों की सभाओं ने ले लिया। (कालांतर में सभा शब्द का अर्थ वह स्थान हो गया जहां बैठकें होती थीं और वाद विवाद तथा खेल तक आयोजित किये जाते थे। यह शब्द एक विशेष प्रकार के विधिक निकाय का भी सूचक हो गया।) राजा की शक्ति के बढ़ने के साथ साथ सभा और समिति की भूमिका कम होती गयी। धीरे धीरे राज्यसत्ता के निकाय और स्थायी राजकीय पद अस्तित्व में आ गये। लोगों को कर देना शुरू करना पड़ा। बलि जो पहले गणपति अथवा देवता को स्वेच्छा से अर्पित की जाती थी अब राजा को देय एक अनम्यतापूर्वक निर्दिष्ट अनिवार्य कर बन गयी जिसे विनिर्दिष्ट नियुक्त अधिकारियों के जरिये देना होता था।

गण के सशस्त्र सैनिकों का दल धीरे धीरे एक विशेष सेनानी अथवा सेनापति के अधीन स्थायी सैन्य बल में परिणत हो गया। राजा और पदाधिकारी सैनिक रथों पर सवार होकर लड़ते थे और समुदाय के स्वाधीन सदस्य पैदल।

वैदिक ग्रंथों में राजा के राज्याभिषेक के विशेष अनुष्ठान — राजसूयज्ञ — का विस्तार से वर्णन किया गया है जिससे उसे दैवी अधिकार अथवा प्रतिष्ठा की संप्राप्ति हो जाती थी। राजा के मुख्य पुरोहित की भूमिका अधिकाधिक महत्वपूर्ण होता गया — वह राज ज्योतिषी और परामर्शदाता का काम भी करता था। उन नामों की सूची भी कम रोचक नहीं है जो राज्याभिषेक अनुष्ठान में भाग लेते थे और अभिषेक्कर्ता कहलाते थे। इनमें ग्रामणी भी हैं

जिनमे यह पता चलता है कि ग्राम प्रशासन के स्थायी निकायों का कबीय शासन म अब भी महत्व प्राप्त था। धीरे धीरे निर्वाचित राजत्व का स्थान वंशानुगत राजत्व ने ले लिया और सत्ता सामान्यत पिता से पुत्र को प्राप्त होने लगी। इस प्रकार प्रारंभिक वैदिक गणों में राज्य सघटना का उदय होता है और नाना परिस्थितियों के परिणामस्वरूप ये राज्य संघटन राजतंत्र अथवा गणतंत्र का रूप ले सकते थे इन राज्यों का क्षेत्र अब भी बहुत छोटा होता था आदिम सामुदायिक संगठन के पुरातन लक्षणों और संस्थाओं का अस्तित्व बहुत समय तक बना रहा विशेषकर बहिर्वर्ती इलाकों में।

वर्णों की उत्पत्ति जाति व्यवस्था

जातियों और जाति व्यवस्था के अस्तित्व को सामान्यत केवल भारत के साथ ही संबद्ध किया जाता है किंतु यह तथ्य ऐतिहासिक तथा नजातिवत्तीय साक्ष्य के पूर्णत अनुरूप नहीं है। जाति के कुछ पहलू और जाति व्यवस्था के विभिन्न तत्व अनेक समाजों में पाये जाते है। अलबत्ता जाति व्यवस्था के विकास का सबसे अनूठा उदाहरण भारत ही प्रदान करता है जिसने भारतीय समाज में विद्यमान विशिष्ट परिस्थितियों में अत्यंत अनन्य रूप ग्रहण कर लिया है।

भारत में जाति के उदगम का प्रश्न विद्वानों में प्रचंड विवाद का विषय है। इस समस्या पर विचार करते समय बहुत से सामाजिक आर्थिक तथा विचारधारात्मक कारकों को और प्राचीन भारत के ऐतिहासिक विकास के विशिष्ट क्रम को ध्यान में रखना आवश्यक है।

कार्ल मार्क्स ने कई अवसरों पर इंगित किया है कि जाति गण संगठन का एक अवशेषी रूप है। जाति में ही गोत्र अथवा गण संबंध अपना चरम कठोरतम रूप ' ग्रहण करता है।

प्राचीन भारतीय समाज मे जाति के साथ ही साथ एक और प्राचीन संस्था – वर्ण – भी विद्यमान थी जो वर्गपूर्व समाज में उदित हुई थी और जिसे बाद मे वर्ग समाज में सुदृढ किया गया और प्रतिष्ठा प्रदान की गयी थी। शनै शनै वर्ण (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र) अधिकाधिक अनन्य होते गये और जातियों के सदृश हो गये और यही कारण है कि वर्ण के लिए अक्सर जाति शब्द का भी प्रयोग किया जाता रहा है।

वर्ण की उत्पत्ति का प्रश्न अत्यधिक जटिल है किंतु इस सामाजिक श्रेणी के उदय का आदिम सामुदायिक संबंधों के विघटन और सापत्तिक स्वामित्व

तथा सामाजिक स्थिति मे अतरो पर आधारित असमानता के विकास के साथ सबद्ध करना तर्कसगत ही होगा।

हो सकता है कि प्राचीन भारत म सामाजिक श्रेणियो के इस विशिष्ट रूप क उदय मे उन स्थानीय गणो के सामाजिक सगठन की विशिष्ट प्रवृत्ति की भी कुछ भूमिका रही हो जिनका उत्तर भारत मे प्रवेश करत समय भारतीय आर्यो को सामना करना पडा था।

अभिजात योद्धा क्षत्रिय वण म आते थे पुरोहित ब्राह्मण वर्ण म, ग्राम समुदाय के स्वाधीन सदस्य वैश्य वण म आते थे और सबसे अत म शूद्र वण था, जिसे सामाजिक अधिक्रम म निम्नतम स्थान प्राप्त था। वण प्राक् वैदिक युग म ही अस्तित्व मे आ चुका था। यह ज्ञात है कि प्राचीन ईरान म भी एसे सामाजिक समूह – पिश्ना (वर्ण की ही भाति इस शब्द का अर्थ भी रग है) – विद्यमान थे जिन्हे पहले तीन भारतीय वर्णो के समान माना जा सकता है। अत इससे यह प्रतीत होता है कि समाज का तीन सामाजिक श्रेणियो म विभाजन भारतीय ईरानी काल का है जब कि कुछ तथ्यो के आधार पर यह भी माना जा सकता है कि यह प्रक्रिया इसके भी पहले शुरू हो चुकी थी।

ऋग्वद मे पहले तीन वर्णो (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) का बारबार उल्लेख आता है किंतु चारो वर्णो क पुरुप से उत्पन्न होने की कथा दसव मडल म ही मिलती है। पुरुपसूक्त की ऋचा मे कहा गया है कि ब्राह्मण पुरुष क मुख से उत्पन्न हुए, क्षत्रिय बाहो से वैश्य जाघो से और शूद्र पैरो से पैदा हुए।

उत्तर वैदिक साहित्य मे यह प्रसग बारबार आता है, किंतु उसमे वर्णो क उदय को सदा ब्रह्मा से ही सबद्ध किया जाता है। चारो वर्णो के उदय और उनकी स्थिति को ब्राह्मणो (पुरोहितो) द्वारा धर्मानुज्ञप्त बना दिया गया, जिन्होने ब्राह्मण श्रणी की श्रेष्ठता को प्रमाणित करने और अपनी स्थिति का प्रतिष्ठा प्रदान करन के लिए कोई कसर न रहने दी। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि सभी वैदिक ग्रथो म ब्राह्मणो का ही अन्य वर्णो क पहल उल्लेख किया गया है। ब्राह्मण ईश्वरीय उपासना और धार्मिक अनुष्ठानो का निष्पादन करन तथा धर्मग्रथो क अपन ज्ञान से सबद्ध अपने विशेषाधिकारो का उल्लघन नही होन दते थ। लेकिन व्यवहार म वास्तविक सत्ता क्षत्रियो के हाथ मे ही थी।

सामान्यत राजा का पद क्षत्रियो को ही मिलता था क्षत्रिय ही राज्य प्रशासन क प्रमुख होत थे और सत्ता का सेना जैसा अत्यधिक महत्वपूर्ण उपकरण भी उनक ही नियत्रण म था और वे ही मुख्य सैनिक पदो पर आसीन थ।

उत्तरवैदिक ग्रथो मे ही क्षत्रियो और ब्राह्मणो मे प्रतिद्वद्विता क प्रसग मिलना शुरू भी हो जाते है और महाकाव्यो मे तो इस सघप का काफी विस्तार मे वर्णन है।

स्थिति मे अतरो क वावजूद ब्राह्मण और क्षत्रिय विशेपाधिकारप्राप्त और धनी समूह मे थे जो मेहनतकशो और दासो के वल पर अपनी हैसियत का उपभोग करते थे।

सख्या की दप्टि से सबसे महत्वपूर्ण वण वैश्य था, जिसम ग्राम समुदायो के स्वाधीन सदस्य, कृपिजीवी और व्यापारी आते थे। करो का अधिकाश वैश्यो द्वारा ही अदा किया जाता था। वैदिक युग मे वैश्यो को अभी तक कुछ राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे ओर वे कुछ राजकीय मामलो का निणय करने म भी भाग लेते थे।

तीनो उच्च वर्ण द्विज माने जाते थे और उनके सदस्य उपनयन सस्कार के अधिकारी थे। शूद्र द्विज नही होत थे और इसलिए उनका वदिक अनुप्ठानो मे भाग लेना अथवा धार्मिक ग्रथो का अध्ययन करना वर्जित था। शूद्र आम तौर पर निर्धन और आर्थिक दृप्टि से अपने से सपन्न लोगो पर आश्रित होते थ। निम्नतम दस्तकार और नौकर चाकर शूद्र ही होते थे। यद्यपि शूद्र दास नही थे, पर वे कभी भी अपने को दासवत पराधीनता की स्थिति मे पा सकते थे। उच्चतर श्रेणियो के प्रतिनिधियो का प्रयास वण व्यवस्था को एक अलघ्य आनुवशिक सस्था के रूप मे सुदृढ करना, शूद्रो के साथ सम्मिश्रण को रोकना और उनका द्विजो की कतारो मे प्रवेश न होने देने का था।

ऋग्वेद के प्रारभिक मडलो मे शूद्रो का उल्लेख न पाये जान के आधार पर कुछ विद्वानो ने यह मान लिया था कि वे भारत के देशज निवासी थे, जिन्ह आर्यो ने अधीन कर लिया था। इसीसे आर्यो की श्रेप्ठता का, उनकी प्रजातीय शुद्धता का और आर्यो द्वारा श्यामवर्ण देशज निवासियो के पराभव का–जिन्ह उन्होने शूद्रो मे परिणत कर दिया–विचार उत्पन्न हुआ। इस सिद्धात के माननेवाले इस बात पर जोर देते थे कि वर्ण का एक अर्थ रग भी है। तथापि यह ध्यान म रखना चाहिए कि वर्ण शब्द का प्रयोग त्वचा क रग के लिए नही किया गया है। प्राचीन ईरान की ही भाति प्राचीन भारत म भी रग को प्रतीक मानने की परपरा थी–प्रत्येक वण एक विशिप्ट रग म सबद्ध था।

वैदिक युग के उत्तरवर्ती काल म वर्णो के भीतर व्यवसाय पर आधारित और छोटे तथा कठोरतर उपविभाजन हुए, जिन्होने कालातर मे जातियो का रूप ले लिया।

प्राचीन राजवंश और उनके भारतीय राज्य

वैदिक ग्रंथों और महाकाव्यों में अनेक प्राचीन राजवंशों के उल्लेख मिलते हैं और गंगा की घाटी में स्थित प्राचीन राज्यों के नाम आते हैं किंतु इन तथ्यों की ऐतिहासिकता संदेह से परे नहीं है और अधिकांश मामलों में उनकी पुरातात्विक साक्ष्य से अभी तक पुष्टि नहीं हो पायी है। महाकाव्यों में अलग अलग वंशावलियां दी गयी हैं और घटनाओं के वर्णनों में भी भिन्नता है जिससे भारतविदों का इस काल के इतिहास की पुनर्रचना करने के प्रयास का काम बहुत जटिल हो जाता है। वैदिक तथा महाकाव्य कालों के धार्मिक विचारों ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि जिससे गणों और राजवंशों की उत्पत्ति की व्याख्या देवताओं की इच्छा से होती है। सबसे प्रचलित परंपरा के अनुसार गंगा घाटी के मुख्य राजवंश सूर्य तथा चंद्रवंशियों के थे और उनके संस्थापकों को सूर्य तथा चंद्रदेव के वंशज माना जाता था। रामायण के नायक राम को सूर्यवंश और कौरवों को चंद्रवंश का बताया जाता है। ऋग्वेद में उल्लिखित राजा भरत को भी चंद्रवंशी ही माना जाता है।

ऋग्वेद में राजनीतिक इतिहास विषयक कुछ तथ्य हैं किंतु इन सभी तथ्यों की विश्वसनीयता संदिग्ध है। उदाहरण के लिए ऋचाओं में दस राजाओं के युद्ध राजा सुदास के नेतृत्व में भरत संघ के त्रित्सु गण और स्थानीय – तथा प्रकटतः अनार्य क्योंकि उन्हें यज्ञ न करनेवाले बताया गया है – गणों के बीच झगड़ों का वर्णन है। स्पष्टतः यहां वैदिक तथा स्थानीय गणों के बीच प्रतिद्वंद्विता की तरफ इशारा है। ऋग्वैदिक काल में भरतवंशी बहुत करके सरस्वती (सिंधु की एक प्राचीन सहायक नदी जो अब विलुप्त हो गयी है) और यमुना के बीच के इलाके में रहा करते थे।

पुरु गण को अन्य वैदिक गणों पर विशेष प्रभाव प्राप्त था। ऋग्वेद में उनके एक राजा को एक म्लेच्छ (अनार्य) गण का विजेता कहा गया है। बाद में पुरु लोग कुरु (कौरव) गण के महासंघ में शामिल हो गये। ऋग्वेद में कई अन्य गणों का भी उल्लेख है जिन्होंने आगे चलकर प्राचीन भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की जैसे चेदि, गांधार, कीकट (मागधों का प्राचीन नाम) आदि।

भरत का नाम विशेषकर महिमामंडित है। इस प्रख्यात राजा के सम्मान में प्राचीन काल में भी समस्त उत्तरी भारत को भारतवर्ष – भरतवंशियों का देश – कहा जाता था। महाभारत के अनेक पात्र भरतवंशी ही

थ और इस महाकाव्य म भरतवंशियो के इस महान युद्ध का ही वर्णन है।

कुरुक्षेत्र म कौरवो और पाडवो का युद्ध इस काल स सबधित महाकाव्यो की एक मुख्य घटना है। इस युद्ध म सबद्ध विवरणो की प्रामाणिकता का प्रश्न भारतविदो म प्रचड विवाद का विषय है। बहुत स विद्वान इस युद्ध के वर्णन को छठ चौथे या तीसरे सहस्राब्द ई० पू० म घटी एक वास्तविक घटना का वर्णन मानते थ। समकालीन भारतविद इस युद्ध के काल को ग्यारहवी दसवी और नवी शती ई० पू० का मानते है। भारतीय पुरातत्वविदो न बी बी० लाल के निर्देशन में हस्तिनापुर म महत्वपूर्ण खोज की है जिसे महाभारत म कौरवो का मुख्य नगर कहा गया है।

उत्खनना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हस्तिनापुर के निवासियो न उस बाढ़ के परिणामस्वरूप ग्यारहवी और नवी शती के बीच त्याग दिया था। ये तथ्य महाभारत स प्राप्त सूचना स मेल खाते है।

कुरुक्षेत्र का रक्तरजित युद्ध चाहे हुआ हो या न हुआ हो और चाहे वह एक आख्यान का ही विषय रहा हो जो कुछ विद्वानो के मत म भारतीय-ईरानी काल का है उत्तरी भारत के गणो म दीर्घकालिक प्रतिद्वद्विता के परिणामस्वरूप निस्सदेह कुछ गणो का अन्य गणो पर प्रभुत्व स्थापित हो गया। उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारतीय ग्रथो मे सामान्यत यह स्वीकार किया जाता था कि कुरुक्षेत्र का युद्ध नये युग के समारभ का द्योतक था। पाचाल तथा कुरु गण जो महाकाव्य के अनुसार सबसे शक्तिशाली तथा प्रभावशाली गण थ, अपना राजनीतिक प्रभाव खो बैठे और पूर्वी भारत के छोटे छोटे राज्य राजनीतिक प्रागण म आ गये विशेषकर कोसल (जिसकी राजधानिया अयोध्या और श्रावस्ती थी) काशी (राजधानी – वाराणसी) तथा विदेह (राजधानी–मिथिला)। वर्तमान बिहार के दक्षिण म मगध राज्य (राजधानी – गिरिव्रज और बाद म राजगृह) और पश्चिम म अवति (राजधानी – उज्जयनी) राज्य अस्तित्व मे आ गये।

उत्तरवर्ती वैदिक साहित्य म देश के तीन भागो – आर्यावर्त (उत्तरी राज्य), मध्यदेश (मध्य राज्य) तथा दक्षिणापथ (दक्षिणी राज्य) – म विभाजन के उल्लेख है। उसके पाच भागो – मध्य पूर्वी पश्चिमी दक्षिणी और उत्तरी देशो – म विभाजित होने के भी उल्लेख है।

उत्तरवैदिक काल की सहिताओ और उपनिषदो के रचयिता समस्त उत्तरी भारत मध्य भारत के कई इलाको (अर्थात नर्मदा के उत्तर म) और पूर्वी भारत के बहुत स प्रदेशो म सुपरिचित थ। उस समय तक उस

गजनीतिक मानचित्र की मुख्य रूपरेखा निर्धारित हो चुकी थी, जिसमे आगामी मगध मौर्य काल की ऐतिहासिक ज्ञान सामग्री अब हमे परिचित करवायेगी।

वेदिककालीन धर्म तथा मस्कृति

वैदिक धर्म, पुराण, सस्कार

वैदिक ग्रथ हमारे लिए वैदिक काल के प्राचीन भारतीयो के धार्मिक विचारो और उनके पुराणो से परिचित होना और उनका अध्ययन करना सभव बनाते है।

वैदिक गणो के धार्मिक विचारो के रूप लेने और स्थायित्व प्राप्त करने में अत्यधिक लबी कालावधि लगी। इस प्रक्रिया की विशिष्ट मजिल वैदिक ग्रथो मे प्रतिबिबित होती है। वैदिक धर्म को कुछ शर्तों के साथ एक सुनिर्धारित व्यवस्था, अनुरूप सस्कारो और अनुष्ठानो से युक्त धार्मिक (और अशत धार्मिक तथा दार्शनिक) विश्वासो की सपूर्ण प्रणाली माना जा सकता है। इस व्यवस्था के भीतर कितने ही पृथक विशिष्ट विश्वास देखे जा सकते हैं। ये या तो आदिम सामाजिक सबधो को प्रतिबिबित करनेवाले अत्यत पुरातन विश्वास है, या ऐसे विश्वास है जिनका मूल प्राचीन भारोपीय अथवा भारतीय ईरानी सस्कृति मे है या ऐसी धारणाए है कि जो पहले भारतीय राज्यो के उत्पन्न होने के समय स्वय वैदिक समाज के विकास के परिणामस्वरूप पैदा हुई थी।

वैदिक धर्म भारत मे धार्मिक विश्वासो की सबसे प्राचीन प्रणाली है और उसने इस उपमहाद्वीप मे पैदा होनेवाली धार्मिक प्रवृत्तियो और दार्शनिक शिक्षाओ पर जबरदस्त प्रभाव डाला है यद्यपि बौद्ध धर्म के विपरीत इसने देश की सीमाओ के बाहर प्रसार नही किया।

वैदिक धर्म का एक अनिवार्य तत्व बहुदेववाद – नृरूपता से आभूषित बहुत से देवी-देवताओ की उपासना – है।

वैदिकयुगीन भारतीय विभिन्न प्राकृतिक परिघटनाओ को और अपने देवी देवताओ को भी मानव लक्षणो से, मानव गुणावगुणो से आभूषित करते थे। ऋग्वेद मे नृरूप से विभूषित देवताओ के साथ-साथ पार्थिवरूपता से आभूषित देवता भी मिलते है जो पशुओ के रूप मे प्रकट होते है और प्रकृति

की परिघटनाओ के साथ मौलिक सबध बनाये रखते है (इद्र को कभी कभी साड के रूप मे और अग्नि को घोडे क रूप मे प्रकट किया जाता है)। उनकी ऋचाए देवताओ को ही सबोधित थी और यज्ञ तथा बलिदान भी देवताओ क लिए ही किये जाते थ। अपनी ऋचाओ मे वैदिक जन देवताओ से अपने को और पशु देने, युद्ध मे विजय देन अच्छी फसल देन या विनाश और विपत्ति से त्राण देने की याचना करत है। ऋग्वेद मे दवताओ का वर्गीकरण करने का प्रयास भी लक्षित होता है। उन्ह वैदिकयुगीन भारतीयों की विश्व के स्वर्ग पृथ्वी तथा अतरिक्ष म त्रिविध विभाजन की सामान्य धारणा क अनुरूप कमोवेश तीन समूहो मे विभाजित किया जा सकता है। इनमे से प्रत्येक क्षेत्र के अपने-अपने देवता थ। स्वर्ग के देवताओ मे सूर्य, उपस् (उपा) तथा वरुण थे। पार्थिव देवताओ मे सबसे पूजनीय अग्नि तथा सोम थे। अतरिक्ष क देवताओ मे रुद्र, वायु तथा परम शक्तिशाली इद्र थे। यह माना जा सकता है कि वैदिक गणो की ये धारणाए विश्व के त्रिविध विभाजन की पुरानी पौराणिक धारणा स सबद्ध थी जो कई अन्य भारोपीय जातियो के इतिहास म भी पायी जाती है।

इन अतिप्राचीन देवताओ के साथ साथ जिनकी भारोपीय तथा भारत ईरानी पौराणिक धारणाओ मे समानता पायी जा सकती है (उदाहरण के लिए कुछ वैदिक देवता यूनानी देवताओ के स्पष्ट सादृश्य प्रस्तुत करते है*) वैदिक देवकुल मे "शुद्ध भारतीय देवता भी थे। उनकी उपासना वैदिक आर्यो के भारत मे प्रसार करते समय शुरू हुई थी।

सबसे लोकप्रिय देवताओ मे एक इद्र था जिसके नाम के साथ बहुत सी प्रमुख प्राकृतिक परिघटनाए जुडी हुई थी। ऋग्वेद मे २५० ऋचाए (कुल ऋचाओ की लगभग चौथाई) इद्र के बारे मे ही है।

इद्र को एक अतिशक्तिसपन्न, असाधारण देवता माना गया है, वह वज्रधर है जो वज्रपात करके हजारो शत्रुओ को अनायास ही मार डालता है। वह वृत्रासुर का सहारकर्ता है जो सारे जल को लील गया था। इद्र बहुत से काम करता है और अनक कथाओ मे आता है और इन सभी मे उसकी नृरूपता प्रतिबिबित होती है।

---

* आकाश के देवता द्यौ को यूनानी देवता ज्यूस (देवराज) और रोमन देवता जुपीटर के, सूर्य को यूनानी देवता हेलिओस के, वरुण को यूरेनस के और उपस् को उषा की देवी इओस के समान माना जा सकता है।

प्राचीन भारतीयों का विश्वास था कि वरुण का समस्त नभामंडल पर शासन है और वह रथ पर सवार होकर उसमें घूमता है। वह पृथ्वी पर ऋत-व्यवस्था – का रक्षक है और इसलिए आकाशीय पिंडों की गतियों और मनुष्य के कार्यों को वही नियमित करता है। वह धरती, आकाश तथा वायुमंडल का धारक है, ऋतुवृत्ति का नियंता है। पापियों के प्रति वह कठोर है किंतु निर्दोषों और पश्चात्तापियों पर दया करता है। वह देवताओं तक के लिए नैतिक मानक निर्धारित करता है। उसकी प्रतिमा के नैतिक पहलू भी हैं, जिनका प्राचीन भारत की उत्तरवर्ती धार्मिक तथा दार्शनिक प्रणालियों में विशदीकरण किया गया है।

देवताओं में रुद्र विशेषकर रोचक और असाधारण हैं और अन्य देवताओं के विपरीत वह नकारात्मक गुणों से विभूषित हैं। ऋग्वेद ने उन्हें गौण महत्व ही प्रदान किया गया है। रुद्र यज्ञाहुति में केवल वही भाग पाने का अधिकारी है जिसे अन्य देवता ग्रहण नहीं करते। कुछ विद्वानों का कहना है कि आर्यों ने रुद्र को स्थानीय गणों से लिया है और वैदिक देवकुल में उसकी विलक्षण स्थिति का यही कारण है। कालांतर में रुद्र सबसे लोकप्रिय देवताओं में से एक – शिव – में परिणत हो गया।

वैदिक गण विष्णु से भी परिचित थे। ऋग्वेद में विष्णु के बारे में केवल छः ऋचाएं हैं जिनमें बताया गया है कि उसने तीन डगों में सारे विश्व को कैसे पार किया। इस कथा ने हिंदू धर्म में विशेष महत्व प्राप्त किया जिसमें विष्णु का स्थान सर्वप्रमुख देवताओं में है।

वैदिक देवकुल में अग्नि तथा सोम का बड़ा प्रमुख स्थान प्राप्त था। अग्नि का धार्मिक संस्कारों में आधारभूत महत्व था क्योंकि लोग देवताओं को अपनी आहुतियां अग्नि की सहायता से ही भेज सकते थे। यज्ञाग्नि को देवताओं के अमरत्व का स्रोत माना जाता था। वैदिक ऋचाओं में जोर देकर कहा गया है कि देवता अग्नि के कारण ही अमरत्व प्राप्त करते हैं। इसी कारण अग्नि एक प्रकार से देवताओं और मनुष्यों के बीच सूत्र था। इसलिए अग्नि को दूत मानना अकारण ही नहीं था। अग्निपूजा का मूल आग को परिवार के कल्याण का स्रोत मानने की अतिप्राचीन धारणा में देखा जा सकता है। ऋग्वेद में अग्नि को गृहस्थी का रक्षक माना गया है।

ऋग्वेद की १२० ऋचाएं सोम के बारे में हैं। अग्नि की ही भांति सोम को भी देवताओं के अमरत्व का साधन माना जाता था। देवता अमरत्वदायी सोमरस का पान करने की कोशिश करते थे। लोग भी इसे पाने के आकांक्षी

थे और यह मानते थे कि सोम उन्हें देवताओं से एकाकार कर देता है।

हितैषी देवताओं के अलावा प्राचीन भारतीय भूत प्रेतों और दुष्टात्माओं – राक्षसों तथा असुरों – में भी विश्वास करते थे जो देवताओं के शत्रु थे।

उत्तरवैदिक काल में कुछ अमूर्त देवी-देवता भी पैदा हो गये। ये ऐसे देवी देवता थे जिनके कार्य अस्पष्ट थे और जो विश्व की त्रिविध कल्पना से किसी भी प्रकार संबद्ध नहीं थे जैसे वाच तथा श्रद्धा। इन देवताओं का उदय सर्वेश्वरवादी विचारों के विकास के फलस्वरूप हुआ जो ऋग्वेद में भी लक्षित होता है किंतु जिसने विशेष महत्व उत्तरवर्ती वैदिक तथा महाकाव्ययुगीन पुराणाख्यानों में ही प्राप्त किया। ऋग्वेद के समग्र पौराणिक ढांचे में त्रिविध विश्व ही एकमात्र कल्पना नहीं है फिर भी वह वैदिक पुराणाख्यानों के क्षेत्र के भीतर किसी हद तक वर्गीकरण को सुगम बनाती है।

वैदिक विश्वासों का एक चारित्रिक लक्षण देवताओं के किसी भी प्रकार के सुस्पष्ट विशिष्टिकरण का अथवा उनके कार्यों के सुस्पष्ट विभाजन का सर्वथा अभाव था।

वैदिक ऋचाओं में प्राकृतिक शक्तियों के देवत्वारोपण ने अधिकतर मानवत्वारोपण का रूप लिया है जिसके फलस्वरूप देवताओं के वर्णन में किसी हद तक समन्वय आ गया है। इसके अलावा प्रकृति की वही परिघटनाएं अलग-अलग देवताओं के साथ संबद्ध है। देवताओं का कोई सुआधारित अधिक्रम नहीं है बल्कि कुछ सर्वव्यापी लक्षणों जैसा है जो बहुत सारे देवताओं के लिए स्वाभाविक है। किसी भी क्षण कोई भी देवता एक अनन्य एकमात्र देवता में परिणत हो सकता है, जिसे उन सभी कार्यों और शक्तियों से विभूषित कर दिया जाता है कि जो अन्य स्थितियों में किसी अन्य देवता से संबद्ध की जा सकती है। एक सर्वोपरि ईश्वर के स्थान पर किसी एक समय एक देवता की उपासना इष्टदेववाद अथवा हीनोथीज्म के नाम से विज्ञात हुई (इस शब्द का पहले पहल प्रयोग प्रसिद्ध भारतविद मैक्स म्यूलर ने किया था)। यह विशेषता एक अतिविशिष्ट प्रकार के एकेश्वरवाद की ओर प्रवृत्ति का प्रतिबिंबित करती थी जिसे अपनी सबसे विस्तृत अभिव्यक्ति उपनिषदों में मिली।

उत्तरवैदिक काल में प्रजापति ने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया किंतु वह भी एक सर्वोच्च ईश्वर का महत्व प्राप्त न कर सका। बाद में प्रजापति का स्थान ब्रह्मा ने ले लिया।

यह संभव है कि देवताओं के वर्णन में समन्वय का यह तत्व विभिन्न

वैदिक गणो की पौराणिक धारणाओ म आगम म सम्मिलन का प्रतिबिंबित करता हा।

वैदिक धर्म के विकसित होने क साथ साथ विभिन्न दवताओ क महत्व म और वैदिक पुराणाख्यान तथा समाज क सामान्य ढांचे म उनकी स्थिति म अतर आते जाते है। प्राचीन देवता लगभग विस्मृत हो जाते हैं, वरन जैसे कुछ वरिष्ठ देवता अपनी प्रमुखता खो देते है और उनक स्थान पर अन्य दवता आ जाते हैं जिनकी पहले कोई विशेष भूमिका नहीं थी, उदाहरण के लिए विष्णु।

जैसे जैसे भारतीय-आर्य उत्तरी भारत म अधिकाधिक म प्रवेश करते गय, वैसे वैसे वैदिक धर्म म स्थानीय अनार्य गणो की कुछ धार्मिक धारणाओ का भी समावेश होता गया। उदाहरण के लिए अथर्ववेद के जादू-टोने और मत्रो म यह लक्षित होता है।

उत्तरकालीन वैदिक साहित्य म एक सुस्पष्ट प्रवृत्ति देखने म आती है- धीरे धीरे ब्रह्मा शिव और विष्णु तीन मुख्य देव बनकर सामने आ जाते हैं और एक देवत्रयी – त्रिदेव – का निर्माण करते है।

वैदिकयुगीन भारतीय विभिन्न प्रेतात्माओ की भी उपासना करते थे और पेड पौधो पर्वतो नदियो आदि को उपास्य मानते थे।

देवोपासना का एक अनिवार्य अग यज्ञबलि अनुष्ठान था। दवताओ को सबोधित स्तुतिया धार्मिक विधान का एक आवश्यक अग थी, यद्यपि उनम से अनेक सांस्कारिक नही थी। अग्नि तथा सोम की पूजा म कर्मकाड का विशेष महत्व था।

धीरे धीरे यज्ञ अनुष्ठान अधिकाधिक जटिल होते गये और इसके परिणाम स्वरूप पुरोहितो के कई वर्ग पैदा हो गये जो विभिन्न प्रकार की धार्मिक तथा आनुष्ठानिक क्रियाओ का सचालन करते थे।

विभिन्न विशेष अवसरो पर विधिवत अनुष्ठानो के अलावा वैदिकयुगीन भारतीयो को अपने दैनंदिन जीवन मे कई सस्कार भी करने होते थे – ये उनका धर्म उनकी नित्यचर्या थे।

बच्चो के जन्म विवाह और स्वजनो की मृत्यु के अवसरो पर विशेष सस्कार करने होते थे। पितरो की पूजा का बडा महत्वपूर्ण स्थान था।

उत्तरवैदिक ग्रथो – ब्राह्मणो – म यज्ञ सस्कारो को विशेष महत्व दिया गया है। वैदिक दवता प्रजापति यहा यज्ञदेव बन जाता है। मनुष्य द्वारा यज्ञ का किया जाना उसका मुख्य कार्य उसकी अच्छाई का मापदड बन गया।

इसे जीवन का आधार माना जाने लगा, जो देवताओं और मनुष्य–दोनों के लिए अस्तित्व-कारण था। यज्ञ तथा मंत्रोच्चार से केवल देवता ही नहीं, मनुष्य भी अमरत्व प्राप्त कर सकते थे–देवता आदमी के वंश के सातत्य को संभव बनाते थे और उसे संतान तथा सुख प्रदान करते थे।

ब्राह्मण पुरोहित इन विश्वासों की जड़ जमाने की कोशिश करते थे, यह माना जाता था कि अनुष्ठान के दौरान उनका देवताओं के साथ क्षण भर को पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो जाता है और केवल वे ही यज्ञाहुति का देवताओं में ठीक प्रकार से वितरण कर सकते हैं।

ऋग्वेद से अनुमान लगाया जा सकता है कि यज्ञबलि का अनुष्ठान किस प्रकार होता था–विशेष वेदी पर यज्ञभूषण (कुश) बिछाकर मानो देवताओं के लिए स्थान बना दिया जाता था। इसके बाद हवनकुंड में यज्ञाग्नि प्रज्वलित कर दी जाती थी और तदनंतर उसमें सोमरस अथवा दूध की आहुति दी जाती थी या अनाज के दाने छिड़के जाते थे अथवा यज्ञपशुओं का बलिदान किया जाता था।

आरंभ में वैदिक गणों के कोई मंदिर नहीं थे, किंतु कालांतर में संभवतः स्थानीय धार्मिक प्रथाओं के प्रभावस्वरूप उपासना के लिए विशेष इमारतें बनायी जाने लगीं।

विद्वानों में इस बारे में मतैक्य नहीं है कि वैदिक काल में देवताओं की चित्राभिव्यक्ति करने की प्रथा थी या नहीं। वैदिक ग्रंथों के कुछ अंशों से यही आशय निकलता लगता है कि इस समय तक देवताओं का नृरूपचित्रण शुरू हो चुका था।

महाकाव्ययुगीन पुराणाख्यान

महाकाव्यों की पुराणकथाएं आम तौर पर वैदिक पुराणकथाओं से भिन्न हैं, यद्यपि कुछ प्रसंगों और धारणाओं में पूर्ववर्ती काल की कथाओं की अनुगूंज पायी जाती है। वेदों की ही भांति कुछेक देवताओं के चित्रण में महाकाव्ययुगीन पुराणाख्यान में बहुदेववाद और मानवत्वारोपण के तत्व स्पष्टतः प्रतिबिंबित होते हैं और एक विशेष प्रकार के सर्वेश्वरवाद के कुछ लक्षण भी पाये जाते हैं। लेकिन दूसरी ओर, महाकाव्यों में समग्ररूपेण पुराणाख्यानों के कुछ भागों को नया बल और अतर्य प्रदान कर दिया जाता है।

महाकाव्यों की पुराणकथाओं में दो परंपराएं सामने आती हैं–पुरातन

परपरा, जो वैदिक अथवा प्राक्वैदिक (भारत-ईरानी) काल से सबद्ध धारणाओ को प्रतिबिबित करती है और महाकाव्य परपरा, जो ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के अनुवर्ती प्रामुख्य से सबद्ध नयी प्रवृत्तियो को प्रतिबिबित करती है। यह दूसरी परपरा ही महाकाव्ययुगीन पुराणाख्यानो को बाद मे विकसित होनेवाले हिंदू धर्म के साथ जोडती है।

वेदो की ही भाति विष्णु महाकाव्यो मे भी इद्र से सबद्ध है और विश्व को तीन डगो मे ही पार करता है किंतु महाकाव्यो मे इस "सहबध" मे मुख्य भूमिका का निर्वहन विष्णु करता है। महाकाव्यो का विष्णु विरल शक्तियो से विभूषित है—वही सृष्टि मे हर चीज का सृष्टा, सरक्षक और सहारक है, अर्थात इस चरण मे वे तीनो कृत्य, जो आगे चलकर हिंदू परपरा मे त्रिदेवो—विष्णु, शिव और ब्रह्मा—मे विभाजित हो जाते है, केवल विष्णु के साथ सबद्ध है।

यह उल्लेखनीय है कि ब्रह्मा भी वही कार्य करता है कि जो विष्णु करता है। मुख्य देवो के गुणो के सदर्भ मे यह समन्वय यह दिखलाता है कि महाकाव्यो मे देवताओ के कृत्यो का स्पष्ट सीमाकन अभी तक नही हुआ था और देवत्रयी के विचार ने अभी तक रूप ग्रहण नही किया था।

महाकाव्यो मे ही हमारा युद्धदेवता स्कद से पहली बार परिचय होता है। एक और रोचक बात इद्र और वरुण का रूपातरण है। वेदो मे इद्र को देवकुल मे प्रमुख स्थान प्राप्त था। महाकाव्यो मे इद्र की ये शक्तिया देवसेना पति, स्कद मे है। वरुण अब विश्व मे ऋत (व्यवस्था) का नियामक नही रह जाता, अब वह गौण महत्व का एक देवता मात्र बन जाता है।

महाकाव्यो मे पुराणाख्यान की जटिलता का कारण सभवत यह है कि स्वय महाकाव्यो की विषयवस्तु ही नानास्तरीय है—उनमे कमोबेश पुरातन प्रसगो के साथ-साथ कही बाद की रचनाए भी है। राम के प्रसग मे यह विशेषकर उल्लेखनीय है। रामायण के प्रारभिक अशो मे राम एक सामान्य व्यक्ति की तरह सामने आता है जो किसी भी प्रकार के दिव्य गुणो से विभूषित नही है किंतु काव्य के बादवाले अशो मे वह विष्णु के अवतार के रूप मे प्रकट होता है।

एक और रोचक चरित्र कृष्ण का है, जिसे एक गण के नेता और पाडवो के मित्र के रूप मे ही नही, बल्कि विष्णु के एक अवतार के रूप मे, परमेश्वर के और अतत 'विश्वाधार' के रूप मे भी चित्रित किया गया है। तथापि महाकाव्य के पात्रो के चित्रण मे ये रूपातरण लोगो के दार्शनिक तथा धार्मिक

विश्वासो मे नये लक्षणो को प्रतिबिंबित करते है–अब तक वैष्णव मत का अवतरण हो चुका था और ई० पू० प्रथम सहस्राब्द के उत्तरार्ध मे वह तेजी से प्रसार करने लग गया था।

वैदिक साहित्य

वेद भारत के प्राचीनतम ग्रथ है यद्यपि उनकी विषयवस्तु बहुत व्यापक है और उनमे समाविष्ट अश भिन्न भिन्न ऐतिहासिक कालो के है। प्राचीन परपरा के अनुसार उन्हे अनेक समूहो मे विभाजित किया जाता है। सबसे पहले स्तुति सकलन या सहिताए है–ऋग्वेद (ऋचा सकलन), सामवेद (मत्र-सकलन) यजुर्वेद (स्तुति तथा यज्ञविधि सकलन) तथा अथर्ववेद (मत्र तथा जादूमत्र-सकलन)। इनके बाद ब्राह्मण – सहिताओ के कर्मकाड सबधी अशो की व्याखाए वानप्रस्थो के लिए रचित आरण्यक और उपनिषद – धार्मिक दार्शनिक विवेचन – आते है।

इनमे सबसे प्राचीन ऋग्वेद है जिसका रचनाकाल ई० पू० दूसरे सहस्राब्द का अत और पहले का प्रारभ है। इसमे विश्वोत्पत्ति तथा विवाह विषयक ऋचाओ सहित बहुत से विषयो पर १,०२८ ऋचाए है। इसके कुछ बाद अथर्ववेद की रचना हुई–आरभ मे इसकी रचना प्रत्यक्षत पूर्वी भारत के वैदिक गणो ने की थी, यद्यपि इसम कुछ अतिप्राचीन अश भी है। अथर्ववेद की बहुत सी स्तुतिया अनार्य गणो के विश्वासो की अनुगूज ही है।

सहिताए मुख्यत अत्यत भिन्न भिन्न सूक्तो के सकलन है, पर साथ ही इन प्राचीन सकलनो को ऐसी साहित्यिक कृतिया माना जा सकता है, जो जन कला के मौखिक उत्तरदान की दीर्घकालिक परपरा को प्रतिबिंबित करती है। सहिताओ के रचयिता ऋषि माने जाते थे, उनके पाठ को प्राचीन चारण जबानी याद कर लेते थे और गाकर सुनाया करते थे। ऋग्वेद की प्राचीनतम ऋचाओ की रचना भी छदशास्त्रीय नियमो का कठोरतापूर्वक पालन करते हुए की गयी थी जिनका कही बाद की कविता मे भी उपयोग किया गया था। एक छद–अनुष्टुभ–आगामी छद–श्लोक–का आधार प्रदान करता था, जो इन प्राचीन भारतीय कृतियो मे प्रयुक्त मुख्य छद है।

बहुत से स्तोत्र प्रकृति तथा मानव भावावेगो का इतना काव्यात्मक और कल्पनाप्रचुर वर्णन प्रस्तुत करते है कि उन्हे कविता के आदर्श माना जा सकता है। उषा को सबोधित स्तोत्र तो विशेषकर प्रेरणापूर्ण है। समूचे तौर पर वे

तत्वत धार्मिक साहित्य की कृतियां है किंतु लौकिक जीवन और सार प्रपंच म जुड होन क कारण य अवसर गहित साहित्य जैसे लगत है। कई वैदिक ग्रथो का यह लक्षण वैदिक धर्म क सामान्यस्वरूप विशिष्ट स्वरूप का उनक बहुत सी धारणाओ क मानवविध गुण को प्रतिबिंबित करता है। स्वनाम का मनुष्य स बहुत मिलता जुलता माना जाता था और उन्ह सबोधित स्तोत्र म उनक रचयिताओ न अपनी ही अनुभवो और भावनाओं का, अपन सुख-दुख का वर्णन किया है।

वैदिक साहित्य म और ऋग्वेद तक म नाट्य तत्व पाय जात हैं, जिनक साहित्य क उत्तरवर्ती कालो म अधिक पूर्णता क साथ परिष्करण होता है इसका एक अत्यत रोचक उदाहरण ऋग्वेद क तथाकथित "सवाद स्तोत्र है। यह माना जा सकता है कि ये मात्र धार्मिक मत्र नही थ वरन नाट प्रस्तुतियो क लिए रच गये थे। ऋग्वेद की कुछ कथाओ न उत्तरवर्ती का क लेखको को नाटय रचनाओ क लिए सामग्री प्रदान की। उदाहरण क लि महाकवि कालिदास ने अपन नाटक विक्रमोर्वशी का आधार पुरूरवा औ उर्वशी के प्रेम की वैदिक कथा को बनाया है।

वैदिक साहित्य म बहुत से स्तोत्र भली और बुरी शक्तियो, शक्तिशाली देवताओ और दानवो तथा विभिन्न गणो के बीच सघर्ष के बारे मे हैं। दस राजाओ के युद्ध की कथा विशेषकर रोचक है जिसम शक्तिशाली राजा सुदास केवल इद्र की सहायता से परुष्णी नदी की प्रचड धारा को पार करक ही पराजय का मुह देखने से बच पाता है। विद्वानो का ऋग्वेद को वीरकाव्य का, जो महाकाव्ययुगीन साहित्य का प्रमुख लक्षण है, आदिस्रोत मानना उचित ही है। साहित्य के इतिहासकारो क दृष्टिकोण से सहिताओ की तुलना मे ब्राह्मण कम रोचक है, यद्यपि ब्राह्मणो म धार्मिक कर्मकाड की नीरस व्याख्याओ के साथ साथ कथाए भी मिलती है उदाहरण क लिए, महाप्रलय की कथा का भारतीय रूप।

वैदिक साहित्य म वेदाग भी आते है, जो वैज्ञानिक ज्ञान के विकास म एक नयी मजिल के परिचायक है। वेदाग सख्या मे छ है – शिक्षा (उच्चारण विज्ञान), व्याकरण निरुक्त (व्युत्पत्तिविज्ञान) कल्प (अनुष्ठान) छद (काव्यशास्त्र) और ज्योतिष। य सभी वेदाग जो षडाग भी कहलाते हैं बाद मे आनेवाले एक साहित्यिक काल क स्मृति ग्रथो या स्मृतियो के विपरीत श्रुति ग्रथ या श्रुतियो क नाम से जान जाते है।

प्राचीन भारत के सबसे उल्लेखनीय महाकाव्य महाभारत और रामायण है, जिन्हे वही बाद मे जाकर चौथी शती ई० पू० और चौथी शती ई० के बीच लिपिबद्ध किया गया था। तथापि इन काव्यो की मुख्य विषयवस्तु और उनमे शामिल बहुत सी कथाए निस्सदेह ई० पू० प्रथम सहस्राब्द के पूर्वार्ध की ही हैं। महाभारत की मुख्य कथा पाडव तथा कौरव गणो मे सघर्ष की है जिसकी परिणति कुरुक्षेत्र के युद्ध म हुई जो अठारह दिन चला था।

रामायण राजा राम द्वारा अपनी पत्नी सीता का जिसे राक्षस रावण अपहरण करके ले गया था उद्धार करने के लिए लका पर अभियान की कथा का वर्णन करती है। कुछ विद्वानो के मत म महाभारत वास्तविक घटनाओ का चित्रण है जिन्हे ई० पू० दूसरे सहस्राब्द के अत और पहले के प्रारभ मे घटित हुआ माना जाता है। रामायण की कथावस्तु को अक्सर आर्यो तथा दक्षिण भारत के अनार्यो के बीच सघर्ष का वर्णन बताया जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि म इन महाकाव्यो मे वर्णित घटनाए प्रामाणिक हो या न हो, दोनो ही का मूल सदियो लबी लोक परपरा मे है।

कई विद्वानो की दृष्टि म रामायण आर्यो के ठठ लका (वर्तमान श्रीलका) तक प्रसार का साहित्यिक प्रस्तुतीकरण है।

दोनो ही महाकाव्य सचमुच विराट सकलन हैं—महाभारत मे लगभग एक लाख श्लोक है और रामायण म चौबीस हजार।

अपनी मुख्य कथाओ के अलावा इन दोनो ही महाकाव्यो म बेशुमार घटनाओ का समावेश भी किया गया है। महाभारत मे ये कथाए मुख्य ग्रथ का लगभग तीन चौथाई भाग है। इनमे से कुछ घटनाए मिथक है, जिनका कभी कभी तो मुख्य कथा मे तनिक भी सबध नही है, या वे स्वय सपूर्ण कथाए, जैसे नल दमयती की कथा या उपदेश है। किंतु इसके बावजूद महाभारत और रामायण अत्यत सुघटित कृतिया है—वे नाना प्रकार के पाठो से परिपूर्ण पच्चीकारी नही है, बल्कि एकीकृत कृतिया है और उनमे से प्रत्येक रचना की दृष्टि से सपूर्ण है। महाभारत के लेखन का श्रेय परपरा से व्यास को और रामायण का वाल्मीकि को दिया जाता है, किंतु इन कवियो अथवा ऋषियो के बारे मे निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नही है। सभव है कि व्यास और वाल्मीकि जन कवि रहे हो किंतु अन्यो के विपरीत वे इतने प्रसिद्ध थे कि उनके नाम पीढी दर पीढी चले आते रहे है। इस तथ्य ने इन कृतियो की

ानी और भाषा का प्रभावित किया है कि व मन्दिया तक मौखिक रूप म ही प्रसारित हाती रही थी।

ये महाकाव्य उत्तरवर्ती पीढियो क लिए प्राचीन भारत क वास्तविक ज्ञानकोश क समान है। उनम प्राचीन भारतीयो क सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन राजनीतिक सगठन तथा दैनदिन जीवन क विभिन्न पहलुओं क बारे म अत्यत रोचक सामग्री है। यह कहना सभवत सही ही होगा कि लोकप्रियता म इन महाकाव्यों का भारत म कोई सानी नहीं है। प्राचीन काल तथा मध्य युग म य भारत क सीमाओ क बाहर–दक्षिण-पूर्वी एशिया और सुदूर तथा मध्य पूर्व म भी दूर-दूर तक विख्यात थे। महाभारत तथा रामायण क अनेक यूरोपीय भाषाओ म अनुवादो की व्यापक सराहना की गयी थी। बतोवन, हाइन रोदिन बलीन्स्की, गाधी और रवि ठाकुर सहित पश्चिमी तथा पूर्वी सास्कृतिक जगत के अनेक प्रमुख व्यक्तियों न इनसे प्रेरणा प्राप्त की थी। आज भी इनकी गणना भारत की सर्वप्रिय साहित्यिक कृतियो म की जाती है।

विज्ञान के प्रारंभिक अकुर

वैदिक ग्रथो की सामग्री के आधार पर न केवल प्राचीन काल म साहित्य के विकास का ही अनुमान लगाया जा सकता है बल्कि इस मजिल तक प्राप्त वैज्ञानिक ज्ञान के स्तर का जायजा भी लिया जा सकता है, यद्यपि इसके बारे मे उपलब्ध प्रमाण बहुत अपूर्ण ही है।

वैदिक जनो के पूजापाठ मे ज्योतिष के तत्वो की कुछ जानकारी सन्निहित थी। वैदिकयुगीन भारतीय केवल सूर्य तथा चद्रमा से ही परिचित नही थ बल्कि अन्य ग्रहो के–और ग्रहो ही नही पूरे क पूरे तारामडलो के अस्तित्व से भी परिचित थे। उनका पचाग बडा व्यापक और यथातथ्य था। वर्ष बारह महीनो म और हर महीना तीस दिनो मे विभाजित था।

वैदिक ग्रथ उस सुदूर काल म प्राप्त गणितीय ज्ञान को भी प्रतिबिंबित करते है। इनमे शुल्बसूत्र अथवा शुल्ब (रस्सी) के नियम विशेषकर रुचि के है जिनमे माप के नियमो का निरूपण किया गया है। इन ग्रथो म वेदियो को मापने की विधियो, विभिन्न ज्यामितीय आकृतियो की निर्माण विधियो और परिकलन की परिष्कृत प्रणालियो को प्रस्तुत किया गया है।

चिकित्सा उस मजिल मे विकास के अपेक्षाकृत उच्च स्तर पर पहुच चुकी थी। प्राचीन भारतीय बहुत से मानव रोगो और उपचार विधियो (जडी

बूटियो, विशेष मलहमो जलचिकित्सा आदि की सहायता से) से परिचित थे। वैदिक ग्रथो के अनुसार माना जा सकता है कि उस समय पेशेवर चिकित्स को (भिषजो) का भी उदय हो चुका था। अथर्ववेद मे विशेषकर प्रचुर चिकित्सा सबधी सामग्री है और उसमे रोगो को दूर करने के लिए अनेक मत्र भी दिये गये ह। पौराणिक धारणाओ के साथ साथ उसमे खासे बुद्धिसगत विचार भी पाये जात है।

वैदिकयुगीन भारतीय मनुष्य के रोगो को देवताओ के क्रोध अथवा अप्रसन्नता से सबद्ध करते थे और स्वास्थ्यलाभ करने को उनके प्रसाद अथवा प्रसन्नता का सकेत समझा जाता था। दिव्य चिकित्सको – अश्विनीकुमारो – और वरुण तथा सोम को विशष स्तोत्र सबोधित किये गये थे जिह औषधि-पति कहा गया है। उस समय रोगो के उपचार म जादू की भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी किंतु जडी बूटियो के गुण और उनके औषधीय उपयोग की विधियो का ज्ञान प्राप्त हो चुका था। सहिताओ से पता चलता है कि उस समय क चिकित्सक नेत्र, हृदय पेट फेफडो तथा त्वचा के रोगो से परिचित थे। ग्रथों मे शरीर के लगभग तीन सौ भिन्न भिन्न अगो का वर्णन किया गया है।

पुरातत्वज्ञो की खोजो और लिखित स्रोत सामग्रियो से उस काल की भौतिक सस्कृति और वैदिक काल के प्राचीन भारतीयो के दैनदिन जीवन का भी कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

उपनिषद और उनकी शिक्षा

भारतीय परपरा के अनुसार उपनिषदो को वैदिक साहित्य के अतिम ग्रथ माना जाता है। उपनिषदो मे वैदिक कथाओ तथा अनुष्ठानो की विभिन्न धार्मिक तथा दार्शनिक व्याखाए सम्मिलित है। उन्हे वेदात भी कहा जाता था। इस नाम को आगे चलकर एक दार्शनिक पथ ने अगीकार कर लिया था जो किसी भी अन्य पथ की अपेक्षा अधिक यथातथ्यतापूर्वक प्राचीन धामिक तथा दार्शनिक चितन पर आधारित होने का दावा करता था। समय के गुजरने के साथ साथ वैदिक धर्म की व्यादिष्टियो का अधिकाधिक ठोम अर्थो म विस्तरण होता जा रहा था। इसीके साथ साथ समग्र व्यवस्था से कुछ स्वतत्र धाराए अलग उभरकर सामने आ रही थी – इन धाराओ का जिन कृतियो म निरूपण किया गया है, वे बाद म आनेवाले वैज्ञानिक प्रबधों के आद्यप्ररूप बन गयी।

कई बातो के लिहाज स उपनिषद भारतीय संस्कृति म वैदिक काल के चरमोत्कर्ष का और उसकी स्वाभाविक सीमाओं को भी प्रकट करत है उपनिषदो म अपन स पूरी पूर्ववर्ती अवधि म विकसित धारणाओं का समग्रत मौलिक पुनरवलोकन किया गया है। बुनियादी तौर पर पारपरिक आधा से चलकर इन ग्रथो के रचयिता वैदिक विषयवस्तुओं की परिधि स क आगे तक जानवाली समस्याओं का विवचन कर सक है। इस प्ररणापूर्ण उपलब्धि क परिणाम भारत क समस्त उत्तरवर्ती सास्कृतिक विकास म उपनिषदो द्वा निष्पादित द्वैधवृत्तिक भूमिका म दख जा सकत है। बाद म आनवाली पीढ़ि के लिए वे संस्कृति क सबसे पुरातन और इसलिए सम्मान्य क्षत्र को मूर्त कर थ और साथ ही वे धार्मिक तथा दार्शनिक धारणाओ की सर्वथा नयी धार के अतर्भूत अग बन गय जो वैदिक धर्म स बहुत दूर पहुच चुकी थी। इस प्रकार उपनिषद भारतीय इतिहास म इतिहास के दो युगो का जोडनवाले सयोजन सूत्र के परिचायक और व्यापक अर्थो म समस्त सास्कृतिक परपरा के सातत्य के प्रतीक बन गय है। उपनिषद शब्द की व्युत्पत्ति का अभी तक पूर्णत समाधान नही किया जा सका है। सबस विश्वसनीय यही है कि यह शब्द इस इगित करता है कि इनका प्रेषण किस प्रकार किया जाता था। गुरु अपने पैरो क पास बैठे (उप+निषद -- समीप बैठना) शिष्यो के आगे उनका भाष्य करता था और बाद म इन्ह गुह्य ज्ञान ' मान लिया गया। उपनिषदो की सामान्यत स्वीकृत सख्या १०८ है, किंतु इनम से केवल १३ को ही सबस प्राचीन माना जाता है। इनकी रचना सातवी और चौथी शती ई० पू० के बीच हुई थी और ये मुख्य अथवा मूल उपनिषद मान जात है। इनमे स सबस महत्वपूर्ण वृहदारण्यक और छादोग्य उपनिषद है और यही सबसे प्राचीन भी है। इन ग्रथो म प्रस्तोता आम तौर पर कोई सम्मान्य गुरु अथवा ऋषि है (ये गुरु बहुत करके ऐतिहासिक व्यक्ति है)। इन भाष्यो और निरूपणो का मुख्य विषय वेदो का सटीक पठन है -- उनके तात्कालिक अर्थ को यहा पहले से ही सुविदित मान लिया जाता है यहा उसको गुह्यार्थ का अन्योक्तिपरक अथवा सकेतित अर्थ माना जाता है और पूरे के पूरे ग्रथ समूहो मे उसीका निरूपण किया गया है।

सारत उपनिषद एक एकीकृत शिक्षा क ढाचे के भीतर विश्व की व्याख्या करने के प्रथम प्रयास के परिचायक है। इन सारे ही ग्रथो म एक ही सुस्पष्ट विचार दखन म आता है -- उपनिषदो के रचयिता हर बार उसका एक भिन्न प्रकार से निरूपण करते है किंतु उसका सार वही रहता है। उसका सक्षिप्ततम

सूत्रीकरण मात्र छ शब्दो मे होता है – "आत्मा ब्रह्म है ब्रह्म आत्मा है।" इनमे से बहुत से ग्रथो मे इसी उक्ति की व्याख्या की गयी है। चर्चा आम तौर पर इस तरह चलती है – जगत तत्वत अविराम परिवर्तन की अवस्था मे रहता है, यह परिवर्तन अपने को केवल बाह्य पदार्थो के रूपातरण मे ही व्यक्त नही करता, बल्कि आध्यात्मिक जगत को भी समान मात्रा मे ही प्रभावित करता है।

उपनिषद प्राचीन जीववादी विश्वासो से प्रारभ करते ह और तथाकथित कर्म सिद्धात को सूत्रित करते है जो कालातर म केवल सनातनी धार्मिक धाराओ मे ही नही, बल्कि जैन धर्म और बौद्ध धर्म जैसी धार्मिक धाराओ मे भी व्याप्त हो गया। कर्म सिद्धात के अनुसार जगत मे हर चीज का निर्धारण नैतिक विधान से होता है – हर वस्तु म आत्मा है, जो एक शरीर के विनाश (मृत्यु) के उपरात दूसरा शरीर ग्रहण करती है (पुनर्जन्म)। जिस आदमी ने अपने को बुरे कर्मो से पतित कर लिया है, वह जीव या पेड के रूप मे फिर जन्म लेता है, किंतु सदाचरण द्वारा वह फिर मानवरूप मे उत्थान कर सकता है।

प्रत्यक्षत अवगम्य प्रपच के अलावा इस विधान की व्याप्ति मे वैदिक धर्म के दानवो और देवताओ का समूचा ससार आ जाता है (यद्यपि कुछ टेढे मेढे ढग से) – आत्मा उत्थान करके देवयोनि तक प्राप्त कर सकती है और स्वर्ग के सुखो का उपभोग कर सकती है अथवा पतित होकर नर्क तक मे पहुच सकती है, किंतु कोई भी अवस्था अथवा योनि चिरतन नही है (और यही उपनिषद वैदिक परपरा से स्पष्ट विचलन प्रकट करते है) – देवता तक, जिन्ह यज्ञाहुति अर्पित की जाती है, इन योनियो के ही द्योतक हैं, जिनमे अलग-अलग आत्माए वास कर सकती है। यहा कर्म एक ऐसा साधन बनकर सामने आता है कि जो मनुष्य द्वारा अवगम्य समस्त प्रपच को एक विशिष्ट समायोजनकारी सिद्धात की परिधि के भीतर ले आता है।

उपनिषदो मे कर्म सिद्धात जीवन के चिरतन आवागमन – ससार अथवा समृति – की धारणा के अनुरूप है। ये दोनो धारणाए मिलकर भारत की अनेक धामिक तथा दार्शनिक प्रणालियो का अभिन्न अग बन गयी जिनमे आग चलकर कर्म तथा ससार के सिद्धातो का अधिक विम्तारपूर्वक निरूपण किया गया। उपनिषद प्रपच की असीम अनित्यता तथा अत सबध की व्याम्या तक ही सीमित नही रहते – उनके लिए तो यह समस्त विचार विधान उनकी शिक्षा के केंद्रबिंदु की प्रस्तावना मात्र जैसा है और वह है आत्मा का ब्रह्म क

साथ तदात्मीकरण। किंतु यह अस्तित्व के सभी भिन्न भिन्न रूपो मे एक तरह की आद्यान्विति स्थापित करने का प्रयास मात्र नही है। यह एक अत्यंत सुपरिष्कृत आचरण सहिता की आधारशिला है, जिसके स्वरूप तथा लक्ष्य की धार्मिक अभिलक्षणा निर्विवाद है।

यह स्पष्ट है कि उपनिषद कई जगहो पर वैदिक शिक्षा से जो सुस्पष्ट अतर प्रकट करते हैं, उसका कारण यही है कि उनके रचयिताओ के लिए उसमे पर्याप्त धर्मवैचारिक गहनता नही थी। उनमे अनेक पारपरिक सिद्धातो को नयी रोशनी मे देखा गया है और नयी व्याख्याए की गयी हैं। वैदिकयुगीन लोगो के लिए उनके अत्यत ऐहिक गुणो से विभूषित पारपरिक देवता उपास्य थ, क्योकि उनके यज्ञो के पुरस्कारस्वरूप व उन्हे वर देते थे। उपनिषदो की शिक्षा बिलकुल दूसरी ही तरह की है। उनमे देश-काल की सीमाओ से बद्ध न कोई अलग देवता है और न अलग व्यक्ति। मनुष्य अन्य सभी प्राणियो जैसा ही है, क्योकि वह अस्तित्व के अनत चक्र का अग है, जिसकी अविनाश्य अखडता प्रत्येक परमाणु मे लक्षित होती है। आवागमन चक्र शाश्वत है और ब्रह्माड मे सभी सजीव वस्तुए उसके अधीन है। इन "परमाणुओ" म केवल मनुष्य म ही इस प्रक्रिया के सारतत्व को समझ सकने और बाद म जीवन के सभी बधनो से आतरिक मुक्ति – मोक्ष – तक प्राप्त कर लेने की क्षमता है। किंतु इस सबके बावजूद मृत्योपरात मनुष्य को फिर पार्थिव रूप ग्रहण करना पडता है और वह जन्मातर की अतहीन शृखला मे अपना स्थान फिर ले लेता है।

उपनिषदो का आदर्श ससार से विमुख, उसके मामलो स उदासीन, सासारिक उथलपुथल और भावविराग से धर्म तक से निरपेक्ष सन्यासी है। इसका ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद कि वह अपने आसपास की हर चीज का अग है और स्वय ब्रह्म का समसम बन जाने के बाद भला वह और क्या आकाक्षा कर सकता है? वह पचभूत और देवताओ से भी ऊपर उठ जाता है और ससार के चिरन्तन औपनिषदिक प्रतीक ब्रह्म के समान ही शाश्वत और अनश्वर हो जाता है।

उपनिषदो की सर्वथा परिकल्पनात्मक दार्शनिक प्रणाली मे जो वास्तविक जीवन स कटी हुई है यही तथा अन्य अवधारणाए और विचार है। लेकिन इसके बावजूद उपनिषदो मे केवल अध्यात्मवादी धारणाए और विचार ही नही वरन भौतिकवादी धारणाए और विचार भी पाये जाते है। इसके अलावा इन ग्रथो म इन दोनो धाराओ का केवल जटिल सहअस्तित्व ही नहीं वरन

उनके बीच प्रतिद्वद्विता को भी स्पष्टत देखा जा सकता है, जो पूर्ववर्ती ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रथो म अभी तक सतह के नीचे ही थी। उपनिषदो मे तीन महर्षियो – शाडिल्य, याज्ञवल्क्य और उद्दालक – को सबसे अधिक सम्मान्य माना गया है। इनमे से पहले दोनो को मूल अध्यात्मवादी अवधारणा – आत्मा तथा ब्रह्म के तादात्म्य – के पक्षधर बतलाया गया है (यह अकारण ही नही है कि सनातनी परपरा उनके सिद्धातो का बारबार उल्लेख करती है), जब कि उद्दालक ने यथार्थवादी विचारो को व्यक्त किया जो एक प्रकार के स्वत स्फूर्त भौतिकवाद के बहुत निकट है। उद्दालक वेदो की विश्वोत्पत्ति विषयक ऋचाओ का बिलकुल अपने ही ढग से निर्भीकतापूर्वक निर्वचन करता है और विश्व की सृष्टि मे देवताओ की किसी भी विशेष भूमिका को अस्वीकार करता है। उद्दालक प्रकृति को मुख्य सृजन शक्ति से विभूषित करता है – उसके मतानुसार ससार म जो कुछ भी ह (और इसका मतलब चेतना सहित भौतिक तथा मानसिक – दोनो ही – प्रक्रियाए है), वह भौतिक तत्वो की उपज है। आत्मा की अवधारणा तक का दूसरी ही रोशनी मे निर्वचन किया गया है – आत्मा को मनुष्य के आद्य भौतिक तत्व की तरह प्रस्तुत किया गया है।

यह स्वाभाविक ही है कि प्राचीन भारतीयो के प्राकृतिक-वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार तथा सामाजिक जीवन म जबरदस्त परिवर्तन के परिणामस्वरूप इस प्रकार के विचार पैदा हुए।

कुल मिलाकर उपनिषदो की अवधारणाओ ने सारे भारत के उत्तरवर्ती सास्कृतिक विकास पर बहुत भारी प्रभाव डाला।

उपनिषदो का कर्म सिद्धात भारतीय धर्मो का एक बुनियादी सिद्धात बन गया। उसने निश्चित सामाजिक परिणाम भी पैदा किये, क्योकि वह इस मूलभूत समस्या का अपने ही ढग से समाधान प्रस्तुत करता था कि मनुष्य की विपत्तियो और कष्टो का कारण क्या है। मनुष्य के कार्यो का निर्णेता कोई देवता नही, बल्कि मनुष्य स्वय था और मानविक कष्टो को चिरतन नही माना जाता था। उपनिषदो मे प्रतिपादित कुछ सिद्धातो का आगे चलकर बौद्ध तथा जैन धर्मो की शिक्षाओ मे उपयोग किया गया (इसके बारे मे बाद मे यथाप्रसग बताया गया है)। कालातर मे भौतिकवादी सप्रदाय – लोकायत – ने उपनिषदो की समग्र शिक्षा मे "भौतिकवादी धारा" को अपना अवलब बनाया। उपनिषदो के कई विचारो ने मध्ययुगीन दार्शनिको तथा लेखको पर और आधुनिक तथा समकालीन इतिहास मे सिर्फ भारत के भीतर ही नही, बल्कि उसकी सीमाओ के बाहर भी दूर दूर तक सास्कृतिक विकास पर जबरदस्त प्रभाव डाला।

ह जिनम बौद्ध धामिक मिद्धातो और आचार-विचार नियमो के प्रतिपादन क साथ-माय प्राचीन भारत मे राजनीतिक मामाजिक तथा साम्कृतिक जीवन के बारे मे महत्वपूर्ण सामग्री भी है। अशोक के कुछ शिलालेखो मे पिटको के अनेक सुत्तो का उल्लेख है, जिमसे यह पता चलता है कि ये ग्रथ उस समय मौजूद थे। पुरातात्विक खोजो स भी इस काल के बारे मे रोचक सामग्री प्रका। मे आयी है।

राजनीतिक विकास के नये चरण

मगध का अभ्युदय

उत्तरी भारत का ई० पू० छठी पाचवी और चौथी शताब्दियो का राजनीतिक इनिहास सजीव घटनाओ से परिपूर्ण है। यह देश मे पहले वडे राज्यो के उदय, उनके वल पकडन और फिर प्रमुखता प्राप्त करन के लिए आपस मे सघर्ष का जमाना है।

लिखित स्रोत मामग्री से हमे इस काल म विभिन्न राज्यो के बीच अनेक युद्धो, वशगत कलहो और राजतत्रीय गज्यो के गणराज्य मघो के साथ सग्रामो और सघर्षो की जानकारी प्राप्त होती है।

प्रारभिक बौद्ध साहित्य के आधार पर कहा जा सकता है कि ई० पू० छठी शताब्दी के मध्य मे उत्तरी भारत मे सोलह महाजनपद विद्यमान थे। किंतु यह उत्तरी भारत क मारे ही राज्यो की सूची नही है और वास्तव मे उनकी सम्या इससे कही अधिक थी। सोलह की सख्या मे उनमे से सबसे वडे और सबसे शक्तिशाली राज्यो की गणना ही की जाती होगी।

यह उल्लेखनीय है कि भारतीय परपरा के अनुसार इन सोलह महाजनपदो मे स चौदह को मध्यदेश मे ही वताया जाता है। इससे ई० पू० छठी और पाचवी सदियो मे भारत के राजनीतिक भूगोल मे गगा घाटी के राज्यो की अत्यत महत्वपूण भूमिका स्पप्ट हो जाती है। इससे यह भी पता चलता है कि भारत के इस भाग मे राज्यत्व का विकास अधिक तेजी के साथ हुआ था।

इस काल मे उत्तरी भारत के राजनीतिक रगस्थल मे सबसे प्रमुख शक्ति, उत्तरी भारत के राज्यो को एकीकृत करने का केद्र मगध था। इस नाम का सवप्रथम उल्लेख अथववद मे आता है और बाद

मे यह अत्यत विविध प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक स्रोतो मे भी प्रकट होता है।

प्राचीन मगध (वर्तमान दक्षिणी बिहार के प्रदेश पर अवस्थित) अत्यधिक अनुकूल भौगोलिक स्थल पर स्थित था, जिससे उसे जबरदस्त सामरिक तथा वाणिज्यिक क्षमता प्राप्त हो गयी थी। लिखित स्रोतो मे मगध की उर्वर भूमि के उल्लेख आते है जिस पर बडी मेहनत के साथ खेती की जाती थी। मगध का भारत के कई भागो के साथ खूब व्यापार चलता था और वह धातुओ सहित अनेक खनिजो से परिपूर्ण था। मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह (इसका पाली नाम राजगह था और अब यह राजगिर के नाम से विज्ञात है) थी।

मगध के राजवशीय इतिहास के बारे मे अधिक जानकारी नही है। हर्यक वश के सस्थापक बिबिसार (५४५/५४४–४९३ ई० पू०) के बारे म कुछ ऐतिहासिक उल्लेख मिलते है जिसने बौद्ध ग्रथो के अनुसार निकटवर्ती अग राज्य को वशीभूत किया था। इससे मगध की स्थिति और भी मजबूत हो गयी और उसकी प्रसारवादी नीतियो की नीव पड गयी। ऐतिहासिक स्रोतो म मगध तथा पश्चिमी और उत्तरी भारत के राज्यो के बीच सबधो के भी उल्लेख मिलत है।

बिबिसार न अपन राज्य क आतरिक सुदृढीकरण की ओर काफी ध्यान दिया और अपने अधिकारियो की गतिविधियो पर कठोर नियत्रण लगाया। बिबिसार के पुत्र अजातशत्रु (४९३–४६१ ई० पू०) के राज्यकाल मे गगा घाटी के सबसे शक्तिशाली राज्यो मे से एक – कोसल – के राजा प्रसेनजित (पाली नाम – पसेनदी) के साथ भयकर लडाइया हुई। इस दीर्घकालिक प्रतिद्वद्विता का अत मगध की विजय के साथ हुआ।

मगध का लिच्छवि गणसघ के साथ सघर्ष भी अत्यत दुर्धर्ष था। लिच्छवि मगध के उत्तर म रहते थे। इस सघर्ष का कारण लिच्छवियो द्वारा गगा के एक बदरगाह का जीता जाना था, जिसे मगध भी हथियाना चाहता था। लिच्छवियो के आक्रमण की प्रत्याशा मे अजातशत्रु न पाटलिग्राम नाम के विशेष दुर्ग का निर्माण करवाया। उसने कूटनीति का भी सहारा लिया और अपन एक अधिकारी को लिच्छवियो की राजधानी वैशाली भेजा जो वहा शत्रु शिविर म फूट पैदा करने मे सफल हो गया। अनेक स्रोतो के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि मगध और लिच्छवियो के बीच युद्ध सोलह साल चला था और उसम अत म मगध ने ही विजय प्राप्त की।

जैन ग्रथो के अनुसार अजातशत्रु ने इस युद्ध म अस्त्र अवक्षेपक

का उपयोग किया था और उन्हीकी बदौलत सफलता प्राप्त की थी।

मगध का एक और प्रमुख प्रतिद्वद्वी पश्चिमी भारत का शक्तिशाली अवती (अवति) राज्य था।

मगध के मुख्य प्रतिद्वद्वियो का सघर्ष केवल राजनीतिक ही नही, आर्थिक प्रामुख्य के लिए भी सघर्ष था। इसी कारण गगा प्रणाली के नियत्रण को सदा ही बहुत महत्व दिया जाता था, जो एक बहुत महत्वपूर्ण व्यापार मार्ग था।

मगध के प्रभुत्व का सुदढीकरण करने के लिए अजातशत्रु का उत्तराधिकारी उदय अथवा उदायी (४६१–४४५ ई० पू०) राजधानी को राजगृह से पाटलिपुत्र ले गया, जो प्राचीन भारत का एक प्रमुख नगर बन गया। अवति की शक्ति को बाद मे राजा शिशुनाग के राज्यकाल मे ध्वस्त किया गया, जो एक अन्य राजवश – शैशुनाग वश – का था। शैशुनाग वश का स्थान नद वश ने लिया, जिसके अधीन एक विशाल साम्राज्य की स्थापना हुई। लेकिन राजवशो के कालानुक्रम की जानकारी अपूर्ण ही है और विद्वानो द्वारा स्वीकृत तिथिया सूचक मात्र हैं। इस काल के अध्येता अधिकाशत उत्तरवर्ती सिहली इतिवृत्तो (चौथी-पाचवी शती ई० का दीपवश और छठी शती ई० का महावश) मे प्राप्य सामग्री पर और प्रारभिक मध्य युग मे रचित पुराणो मे प्राप्य सामग्री पर भी निर्भर करते है। इन तिथियो को सर्वाधिक स्वीकार्य माना जाता है – बिबिसार द्वारा स्थापित हर्यक वश (५४५–५४४ ई० पू०), शैशुनाग वश (४१३–३४५ ई० पू०) और नद वश (३४५–३१७ ई० पू०)।

अखमनी साम्राज्य और सिकदर का हमला

उत्तर-पश्चिमी भारत मे व्याप्त स्थिति बिलकुल भिन्न थी। गगा घाटी के विपरीत यहा कोई ऐसा बडा राज्य न था कि जो आसपास के गणो और लोगो को ऐक्यबद्ध कर सकता। इस इलाके मे विभिन्न जातीय मूलो के अनेक कबीलो का आवास था जो अलग अलग भाषाए बोलते थे और जिनकी अलग अलग सस्कृतिया थी। यहा के सबसे शक्तिशाली राज्य कबोज और गाधार अथवा गधार थे, जिनकी गणना सोलह महाजनपदो मे की जाती थी।

छठी शताब्दी ई० पू० मे उत्तर पश्चिमी भारत के कुछ प्रदेश अखमनी साम्राज्य के अग थे।

प्रसिद्ध अखमनी सम्राट दारा (५२२–४८६ ई० पू०), जो दारयवहु अथवा डेरियस के नाम भी जाना जाता है के शिलालेखो मे गाधार तथा

सिधु पार प्रदेशो की उसके प्राता मे गणना की गयी है। इनमे प्रत्यक्षत सिधु नदी के मध्यवर्ती तथा निम्नवर्ती प्रदेशो के हिस्से शामिल थ, लेकिन उनमें निकटवर्ती इलाको का शामिल होना भी सभव है। इस प्रसग मे यूनानी इतिहासकार हिरोदतस का दारा क आदेश स "सिधु के समुद्र म गिरने के स्थन" का निर्धारण करने के लिए भेज गये कर्यादावासी स्कीलाक क अभियान का वर्णन रोचक है। यह अभियान सामरिक तथा वैज्ञानिक, दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण था। इसके परिणामस्वरूप पारसीको के लिए भारतीय प्रदेशो क निवासियो उनके रीति-रिवाज और प्रथाओं को ज्यादा अच्छी तरह से जान पाना सभव हो गया।

उत्तर पश्चिमी भारत का एक छोटा सा भाग ही अखमनी साम्राज्य में सम्मिलित किया गया था लेकिन फिर भी इन इलाको पर और देश के कुछ अन्य भागो पर भी किसी हद तक अखमनी फारस का सास्कृतिक तथा राजनीतिक प्रभाव पडा।

अपने पश्चिमी प्रदेशो के जरिये भारत निकट पूर्व तथा मध्य एशिया के राज्यो के सपर्क मे आया जिनके कुछ भागो को भी अखमनी साम्राज्य में मिला लिया गया था। अखमनी साम्राज्य के अभिलेखो की राजभाषा अरमाइक थी, जो ससार के इस भाग मे बाद मे भी प्रयुक्त होती रही।

जहा भारत के उन भागो के बारे मे तो पश्चिम मे काफी जानकारी थी कि जो अखमनी साम्राज्य का अग थे वहा उस काल के लेखको को पूर्वी भारत के बारे मे और गगा की घाटी मे घट रही राजनीतिक घटनाओ के बारे म लगभग कुछ भी नही मालूम था। हिरोदतस के अनुसार देश का यह भाग बजर रेगिस्तान ही था। भारत के—और यह बात देश के पूर्वी प्रदेशो पर भी लागू होती है—पश्चिमी राज्यो के साथ सबधो म सिकन्दर महान के अभियान के बाद बहुत परिवर्तन आया।

सिकदर ने भारतीय प्रदेश मे जब प्रवेश किया, तो वह जबरदस्त सैनिक विजय प्राप्त करके अपनी कीर्ति के शिखर पर पहुच चुका था। उसकी विशाल और सुसज्जित सेना की और भी सफलताए सुनिश्चित प्रतीत होती थी। इसके अलावा उत्तर पश्चिमी भारत उस समय गणो के परस्पर विरोधी सहबधो म बटा हुआ था और छोटे छोटे राज्यो के सहबधो के शासको मे किसी भी तरह की एकता नही थी। इस इलाके के कुछ छोटे राजाओ (जैसे तक्षशिला के राजा) ने सिकदर स मैत्री स्थापित कर ली। इसके बदले म सिकदर ने उन्हे किसी हद तक स्वायत्तता का आश्वासन दिया और उन्हे अपने भूतपूर्व

प्रदेशो का स्वामी बने रहने दिया। लेकिन भारतीय अभियान के आरभ से ही सिक्दर को कई गणो के भयकर प्रतिरोध का सामना करना पडा। इस अभियान के इतिवृत्तकार जो सिक्दर के कारनामो और सफलताओ का यशोगान ही करने का प्रयत्न करते थे, भारतीयो द्वारा प्रदर्शित अद्भुत अविचलता उनकी वीरता और अतिम दम तक लडने की अदम्य अभिलाषा का उल्लेख किये बिना नही रह सके। कितने ही गणो ने यूनानियो और मक्दूनियो से किसी भी प्रकार की वार्ता करने से साफ इन्कार कर दिया और इस असमान सघर्ष मे कूद पडे — यही नही, कई बार तो उन्होंने विजये भी प्राप्त की।

उत्तर पश्चिमी भारत मे सबसे शक्तिशाली भारतीय शासक पुरु (पोरस) था, जो उन लोगो मे था, जिन्होंने सिकदर का युद्ध के मैदान मे सामना करने का निश्चय किया था। यह युद्ध जो कई दिन चला, हीदसपीज (झेलम नदी) के तट पर हुआ था। इस युद्ध के पैमाने का अर्रिअन द्वारा लिखित ऐनाबेसिस' (अभियान) — सिक्दर के अभियान का इतिहास — मे दिये आक्डो से अनुमान लगाया जा सकता है। अर्रिअन बताता है कि अतिम निर्णायक लडाई मे तीस हजार पैदलो और चार हजार अश्वारोहियो ने भाग लिया था, उसमे तीन सौ रथो और दो सौ हाथियो का प्रयोग किया गया था। एक बडी चालाकीभरी युक्ति को अपनाकर ही सिक्दर पुरु के व्यूह को भग कर पाया था। उसके हलके हथियारो से लैस रिसाले ने सुशस्त्रसज्जित, किंतु मथरगति भारतीय सेना मे खलबली मचा दी। सिकदर इस लडाई मे विजयी हुआ, लेकिन अपने गभीर घावो के बावजूद पुरु अत तक लडता रहा। भारतीय राजा के साहस ने सिक्दर के दिल को जीत लिया उसने पुरु को जिदा ही नही रहने दिया, बल्कि उसका राज्य भी उसीके पास रहने दिया।

इसके बाद सिक्दर की सेना और पूर्व की तरफ बढती हुई हीद्रओत (रावी) के तट तक पहुच गयी। सिक्दर ने अपनी सेनाओ को हिफासिस (आधुनिक व्यास) को पार करने के लिए एकत्र करना शुरू किया। फिर भी उसने पहले हिफासिस के उस पार के इलाके के बारे मे, उसके शासक और उसकी सेना के बारे मे यथासभव सभी कुछ जान लेने का निश्चय किया। स्थानीय छोटे छोटे राजाओ ने सिकदर को उस देश की सपदा के बारे मे और अग्रामीस (स्पष्टत यह भारतीय नाम का यूनानी रूप है) नामक भारतीय शासक की शक्तिशाली सेना के बारे मे बताया। इस समय तक स्वय सिक्दर क सैनिको मे व्याप्त असतोष खुलकर सामने आने लगा था,

कि इस वश ने सभी क्षत्रियो का सफाया कर दिया था और पहला नद राजा अज्ञात कुल का और शूद्र माता का बेटा था। यही कारण है कि ब्राह्मण स्रोतो और पुराणो मे नदवशी 'नीच वृत्ति और नीच कुल' के बताये गये है। प्राचीन यूनानी लेखको की कृतियो मे भी यही वर्णन पाया जाता है जिससे यह प्रतीत होता है कि वे भारतीय परपरा से परिचित थे। कुछ तथ्यो के आधार पर हम अनुमान कर सकते है कि वे प्रथम मौर्य राजा चद्रगुप्त और उसके मत्री चाणक्य (कौटिल्य का दूसरा नाम) के बारे मे प्रचलित जनश्रुतियो से भी परिचित थे। इन जनश्रुतियो मे मौर्यो के पूर्ववर्तियो – नदवशी राजाओ – का भी जिक्र किया जाता है।

नद राजाओ की विशाल सेनाओ के बारे मे स्थानीय और प्राचीन यूनानी वर्णनो मे समानता है। दिओदोरस और क्वितस कुर्तिअस रूफस अग्रामीस के अधीन नद सेना के बारे मे ये आकडे देते है – २०० ००० पैदल २०,००० अश्वारोही २ ००० रथ और तीन चार हजार हाथी। कुछ प्राचीन भारतीय और सिहली स्रोतो मे पहले नद राजा का नाम उग्रसेन बताया गया है।

परपरा के अनुसार नदवशी राजाओ को सपत्ति सचित करने का भी अतिलोभ था। सिहली ग्रथो से पता चलता है कि नद राजाओ ने चमडा, लकडी और रत्नो सहित सभी प्रकार की सपदाओ पर कर लगा रखे थे।

नद शासक अपनी विशाल सेना और कर सग्रहण की सुव्यवस्थित प्रणाली का लाभ उठाते हुए विदेश नीति के क्षेत्र मे भी अत्यत सक्रिय नीति का अनुगमन करते थे। उन्होने कुछ स्थानीय राजवशो की सत्ता तथा स्वतत्रता को ध्वस्त कर दिया और दक्न मे और भी दूर तक प्रवेश करने मे सफल हो गये। पुरालेखीय सामग्री से यह स्पष्ट हो जाता है कि कलिग (वर्तमान ओडिसा) राज्य अथवा उसका कुछ हिस्सा नद साम्राज्य का अग था।

नद शासको के इन प्रयासो से निर्मित साम्राज्य ने अपने बाद आनेवाले मौर्य राजवश के अधीन सयुक्त भारतीय राज्य को सगठित करने की नीव तैयार की।

मौर्य साम्राज्य का उदय। चद्रगुप्त और बिदुसार

मौर्य वश का प्रथम शासक चद्रगुप्त था। कितु इस पद पर पहुचने के पहले उसे नदो के और सिकदर द्वारा भारत मे छोडी यूनानी सेनाओ के विरुद्ध

भी भीपण सघर्ष करना पडा था। भारतीय तथा प्राचीन यूनानी स्रोतो म चद्रगुप्त द्वारा सत्ता प्राप्त करन के लिए चलाये गय सघर्ष के विभिन्न चरणो क बार म बहुत से रोचक उल्लेख पाये जाते हैं, यद्यपि इस सघर्ष म विभिन्न प्रकरणो का कालानुक्रम अब भी इतिहासकारो मे प्रचड विवाद का विषय बना हुआ है।

मौर्यो के मूल के बार म विभिन्न मत है। कुछ उन्ह नदवशियो स सबद्ध करत है और यह मानते है कि चद्रगुप्त नद सम्राट के बेटो मे एक था। तथापि अधिकाश स्रोतो (बौद्ध तथा जैन) मे मौर्यो को मगध के एक क्षत्रिय कुल का बताया जाता है।

बौद्ध तथा जैन परपरा मे हमे चद्रगुप्त के यौवन काल और तक्षशिला म अध्ययन करन क बारे मे पता चलता है जहा – यह माना जाता है – वह अपने गुरु और भावी परामर्शदाता कौटिल्य (अथवा चाणक्य) के सपर्क म आया। यह कहना कठिन है कि इन तथ्यो पर कितना निर्भर किया जा सकता है। परपरा के अनुसार चद्रगुप्त ने चाणक्य के साथ तक्षशिला म मगध का सिहासन हस्तगत करने की योजना बनायी। यह रोचक बात है कि युवा चद्रगुप्त और नदो मे सघर्ष का रोमन लेखक जस्टीनस (दूसरी सदी ई०) न भी वर्णन किया है, जिसने सम्राट आगस्टस के युग के लेखक ग्नीअस पाम्पिअस त्रोगस की कृतियो मे प्राप्य सामग्री का उपयोग किया था और अपनी बारी मे उसने स्वय सभवत चद्रगुप्त के बारे मे प्रचलित जनश्रुतियो का सहारा लिया था।

सिहली इतिवृत्तो से पता चलता है कि चाणक्य ने चद्रगुप्त के साथ सैन्यबल को जुटाना शुरू किया – जगह जगह सैनिक भरती किये गय और जल्दी ही चद्रगुप्त के अधीन एक विशाल सेना अस्तित्व मे आ गयी।

यूनानी लेखक प्लूतार्ख (४६–१२० ई०) तो युवा चद्रगुप्त और सिकदर मे भेट तक का उल्लेख करता है। यह भेट – अगर वह वस्तुत हुई भी हो, तो – चद्रगुप्त और नद राजा क बीच पहली टक्कर होने क बाद ही हुई होगी। प्लूतार्ख के अनुसार चद्रगुप्त की निगाह मे नद राजा अग्रामीस बहुत घटिया आदमी था और वह सिकदर का समर्थन करने को तैयार था। उसने सिकदर से अपनी सेना को पूर्व की तरफ नद राजा के विरुद्ध ले जाने का आग्रह किया, जिससे सभी लोग नफरत करते थे। लेकिन जैसा कि हम जानते ही हैं सिकदर भारत म और अधिक आगे नही गया और उसे पश्चिम लौटकर जाना पडा, जहा से वह स्वय आया था।

बौद्ध तथा जैन परपरा के अनुसार नद वश का तख्ता उलटने का चद्रगुप्त का पहला प्रयास असफल रहा था क्योकि उसने अपने चदावल को पुख्ता नही किया था। उस समय चद्रगुप्त के लिए यूनानियो और मकदूनियो की शक्तिशाली सेना से भी टक्कर लेना स्वाभाविक तौर पर असभव था। सिकदर की मुख्य सेनाओ क भारत मे चले जाने के बाद परिस्थितिया उसके अनुकूल हो गयी।

सिकदर ने अपन विजित प्रदेशो को क्षत्रपियो मे विभाजित कर दिया था और कुछ भाग को भारतीय शासको को भी मौप दिया था। थोडे ही समय बाद मकदूनी शासन के खिलाफ बगावते फूट पडी और क्षत्रपो मे आपस मे सत्ता मघर्ष शुरु हो गया, जो ३२३ ई० पू० मे सिकदर की मृत्यु के बाद विशेषकर प्रखर हो गया। चद्रगुप्त जो उस समय पजाब मे था अब स्पष्टत शेष मकदूनी फौजो के खिलाफ सघर्ष शुरु करने को तैयार था, जो अब अपनी पुरानी शक्ति की छाया मात्र रह गयी थी। जब अतिम क्षत्रप यूदीमोस को ३१७ ई० पू० मे भारत से जाना पडा तो चद्रगुप्त पजाब का वास्तविक शासक बन गया। उसी समय उसका एक मुख्य प्रतिद्वद्वी–शक्तिशाली राजा पुरु–मारा गया, जिसका सिकदर द्वारा दिये विस्तृत प्रदेशा पर शासन था। अब सारा ध्यान मगध के मिहासन को हस्तगत करने के सर्वमहत्वपूर्ण प्रश्न पर केद्रित हो गया और चद्रगुप्त ने उत्तर-पश्चिमी भारत के कई गणसघो के समर्थन को सुनिश्चित करने के बाद अपनी सेना को लेकर नदो के खिलाफ प्रयाण कर दिया।

इम प्रकार यूनानी मकदूनी सनाओ के विरुद्ध युद्ध को चद्रगुप्त के सत्ता के लिए, मगध के सिहासन के लिए सघर्ष का एक चरण माना जा सकता है। भारतीय प्रदेशो को विदेशी सेनाओं से मुक्त करना एक महत्वपूर्ण कदम था, लेकिन प्राचीन यूनानी और रोमन लेखक तक कहते है कि अपनी विजय के बाद चद्रगुप्त मुक्तिदाता नाम का पात्र नही रहा और उसने भारत को एक दास शिविर मे परिणत कर दिया–सत्ता हस्तगत करने के बाद उसने अपनी प्रजा को उत्पीडन का शिकार बनाया, उसी प्रजा को कि जिसे उसने विदेशी पराधीनता से मुक्ति दिलवायी थी (जूनिआनस जस्टीनस द्वारा उद्धृत ग्नीअस पोपिअस त्रोगस)।

नदो के विरुद्ध सघर्ष अत्यधिक कठिन था। नद राजाओ के पास विराट सेना थी और बौद्ध ग्रथ 'मिलिदपन्हो' (मिलिद-प्रश्न) के अनुसार निर्णायक लडाई मे दस लाख पैदल, दस हजार हाथी, एक लाख घोडे और पाच हजार

रथी मार गये थे (निस्सदेह ये आकडे अत्यधिक अतिशयोक्तिपूर्ण है, किंतु यह प्रत्यक्ष है कि वे एक अत्यत भयकर, रक्तमय युद्ध की परपरा म सरक्षित कथा को ही प्रकट करते है)।

चद्रगुप्त का राज्याभिषेक ३१७ ई० पू० मे हुआ। यह तिथि भारतीय (वौद्ध तथा जैन) और यूनानी ऐतिहासिक स्रोतो से मेल खाती है, यद्यपि कई इतिहासकार मौर्य राजवश के प्रारभ को बाद के समय का मानते हैं।

प्राचीन यूनानी स्रोतो से हमे चद्रगुप्त और सिकदर के एक सेनानायक तथा बाद मे शाम के राजा सेल्यूकस नीकातोर मे लडाई के और उनमे हुई सधि के बारे मे पता चलता है। इन स्रोतो मे लडाई के छिडने के कारणो पर कोई प्रकाश नही डाला गया है। हम केवल यह अनुमान लगा सकते हैं कि नवप्राप्त सत्ता को सुदृढ करने के बाद चद्रगुप्त ने सिकदर के उत्तराधिकारियो – दिआदोखी (सिकदर की मृत्यु के बाद साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशो के सम्राट बन जानेवाले सेनानायक) – के बीच चल रहे सर्वोच्चता के सघर्ष का अपन हितो मे उपयोग करते हुए सेल्यूकस पर हमला किया होगा। वह उन प्रदेशो को फिर से हासिल करना चाहता था, जिन्हे सिकदर न जीत लिया था और जो उसकी मृत्यु के बाद सेल्यूकस के हाथो मे आ गये थे। लडाई के बाद सपन्न सधि के अनुसार चद्रगुप्त ने सेल्यूकस को ५०० हाथी दिय, जब कि मौर्यो को पारोपमीसस, आर्कोसिया और गेद्रोसिया के इलाके प्राप्त हुए।

सेल्यूकस ने अपने राजदूत मेगस्थनीज़ को चद्रगुप्त के दरबार मे भेजा। मेगस्थनीज़ ने अपने प्रवास का 'इडिका नामक विशेष कृति मे वणन किया है, जिसके अब केवल कुछ अश ही बाकी है।

चद्रगुप्त क बाद जिसने २४ साल शासन किया (सभवत ३१७ से २९३ ई० पू० तक), मगध का सिहासन उसके पुत्र बिंदुसार को प्राप्त हुआ, जिसे यूनानी अमित्रोखतीम (सस्कृत के अमित्रघातक से) के नाम से जानते हैं। ऐसा लगता है कि यह उपाधि देश मे उस समय व्याप्त सगीन परिस्थिति को प्रतिबिंबित करती थी। साम्राज्य क कई इलाको म विद्रोहो का सिलसिला चलता रहा और कुछ प्रमाणो से यह भी प्रतीत होता है कि बिंदुसार के शासनकाल मे दक्षिण मे कुछ प्रदेशो को जीता गया था, यद्यपि इस काल से सबद्ध कोई पुरालेखीय खोजे नही की गयी हैं।

अपने पिता की ही भाति बिंदुसार ने भी यूनानाधीन मिस्र तथा सेल्यूकसी साम्राज्य क साथ घनिष्ठ राजनयिक सबधो को बनाये रखा। स्त्राबो लिखता

है कि सेल्यूकसी साम्राज्य से देइमाखोस नामक राजदूत पाटलिपुत्र भेजा गया था। अथेनेइओस ने सेल्यूकसवंशी सम्राट अंतिओकस तथा भारतीय सम्राट बिंदुसार के बीच संदेशों के आदान प्रदान के बारे में रोचक तथ्यों का वर्णन किया है। भारतीय शासक ने अंतीओकस से मीठी शराब, सुखाये हुए अंजीर और एक सोफिस्ट (तर्कवादी) दार्शनिक भेजने का अनुरोध किया था। बिंदुसार को केवल शराब और अंजीर पाने का आश्वासन ही मिल पाया, क्योंकि अंतीओकस ने कहा कि दार्शनिकों को बेचने की वह क्षमता नहीं रखता।

यदि पुराणों पर विश्वास किया जाय तो बिंदुसार ने २५ वर्ष (२९३-२६८ ई० पू०) राज्य किया। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में सिंहासन के लिए लंबा और भयंकर संघर्ष चला। अंत में पाटलिपुत्र के राज सिंहासन पर अशोक आसीन हुआ।

अशोक के अधीन मौर्य साम्राज्य

पियदसी अशोक

अशोक के राज्यकाल में मौर्य राज्य अपनी शक्ति के शिखर पर पहुंच गया। साम्राज्य के प्रदेश का और विस्तार किया गया और वह प्राचीन पूर्व के विशालतम साम्राज्यों में एक हो गया। उसकी ख्याति भारत के सीमांतों के बाहर दूर दूर तक फैल गयी। अशोक और उसके कार्यकलाप के बारे में अनेक जनश्रुतियां पैदा हो गयीं जिनमें बौद्ध धर्म के प्रचार के संदर्भ में उसके कार्यों पर जोर दिया गया था। ये बौद्ध कथाएं एशिया के कई देशों में भी खूब फैल गयीं।

अशोक द्वारा प्रसारित अनेक राजादेश (मुख्यत विभिन्न शिलालेखों के रूप में) इस काल के इतिहास के बारे में साम्राज्य का प्रशासन जिस प्रकार किया जाता था और मौर्यों की नीतियों के बारे में महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करते हैं। राजादेशों में मौर्य सम्राट को देवनामपिय पियदसी – देवना प्रिय प्रियदर्शी – कहा गया है। सिर्फ दो राजादेशों में ही उसे अशोक कहा गया है। बाद के कुछ स्रोतों से पता चला है पियदसी अथवा प्रियदर्शी बिंदुसार के पुत्र का सिंहासन को हस्तगत करने के पहले वास्तविक नाम था। बाद में, राजा बनने के उपरांत वह अशोक के नाम से भी विज्ञात हुआ।

कदहार म मिले उसके राजादेशो के यूनानी भाषातरो मे मौर्य सम्राट को पियदसी कहा गया है। सिहली इतिवृत्तो म बताया गया है कि किस प्रकार पियदसी को जब वह युवराज ही था, उसके पिता बिदुसार ने पश्चिमी भारत (अवति प्रात) पर शासन करने भेज दिया था, जिसका केंद्र उज्जयनी (वर्तमान उज्जैन) था। उत्तरी भारतीय स्रोतो के अनुसार राजकुमार उत्तर पश्चिमी भारत मे तक्षशिला मे भी रहा था जहा बिदुसार ने उसे राजाधिकारियो के विरुद्ध स्थानीय निवासियो के विद्रोह को कुचलने के लिए भेजा था। इन स्रोतो से पियदसी के सत्ता के लिए अपने भाइयो के विरुद्ध प्रचड सघर्ष के बारे मे भी पता चलता है। सिहली स्रोतो मे पता चलता है कि यह सघर्ष अशोक द्वारा मगध के सिहासन के छीन लिये जाने के बाद भी चलता रहा था। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि अशोक का औपचारिक राज्याभिषेक सत्ता हस्तगत करने के चार साल बाद क्यो हुआ था।

कलिग का युद्ध

सम्राट अशोक के राजादेशो मे उल्लिखित एकमात्र महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना बगाल की खाडी के पश्चिमी तट पर स्थित शक्तिशाली कलिग राज्य के विरुद्ध युद्ध था। सबद्ध राजादेश मे अशोक बताता है कि युद्ध के दौरान डेढ लाख लोग बदी बनाये गये थे और एक लाख से अधिक मारे गये थे। कलिग के अधिग्रहण ने, जो सामरिक तथा वाणिज्यिक, दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण था, साम्राज्य का सुदृढीकरण करने मे सहायता दी।

कलिग ने अशोक का दुर्धर्ष प्रतिरोध किया। यह प्रदेश पहले नद साम्राज्य का अग रहा था लेकिन बाद मे स्वतत्रता प्राप्त करने मे सफल हो गया था। कलिग विजय के प्रसग मे एक विशेष राजादेश मे स्वय अशोक ने स्वीकार किया है कि सामान्य लोगो और अभिजातो के खिलाफ भी, जो मौर्य शासन को स्वीकार करने के लिए तैयार नही थे, कठोर दडात्मक उपाय अपनाये गये थे। अशोक को नवविजित प्रदेशो मे तनाव को कम करने के लिए विशेष उपाय तक अपनाने पडे थे। कलिग को काफी मात्रा मे स्वतत्रता प्रदान की गयी। यही नही, सम्राट वहा अपने अधिकारियो की गतिविधियो पर यह सुनिश्चित करने के लिए स्वय नियत्रण रखता था कि नागरिको को अकारण कैद न किया जाये और बिना उचित प्रयोजन के किसी को कोई कष्ट न दिया जाये।

कई इतिहासकारो का विचार है कि कलिग युद्ध ने अशोक को सयुक्त राज्य की स्थापना करने की अपनी परपरागत सक्रिय विदेश नीति को तजन के लिए विवश कर दिया। उनके मतानुसार सम्राट अब तक स्वप्नदर्शी बन चुका था, जिसकी अपनी शक्ति तथा प्रभाव का और अधिक प्रसार तथा सुदृढीकरण करने की कोई इच्छा नही रह गयी थी। तथापि ये विचार स्रोत सामग्री द्वारा प्रदत्त तथ्यो के साथ मेल नही खाते। अशोक न अपनी सक्रिय विदेश नीति को तजा नही, उसने केवल अपने तरीको को किसी हद तक बदल दिया। अपनी शक्ति को भूले बिना और जहा भी आवश्यक हो, वहा बल का प्रयोग करते हुए भी मौर्य सम्राट ने अधिकाशत विचारधारात्मक और राजनयिक अस्त्रो का ही उपयोग किया। विशेष रूप मे नियुक्त अधिकारियो और राजनयिक शिष्टमडलो के ज़रिये उसने अभी तक अविजित प्रदेशो मे वहा के निवासियो को सम्राट के स्नेह और अनुकपा, पितृवत सुचिता तथा सभी प्रकार की सहायता का आश्वासन दते हुए अपने प्रभाव का सुदृढीकरण करने की हर सभव कोशिश की।

अपन एक राजादेश मे अशोक ने अपने अधिकारियो को निर्देश दिया है–"अविजित प्रदेशो के निवासियो को यह दृढ विश्वास हो जाना चाहिए कि हमारी आखो मे राजा पिता के समान है। वह अपनी प्रजा के बारे मे वही अनुभव करता है, जो अपने बारे मे करता है, प्रजा उसे अपनी सतान की भाति प्रिय है।"

अशोक के कई देशो के साथ घनिष्ठ राजनयिक सबध थे। उसके राजादेशो मे सेल्यूकसवशी राजा अतिओकस द्वितीय थिओस (सेल्यूकस का पौत्र), मिस्र के राजा तोलेमी द्वितीय फिलादेल्फस मकदूनिया के राजा अतीगोनस गोनातस, साईरीनी के राजा मागस और इपिरस के राजा अलेक्सादर का उल्लेख है। विभिन्न देशो मे मौर्य दूत भेजे जाते थे, जहा वे अपने शक्तिशाली तथा धर्मात्मा राजा अशोक के बारे मे बताते थे।

सिहल (श्रीलका) के साथ विशेषकर घनिष्ठ सबध कायम किये गये थे, जहा अशोक ने अपने पुत्र महिद (महद्र) की अध्यक्षता मे बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए विशेष शिष्टमडल भेजा था।

सिहल के तत्कालीन राजा तिस्सा ने इससे अनुग्रहीत होकर अशोक के सम्मान मे उसकी देवनामपिय की उपाधि को धारण किया और पाटलिपुत्र अपना दूत भेजा।

कालानुक्रम

अशोक के राज्यकाल की तिथियो के बारे मे इतिहासकारो मे अब भी बडा विवाद है, यद्यपि उसके शिनालेखो में इस प्रश्न से सबद्ध महत्वपूर्ण सूचनाए है। अशोक के राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद एकसाथ उत्कीर्ण तथाकथित मुख्य शैल राजादेशो म पाच यूनानी शासको का उल्लेख है, जिसका मतलब यह है कि जिस साल राजादेश तैयार किया गया था, तब ये पाचो राजा जीवित थे। इसका अर्थ होगा २५६ अथवा २५५ ई० पू०। इमस यह निष्कर्ष निकलेगा कि अशोक का राज्यकाल सभवत २६८ ई० पू० म शुरु हुआ होगा।

अशोक विषयक कथाओ मे सन्निहित खगोलीय तथ्यो के सिलसिले म रोचक अनुसधान कार्य किया गया है। बौद्ध कथाओ मे एक सूर्यग्रहण का उल्लेख आता है, जो अशोक की कुछ बौद्ध तीर्थो की यात्रा के समय हुआ था। विद्वानो ने यह निश्चित कर लिया है कि अशोक के राज्यकाल म २४६ ई० पू० मे वस्तुत सूर्यग्रहण हुआ था। उसके राज्यकाल के बीसवे वर्ष मे जारी किये गय एक राजादेश मे उसकी बुद्ध के जन्मस्थल की यात्रा का उल्लेख है। इन सभी सूचनाओ को नमूने तौर पर लेने पर हम यह मान सकते है कि अशोक का राज्यकाल २६८ ई० पू० मे शुरु हुआ। कुछ अन्य स्रोत सामग्रियो म भी इस तिथि की पुष्टि होती है—अगर जैसा कि पुराणो म कहा गया है, जिनम राजवशावलिया भी है, बिंदुसार ने पचीस वर्ष राज्य किया तो २६८ ई० पू० ही अशोक के राज्यारोहण का वर्ष है। बौद्ध परपरा मे इस तथ्य का उल्लेख किया गया है कि अशोक का राज्याभिषेक बुद्ध की मृत्यु क २१८ साल बाद हुआ था। कई विद्वान इस बारे म सहमत है कि बुद्ध की मृत्यु सभवत ४८६ ई० पू० म हुई थी। अगर इस परपरा को माना जाता है, तो अशोक क राज्यकाल के समारभ की वही तिथि निकलेगी—२६८ ई० पू०।

बेशक कुछ विद्वान दूसरी तिथियो के पक्ष म है और व प्राय सिंहली इतिवृत्ता म आय इस हवाले का उल्लेख करते है कि अशोक का सत्ता हस्तगत करने के तुरत बाद नहीं, बल्कि चार वर्ष बाद अभिषेक किया गया था। इसक आधार पर व अशोक क सिंहासनारोहण की तिथि २६५ ई० पू० निर्धारित करते है। मौर्य साम्राज्य क कालानुक्रम का प्रश्न अब भी बहुत उलझा हुआ है।

मौर्य साम्राज्य का विस्तार

मौर्य साम्राज्य विस्तृत प्रदेशो पर फैला हुआ था। इस एकल राजकीय सरचना के ढाचे के भीतर भिन्न भिन्न जातीय मूलो, भापाओ तथा सस्कृतियो के लोग और कबीले रहा करते थे, जिनके रीति रिवाज, प्रथाए और धार्मिक विश्वास अलग-अलग थे।

अशोक के शिलालेखो के और अर्थशास्त्र' के आधार पर भी कहा जा सकता है कि इस समय तक एक शासक के अधीन, जिसकी सत्ता दक्षिणी सागरो से लेकर उत्तर मे हिमालय तक के विस्तृत प्रदेशो पर फैली हुई हो, एक बडे राज्य का विचार जड पकड चुका था। राजनीतिक प्रबधो के लेखक ऐसे साम्राज्य के विस्तार के बारे मे और उसके दूर-पास के अन्य राष्ट्रो के साथ सबधो के बारे मे अपने सिद्धात का पूर्णत प्रतिपादन कर चुके थे।

मौर्य काल मे इन नये विचारो का उदय मगध के राजा बिबिसार तथा सम्राट अशोक की उपाधियो की भिन्नता मे प्रतिबिबित होता है – बिबिसार को जहा प्रदेशाधिपति कहा गया है वहा अशोक को जबुद्वीप का सर्वशक्तिमान शासक माना जाता था।

अशोक के राजादेश ही मौर्य साम्राज्य के विस्तार के बारे मे मुख्य प्रमाण प्रस्तुत करते है। कुछ सूचना चद्रगुप्तकालीन प्राचीन लेखको की कृतियो से भी प्राप्त की जा सकती है। चीनी यात्रियो द्वारा सूचना भी कुछ महत्व रखती है, विशेपकर जब उसकी पुरालेखीय अथवा पुरातत्वीय प्रमाण से भी पुष्टि होती है।

साम्राज्य के पश्चिमी सीमातो के निर्धारण मे कदहार मे, जो आर्कोसिया का केद्र था, अशोक के राजादेशो (यूनानी तथा यूनानी-अरमाइक शिला लेखो) की खोज से बडी सुविधा हो गयी है, जो स्पष्टत इस तथ्य की ओर इगित करती है कि आर्कोसिया (अब वर्तमान अफगानिस्तान का एक भाग) अशोक के साम्राज्य का अग था।

अशोक के राजादेशो मे यवनो तथा काबोजो के अनेक उल्लेख है, जिन्हे देश के पश्चिमी भागो मे रहनेवाले लोग कहा गया है।

यवन शब्द यूनानियो के लिए प्रयुक्त किया गया है, जिनकी बस्तिया आर्कोसिया मे पायी जाती थी। अशोक के राजादेशो के यूनानी भापातर यूनानी आबादी के लिए ही तैयार किये गये थे। कुछ विद्वानो का मत है कि अशोक के समय के यवन उन यूनानी कबीलो के वशज थे जो सिकदर के अभियान के समय आर्कोसिया मे बस गये थे।

आर्कोमिया मे काबोज (कबोज के रहनवाले एक ईरानी भाषी कबील के लोग) भी रहा करते थे, जिनका अनेक प्राचीन भारतीय कथाओ में श्रेष्ठ अश्वारोहियो और अश्वपालको के नाते उल्लेख आता है। काबोजो की भाषा लगभग अज्ञात है किंतु इस बात को देखते हुए कि कंदहार में मिले अशोक के राजादेशो के अरमाइक भाषातर में कई ईरानी शब्द है, यह माना जा सकता है कि यह भाषातर काबोजो के लिए ही तैयार किया गया था।

अशोक का एक राजादेश लपाका (वर्तमान जलालाबाद के निकट) में भी मिला है, जिससे इसकी पुष्टि हुई कि पारोपमीसस वस्तुत मौर्य साम्राज्य का अग था (पहले इसका चद्रगुप्त और सेल्यूकस के बीच सधि के परिणामो का वर्णन देनेवाले यूनानी स्रोतो से सिर्फ अनुमान ही लगाया जाता था)।

कश्मीरी इतिवृत्त राजतरगिणी मे और चीनी तीर्थयात्रियो के वर्णनो म प्राप्त तथ्यो से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कश्मीर के एक भाग को भी अशोक के साम्राज्य म सम्मिलित कर लिया गया था। जनश्रुति के अनुसार श्रीनगर अशोक के राज्यकाल मे ही बसाया गया था। सभव है कि नेपाल का कुछ भाग भी उसके साम्राज्य की सीमाओ के भीतर रहे हो। पुरालेखीय खोजो तथा लिखित स्रोतो से यह भी पता चलता है कि बगाल उसके साम्राज्य का अग था।

दक्षिणी भारत मे अशोक के राजादेशो की खोज से साम्राज्य के दक्षिणी सीमातो का निर्धारण करना सुगम हो गया। यह सीमात आधुनिक चित्रदुर्ग जिले के लगभग दक्षिण मे था। दक्षिण म इस साम्राज्य की सीमाए चोलो, केरलपुत्रो तथा सत्यपुत्रो के राज्यो के साथ मिलती थी, जिन्हे अशोक के राजादेशो म उसके राज्य के बाहर के प्रदेश कहा गया है। तथापि मौर्यो का इन इलाको के साथ घनिष्ठ सपर्क था। वहा बौद्ध स्तूपो का निर्माण किया गया और प्रचारक भी भेजे गये। भारत के पश्चिम मे यूनानी राज्यो दक्षिण म श्रीलका और मध्य एशिया के कुछ प्रदेशो सहित कई अन्य देशो के साथ भी राजनयिक सबध स्थापित किये गये थे।

मौर्य युग में राजशक्ति

मगध राज्य के समय और मौर्य शासको के अधीन राजतत्रीय शक्ति का और अधिक सुदृढीकरण हुआ और गण सस्थाओ की भूमिका धीरे धीरे महत्व म घटती गयी।

राजशक्ति मौर्य सम्राटो के युग मे आकर विशेषकर सार्थक हो गयी। यह अशोक के राजादेशो तथा 'अर्थशास्त्र' से स्पष्ट हो जाता है। राजा को राज्य का मूलाधार माना जाता था। 'अर्थशास्त्र' मे लिखा है कि राजा ही राज्य है", जो उस समय प्रचलित राज्यत्व की धारणा का सार प्रकट कर देता है।

आनुवंशिकता के सिद्धात का अत्यत कठोरतापूर्वक पालन किया जाता था। राजा की मृत्यु के पहले ही उसके एक बेटे को सिहासन का उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया जाता था (आम तौर पर ज्येष्ठ पुत्र को ही) यद्यपि सत्ता के वस्तुत हस्तगत किये जाने के पूर्व राजा के सभी बेटो मे भयकर सघर्ष चला करता था।

सिहासनारोहण के समय राजा विशेष अनुष्ठान (अभिषेक) करता था जो बडे समारोहो और खानपान के साथ सपन्न किया जाता था।

मौर्य शासको के मच पर आन के समय तक चक्रवर्ती सम्राट की धारणा उदित हो चुकी थी, जिसकी सत्ता का प्रसार पश्चिमी महासागर से लेकर पूर्वी महासागर तक और हिमालय से लेकर दक्षिणी सागर तक क प्रदेशो पर माना जाता था। 'अर्थशास्त्र' मे इस धारणा का विशेषकर विस्तार के साथ निरूपण किया गया है। सक्षेप मे यह धारणा भारतीय राज्य के विकास मे एक विशाल साम्राज्य के निर्माण से सबद्ध नये चरण की परिचायक थी।

अशोक के शिलालेखो से यह निष्कर्ष निकलता है कि राजा राज्यतत्र का प्रधान था और विधायी शक्तिया रखता था। अशोक के राजादेश राजा के आदेश से और उसके नाम पर जारी किये गये थे। राजा स्वय मुख्य राजाधिकारियो को नियुक्त करता था, वित्त प्रशासन का प्रमुख था और सर्वोच्च न्यायाधीश था। 'अर्थशास्त्र' म राजा के कृत्यो और मनोरजनो का विस्तृत विवरण दिया गया है। राजा के अगरक्षको की तरफ विशेष ध्यान दिया जाता था, क्योकि राजदरबार मे राजा के विरुद्ध षड्यत्रो का रचा जाना आम बात थी। चद्रगुप्त के दरबार मे यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़ ने इसकी ओर विशेष ध्यान दिया है और अपने विवरण मे लिखा है, "राजा दिन मे नही सोता और रात को भी उसे दुरभिसधियो के डर से अपने शयनकक्ष को समय-समय पर बदलते रहना पडता है। राजा जब शिकार पर जाता है, तो वह स्त्रियो से घिरा रहता है और स्त्रियो की यह मडली वल्लमधारियो के घेर मे रहती है। इस जलूस के रास्ते को दोनो तरफ रस्सियो से बद कर दिया जाता है। जो कोई भी स्त्रियो के चलने के इस रास्ते के दोनो तरफ की

रस्सियों को पार करता है, वह मृत्यु के मुह मे ही प्रवेश करता है।

राजदरबार मे मुख्य राजपुरोहित की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी, जो सदा प्रभावशाली ब्राह्मण वर्ण का ही होता था। राजा अपने विश्वस्त सहायकों का चयन स्वय करता था, यद्यपि उन पर भी गुप्त निगरानी रखी जाती थी। राजा अपने अनुचरो की विशेष परीक्षाए करता रहता था और जो उनमे ससम्मान उत्तीर्ण नही हो पाते थे उनके सिरो पर खानो मे कठोर श्रम करने का खतरा मडराता रहता था। इस प्रकार गुप्त निगरानी की व्यवस्था को बहुत महत्व दिया जाता था। केवल राजाधिकारियो पर ही नही, बल्कि शहरो और गावो के साधारण निवासियो पर भी सख्त निगरानी रखी जाती थी। राजकुमारो की गतिविधियो पर विशेष ध्यान दिया जाता था, जो 'अर्थशास्त्र' के कथनानुसार, 'अपने जनक को चिगट की तरह खा जाते हैं।'

रात के समय राजा गुप्तचरो से समाचार प्राप्त करता था और दिन मे, जैसा कि 'अर्थशास्त्र' से पता चलता है वह राज्यकार्य मे और विविध मनोरजनो का आनद लेने मे व्यस्त रहता था। मेगस्थनीज के विवरण से अनुमान लगाया जाये तो राजा की सैन्य शक्ति विस्मयजनक थी। चद्रगुप्त की छावनी मे ४,००,००० सैनिक थे।

परिषद तथा सभा

राज्य प्रशासन मे राजा की मत्रिपरिषद – परिषद – का कार्य बहुत महत्वपूर्ण था। इस सस्था का आरभ मौर्यो ने नही किया था (वह पूर्ववर्ती युगो मे भी थी) यद्यपि मौर्य शासको के अधीन ही परिषद ने राजनीतिक परिषद के कृत्यो का निष्पादन करना शुरू किया था। परिषद का सम्राट के राजादेशो मे उल्लेख है और उसके कार्यो का 'अर्थशास्त्र' मे विस्तार से वर्णन किया गया है जिसमे उस मत्रिपरिषद का नाम दिया गया है। परिषद को सपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था और राजा के आदेशो की पूर्ति करवाने का ध्यान रखना होता था। परिषद के अलावा एक पूर्णत गुप्त अतरग परिषद भी थी जिसमे राजा के विशेष विश्वासपात्र बहुत थोडे से लोग ही होते थे। अत्यत अत्यावश्यक मामलो का निर्णय करने की आवश्यकता उत्पन्न होने पर दोनो परिषदो के सदस्य एक ही बैठक मे शामिल हो सकते थे।

'अर्थशास्त्र' मे इस पर जोर दिया गया है कि परिषद के सदस्यो की सख्या राज्य की तात्कालिक आवश्यकताओ के अनुसार बदलती रहती थी।

अशोक के राज्यकाल मे परिषद को धर्म की अपेक्षाओ की क्रियान्विती का अधीक्षण करना होता था और वह देश के विभिन्न भागो मे निरीक्षण यात्राओ पर जानेवाले राज्याधिकारियो के कर्तव्यो का निर्धारण करती थी। अशोक के एक राजादेश से अनुमान लगाया जा सकता है कि परिषद की बैठके राजा की उपस्थिति के बिना भी हो सकती थी यद्यपि अशोक का आदेश था कि अत्यावश्यक स्थितियो मे उसे इस प्रकार की बैठको की अविलब सूचना दी जानी चाहिए। स्वय परिषद के भीतर अक्सर गरमागरम विवाद छिड जाया करता था, जिसके कारण कभी कभी राजा को हस्तक्षेप भी करना पडता था। कभी कभी राजा और परिषद मे मतभेद भी पैदा हो जाया करते थे -- अशोक के राज्यकाल के अतिम भाग मे इन मतभेदो ने विशेषकर गभीर स्वरूप ग्रहण कर लिया था जब सम्राट का एक विरोधी पक्ष भी पैदा हो गया था।

राजनीतिक निकाय के रूप मे परिषद अभिजातो -- क्षत्रिय तथा ब्राह्मण वर्णो -- से निर्मित थी, जो अपने विशेषाधिकारो की रक्षा करने और अपने शासक की निरपेक्ष शक्ति को सीमित करने का पूरा-पूरा प्रयास करते थे। पुराने समय मे, उदाहरण के लिए वैदिक काल में, परिषद की सदस्यता मे अधिक व्यापकता थी और सत्ता के अभिकरण के नाते वह अधिक जनतात्रिक स्वरूप की होने के कारण राजा और उसकी नीतियो पर ज्यादा कारगर असर डाल सकती थी। धीरे धीरे उसके सदस्यो की सख्या घटती गयी और उसकी सदस्यता अभिजात वर्ग के प्रतिनिधियो तक ही सीमित हो गयी और शनै शनै परिषद की भूमिका मात्र परामर्शदायी कार्यो तक ही रह गयी और राजा ही अतिम निर्णय लेनेवाला बन गया। लेकिन मौर्य काल मे भी जब राजसत्ता विशेषकर प्रबल हो चुकी थी परिषद का काफी प्रभाव था और मौर्य शासक उसकी उपेक्षा कदाचित ही कर पाते थे।

सभा भी विकास के ऐसे ही क्रम से गुजरी थी -- आरभ म यह अभिजातो और जनता के प्रतिनिधियो की सभा थी जो सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक कृत्यो का निष्पादन किया करती थी। मौर्य काल मे सभा की सदस्यता समाज के वही सकीर्ण हिस्से तक सीमित हो गयी थी और सभा स्वय महत्व म घटकर राजा की परिषद अथवा राजसभा मे परिणत हो गयी थी। लेकिन फिर भी परिषद की तुलना मे राजसभा अब भी अधिक प्रातिनिधिक सस्था थी। उसमे शहरी तथा ग्रामीण आबादी के कुछ प्रतिनिधि भाग ले सकते थ और कई मामलो मे राजा को समर्थन के लिए राजसभा की तरफ मुह करना पडता था। उदाहरण के लिए, तत्कालीन स्रोतो मे पता चलता है कि अशोक राजसभा

क पहले विद्यमान प्राचीन व्यवस्था को बदलकर उसे नयी अवस्थाओ के अनुरूप बना दिया था। साथ ही राज्य प्रशासन की नयी सस्थाओ की भी स्थापना की गयी। साम्राज्य का नाभिक विजित था, जिसमे सम्राट का वास्तविक अधिकार-क्षेत्र तथा केंद्रीय प्रशासन के विशेषकर कठोर नियत्रण म आनवाले कुछ प्रदेश सम्मिलित थे। साम्राज्य प्रातो मे विभाजित था, जिनम स चार को विशेष हैसियत प्राप्त थी – उत्तर-पश्चिमी प्रात, जिसकी राजधानी तक्षशिला थी पश्चिमी प्रात, जिसकी राजधानी उज्जयनी थी, पूर्वी प्रात (कलिग) जिसकी राजधानी तोशाली थी और दक्षिणी प्रात, जिसकी राजधानी सुवर्ण गिरि थी। इनमे स प्रत्येक प्रात पर राजा का एक बेटा शासन करता था। इन प्रातो को दी गयी इस खास ऊची हैसियत का कारण साम्राज्य म उनकी विशेष स्थिति और देश के राजनीतिक, आर्थिक तथा सास्कृतिक जीवन म उनकी भूमिका हो सकता है। एक विशेष दक्षिणी प्रात के निर्माण का कारण दक्षिणी प्रश्न' का महत्व हो सकता है, जो राजा बिदुसार के समय म भी प्रत्यक्ष होने लग गया था। जहा तक्षशिला, उज्जयनी तथा तोशाली म नियुक्त राजपुत्रो को केवल कुमार की उपाधि ही प्राप्त थी, वहा सुवर्णगिरि मे शासन करनेवाले को अशोक के राजादेशो मे आयपुत (सस्कृत के आर्यपुत्र से) की सज्ञा दी गयी है जो उसकी विशेष ऊची स्थिति का द्योतक है। यह माना जा सकता है कि अशोक के राज्यकाल मे यहा सिहासन के उत्तराधिकारी का अधिष्ठान था।

मुख्य प्रातो को खासी स्वायत्तता प्राप्त थी। उनके शासक राजकुमार (कलिग के शासक को छोडकर) स्थानीय अधिकारियो के कार्यकलाप का अधीक्षण करने के लिए विशेष निरीक्षक भेजा करते थ। किंतु कलिग के शासक को यह अधिकार प्राप्त नही था – उसके प्रदेशो की निरीक्षण यात्राओ की व्यवस्था सम्राट स्वय करता था। अशोक कलिग के अधिकारियो तक से स्वय सबध रखता था। कलिग को अभी हाल ही म साम्राज्य मे मिलाया गया था और यद्यपि उसे मुख्य प्रात का दरजा प्राप्त हो गया था, फिर भी उसे अब भी विजित ही माना जाता था और इसलिए वह केंद्रीय प्रशासन के प्रत्यक्ष नियत्रण के अधीन था।

देश को चार मुख्य प्राता म विभाजित करने के साथ-साथ जनपदो (सामान्य प्राता), प्रदेशो तथा आहारो अथवा आहालेओ (जिला) म भी विभक्त किया गया था। प्रातीय प्रशासन का निम्नतम एकक ग्राम था। जनपदो के प्रधान राजुक कहलात थ और व महत्वपूर्ण राजाधिकारी होत थे।

राजुक सभवत रज्जु से निकला है और इन अधिकारियो के मूल कार्य — जमीन की पैमाइश — की ओर इगित करता हे। कालातर मे उनकी हैसियत ऊची हो गयी और कार्य भी अधिक विविध हो गये। उन्हे अपने जनपदो मे विशिष्ट न्यायिक कार्य दे दिये गये और पहले के ग्रामीण अधिकारी अब प्रातीय प्रशासनतत्र के प्रमुख बन गये। ऐसा प्रतीत होता है कि अशोक के राज्यकाल के राजुक चद्रगुप्त के राज्य के ग्रामीण अधिकारियो (यूनानी मे अगोरानोमोई) से मिलते जुलते है, जिनका सेल्यूक्स के राजदूत मेगस्थनीज ने विस्तृत विवरण छोडा है। लेकिन इस बात को ध्यान मे रखना चाहिए कि अशोक के राज्यकाल तक ग्रामीण अधिकारियो के कृत्यो मे कुछ परिवर्तन आ चुका था। महामात्र, जो आहाले के प्रभारी होते थे, प्रत्यक्षत राजुको के प्रति उत्तरदायी थे।

जिलो के मुख्य नगरो मे कचहरिया थी जिनम अधिकारियो की नियमित बैठके हुआ करती थी। इन बैठको मे लिये गये निर्णयो की लिपिकार प्रतिया तैयार करते थे जिन्हे जिले के सभी भागो को भेज दिया जाया करता था। इस जमाने के लिपिकार विभिन्न लिपियो — ब्राह्मी, खरोष्ठी, यूनानी — म लिख सकते थे।

अशोक के राजादेशो मे साम्राज्य के सीमातो की रक्षा करने के लिए नियुक्त विशेष अधिकारियो — अतमहामात्रो — का उल्लेख मिलता है, जिनसे 'अर्थशास्त्र' का लेखक भी परिचित था। उनकी स्थिति खासी ऊची रही होगी क्योकि उन्ह बहुत ऊचा वेतन मिलता था। मौर्य शासको की नीति चाहे कठोर केद्रीयकरण की रही हो लेकिन साथ ही उन्होने बहुत सी पुरानी सस्थाओ और प्रथाओ को खत्म करने की कोशिश नही की, जिनका लिहाज़ करना उन्होंने आवश्यक पाया।

पार्थक्यवाद का विरोध करने के अपने प्रयासो के बावजूद मौर्य राजाओ ने कुछेक गणतत्रीय इकाइयो (गणो) को साम्राज्य के भीतर अपनी स्वायत्त स्थिति को बनाये रहने दिया विशेषकर उन इलाको मे, जहा सख्त नियत्रण स्थापित कर पाना सबसे कठिन था। मगस्थनीज मौर्य साम्राज्य मे स्वायत्त, स्वतत्र नगर राज्यो का उल्लेख करता है, जिनमे पुराने राजनीतिक स्वरूपो के अनेक लक्षण बने हुए थे यद्यपि ये गण साम्राज्यिक प्रशासन की सकल प्रणाली मे सम्मिलित किये जा चुके थे।

नगर प्रशासन

मौर्य काल म नगर प्रशामन मे भी स्वशासन के कुछ लक्षणो का बन रहने दिया गया था। अशाक के राजादेशो मे नगरो के आतरिक, अथात विजित की परिधि मे आनवाले और बाह्य नगरो मे विभाजन का उल्लख है। पाटलिपुत्र साम्राज्य की राजधानी था। मेगस्थनीज ने विशेष नगर अधिकारियो (यूनानी म अस्तीनोमोई) क बारे मे लिखा है, जो पाच-पाच व्यक्तियो की छ छोटी परिषद गठित करते थे। इनमे से प्रत्यक परिषद नगर क जीवन के इन क्षत्रा मे स किसी एक की व्यवस्था करती थी -- शिल्पोद्योग, विदेशी नागरिक जन्म मरण पजीयन, व्यापार, शिल्पियो द्वारा बिक्री के लिए निमित सामान पर मुद्राकन और विक्रीत माल पर कर सग्रहण, जा विक्रय मूल्य का दशमाश था। मेगस्थनीज का विवरण यह दिखलाता है कि नगर प्रशासन के कौनसे प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण थे जो अधिकारियो द्वारा विशेष नियत्रण की अपेक्षा करत थे। नगरो मे प्रशासनिक परिषदो का होना ही उल्लखनीय है। नगर परिषद वस्तुत नगर मे मुख्य प्रशासन निकाय थी, यद्यपि प्रत्यक्षत उसके सदस्य निर्वाचित नही होते थे, जैसा कि वैदिक काल म हुआ करता था वरन केंद्रीय अथवा प्रातीय प्रशासन द्वारा नियुक्त या अनुमोदित हुआ करत थे।

केंद्रीय प्रशामन नगर परिषदो को अपनी स्वतत्रता से वचित करन का प्रयास करता था, फिर भी उन्होने अपनी स्वायत्तता को किसी हद तक कायम रखा। उदाहरण के लिए कितने ही नगरो की अपनी ही मोहरे और नगरचिह्न थ और नगर परिषद शिल्प श्रेणियो क साथ कारबार करती थी।

आबादी का प्रत्यक समूह अपन वर्ण के अनुसार नगर के एक विशेष भाग मे रहा करता था। यह प्रथा कबायली सगठन की अत्यधिक प्राचीन परपरा का अवशेष रही होगी। सार्वजनिक भवनो नगर की सफाई और रखरखाव तथा उसके धर्मस्थलो और मदिरो पर नगर अधिकारियो का नियत्रण रहता था। नगरो म अधिकाश इमारत लकडी की बनी हुई थी, जिसके परिणामस्वरूप आग क खतरे स रक्षा का बहुत महत्व था। गरमियो मे किसी को भी बाहर आग जलान की अनुमति नही थी और इस नियम का उल्लघन करन पर भारी अर्थदण्ड लिया जाता था। सभी गृहस्वामियो के लिए आग बुझान का साजसामान रखना अनिवार्य था। *अर्थशास्त्र* से पता चलता है कि हर घर म पानीभरे घडो और नालो को हर समय तैयार रखना पडता था। सडका

पर भी हमेशा पानी से भरे बहुत से बरतन रखे रहत थे। अर्थशास्त्र' म उपलब्ध प्रमाण से अनुमान लगाया जा सकता है कि नगरो मे जीवन पर कठोर निबधन थे। शाम को विशेष सकेत के दिये जाने के बाद सडको पर निकलना वर्जित था और जो कोई भी राजा के महल के पास से गुजरने की हिम्मत करता था उसे गिरफ्तार कर लिया जाता था और अर्थदड दिया जाता था।

अशोक की धार्मिक नीति

मौर्य काल भारत मे बौद्ध धर्म के व्यापक प्रचार के साथ जुडा हुआ है। बौद्ध धर्म, जो मौर्य वश के उदय के सैकडो साल पहले मठवासी भिक्षुओ के एक छोटे से सप्रदाय की तरह शुरू हुआ था, ई० पू० तीसरी शती तक प्राचीन भारतीय समाज के आध्यात्मिक जीवन की सबस बडी धाराओ मे एक मे परिणत हो गया। अब तक एक सगठित बौद्ध सघ अस्तित्व मे आ चुका था और मुख्य धर्मग्रथो की रचना की जा चुकी थी। यह कोई आकस्मिक बात नही है कि ठीक मौर्य शासको के समय मे ही बौद्ध धर्म व्यापक रूप मे फैला और उनके समर्थन का पात्र बना। शक्तिशाली राज्य पर चक्रवर्ती सम्राट के अपन आदर्श से बौद्ध धर्म ने एक सयुक्त साम्राज्य के निर्माण का विचारधारात्मक आधार प्रस्तुत किया।

विभिन्न उपलब्ध स्रोतो के आधार पर कहा जा सकता है कि अशोक अचानक ही बौद्ध नही बना था। अपने पिता के दरबार मे उसकी विभिन्न सनातनी और तथाकथित अपधर्मी मतो के प्रतिनिधियो से भेंटे हुई थी। बाद मे उसे एक बौद्ध विहार जाने का अवसर मिला उसने बुद्ध की शिक्षाओ का गहराई से अध्ययन किया और उपासक -- साधारण बौद्ध -- बन गया। अपने राजादेशो मे वह अपने धार्मिक विकास के बारे मे स्वय बतलाता है आरभ मे सम्राट बौद्ध सघ की ओर कोई विशेष ध्यान नही देता था किंतु बाद मे, राजधानी मे बौद्ध भिक्खुओ (भिक्षुओ) के जीवन से स्वय परिचय प्राप्त कर लेने के बाद, वह बौद्धो का सक्रिय समर्थन और उनके सघ की सहायता करने लगा। बौद्ध शिक्षाओ तथा बौद्ध आचार-विचार मे उसकी रुचि कलिग के युद्ध के बाद विशेषकर स्पष्ट हो गयी, जब धर्मविजय की नीति ने विशेष महत्व ग्रहण कर लिया, यद्यपि अशोक इस युद्ध के शुरू होने के पहले ही बुद्ध का अनुगामी बन चुका था।

लेकिन बौद्ध मतावलबी बन जाने के बाद भी अपने सारे राज्यकाल मे

अशोक न तो कभी धर्म सघ मे ही सम्मिलित हुआ और न ही उसने शासन की बागडोर किसी और के हाथो म दी। कुछ विद्वान अशोक को एक सत सम्राट मानते है जो अपने राज्यकाल के अत मे राजपाट छोडकर बौद्ध विहार म जाकर रहने लगा था। लेकिन विद्यमान स्रोत सामग्री इस विचार का समर्थन नही करती। यह सिद्धात भी इतना ही वेबुनियाद है कि अशोक के राज्यकाल मे बौद्ध धम राजधर्म था।

यद्यपि अशोक न बौद्ध सघ को अपना सरक्षण प्रदान करके सम्मानित किया फिर भी बौद्ध धर्म राजधर्म नही बनाया गया। उसकी धार्मिक नीति का सर्वप्रमुख लक्षण धार्मिक सहिष्णुता था और वह लगभग अपन सार राज्य काल भर इस पर जमा रहा।

अपन राजादेशो म अशोक सभी मतो की एकता के पक्ष मे विचार प्रकट करता है किंतु एक एम लक्ष्य की तरह, जिसकी सिद्धि जोर जबरदस्ती के जरिये नही बल्कि उनकी शिक्षाओ के मूल सिद्धातो को विकसित करके की जानी चाहिए। इन राजादेशो के आधार पर यह माना जा सकता है कि अशोक ने आजीवको को निवास के लिए गुफाए दी थी, जो उस समय बौद्धो के सर्वप्रमुख विरोधियो मे थे और जिनका आम लोगो पर काफी प्रभाव भी था। राजादेशो से यह भी पता चलता है कि राजा जैन तथा ब्राह्मण समुदायो के पास अपन प्रतिनिधियो को भेजा करता था। यह माना जा सकता है कि अशोक को किसी हद तक धार्मिक सहिष्णुता की नीति का अनुगमन इसलिए करना पडा था कि सनातनी तथा अपधर्मी शिक्षाए (बौद्ध शिक्षाओ के अलावा) अभी तक इतनी प्रबल थी कि वह और कुछ कर भी नही सकता था। अपनी धार्मिक सहिष्णुता की इस नीति और उसके साथ राज्य द्वारा विभिन्न धार्मिक सप्रदायो के जीवन पर राज्य के कौशलपूर्ण नियत्रण की बदौलत ही अशोक ब्राह्मणो, आजीवको और जैनो के शक्तिशाली सस्तरो के साथ सघर्ष से बच सका और साथ ही बौद्ध धम का इतनी सफलतापूर्वक सवर्धन भी कर सका। जब अशोक ने अपने राज्यकाल के अतिम वर्षो मे धार्मिक सहिष्णुता की इस नीति को तज दिया और प्रकट बौद्धसमर्थक नीति पर चलने लगा तो इससे अन्य मतावलबियो म प्रबल विरोध उठ खडा हुआ और उसने राजा तथा उसके प्रशासन के लिए गभीर परिणाम उत्पन्न किये।

अपन राज्यकाल के अतिम वर्षो म अशोक बौद्ध सघ के निकट सपर्क म आ गया था और अपने पुराने सिद्धातो को तजकर उसने आजीवको तथा जैनो को सताना तक शुरू कर दिया था।

इससे बौद्धो तथा उस समय के अन्य धर्मावलबियो के सबधो मे गभीर पचीदगिया पैदा हो गयी। स्वय बौद्धो के भीतर भी कुछ गभीर भेद पैदा हो गये थे–उस काल के स्रोतो से बौद्ध विचारधारा के विभिन्न मतो के प्रतिनिधियो मे टकराव के बारे मे पता चलता है। इस सिलसिले मे सम्राट ने बौद्ध सघ को ऐक्यबद्ध रखने के प्रयास किये। उसने सघ की एकता को क्षति पहुचानेवाले विरोधी भिक्खुओ तथा भिक्खुणियो के विरुद्ध सघर्ष के बारे मे एक विशेष राजादेश जारी किया। इस राजादेश के अनुसार उन्हे सघ से बहिष्कृत कर दिया गया। साथ ही अशोक ने यह भी सुझाव दिया कि बौद्ध भिक्षुओ को बौद्ध धर्मग्रथो का गभीरतापूर्वक अध्ययन करना चाहिए और इसके लिए विशेषकर अनुशासन के प्रश्नो से सबधित अनेक बौद्ध धर्मग्रथो के नाम भी बताये।

बौद्ध परपरा के अनुसार अशोक के राज्यकाल मे पाटलिपुत्र मे तीसरी सगीति (बौद्ध धर्मसभा) हुई थी।

अशोक की धार्मिक नीति का एक विशिष्ट लक्षण यह था कि उसने केवल बौद्ध भिक्षुओ का नही वरन सबसे बढकर साधारण बौद्ध धर्मावलबियो का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की।

इस प्रसग मे कहा जा सकता है कि अशोक पहला भारतीय शासक था जिसने साम्राज्य का सुदृढीकरण करने के लिए बौद्ध धर्म के महत्व को समझा और उसके प्रचार को प्रोत्साहन दिया। उसके अधिकाश राजादेश भिक्खुओ नही, वरन सामान्य लोगो को सबोधित है, जिन्हे प्रकटत बौद्ध धर्म सिद्धात के मूल तत्वो की और उसके दार्शनिक तत्वो की ज्यादा जानकारी नही थी। यही कारण है कि राजादेशो मे निर्वाण, चार आर्य सत्यो , अष्टाग मार्ग (मध्यमार्ग) , आदि का कोई उल्लेख नही है। सबसे महत्वपूर्ण बात इन शिलालेखो का व्यावहारिक तात्पर्य है जिन्हे स्वय सम्राट ने धर्म राजादेशो की सज्ञा दी है। इन नैतिक सिद्धातो को, जिनसे अबौद्धो सहित सभी सामान्य जन सुपरिचित थे, जनसाधारण का और सभी सामाजिक समूहो का व्यापक समर्थन प्राप्त था।

अशोक के धर्म राजादेश

धर्म का आशय सामान्यत आचरण के नियमो और सदाचारी जीवन समझा जाता है, यद्यपि इसका सकीर्ण अर्थो मे मतलब बौद्ध धर्मशिक्षा जैसा धार्मिक सिद्धात भी माना जा सकता है।

अशोक के राजादेशो म धर्म का दो भिन्न अर्थो मे प्रयोग किया गया है। अधिकाश शिलालेखो मे धर्म का नैतिक आचार सहिता को व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया गया है, जब कि विशुद्धत बौद्ध राजादेशो मे इसका आशय बुद्ध की शिक्षाए है। इन नैतिक आदेशो मे मातापिता का आज्ञापालन, बडा का आदर, उदारता, प्राणियो को न मारना, आदि सम्मिलित है, दूसरे शब्दो मे उनमे मनुष्य के आचरण के ऐसे प्रतिमानो को लिया गया है, जो बौद्ध, ब्राह्मण अथवा किसी अन्य धर्म की शिक्षा स विशिष्ट रूप मे सबधित नही है। ये पारपरिक नैतिक सिद्धात थे जिन्ह आबादी के विभिन्न सस्तर अपन जातीय मूल अथवा धार्मिक विश्वास के भेदो के बावजूद आसानी से समझ सकते थे। कुछ विद्वान भ्रातिपूर्वक यह मान लेते है कि ये नियम विशुद्धत बौद्ध सिद्धात है, यद्यपि यह सही है कि बौद्ध धर्म ने अशोक के राजादेशो मे धर्म की व्याख्या पर वस्तुत काफी प्रभाव डाला था। यह उल्लेखनीय है कि अशोक के राजादेशो क यूनानी भाषातर मे धर्म को एक यूनानी शब्द (यूसेबेइया) से प्रकट किया गया है जो धार्मिक विश्वास नही, प्रत्युत सदाचरण के विचार को व्यक्त करता है। मनुष्य धर्म के सिद्धातो का पालन करने से क्या परिणाम प्राप्त करता है इस प्रश्न को अशोक अपने राजादेशो मे इसी सामान्य ढग मे प्रस्तुत करता है। राजा का प्रसाद, सामृद्धय और स्वर्ग का लाभ उसी व्यक्ति को मिल सकता है कि जो धर्म के पालन मे अविचल और एकनिष्ठ रहा है। अतिम सिद्धात स तो व्यापक जनसाधारण सुपरिचित थे ही—वह तो वैदिक काल का भी विशिष्ट लक्षण रहा था और बाद मे उसे बौद्धो ने भी अपना लिया था। लेकिन फिर भी राजादेशो मे बौद्ध धर्म क धार्मिक अथवा दार्शनिक सिद्धातो का कोई वास्तविक उल्लेख नही है, क्योकि वे विभिन्न मतो को माननवाले सामान्य लोगो की व्यापक परिधि को सबोधित है। इसके अलावा अशोक के धर्म का उस काल मे प्रचलित अन्य मुख्य धर्मो के बुनियादी नैतिक सिद्धातो से कोई टकराव नही था। सम्राट इन सिद्धातो को विभिन्न मतो तथा सप्रदायो द्वारा स्वीकृत शिक्षाओ का सार कहता था। राजादेशो मे लोगो से धर्म का अध्ययन करने क आग्रह के साथ-साथ सभी धार्मिक शिक्षाओ क साथ सहमति और सहिष्णुता के अगीकरण का भी समावेश है।

अशोक क राजादेशो मे पाये जानेवाले धर्म क सिद्धातो का उद्देश्य सारे साम्राज्य की आबादी को एक सामान्य आधार प्रदान करना और मानो वर्णो, समाजा तथा विभिन्न सामाजिक समूहो के धर्म पर अग्रता प्राप्त करना था।

धर्म के सिद्धातो का प्रचार करने—धर्मविजय—की नीति अशोक की

समग्र नीति के सबसे महत्वपूर्ण अगो मे एक थी। धर्म के प्रतिमानो के पालन को सुनिश्चित करने के लिए धर्म महामात्र नाम के विशेष अधिकारियो को नियुक्त किया गया था।

इन अधिकारियो को विभिन्न धर्मावलबियो पर निगाह रखनी होती थी। अपने राजादेशो मे अशोक खुले तौर पर कहता है कि धर्म महामात्रो का काम यह पता चलाना है कि बौद्ध ब्राह्मण जैन तथा आजीवक धर्म पर किस प्रकार आचरण करते है।

इस नीति ने आबादी के विभिन्न समूहो पर नियत्रण रखने और पार्थक्य-वाद का निरोध करने को सभव बना दिया था।

अशोक का सत्ताच्युत किया जाना और साम्राज्य का पतन

मौर्य साम्राज्य के अतिम काल के किसी भी प्रकार अध्ययन मे अशोक के बारे मे बौद्ध कथाए बहुत दिलचस्पी की हैं, क्योकि इन वर्षो के बारे मे पुरालेखीय सामग्री बहुत ही अपूर्ण है।

अपने राज्यकाल के अतिम वर्षो मे अशोक के सत्ताविहीन कर दिये जाने के ढग के बार मे प्रचलित असाधारण कथाए विशेषकर महत्व की है। ये कथा विवरण अलग अलग समयो मे रची गयी भिन्न भिन्न प्रकार की रचनाओ मे पाये जाते हैं।

इन कथाओ से प्रकट होता है कि अपने राज्यकाल के अतिम वर्षो तक अशोक ने बुद्ध की शिक्षाओ के प्रचार को बढावा देने के लिए बौद्ध सघ को मुक्तहस्त दान दे देकर राजकोष को खाली कर दिया था। उसी समय सम्राट के पौत्र सपदी (सप्रति) को सिहासन का उत्तराधिकारी घोषित किया गया था। उच्च राज्याधिकारियो ने उसे सम्राट की भिक्षुओ को दी जानेवाली बेहिसाब भेटो के बारे मे बताया और उनके अविलब रोके जाने की माग की। सपदी की आज्ञा से बौद्ध सघ को दान देने के अशोक के निर्देशो को पूरा नही किया गया। वास्तव मे अब सत्ता सपदी के हाथो मे केद्रित हो गयी थी। इन कथाओ के अनुसार अशोक को यह कटु सत्य स्वीकार करना पडा कि उसके आदेश अब बेजान शब्द मात्र बन गये हैं और उसे अपनी सत्ता से वचित कर दिया गया, यद्यपि औपचारिक रूप मे वह अब भी सम्राट बना रहा।

बौद्ध स्रोतो से प्राप्य तथ्य पूर्णत काल्पनिक प्रतीत हो सकते है, किंतु

वास्तविकता यह है कि व अशोक के राज्यकाल के अतिम चरण म व्याप्त सगीन राजनीतिक परिस्थिति का पूर्णत विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत करते हैं। उसकी बौद्धसमथक नीति न सनातनी ब्राह्मण तथा जैन धर्म के अनुगामियो म गभीर असतोष पैदा कर दिया था। कई स्रोतों के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि सपदी जैन मतावलबी था और उसे शक्तिशाली राज्याधिकारियो का समर्थन प्राप्त था। इस समय तक देश आर्थिक सकटो का सामना करने लग गया था और देश के विभिन्न भागों मे विद्रोह फूट रहे थे। तक्षशिला म फूट पडनेवाला विद्रोह इनमे सबसे प्रचड विद्रोहो मे था, जहा स्वय स्थानीय शासक ही विद्रोहियो का नेतृत्व कर रहा था।

स्रोत सामग्री से पता चलता है कि महारानी तिष्यरक्षिता भी, जो बौद्ध मत की विरोधी थी, इस षडयत्र मे शामिल थी। अशोक के राज्यकाल के अतिम राजादेशो मे से एक पहले की भाति अशोक के नाम से नही, बल्कि महारानी के नाम से जारी किया गया है। यह आदेश विभिन्न दानो के बारे मे है अर्थात उसी प्रश्न के बारे मे कि जिसके परिणामस्वरूप बौद्ध स्रोतो के अनुसार राजा और उसके परिकर का आपस मे टकराव हुआ था। यह माना जा सकता है कि पुरालेखीय सामग्री और बौद्ध परपरा मे यह साम्य आकस्मिक ही नही है। यह अशोक के राज्यकाल के अतिम वर्षो मे व्याप्त वास्तविक स्थिति को ही प्रतिबिंबित करता है।

इन स्रोतो से यह भी प्रकट होता है कि अशोक के उत्तराधिकारी साम्राज्य की एकता को नही कायम रख पाये। प्राप्त सूचना के आधार पर माना जा सकता है कि साम्राज्य पहले दो भागो मे विभाजित हुआ – पूर्वी भाग, जिसका केंद्र पाटलिपुत्र था और पश्चिमी भाग जिसका केंद्र था तक्षशिला। उपलब्ध स्रोतो म अशोक के प्रत्यक्ष उत्तराधिकारियो से सबद्ध अशो म बहुत म अतर्विरोध हैं, कितु यह माना जा सकता है कि पाटलिपुत्र मे या तो सपदी राजा बना या दशरथ जिसे कुछ पुराणो म अशोक का पुत्र और उत्तराधिकारी बतलाया गया है। अशोक की ही भाति दशरथ ने भी देवानांपिय की उपाधि धारण की। उसन आजीवको को सरक्षण प्रदान किया, जैसा कि उन्हे दान म गुफाए देन के बारे मे उसके राजादेशो स प्रकट होता है। आनेवाले कुछ वर्षो में मगध के सिंहासन पर एक के बाद दूसरे राजा के बैठने का सिलसिला चलता रहा और लगभग १८० ई० पू० मे मौर्य वश के अतिम प्रतिनिधि बृहद्रथ की उसके सेनापति पुष्यमित्र के नेतृत्व म रचे षडयत्र के परिणामस्वरूप हत्या कर दी गयी। इसके बाद मगध के राजसिंहासन पर शुग वश का आरोहण

हुआ, जो भूतपूर्व मौर्य साम्राज्य के पुराने गौरव को बनाये रखने में असफल रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि शुंग वंश के सत्ता में आने के समय तक उत्तर पश्चिमी प्रदेश और दक्कन के कुछ भाग साम्राज्य के अधिकार से निकल चुके थे।

मौर्य शासकों के साथ उनके राज्यकाल के अंतिम दौर में सेल्यूकसवंशी राजाओं के संबंधों के बारे में पोलीबियस की कृतियों में रोचक सामग्री मिलती है। उसके अनुसार विख्यात सेल्यूकसवंशी सम्राट अंतिओकस महान (२२३–१८७ ई० पू०) ने पूर्व में अपनी विजययात्राओं के बाद हिंदुकुश पर्वतों को पार किया और भारतीय सम्राट सोफागसेनस (प्रत्यक्षतः मौर्य राजा सुभगसेन) के साथ अपने संबंध को पुनःस्थापित किया। इसके बाद अंतिओकस को आर्कोसिया पर चढ़ाई करने के लिए भारत में हाथी दिये गये। इससे यह संभव लगता है कि २०६ ई० पू० तक मौर्य राजा इस स्थिति में नहीं रह गये थे कि अंतिओकस के आर्कोसिया में प्रवेश करने को रोक सकें। न इस तथ्य से ही इंकार किया जा सकता है कि इस समय तक यह प्रदेश साम्राज्य का अंग नहीं रह गया था। लेकिन फिर भी अंतिओकस को सोफागसेनस को ध्यान में रखना पड़ा था। यही कारण है कि उसने सेल्यूकसवंशी और मौर्य शासकों में पहले के मैत्री संबंधों को फिर से स्थापित किया।

शुंगवंशी और भारतीय यूनानी आक्रमण

शुंग काल में "पश्चिमी प्रश्न" सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक समस्या बन गया। पतंजलि के ग्रंथ महाभाष्य के अनुसार यवनों (भारतीय यूनानियों, जिन्हें यूनानी-बाख्त्री भी कहा जाता है) की सेना ने भारत के साकेत तथा माध्यमिक नगरों को घेर लिया। इस तथ्य का 'युगपुराण' में भी उल्लेख है जिससे यह पता चलता है कि यवन सेना ने साकेत से पाटलिपुत्र की तरफ बढ़ना शुरू किया, लेकिन बाद में स्वयं सेना में ही आंतरिक कलह के परिणामस्वरूप उसे पाटलिपुत्र की घेरेबंदी को खत्म करना पड़ा।

ऐसा लगता है कि भारतीय-यूनानी आक्रमण दूसरी सदी ई० पू० के मध्य में, पुष्यमित्र के राज्यकाल में हुआ होगा। उस समय भारतीय-यूनानियों का राजा मेनांदर (मेनेंद्र) था।

भारतीय यूनानियों के साथ टक्करें पुष्यमित्र के उत्तराधिकारियों के राज्यकालों और विशेषकर उसके पौत्र वसुमित्र के राज्यकाल में भी हुईं।

लेकिन वसुमित्र ने उन पर शानदार जीत हासिल की, जिसके बाद शुगो और भारतीय-यूनानियो मे सबध शातिमय हो गये। पुरालेखीय प्रमाण से पता चलता है कि यूनानी राजा अतीआलकीदस ने शुग राजा भागभद्र के दरबार म अपना दूतमडल भेजा था। दूतमडल विदिशा गया था, जहा प्रत्यक्षत शुग राजाओ की राजधानी स्थानातरित हो गयी थी।

सौ साल स अधिक तक शुगो ने अपनी सत्ता को बनाये रखा। बाद म सिहासन कण्व वश (६८-२७ ई० पू०) के अधिकार मे चला गया, जिनके अधीन विकेद्रीकरण की प्रक्रिया तेजी के साथ चलती रही। साम्राज्य के कई भाग उससे अलग हो गये और नये स्थानीय राजवश अस्तित्व मे आते गये। यह कहना कठिन है कि इस आशय के कथन कितने विश्वसनीय है कि शुगो की नीति बौद्धविरोधी थी विशेषकर पुष्यमित्र के प्रसग मे, किंतु यह स्पष्ट है कि अब बौद्ध धर्म को अशोक के राज्यकाल जैसा प्रबल समर्थन प्राप्त नही था। शुग काल मे विष्णु की उपासना काफी व्यापक हो गयी थी, जैसा कि शुग राजाओ के शिलालेखो से पता चलता है। वसुदेव की उपासना विशेष महत्वपूर्ण थी।

पुराणो स प्रकट होता है कि मौर्यो ने मगध के सिहासन पर १३७ वर्ष अपना अधिकार बनाये रखा। यह महती राजनीतिक घटनाओ का, सामाजिक तथा सास्कृतिक क्षत्रो म महत्वपूर्ण विकास का जमाना था, जिसने प्राचीन भारतीय समाज तथा राज्य के क्रमविकास पर गहरी छाप डाली। सयुक्त भारतीय राज्य के निर्माण के परिणामस्वरूप नाना जाति लोगो के बीच अत क्रिया और सचार हुआ, उनकी सस्कृतियो और परपराओ का अत मिश्रण हुआ जिससे सकीर्ण कबायली भेद क्षीण हुए। साथ ही अन्य देशो के साथ सपर्को का अधिक व्यापक पैमाने पर विकास हुआ। मौर्य काल म भारतीय सस्कृति का दक्षिण पूर्वी एशिया के राज्यो और श्रीलका मे प्रसार हुआ। इस काल म एसी बहुत सी राजकीय सस्थाओ की नीव पडी, जिन्हे बाद म आनेवाले वर्षो म विकसित होना था।

अपनी शक्तिशाली सत्ता, प्रबल राजकीय तत्र और प्रशासन व्यवस्था के बावजूद विभिन्न जनो तथा प्रदेशो को निकट लाने की ओर निदेशित अपनी धर्मविजय की नीति के बावजूद मौर्य शासक इस अस्थिर एकता को भी नही कायम रख सके। मौर्य साम्राज्य विकास की अत्यत भिन्न भिन्न अवस्थाओ म भिन्न भिन्न जनो और जातियो का बहुरगी जमाव ही था।

मगध-मौर्य कालो मे दकन और दक्षिणी भारत

दक्षिणी भारत और इस क्षेत्र के राज्यो के बारे म भारतीय उपमहाद्वीप के इस भाग म राजनीतिक आर्थिक तथा सास्कृतिक विकास के बारे मे उपलब्ध सामग्री इसी काल अर्थात ई० पू० पहले सहस्राब्द के उत्तरार्ध मे उत्तरी भारत के इतिहास से सबद्ध सामग्री की तुलना म कही कम प्रचुर और कम फलदायी है। दक्षिणी भारत की स्थानीय भाषाओ मे साहित्यिक स्रोत ईसवी सवत की पहली शताब्दिया मे जाकर ही प्रकट होना शुरू करते है और इस कारण मुख्य स्रोत वहा पाये जानवाले प्राकृत तथा सस्कृत शिलालेख ही है।

अशोक के राजादेशो म उसके साम्राज्य के सीमाओ के बाहर के दक्षिणी राज्यो की सूची दी गयी है – य पाडय चोल चेर सत्यपुत्र तथा केरलपुत्र राज्य है। अपनी इसमे कुछ पहले की कृति मे मेगस्थनीज पाड्य राज्य का उल्लेख करता है, जिसस यह प्रकट होता है कि यह राज्य कम से कम चौथी सदी ई० पू० के अत तक अस्तित्व म आ चुका होगा। यह एक रोचक तथ्य है कि सिकदर के अभियान म भाग लेनवाले लेखको न दक्षिणी भारत और श्रीलका तक क बारे म सुना था। इनमे से एक ओनेसीक्रितस ने सागर मार्ग द्वारा श्रीलका की यात्राओ का उल्लेख किया है। मगध तथा मौर्य राजाओ के युग म उत्तरी तथा दक्षिणी भारत क परस्पर सपर्क अधिक दृढ और नियमित आधार पर विकसित हो गये थे। कात्यायन (चौथी शताब्दी ई० पू०) और बाद मे पतजलि -- दोनो वैयाकरणो की कृतियो मे दक्षिणी भारतीय प्रदेशो के उल्लेख मिलते है। उत्तरी भारत की सस्कृति और दक्षिण म प्रसार कर रही थी और आर्थिक सबध बढ रहे थे। दक्षिणी भारत के कुछ भागो के मौर्य साम्राज्य का अग बन जाने के बाद यह प्रक्रिया और तेज हो गयी। 'अर्थशास्त्र' मे दक्षिणी भारत के कई मालो के बारे मे और वहा के व्यापार मार्गो के बारे मे भी कई विवरण मिलते है।

मौर्य शासको के शासनकाल मे बौद्ध धर्म का दक्षिण मे भी प्रसार होने लगा, जैसा कि दकन के विभिन्न भागो मे खोजे गये तीसरी और दूसरी सदी ई० पू० के बौद्ध शिलालेखो से प्रमाणित होता है।

मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद दकन के कई प्रदेश, जो साम्राज्य के अग रहे थे अपनी स्वतत्रता के लिए सघर्ष करने लगे और शुग राजा हथियारो के जोर पर ही विदर्भ मे शाति स्थापित करने मे सफल हो सके,

पाटलिपुत्र प्राचीन काल के विशालतम नगरो मे एक था। सिकदरिया का आकार उसका एक तिहाई ही था और वत्स राज्य की राजधानी कोशाबी का आकार तो ग्यारह गुना कम था। मेगस्थनीज ने लिखा है कि साम्राज्यिक राजधानी मे ५७० बुर्ज थे और उसके साठ से अधिक नगरद्वार थे।

मुख्य निर्माण सामग्री अब भी लकडी ही थी। पत्थर का विरल अवसरो पर ही उपयोग किया जाता था। अशोक का राजप्रासाद भी लकडी का ही बना हुआ था जैसा कि उत्खननो से पता चला है। लकडी का विशेष पद्धति से परिष्कार किया जाता था, जिससे वह सदियो तक क्षय का शिकार नही हो पाती थी। अशोक क राज्यकाल के छ सदी बाद भी चीनी यात्री फा-स्यान (फा-ह्यान) पाटलिपुत्र मे उसके राजप्रासाद की भव्यता को देखकर दग रह गया था और उसने लिखा है कि उसे मनुष्यो ने तो क्या देवताओ ने ही बनाया होगा। लकडी को परिरक्षित करने की प्रविधियो और निर्माण विधियो ने इस शताब्दी के आरभ मे राजप्रासाद के अवशेपो का सबसे पहले अध्ययन शुरू करनेवाले पुरातत्वज्ञो पर निश्चय ही गहरा प्रभाव डाला होगा।

इस युग मे हस्तशिल्प भी अत्युच्च स्तर पर पहुच गया था विशेपकर कपडे की बुनाई, धातुकर्म और आभूपणनिर्माण म। वाराणसी, मथुरा और उज्जयनी मे बुने सूती कपडे को श्रेष्ठतम कपडा माना जाता था। कपडे का बरीगाजा (भडौच) बदरगाह से पश्चिम को निर्यात किया जाता था। गधार अपने ऊनी कपडो के लिए मशहूर था।

अर्थशास्त्र मे विशेष शाही कर्मशालाओ का वर्णन किया गया है, जिनमे धातुओ का ससाधन किया जाता था और जिन पर राज्याधिकारी कठोर नियत्रण रखते थे। राजकीय आयुधशालाओ के अलावा धातुकर्मियो के अपने निजी उद्यम भी थे, जिनमे वे लोगो के आदेशो पर सामान बनाया करते थे। गावो मे कुम्हारो, वढइयो और लोहारो को विशेप महत्व प्राप्त था।

शिल्पियो की अपनी श्रेणिया (गिल्ड) हुआ करती थी। कई बातो के लिहाज से वे स्वतत्र थी और उनकी अपनी नियमावलिया हुआ करती थी। श्रेणी के सदस्य शिल्पियो को नियमावली का पालन करना होता था और आवश्यकता पडने पर श्रेणी अपने सदस्यो को सहायता तथा समर्थन प्रदान करती थी। राज्य श्रेणियो के कार्यकलाप पर नियत्रण स्थापित करने का प्रयत्न करता था, उसने उनके लिए अपना पजीयन करना अनिवार्य कर दिया और उनके लिए अधिकारियो को सूचित किये बिना देश के एक प्रदेश से दूसरे मे जाकर बस जाना वर्जित कर दिया था।

व्यापारिया क भी इसी प्रकार क अपन मगठन थे। शिल्पा की ही भाति व्यापार म भी विशिष्टीकरण था। हर विशेष प्रदेश क व्यापारी एक विशेष प्रकार क माल या सामान का व्यापार करत थ। मगध-मौर्य काला म विभिन्न प्रदेशो के बीच सचार का अधिक व्यापक जाल स्थापित हो गया, सडका का निर्माण किया गया और विभिन्न राज्या तथा प्राता की राजधानिया के बीच विशेष व्यापार मार्गो की स्थापना की गयी। इनम मबस प्रसिद्ध उत्तरी तथा दक्षिणी राजमार्ग थ। मेगस्थनीज न उत्तर पश्चिमी प्रात से लेकर पाटलिपुत्र तक और वहा मे और भी पूर्व तक जानवाले राजमार्ग के बारे मे लिखा है।

स्थलमार्ग स व्यापार क अलावा नदीमार्गो तथा समुद्रमार्गो का भी उपयोग होन लगा था। ज्ञात सामग्री से हम भारतीय व्यापारियो के छ छ महीने तक भी चलनेवाली खतरनाक समुद्री यात्राओ पर जान के बारे म पता चलता है। श्रीलका ब्रह्मदेश (बर्मा) और दक्षिण अरब को जहाज जाया करते थे। यूनानी देशो का बहुत से भारतीय मालो – मसालो, रत्नो, हाथीदात की बनी चीजो तथा विरल प्रकार की लकडियो का भी – निर्यात किया जाता था।

लगभग इसी समय मुद्रा का भी आविर्भाव हुआ और उसका सचलन होने लगा – आरभ मे धातु क टुकडा के रूप मे, जिन्होने धीरे धीरे विशिष्ट आकार ग्रहण कर लिये और विभिन्न प्रतीको तथा लेखो से युक्त होने लगे।

पाचवी चौथी शती ई० पू० म आहत मुद्रा (ठप्पेदार सिक्को) का प्रचलन शुरू हुआ। ये सिक्के अधिकाशत ताबे या चादी के हुआ करते थे। अखमनी साम्राज्य मे समामेलित इलाको म पारसीक सिगली का चलन शुरू हो गया। उत्तर-पश्चिम म विनिमय की इकाई यूनानी सिक्का तेत्राद्राख्मा था।

पुरातत्वज्ञा द्वारा मौर्यकालीन सस्तरो मे खोजे गये आहत सिक्को की विशेषता अनेक बारबार प्रकट होनेवाले प्रतीक हैं जो सभवत मौर्य शासका क चिह्न रहे होगे। लिखित स्रोतो मे विभिन्न सिक्को के नाम मिलते हैं – कर्ष अथवा कार्षापण (चादी और ताबे का), काकणि (ताबे का) और सुवर्ण, जो प्रत्यक्षत सोने का होता था।

अर्थशास्त्र मे सिक्को की ढलाई और मुद्रा सचलन के काम का अधीक्षण करनेवाले अधिकारिया के कर्तव्यो को भी सूचीबद्ध किया गया है। उस समय तक उधार व्याज तथा सूद और गिरवी (रेहन) की अवधारणाए भी प्रचलन म आ चुकी थी।

भूस्वामित्व

पहले सहस्राब्द ई० पू० के उत्तरार्ध मे निजी भूस्वामित्व प्रणाली का और भी विकास हुआ। प्राचीन भारतीयों को जमीन के स्वामित्व और जमीन के उपयोग मे लाये जाने के बीच अतर की स्पष्ट समझ थी और उनके यहा इन्हे व्यक्त करने के लिए अलग-अलग शब्द थे। स्वामित्व की अवधारणा "स्व" तथा उससे व्युत्पन्न सज्ञाओ के साथ सबद्ध थी। जमीन के अस्थायी कब्जे को व्यक्त करने के लिए भुज भोग', 'भुक्ति , आदि शब्दो का प्रयोग किया जाता था। सूत्रो तथा शास्त्रो मे लोगो के जमीन को खरीदने या खोजने के बाद सपत्ति के स्वामी बन जाने के मामलो के उल्लेख हैं, लेकिन साथ ही यह भी इगित किया गया है कि व्यक्ति जिस सपत्ति का उपयोग करता आया है, उस पर उसके स्वामित्व का आरभ केवल उसकी विधिक पुष्टि होने के बाद और वैध अधिकारो के आधार पर ही हो सकता है। ये सिद्धात अन्य प्रकारो की सपत्ति की तरह भूमि पर भी लागू होते थे। मनु के 'मानव धर्मशास्त्र' (दूसरी शती ई० पू० से दूसरी शती ई०) मे जो 'मनुस्मृति' के नाम से भी विख्यात है कृषिभूमि का सपत्ति के मुख्य प्रकारो मे उल्लेख किया गया है।

देश मे भूमि अनेक विभिन्न श्रेणियो मे विभाजित थी – निजी भूमि सामुदायिक भूमि, राजभूमि।

निजी भूस्वामियो की कई अलग-अलग श्रेणिया थी – धनी भूस्वामियो के अलावा जमीन के छोटे छोटे खडो के निर्धन स्वामी भी थे। कई लोगो के पास तो इतनी अधिक भूसपत्ति थी कि जिसे जोतने के लिए सैकडो हलो की जरूरत पडती थी। उन पर कृषि कार्य दास और उजरती मजदूर किया करते थे।

जहा बडी भूसपत्तियो का क्षेत्रफल १,००० कडी (१ कडी=लगभग ०.२५ हैक्टर) तक भी हो सकता था, वहा अत्यत छोटी छोटी जोते भी हुआ करती थी। छोटी जोतो के मालिक उन्हे खुद ही, अपने परिवारवालो की सहायता से काश्त किया करते थे। सापत्तिक अधिकार सरक्षित थे – किसी अन्य की जमीन पर अवैध रूप से कब्जा करना भारी जुरमानो द्वारा दडनीय था और ऐसा करनेवालो को खुले आम चोरो की तरह दागा जाता था। शास्त्रो के अनुसार भूमि के अवैध कब्जे के लिए वही दड निर्धारित थे, जो चोरी के लिए थे। मनुस्मृति' मे लिखा है कि अगर किसी आदमी के पास कोई जमीन तो नही है लेकिन बीज है और उसे वह किसी और के खेत मे

जा सकता है। ... था। उसकी उपज पर दूसरा कोई अधिकार न होता। बल्कि व मालिक ही उसका सर्वाधिकारी होता था। जिसे वह बेच सकता था, दान कर सकता था, गिरवी रख सकता था अथवा पट्टे पर दे सकता था। प्राचीन शासकों में से किसी शासक द्वारा अपना राज्य के कुछ भाग को दान कर दिए जाने, किसी व्यापारी द्वारा राजा से उसको खरीदे जाने के उदाहरण मर्यादा आदि में प्रमाण मिलता है। इस प्रकार निष्कर्ष तो यह स्पष्ट (जिसका मूल समर्थन भाष्यकारों का भी है) कि किसी भी व्यक्ति को भूस्वामित्व का अधिकार होता है। स्मारक सामग्री में इन्हें प्रमाणों में मान्य नहीं माना और व्यक्तिगत मत उस समय व्यापक वस्तुस्थिति का प्रतिबिंब नहीं रहता है।

नारदस्मृति (चौथी सदी ईसवी सदी ई०) में एक विधान का उल्लेख है जिसके अनुसार राजा को भी निजी स्वामित्व के मूलाधारों का उल्लंघन करने अर्थात किसी व्यक्ति के मकान अथवा भूसंपत्ति को अधिकृत करने की अनुमति नहीं थी लेकिन राजा भूस्वामियों के अधिकारों को सीमित करने का प्रयास करता था। राजा निजी भूस्वामियों की जमीनों पर कर लगाता था और दूसरी तौर पर वह जमीन की हालत पर अच्छी तरह निगाह रखा करता था। अगर भूस्वामी बोआई या कटाई के समय अपनी जमीन को खुद ही छोड़ देता था तो राजा उस पर जुर्माना कर सकता था। राज्य उन लोगो से भी जुर्माने वसूल करता था कि जो अपने कर नही चुकाते थे और यह उसकी प्रशासनिक भूमिका का एक स्वीकृत अग था किंतु राज्य को निजी भूस्वामियो की जमीनो को जब्त करने का अधिकार नही था। बृहस्पतिस्मृति (तीसरी-चौथी सदी ई०) मे इस बात की तरफ ध्यान खीचा गया है कि अगर राजा किसी भूस्वामी से उसकी भूमि को छीन लेता है और उसे किसी अन्य को दान मे दे देता है तो यह विधिसगत नही होगा। राज्य इस बात का पूरा ध्यान रखता था कि भूमि की बिक्री से सबधित नियमो का पालन किया जाये और यदि इसका उल्लघन होता था, तो नियम का उल्लघन करनेवालो को अर्थदड दिया जाता था।

राज्य की ही भाति ग्राम समुदाय भी निजी भूस्वामित्व को और विशेषकर जमीन की उन लोगो को कि जो समुदाय के सदस्य नही होते थे बिक्री को सीमित करने का प्रयास करता था। जब जमीन बेची जाती थी तो सबधियो और पडोसियो को पूर्व क्रय अधिकार दिया जाता था। उनकी रायो को तब भी ध्यान मे रखा जाता था कि जब खासकर गावो और जोतो की सीमाओ

के बारे में विवाद पैदा हो जाते थे। समुदाय अपने ही सदस्यों से भी भूस्वामियों के अधिकारों की रक्षा करता था। संयुक्त स्वामित्व में आनेवाली जमीनों – चरागाहों, सामुदायिक जमीन की सीमा में इमारतों और सड़कों – के लिए स्वयं समुदाय ही जिम्मेदार था।

देश की भूसंपदा का कुछ भाग राजकीय भूमि और राजा की निजी जमीनों का होता था। राजकीय भूमि में वन, खान और परती जमीन आते थे। राजा की भूसंपत्ति (स्वभूमि) में राजभूमि (सीता) आती थी। राजभूमि के प्रबंध के लिए विशेषकर नियुक्त अधिकारी होते थे। राजा को गांवों में जमीन के छोटे छोटे टुकड़े रखने की अनुमति थी। इन भूखंडों के साथ वह जैसा चाहे, वैसा कर सकता था – वह उन्हें दान कर सकता था, बेच सकता था या पट्टे पर दे सकता था। अगर वह चाहता, तो अपनी स्वभूमि में आनेवाली जमीनों के साथ भी ऐसा ही कर सकता था। स्वभूमि को दास और उजरती मजदूर तथा विभिन्न प्रकार के असामी काश्तकार काश्त करते थे। उनमें से कुछ आधी उपज के बदले उसे काश्त करते थे, तो कुछ के पास उपज के चतुर्थांश से अधिक नहीं रहने दिया जाता था। इसके अलावा राजकीय भूमि को काश्त करनेवाले असामी काश्तकार भी होते थे, जिन्हें अपनी जोतों के अस्थायी उपयोग का अधिकार दे दिया जाता था। राजकीय भूमि को काश्त करनेवाले असामी काश्तकारों की स्थिति राजा की स्वभूमि के असामी काश्तकारों से बेहतर थी। प्राकृतिक साधनों को राज्य की संपत्ति माना जाता था, जिसका खनन पर भी एकाधिकार था। इस प्राचीन काल के स्रोतों (और विशेषकर 'अर्थशास्त्र') में जमीन की दो श्रेणियों में उनसे प्राप्त राजस्व के अनुसार स्पष्ट विभेद किया गया है – राजा की स्वभूमि से सीता उगाही जाती थी और निजी भूसंपत्ति पर लगनेवाला कर भाग कहलाता था।

इन अंतरों को मेगस्थनीज नहीं समझ पाया था, जिसका यह खयाल था कि भारत में सारी जमीन राजा की ही होती है। प्रत्यक्ष है कि राजधानी में ही निवास करने के कारण यह राजदूत राजा की स्वभूमि से ही सुपरिचित था और उसके प्रशासन को उसने भ्रांतिवश भारत भर में भूप्रशासन जैसा मान लिया था।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, राजा राज्य में सारी कृष्टभूमि का स्वामी नहीं था। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में यह स्पष्ट कहा गया है कि राजा कर भूस्वामी की हैसियत से नहीं, बल्कि अपने राज्य की प्रजा की रक्षा करनेवाले नृपति की ही हैसियत से लगाता है। उदाहरण के लिए,

मनुस्मृति म लिखा है कि अगर राजा अपने प्रजाजनो की रक्षा कि बिना कर लगाता है तो वह सीधा नरक म जायगा। इस तरह के गद्य की एक प्राचीन महाकाव्य में ' फसल क छठे भाग को चुरा लेनवाला कहा गया है।

सामाजिक सबधो के जटिल चित्र और निखित स्रोता म भी भूस्वामित्व के विभिन्न प्रकारो क बारे म तथ्यो से यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्वानो ने प्राचीन भारत मे भूस्वामित्व के स्वरूप के प्रसग म भाति भाति की परिकल्पनाए क्यो पेश की है। कुछ विद्वानो का विश्वास था कि प्राचीन भारत म निजी स्वामित्व नही था, राजा ही सर्वोच्च भूस्वामी था या भूमि पर सामुदायिक स्वामित्व था। तथापि लिखित स्रोत यही दिखाते है कि प्राचीन भारत मे भूस्वामित्व के विभिन्न रूपो का अस्तित्व था, जब भूखड कभी-कभी एक तरह से कई सहस्वामियो की सपत्ति भी हुआ करते थे। इसके अलावा मौर्य साम्राज्य की परिधि मे आनेवाले विराट भूप्रदेशो की बात करते समय भूस्वामित्व के स्वरूप जैसे प्रश्न के एकदम असदिग्ध उत्तर की अपेक्षा करना कदाचित ही उचित होगा।

गगा घाटी म और मगध म जहा राजा की शक्ति विशेषकर प्रबल थी राजा की स्वभूमियो और बडी भूसपत्तियो की भूमिका सामुदायिक स्वामित्व क अधीन भूमि मे अधिक महत्वपूर्ण थी, जब कि देश के उत्तर-पश्चिमी भाग मे सामुदायिक स्वामित्व की परपराए अधिक सशक्त थी।

प्राचीन भारत के ग्राम समुदाय

मगध मौर्य युगो के सामाजिक तथा आर्थिक स्वरूपो के सबसे महत्वपूर्ण तत्वो म एक ग्राम समुदाय था। इसकी परिधि मे आबादी का एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा आता था – ग्राम समुदाय के स्वाधीन (पूर्ण) सदस्य अर्थात कृषक। अभाग्यवश ग्राम समुदाय के स्वरूप उसके ढाचे तथा उसकी सरचना के बारे मे प्राप्य स्रोत अधिक नही है किंतु वे इसी तथ्य की ओर इगित करत है कि उस समय सामाजिक जीवन का सबसे व्यापक स्वरूप ग्राम समुदाय था यद्यपि साम्राज्य के पिछडे इलाको मे ग्राम समुदाय के कुल अथवा गोत्र पर आधारित आदिम स्वरूपो का भी अभी तक अस्तित्व था। स्रोत सामग्री मे ग्राम समुदायो क लिए ग्राम शब्द का ही उपयोग किया गया है किंतु इसका अर्थ कही अधिक व्यापक है। कभी कभी तीस परिवारवाले ग्रामो का

बात आती है, लेकिन यह सख्या हजार परिवारो तक भी जा सकती थी। प्रत्येक ग्राम की अपनी निर्धारित सीमाए होती थी। कृषिभूमि जोतो मे विभाजित होती थी, जिन पर समुदाय के पूर्ण (स्वतत्र) सदस्यो – कृपको – का स्वामित्व होता था। ग्राम की सीमाओ के भीतर स्थित भूखडो के स्वामियो द्वारा राजा को दिये जानेवाले कर के अलावा एक सयुक्त कर भी उगाहा जाता था, जो प्रत्यक्षत सामूहिक स्वामित्व की भूमि से एकत्र किया जाता था।

सपत्ति व स्वामित्व के आधार पर स्तरीकरण की प्रक्रिया अब तक अच्छी तरह से जड जमा चुकी थी – ग्राम समुदाय के अपनी ही जमीनो को काश्त करनेवाले सदस्यो के अलावा सभ्रातो के एक सस्तर का भी उदय हो चुका था, जो अपनी जमीनो को काश्त कराने के लिए दासो का उपयोग करते थे या उजरती मजदूरो को लगाते थे। ग्राम समुदाय के कुछ सदस्य निर्धनता के शिकार हो जाते थे, अपनी जमीन और कृषि उपकरण खो बैठत थे और इस प्रकार असामी काश्तकारो की तरह काम करने को विवश हो जाते थे। ग्राम समुदाय का निम्नतम सस्तर ही शोषित समूह था। आम तौर पर इन लोगो के पास कोई उत्पादन साधन नही होते थे। ग्रामीण शिल्पी भी कई श्रेणियो मे आते थे। उनम से कुछ अपनी कर्मशालाओ मे अपना स्वतत्र काम करते थे तो कुछ निश्चित पारिश्रमिक पर औरो के लिए काम करते थे। हस्तशिल्प और कृषि के सयोग ने ग्राम समुदाय के सदस्यो के बीच सेवाओ मे विनिमय की प्रणाली को जन्म दे दिया था। यह प्राचीन भारतीय ग्राम समुदाय का एक विशेष लक्षण था और किसी हद तक उसके अतर्मुखी पितृतत्रीय स्वरूप का कारण है।

ग्राम समुदाय मे अभी तक पुरानी सामूहिक परपराओ मे युक्त ऐक्यबद्ध समूह के कुछ लक्षण विद्यमान थे। बौद्ध ग्रथो म सडको की सफाई और जलाशयो के निर्माण मे सामूहिक कार्य का उल्लेख आता है। ग्राम समुदाय के पूर्ण सदस्य धार्मिक त्योहारो सहित अपने सभी उत्सव मिलकर मनाया करते थे। अर्थ शास्त्र मे कहा गया है कि अगर कोई व्यक्ति किसी सामूहिक कार्य मे भाग लेन से इन्कार करता है, तो उस पर जुरमाना किया जाना चाहिए। ग्राम समुदाय समूचे तौर पर अन्य ग्राम समुदायो के साथ या राजा के साथ सपर्क कर सकता था। ग्राम समुदाय अपने पूर्ण सदस्यो के अधिकारो की रक्षा करता था। "ग्राम समुदाय (राज्य की ही भाति) एक ओर तो इन स्वतत्र तथा समान वैयक्तिक सपत्तिस्वामियो के बीच पारस्परिक सबध, बाहरी दुनिया के खिलाफ

उनका एरा है और साथ ही यह उसकी प्रयाभूति भी है।"* ग्राम समुदा का किसी हद तक अपने आतरिक मामलो म स्वायत्तता प्राप्त थी। समुदा के पूर्ण सदस्य ग्राम प्रशासन व विविध प्रश्नो का हल करने के लिए बैठ मे इकट्ठा होकर विचार किया करते थे यद्यपि ग्रामो के प्रधान अब धारे धा अधिकाधिक प्रमुख भूमिका ग्रहण करते जा रहे थे। समुदाय के प्रमुख पहले सभी सदस्यो की सभा म चुना जाता था और फिर उसका राज्याधि कारियो द्वारा अनुमोदन किया जाता था जिसस वह राज्य का प्रतिनिधि ब जाया करता था। समुदाय के केवल पूर्ण-स्वतत्र-सदस्यो को ही मत द का अधिकार था जब कि दास सेवक और उजरती मजदूर सभी तरह राजनीतिक अधिकारो से सर्वथा वचित थे। बहुत सब समय तक ग्राम समुदा एक दूसरे से अलगाव म रहनेवाले स्वावलबी सस्थाए बने रहे, यद्यपि धा धीरे वे कम आत्मनिर्भर और कम अतर्मुखी होते चले गये।

दासप्रथा और उसके विशिष्ट लक्षण

वैदिक काल म अपने मथर प्रारभ की तुलना मे मगध मौर्य युग दासप्रथा का तेजी के साथ विकास हुआ। यद्यपि तत्कालीन स्रोतो से दा और दास श्रम के उपयोग के बारे म बहुत सूचना नही मिल पाती, फिर उनसे प्राचीन भारत म दासस्वामित्व और समाज के ढाचे म दासप्रथा भूमिका के सामान्य चित्र को प्राप्त किया जा सकता है। अभाग्यवश पश्चि यूरोपीय और भारतीय विद्वानो दोनो ने ही प्राचीन भारत म दासप्रथा प्रश्न की ओर पर्याप्त ध्यान नही दिया है। तथापि हाल के वर्षो म इस स्थिति मे कुछ परिवर्तन आया है-इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विशेष कृतियो का प्रकाशन हुआ है (इस क्षेत्र म सोवियत भारतविदो और विशेषकर ग० फ० इल्यीन का अनुसधान कार्य बहुत मूल्यवान है)।

प्राचीन भारतीय इतिहास के इस विशिष्ट काल, अर्थात ई० पू० पहले सहस्राब्द का उत्तरार्ध के सदर्भ मे भी दासप्रथा के प्रश्न पर विचार करते समय इस विराट साम्राज्य के विभिन्न भागो मे विद्यमान सामाजिक सबधो के विभिन्न स्तरो सामाजिक सस्थाओ के जटिल उलझाव और प्रगति का

---

* *Grundrisse der Kritik der Politischen Okonomie* 1857 1858 Moskau 1939 S 379

असमान गतियों, आदि को ध्यान म रखना बहुत महत्वपूर्ण है। अधिकाश स्रोत गगा घाटी और उसके आसपास के इलाकों म दासो और उनके उपयोग क बारे में विवरण प्रदान करते है। इन तथ्यो म निकाले निष्कर्ष मुख्यत मगध तथा कुछ अन्य अधिक विकसित प्रदेशा पर ही लागू होते है।

प्रारभिक बौद्ध ग्रथो तथा कुछ अन्य ग्रथा म दासो को दूसरे लोगो के अधीन आदमी कहा गया है। दास को चीज़ जैसा या एक तरह क घरेलू पशु जैसा समझा जाता था। प्रारभिक महाकाव्यो म दास धन जानवाले आदमी को उसी तरह कृषि पशु कहा गया है कि जैस गायो भेडो बकरियो घोडो को कहा जाता है। धर्मसूत्रा म मृतक की अन्य सपत्ति के साथ दासो की विरासत के बारे म भी नियम निर्धारित किये गय हैं। दासो का भी पशुधन और मूल्यवान धातुआ की तरह ही उत्तराधिकारियो म विभाजित कर दिया जाता था।

आबादी के विभिन्न अगो के पास दास थे। वे राजदरबार मे भी थे और सभ्रात नागरिकों के घरा म और ग्राम समुदायो म भी थ। स्वय अपनी नियति के बार मे दास की कोई आवाज नही थी उसे दान म दिया जा सकता था, बचा जा सकता था गिरवी रखा जा सकता था और जुए मे दाव पर लगाकर हारा भी जा सकता था। बौद्ध ग्रथो म दासो के प्रचलित भावो के बारे मे प्राय उल्लेख मिलत है जो उनके स्वास्थ्य और योग्यताओ क अनुसार भिन्न भिन्न होत थे। कुछ ग्रथा म दासो को दोपाये कहा गया है ताकि उनका चौपाये पशुओं से विभेद किया जा सके। दासो की जिदगी बेहद मुश्किल थी। बौद्ध ग्रथो मे बतलाया गया है कि वे किस तरह लोहे की छडो की मार क आगे और कुछ तो बेडिया पहने भी दड के निरतर भय मे काम किया करत थे। उन्ह खाने के लिए जो दिया जाता था, वह अकसर पतले सत्तू या लपसी के अलावा और कुछ नही होता था।

दास जिस प्रकार प्राप्त किये जाते थे, उसके अनुसार भिन्न भिन्न कोटियो म आते थे। इस समय उपलब्ध प्राचीनतम वर्गीकरणो मे से एक मे तीन प्रकार के दासो का वर्णन किया गया है–जन्मजात दास, क्रीत दास और अन्य देशो मे लाये गये दास (प्रत्यक्षत युद्धबदी)। धीरे-धीरे इस सूची मे दासो के नये प्रकार शामिल होते गये। दासो को मुक्त किये जाने के बारे मे भी नियम बनाये गये। यद्यपि यह निर्णय करना मालिक का काम था कि किसी दास को स्वतत्र किया जाये या नही, दास कुछ विशेष अवस्थाओ मे और विशेष मूल्य पर (विशेषकर अस्थायी दास) अपनी स्वतत्रता को खरीद सकते थे।

अर्थशास्त्र के लेखक कौटिल्य ने दासता के प्रश्न की ओर ध्यान दिया है। वह आजीवन दासों और अस्थायी दासों में स्पष्ट विभेद करता है। वह उन सभी प्रकार के मामलों का उल्लेख करता है, जिनमें स्वतंत्र आर्यों को दासों के स्तर में पड़ने से रोका जा सकता है। 'अर्थशास्त्र' के अनुसार यदि दासस्वामी निर्धारित मोचन शुल्क पाने के बाद भी अस्थायी दास को स्वतंत्र नहीं करता तो उस पर जुर्माना तय किया जा सकता है। 'अर्थशास्त्र' का लेखक अस्थायी दासों के बच्चों को दास नहीं मानता। यह पूर्ववर्ती ग्रंथों में निर्धारित विनियमों से भिन्न है जिनके अनुसार दासों के बच्चे दासों की कोटि में ही आते हैं। कौटिल्य यहां उच्च वर्णों के उन प्रतिनिधियों के हितों की पैरवी कर रहा है जो भाग्य की मार से अपने को दासत्व के बंधन में पाते हैं। वह अस्थायी दासों को गंदे कामों पर लगाने की आज्ञा नहीं देता। अर्थशास्त्र में कहा गया है कि दास को संपत्ति रखने का अधिकार है लेकिन बाद के शास्त्रों ने व्यवस्था देकर दास को संपत्ति रखना ही निषिद्ध नहीं कर दिया बल्कि उसके द्वारा अर्जित हर चीज को उसके स्वामी को दिया जाना भी अनिवार्य बना दिया।

अर्थशास्त्र राज्य के दासों की स्थिति में कुछ तरतीब और स्पष्टता लाने तथा इन मामलों में कुछ यथार्थता लाने के प्रयासों को प्रतिबिंबित करता है जो उस समय तक बहुत महत्व प्राप्त कर चुके थे।

समाज के समग्र ढांचे में दासों की स्थिति से संबंधित सबसे महत्वपूर्ण प्रश्नों में एक उत्पादन में आर्थिक कार्यकलाप के आधारिक क्षेत्रों में दास-श्रम की भूमिका का प्रश्न है।

स्रोत सामग्री में इसका उल्लेख आता है कि दास श्रम का कृषि में प्रयोग किया जाता था। दासों का राजा की स्वभूमियों पर भी उपयोग किया जाता था जहां 'अर्थशास्त्र' के प्रमाण के अनुसार बोआई का काम दासों या उजरती मजदूरों और जुरमाने का 'एवजी काम' करनेवाले लोगों के लिए ही निर्धारित काम था। दासों का बड़े निजी खेतों पर भी प्रयोग किया जाता था। वे जुताई करते थे, बोआई करते थे और फसल बटोरते थे। जातकों में दासों के वर्णन आते हैं, जो उजरती मजदूरों के साथ-साथ पेड़ों को गिराकर जमीन को खेती के लिए साफ करते थे। छोटे भूखंडों के मालिकों के पास भी कभी-कभी दास होते थे, लेकिन निस्संदेह थोड़े ही। जातकों में ऐसे परिवारों के ही अधिकतम उल्लेख आते हैं, जिनके पास एक दास या एक दासी थी। दास बौद्ध समुदाय के सदस्य नहीं बन सकते थे, लेकिन संघ में ऐसे मजदूर काम

करते थे, जिनकी हैसियत लगभग दासो जैसी ही होती थी—वे विहारो की जमीनो को काश्त करते थे या अन्य भिन्न भिन्न कार्य किया करते थे। शिल्पोद्योग मे भी दास श्रम का उपयोग किया जाता था यद्यपि उसके उल्लेख बहुत कम मिलते है।

प्राचीन भारतीय समाज मे प्रचलित दासप्रथा के विशिष्ट लक्षणो मे सर्वोपरि उसकी अपरिपक्वता और उसका पितृतत्रीय स्वरूप है। दास श्रम उजरती स्वतत्र मजदूरो के श्रम से बहुत कुछ समान था। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जिन बहुत से स्रोतो मे दास श्रम के बारे मे हवाले मिलते हैं उनमे इसे उजरती मजदूरो के श्रम की बराबरी का ही बताया गया है। 'अर्थशास्त्र' तो दासो के और कर्मकरो (उजरती मजदूरो) के स्तर को एक ही समूह के भीतर रखता है।

दासप्रथा का एक और लक्षण दास श्रम का गृहस्थी मे व्यापक उपयोग था जिसका प्राचीन भारतीयो के जीवन मे अत्यधिक महत्व था। निश्चित स्रोतो मे इस प्रकार के दासो के लिए प्रयुक्त शब्दो के बारबार उल्लेख मिलते हैं—घरदास अथवा दासी गृहदास अथवा दासी गेहदास अथवा दासी। गृहस्थी मे दास-श्रम के उपयोग के परिणामस्वरूप स्वामियो और दासो के बीच सबधो मे पितृतत्रीय पुट आ गया था जिसने इस विचार को जन्म दिया कि कुल मिलाकर प्राचीन भारतीय दासप्रथा अत्यत नरम प्रकार की थी। सभवत मेगस्थनीज के व्यवहार मे इस भ्रातिपूर्ण कथन के मूल मे यही कारण है कि सभी भारतीय स्वतत्र थे और उनमे से कोई भी दास नही था।

समूचे तौर पर प्राचीन भारतीय सदर्भ मे अपने अनेक विशिष्ट लक्षणो (पितृतत्रीय वातावरण, दास श्रम की स्वतत्र उत्पादको के श्रम से समानता, अविकसित आर्थिक स्वरूपो का अस्तित्व, आदि) के बावजूद दासप्रथा मगध मौर्ययुगीन समाज की समग्र सरचना मे महत्वपूर्ण भूमिका निबाहती थी। मगध मे जो देश का सबसे उन्नत भाग था, जहा विशाल राजभूमिया थी और बडी स्वभूमियो की सख्या भी खासी बडी थी जटिल सामाजिक सगठन मे प्रत्यक्षत दासस्वामित्व पर आधारित सामाजिक-आर्थिक विरचना का ही प्राधान्य था।

यद्यपि उत्पादन के मुख्य क्षेत्रो मे ग्राम समुदाय के स्वतत्र सदस्यो, असामी काश्तकारो और उजरती मजदूरो के श्रम की भूमिका ही प्रधान थी फिर भी आदिम समाज की तुलना मे दासप्रथा एक प्रगतिशील परिघटना को प्रतिबिंबित करती थी और उसने समाज पर समूचे तौर पर शक्तिशाली प्रभाव डाला।

बटोर लिया करते थ, जो कटाई करनेवालो से वही छूट जाया करते थ।

जहा तक वर्ण व्यवस्था मे स्थिति का प्रश्न है, कर्मकरो को सामान्यत शूद्रो मे ही माना जाया करता था किंतु यह सभव है कि उनमे स्वतत्र ग्रामीण कृषक और शिल्पकार भी होते हो, जो अब कगाली की चपट मे आ जाने के बावजूद वस्तुत वैश्य वर्ण के होते थे।

सामाजिक विभाजन तथा जाति व्यवस्था

मगध मौर्य कालो मे वर्ण तथा जाति व्यवस्थाओ का और अधिक विकास ही नही हुआ, प्रत्युत वे समाज के ढाचे का एक मुख्य तत्व भी बन गयी। समाज का वर्णो मे विभाजन उसके वर्गो म मूलभूत विभाजन के साथ-साथ ही विद्यमान था।

'मज्झिमनिकाय' मे भारत की पडोसी देशो से तुलना की गयी है जिनमे आर्कोसिया मे यवनो (यूनानियो) तथा काबोजो द्वारा आबाद इलाके भी है। ग्रथ मे कहा गया है कि इन देशो मे समाज मे केवल स्वाधीन मनुष्य और दास ही होते हैं, जब कि भारतीय समाज मे चार वर्ण भी है।

इन स्रोत सामग्रियो मे प्राप्य काफी तथ्य यही दर्शाते है कि समाज मे स्वतत्र भारतीय की स्थिति को बहुत हद तक वह वर्ण ही निर्धारित करता था कि जिसमे वह जन्म लेता था। लेकिन साथ ही उस समय जन्म के विरुद्ध सापत्तिक स्थिति भी अधिकाधिक महत्व ग्रहण करती जा रही थी। स्रोत ग्रथो म इस पर जोर दिया गया है कि धन से मनुष्य को यश तथा मान प्राप्त होता है।

ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रथ वर्ण व्यवस्था के समग्र स्वरूप को भिन्न-भिन्न तरीके से प्रस्तुत करते है – ब्राह्मण ग्रथो मे सर्वप्रथम स्थान ब्राह्मणो और उनके बाद क्षत्रियो का है, जब कि बौद्ध ग्रथो म ब्राह्मण क्षत्रियो के बाद दूसरे स्थान पर आते है। यह सभव है कि बौद्ध ग्रथ वर्ण व्यवस्था के बारे मे न केवल बौद्ध दृष्टिकोण को ही, बल्कि इस समय तक सामाजिक विभाजन मे आये हुए परिवर्तनो को भी प्रतिबिंबित करते हो।

मेगस्थनीज की कृतिया मौर्य शासको के राज्यकाल मे वर्ण व्यवस्था का एक रोचक चित्र प्रस्तुत करती है, जिसे इस व्यवस्था को और विभिन्न वर्णो के लोगो के बीच सबधो को अपनी आखो देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। मेगस्थनीज ने भारत की सारी आबादी को सात समूहो (भागो) मे विभक्त

दासत्व शोषण का एकमात्र रूप नही था, किंतु साथ ही वह उसका मस्त महत्वपूर्ण रूप था। विचाराधीन काल मे दासप्रथा की वृद्धि हो रहा था।

कर्मकर

मगध मौर्य राजाओ के जमाने मे स्वतन्त्र उजरती मजदूरो का व्यापक उपयोग किया जाता था। ये मजदूर – कर्मकर – उत्पादन के हर क्षेत्र म मौजूद थे – कृषि मे (राजा की और निजी भूस्वामियो की भूमियो पर और ग्राम समुदाय मे) शिल्पकारो की कर्मशालाओ मे और व्यापार मे भी। जुताई बोआई या फसल कटाई के समयो पर अर्थात जब श्रम का अभाव होता था, कमकरो की सख्या बहुत बढ जाती थी। कर्मकर शहरो और गावो म – सभी कही पाये जाते थे। सामान्यत उनके पास कोई भी उत्पादन साधन नही होते थ और वे निधारित उजरत पर या खाने के बदले काम करते थे।

कर्मकर राजभूमियो पर और धनी भूस्वामियो की स्वभूमियो पर भी जमीन को जोतने बोने और जानवरो की देखभाल करने का काम करते थे, ग्राम समुदायो को भी एसे मजदूरो की सहायता लेने की जरूरत पडती ही रहती थी। व खेतो मे काम करत थे सिचाई साधनो का निर्माण करते थे अथवा जानवरो को चराते थे। राजा की स्वभूमियो पर काम करनेवाले कमकरो को एक विशेष दारोगा काम के औजार दिया करता था या उनके जिम्म पशु किया करता था।

उजरती मजदूरो की स्थिति अत्यत दु सह थी, किंतु उनमे से जो लोग राजभूमियो पर काम करते थे उनकी हालत कुछ बेहतर थी। 'अर्थशास्त्र' के प्रमाण के आधार पर कहा जा सकता है कि खेती का काम करनेवाले कर्मकरो को उपज का दसवा भाग दिया जाता था और पशुओं की देखभाल करनेवालो को जिन गायो को वे चराते थे उनके दूध और मक्खन का दसवा हिस्सा दिया जाता था। 'अर्थशास्त्र' मे यद्यपि काम के किये जाने के करार क बारे म विशिष्ट शर्तें निर्धारित की गयी है, फिर भी व्यवहार म हर बात मालिक पर ही निर्भर करती थी। कर्मकरो को जो खाना दिया जाता था वह दासो को दिये जानेवाले खाने से कोई बहुत भिन्न नही होता था। उनकी विपन्नता उन्हे पेट पालने क लिए लगभग किसी भी शर्त पर उजरत करने के लिए विवश कर देती थी। 'अर्थशास्त्र' म बताया गया है कि किस तरह कर्मकर कटाई क बाद खेतो म जाकर उन धान्य पौधो का

बटोर लिया करते थ जो कटाई करनेवालो से वही छूट जाया करते थे।

जहा तक वर्ण व्यवस्था मे स्थिति का प्रश्न है, कर्मकरो को सामान्यत शूद्रो म ही माना जाया करता था किंतु यह सभव है कि उनम स्वतत्र ग्रामीण कृषक और शिल्पकार भी होते हो जो अब कगाली की चपट मे आ जान के बावजूद वस्तुत वैश्य वर्ण के होत थ।

सामाजिक विभाजन तथा जाति व्यवस्था

मगध मौर्य कालो मे वर्ण तथा जाति व्यवस्थाओ का और अधिक विकास ही नही हुआ प्रत्युत वे समाज के ढाचे का एक मुख्य तत्व भी बन गयी। समाज का वर्णो मे विभाजन उसके वर्गो मे मूलभूत विभाजन के साथ-साथ ही विद्यमान था।

'मज्झिमनिकाय मे भारत की पडोसी देशा से तुलना की गयी है जिनमे आर्कोसिया मे यवनो (यूनानियो) तथा काबोजो द्वारा आबाद इलाके भी हैं। ग्रथ मे कहा गया है कि इन दशो मे समाज मे केवल स्वाधीन मनुष्य और दास ही हाते हैं, जब कि भारतीय समाज म चार वर्ण भी है।

इन स्रोत सामग्रियो मे प्राप्य काफी तथ्य यही दर्शाते है कि समाज म स्वतत्र भारतीय की स्थिति को बहुत हद तक वह वर्ण ही निर्धारित करता था कि जिसमे वह जन्म लेता था। लेकिन साथ ही उस समय जन्म के विरुद्ध सापत्तिक स्थिति भी अधिकाधिक महत्व ग्रहण करती जा रही थी। स्रोत ग्रथो मे इस पर जोर दिया गया है कि धन से मनुष्य को यश तथा मान प्राप्त होता है।

ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रथ वण व्यवस्था के समग्र स्वरूप को भिन्न भिन्न तरीके से प्रस्तुत करते है – ब्राह्मण ग्रथो मे सर्वप्रथम स्थान ब्राह्मणो और उनके बाद क्षत्रियो का है, जब कि बौद्ध ग्रथो मे ब्राह्मण क्षत्रियो के बाद दूसरे स्थान पर आते है। यह सभव है कि बौद्ध ग्रथ वर्ण व्यवस्था के बारे मे न केवल बौद्ध दृष्टिकोण को ही, बल्कि इस समय तक सामाजिक विभाजन मे आये हुए परिवर्तनो को भी प्रतिबिंबित करते हो।

मेगस्थनीज की कृतिया मौर्य शासको के राज्यकाल मे वर्ण व्यवस्था का एक रोचक चित्र प्रस्तुत करती है, जिसे इस व्यवस्था को और विभिन्न वर्णो के लोगो के बीच सबधो को अपनी आखो देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। मेगस्थनीज ने भारत की सारी आबादी को सात समूहो (भागो) मे विभक्त

किया है — दार्शनिक, कृषक, पशुपालक और आखेटक, शिल्पकार और व्यापारी, सैनिक, अधीक्षक, पार्षद और पद-निर्धारक। मेगस्थनीज ने अपना वर्गीकरण व्यावसायिक आधार पर किया है, यद्यपि उसने इस विभाजन में चारों वर्णों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया गया है। उसकी सूची में भी ब्राह्मण ग्रंथों की ही भांति पहला स्थान ब्राह्मणों को प्राप्त है, जिससे यह प्रकट होता है कि वह ब्राह्मण परम्परा का अनुसरण कर रहा है।

मगध-मौर्य शासकों के राज्यकाल में ब्राह्मणों ने अपनी उच्च स्थिति को बनाये रखा। विचारधारा और धार्मिक आचरण के क्षेत्र में उनका प्रभाव विशेषकर सशक्त था। राजदरबार में तथा न्यायालयों में मुख्य परामर्शदाता ब्राह्मण ही थे। उनमें से कई अत्यन्त धनी भी थे और विशाल भूसम्पदाओं के स्वामी थे। मगध और कोसल में ब्राह्मणों की स्थिति अपेक्षाकृत मजबूत थी क्योंकि उनके पास बड़ी-बड़ी जमीन थी।

लेकिन फिर भी नयी परिस्थितियों ने सामाजिक पदसोपान के समग्र ढांचे के भीतर ब्राह्मणों की स्थिति को प्रभावित अवश्य किया। ब्राह्मणों को अपने पारम्परिक कार्यों को बदलना पड़ा। इस काल के लिखित स्रोतों में हम ब्राह्मण भूस्वामियों, व्यापारियों, शिल्पकारों और नौकरों के उल्लेख मिलने लग जाते हैं। जहां पूर्ववर्ती ब्राह्मण ग्रंथों में ब्राह्मणों को अत्यधिक आपवादिक मामलों में ही कृषि अथवा व्यापार करने की अनुमति थी, वहां अब उन्हें अन्य वर्णों — क्षत्रियों तथा वैश्यों — के व्यवसाय करने की भी छूट मिल गयी। बौद्ध ग्रंथों में तो ब्राह्मण भृत्यों, लकड़हारों, चरवाहों और निर्धन कृषकों के भी उल्लेख मिलते हैं। उन्हें प्रत्यक्षतः अपनी कठिन स्थिति के कारण ही ऐसे व्यवसायों को अपनाने के लिए विवश हो जाना पड़ा था, जिन्हें वे स्वयं ब्राह्मणोचित नहीं समझते थे। ऐसे मामलों में ब्राह्मण अपने करों से उन्मुक्ति जैसे उल्लेखनीय विशेषाधिकारों से भी वंचित कर दिये जाते थे।

राजनीतिक शक्ति क्षत्रियों के हाथों में थी, जिनके प्रभाव में सशक्त मौर्य साम्राज्य की स्थापना किये जाने के बाद बहुत अभिवृद्धि हो गयी थी। राजा लोग आम तौर पर क्षत्रिय वंशों के ही हुआ करते थे और सेना पर भी उन्हीं का नियंत्रण था। गणराज्यों में क्षत्रियों की शक्ति विशेषकर महत्वपूर्ण थी। मगध-मौर्य कालों में क्षत्रियों ने कई उल्लेखनीय आर्थिक विशेषाधिकार भी प्राप्त कर लिये थे — उनमें से बहुत से विशाल भूसम्पत्तियों के स्वामी बन गये थे। जहां पहले विचारधारा के क्षेत्र में ब्राह्मणों को असीम सत्ता प्राप्त थी वहां अब क्षत्रिय भी इस क्षेत्र में स्वतंत्र भूमिका का दावा करने लग गये।

प्राचीन भारत की प्रमुख राजनीतिक हस्तियो ने क्षत्रियो और ब्राह्मणो मे मेल की आवाज उठायी। अर्थशास्त्र के लेखक ने लिखा कि ब्राह्मणो के मार्गदर्शन के साथ क्षत्रियो की शक्ति अजेय है और सदा अजेय रहेगी। अनेक लिखित स्रोतो मे पहले दोनो वर्णो को निम्नतम दोनो वर्णो के मुकाबले पर पेश किया गया है। वैश्यो तथा शूद्रो को एकसाथ ही रखना एक तरह स आम रिवाज बन गया। लेकिन इसी के साथ-साथ अधिक सपन्न वैश्यो की उच्च वर्णो से अधिकाधिक समानता होती जा रही थी, जब कि उनके कगाल अशक गिरकर व्यवहार मे शूद्रो के स्तर पर पहुच रहे थे। यह सब व्यापार और शिल्पो के विकास के फलस्वरूप हो रहा था। वैश्यो के मुख्य व्यवसाय कृषि, शिल्प और व्यापार थे। करो का अधिकाश बोझ उनका सामाजिक समूह ही वहन करता था, फिर भी धनी वैश्य शक्तिशाली व्यापारी – श्रेष्ठि, साहूकार और भूस्वामी थे। मगध-मौर्य कालो मे वैश्यो की राजनीतिक भूमिका घट रही थी और उनका अस्त्र धारण करने का अधिकार भी व्यवहार मे जाता रहा था।

शूद्रो की स्थिति लगभग वैसी ही बनी रही थी और उनमे से बहुत थोडे ही व्यापार अथवा शिल्पो के जरिये धनवान बन पाते थे, जिससे समाज मे उनकी हैसियत मे सुधार आ जाता था।

प्रथम सहस्राब्दी ई० पू० क उत्तरार्ध मे प्राचीन भारतीय राजतत्रो मे सामाजिक सगठन का यह स्वरूप था। अलबत्ता उसी काल के गणराज्यो का सामाजिक सगठन कुछ भिन्न चित्र प्रस्तुत करता था (इसी अध्याय मे 'प्राचीन भारत के गणराज्य देखिये)।

परिवार और विवाह के स्वरूप

मगध-मौर्य कालो मे परिवार का मुख्य स्वरूप बडे पितृतत्रात्मक परिवारो का था। कई प्रदेशो मे एकविवाही सबधो के अलावा विवाह के अधिक पुरातन स्वरूप भी देखने मे आते थे। पति परिवार का प्रमुख होता था। स्त्रियो की स्थिति मे भी धीरे धीरे बहुत परिवर्तन आ गये थे, जो अतत पूर्णत पति या पुत्रो की आश्रित हो गयी थी। विवाह एक प्रकार के मापत्तिक लेनदन मे परिणत हो गया था। पुरुष मानो अपनी पत्नी को खरीद लेता था और वह उसकी जगम सपत्ति बन जाती थी। स्रोत सामग्रियो मे पत्नियो के बेचे जान अथवा जुए मे हारे जाने के भी उल्लेख मिलते है।

स्त्रियो की अवस्था अत्यत दु सह थी। बचपन मे वह पूरी तरह मे अपन

पिता के यौवन म पति क और पति की मृत्यु के बाद अपन पुत्रा क अधिकार म रहती थी – 'मनुस्मृति म स्त्री की स्थिति ना इसी प्रकार वणन किया गया है। स्त्रियों से मृत्युपर्यत धैर्यवान रहन और अपन दायित्वों का पालन करन की अपेक्षा की जाती थी। स्त्री स यह अपेक्षित था कि वह अपन पति का देवता की तरह आदर करगी चाह उसम कोई भी गुण न हो। पुरुषो को ही अपनी पत्नियो को त्याग दन का अधिकार था। पत्नी अपन परिवार स पीछा नही छुडा सकती थी। पति यदि अपनी पत्नी को बच अथवा त्याग भी देता तो भी उसे उसकी पत्नी ही माना जाता था। दुराचारिणी पत्नी को मृत्युदड सहित कठोरतम दड दिया जा सकता था। पुरुष जितनी भी पत्नियां रख सकता था और इसे किसी प्रकार का पाप अथवा अधर्माचरण नही समझा जाता था। परपरा के अनुसार पत्नी का अपन पति क वर्ण की ही होना अनिवार्य था। आपवादिक मामलो म ही पुरुषो को हीन वण की स्त्री स विवाह करने की अनुमति थी किंतु उच्च वर्ण की स्त्री के लिए निम्न वर्ण के पुरुष से विवाह सर्वथा निषिद्ध था। सबस गभीर अपराध शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से विवाह था। बच्चो पर पिता का अधिकार पूर्ण और निर्णायक होता था। ब्राह्मण 'विधान म यह स्पष्ट विहित था कि पिता यदि चाह तो अपने बच्चे दान अथवा भेंट म दे सकता है।

शास्त्रो मे आठ प्रकार के विवाहो का उल्लेख है, किंतु यह कहना कठिन है कि वे सभी किस सीमा तक प्रचलन म थे। ये आठो प्रकार थे–ब्राह्म विवाह (कन्यादान द्वारा विवाह) दैव विवाह (जिसम कन्या यज्ञ करवानेवाले ब्राह्मण अथवा पुरोहित से ब्याह दी जाती है), आर्ष विवाह (जिसम वर से बैल अथवा गाय शुल्क मे लेकर कन्या दी जाती है) प्राजापत्य विवाह (जिसमे वर-वधू से गार्हस्थ्य धर्म का पालन करने की प्रतिज्ञा लेकर कन्या का पिता कन्या देता है), आसुर विवाह (जिसमे वर कन्या के माता पिता को धन देकर कन्या खरीदता है) राक्षस विवाह (जिसमे वधू का अपहरण किया जाता है) पैशाच विवाह (जिसमे सोयी हुई अथवा प्रमत्त कन्या का कौमार हरण करके पतित्व का अधिकार पाया जाता है) और गाधर्व अथवा गधर्व विवाह (जिसमे वर वधू माता पिता की अनुमति के बिना परस्पर प्रेम से विवाह करते है)।

काफी बादवाले स्रोतो से यही प्रतीत होता है कि अतीत से विरासत म प्राप्त अत्यत पुरातन प्रथाओ का विवाह तथा पारिवारिक सबधो पर बहुत लबे समय तक प्रभाव बना रहा। उदाहरण के लिए, यदि पति निस्सतान मर जाता

था, तो शास्त्रो के अनुसार पति के सबधियो क कहने से पत्नी को अपन पति के भाई अथवा किसी अन्य निकट सबधी के द्वारा सतान उत्पन्न करवानी होती थी।

इन विधानो का मूल कुल अथवा गोत्र की सपत्ति के रक्षण के सिद्धात से सबद्ध प्राचीन प्रथाओ मे देखा जा सकता है। रक्त सबधियो म विवाह – सगोत्र विवाह – निषिद्ध था।

प्राचीन भारत के गणराज्य

गण तथा सघ

प्राचीन भारत के इतिहास मे मगध मौर्य कालो मे गणो और मघो के नाम से विज्ञात गणतान्त्रिक सघो ने बहुत महत्व की भूमिका निबाही है। इन सघो ने राजतत्रो के विरुद्ध दृढ सघर्ष चलाया और कितने ही अवसरो पर शानदार विजये भी प्राप्त की। बौद्ध ग्रथो मे तो कुछ गणराज्यो की महा जनपदो तक मे गणना की गयी है।

गण शब्द के कितने ही अर्थ है। वैदिक काल मे यह कबीले का समानार्थक था। कालातर मे गण तथा सघ विकास के विभिन्न स्तरो पर अराजतत्रीय सघो के सूचक बन गये। पाणिनि (पाचवी-चौथी शताब्दी ई० पू०) ने कई प्रकार के सघो का उल्लेख किया है – शस्त्र बल पर जीवित रहनेवाले सघ अथात सैन्य सघ, तथा ऐसे सघ जिनमे राज्यत्व का विकास अत्युच्च स्तर पर पहुच चुका था। बौद्ध ग्रथो मे राज्य के दोनो प्रकारो, अर्थात एक व्यक्ति द्वारा शासित राजतत्रो और गण द्वारा शासित प्रदेशो मे अतर किया गया है। जहा प्रथमोक्त प्रकार के राज्यो मे सभी शक्ति एक ही व्यक्ति के हाथो म केद्रित होती थी, वहा गणो मे (जैसा कि इन ग्रथो मे से एक मे कहा गया है) दस लोगो द्वारा लिये गये निर्णय का भी बीस द्वारा पुनरीक्षण किया जा सकता था, अथात वह बहुमत की राय पर निर्भर करता था। यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारतीय गण को ऐसी शासकीय सत्ता नही मानते थे कि जिसमे राजा मात्र अस्थायी काल के लिए अनुपस्थित हो। इसके अलावा वे सत्ता के इन दोनो स्वरूपो – राजतत्र तथा गणतत्र – को यह इगित करते हुए एक दूसरे के मुकाबले पर रखते थे कि अपने अपने देशो मे सर्वोच्च

सत्ता के निर्वाहरी ये तात राजा और गण अपने सत्ता का उपभोग करते हैं।
प्राचीन यूनानी लेखक — सिकन्दर के अभियान में भाग लेनेवाले और राजदूत मेगस्थनीज — इन संघों के अस्तित्व से परिचित थे कि जो राजतंत्र नहीं थे। भारतीय ग्रंथों में गणों अथवा संघों के समूहों को स्वतंत्र अथवा स्वायत्त कहा गया है। इन संघों में राजा की सत्ता नहीं थी — उनका नेता चुना जाता था।
प्राचीन यूनानी तथा भारतीय स्रोत ग्रंथों में इन अराजतंत्रीय संघों की सुचारु प्रशासन व्यवस्था और उच्च सांस्कृतिक स्तर के समृद्ध प्रदेश कहा गया है।

प्रशासन व्यवस्था

मौर्य काल में सबसे विकसित गण तथा संघ थे, जिनमें अविभक्त सत्ता का प्रयोग करनेवाला कोई राजा न था अर्थात वे गणतंत्र थे, चाहे उनके यहां गणतांत्रिक शासन के स्वरूप सदा एक जैसे ही नहीं होते थे। इन गणराज्यों का सामान्य लक्षण था अविभक्त सत्ता रखनेवाले शासक राजा का न होना। राज्य का प्रमुख सामान्यतः गण द्वारा निर्वाचित (या नियुक्त) किया जाता था और आवश्यक होने पर हटाया भी जा सकता था। बौद्ध ग्रंथ चीवरवस्तु में उत्तरी भारत के सबसे शक्तिशाली गणराज्यों में से एक, लिच्छवि गण का बड़ा रोचक वर्णन आता है। इसमें बताया गया है कि गण के नेता की मृत्यु होने पर नये नेता का निर्वाचन किस प्रकार होता था। इसकी मुख्य शर्त यह थी कि अभ्यर्थी को योग्य होना चाहिए। गण अभ्यर्थी की नियुक्ति इस घोषणा के साथ करता था कि यदि नेता अपने कार्यों का गण से अनुमोदन नहीं करवा पायेगा, तो गण उसे हटाने का अधिकार रखता है। गण के नेता को मुख्यतः कार्यकारी अधिकार ही प्राप्त होते थे — विधायनी शक्ति सत्ता के सर्वोच्च निकाय के नाते गण के अधिकारक्षेत्र में आती थी (इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि गण को अराजतंत्रीय शासन प्रणाली का राज्य और राज्य सत्ता का सर्वोच्च निकाय भी माना जाता था)।
गण प्रस्तावों के रूप में महत्वपूर्ण निर्णय लेता था, जो सभी नागरिकों के लिए — उनमें से सबसे प्रभावशाली के लिए भी — अनिवार्य होते थे। जो कोई भी उनका उल्लंघन करने का साहस करता था उसे कठोर अर्थदंड दिया जाता था। कभी कभी तो उल्लंघनकर्ता को मृत्युदंड भी दे दिया जाता

करता था। गण अपन अधिकारियो को नियुक्त करता था, जिन्हे उसक प्रतिनिधि माना जाता था।

कुछ गणराज्यो मे गण एक प्रकार की जनसभा की हेसियत रखता था जिसमे पूर्ण अधिकारो का उपभोग करनेवाले सभी नागरिक भाग ले सकते थे। निर्णय लेते समय उनका बहुमत से अनुमोदन करवाया जाता था। गण की सरचना और सत्ता के सर्वोच्च निकाय के नाते उसकी भूमिका बहुत सीमा तक इन गणराज्यो के स्वरूप को निर्धारित करती थी। जिन उदाहरणो मे गण सभा की प्रधान भूमिका बनी रहती थी और पूर्ण अधिकारो का उपभोग करनेवाले सभी नागरिक उसमे भाग ले सकते थे, उनमे गणराज्य को लोकतान्त्रिक कहा जा सकता है, यद्यपि इन मामलो मे भी अभिजात परिषद ने महत्व प्राप्त करना शुरू कर दिया था। कुछ सघ राज्य के लोकतान्त्रिक गणराज्य से अभिजात गणराज्य मे सक्रमणात्मक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते थे। अन्य उदाहरणो म जिनमे गणसभा अपना प्रभावी महत्व गवा चुकी थी और सत्ता क्षत्रियो की अभिजात परिषद के हाथो मे सकेद्रित हो चुकी थी, ये गणराज्य अभिजात गणराज्य थे।

क्षत्रियो की सत्ता और सामाजिक ढाचा

गणो तथा सघो मे क्षत्रिय शेष आबादी से सर्वथा पृथक समाज के प्रभावी सस्तर का निर्माण करते थे। यही कारण है कि बहुत से अराजतत्रीय सघ क्षत्रीयम् के नाम से ही जाने जाते थे। अभिजात गणराज्यो मे सपत्तिवान तथा प्रभावशाली क्षत्रियो को विशेष स्थिति प्राप्त थी और वे राजा कहलाते थे। इस उपाधि को प्राप्त करने के आकाक्षी को एक पवित्र सरोवर म स्नान करक अभिषेक करवाना होता था। इस सरोवर मे अनधिकार प्रवेश मृत्युदड द्वारा दडनीय था, फिर चाहे अपराधी क्षत्रिय ही क्यो न हो।

राजा की उपाधि को धारण करनेवाले क्षत्रियो की सथागार (सस्थागार) नामक विशेष कक्ष मे बैठके होती थी जिनमे प्रशासन के सबसे महत्वपूर्ण प्रश्नो पर विचार किया जाता था। अन्य वर्णो – ब्राह्मणो तक – के प्रतिनिधि इन बैठको म भाग नही ले सकते थे। यह बहुत सभव है कि कुछ गणो मे विभिन्न प्रश्नो पर विचार विमर्श का आरभ गणसभा मे होता था और फिर राजपरिषद उनका अतिम निर्णय करती थी। इन दोनो सस्थाओ मे सबध पूर्णत सबद्ध राज्य मे सत्ता के स्वरूप पर ही निर्भर करते थे। राज्य के प्रमुख

अधिकारी—सेनानायक न्यायाधीश आदि—भी प्रत्यक्षत क्षत्रियो म से ही नियुक्त किये जाया करते थे।

कबायली अथवा गोत्र सबधो के युग म चली आती प्रथाओ का गणो तथा सघो के सामाजिक ढाचे म—सबसे उन्नत गणो और सघो तक म—अब भी सशक्त प्रभाव था। उदाहरण के लिए गोत्र का प्रभाव अब भी प्रबल था, यद्यपि अब कुल—कुटुब—मुख्य इकाई के रूप म उभरकर सामने आ रहा था।

वर्ण तथा जाति विभाजन का स्वरूप गणो तथा सघो का एक अत्यत विशिष्ट लक्षण था। इस दृष्टि से क्षत्रियो को अन्य सारी आबादी से सर्वथा पृथक और श्रेष्ठ स्थिति प्राप्त थी और ब्राह्मणो तक को अत्यधिक विरल मामलो मे ही उनके समान स्थिति प्राप्त हो सकती थी। जहा राजतत्रो म सर्वोपरि ब्राह्मणो का ही बडी बडी भूसपतियो पर स्वामित्व था वहा गणो तथा सघो मे क्षत्रिय सबसे प्रभावशाली भूस्वामी थे। अधिकाश राजनीतिक शक्ति भी उन्ही के हाथो म थी। यहा ब्राह्मण वरीयता अथवा श्रेष्ठता का दावा नही कर सकते थे जैसा कि राजतत्रो मे था और फलत सामाजिक हैसियत के लिहाज से वे अक्सर वैश्यो के विशेषाधिकारभोगी समूह के निकट पहुच जाते थे। वर्ण व्यवस्था के अपने विशिष्ट लक्षणो के बावजूद गणो तथा सघो म भी—राजतत्रो के समान ही—सबसे उत्पीडित वर्ण शूद्र ही था। इससे यह प्रकट होता है कि राजनीतिक सत्ता का स्वरूप सामाजिक ढाचे को निर्धारित नही करता था।

गणो तथा सघो का सबसे महत्वपूर्ण अभिलक्षण जो उन्हे राजतत्रो से अलग करता था यह था कि उनमे राजनीतिक मामलो म आबादी के व्यापक सस्तरो की सहभागिता थी और यह विशेषता उन्हे दृढता तथा स्थायित्व प्रदान करती थी। अर्थशास्त्र' का लेखक यह मानता था कि सघ अपनी ससक्ति के कारण अपराजेय थे। लेकिन किसी अश मे लोकतात्रिकता के होने के बावजूद गण तथा सघ प्रखर वर्गीय, सापत्तिक तथा सामाजिक अतर्विरोधो से ग्रस्त समाज थे। लिखित स्रोत सामग्री मे गणो तथा सघो के प्रभावशाली अथात क्षत्रिय और सामान्य सदस्यो म टकरावो के उल्लेख मिलते हैं। महाभारत मे आतरिक कलहो को गणो तथा सघो का मुख्य शत्रु कहा गया है। बौद्ध ग्रथो म तो शाक्य गण म दासो के खुले विद्रोह का भी उल्लेख आता है।

प्राचीन भारतीय गणराज्यो ने मौर्य काल मे अपने अस्तित्व को बनाये रखा और वे ठेठ गुप्त काल तक बने रहे जब वे शनै शनै अपनी स्वतत्रता

गवाने लगे और राजतत्रो द्वारा वशीभूत कर लिये गये। प्राचीन भारतीय गणतान्त्रिक प्रणाली के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन भारतीय तथा प्राचीनकालीन भूमध्यसागरीय देशो की राजनीतिक प्रणाली की तुलना करना असमीचीन होगा। प्राचीन यूनानी-रोमन सम्यताओ के क्षेत्र की ही भाति भारत मे भी वर्गहीन समाज से राज्य मे विकास की समान प्रक्रिया देखन मे आती है और इस प्रसग मे नाना परिस्थितियो के अनुसार कोई राज्य शासन के राजतान्त्रिक अथवा गणतान्त्रिक – किसी भी – स्वरूप को अपना सकता था।

मौर्यकालीन सस्कृति

लेखन का प्रसार

मगध मौर्य शासको का युग तीव्र सास्कृतिक विकास का काल था। भारत के अनेक प्रदेशो मे और वर्तमान अफगानिस्तान मे मिले अशोक के शिलालेखो से अनुमान लगाया जा सकता है कि तीसरी शताब्दी ई० पू० मे भी लेखन कला का काफी व्यापक विस्तार हो चुका था। लेकिन इसमे कोई सदेह नही कि वह सदियो पहले से विद्यमान रही होगी। बहुत से बौद्ध ग्रथो मे पत्रो के आदान प्रदान के राजाज्ञाओ के अभिलेखन के, लिपिको के तथा विद्यालयो मे अकगणित के साथ-साथ लेखन कला के भी अध्ययन के उल्लेख पाये जाते है।

पाणिनि के अष्टाध्यायी' मे लिपि तथा लिपिको के लिए विशेष शब्दो का प्रयोग किया गया है और यूनानी वर्णमाला के भी उल्लेख हैं। अशोक के शिलालेख ब्राह्मी लिपि म और अरमाइक यूनानी तथा खरोष्ठी लिपियो मे उत्कीर्ण किये गये है। इन लिपियो म खरोष्ठी लिपि ब्राह्मी के प्रभाव से अरमाइक लिपि से विकसित हुई लिपि है। अलबत्ता अधिकाश शिलालेख ब्राह्मी लिपि मे ही है। नियार्कस के विवरणो के अनुसार सिकदर के आक्रमण के समय के प्राचीन भारतीय सूती कपडे पर लिखा करते थे। यह सभव है कि लेखन मे सर्वाधिक प्रयुक्त सामग्री ताडपत्र था किंतु जलवायु की आर्द्रता के कारण ये लिखित स्रोत बच नही पाये। उस काल की आलेखन कला का एकमात्र प्रमाण शिलाओ, स्तभो और गुफाभित्तियो पर उत्कीर्ण अशोक के राजादेश ही उपलब्ध करते है। तीसरी शताब्दी ई० पू० तक ब्राह्मी लिपि दीर्घकालिक विकास के इतिहास से सपन्न लिपि बन चुकी थी।

विभापना म ब्राह्मी लिपि क उद्‌गम क बार म कोई मतैक्य नहा है। इसे हड़प्पा सभ्यता की लिपि म सामी लिपि से, दक्षिणी अरब म प्रयुक्त लिपि से और यूनानी लिपि तक म भी सबद्ध किया गया है। दूसरी शताब्दी ई० पू० क शिलालेख यह प्रकट करत हैं कि उस समय ब्राह्मी लिपि क कई रूप प्रचलन म थे। पहली शताब्दी ई० के बौद्ध ग्रथ 'ललितविस्तार' म, जिसम बुद्ध क जीवन चरित का वणन किया गया है, चौसठ प्रकार की भिन्न भिन्न लिपिया का उल्लख है जिनम स्थानीय भारतीय लिपियो क अलावा विदेशी लिपिया भी सम्मिलित है। अशोक के राजादेश कवल राजाधिकारियो ही नही वरन सामान्य लोगो – विभिन्न सामाजिक समूहो क प्रतिनिधियो – क लिए भी उद्दिष्ट थे जिनम यह अपक्षित था कि व उसके राजादेशो को पढ़ सकेंग। इ० पू० दूसरी तथा पहली सदिया क शिलालेखो मे कई को दानपत्रो की सज्ञा दी जा सकती है जिनम यह कहिये कि बौद्ध सघ को दिय गये नाना और भेटो को सूचीवद्ध किया गया है। य शिलालख व्यापारियो बौद्ध भिक्षुओ, शिल्पियो आदि की ओर स है। इन सभी बाता स यही प्रकट होता है कि ई० पू० तीसरी म पहली शतिया क प्राचीन भारतीयो मे साक्षरता खासी व्यापक थी। तथापि इस बात को भी नही भूलना चाहिए कि प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली मौखिक परपरा पर – धार्मिक ग्रथो को कठस्थ करन पर – आधारित थी और यह ज्ञान इसी प्रकार एक पीढ़ी स दूसरी को मिलता रहता था।

वैज्ञानिक ज्ञान की अभिवृद्धि

मगध मौर्य काल मे वैज्ञानिक ज्ञान मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इस काल म खगोल गणित चिकित्सा (आयुर्वेद) तथा व्याकरण से सबद्ध अनक कृतिया की रचना हुई यद्यपि उन्हे वस्तुत बाद मे जाकर ही लिपिबद्ध किया गया। बौद्धो तथा जैनो के बहुत सारे ग्रथ भी इसी काल के है। आधुनिक विद्वान सस्कृत के वृहत व्याकरण (अष्टाध्यायी) के रचयिता और विख्यात भारतीय वैयाकरण पाणिनि के जीवन तथा रचना काल को भी पाचवी या चौथी शती ई० पू० का ही मानते है। भाषा विश्लेषण पद्धतिया अत्युच्च स्तर की थीं और पाणिनि ने अपनी रचना अपने कुछ पूर्ववर्तियो की कृतियो के आधार पर की है, जिनके नामो का उसने अपनी कृति मे उल्लेख किया है। यह व्याकरण उत्तरवर्ती सस्कृत वैयाकरणो के लिए प्रमाण बन गया जिन्होने उसका विस्तृत विश्लेषण

किया और उस पर टीकाओ तथा भाष्यो की रचना की। चौथी शताब्दी ई० पू० मे उस पर कात्यायन ने भाष्य लिखा और दूसरी शती ई० पू० मे पतजलि ने एक नये सस्कृत व्याकरण की रचना की। ये दोनो ही केवल सस्कृत ही नही, अपितु स्थानीय बोलियो से भी सुपरिचित थे।

मगध मौर्य शासको के राज्यकाल मे प्राकृत का भी व्यापक प्रचलन हो गया, जिसमे अशोक के राजादेश तथा अन्य अनेक शिलालेख लिखे गये है। इसके अलावा कई बोलिया भी पैदा हो चुकी थी। इनमे से एक पालि भी थी, जिसमे बौद्ध धर्मसूत्रो की रचना हुई है। परपरा के अनुसार इन्हे ८० ई० पू० मे सिहल द्वीप (श्रीलका) मे लिखा गया था। पतजलि ने अपने व्याकरण मे प्राकृत मे लिखित कृतियो का उल्लेख किया है। उस समय तक काव्यो की और सस्कृत मे राजनीति तथा आचार पर कतिपय ग्रथो (शास्त्रो) की भी रचना होने लग गयी थी।

पाणिनि तथा पतजलि की कृतियो से यह धारणा भी उत्पन्न होती है कि उस समय नाट्य-रचना भी होन लग गयी थी। पतजलि के व्याकरण मे अभिनेताओ, रगमच, वाद्यो, आदि के उल्लेख मिलते है।

स्थापत्य तथा मूर्तिकला

मगध-मौर्य काल की अधिकाश इमारते लकडी की ही बनी हुई थी और इस कारण उनके कुछ अश ही अब तक बचे रह पाये है। तथापि शनै शनै पत्थर का उपयोग भी किया जाने लगा था। प्राचीन पाटलिपुत्र की स्थली पर उत्खननो के फलस्वरूप राजप्रासाद तथा शतस्तभ कक्ष के कुछ भागो की खोज हुई है। इस तरह की लौकिक वास्तुनिर्मितियो के अलावा इस काल की धार्मिक निर्मितिया भी बहुत दिलचस्पी की है, विशेषकर तीसरी-दूसरी शती ई० पू० के आसपास के साची तथा भरहुत के बौद्ध स्तूप।

मौर्य काल मे स्थानीय मूर्तिकला शैलिया विकसित हुई जिनम तक्षशिला मे केंद्रित उत्तर-पश्चिमी शैली और पूर्वी शैली, जिसका केंद्र तोसली (तोशाली) म था, सबस उल्लेखनीय है। जिन स्तभो पर अशोक के राजादेश खुदे हुए हैं, उन्ह अलकृत करनेवाले शीर्षो मे उच्च कोटि की कला देखने मे आती है। मौर्य काल की, और विशेषकर उत्तर-पश्चिमी प्रदेशो की सस्कृति किसी हद तक अखमनी प्रभाव को दर्शाती है किंतु समूचे तौर पर उस समय की भारतीय सस्कृति स्थानीय परपरा की बुनियाद पर उपजी गहन राष्ट्रीय तथा मौलिक स्वरूप की सस्कृति थी।

ई० पू० पहले सहस्राब्द का उत्तरार्ध प्राचीन भारत म राजनीतिक सघन्न तथा राज्यत्व के विकास म एक अत्यधिक महत्वपूर्ण चरण था। यह काल गगा की घाटी मे पहले बडे राज्यो के और बाद मे ऐक्यबद्ध साम्राज्य की उत्पत्ति से जुडा हुआ है। यह प्रशासन के ,उसूलो और राज्यसत्ता के सिद्धातो के निरूपित किये जाने का राजनीतिक मतो और राजनीतिक प्रबधा के प्रकट होने का समय है। इस दृष्टि से 'अर्थशास्त्र' विशेष दिलचस्पी का है जिसे परपरा के अनुसार मौर्य सम्राट चद्रगुप्त के प्रमुख परामर्शदाता विष्णुगुप्त कौटिल्य (चाणक्य) की कृति माना जाता है। इस राजनीतिक कृति का अधिकाश ईसवी सवत के प्रारभिक वर्षो मे प्रणीत ही प्रतीत होता है, किंतु इसमे प्रतिपादित विचार और राज्य नीति के सिद्धात मौर्य काल की भावना को ही प्रतिबिबित करते है।

मगध मौर्य कालो म राजतत्रो के साथ साथ गणतान्त्रिक राज्य भी विद्यमान थे यद्यपि राजतत्र ही उस समय राज्यसत्ता का सबसे व्यापक स्वरूप था। प्राचीन भारतीय स्वय यही मानते थे कि राज्य सदा से ही अस्तित्वमान नहीं था वरन इसलिए (देवताओ की सहायता से) अस्तित्व म आया था कि मनुष्यजाति मे विधान तथा व्यवस्था बने रहे क्योकि समुद्र म रहनवाली मछलियो की तरह ही उनमे से अधिक शक्तिशालियो ने अपने से निर्बला का भकोसना शुरू कर दिया था। अर्थशास्त्र के रचयिता कौटिल्य का विश्वास था कि राज्य के सर्वप्रमुख कार्यभारो मे एक चारो वर्णो पर आधारित सामाजिक विभाजन को बनाये रखना है। राजा को अपने प्रजाजनो की रक्षा करनी होती है और इसलिए दड देना भी उसी का कार्य है। वस्तुत प्रशासनविज्ञान दडशास्त्र के नाम से ही विज्ञात था। कौटिल्य प्राचीन प्रमाणज्ञो द्वारा प्रतिपादित इस विचार का उद्धरण देता है कि दड ही मनुष्यजाति को शासित करने का सर्वोत्तम साधन है।

उस समय के राजनीतिज्ञो का मत था कि आतरिक उत्पात ही उत्पात का सबमे खतरनाक रूप है और कौटिल्य राजा को सबोधित करते हुए सीधे कहता है कि आतरिक उत्पात बाह्य उत्पात से भी अधिक भयकर है, क्योकि वह राजदरबार और राजपरिसर मे भी सामान्य अविश्वास को जन्म देता है। गुप्त सेवा और राजनीति मे गुप्त नीतियो के उपयोग पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कौटिल्य राजा को अपने अधिकारियो को रिश्वत देन की

उनके पास अपने गुप्तचर भेजने की, उनमे वैमनस्य पैदा करवाने की और अपने समर्थकों ही नही, बल्कि शत्रुओ के लिए भी खुली सजाओ के स्थान पर गुप्त दड का उपयोग करने की सलाह देता है।

कौटिल्य व्यावहारिक हितो को सर्वोपरि स्थान देता है। इस दृष्टि से तो वह शास्त्रो द्वारा निर्धारित प्रतिमानो से विचलनो को भी स्वीकार करन के लिए तैयार है। उसके अनुसार विधान यदि शासकीय आदेश के विरुद्ध जाता है, तो शासकीय आदेश को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

कौटिल्य राजा को यह सलाह देता है कि यदि वह अपने को वित्तीय सकट मे ग्रस्त पाये, तो उसे मदिरो की सपत्ति को जब्त करके उससे राजकोप को भर लेना चाहिए। कौटिल्य ने तो कुछ ऐसे तरीके भी सुझाये है, जिनका राजा अपने प्रजाजनो के अधविश्वास का लाभ उठाने के लिए उपयोग कर सकता है और इस प्रकार उन्हे यह विश्वास दिला सकता है कि राजा दैवी शक्तियो से युक्त है।

इस काल मे राज्यो के बीच सबधो की स्थापना करने और युद्ध तथा शाति वार्ताए करने की विविध विधियो का निरूपण किया गया। विदेश नीति सबसे महत्वपूर्ण विपयो मे एक थी। अर्थशास्त्र' मे विदेश नीति के छ मुख्य सिद्धातो का प्रतिपादन किया गया है—शाति, युद्ध, सावधान रहना और अवसर की ताक मे रहना, आक्रमण, प्रतिरक्षा साधनो की खोज और दोमुखी नीति। राजदूतो के कार्यकलाप की तरफ विशेप ध्यान दिया गया है, जिनका कायक्षेत्र अत्यत व्यापक माना गया था। सधियो के पालन और अपने राज्य की प्रतिष्ठा का ध्यान रखने के अलावा कौटिल्य के मतानुसार राजदूत का यह भी कर्तव्य था कि वह मित्रो मे विवाद पैदा करवाये, गुप्त पडयत्र रचवाये, सैन्यदलो के गुप्त स्थानातरण करवाये, अथात सभी सभव उपायो का उपयोग करे। पडोसी राज्यो के विरुद्ध सघर्ष चलाने की विधियो का भी विस्तार से निरूपण किया गया है क्योकि इस प्रकार के राज्यो को सामान्यत शत्रु माना जाया करता था। पडोसी के पडोसी को मित्र माना जा सकता था, कितु उस मित्र के पडोसी को भी शत्रु ही माना जाता था। आक्रमण करने की सबसे अनुकूल परिस्थिति की चर्चा करते हुए कौटिल्य यह राय देता है कि सभाव्य शत्रु की आर्थिक स्थिति को और शासन के अपने प्रजाजनो के साथ सबधो को ध्यान मे रखा जाना चाहिए। उसका सिद्धात यह था कि अगर प्रजाजनो मे अपने राजा के प्रति असतोप व्याप्त है, तो वे उसका पतन निकट लाने मे सहायक हो सकते है चाहे वह शक्तिशाली ही क्यो न प्रतीत होता

हो। इसलिए उसी शासक का विरोध करना बहुत महत्वपूर्ण था कि जिससे प्रजा उससे असंतुष्ट हो।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक सिद्धांत में प्राप्त महती उपलब्धियां वैज्ञानिक ज्ञान में उन्नति तथा समाज के विकास में समग्रस्पर्श प्रगति का प्रत्यक्ष परिणाम थीं।

यह उल्लेखनीय है कि कौटिल्य के मतानुसार ज्ञान के चार मुख्य क्षेत्र तर्कशास्त्र (दर्शन) अथवा आन्वीक्षिकी का अध्ययन अर्थशास्त्राध्ययन और दंडनीति (राजप्रशासन) का अध्ययन थे। यह भी कोई संयोगिक बात नहीं है कि वह आन्वीक्षिकी को मुख्य विज्ञानों में सर्वप्रथम स्थान प्रदान करते हैं। कौटिल्य ने तीन दार्शनिक पद्धतियों का उल्लेख किया है—लोकायत सांख्य तथा योग। कौटिल्य के अनुसार दर्शन का ज्ञान राजकार्य में सफलता को सुनिश्चित करता है।

अन्वीक्षित विचारों की व्यापकता और उनके विश्लेषण की गहनता प्राचीन भारतीय राजनीतिशास्त्र को प्राचीन यूनानी राजनीतिशास्त्र के समकक्ष बना देती है और कौटिल्य को प्राचीन विश्व के महानतम विचारकों में से एक—अरस्तू (एरिस्टोटल)—की श्रेणी में रख देती है।

मौर्यकालीन धर्म तथा संप्रदाय

ई० पू० प्रथम सहस्राब्द का मध्यकाल प्राचीन भारत में धार्मिक तथा दार्शनिक क्षेत्र में गहनान्वेषण और सुधार का काल था। धर्म की हैसियत से वैदिक धर्म अपने प्रभाव को किसी हद तक गवां चुका था। उसकी पौराणिक अवधारणाओं के आदिम स्वरूप, उसके जटिल और समयातीत कर्मकांड और पुरोहितों के, जिन्हें बहुतों ने किसी भी प्रकार के श्रेष्ठतर ज्ञान का वाहक मानना बंद कर दिया था, भाड़े भौतिक दावे नये युग की भावना के साथ मेल नहीं खाते थे और विरोध को जन्म दे रहे थे। इस संकट पर काबू पाने के पहले प्रयास ने अपने को एक रुझान के रूप में उपनिषदों में प्रतिबिंबित किया। लेकिन समग्रतः इस रुझान ने वैदिक धर्म को अस्वीकार नहीं किया, वरन उसमें नूतन और सिद्धांततः सुदृढ़तर आधार पर नवजीवन फूंकने का ही प्रयास किया। सनातनी परंपराओं के पक्षधरों ने निरंतर और दृढ़तापूर्वक सुधारोन्मुख सिद्धांतों को मूर्त करनेवाली अन्य सभी प्रवृत्तियों तथा प्रणालियों

के विरुद्ध दुर्धर्ष सघर्ष चलाया। पुरानी परपरा के प्रतिमानो से ये प्रवृत्तिया और प्रणालिया अवैदिक – वेदो तथा शास्त्रो के प्रमाण को अस्वीकार करनेवाली – थी और इनमे उस समय तक पैदा हो चुके दोनो नये धर्मो – जैन तथा बौद्ध – के अलावा उन विचारधाराओ की भी गणना की जाती थी, जो भारतीय दर्शन मे पदार्थवादी अथवा भौतिकवादी (जडवादी) प्रवृत्ति को प्रकट करती थी। ये सभी शिक्षाए वैदिक ग्रथो की अविकार और अपरिवर्तनीय श्रेष्ठता को अस्वीकार करती थी।

प्रारभिक उपनिषदो और ब्राह्मण धम से तत्वत स्वतत्र नयी धार्मिक तथा दार्शनिक प्रणालियो के अभ्युदय के बीच की अवधि गहन आध्यात्मिक अन्वीक्षण से परिपूर्ण थी। इन नये विचारो को दैनदिन जीवन और पुरानी परपराओ से नाता तोड लेनेवाले नानासख्य तपस्वियो और सन्यासियो ने वाणी प्रदान की। ये लोग परिव्राजक तथा श्रमण कहलाते थे (कालातर मे श्रमण का अर्थ ही अवैदिक पथानुगामी सन्यासी विशेषकर बौद्ध भिक्षु हो गया)। आरभ मे इन श्रमणो ने अपन गुरुकुलो अथवा आश्रमो की स्थापना करना शुरू नही किया था, कितु बाद मे उनमे आस्था रखनेवाले स्वय ही अधिक विख्यात श्रमणो के पास एकत्र होन लग गय।

बौद्धिक उथल पुथल के इस काल मे अनक नवीन आदोलनो तथा प्रवृत्तियो का उदय हुआ, जिनके बहुत से विचारो का आग चलकर मुख्य सुधारवादी पथो के सस्थापको ने ग्रहण कर लिया और विस्तारित किया। सभी प्रारभिक श्रमणपथो ने वेदो की महत्ता को और उन पर आधारित वैचारिक तथा सामाजिक प्रतिमानो को स्वीकार करने से इन्कार किया। स्वाभाविक रूप मे इसके परिणामस्वरूप ब्राह्मणो के परम सत्य' के वाहक हान के दावो को भी पूर्णत अस्वीकार किया गया, जिसका ज्ञान प्राप्त करना सामान्य लोगो की क्षमता के बाहर माना जाता था। ब्राह्मणो के विचारधारात्मक विशेषाधिकार सर्वोच्च वर्ण के नाते उनकी भूमिका का औचित्यस्थापन भी करते थे और इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि श्रमणो ने, जिनमे बहुत ही अधिक मामलो मे अन्य वर्णो के प्रतिनिधियो का ही बाहुल्य था पुरोहितो के सामाजिक दावो को भी बडी दढता के साथ अस्वीकार किया।

श्रमणो द्वारा प्रतिपादित सभी सिद्धातो का एक अन्य तात्विक लक्षण नैतिक समस्याओ के प्रति गभीर दृष्टिकोण था। वैदिक साहित्य मे उद्घोषित तथा प्रतिपादित पारपरिक वर्णाश्रित सामाजिक व्यवस्था को अस्वीकार करते हुए उन्ह प्रकृति तथा समाज मे मनुष्य की स्थिति के प्रश्न को नये ही ढग

मे देखना था। इस दिशा म सैद्धातिक कार्यकलाप की प्रखरता मे हर सुधारवादी पथ मे भिन्नता थी। तथापि इसम कोई सदेह नही कि जैनो तथा बौद्धो द्वारा नैतिक समस्याओ का विशद निरूपण इन धार्मिक आदोलनो का कोरा चारित्रिक लक्षण ही नही था वरन वह आचरण क नय प्रतिमानो की खोज का प्रश्न करता था जो उस काल की सभी अवैदिक शिक्षाओ का अभिलक्षण था।

श्रमण पथो का सामाजिक पक्ष भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण परिघटना का परिचायक है। श्रमण गुरुओ ने स्वय कोई विशेष सामाजिक कार्यक्रम प्रस्तुत नही किया लेकिन उनके कई विचारो ने और विशेषकर ब्राह्मणाधीन भारत के प्रति उनके अशाम्य विरोध न उन्ह प्रारभिक भारतीय राज्यो क शासको के ब्राह्मण धर्म द्वारा अनुज्ञेय कबायली विच्छिन्नता के विरुद्ध सघर्ष मे सभाव्य सश्रयी अवश्य बना दिया। भारतीय राजनीतिक जीवन म केद्रीयकरण की प्रक्रिया आध्यात्मिक जीवन मे ऐक्यकारी प्रवृत्तियो के उदय क साथ साथ चली थी और यह कोई सायोगिक बात ही न था, क्योकि अब नानासख्य पृथक और स्वतत्र गुरुओ का स्थान सारे भारत म मान्य थापे से ही धार्मिक पथ लेते जा रहे थे।

कुछ धार्मिक पथो को अभी देशव्यापी महत्व प्राप्त नही हो पाया था, फिर भी उन सभी ने तब और उसके बाद आनेवाले युगो मे अभिभावी होनेवाले विचारो तथा अवधारणाओ के विकास पर काफी प्रभाव डाला। बौद्ध ग्रथो म छ अपधर्मी आचार्यो के नाम आते है, जिनके साथ बौद्धो का प्रचड विवाद चला था। इनमे से दो अत्यत महत्वपूर्ण धार्मिक तथा दार्शनिक पथो– जैन धर्म तथा आजीवकपथ – के सस्थापक भी थे।

जैन धर्म

भारत क सबसे पहले अवैदिक धर्मो मे से एक जैन धर्म था। इस धर्म के आरभ की तिथि और इसके सस्थापक का नाम हमे परपरा से ज्ञात है। जैन धर्म के सस्थापक वर्धमान थे। वह विदेह (आधुनिक बिहार) के रहनेवाले क्षत्रिय थे और उनका समय छठी शताब्दी ई० पू० है। तीस वर्ष की आयु मे वर्धमान विरक्त होकर अपने पिता क घर को त्यागकर वनो मे चले गये और तपस्या म रत हो गये। बारह वर्ष की तपस्या के बाद उन्होने पूर्ण ज्ञान (केवल ज्ञान) प्राप्त कर लिया और वह देश भर म ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए सद्धम का उपदेश देन लग, जिससे बहुत से लोग उनके अनुयायी

हो गये। उन्होने अस्सी वर्ष से अधिक की आयु प्राप्त की। आरभ मे उनके उपदेशो ने बिहार मे ही जड पकडी जहा उनके प्रभावशाली सरक्षक और सहायक थे, किंतु कालातर म भारत के दूरस्थ प्रदेशो मे भी उनके पथ के केंद्र स्थापित हो गये। वह महावीर तथा जिन (इद्रियो के विजेता) के नामो से विख्यात हुए (वस्तुत जैन धर्म का नाम ही जिन से निकला है)। नये धर्म के सासारिक जीवन को त्याग देनेवाले अनुगामियो के अलावा बहुत से गृहस्थो ने भी महावीर का अनुगमन किया। इस तरह के लोगो के लिए गाहस्थ्य का परित्याग करना आवश्यक नही था पर उन्हे गृहस्थो के लिए निर्धारित विधान का पालन करना होता था। कालातर मे जैन धर्म न केवल देश के सास्कृतिक जीवन मे, वल्कि सामाजिक जीवन मे भी एक महत्वपूर्ण कारक बन गया।*

महावीर की शिक्षा के सार और उनके निकटतम अनुयाइयो द्वारा उसके निरूपण का प्रारभिक जैन ग्रथो (पूर्व ग्रथो) मे विशदीकरण किया गया है जिनकी सख्या चौदह है। मनुष्य द्वारा विश्व के अवबोध का आधार इद्रियो द्वारा प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान को बताया जाता है (जैसा कि उस समय उदित होनेवाले अन्य धार्मिक सिद्धातो मे भी है) सच तो यह है कि यह विशिष्ट यथार्थवाद प्राचीन काल मे विकसित होनेवाली (और केवल भारत मे ही नही) अधिकाश शिक्षाओ का एक अतर्निहित तत्व है। जैन शिक्षा मे भौतिक तथा आध्यात्मिक तत्व विरोधी नही है – मनुष्य की अनुभव करने और सोचने की क्षमता जीवन की उतनी ही स्वाभाविक अभिव्यक्ति है कि जितनी मनुष्य के आसपास के प्राकृतिक जगत मे क्रियाशील प्रक्रियाए है। पहली दृष्टि मे यह सिद्धात अशत भौतिकवादी दिशा मे कदम प्रतीत हो सकता है किंतु केवल अशत ही, क्योकि जैन धर्म उसमे सन्निहित तार्किक निर्वचन की दोनो ही सभावनाओ को बराबर विकसित करता है। वह केवल आध्यात्मिक का 'भौतिकीकरण' ही नही करता है, वरन भौतिक का "अध्यात्मीकरण" भी करता है। आत्मा की पुरातन अवधारणा को उसकी चरम निष्पत्ति पर

* स्वय जैनो के अनुसार जैन धर्म का उदगम कही पहले हुआ था। जैन साहित्य मे चौबीस तीर्थकरो के नाम आते है और वर्धमान महावीर का नाम इस सूची के अत मे ही आता है। किंतु वास्तव मे नये धर्म के सभी नये सिद्धात वर्धमान के नाम से ही सबद्ध है (या और भी बाद के है)। तीर्थकरो की कथाए आख्यानो, जनश्रुतियो और धार्मिक सुधार के पूर्ववर्ती प्रयासो से सबद्ध कथाओ का मिश्रण ही है।

ल जाया जाता है। आत्मा सभी चीजो मे विद्यमान है – पेड पौधा और पत्थर तक को आत्मा से युक्त माना जाता है। आत्मा नित्य है, देवताओ द्वारा सृजित नही।

प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्य ज्ञान के अलावा जैन वेदो तथा उपनिषदो मे प्रतिपादित अवधारणाओ से उद्भूत विभिन्न बोधो को भी समान रूप मे स्वीकार्य मानते थे – उदाहरण के लिए वे पुनर्जन्म तथा कर्म के सिद्धात को स्वीकार करते थे।

जैनो द्वारा प्रकृति की सभी परिघटनाओ के सजीव होने की मान्यता इस दृष्टिकोण मे पूरी तरह मेल खाती है और उससे प्राणियो की सभी कोटियो मे समस्त विभाजक रेखाए पूर्णत विलुप्त हो जाती है – मनुष्य पत्थर मे परिणत हो सकता है और पाषाण मानव योनि ग्रहण कर सकता है। आत्मा मनुष्य पशु देवता या दानव – कहा स्थित होगी यह कर्मफल पर निर्भर करता है।

अधिकाश प्राचीन भारतीय धार्मिक सिद्धातो की ही भाति जैन धर्म भी अपना मूलभूत लक्ष्य स्वय ज्ञान की प्राप्ति को नही, बल्कि ऐसे आदर्शो तथा मानको के निरूपण को मानता था कि जो मनुष्य की अपने धार्मिक आदर्श की व्यावहारिक सिद्धि करने मे सहायता कर सकते थे। उपनिषदो की ही भाति जैन सिद्धात मे भी जन्मातर चक्र से अतिम मुक्ति अथवा मोक्ष या निर्वाण की परिकल्पना की गयी है, जिसमे प्राणी सभी भाव राग को वशीभूत कर लेता है और समस्त सासारिक बधनो सबधो से मुक्त होकर ऐसी अवस्था मे पहुच जाता है जिसमे आत्मा अपने वैयक्तिक स्वरूप से निकलकर शुद्ध होकर परमात्मा मे विलीन हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने के बाद मनुष्य अस्तित्व के सभी भौतिक नियमो से मुक्त हो जाता है और फिर कभी जन्म नही लेता। यह परमात्मा ससार मे सभी से श्रेष्ठ है वह देवताओ मे भी ऊपर हो जाता है क्योकि देवता भी कर्म के विधान के अधीन ही होते हैं। मनुष्य और विशेषकर अर्हत अथवा अर्हत (जो जिन की अवस्था मे पहुच गये हैं) देवताओ से भी श्रेष्ठ होते है क्योकि देवता तो कभी अर्हत्व प्राप्त नही कर सकते। मोक्ष प्राप्त करने के लिए देवता को भी मनुष्य का मनुष्य के जगत मे जन्म लेना होता है। मोक्ष की प्राप्ति कठोर रत्नत्रय मार्ग – सम्यक दर्शन (सच्चा विश्वास) सम्यक ज्ञान (सच्चा ज्ञान) तथा सम्यक चरित्र (सच्चा आचरण) – पर चलकर ही सभव है जिसके लिए अहिसा सत्य अस्तेय अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य आवश्यक है।

जैन धर्म के इतिहास मे एकमात्र गभीर सघभेद अथवा फूट परिग्रह त्याग

म ही सबद्ध है। उसके अनुगामी दो मतो मे विभाजित हैं—श्वेताबर तथा दिगबर। परिग्रह-त्याग दिगबरो को वस्त्रो तक का त्याग कर देने की सीमा तक ले जाता है, जब कि श्वेतावर साधु श्वेत वस्त्र धारण कर सकते है।

किंतु मोक्ष की प्राप्ति गृहस्थो यानी सामान्य लोगो नही तपस्वियो के लिए ही सभव है। इसलिए यह कोई सायोगिक नही कि प्राचीन भारत के किसी भी अन्य धर्म की अपेक्षा जैन धर्म मे तपस्या को कही अधिक महत्व दिया जाता था और उसका कही व्यापक प्रचलन था। स्वय वर्धमान की उपाधिया—महावीर, जिन निग्रथ केवली आदि—भी अवतारो की एक पूरी शृखला और सासारिक भाव राग पर विजय से सबद्ध है और तापसिक अर्थो स युक्त हैं।

जैन आचार का तात्विक लक्षण और मुख्य सिद्धात अहिसा है। जैन मताव लबी और विशेषकर साधु पशुवध मे ही विरत नही होते बल्कि छोटे से छोटे कीडे तक को किसी भी तरह कुचलन से भी बचने का यत्न करते है। जैन साधुओ की आचरण सहिता का जैन ग्रथो मे विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है। उन्ह अट्ठाईस नियमो का पालन करना होता था जिनमे सत्य सयम, अपरिग्रह, अहिसा, आदि के साथ-साथ चोरी का निषेध भी सम्मिलित है। गहस्थो के आचरण के नियम इतने कठोर नही है और सख्या मे भी कम है।

जल्दी ही जैन धर्म का देश मे व्यापक प्रसार हो गया तथापि वह बौद्ध धर्म अथवा हिंदू धर्म का जीविष्णु प्रतिद्वद्वी सिद्ध नही हुआ। ईसवी सवत की पहली शताब्दियो मे उसके अपकर्ष के सकेत प्रकट होने लग गये, यद्यपि एक सीमित समुदाय की परिधि के भीतर यह भारत मे आज भी विद्यमान है। तिस पर भी जैन धर्म ने प्राचीनकालीन तथा मध्ययुगीन भारतीय सस्कृति पर बहुत भारी प्रभाव डाला है। जैन धर्म की प्ररणा से व्यापक साहित्य रचना हुई और उसके दर्शन मे अतर्निहित यथार्थवाद के कारण जैनो ने विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो मे दिलचस्पी ली। वैज्ञानिक उपलब्धियो के क्षेत्र मे जैनो का योगदान बहुत महत्वपूर्ण रहा है।

प्रारभिक बौद्ध धर्म और उसके मूलभूत सिद्धात

अन्य धार्मिक सुधार सिद्धातो की ही भाति बौद्ध धर्म भी सबसे अधिक उत्तरी भारत मे, और विशेषकर मगध मे प्रचारित हुआ था, जिसे अवैदिक मतो का केद्र ब्राह्मण धर्म को स्वीकार करने का सबसे अनिच्छुक राज्य माना

जाता था। अवैदिक मतो म आपस मे काफी भेदो के बावजूद बहुत सा सामान्यताए भी थी। आरभ मे बौद्ध धर्म का कोई विशेष प्रभाव नही था और वह देश के शक्तिशाली राज्यो और विशेषकर मगध के शासको स समर्थन प्राप्त करने क आकाक्षी अनक अवैदिक मतो म बस एक और मत ही था।

जाति के अनम्य बधनो को अस्वीकार करनवाला और अपन जन्म के लिहाज के बिना सभी मनुष्यो की समानता का समर्थन करनवाला यह नया मत समाज के व्यापारी मस्तरो के लिए, सपन्न वैश्यो के लिए विशेषकर आकर्षक था, जिन्हे ब्राह्मण धम सामाजिक सोपानिकी मे साधारण स्थान ही प्रदान करता था। बौद्ध धर्म क्षत्रियो म भी बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुआ। उस समय क्षत्रिय अधिकाधिक शक्ति अपने हाथो मे सकेद्रित करत जा रहे थे, लेकिन साथ ही उन्हे ब्राह्मणो द्वारा अपने पर डाले जानेवाले प्रबल वैचारिक दबावो का भी अहसास था, जो अपन को उच्चतम तथा एकमात्र पवित्र वर्ण का – पार्थिव देवता वर्ण तक का – कहते थे।

बौद्ध सघ मे सभी वर्णो के स्वतत्र प्रतिनिधि प्रवेश पा सकते थे और इससे नय धम का प्रभाव क्षेत्र काफी व्यापक हो गया। जो लोग सघ म सम्मिलित नही भी होते थे उनके लिए भी स्वर्ग की सभावना बनी ही रहती थी – बौद्ध धर्म गृहस्थो के सामने यही आदर्श प्रस्तुत करता था। इस प्रारभिक काल मे बौद्ध धर्म का नैतिक पक्ष ही मुख्य था – बुद्ध ने जनसाधारण को दिये गये अपने उपदेशो मे किसी भी प्रकार के जटिल तत्वमीमासीय (आधिभौतिक) प्रश्न नही उठाये।

अपनी प्रारभिक अवस्था म बौद्ध धर्म की सफलता का कारण काफी हद तक यह तथ्य भी था कि बुद्ध न सभी पुरानी परपराओ और प्रथाओ को तजने की आवाज नही उठायी, जो प्राचीन तथा परपरानिष्ठ समाज के सामाजिक तथा बौद्धिक जीवन मे गहरी जड जमा चुकी थी वरन उनका एक नया ही निर्वचन प्रस्तुत करने का, अनक स्थापित प्रथाओ की अपनी व्याख्या देने का ही प्रयास किया।

बौद्ध धर्म तत्वत एक मौलिक मत था। उसकी अन्य भारतीय धार्मिक सिद्धातो से इतनी अधिक भिन्नता थी कि कई बार उसे भारत क सीमातो के बाहर पैदा होनेवाले अन्य धर्मों के समान बनाने के भी प्रयास किये गये, उदाहरण के लिए, ईसाई धम के समान। तथापि इस तरह के सभी नवाचारो को सामान्य पारपरिक अवधारणाओ के ढाचे के भीतर ही रखा गया जिन्हे बौद्ध धर्म ने कभी पूर्णत अस्वीकार नही किया था।

विद्वानो का बौद्ध धर्म तथा उपनिषदो मे सबध बताना निराधार नही है। लेकिन इसका यह आशय नही कि बुद्ध उपनिषदो की शिक्षा मे अतर्हित सिद्धातो को स्वीकार करते थे। यह मानना ज्यादा सही होगा कि स्वय उपनिषद ही प्राचीन भारतीय समाज और उसके विभिन्न प्रदेशो की सस्कृति के विकसित होने के साथ-साथ उदित होनेवाली कुछ नयी अवधारणाओ को प्रतिबिंबित करते थे।

बौद्ध धर्म तथा ब्राह्मण धर्म मे समानताए विभिन्न कारको से हो सकती हैं, किंतु यह बात अत्यत महत्वपूर्ण है कि बौद्ध धर्म तथा अन्य सुधारोन्मुखी मतो के उदय के बाद भारतीयो क सदियो से चले आनेवाले पारपरिक धर्म मे कोई तात्विक परिवर्तन नही आये। जैन धर्म की ही भाति बौद्ध धर्म ने भी ब्राह्मण धर्म द्वारा प्रतिष्ठापित पारपरिक भारतीय कर्मकाड को अपना लिया। यही कारण है कि वैदिक तथा ब्राह्मण देवताओ को त्याज्य अथवा बहिष्करणीय नही घोषित किया गया।

बौद्ध धर्म ने पारपरिक भारतीय देवी देवताओ को नकारा नही किंतु उसने उन्ह अपनी व्यवस्था के भीतर ऐसा महत्वहीन स्थान प्रदान किया कि बौद्ध धर्म मे आत्मसात कर लिये जाने के बाद वे अतत मानो विलुप्त ही हो गय। बौद्ध धर्म मे ब्राह्मण देवी-देवताओ के इस समावेशन ने उसे निस्सदेह दश के विभिन्न भागो मे कही अधिक लोकप्रिय बना दिया, किंतु इस आत्म-सात्करण से बौद्ध धर्म ने पुरानी परपराओ द्वारा स्वय अपने ही लीले जाने का खतरा भी मोल लिया। बौद्ध मत के प्रारभिक विकास के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय वैदिक देवताओ की उपासना नये धर्म के ढाचे के भीतर उसके विशिष्ट सारतत्व अथवा स्वतत्रता के लिए हानिकर नही थी। बौद्ध धर्म का (और वस्तुत उपनिषदो की विचारधारा का भी) तात्विक लक्षण उपासना के ठोस रूपो के प्रति उदासीनता था।

उपनिषदो की ही भाति बौद्ध धर्म भी पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धात को स्वीकार करता है। आत्मा की अविनाश्यता के विचार को नकारते हुए भी बौद्ध धर्म निरपेक्षत घोषित करता है कि आत्मिक ऊर्जा अविनाश्य है। इस ऊर्जा की किसी भी अभिव्यक्ति को शून्य मे परिणत नही किया जा सकता। यह रूपातरण की उस निरतर प्रक्रिया का पृथक रूप मे लिया एक क्षण मात्र है। आत्मा की अनश्वरता का यह विचार कर्म के सिद्धात को जन्म दता है। पाप अथवा कर्म का विलोप नही होता, इसलिए देर-अबेर वह अपने को अनिवाय परिणामो के रूप मे अभिव्यक्त करता है। और चूकि कर्म प्रवृति

से ही आत्मिक है इसलिए उस पर देह के जीवन का बंधन भी नहीं है—इस प्रकार नया जन्म पूर्व कर्मों से निर्धारित होता है, या कम से कम, उनके सर्वव्यापक प्रभाव के अधीन होता है।

बौद्ध मत पर अपनी टीका मे अकादमीशियन श्चेरबात्स्काय ने लिखा है, "जीवन क्षण प्रति क्षण जन्म तथा विलोपन की निरंतर प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया कार्य-कारण नियम के अधीन है न केवल यही कि कुछ भी नित्य अथवा चिरंतन नही है वरन कोई चिरंतन जीव भी नही है और इसलिए कोई आत्मिक अथवा भौतिक पदार्थ भी नही है।"*

बुद्ध संसार मे हर चीज को सतत परिवर्तन की अवस्था मे मानते थे। धर्म (मानव द्वारा असज्ञेय कण) जो विभिन्न सयोगो के परिणामस्वरूप भौतिक तथा आत्मिक तत्वो का निर्माण करते है, निरंतर गतिमान है, संयोगो का अंतहीन सातत्य है।

बौद्ध धर्म की आधारशिला निस्संदेह चार आर्य सत्यों की शिक्षा है, जिन्हे परपरा के अनुसार बुद्ध ने अपने पहले प्रवचन मे प्रतिपादित किया था। इन सत्यों की अपनी प्रतिपादना मे बुद्ध ने मानव अस्तित्व की प्रकृति तथा दुखो के कारण को परिभाषित किया है और दुखो के नाश का, अर्थात निर्वाण प्राप्ति के मार्ग का निरूपण किया है। समूचे तौर पर देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध के इस आधारभूत प्रवचन का सारतत्व निर्वाण के मार्ग का यह विचार ही था। बौद्ध जनश्रुति के अनुसार बुद्ध ने यह कहा था कि जिस प्रकार समुद्रो के पानी मे लवण का आस्वाद होता है, उसी प्रकार उनकी शिक्षा मे भी 'निर्वाण के आस्वाद' से अधिक और कुछ नही है। बुद्ध जीवन को दुखो का समानार्थक बताते है, जो सासारिक विषयो की लालसा तथा तृष्णा से उत्पन्न होते है। इसी लिए उन्होंने लोगो से तृष्णा का परित्याग करने का आग्रह किया और उन्हे निर्वाण का मार्ग दिखलाया। इसमे कर्मफल के बंधन तथा पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति पाना सन्निहित है, जिसमे मनुष्य सच का ज्ञान न होने के परिणामस्वरूप पड जाता है। सघ मे प्रवेश करनेवाला यदि अपने को सासारिक विषयो के, सभी प्रकार के दुखो तथा भाव राग के बंधनो से मुक्त कर लेता है अपने अहम् को वशीभूत कर लेता है और देह

* ए० इ० श्चेरबात्स्काय 'उत्तरकालीन बौद्ध शिक्षा मे प्रस्तुत ज्ञान तथा तर्क का सिद्धात', सेंट पीटर्सबर्ग, १९०९ भाग २ पृष्ठ ११७-११८ (रूसी मे)।

नथा आत्मा के द्वद्व पर पार पा नता है तो वह निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है।

बौद्ध मत के अनुसार निर्वाण की अवस्था म निरतर परिवर्तनशील धर्म गति करना बद कर दत है और इसलिए नय सयोगो के प्रवाह की गति भी बद हो जाती है। इसमे ससार म अर्थात आवागमन तथा लौकिक प्रपच के चक्र म, पूर्ण वियोजन हो जाता है। निर्वाण को चरम लक्ष्य बताया गया है, जिसकी प्राप्ति क साथ पुनर्जन्म की शृखला विलुप्त हो जाती है। इसका आदर्श अर्हत था जो अपन कार्यो तथा आत्मिक परिपूर्णता की साधना से निर्वाण की अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

यह कोई सायोगिक नही कि बौद्ध धम के नैतिक पक्ष को इतना जबरदस्त महत्व दिया गया है। मनुष्य क आचरण के नैतिक पक्ष का विशेष महत्व रखना अनिवार्य ही था। बुद्ध न लोगो स अष्टाग मार्ग का अनुगमन करने के लिए कहा है—सम्यक दृष्टि सम्यक सकल्प सम्यक वाक सम्यक कर्म सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम सम्यक स्मृति तथा सम्यक समाधि। बौद्ध नीति का य सिद्धात ही निर्धारित करत ह। बुद्ध की शिक्षा के अनुसार मनुष्य को इस सगत मार्ग का सगत रूप मे अनुगमन करते हुए अपन पर निर्भर करना चाहिए और बाहर स सरक्षण सहायता अथवा मोक्ष पर निर्भर नही करना चाहिए। 'धम्मपद म कहा गया है कि मनुष्य स्वय ही अधर्म का कर्ता है स्वय ही अपन पतन का कारण है। अधम का न करना भी और अपनी शुद्धि करना भी स्वय मनुष्य पर ही निर्भर करता है। एक आदमी दूसरे की शुद्धि नही कर सकता।

बौद्ध सृष्टिकर्ता ईश्वर के अस्तित्व को, जो मनुष्य सहित ससार मे हर चीज को जन्म देता है, जिस पर मनुष्य की नियति निर्भर करती है अनिवाय अथवा आवश्यक नही मानते। कहत हैं कि बुद्ध न कहा था कि जो लोग ऐसे ईश्वर मे विश्वास करत है उनके लिए न कोई आकाक्षा होती है न प्रयास, उन्ह न कुछ करने की आवश्यकता है और न नही करने की ही। इसके विपरीत ब्राह्मण धर्म के अनुसार मनुष्य के जीवन और नियति को पूर्णत देवताओ की इच्छा ही निर्धारित करती है, जो मनुष्य के अभिप्रायो और नियतियो का नियमन करते है।

बौद्ध धर्म द्वारा *जन्मानुसार सभी मनुष्यो की सार्विक समानता के बारे मे* विचारो के प्रस्तुत किये जाने और सघ के विशिष्ट स्वरूप के बावजूद वह किसी भी प्रकार कोई आमूल परिवर्तनवादी सामाजिक आदोलन नही था।

बौद्ध प्रवचनो म सभी सासारिक दुखो क्लेशो तथा मामाजिक अन्यायो का कारण स्वय मनुष्य के 'अधेपन' को और सासारिक तृष्णाओ को तज पाने की उसकी असमर्थता को ही बताया जाता था। बौद्ध शिक्षा के अनुसार सामारिक दुखभोग को सघर्ष के ज़रिये नही, बल्कि इसके विपरीत ससार के प्रति सभी सवेदनाओ के निर्वापण द्वारा, मनुष्य के अपने अहम् की चेतना के विनाश द्वारा वशीभूत करना होता है।

बौद्ध धर्म के सस्थापक का जन्म का नाम सिद्धार्थ था और वह गौतम गोत्र मे उत्पन्न हुए थ। परपरा के अनुसार उन्हे बुद्ध नाम गया के निकट बोधि वृक्ष की छाह मे बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद मिला। सिद्धार्थ शाक्य गण के एक शक्तिशाली प्रमुख के बेटे थे किंतु उन्होंने अपनी पारिवारिक सपदा और सासारिक सुखो को त्यागकर सन्यास ले लिया था। अब तक बच रहे प्रारभिक बौद्ध ग्रथो म बौद्ध धर्म के सस्थापक के जीवन के बारे म अनेक उल्लेख पाये जाते हैं। इस सदर्भ मे चौथी तीसरी शती ई० पू० की पुरालेखीय सामग्री विशेषकर रोचक है जिसमे केवल बुद्ध का उल्लेख ही नही आता है, वरन उनके जन्मस्थान (लुबिनी) को भी निर्दिष्ट किया गया है और उनके जन्म स्थान का यह विवरण धार्मिक ग्रथो की सूचना से पूर्णत मेल खाता है।

विद्वानो मे बुद्ध की एतिहासिक प्रामाणिकता के बारे मे प्रचड विवाद है और स्वय बुद्ध द्वारा प्रचारित मूल शिक्षा का पुनरुद्धार करने के प्रयास भी किये जा रहे है। ये प्रश्न अत्यधिक जटिल है, विशेषकर इस तथ्य के दृष्टिगत कि आधुनिक विद्वानो को उपलब्ध धर्मग्रथ लगभग तीसरी सदी ई० पू० के (परपरा के अनुसार यह माना जाता है कि उनका लेखन ८० ई० पू० म सिहल मे हुआ था) अर्थात इस धर्म के सस्थापक की मृत्यु के कई सौ साल बाद के ही है। इस समय उनकी मृत्यु की सर्वाधिक स्वीकृत तिथि ४८३ ई० पू० (और जन्मतिथि ५६३ ई० पू०) है।

आजीवक पथ

आरभ मे बौद्धो के मुख्य प्रतिद्वद्वी आजीवक थे। ई० पू० पाचवी से तीसरी सदियो म आजीवक पथ की खासी व्यापक लोकप्रियता का कारण सर्वोपरि रूप मे इस पथ के सस्थापक गोसाला द्वारा अपने उपदेशो म ब्राह्मण धर्म की सुसगत और मूलगामी आलोचना था। ब्राह्मण जिस सामाजिक व्यवस्था का पृष्ठपोषण करते थे, उसस असतोष न समाज के व्यापकतम सस्तरो म

सुधारोन्मुख मतो की प्रतिष्ठा को बहुत बढा दिया था। गोशाला द्वारा जाति व्यवस्था तथा ब्राह्मणो की कर्म सिद्धात की व्याख्या की आलोचना ने समाज के निम्न सस्तरो को ही नहीं, बल्कि हाल ही मे धनवान बन तथाकथित नीच कुलो म जन्मे लोगो – शिल्पकारो और व्यापारियो के बेटो – को भी आकर्षित किया। आरभ से गोशाला ने अपनी शिक्षा को किसी मठ सगठन की सकीर्ण सीमाओ तक ही सीमित नही रखा, वरन वह उसे जनसाधारण मे ले गया। उसके मत की प्रकट सरलता (सभी प्रपचो को अततोगत्वा सर्वव्यापक नियति तथा तद्जनित नियतिवाद मे परिणत कर दिया जाना) ने भी आबादी के व्यापक अशो मे उसकी लोकप्रियता को बढाया जिन्होने आजीवक मत को अपना लेने पर भी दैनदिन जीवन मे अपने चिरपरिचित रीति रिवाजो को और जगत विषयक अनेक पारपरिक विचारो को नही छोडा था। लगता है कि अपनी प्रारभिक अवस्था (पाचवी सदी ई० पू०) मे तो आजीवक पथ के बौद्ध धर्म से भी अधिक अनुयायी थे। हो सकता है कि यह उनके सामाजिक सुधार के अप्रच्छन्न झुकाव से सबद्ध रहा हो। यह सायोगिक ही नही है कि जनश्रुति के अनुसार आजीवक पथ ने केवल धनी व्यापारियो और शिल्पकारो ही नहीं, बल्कि आबादी के निम्न सस्तरो मे और खासकर कुम्हारो मे भी बहुत लोकप्रियता प्राप्त की थी। यह बात वायुपुराण' (जिसकी रचना अतिम रूप मे तीसरी – छठी सदी ई० मे हुई थी किंतु जो पुरानी जनश्रुतियो पर आधारित है) के इस कथन स मेल खाती है कि आजीवक शूद्र थे भिन्न भिन्न जातियो के और अस्पृश्य तक थे। बौद्धो और आजीवको मे नये अनुगामी बनान मे तीव्र प्रतिद्वद्विता थी। इसलिए इसमे अचरज की कोई बात नही कि बौद्ध सूनो म गोशाला और उसके मत की अत्यधिक कटु शब्दो मे आलोचना की गयी है। उनके सैद्धातिक विवाद कभी कभी खुले झगडो का रूप ले लेते थे। प्रसिद्ध बौद्ध लेखक बुद्धघोष कोसल की राजधानी श्रावस्ती के मिगर नामक धनी महाजन के बारे मे बताता है जो बहुत समय तक आजीवको का सरक्षक रहा था और उनके सघ को मुक्तहस्त दान देता रहा था। लेकिन मिगर ने जब बौद्ध धर्म ग्रहण करने का निश्चय किया, तो आजीवको ने इस डर से नही कि उनका एक सहधर्मी पथभ्रष्ट हो जायेगा बल्कि उसके द्वारा उन्हे दी जानेवाली नियमित आर्थिक सहायता से वचित हो जाने के भय से उसके घर को ही घर लिया।

बौद्ध धर्मग्रथो म गोशाला की ऐसे धीवर से तुलना की गयी है कि जो नदी के मुख मे जाल बिछाकर बडी सख्या मे मछलियो की मृत्यु का कारण

बनता है (अर्थात उन्हे पथभ्रष्ट कर देता है, जो संभवत बौद्ध मतानुगामी बन जाते) और यह तुलना दोनो धार्मिक पथो मे प्रतिद्वद्विता की ओर ही नही बल्कि उस समय आजीवको को प्राप्त काफी लोकप्रियता की ओर भी इगित करती है।

चाहे पाचवी शती ई० पू० मे आजीवको का काफी – बौद्धा अथवा जैनो से भी अधिक – प्रभाव था अतत इस प्रतिद्वद्विता म बौद्ध ही विजयी हुए। इसका एक कारण आजीवक पथ की किसी हद तक एकपार्श्विता भी हो सकता है। यद्यपि आजीवको न पारपरिक ब्राह्मण विचारो को नकारा, पर बौद्धो के विपरीत उन्होने ब्राह्मण विचारो का निराकरण करने के लिए उस समय के लोगो स सबध रखनेवाले मुख्य प्रश्नो का कोई ठोस समाधान प्रस्तुत नही किया। गोशाला की शिक्षाओ मे मनुष्य के हेतु ससार तथा समाज म उसके स्थान वैयक्तिक प्रयास के महत्व और सत्याचारण" के आधारिक सिद्धातो की वस्तुत कोई चर्चा नही थी यद्यपि बौद्धो तथा जैनो के प्रसग म ये प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुए थे। उसके द्वारा उद्घोषित "सार्विक नियतिवाद" म इन प्रश्नो पर विचार करने की सिद्धातत भी कोई गुजाइश नही थी।

धार्मिक दार्शनिक धाराए और मेगस्थनीज का वृत्तात

मगध तथा मौर्य साम्राज्यो मे धार्मिक जीवन के बारे में यूनानी राजदूत मेगस्थनीज का वृत्तात महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध करता है। मेगस्थनीज तथा उसके बाद क प्राचीन यूनानी लेखको ने वैदिक तथा अवैदिक धाराओ म स्पष्ट विभेद किया है और प्राचीन भारतीय दार्शनिको" को ब्राह्मण तथा श्रमण दार्शनिको म विभाजित किया है।

स्त्राबो के श्रमणो के विवरण म प्राचीन भारतीय कृतियो से घनिष्ठ समानताए पायी जाती है। मेगस्थनीज की ही भाति वह भी उनके राजाओ के साथ निकट सबधो पर जोर देता है जो घटित होती घटनाओ के मूल म निहित कारणो को समझने के लिए उनका मार्गदर्शन लिया करते थ (यह भारतीय प्रथा के विवरणो के साथ मेल खाता है)।

स्त्राबो भविष्यवक्ताओ तथा गुह्यतात्रिको के नाते विख्यात श्रमणो के एक विशेष पथ के बारे मे बताता ह जो ग्रामानुग्राम और नगरानुनगर भिक्षाटन करते थ (इसका आशय आजीवक भिक्षुओ म हो सकता है जो भविष्यवक्ताओ क नाते प्रसिद्ध थ)।

स्त्राबो का "प्रमनई (जो सभवत प्रमन–श्रमण का ही रूपातर है) का वर्णन भी श्रमणो के साथ ही जोडा जा सकता है। स्त्राबो लिखता है कि "प्रमनई' को ब्राह्मणो से बिल्कुल भिन्न विवाद और अस्वीकरण के लिए ख्यात दार्शनिक माना जाता था। ये दार्शनिक ब्राह्मणो का अहकारी और अडियल कहकर तिरस्कार किया करते थे, जो प्रकृति और ज्योतिष की परिघटनाओ के अध्ययन मे ही लगे रहते थे। ये शब्द उस समय जब ब्राह्मणो तथा उनके मत के आलोचक श्रमण अथवा सुधार पथ मैदान मे आ रह थे और विश्व तथा मनुष्य के अस्तित्व से सबधित अनेक समस्याओ पर विभिन्न विवादो मे उलझ रहे थे, व्याप्त वातावरण को बडी सटीकता क साथ अभिव्यक्त करते हैं। श्रमण अथवा 'अवैदिक वस्तुत अपने को ब्राह्मणो से भिन्न मानत थे, उनका उपहास करते थे और ब्राह्मणो की अनन्यता के उनके सिद्धात को चुनौती देते और अस्वीकार करते थे।

श्रमण ब्राह्मणो के अहकार की निदा करते थे उनके सारे ही समाज को निर्देश देने और सभी लोगो का सत्य मार्ग पर पथप्रदर्शन करने के तथाकथित अधिकार को चुनौती देते थे। बौद्ध ग्रथो मे ब्राह्मणो के इन दावो को अक्सर निराधार, भ्रामक और गलत बतलाया गया है।

प्राचीन यूनानी लेखको की कृतियो मे इस आशय का कथन पाया जाता है (जिसका स्रोत बहुत करके मेगस्थनीज ही है) कि श्रमणो म कुछ पथ ऐसे भी थे कि जो वस्त्रो को भी अस्वीकार करते थे (इसका जैन धर्म के दिगबरपथी साधुओ से सबध हो सकता है, जो कपडे नही पहनते थे)।

मेगस्थनीज ने इस काल के भारत मे वैचारिक विकास के कुछ लक्षणो को बडे ही उपयुक्त ढग मे लिया है–दो मूल धाराओ, वैदिक धारा और उसके विरोधी सुधार (श्रमण) पथ का अस्तित्व, जिसमे स्वय नाना सप्रदाय और मत थे। प्रत्यक्ष है कि यूनानी राजदूत के भारत प्रवास के समय भारत मे ब्राह्मण धर्म का काफी प्रभाव बना हुआ था और उसके विरोधी श्रमण पथो को अभी इतना महत्व नही दिया जाता था, सच तो यह है कि उनमे से कोई भी अभी तक इतना महत्वपूर्ण अथवा प्रभावशाली नही बन पाया था कि विदेशियो क विशेष ध्यान को आकर्पित करता। निस्सदेह इस बात को भी ध्यान म रखना चाहिए कि मेगस्थनीज क वृत्तात क जो अश अब तक बच रह पाये है, व किसी भी प्रकार कोई सर्वव्यापी विवरण प्रस्तुत नही करते है–यह भी सभव है कि प्रारभिक मौर्यकालीन भारत के धार्मिक जीवन के बहुत से महत्वपूर्ण पहलू और लक्षण उसके ध्यान मे ही न आये हो।

कुषाण तथा गुप्त कालो का भारत

पहली शती ई०पू० – पहली शती ई० मे उत्तर-पश्चिमी भारत

मौर्य साम्राज्य के अतिम वर्षो म ही उत्तर-पश्चिमी भारत के अनक प्रदेश केंद्रीय शासन से लगभग स्वतत्र हो चुके थे। बाद मे इनमे से कई उत्तर पश्चिमी प्रदेशो मे छोटे छोटे भारतीय-यूनानी राजाओ ने शासन की बागडोर को अपने हाथो म ले लिया था किंतु उनके शासन की हमे बहुत आशिक जानकारी ही प्राप्त है।

इन अनेक भारतीय यनानी राजाओ मे से एक – मेनादर – का स्थान सर्वथा अलग है जो भारतीय परपरा मे मिलिंद के नाम से विज्ञात है। बौद्ध ग्रथ मिलिन्द पन्हो (मिलिंद प्रश्न) म राजा मिलिंद तथा बौद्ध दार्शनिक भिक्खु नागसेन मे शास्त्राथ का वर्णन किया गया है। मेनादर के राज्य के कुछ सिक्को पर बौद्ध धर्मचक अंकित है जिसका मतलब यही हो सकता है कि या तो राजा न बौद्ध धम को अगीकार कर लिया था या वह बौद्ध मताव लबियो का सरक्षक था। इस राज्य की राजधानी सागल या साकल (वर्तमान स्यालकोट) थी। मेनादर के राज्य मे गधार, आर्कोसिया तथा पजाब के कुछ भाग सम्मिलित थे। जैसे कि पहले ही बताया जा चुका है ऐसा प्रतीत होता है कि मेनादर के शासनकाल मे यूनानी सेना पूर्वी भारत मे बढते-बढते पाटलिपुत्र तक जा पहुची थी जो उस समय सतारूढ शुग वश की राजधानी था।

पहली शताब्दी ई०पू० मे ईरानी शक कबीले (चीनी स्रोतो म इन्हे से या साई कहा गया है) मध्य एशिया से उत्तर पश्चिमी भारत म आ पहुचे। आरभ म शको न भारतीय-यूनानी राजवशो से सामना होने के बाद उनकी अधीनता स्वीकार कर ली मगर बाद मे उन्होने अपन भारतीय शक राज्य

स्थापित कर लिये। सबसे प्रसिद्ध भारतीय-शक राजाओ मे से एक माविस था, जिसका राज्यकाल सभवत ई० पू० पहली सदी का मध्यकाल रहा होगा। उसने गधार मे अपनी जड जमा ली और उसके राज्य मे स्वात घाटी और सभवत कश्मीर के कुछ भाग भी शामिल थे। उसके उत्तराधिकारी अज ने अपने राज्य का और भी विस्तार किया और राजाधिराज अथवा शाहशाह की उपाधि धारण की। उसके राज्य मे आर्कोसिया का कुछ भाग भी शामिल था। पहली शताब्दी ई० मे भारतीय-पार्थियन (पार्थव) राजवशो का अभ्युदय हुआ और उन्होने प्रभुता के लिए भारतीय यूनानी तथा भारतीय शक शासको के विरुद्ध प्रचड सघर्ष चलाया। भारतीय पार्थव राजा गोदोफरीज गधार, आर्कोसिया और द्राग्याना (जो शकस्तान – वर्तमान सीस्तान – के नाम से भी विज्ञात है) के कुछ भाग पर अपना शासन स्थापित करने मे सफल हो गया।

कुषाण साम्राज्य की स्थापना

कुषाण राजवश के अधीन भयकर वैमनस्य तथा प्रतिद्वद्विता मे विभाजित छोटे छोटे राज्यो का स्थान एक विशाल साम्राज्य ने ले लिया जिसमे केवल उत्तरी तथा उत्तर-पश्चिमी भारत ही नही, वरन मध्य एशिया और आज के पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान मे आनेवाले इलाके भी सम्मिलित थे।

आरभ मे कुषाण राज्य मे मध्य एशिया मे बाख्त्रिया (बैक्ट्रिया) के कुछ भाग ही थे। चीनी स्रोतो के अनुसार बाख्त्रिया पर ई० पू० दूसरी शती मे पूर्व की तरफ से यूहूश्रीह (यूहशी) कबीलो ने आक्रमण किया और वहा पाच राज्य स्थापित कर लिये। बाद मे कुषाणो ने, जिन्हे चीनी स्रोतो मे क्यूइशुआग अथवा ग्यूइशुआन कहा गया है, अन्यो पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। प्राचीन यूनानी स्रोतो मे भी पूर्व से आनेवाले और बाख्त्रिया को जीत लेनेवाले कबीलो का उल्लेख आता है।

स्त्राबो ने लिखा है कि इन कबीलो ने बाख्त्रिया को यूनानियो से जीत लिया। कुषाण कबीलो के आक्रमण के समय बाख्त्रिया राज्यत्व की अच्छी तरह से स्थापित परपराओ और सुविकसित सस्कृति से सपन्न अति उन्नत देश था। इस इलाके के रहनेवाले बाख्त्री भाषा बोलते थे जो ईरानी भाषा समूह की थी और उनकी यूनानी लिपि से विकसित अपनी लिपि भी थी। कुषाणो ने स्थायी रूप से बसकर रहनेवाले बाख्त्रियो की इन परपराओ को अपना लिया यद्यपि कुषाण सस्कृति के विकास मे यायावर जीवन की परपराए

महत्वपूर्ण योगदान करती रही। कुषाणो के मूल का प्रश्न अब भी अस्पष्ट ही बना हुआ है और विद्वानो मे उसके बारे मे प्रबल विवाद है। हाल के वर्षो म इसके बारे म कई प्राक्कल्पनाए प्रस्तुत की गयी है उदाहरण क लिए यूहची की आतर एशिया के तोखारी (ताहारी) कबीला से सबद्ध किया गया है जिन्होने बाख्त्रिया को जीता था, मगर अपनी भाषा को विस्मृत कर दिया। यह मत भी प्रस्तुत किया गया है कि कुषाण जना का उदय बाख्त्रिया म ही हुआ था (इसके अनुसार कुषाणो और यूहची म सबध होना सदिग्ध हो जाता है)। पहली शती ई० पू० क अत का एक कुषाण राजा हेराउस अपने को कुषाण हेराउस कहता था, जैसा कि उस समय क सिक्को से प्रकट होता है।

कुषाण राजा कुजुल कदफिसस (जिसे चीनी स्रोतो म क्योत्स्यूक्यू कहा गया है) के अधीन कुषाण राज्य म आर्कोसिया कश्मीर क कुछ भाग और पार्थिया के कुछ प्रदश भी शामिल कर लिय गय। उसक शासनकाल के बहुत से सिक्क काबुल क आसपास मिल है जिसस यह प्रकट होता है कि यह इलाका भी कुषाण साम्राज्य का अग था। आरभ मे कदफिसस को भारतीय-यूनानी राजाओ की प्रभुता को स्वीकार करना पडा था उसके शासनकाल के कुछ सिक्को पर एक तरफ भारतीय यूनानी राजा हरमियस की प्रतिमा है, जब कि दूसरी तरफ कदफिसस का नाम खरोष्ठी लिपि मे अकित है। बाद मे वह पूर्णत स्वतत्र हो गया और इसके बाद ढाले गये सिक्को पर केवल राजाधिराज कदफिसस का नाम ही अकित है। उसके पुत्र कदफिसस द्वितीय अथवा वीमा कदफिसस के शासनकाल मे कुषाण राज्य मे सिधु के निम्न खण्ड के इलाके भी शामिल किये जा चुके थे। कुषाण पूर्व मे भी प्रसार कर गये थे। यह सभव है कि इस समय तक उनका पूर्वी भारत के कुछ भागो पर—ठठ वाराणसी तक भी—शासन स्थापित हो चुका था।

कदफिसस द्वितीय ने एक महत्वपूर्ण मुद्रा सुधार किया और यह था रोमन सिक्के औरई के समान मूल्य के सोने के सिक्को का उपयोग जिनका कुषाण राज्य की सीमाओ क भीतर प्रचलन था। इसे सभवत रोमन प्रभाव का परिणाम माना जा सकता है। विशुद्धत भारतीय प्रदेशो के जीते जाने ने कुषाण शासको के लिए स्थानीय परपराओ को ध्यान मे रखना आवश्यक बना दिया जिनका सारे ही साम्राज्य मे प्रशासन पर प्रबल प्रभाव था। कदफिसस द्वितीय क शासनकाल मे ढाले गये कुछ सिक्को पर शिव (कभी-कभी नदी के साथ भी) की आकृति होने का सभवत यही कारण है।

कुषाण साम्राज्य अपने चरम पर कनिष्क के राज्यकाल मे पहुचा जा प्राचीन भारत के सबसे प्रसिद्ध शासको मे एक है। सिक्को तथा थोडी मात्रा म पुरालेखीय प्रमाण के अलावा कनिष्क के राज्यकाल के बारे मे सूचना के कम ही तथ्याकित अथवा समकालीन स्रोत है, यद्यपि उत्तरकालीन बौद्ध कथाओ तथा अनुश्रुति मे उसके और उसके कार्यकलाप के बारे म उल्लेख पाय जाते है। कनिष्क के अधीन बिहार के कुछ भागो तक और मध्य भारत मे नर्मदा तक भी कुषाणो की सत्ता का प्रसार हो गया।

कनिष्क के राज्यकाल मे कुषाणो ने सौराष्ट्र तथा काठियावाड मे भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया, यद्यपि पश्चिमी क्षत्रप (पश्चिमी भारतीय प्रदेशो के शासक) पूर्णत उनके अधीन नही थे। चीनी इतिवृत्तो मे पूर्वी तुर्किस्तान के कुछ भागो पर सत्ता की स्थापना के लिए कुषाणो के चीन के साथ युद्ध का वर्णन किया गया है। कुछ स्रोतो से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि कुषाण इन इलाको मे दूर तक दाखिल हो गये थे, यद्यपि यह ज्ञात नही है कि कुषाण शासको का वहा कितने समय प्रभुत्व बना रहा। तथापि यह पूर्णत स्पष्ट है कि कनिष्क के अधीन कुषाण साम्राज्य चीन रोम और पार्थिया की टक्कर का ही प्राचीन विश्व की प्रबलतम शक्तियो मे एक बन गया था। उस समय रोम के साथ सपर्क घनिष्ठ थे इसलिए यह सभव है कि प्राचीन लेखको की कृतियो मे रोमन सम्राट त्राजन (९९ ई०) के राज्यकाल मे रोम म भारतीय दूतमडल के बारे मे जो हवाले आते है, वे कुषाणो के बारे म ही हो।

चीनी तथा भारतीय स्रोत ग्रथो मे कनिष्क को बौद्ध धर्म का पक्का अनुयायी बतलाया गया है और कश्मीर मे बौद्ध सगीति (तथाकथित चतुर्थ बौद्ध सगीति) के समाह्वान को उसके साथ सबद्ध किया जाता है। यह सभव है कि कनिष्क बौद्ध धर्म का समर्थक रहा हो, यद्यपि उसकी वास्तविक नीति धार्मिक सहिष्णुता की नीति थी। यह उसके सिक्को से प्रमाणित होता है, जिन पर भारतीय, यूनानी तथा जरथुस्त्री देवताओ की प्रतिमाए अकित है। कनिष्क के अधीन बौद्ध धर्म राजधर्म नही था और उसके कुछ ही सिक्को पर बुद्ध की प्रतिमा ढली हुई है।

इस काल म बाख्त्री भाषा अधिकाधिक महत्व ग्रहण करती चली गयी और अतत उसे सारे राज्य मे अपना लिया गया। यूनानी लिपि के आधार पर

बाख्त्री लिपि भी निकाली गयी जिसने सिक्को पर भी खरोष्ठी लिपि का स्थान ले लिया। अभी कुछ ही वर्ष पहले सुर्ख कोतल (उत्तरी अफगानिस्तान) मे कनिष्क के राज्यकाल का एक बडा बाख्त्री शिलालेख खोजा गया था। इस शिलालेख मे एक देवालय के निर्माण का वर्णन किया गया है – सभव है कि यह कुषाणवशीय कोट का गर्भगृह रहा हो।

इस साम्राज्य से सबधित जटिलतम प्रश्नो मे से एक तिथिक्रम का है, जिसमे कनिष्क के शासनकाल की तिथियो का निर्धारण भी है। विद्वानो ने अलग अलग तिथिया सामने रखी हैं – ७८ ई०, १०३ ई०, ११० ई० १४४ ई०, २४८ ई० और २७८ ई० भी – मतलब यह कि इनमे दो शताब्दियो का अतर है। इस समय कनिष्क युग ' की तिथि को ईसवी सवत की पहली शताब्दी के प्रथम चतुर्थक के साथ सबद्ध करना ही सबसे अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है।

कनिष्क के उत्तराधिकारी
कुषाण साम्राज्य का पतन

कनिष्क के उत्तराधिकारियो मे सबसे प्रसिद्ध हुविष्क तथा वसुदेव हैं। उनके राज्यकालो मे कुषाणो ने गगा घाटी के भारतीय इलाको की तरफ विशेष ध्यान दिया। उनके लिए उत्तर-पश्चिमी सूबो पर अपना प्रभुत्व बनाये रखना अधिकाधिक कठिन होता गया। इस समय तक कुषाणो का अत्यत तीव्र गति से भारतीयकरण होने लग गया था वे भारतीय परपराओ को ग्रहण करते जा रहे थे और स्थानीय आबादी के घनिष्ठ सपर्क मे आने लग गये थे। वसुदेव शैव था। मथुरा के आसपास, जिसने इस समय तक साम्राज्य के राजनीतिक तथा सास्कृतिक जीवन मे विशेष महत्व की भूमिका का निर्वहन करना शुरु कर दिया था वसुदेव के कई शिलालेख पाये गये हैं।

वसुदेव के राज्यकाल मे ही साम्राज्य के प्रारभिक अपकर्ष के सकेत दृष्टिगोचर होने लग गये थे। उसके उत्तराधिकारियो को शक्तिशाली सासानी राज्य के और भारत के विभिन्न भागो मे प्रभुत्व स्थापित कर लेनेवाले स्थानीय राजवशो के विरुद्ध भी प्रचड सघर्ष करना पडा। कुषाणो को मथुरा मे सत्ताधीन नाग राजाओ और कौशाबी के राजाओ की स्वतत्रता को स्वीकार करना पडा। उन्हे मध्य भारत के उन भागो से भी हटना पडा, जिन्हे पहले साम्राज्य मे मिला लिया गया था। कुषाणो को दूसरी तीसरी सदी ई० मे

ईरान के सासानी राजवश के विरुद्ध विशेषकर भयकर सघर्ष मे उलझना पडा, जिसके बाद कुषाण साम्राज्य के पश्चिमी प्रदेशो को शापुर प्रथम (२४१–२७२ ई०) के राज्यकाल मे सासानी साम्राज्य मे मिला लिया गया। शापुर प्रथम के २६२ ई० के एक प्रसिद्ध शिलालेख मे, जो तीन भाषातरो – मध्य-फारसी, पार्थव और यूनानी – मे अब तक बच रहा है, उसे ' ईरान और गैर-ईरान का शाहशाह " कहा गया है, जिसका शासन ठेठ पुरुषपुर (आधुनिक पेशावर) तक और काश (काशगर), सोग्दियाना तथा शाश (ताशकद) के सीमातो तक कुषाण प्रदेशो पर फैला हुआ था। तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक कुषाण प्रदेशो के लिए सासानी शासक की नियुक्ति नही की गयी थी – कुछ बाद मे जाकर, चौथी शताब्दी के अतिम चतुर्थक मे ही सासानी सूबेदारो ने अधीनस्थ कुषाण प्रदेशो मे विशेष कुषाण सासानी सिक्के ढालना और चलाना शुरू किया था।

कुषाण युग के अत मे उनके शासन मे केवल गधार के आसपास के इलाके ही रह गये थे। *कालातर मे कुषाणो के लगभग सभी भारतीय प्रदेशो* को गुप्त साम्राज्य मे सम्मिलित कर लिया गया।

कुषाण देवता तथा सास्कृतिक प्रगति

कुषाण काल ने प्राचीन विश्व के कई भागो के ऐतिहासिक तथा सास्कृतिक विकास पर अपनी छाप छोडी है। कुषाण शासन के अधीन अनेक भिन्न भिन्न नसलो और कौमो को एक एकीकृत साम्राज्य की सीमाओ के भीतर ले आया गया था, जिसके ढाचे के भीतर सामान्य परपराए विकसित हो गयी थी और कुषाण साम्राज्य के विभिन्न भागो के बीच ही नही, वरन रोम, दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो और सुदूर पूर्व के देशो के साथ भी घनिष्ठ सबध बन गये थे। *कुषाण सस्कृति ने विविध परपराओ के सश्लेषण के आधार पर परिपक्वता* प्राप्त की थी यद्यपि उसमे कुछेक स्थानीय शैलियो तथा प्रवृत्तियो ने अपन को बनाये रखा था। सामान्य परपरा के अगस्वरूप प्राचीन परपराओ के श्रेष्ठतम तत्वो को भी आत्मसात किया गया था।

सोवियत पुराविदो द्वारा मध्य एशिया म हाल के उत्खनन कार्य के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र मे वास्तु तथा मूर्तिकला की स्थानीय शैलियो के विकास के बारे म महत्वपूर्ण सामग्री प्रकाश म आयी है। कुषाण कला के विकास म बाख्त्री शैली न अत्यत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया था

जिसने समूचे तौर पर समस्त कुषाणकालीन कला पर गहरा प्रभाव डाला।

कुषाण साम्राज्य की आबादी की जातीय तथा सांस्कृतिक विविधता कुषाण देवताओं में भी प्रतिबिंबित होती है, जो इस युग के सिक्कों की बदौलत सुज्ञात है। कनिष्क तथा हुविष्क के राज्यकालों के सिक्कों में इसके विशेषकर अच्छे उदाहरण मिलते हैं, जिन पर देवताओं के तीन – ईरानी, यूनानी तथा भारतीय – समूहों का प्रामुख्य है। ईरानी देवताओं में मुख्य मित्र (मिथर), उर्वरता की देवी आर्दोक्षो, चंद्रदेव (माओ), रणदेव वेरेथ्राग्ना और सर्वोच्च देवता अहुरमज्दा हैं। यूनानी देवताओं में हेफीस्तस, सलीनी (चन्द्रदेवी), हेलिओस (सूर्यदेव) तथा हेराक्लीज हैं। सबसे मुख्य भारतीय देवता शिव, महासेन तथा स्कंद हैं।

देवताओं का यह संयोजन समस्त कुषाण साम्राज्य की सामान्य सांस्कृतिक परंपराओं के विकास को और साथ ही कुषाण शासकों की धार्मिक सहिष्णुता की नीति को भी प्रतिबिंबित करता है। साम्राज्य के पतन के बाद भी भूतपूर्व साम्राज्य की इन सामान्य परंपराओं और संबंधों में से बहुत से बने रहे। कुषाण युग की विरासत ने पूर्व के अनेक जनगण के उत्तरवर्ती विकास पर अमिट प्रभाव डाला है।

गुप्त साम्राज्य की स्थापना

कुषाण साम्राज्य के पतन के बाद भारत में राजनीतिक विखंडन का एक लंबा दौर आया, जो चौथी सदी के आरंभ तक चला। इसके बाद एक नये और शक्तिशाली साम्राज्य – गुप्तवंशीय साम्राज्य – ने रूप लेना शुरू किया।

उस समय तक कुषाणवंशीय शासकों ने पश्चिमी पंजाब में अपने छोटे छोटे प्रदेशों पर अपने अधिकार को बनाये रखा था, गुजरात, राजस्थान और मालवा क्षत्रपों के नियंत्रण में थे, गंगा घाटी में कितने ही राज्य थे, जिनमें से कुछ गणतंत्रीय भी थे। मगध कई राजवंशों के आवागमन का साक्षी रहा था, किंतु उत्तरी भारत के आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन में अब भी उसकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी।

मौर्य काल की ही भांति चौथी शताब्दी ई० के आरंभ में मगध एक बार फिर एक नयी राजनीतिक इकाई का केंद्र बन गया, जिसने शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य को उसका केंद्रक प्रदान किया। गुप्त राजवंश का संस्थापक श्रीगुप्त था, जिसने राजा तथा महाराज की उपाधि धारण की, किंतु जैसा कि कुछेक

गुप्तकालीन शिलालेखो से ही प्रकट होता है इस राजवश के वास्तविक इतिहास का प्रारभ श्रीगुप्त के पुत्र, राजा घटोत्कच के साथ होता है। अभाग्यवश गुप्त राज्य के मूल सीमातो की कोई जानकारी प्राप्य नही है। कई इतिहासकारो का मत है कि वे मगध राज्य के सीमातो के अनुरूप ही रहे होगे जब कि कुछ इतिहासकार उसमे वर्तमान पश्चिमी बगाल के कुछ भागो का होना भी मानते है। इस प्रश्न के समाधान मे अस्पष्टता सुतथ्य पुरालेखीय सामग्री के अभाव के कारण ही है। इस काल के बारे मे उपलभ्य लिखित स्रोत सामग्री मे चीनी यात्री इत्सिग के विवरण को प्रमुख स्थान प्राप्त है।

गुप्त साम्राज्य के सुदृढीकरण का प्रारभ चद्रगुप्त प्रथम के शासनकाल मे हुआ, जिसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। उसके पुत्र समुद्रगुप्त के प्रसिद्ध इलाहाबाद स्तभलेख मे कहा गया है कि राजा (समुद्रगुप्त) लिच्छवियो का दौहित्र " था, अर्थात वह हमे यह बताता है कि चद्रगुप्त प्रथम की पत्नी लिच्छवि थी। मगध काल से ही लिच्छवि प्राचीन भारत के राजनीतिक जीवन मे एक प्रमुख शक्ति रहते आये थे। अनुमान लगाया जा सकता है कि इस गणसघ ने प्रारभिक गुप्त राजाओ के राज्यकाल मे भी अपनी सत्ता को कायम रखा हुआ था। लिच्छवियो के साथ मैत्री ने निश्चय ही गुप्त प्रभुत्व के सुदृढीकरण मे योग दिया होगा। लिच्छवियो के साथ वैवाहिक सबध का उल्लेख केवल समुद्रगुप्त के शिलालेख मे ही नही मिलता है। चद्रगुप्त प्रथम की स्वर्ण मुद्राओ मे उसे अपनी लिच्छवि साम्राज्ञी के साथ दर्शाया गया है। लिच्छविकन्या कुमारदेवी के साथ चद्रगुप्त के विवाह के परिणामस्वरूप सभवत प्रादेशिक लाभ भी हुआ होगा–हो सकता है कि दोनो ही राज्य गुप्त सम्राटो के अधीन सयुक्त राज्य म ऐक्यबद्ध हो गये हो।

चद्रगुप्त प्रथम के राज्यकाल के–और इसी प्रकार गुप्त काल के भी–प्रारभ को ३२० ई० से माना जाता है किंतु कुछ इतिहासकार इसे समुद्रगुप्त के सिहासनारोहण की तिथि मानते है।

समुद्रगुप्त और साम्राज्य का सुदृढीकरण

समुद्रगुप्त के राज्यकाल के बारे मे अधिक विस्तृत सूचना उपलब्ध है। इलाहाबाद स्तभलेख मे जिसकी रचना उसके राजकवि हरिषेण ने की थी समुद्रगुप्त की चमत्कारी विजयो का प्रशस्तिगान किया गया है और गुप्त नामक द्वारा पराभूत राजाओ तथा दशो के नाम दिये गय हैं। समुद्रगुप्त न आर्यावर्त

जिसने समूचे तौर पर समस्त कुषाणकालीन कला पर गहरा प्रभाव डाला।

कुषाण साम्राज्य की आबादी की जातीय तथा सांस्कृतिक विविधता कुषाण देवताओं में भी प्रतिबिंबित होती है, जो इस युग के सिक्कों की बदौलत सुज्ञात है। कनिष्क तथा हुविष्क के राज्यकाल के सिक्कों में इसके विशेषकर अच्छे उदाहरण मिलते हैं, जिन पर देवताओं के तीन – ईरानी, यूनानी तथा भारतीय – समूहों का प्राधान्य है। ईरानी देवताओं में मुख्य मिथ्र (मियर), उर्वरता की देवी आर्दोख्शो, चंद्रदेव (माओ), रणदेव वरेथ्राग्ना और सर्वोच्च देवता अहुरमज्दा है। यूनानी देवताओं में हेराक्लिस, सलीनी (चन्द्रमा), हेलिओस (सूर्यदेव) तथा हेराक्लीज है। सबसे मुख्य भारतीय देवता शिव, महासेन तथा स्कंद है।

देवताओं का यह संयोजन समस्त कुषाण साम्राज्य की सामान्य सांस्कृतिक परंपराओं के विकास को और साथ ही कुषाण शासकों की धार्मिक सहिष्णुता की नीति को भी प्रतिबिंबित करता है। साम्राज्य के पतन के बाद भी भूतपूर्व साम्राज्य की इन सामान्य परंपराओं और संबंधों में से बहुत से बने रहे। कुषाण युग की विरासत ने पूर्व के अनेक जनगण के उत्तरवर्ती विकास पर अमिट प्रभाव डाला है।

गुप्त साम्राज्य की स्थापना

कुषाण साम्राज्य के पतन के बाद भारत में राजनीतिक विखंडन का एक लंबा दौर आया, जो चौथी सदी के आरंभ तक चला। इसके बाद एक नये और शक्तिशाली साम्राज्य – गुप्तवंशीय साम्राज्य – ने रूप लेना शुरू किया।

उस समय तक कुषाणवंशीय शासकों ने पश्चिमी पंजाब में अपने छोटे छोटे प्रदेशों पर अपने अधिकार को बनाये रखा था, गुजरात, राजस्थान और मालवा क्षत्रपों के नियंत्रण में थे, गंगा घाटी में कितने ही राज्य थे, जिनमें से कुछ गणतंत्रीय भी थे। मगध कई राजवंशों के आवागमन का साक्षी रहा था, किंतु उत्तरी भारत के आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन में अब भी उसकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी।

मौर्य काल की ही भांति चौथी शताब्दी ई० के आरंभ में मगध एक बार फिर एक नयी राजनीतिक इकाई का केंद्र बन गया, जिसने शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य को उसका केंद्रक प्रदान किया। गुप्त राजवंश का संस्थापक श्रीगुप्त था, जिसने राजा तथा महाराज की उपाधि धारण की, किंतु जैसा कि कुछेक

गुप्तकालीन शिलालेखों से ही प्रकट होता है, इस राजवश के वास्तविक इतिहास का प्रारभ श्रीगुप्त के पुत्र, राजा घटोत्कच के साथ होता है। अभाग्यवश गुप्त राज्य के मूल सीमातो की कोई जानकारी प्राप्य नही है। कई इतिहासकारो का मत है कि वे मगध राज्य के सीमातो के अनुरूप ही रहे होगे जब कि कुछ इतिहासकार उसमे वर्तमान पश्चिमी बगाल के कुछ भागो का होना भी मानते हैं। इस प्रश्न के समाधान मे अस्पष्टता सुतथ्य पुरालेखीय सामग्री के अभाव के कारण ही है। इस काल के बारे म उपलभ्य लिखित स्रोत सामग्री मे चीनी यात्री इत्सिग के विवरण को प्रमुख स्थान प्राप्त है।

गुप्त साम्राज्य के सुदृढीकरण का प्रारभ चद्रगुप्त प्रथम के शासनकाल मे हुआ, जिसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। उसके पुत्र समुद्रगुप्त के प्रसिद्ध इलाहाबाद स्तभलेख मे कहा गया है कि राजा (समुद्रगुप्त) लिच्छ-वियो का दौहित्र था, अर्थात वह हमे यह बताता है कि चद्रगुप्त प्रथम की पत्नी लिच्छवि थी। मगध काल से ही लिच्छवि प्राचीन भारत के राजनीतिक जीवन मे एक प्रमुख शक्ति रहते आये थे। अनुमान लगाया जा सकता है कि इस गणसघ ने प्रारंभिक गुप्त राजाओ के राज्यकाल म भी अपनी सत्ता को कायम रखा हुआ था। लिच्छवियो के साथ मैत्री ने निश्चय ही गुप्त प्रभुत्व के सुदृढी करण म योग दिया होगा। लिच्छवियो के साथ वैवाहिक सबध का उल्लेख केवल समुद्रगुप्त के शिलालेख मे ही नही मिलता है। चद्रगुप्त प्रथम की स्वर्ण मुद्राओ मे उसे अपनी लिच्छवि साम्राज्ञी के साथ दर्शाया गया है। लिच्छविकन्या कुमारदेवी के साथ चद्रगुप्त के विवाह के परिणामस्वरूप सभवत प्रादेशिक लाभ भी हुआ होगा—हो सकता है कि दोनो ही राज्य गुप्त सम्राटो के अधीन सयुक्त राज्य मे ऐक्यवद्ध हो गये हो।

चद्रगुप्त प्रथम के राज्यकाल के—और इसी प्रकार गुप्त काल के भी—प्रारभ को ३२० ई० से माना जाता है किंतु कुछ इतिहासकार इसे समुद्रगुप्त के सिहासनारोहण की तिथि मानते हैं।

समुद्रगुप्त और साम्राज्य का सुदृढीकरण

समुद्रगुप्त के राज्यकाल के बारे मे अधिक विस्तृत सूचना उपलब्ध है। इलाहाबाद स्तभलेख मे जिसकी रचना उसके राजकवि हरिषेण ने की थी समुद्रगुप्त की चमत्कारी विजयो का प्रशस्तिगान किया गया है और गुप्त शासक द्वारा पराभूत राजाओ तथा देशो के नाम दिये गये है। समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त

(गगा घाटी) मे नौ राजाओ की और दक्षिणापथ म बारह का जीता था। आर्यावर्त म विजित राज्यो व प्रदेशो को गुप्त साम्राज्य म समामलित कर लिया गया। स्तभलेख म अहिच्छत्र क शासक दो नागवशीय राजाओ के नाम भी उल्लिखित है। अन्य विजित प्रदेशो का यथार्थतापूर्वक स्थिति निर्धारण करना बहुत कठिन है और यह विद्वानो म विवाद का विषय है। समुद्रगुप्त के सैनिक कार्यकलाप उसके साम्राज्य स लगे हुए इलाको और विशेषकर गगा घाटी स्थित प्रदेशो म ही सकेंद्रित थे। स्तभलेख म गुप्त सम्राट द्वारा "आरण्य राज्यो क जीते जाने का भी उल्लेख ह, जो सभवत नर्मदा तथा महानदी की घाटियो म गण सहबध रहे होग।

समुद्रगुप्त का दक्षिणी अभियान भी इतना ही सफल रहा। सबसे पहले उसने दक्षिण कोसल के राजा महेंद्र को और उसके बाद गोदावरी के इलाके म स्थित प्रदेश के राजाओ को और पल्लव राजा विष्णुगोप को, जिसकी राजधानी काची थी पराजित किया। स्तभलेख म उल्लिखित अन्य विजित प्रदेशो का अभी तक निर्धारण नही किया जा सका है।

दक्षिणी प्रदेशो को साम्राज्य म समामलित किया गया हो, ऐसा प्रतीत नही होता अलबत्ता उन्हे अधीनस्थ प्रदेश माना जाता था, क्योकि उन्हे विजेता को नजराना देना होता था। पश्चिमी तथा उत्तर-पश्चिमी भारत के कुछ गणसंघ – यौधेय मालव, मद्रक अर्जुनायण – भी गुप्त साम्राज्य के अधीनस्थ प्रदेश थे।

पश्चिमी क्षत्रपो और पश्चिमी पजाब तथा अफगानिस्तान के कुछ भागो पर अब भी सत्तारूढ उत्तरकालीन कुषाण शासको के साथ समुद्रगुप्त के सबध नाजुक थे। इलाहाबाद के लेख मे क्षत्रपो तथा कुषाणो पर गुप्त सम्राटो की प्रभुता का उल्लेख है। ऐसा लगता है कि समुद्रगुप्त ने इन प्रदेशो पर कुछ नियत्रण स्थापित कर लिया था, यद्यपि क्षत्रपो तथा कुषाण राजाओ ने अपनी स्वतत्रता को अभी तक पूरी तरह स नही गवाया था।

इस सदर्भ मे एक महत्वपूर्ण सकेत यह है कि ३३२–३४८ ई० और ३५१–३६० ई० की अवधियो के क्षत्रप सिक्के सर्वथा अप्राप्य है, जो उनके कम से कम अस्थायी काल के लिए गुप्तो के अधीन होने का ही सूचक हो सकता है। उस समय पश्चिमी क्षत्रपो के प्रदेश पर गुप्त सिक्को का प्रचलन था। बाद म पश्चिमी क्षत्रप शासक रुद्रसेन तृतीय न कुछ समय के लिए अपने राज्य के पुराने गौरव की पुनःस्थापना की और सिहसेन ने तो महाक्षत्रप की उपाधि भी धारण की।

समुद्रगुप्त ने श्रीलका के साथ घनिष्ठ सबध बनाये रखे। अनुश्रुति के अनुसार सिहली राजा मेघवर्ण (३५२–३७६ ई०) ने समुद्रगुप्त के पास दूतमडल भेजकर भारत मे सिहली भिक्षुओ के लिए एक विहार का निर्माण करने की अनुमति मागी थी। समुद्रगुप्त ने इसके लिए अनुमति प्रदान की, जिसके परिणामस्वरूप बोधिवृक्ष के पास एक बौद्ध विहार का निर्माण किया गया प्रतीत होता है।

समुद्रगुप्त के राज्यकाल मे गुप्त साम्राज्य पूर्व के विशालतम साम्राज्यो मे एक हो गया था। उसके प्रभाव का प्रसार हुआ और अनेक अन्य राज्यो के साथ घनिष्ठ सबधो की स्थापना हुई। उसके राजकवि हरिषेण ने अपने सम्राट के शौर्य तथा सामर्थ्य की प्रशस्ति अकारण ही नही लिखी है, जिसने – स्तभलेख के अनुसार – विश्व विजित किया था। राजकवि के इस मूल्याकन ने कई आधुनिक विद्वानो पर भी काफी प्रभाव डाला, जिन्होने समुद्रगुप्त को आदर्शीकृत करने का प्रयास किया है और – विन्सेंट स्मिथ की भाति – उसे भारतीय नेपोलियन", विलक्षण गुणो से युक्त अप्रतिम व्यक्ति कहा है।

चद्रगुप्त विक्रमादित्य

पुरालेखीय प्रमाण के आधार पर कहा जा सकता है कि समुद्रगुप्त ने ३८० ई० तक शासन किया और उसके बाद राजसिहासन पर उसके पुत्र रामगुप्त के लघु शासन के उपरात दूसरा पुत्र, चद्रगुप्त द्वितीय, बैठा, जिसने ४१३ अथवा ४१५ ई० तक राज्य किया। विशाखदत्त द्वारा लिखित 'देवीचद्रगुप्तम्' नाटक (जिसके कुछ अश ही उपलब्ध है) के अनुसार चद्रगुप्त ने अपने बडे भाई रामगुप्त के साथ भयकर सघर्ष के बाद सत्ता प्राप्त की थी। जैसा कि इस नाटक मे स्पष्ट किया गया है, चद्रगुप्त ने इस सघर्ष मे सफलता पश्चिमी क्षत्रपो पर अपनी विजय के परिणामस्वरूप प्राप्त की थी। अभिलेखीय तथा मौद्रिक साक्ष्यो से इसकी पुष्टि होती है। शिलालेखो मे क्षत्रपो के विरुद्ध अभियान के विभिन्न चरणो का तो वर्णन नही किया गया है, किंतु चद्रगुप्त के मत्रियो तथा सेनानायको के मालवा जाने का उल्लेख है। पाचवी सदी के आरभ मे चद्रगुप्त द्वितीय द्वारा चलाये गये सिक्के पश्चिमी क्षत्रपो के प्रदेश मे भी चलने लगे थे और उन्हे भूतपूर्व क्षत्रप शासको के सिक्को जैसी ही मान्यता प्राप्त थी। यह गुप्तो द्वारा पश्चिमी क्षत्रपो के प्रदेशो के जीते जाने तथा साम्राज्य मे समामेलित किये जाने का द्योतक ही हो सकता है। साथ

6–723

ही अपने पश्चिमी अभियान के दौरान चद्रगुप्त द्वितीय ने समुद्रतटीन प्रदेश सहित पश्चिमी भारत के कुछ अन्य भागों को भी जीता। इससे गुप्तो को महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र प्राप्त हो गये और पश्चिम के देशो सहित अनेक समुद्पार देशो के साथ उनके सपर्को का प्रसार हुआ।

दिल्ली के प्रसिद्ध लौह स्तभ पर राजा चद्र के आदेश से उत्कीर्ण लेख के आधार पर कुछ इतिहासकार यह मान लेते है कि चद्रगुप्त द्वितीय (जिसे वे चद्र से भिन्न नही मानते) ने अपने साम्राज्य को बलख तक भी फैला लिया था किंतु इस प्राक्कल्पना को अभी तक अच्छी तरह से स्थापित नहीं किया जा सका है। चद्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल मे पश्चिमी दक्कन (दक्षिणापथ) तथा मध्य भारत के शक्तिशाली वाकाटक राजवश के साथ सबध काफी बिगडे हुए थे। अपने साम्राज्य के दक्षिणी तथा पश्चिमी सीमातो को सुरक्षित करने के लिए चद्रगुप्त ने वाकाटक राजा के साथ अपनी पुत्री की शादी करके सबध स्थापित किया। लगता है कि नागवशियो ने भी इस काल मे अपनी सत्ता तथा स्वतत्रता को किसी हद तक बनाये ही रखा था, यद्यपि अपने शिलालेख के अनुसार समुद्रगुप्त ने नाग राजाओ को पराजित किया था। यह माना जा सकता है कि चद्रगुप्त द्वितीय ने वाकाटको तथा नागो के समर्थन के आधार पर पश्चिमी क्षत्रपो के विरुद्ध सघर्ष मे अपनी स्थिति को दृढ करने की आशा की हो।

इस काल के सिक्के यह भी दिखाते है कि चद्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल मे मौद्रिक सुधार किया गया था। उसके पूर्ववर्तियो के समय तक केवल सोने के सिक्के ही ढाले जाते थे लेकिन अब चादी और ताबे के सिक्के भी चलने लगे गये। चद्रगुप्त द्वितीय के राज्यकाल मे ढाले गये चादी के सिक्को की पीठ पर गरुड अकित है। गरुड चद्रगुप्त के समय मे ढाले गये ताबे के सिक्को पर भी है, जो इसका स्पष्ट परिचायक है कि चद्रगुप्त द्वितीय वैष्णव मतावलबी था। सम्राट के साथ सबद्ध परमभागवत की उपाधि से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

चद्रगुप्त द्वितीय भारतीय इतिहास के सबसे लोकप्रिय व्यक्तियो मे से एक है। अपनी विजयो के उपलक्ष्य मे उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, जो जनमानस मे उसके नाम की ही पर्याय बन गयी है। जनश्रुति बहुत से विख्यात लेखको, कवियो और विद्वानो की कृतियो को उसके राज्यकाल के साथ ही सबद्ध करती है। आधुनिक भारतीय इतिहासलेखन मे चद्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल को प्राय गुप्तवश का स्वर्णयुग कहा जाता है।

चद्रगुप्त द्वितीय की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त राजगद्दी पर बैठा, लेकिन ४१५ से ४५५ ई० तक के उसके राज्यकाल म असाधारण महत्व की कोई घटनाए नही घटी। वह शैव था। उसके सोने के सिक्को पर मयूरारूढ कार्तिकेय अकित है। इस काल के चादी के सिक्को पर भी गरुड की जगह मोर ही अकित है।

कुमारगुप्त की मृत्यु के कुछ ही बाद साम्राज्य मे व्याप्त शाति का दौर खत्म हो गया और उसके उत्तराधिकारी स्कदगुप्त को भारत पर आक्रमण करनेवाले हूण हेफताल कबीलो के विरुद्ध दुर्धर्ष सघर्ष म निरत होना पडा।

हूण तथा हेफताल। गुप्त साम्राज्य का पतन

हूण तथा हेफताल कबीलो का, जो पहले आतर तथा मध्य एशिया म रहा करते थे, सघ पाचवी सदी मे आकर खासकर शक्तिशाली हो गया था और सासनी ईरान तथा कुषाण वश के अतिम शासको का खतरनाक प्रतिद्वद्वी बन गया था। हेफतालो न आरभ मे भूतपूर्व कुषाण साम्राज्य के पश्चिमी प्रदेशो मे छोटे छोटे राज्यो को जीता और इसके बाद उन्होन सासानी ईरान के शासको पर विस्मयजनक विजये प्राप्त की। बाद म उन्होने उत्तर पश्चिमी भारत पर आक्रमण किया और गधार को जीत लिया। उसी समय (४५७–४६० ई० के आसपास) गुप्तो और हूणो तथा हेफतालो मे पहली टक्कर हुई। एक गुप्तकालीन शिलालेख मे हूणो पर स्कदगुप्त की विजय का उल्लेख है। ये सफलताए चाह अल्पकालिक ही थी, फिर भी उनका महत्व कोई कम नही है विशेषकर यदि इस बात को ध्यान मे रखा जाये कि हेफताल सेना अपन पीछे कैसी भयानक विनाश लीला मचाती हुई जाती थी। हूणो के पश्चिमी दस्त उस समय रोमनो पर विजय प्राप्त कर रहे थे और पश्चिमी यूरोप के कई भागो को उजाड रहे थे। युद्ध ने गुप्तो को वित्तीय सकट मे डाल दिया — उन्हे अपने सिक्को के स्वर्णाश को घटाना पडा और इसी प्रकार प्रचलित सिक्को मे विद्यमान रूपभेदो को भी कम करना पडा।

स्कदगुप्त के उत्तराधिकारियो के समय म अलगाव के शक्तिशाली प्रयास किय जान लगे और अधिक दूरवर्ती प्रातो म से कुछ केंद्रीय प्रशासन से स्वतत्रता प्राप्त करन की आकाक्षा करने लगे। उदाहरण के लिए बुद्धगुप्त के राज्यकाल म काठियावाड (सौराष्ट्र) के प्रातीय शासक ने सेनापति के स्थान पर महाराज

की उपाधि ग्रहण कर ली, चाहे उस समय इस उपाधि को इतना ऊचा नहीं माना जाता था और वस्तुत स्वतत्र शासक बन गया, यद्यपि औपचारिक रूप में वह गुप्तो के अधीन ही बना रहा। दक्षिणी कोसल तथा नर्मदा प्रदेश के शासक भी इस समय तक नाम को ही अधीन शासक रह गये थे। बगाल भी स्वतत्र हो गया। इन अवस्थाओ मे साम्राज्य की अखडता का बना रहना सभव नही था।

हूणो तथा हेफतालो के आक्रमणो की नयी लहर ने साम्राज्य पर शक्तिशाली प्रहार किया। हेफताल राजा तोरमाण (४६०–५१५) के नेतृत्व मे हूण भारत मे दूर तक घुस आये और उन्होंने सिंध और राजस्थान तथा पश्चिमी भारत के कई भागो को अपने अधिकार मे ले लिया। तोरमाण के उत्तराधिकारी मिहिरगुल (मिहिरकुल) ने आरभ मे गुप्तो पर कई विजये प्राप्त कीं, लेकिन बाद मे गुप्त शासक नरसिहगुप्त (अथवा बालादित्य) ने एक निर्णायक युद्ध मे उसकी सेना को करारी मात दी और मिहिरगुल को भागकर उत्तर पश्चिम लौट जाना पडा जहा वह गधार के कुछ भागो और पजाब, जिसकी राजधानी साकल – वर्तमान स्यालकोट – नगर थी, के कुछ प्रदेशो को ही अपने नियत्रण मे रख सका। ५३३ ई० मे मालवा के राजा यशोधर्मा (यशोधर्मन्) ने हूणो तथा हेफतालो को पराजित किया, किंतु इस समय तक गुप्त साम्राज्य की एकता खडित हो चुकी थी। गुप्त साम्राज्य की निर्बलता का लाभ उठाते हुए यशोधर्मा स्वतत्र हो गया। मालवा के अलावा कई अन्य प्रदेश भी स्वतत्र हो गये। उदाहरण के लिए, कान्यकुब्ज (कन्नौज) मे मौखरि वश ने अपने स्वतत्र राज्य की स्थापना कर दी।

फिर भी कुछ समय तक गुप्त शासको ने मगध तथा कुछ अन्य प्रदेशो पर अपनी सत्ता को बनाये रखा लेकिन अब वे किसी समय के शक्तिशाली सम्राटो के निर्बल वशज मात्र थे। ये शासक उत्तर गुप्तवशीय के शासको के नाम से जाने जाते है। प्राचीन विश्व के सबसे शक्तिशाली साम्राज्यो मे से एक का इस प्रकार अत हो गया।

पश्चिमी क्षत्रप तथा सातवाहन वश

ईसवी सवत की पहली सदियो मे दक्षिणापथ (दकन) तथा दक्षिणी भारत मे वर्गों के बनने की महती प्रक्रियाए चल रही थी और बडे-बडे राज्यो का उदय हो रहा था। एक ओर उत्तर तथा दक्षिण और दक्षिणी राज्यो तथा

रोम के बीच और दूसरी ओर दक्षिणी राज्यो तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के देशो के बीच भी सचार-सपर्क बढ रहे थे। सातवाहन वश, जो शातवाहन, शालिवाहन तथा आध्र वश के नाम से भी विज्ञात है, उस समय भी एक प्रमुख भूमिका निर्वहन कर रहा था। कलिग राज्य का पतन होने के बाद सातवाहनो के मुख्य प्रतिद्वद्वी क्षत्रप थे जो उन शक कबीलो के वशज थे कि जो ई० पू० पहली शताब्दी मे ही सिधु के निचले प्रदेशो और काठियावाड मे आ बसे थे। धीरे धीरे इनमे से दो कबीलो—क्षहरातो तथा कर्दमको—ने प्रमुखता प्राप्त कर ली, जो ईसवी सवत की पहली सदियो मे विशेषकर शक्तिशाली हो गये थे।

दूसरी शताब्दी के मध्य मे क्षत्रप पश्चिमी दकन के कुछ प्रदेशो को भी अपने अधिकार मे ले लेने मे सफल हो गये, जो पहले सातवाहनो के अधीन थे। बाद मे नहपान के अधीन क्षत्रप प्रदेशो का और भी विस्तार किया गया। नासिक तथा कार्ले मे मिले शिलालेख यह इगित करते है कि ये प्रदेश उसके राज्य के अग थे। पुरालेखीय साक्ष्य यह भी इगित करता है कि ११९—१२५ ई० की अवधि मे क्षत्रपो का दक्षिण गुजरात के कुछ भागो और भरुकच्छ (भडौच) बदरगाह पर भी अधिकार था। क्षत्रपो तथा सातवाहनो मे दीर्घकालिक प्रतिद्वद्विता का अत आध्रो (सातवाहनो) की विजय मे हुआ। शिलालेखो मे सातवाहन शासक गौतमीपुत सतकनी (गौतमीपुत्र श्री शातकर्णी अथवा सातकर्णी) की शको पर विजय का उल्लेख आता है। प्रत्यक्ष है कि इन विजयो के परिणामस्वरूप उसने पश्चिमी भारतीय प्रदेशो मे अपने प्रामुख्य की स्थापना कर ली होगी।

एक शिलालेख मे शातकर्णी को क्षहरात वश का सहारकर्ता तथा सातवाहन वश के गौरव का पुनस्थापक कहा गया है। इन शिलालेखो मे गौतमीपुत्र शातकर्णी के राज्यकाल मे सातवाहन राज्य के सीमातो का भी वर्णन किया गया है—उसने नहपान से उत्तर-पश्चिमी दक्षिणापथ तथा पश्चिमी भारत के कुछ भागो को विजय किया था। इसके अलावा अन्य निकटवर्ती प्रदेश—अश्मक तथा विदर्भ—भी उसके अधिकार मे थे और उसने उन इलाको का भी अपने राज्य मे समामेलन कर लिया था कि जो पहले सातवाहन वश के पुराने प्रतिद्वद्वी कलिग के अधिकार मे थे।

कितु सातवाहनो की विजये अल्पकालिक ही सिद्ध हुई। शक्तिशाली शक क्षत्रप रुद्रदामन के राज्यकाल (१५० ई०) मे सातवाहनो को अपने नवविजित प्रदेशो मे से कई से वचित होना पडा। रुद्रदामन के आदेश से

की उपाधि ग्रहण कर ली, चाहे उस समय इस उपाधि को इतना ऊचा नहीं माना जाता था और वस्तुत स्वतत्र शासक बन गया, यद्यपि औपचारिक रूप में वह गुप्तो के अधीन ही बना रहा। दक्षिणी कोसल तथा नर्मदा प्रदेश के शासक भी इस समय तक नाम को ही अधीन शासक रह गये थे। बगाल भी स्वतत्र हो गया। इन अवस्थाओ मे साम्राज्य की अखडता का बना रहना सभव नही था।

हूणो तथा हेफतालो के आक्रमणो की नयी लहर ने साम्राज्य पर शक्तिशाली प्रहार किया। हेफताल राजा तोरमाण (४६०–५१५) के नेतृत्व मे हूण भारत मे दूर तक घुस आये और उन्होंने सिंध और राजस्थान तथा पश्चिमी भारत के कई भागो को अपने अधिकार मे ले लिया। तोरमाण के उत्तराधिकारी मिहिरगुल (मिहिरकुल) ने आरभ मे गुप्तो पर कई विजये प्राप्त कीं, लेकिन बाद मे गुप्त शासक नरसिंहगुप्त (अथवा बालादित्य) ने एक निर्णायक युद्ध मे उसकी सेना को करारी मात दी और मिहिरगुल को भागकर उत्तर पश्चिम लौट जाना पडा जहा वह गधार के कुछ भागो और पजाब, जिसकी राजधानी साकल – वर्तमान स्यालकोट – नगर थी, के कुछ प्रदेशो को ही अपने नियत्रण मे रख सका। ५३३ ई० मे मालवा के राजा यशोधर्मा (यशोधर्मन्) ने हूणो तथा हेफतालो को पराजित किया, किंतु इस समय तक गुप्त साम्राज्य की एकता खडित हो चुकी थी। गुप्त साम्राज्य की निर्बलता का लाभ उठाते हुए यशोधर्मा स्वतत्र हो गया। मालवा के अलावा कई अन्य प्रदेश भी स्वतत्र हो गये। उदाहरण के लिए, कान्यकुब्ज (कन्नौज) मे मौखरि वश ने अपने स्वतत्र राज्य की स्थापना कर दी।

फिर भी कुछ समय तक गुप्त शासको ने मगध तथा कुछ अन्य प्रदेशो पर अपनी सत्ता को बनाये रखा, लेकिन अब वे किसी समय के शक्तिशाली सम्राटो के निर्बल वशज मात्र थे। ये शासक उत्तर गुप्तवशीय के शासको के नाम से जाने जाते है। प्राचीन विश्व के सबसे शक्तिशाली साम्राज्यो मे से एक का इस प्रकार अत हो गया।

पश्चिमी क्षत्रप तथा सातवाहन वश

ईसवी सवत की पहली सदियो मे दक्षिणापथ (दक्कन) तथा दक्षिणी भारत मे वर्गों के बनने की महती प्रक्रियाए चल रही थी और बडे-बडे राज्यो का उदय हो रहा था। एक ओर उत्तर तथा दक्षिण और दक्षिणी राज्यो तथा

रोम के बीच और दूसरी ओर दक्षिणी राज्यो तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के देशो के बीच भी सचार-सपर्क बढ रहे थे। सातवाहन वश, जो शातवाहन, शालिवाहन तथा आध्र वश के नाम से भी विज्ञात है, उस समय भी एक प्रमुख भूमिका निर्वहन कर रहा था। कलिग राज्य का पतन होने के बाद सातवाहनो के मुख्य प्रतिद्वद्वी क्षत्रप थे, जो उन शक कबीलो के वशज थे कि जो ई० पू० पहली शताब्दी मे ही सिधु के निचले प्रदेशो और काठियावाड मे आ बसे थे। धीरे धीरे इनमे से दो कबीलो—क्षहरातो तथा कर्दमको—ने प्रमुखता प्राप्त कर ली, जो ईसवी सवत की पहली सदियो मे विशेपकर शक्तिशाली हो गये थे।

दूसरी शताब्दी के मध्य मे क्षत्रप पश्चिमी दकन के कुछ प्रदेशो को भी अपने अधिकार मे ले लेने मे सफल हो गये, जो पहले सातवाहनो के अधीन थे। बाद मे नहपान के अधीन क्षत्रप प्रदेशो का और भी विस्तार किया गया। नासिक तथा कार्ले मे मिले शिलालेख यह इगित करते है कि ये प्रदेश उसके राज्य के अग थे। पुरालेखीय साक्ष्य यह भी इगित करता है कि ११९–१२५ ई० की अवधि मे क्षत्रपो का दक्षिण गुजरात के कुछ भागो और भरुकच्छ (भडौच) बदरगाह पर भी अधिकार था। क्षत्रपो तथा सातवाहनो मे दीर्घकालिक प्रतिद्वद्विता का अत आध्रो (सातवाहनो) की विजय मे हुआ। शिलालेखो मे सातवाहन शासक गौतमीपुत सतकनी (गौतमीपुत्र श्री शातकर्णी अथवा सातकर्णी) की शको पर विजय का उल्लेख आता है। प्रत्यक्ष है कि इन विजयो के परिणामस्वरूप उसने पश्चिमी भारतीय प्रदेशो मे अपने प्रामुख्य की स्थापना कर ली होगी।

एक शिलालेख मे शातकर्णी को क्षहरात वश का सहारकर्ता तथा सातवाहन वश के गौरव का पुनस्थापक कहा गया है। इन शिलालेखो मे गौतमीपुत्र शातकर्णी के राज्यकाल मे सातवाहन राज्य के सीमातो का भी वर्णन किया गया है—उसने नहपान से उत्तर-पश्चिमी दक्षिणापथ तथा पश्चिमी भारत के कुछ भागो को विजय किया था। इसके अलावा अन्य निकटवर्ती प्रदेश—अश्मक तथा विदर्भ—भी उसके अधिकार मे थे और उसने उन इलाको का भी अपने राज्य मे समामेलन कर लिया था कि जो पहले सातवाहन वश के पुराने प्रतिद्वद्वी कलिग के अधिकार मे थे।

किंतु सातवाहनो की विजये अल्पकालिक ही सिद्ध हुईं। शक्तिशाली शक क्षत्रप रुद्रदामन के राज्यकाल (१५० ई०) मे सातवाहनो को अपने नवविजित प्रदेशो मे से कई से वचित होना पडा। रुद्रदामन के आदेश से

पल्लव वंश तथा सुदूर दक्षिण के राज्य

सातवाहनो के पतन के बाद दक्षिणापथ के राजनीतिक जीवन में वाकाटकों के साथ-साथ पल्लव तथा इक्ष्वाकु वंशो के राज्यों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निबाही थी, किंतु अभाग्यवश स्रोत सामग्री मे उनके बारे में अधिक सूचना उपलब्ध नही है। पल्लव राज्य की राजधानी कांची अथवा कांचीपुरम् (वर्तमान कांजीवरम्) थी और कृष्णा नदी उसके उत्तरी सीमांत का निर्माण करती थी। पल्लवो की गुप्तो के साथ एकाधिक बार टक्कर हुई। आंध्र में उस समय इक्ष्वाकु वंश का राज्य था जिसने पल्लवो के विरुद्ध पश्चिमी क्षत्रपो के साथ संश्रय स्थापित कर लिया था, किंतु इस संघर्ष मे फिर भी पल्लव ही विजयी हुए।

ईसवी संवत् की पहली सदियो मे देश के धुर दक्षिण मे विशाल चेर, पांड्य तथा चोल राज्यो का अस्तित्व बना रहा, जिनका मौर्य सम्राट अशोक के शिलालेखो मे भी उल्लेख किया गया था। इन राज्यो ने रोम के साथ गहरे संबंध स्थापित कर रखे थे जिसने अपनी बारी मे दक्षिणी भारत में अपने व्यापारिक केंद्र कायम किये थे। अभाग्यवश इन राज्यो के आरंभिक राजनीतिक इतिहास के बारे मे लगभग कुछ भी ज्ञात नही है, यद्यपि पहली सदियों में तमिल भाषा मे ऐतिहासिक सामग्री प्रकाश मे आने लग गयी थी। चौथी-पांचवीं सदियो में तमिल साहित्य की कालजयी कृति 'तिरुकुरल' की रचना हुई थी और इसके बाद काव्य व्याकरण तथा अन्य विधाओ में भी साहित्य सृजन होने लगा।

उपलब्ध पुरालेखीय सामग्री से ईसवी संवत् की पहली सदियो में दक्षिणापथ तथा दक्षिणी भारत के राज्यो मे विद्यमान प्रशासन प्रणाली का सामान्य चित्र प्राप्त किया जा सकता है।

सातवाहनो तथा वाकाटको ने सुसंगठित केंद्रीय प्रशासनतंत्र की स्थापना की थी। उनका साम्राज्य प्रांतो में विभाजित था और प्रांत जिलों में बंटे हुए थे। प्रशासन कार्य का संचालन करने के लिए बडी संख्या में विविध अधिकारी थे जैसे सभारक, मुख्य लिपिक, सेनानायक, ग्राम निरीक्षक, आदि।

सातवाहनों, वाकाटको तथा अन्य दक्षिण भारतीय राजवंशो की धार्मिक नीति के बारे में भी कुछ उल्लेख मिलते हैं। सातवाहन बौद्धो के संरक्षक थे।

यह सभव है कि प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन की कृतिया सातवाहनो से सबद्ध हो। चीनी यात्री हुएनत्साग (यवानचाग) ने अपने यात्रा विवरण मे लिखा था कि नागार्जुन सातवाहन राजदरबार मे ही रहता था।

बौद्ध तथा जैन धर्मो के साथ-साथ हिंदू धर्म भी व्यापक रूप मे प्रचलित था। वाकाटक शिलालेखो मे इस तथ्य का उल्लेख किया गया है कि रुद्रसेन प्रथम शैव था, जब कि रुद्रसेन द्वितीय वैष्णव था। धर्मो का यह समन्वय प्राचीन काल तथा मध्य युग मे दकन तथा दक्षिणी भारत के सास्कृतिक विकास के सबसे विशिष्ट लक्षणो मे एक था।

आर्थिक विकास तथा सामाजिक ढाचा

कृषि

कुषाण तथा गुप्त कालो मे कृषि मे और प्रगति हुई। नयी ज़मीनो को काश्त मे लाने के लिए साफ किया गया, दलदली ज़मीनो से जल निकासी की गयी और कृषि धीरे-धीरे अधिकाधिक महत्व ग्रहण करती गयी। 'मिलिद-पन्हो' तथा 'मनुस्मृति', जो 'मानव-धर्मशास्त्र' के नाम से भी विज्ञात है, मे यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि जो लोग जगली ज़मीन को साफ करते है और उसे कृषि के लिए तैयार करते है, उन्हे उस ज़मीन पर स्वामित्व प्रदान कर दिया जाना चाहिए।

जलप्रचुर इलाको मे धान की खेती की जाती थी, खासकर बगाल, बिहार, असम, ओडिसा तथा दक्षिणी भारत के तटवर्ती प्रदेशो मे। उस समय तक धान की विभिन्न किस्मे सुपरिचित हो चुकी थी। 'अमरकोश' मे धान, गेहू, जौ और तिल की खेती के उपयुक्त विभिन्न प्रकार की ज़मीनो और मिट्टियो की सूची दी गयी है। इस कोश का रचयिता अमरसिह खीरे, पान, प्याज लहसुन और लौकी-कद्दू के अलावा फलियो और मूग तथा मसूर से भी परिचित था। गन्ना भी व्यापक पैमाने पर उगाया जाता था।

दक्षिणी भारत काली मिर्च और मसालो के लिए मशहूर था। प्राचीन यूनानी तथा रोमन ग्रथो मे तो दक्षिण भारतीय प्रदेशो को काली मिर्च का देश ही कहा जाता था। किसान साल मे दो दो, तीन-तीन फसले उगाते थे, कई

अनाजो का तो निर्यात भी किया जाता था। 'पेरिप्लस मारिस अरिथ्राए (लाल सागर परभ्रमण') मे, जिसका रचना काल दूसरी शताब्दी है चावल और गेहू के निर्यात किये जाने के उल्लेख है। बाद के ग्रथो म इस तथ्य पर विशेष जोर दिया गया है कि परती जमीनो को काश्त और सिंचित करनेवालो को तब तक कोई लगान नही देना पडता था कि जब तक वे मूलत लगाये धन से दुगना लाभ न प्राप्त कर ले। यह उल्लेखनीय है कि गुप्त काल के शिलालेखो मे परती जमीन के खरीदे जाने के अकसर उल्लेख मिलते है जिसका मतलब यही होना चाहिए कि उस समय यह लाभदायी उपक्रम रहा होगा और राज्य द्वारा प्रोत्साहित भी किया जाता होगा।

इसी काल मे भारत मे विदशो से नयी फसले भी आयी। साथ ही कृषि प्रविधिया भी अधिक उन्नत हुई। किसानो द्वारा प्रयोग मे लाया जानेवाला मुख्य औजार हल था। 'बृहस्पतिस्मृति' मे हल के फाल का उल्लेख आता है, जिस एक निर्धारित भार का होना चाहिए था और अमरसिंह ने अपने कोश म हल का विस्तृत वर्णन किया है। लोहे के बने कृषि उपकरण व्यापक उपयोग म आने लगे थे और नयी किस्मो के औजार भी प्रकट होने लगे थे। तक्षशिला म पहली सदी ईसवी के पुरातात्विक मस्तर मे मिली वस्तुओ मे नये तथा अधिक परिष्कृत प्रकार की कुल्हाडिया भी है। यह सभव है कि यह विदेशी प्रभाव का परिणाम रहा हो, क्योकि इसी प्रकार के औजार उन देशो मे आम तौर पर पाये गय है कि जो रोमन सास्कृतिक परपराओ के प्रभाव मे आये थे। कुल्हाडियो और फावडो के अलावा तक्षशिला मे मिली और चीजो मे नये आकार की हसिया और कुदाल भी है।

भारतीय स्रोत ग्रथो म कृषि कार्य के विवरण मिलते है। अच्छा किसान उसे माना जाता था कि जो बोआई के पहले अपनी जमीन की दो-तीन बार जोताई करता था। फसल के काट जाने के बाद बालियो को पुआल से विशेष अहाता म अलग किया जाता था। बाद म उन्हे विशेष मूसलो से कूटा जाता था, फिर सूप की सहायता से अनाज को भूसी से अलग किया जाता था और फिर सुखाकर कोठारो म जमा किया जाता था।

इस काल म बागबानी ने भी काफी उन्नति की – आडू और नाशपाती जैसे नये किस्म के फल तथा साग भी पैदा किये जाने लगे। प्राचीन भारतीय आम नारगी सतरा, अगूर और केले जैसे फलो से परिचित थे। नारियल के तटवर्ती प्रदेशो म खासकर बहुतायत थी। दूसरी शताब्दी के शिलालेखो के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि इसी समय नारियल के बागान

कायम किय जान लग थ। उस समय क स्रोत ग्रथो म इस बार म सलाह भी मिलती है कि फलवृक्षो की किस प्रकार रक्षा करनी चाहिए और विशेष तरो तथा खादो का प्रयोग किया जाना चाहिए। शास्त्रो म मिट्टी क गुणो पड-पौधो क रोगो फलवृक्षो क बीच छाड जानवाले फासल आदि-आदि क बारे म विस्तृत सूचना पायी जाती है।

पुरालेखीय साक्ष्य क आधार पर कहा जा सकता है कि सिचाई का भी तजी म विकास हो रहा था। रुद्रदामन न सुदर्शन झील पर मौर्य काल म निर्मित बाध का पुख्ता करवाया था। जल सचय क लिए विशेष जलाशयो का निमाण किया जाता था। दूसरी शताब्दी क एक शिलालेख म उज्जयनी क निकट एक ग्राम मे एक विराट जलाशय का निर्माण किय जान का उल्लेख है। हाथीगुफा शिलालेख मे कलिंग का राजा खारवल अपन राज्य मे नहरो और जलाशयो का निमाण किये जान क बारे म बड अभिमान क साथ बतलाता है।

गुप्त काल क अनक स्रोत ग्रथो म कृषि क महत्व पर जोर दिया गया है – नाटयकार तथा कवि कालिदास कृषिकर्म तथा पशुपालन को धन के अत्यत महत्वपूर्ण साधन मानता था।

पशुपालन क अलावा इस काल म मत्स्यग्रहण तथा वन सवर्धन ने भी महत्व प्राप्त किया। वनो की रक्षा तथा निरीक्षण के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किये जान लगे।

भूस्वामित्व। निजी जोतो की वृद्धि

ईसवी सवत की प्रारभिक सदियो म निजी भूस्वामित्व का और विकास हुआ। शास्त्रो म भूस्वामी के अधिकारो तथा उनके सरक्षण की तरफ काफी ध्यान दिया गया है। दूसरो की जमीन पर अनधिकृत कब्जे के लिए बहुत ऊचे जुरमाने किय जात थ। जमीन का मालिक इसके लिहाज के बिना दशको जमीन पर अपने अधिकार को बनाये रख सकता था कि वह उसे स्वय काश्त करता था या अस्थायी काश्तकारो को किराये पर देता था। गुप्त काल मे भूमि क क्रय विक्रय का पजीयन करन क लिए विशेष पट्टे या राजपत्र अस्तित्व म आ जाते है। गुप्त शिलालेखो मे जमीन की बिक्री के बारे मे काफी उल्लेख मिलत है, जब कि क्षत्रपो तथा कुषाणो के जमाने के शिलालेखो मे वे बहुत ही विरल है।

राज्य पहले की ही भाति भूमि पर अपने नियत्रण को बनाये रखना

चाहता था और ग्राम समुदाय निजी भूस्वामित्व के प्रसार को रोकने का कोशिश करते थ फिर भी जमीन के निजी हाथो मे क्रमिक सकेद्रण का प्रक्रिया निर्बाध गति से चलती ही रही।

पश्चिमी क्षत्रपो से सबद्ध शिलालेखो – उदाहरण के लिए, नासिक के- से भी रोचक सूचना प्राप्त की जा सकती है। इनमे से एक म इस तथ्य का उल्लेख है कि राजा नहपान के जामाता ऊषवदत्त को बौद्ध सघ को भेटस्वरूप देने के लिए किसी आदमी से जमीन को खरीदना पडा था। सभव है कि यह राजकीय तथा राजभूमियो की कीमत पर निजी भूस्वामित्व के विकास की नयी प्रक्रिया के जड पकडने का सूचक रहा हो। इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि ऊषवदत्त के पास दान करने के लिए खाली जमीन नही थी और इसलिए उसे किसी भूस्वामी से यह जमीन खरीदनी पडी थी।

ईसोपरात प्रारभिक शताब्दियो मे लोगो को प्रदत्त अनुग्रह-अनुदानो (माफियो) की सख्या बढी और – जो सबसे महत्व की बात है – इन अनुदानो का स्वरूप धीरे धीरे बदलने लगा। पहले ये अनुदान किसानो पर किसी भी प्रकार के अधिकारो के बिना सिर्फ जमीन के उपयोग के अधिकार ही प्रदान करते थे। पहले जहा बहुत से अनुदान अस्थायी ही हुआ करते थे, अर्थात सबद्ध व्यक्ति के कार्य काल तक ही चलते थे वहा अब वे अधिकाधिक वशागत स्वरूप ग्रहण करने लगे। इन सभी बातो के परिणामस्वरूप निजी भूस्वामियो के अधिकारो का दृढीकरण हुआ और उन्होने केद्रीय प्रशासन से खासी स्वतत्रता प्राप्त कर ली। कुछ प्रकार के अनुदान स्थायी हो गये और इन अनुदानो को अभिलिखित करनेवाले राजपत्रो मे यह उल्लिखित किया जाने लगा कि यह जमीन सदा-सदा के उपयोग के लिए – 'यावत् गगा महीलोके, यावच्चन्द्र दिवाकरौ" (जब तक गगा धरती पर है और जब तक सूर्य तथा चन्द्रमा विद्यमान हैं) – प्रदान की जा रही है।

अस्थायी कार्य काल के लिए भूखडो का वितरण करने के ही साथ-साथ राज्य अब धीरे धीरे उनके स्वामियो को कुछ विशेषाधिकार – तथाकथित उन्मुक्ति अधिकार – भी प्रदान करने लग गया।

इसके बाद इन भूस्वामियो ने जमीन पर और उस वस्तुत काश्त करनेवालो पर कुछेक प्रशासकीय कृत्यो के निष्पादन को ग्रहण करना शुरू कर दिया। वे कुछ विधिक कृत्यो का भी निष्पादन करने लगे और राजा ने उन्हे राज्याधिकारियो को अपनी जमीनो मे प्रवेश देने के दायित्व से मुक्त कर दिया। इस प्रकार के अधिकारो के सबसे प्रारभिक उल्लेखो मे स एक दूसरा

शताब्दी के एक सातवाहन शिलालेख मे मिलता है (यह विकास केवल उत्तर ही नही, वरन दक्षिणापथ मे भी सामतवाद के अभ्युदय की प्रक्रिया का सुस्पष्ट सूचक है)। सातवाहन राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी एक ओर बौद्ध भिक्षुओ को भूमिदान करता है और इसीके साथ-साथ ग्राम समुदायो को अपनी भूमि पर सेनाओ की उपस्थिति तथा राज्याधिकारियो के हस्तक्षेप से मुक्ति भी प्रदान करता है। पाचवी सदी के बाद तो यह प्रथा विशेषकर व्यापकता ग्रहण करने लगी, जब राजाओ ने निजी भूमि से सबद्ध लगभग सभी वित्तीय, प्रशासनिक तथा विधिक कृत्यो को स्वय भूस्वामियो को ही सौपना शुरू कर दिया। खदानो पर अधिकार भी व्यक्तियो को अतरित किये जाने लगे, यद्यपि परपरानुसार इन्हे भी राजा का अनन्य विशेषाधिकार ही माना जाया करता था।

राज्य द्वारा अपने कतिपय सार्वजनिक कृत्यो के व्यक्तियो को अतरण को विशेष राजपत्रो मे अभिलिखित किया जाता था, जिन्हे ताम्रपत्रो पर उत्कीर्ण करके नये स्वामियो को दे दिया जाता था। इससे अस्थायी भूस्वामी की स्थिति वशागत सामत के और निकट आती गयी और इसका परिणाम यह हुआ कि किसान धीरे-धीरे इन भूस्वामियो के प्रभुत्व के अधीन आ गये। निस्सदेह यह प्रक्रिया धीरे-धीरे ही चली और अभी काफी समय तक राज्य ने ग्रामीण क्षेत्रो मे अपने कई प्रशासनिक कृत्यो को अपने हाथ मे ही रखे रखा।

ईसवी सवत की पहली सदियो मे सामाजिक सबधो का एक चारित्रिक लक्षण पट्टे पर कृषि का प्रसार था। ये पट्टेदार (असामी काश्तकार), जिनके पास बहुधा कोई उत्पादन साधन नही होते थे, भूस्वामियो के पूर्णत अधीन हो गये।

इस काल की प्राचीन भारतीय स्रोत सामग्री मे "ग्रामदान" के अधिकाधिक उल्लेख पाये जात हैं, जिसका आशय था राजा द्वारा इन ग्रामो से कर ग्रहण करने के अधिकार का अतरण। इसके साथ जमीन का हस्तातरण नही होता था, किंतु किसान पहले जिस व्यक्ति को कर अदा करते थे, वह अब कोई और हो जाता था। धीरे धीरे ग्राम समुदाय के स्वतत्र सदस्य निजी भूस्वामियो के अधीन हो गये, जो अपने भौम्य अधिकारो को बढाने के प्रयत्न कर रहे थे। अभी ये "दान" सामती स्वरूप के नही थे किंतु सामती सबधो की ओर निश्चित प्रवृत्ति अब लक्षित होने लग गयी थी। पूर्ववर्ती काल की ही भाति राज्याधिकारियो को भी वेतन के स्थान पर इस प्रकार "ग्रामदान" किया जाता था।

प्रत्यक्ष उत्पादकों की स्थिति मे परिवर्तन। सामती आर्थिक सबधो का उद्भव

इस काल म प्रत्यक्ष उत्पादका – दासा, ग्राम समुदायो क स्वतत्र सदस्या और उजरती मजदूरों – की स्थिति में भी आधारभूत परिवतन लक्षित होन लगे थे। उत्तरवर्ती शास्त्रो मे दासा क बार म नियमो को विस्तार के साथ निर्धारित किया गया है और उन्हें विभिन्न समूहो मे विभाजित किया गया है। अस्थायी दासो को आजीवन दासो म परिणत करने के विरुद्ध स्पष्ट झुकाव देखन म आता है और दासस्वामिया क कर्तव्यो का निर्धारण किया गया है जिनकी उपक्षा के परिणामस्वरूप उन्हें अर्थदड दिया जा सकता है। ये शास्त्र दास के वर्ण के प्रश्न पर विशेष जोर देते है। गुप्तकालीन स्रोत वर्ण सिद्धात पर सख्त जोर देते है। ब्राह्मणो और उनके बाद अन्य द्विजो के अधिकारो का सर्वोपरि सरक्षण प्रदान किया जाता है। कात्यायन तो सीधे सीधे यह तक घोषित कर देता है कि दासत्व ब्राह्मणो पर लागू नही होता। याज्ञवल्क्य के अनुसार निम्न वर्ण के व्यक्ति को दास बनाया जा सकता है अर्थात इस तथ्य को स्वीकार किया गया है कि क्षत्रिय अथवा वैश्य दास बनाये जा सकते हैं।

इस काल मे यह प्रश्न अत्यत प्रचड विवाद का विषय था कि दासो को स्वतत्र किया जाना चाहिए या नही और इसलिए यह कोई सायोगिक बात नही है कि उत्तरवर्ती शास्त्रो म इसकी तरफ काफी ध्यान दिया गया है। दासो को, और विशेषकर अस्थायी दासो को स्वतत्रता प्रदान करने की शर्तों को अधिक सरल बना दिया गया। नारदस्मृति म दासो को स्वतत्र करने के समय किये जानेवाले अनुष्ठान का विस्तार स वर्णन किया गया है – दासस्वामी पानीभरे घडे को तोडकर दास क सिर पर पानी छिडकता था और उसे स्वतत्र (अदास) घोषित करता था। जिन दासो को दासत्व की अवस्था मे निर्धनता के फलस्वरूप (भोजन पाने की खातिर) पडना पडा था, वे यदि भोजन ग्रहण करना त्याग दते तो उन्हे स्वतत्र कर दिया जाना चाहिए था। यदि कोई मनुष्य ऋण क परिणामस्वरूप दास बनता था, तो ब्याज सहित ऋण की अदायगी उसे स्वतन्त्रता प्रदान करवाने के लिए काफी थी।

स्वतत्र कृषको की स्थिति म भी काफी परिवर्तन आये। पहले जहा एक व्यक्ति से दूसरे को सिर्फ जमीन का ही हस्तातरण हो सकता था, वहा अब जमीन का उसे काश्त करनेवाले लोगो सहित हस्तातरण करना सभव हो गया। तीसरी शताब्दी के एक पल्लव शिलालेख म जो इस प्रकार के हस्तातरण क

सबसे पहले अभिलेखो मे है कहा गया है कि जमीन के ब्राह्मण को हस्तातरित किये जाने के बाद उसके बटाईदार उसस बधे रहत है। धीरे-धीरे यह प्रथा उन लोगो के प्रसग मे भी लागू होने लग गयी कि जो पहले स्वतत्र किसान और ग्राम समुदाय के सदस्य थे जिसका मतलब यह हुआ कि उनकी हैसियत लगभग भूदासो जैसी ही हो गयी। पाचवी शताब्दी की एक वाकाटक राजाज्ञा मे एक मामले का उल्लेख है जिसम स्थानीय कृषको (अथवा कर्षको) के लिए विनियुक्त चार कृषि क्षेत्रा का दान की तरह उपयोग किया जाना है अर्थात जमीन को काश्त करनेवाला को उसके साथ साथ नये स्वामी के सुपुर्द कर दिया जाना है। ईसोपरात पहले सहस्राब्द के मध्य तक भारत मे सामती आर्थिक सबध उत्पन्न हो चुके थे आर ये धीरे धीरे विकसित होते गये यहा तक कि पूणत सामती समाज की स्थापना हो गयी। छठी सातवी सदियो मे बहुस्तरीय भारतीय समाज म सामती सबधो का ही प्राधान्य था।

शिल्पकर्म तथा शिल्प सघ

ईसवी सवत की प्रारभिक शताब्दियो मे भारत मे हस्तशिल्प क स्तर म काफी उन्नति आयी। भारतीय धातुकर्मी और ढलाईकर्मी अपने हुनर क लिए मशहूर थे। आज भी यह एक रहस्य बना हुआ है कि पाचवी सदी मे उन्होने दिल्ली के प्रसिद्ध लौह स्तभ (सात मीटर से भी अधिक ऊचा और भार म छ टन से अधिक) को क्योकर बनाया था, जिस पर जलवायु की नमी के बावजूद अब तक जग नही लग पाया है। 'मिलिद पन्हो मे सोन लोहे सीस और टीन के काम को अन्य शिल्पकर्मो मे अलग किया गया है। इन शिल्पकर्मो म प्रवत्त लोग एक दूसरे स अलग अलग काम किया करते थे। राजा के धातुकर्मी तथा आयुधकार शिल्पियो का एक अलग ही समूह थे। शिल्पियो के इस समूह पर राजकीय नियत्रण प्रत्यक्षत विशेषकर कठोर था। राजा को समस्त खनिज सपदा का स्वामी माना जाता था और धातु निकालने का अधिकार राजसी परमाधिकार समझा जाता था। शस्त्रो का उत्पादन केद्रीय प्रशासन के और भी सख्त अधीक्षण के अधीन था।

लोहे की नाना प्रकार की चीजे बनायी जाती थी। इस काल की एक विशेषता शस्त्रो के उत्पादन के मामले म एक ओर काफी प्रबल यूनानी-रोमन और दूसरी ओर मध्य एशियाई प्रभाव है (उदाहरण के लिए तक्षशिला तथा अय उत्तर पश्चिमी प्रदेशो मे शस्त्र शक नमूनो पर बनाये जाते थे), लेकिन

समूचे तौर पर धातुकर्मी स्थानीय परपराओ का ही अनुकरण करते थे। लोहे तथा इस्पात के सामान अत्युच्च कोटि के थे और उनका बडे पैमाने पर निर्यात किया जाता था। पूर्वोद्धृत कृति 'लाल सागर परिभ्रमण' में भारतीय लोहे और इस्पात के अफ्रीकी बदरगाहो को निर्यात किये जाने का उल्लेख आता है। इस कृति मे ताबे के निर्यात का भी उल्लेख किया गया है। इस काल के धातुकर्मी अपने फन के लिए सुख्यात थे। भारतीय जौहरियो की कारीगरी की देश के सीमातो के बाहर भी दूर-दूर तक सराहना की जाती थी। लगता है कि तक्षशिला मे विदेशी जौहरी तथा अन्य शिल्पकार भी थे, जो यूनानी परपराओ मे परिचित थे, क्योकि इस क्षेत्र मे मिले कई आभूषणो की मिस्र और शाम के आभूषणो से बहुत समानता है। इसके विपरीत पूर्वी भारत में विदेशी प्रभाव नही के बराबर था।

कपडा और विशेषकर सूती कपडा बुनने की कला ने खूब उन्नति की थी। सूती और रेशमी, दोनो ही तरह के कपडो का पश्चिम को निर्यात किया जाता था जहा उन्हे बहुत सराहा जाता था। पहली सदी की भारतीय कृतियो मे विभिन्न रगो मे रगे विभिन्न प्रकार के सूती वस्त्रो के उल्लेख मिलते है। प्राचीन यूनानी तथा रोमन लेखको ने इसका उल्लेख किया है कि भारतीय सूती कपडा बहुत उजले रग का होता था और उसकी बुनावट मे अन्य स्थानो के कपडे से ज्यादा सफाई होती थी। बनारसी कपडा खासकर मूल्यवान समझा जाता था और इसी प्रकार बगाल का सूती कपडा भी बढिया माना जाता था, जिसका लाल सागर परिभ्रमण' मे उल्लेख है। उत्तर पश्चिमी प्रदेशो मे ऊनी कपडा भी तैयार किया जाता था। यूनानी देशो और रोम मे मसालो, इत्रो और हाथीदात की चीजो की बहुत माग थी। काच बनाने के उद्योग का भी विकास हो रहा था—उसका उपयोग खाने के बरतनो और सजावटी सामान बनाने मे किया जाता था।

कुषाण तथा गुप्त कालो मे श्रेणिया अधिक विकसित हो गयी थी। इन शिल्प सघो की भारतीय आर्थिक जीवन मे बहुत महत्वपूर्ण भूमिका थी और राज्य उनके कार्यकलाप को अपने नियत्रण के अधीन रखना चाहता था। किंतु शास्त्रो मे यह विहित था कि राजा को श्रेणियो के नियमो का सम्मान करना चाहिए और उस समय श्रेणियो का प्रभाव इतना प्रबल था कि शिलालेखो के आधार पर कहा जा सकता है कि वे व्यक्तियो से स्वय सविदा सपन्न कर सकती थी और केंद्रीय अधिकारियो तक से समझौते कर सकती थी। श्रेणी विभिन्न व्यक्तियो से ऋण लेती थी, जिसके लिए बट्टा दिया जाता था।

बाद मे इस धन को सूद सहित वापस किया जाता था। कुछ श्रेणिया अत्यत सपन्न थी, जिसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने बौद्ध भिक्षुओ को बहुत मूल्यवान भेटे – पूरी की पूरी इमारते तक – दी है। श्रेणियो की अपनी मुद्राए तथा प्रतीक चिह्न थे। ईसवी सवत की पहली सदियो की बस्तियो मे उत्खनन कार्य के दौरान लेख सहित इस प्रकार की कुछ मुद्राए भी खोजी गयी हैं।

व्यापार

प्रसगाधीन काल मे आतरिक तथा वैदेशिक व्यापार का जबरदस्त प्रसार हुआ। पहले के बहुत से निर्जन प्रदेश आबाद कर दिये गये थे, परिवहन का सगठन बेहतर हो गया था और व्यापार मार्ग सुधर गये थे। देश के विभिन्न भागो मे अब अधिक घनिष्ठ सपर्क स्थापित हो गया था। विभिन्न क्षेत्रो तथा प्रदेशो के आर्थिक विशिष्टीकरण ने माल के स्थायी विनिमय को अनिवार्य बना दिया था। इस ज़माने मे मुद्रा सचलन का भी तेज़ी से प्रसार हो रहा था। गुप्त काल मे राज्य ने सडको तथा सचार साधनो के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया था। किंतु इस सारे काम के बावजूद देश के विभिन्न भागो मे विनिमय अब भी बहुत सीमित प्रकार का ही था। सडके सदा ही लबी यात्राओ के उपयुक्त नही थीं और व्यापारियो को अकसर बहुत सी समस्याओ का सामना करना पडता था।

स्थल मार्गों के अलावा अब नदियो को भी कही अधिक उपयोग मे लाया जाने लगा था – गगा तथा सिंधु नदियो के प्रसग मे तो यह बात विशेषकर लागू होती थी।

राज्य माल की आवाजाही और बिक्री पर अपना अधीक्षण रखता था। कुछ मालो की बिक्री कठोर राजकीय नियत्रण के अधीन थी और कुछेक मदो का व्यापार राजसी एकाधिकार मे आता था। 'मनुस्मृति' मे लिखा है कि अगर यह पता चले कि कोई व्यापारी राजसी एकाधिकार मे आनेवाली चीजो का निर्यात करता है, तो राजा उसकी सारी सपत्ति को जब्त कर सकता है। अलग-अलग व्यापारियो मे और इसी प्रकार व्यापारियो के विभिन्न सघो मे भी प्रतियोगिता चलती थी।

नगरो मे विशेष व्यापार क्षेत्र हुआ करते थे, जहा दूकाने सकेद्रित होती थी। 'मिलिंद पन्हो' मे मेनादर के राज्य की ऐश्वर्यशाली राजधानी सागल (साकल – वर्तमान स्यालकोट) का वर्णन आता है, जिसमे बनारसी कपडे

आभूपणो और इत्रो आदि आदि की बिक्री के लिए विशेष दूकान था।

व्यापारिक गतिविधिया मुख्यत गगा और सिधु की घाटियो म केन्द्रित थी। यहा स दश के कितने ही भागो को जानेवाले व्यापार मार्ग शुरू होते थे। इस क्षेत्र म आनेवाले मुख्य व्यापार केंद्र पश्चिम म भरुकच्छ (भडौंच, जिसे यूनानी बरीगाजा के नाम से जानते थे), सिधु के डेल्टा म पाटल (जिसे यूनानी ग्रथो मे पतालीन कहा गया है), उत्तर-पश्चिम म पुष्कलावती और पूर्व म ताम्रलिप्ति (वर्तमान तामलुक) थे। लाल सागर परिभ्रमण' म पुष्कलावती स दक्षिण को जानेवाले व्यापार मार्गो का उल्लेख है। पूर्वी भारत में वाराणसी कोशावी तथा पाटलिपुत्र और पश्चिम में उज्जैन अपने उच्च कोटि के मालो के लिए मशहूर थे।

लाल सागर परिभ्रमण म बगाल की खाडी के तट से दक्षिण को जानेवाले जहाजो का उल्लेख है और मिलिद पन्हो मे पोतस्वामियो के सिध, बगाल तथा कारमडल तट पर आने का वर्णन आता है। उत्तर से ऊनी सामान दक्षिण से रत्नो और मसालो पूर्व से धातुओ और रेशम तथा पश्चिम स कपड और घोडो की आढत की जाती थी। सिध और आर्कोसिया अपने घोडो के लिए प्रसिद्ध थे।

कुषाण तथा गुप्त कालो म वैदेशिक व्यापार के क्षेत्र म बहुत तीव्र विकास हुआ। इसमे पहले कुषाण राजाओ और बाद म गुप्त शासको द्वारा विदेशो के साथ घनिष्ठ सपर्क बनाय रखे जाना सहायक सिद्ध हुआ। समुद्र मार्ग स व्यापार का भी प्रसार हुआ। प्राचीन भारतीय कुशल जहाजी थे और एसा प्रतीत होता है कि यूनानी पोतसचालक हिप्पालस द्वारा पहली सदी के मध्य म मानसून के खोजे जाने के बहुत पहले ही उन्होंने मानसूनी हवाओ का उपयोग करना शुरू कर दिया था (यद्यपि कुछ स्रोतो के अनुसार यूनानी मानसून स पहले ही परिचित हो चुके थे)। भारतीय अरब तथा भूमध्यसागरीय देशो के साथ व्यापार करते थे और उनके जहाज अफ्रीका तक भी जाते थे। य समुद्र यात्राए प्राचीन काल से भारत तथा भूमध्यसागरीय देशो म विद्यमान सपर्को के सातत्य और प्रसार की प्रतीक थी। दक्षिण पूर्वी एशिया के देशो और श्रीलका के साथ खूब व्यापार होता था। सातवाहन सिक्को पर पोत अकित थे, जो सामुद्रिक व्यापार के बढते महत्व का परिचायक है।

लाल सागर परिभ्रमण' के लेखक न मलाबार तट पर विशाल भारतीय पोत देखे थे जिन्हे सागर कहा जाता था। एक प्राचीन भारतीय ग्रथ म भी बड पोतो को लगभग एसा ही — सागद — नाम दिया गया है। ईसवी सवत की

पहली सदियो मे मिस्री व्यापारी अपने जहाज भारत भेजते थे और – लाल सागर परिभ्रमण ' के अनुमार – भारतीय व्यापारियो ने दिओस्कोरीदीज (मोकोत्रा) द्वीप पर स्थायी रूप मे निवास करना शुरू कर दिया था।

प्राचीन विश्व मे सामुद्रिक अन्वेषण के इतिहास म चीनी तीर्थयात्री फा ह्यान (फा म्यान) की भारत से चीन की समुद्र यात्रा एक राचक अध्याय है। उसने अपनी यात्रा का आरभ ताम्रलिप्ति से किया था और पहले श्रीलका और फिर समुद्र पार जावा होते हुए अत मे चीन वापस पहुचा था।

पूर्वी व्यापार मे उस समय रोम की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। रोमन लोग भारत से बहुत सी चीजो का आयात तो करते ही थ साथ ही उन्होन वहा अपने व्यापारिक अड्डे भी स्थापित कर रखे थे। इनमे से अरिकामेदु (वतमान पाडुचेरी के निकट) का अड्डा खामकर मशहूर था जहा रोमन सिक्के, अफोरा (दुहत्थे कलश) और काच तथा अन्य चीजे मिली है। दक्षिण भारतीय मालो मे व्यापार रोम के लिए बहुत लाभदायी था और इसलिए यह कोई सायोगिक बात ही नही है कि भारत के इसी भाग मे बडी सख्या मे रोमन सिक्के पाये गये है। भारत म सम्राट आगस्टस तथा सम्राट त्राजन के दरबारो मे भेजे गये अनेक दूतमडलो के अभिलेख है। आगम्टस को राजा पाडियन द्वारा, जो दक्षिण भारत क पाडय राज्य का राजा रहा होगा भेजे गय उपहारो के भी अभिलेख मिलते है।

भारतीय मसालो और विशेषकर काली मिर्च तथा इनो विरल प्रकार की लकडी, कपडो और निराले पशु पक्षियो को भी पश्चिम मे बहुत लोकप्रियता प्राप्त थी।

जब पाचवी शताब्दी के आरभ म विमीगोथ राजा अलेरिक ने रोम को घेरा था तो मुक्तिधन के रूप मे उसन काली मिर्च की बहुत विशाल मात्रा की माग की थी और उसकी यह माग पूरी की गयी थी। प्राचीन लेखको ने तमाशो के लिए रोम भेजे जानवाले भारतीय सिहो के बारे म लिखा है। सम्राट क्लाडियस के सामने भारतीय बाघ पश किये जाते थे। रोम के निवासिया म भारतीय तोते विशेषकर लोकप्रिय थे।

भारत हाथीदात की चीजो, रेशम रत्नो, शखो, कस्तूरी लोह और इस्पात का भी निर्यात करता था। लाल मागर परिभ्रमण मे सगीत तथा नृत्यकला मे प्रशिक्षित भारतीय दासियो के निर्यात के भी उल्लेख है। पोंपेई मे लक्ष्मी की हाथीदात की बनी एक प्रतिमा मिली थी। बेग्राम (अफगानिस्तान) मे कुषाण काल की हाथीदात की बनी कई चीज मिली है।

भारतीय भी कुछ चीजो का आयात करते थे, जैसा कि प्राचीन लेखकों की कृतियो पुरातात्विक खोजो और – विशेषकर – 'लाल सागर परिभ्रमण' से पता चलता है। इन चीजो का पश्चिम से मुख्यत बरीगोजा बदरगाह के जरिये आयात किया जाता था। भारत सुराओ, पटेर (पपीरस), लोबान कुछ धातुओ कुछ तरह के अनाजो (जैसे तिल), तेल और शहद का आयात करता था। इस काल मे महान कौशेय पथ (रेशमी मार्ग) ने बहुत महत्व प्राप्त कर लिया था क्योकि यह सुदूर पूर्व को पश्चिम से जोडता था और भारत से होता हुआ ही गुजरता था।

शिल्पकर्मियो और दस्तकारो की ही भाति व्यापारियो के भी सगठन थे और ये भी श्रेणी ही कहलाते थे।

ईसवी सवत की पहली सदियो मे वर्ण तथा जाति

इस काल मे सामाजिक श्रेणिगत ढाचे के भीतर वे प्रक्रियाए चलती रहीं, जिनका प्रारभ पूर्ववर्ती काल मे हुआ था – समाज मे व्यक्ति की वास्तविक स्थिति उसकी सापत्तिक हैसियत अधिकाधिक प्रमुखता प्राप्त करती गयी। साथ ही अब उसके वश का वह महत्व नही रह गया था, जो उसे पहले प्राप्त था। बौद्ध तथा जैन धर्मो के जड जमाते जाने के साथ-साथ धार्मिक कर्मकाड के परम महत्वपूर्ण निष्पादको के नाते ब्राह्मणो की भूमिका कम महत्व की होती गयी।

बहुत से ब्राह्मण कुटुब निर्धन हो गये थे और ब्राह्मण वर्ण के प्रतिनिधियो के लिए अब जीविका के अन्य स्रोत ढूढना और अगीकार करना आवश्यक हो गया था। वैचारिक क्षेत्र म भी ब्राह्मणो की भूमिका घटी, यद्यपि बाद मे हिंदू धर्म के पुनरुत्थान के साथ उनके प्रभाव म वृद्धि हुई। अन्य नये विकासो के परिणामस्वरूप क्षत्रिय वर्ण की भूमिका पर भी प्रभाव पडा। गणराज्य अब धीरे धीरे अपने महत्व को गवा रहे थे, जिनमे क्षत्रिय मुख्य भूमिका अदा करते थे। सेना मे भृतिजीवी सैनिको की भरती ने स्वभावत युद्धजीवी क्षत्रिय वर्ण की स्थिति को प्रभावित किया। ब्राह्मण कुलो की ही भाति क्षत्रिय कुल भी अब निर्धनता के शिकार होने लगे थे शासकीय पदो पर अन्य वर्णों के सदस्यो को अधिकाधिक नियुक्त किया जाने लगा था जिसकी पहले कल्पना भी नही की जा सकती थी।

चीनी यात्री हुएनत्साग (युवानचाग) ने अपने वृत्तात मे रोचक तथ्यो का वर्णन किया है। उसके भारत प्रवास के समय देश पर शासन करनेवाले राजवशो की बहुरूपी छटा इस प्रकार थी – पाच क्षत्रिय राजवश चार ब्राह्मण दो वैश्य और दो शूद्र राजवश।

वैश्य वर्ण के विघडन की प्रक्रिया, जो पहले ही शुरू हो चुकी थी, गुप्त काल मे तीव्र गति से चलती रही। निर्धन वैश्यो की स्थिति व्यवहार मे लगभग शूद्रो जैसी ही हो गयी थी स्वय जिनकी स्थिति कृषि के तीव्र विकास और शिल्पकर्मो की उन्नति के परिणामस्वरूप किसी हद तक सुधर गयी थी। इस काल की स्रोत सामग्री मे कृषि मे शूद्र श्रम के उपयोग के अधिकाधिक उल्लेख आते हैं। अपने यात्रा वत्तात मे हुएनत्साग शूद्रो को जमीन को काश्त करनेवाले बताता है, जब कि गुप्तकालीन शास्त्रो मे शूद्रो तथा दासो के बीच स्पष्ट विभाजक रखा खीची जा चुकी है। इस प्रकार पारपरिक वर्ण विभाजन अपना पुराना महत्व धीरे धीरे गवाते जा रहे थे। अब जाति के भेद अधिक महत्वपूर्ण हो गये थे। वर्ण की ही भाति जाति भी वशागत ही होती थी और विशेष व्यवसायो से सबद्ध थी। फिर भी ये अपेक्षाकृत छोटे सवर्ग थे जो अकसर अपने आर्थिक हितो से जुडे लोगो के समूहो जैसे ही होते थे। जातियो की सख्या धीरे-धीरे बढती जा रही थी।

जातियो के बनने की प्रक्रिया बाद मे भी चलती रही। श्रम के विभाजन और उसके विशेषीकरण के परिणामस्वरूप शहरो मे, शिल्पकर्मियो के विभिन्न सवर्गो मे जातियो की सख्या मे विशेषकर वृद्धि हुई। ग्रामीण क्षेत्रो मे भी जातियो की सख्या मे वृद्धि हुई। जाति का अस्तित्व वर्ण से भिन्न सामाजिक सस्था के रूप मे था। साथ ही वर्ण सिद्धात का कठोरतापूर्वक पालन किया जाता था। गुप्त काल मे अभी जातियो के बारे मे ऐसे सख्त नियम नही बने थे कि जैसे आगे चलकर पैदा हुए – कुछ मामलो मे जातियो के लिए अपने पारपरिक व्यवसायो को बदल पाना अब भी सभव था।

इस काल की पुरालेखीय सामग्री से इस आशय की जानकारी मिलती है कि पश्चिमी भारत मे उत्पादन समस्याए पैदा होने के कारण रेशमी कपडा बुनकरो की श्रेणी ही अयत्र चली गयी। बुनकरो ने अन्य व्यवसाय अपना लिये – उनमे से कुछ सैनिक, धनुर्धारी और चारण तक बन गये अर्थात सामाजिक दृष्टि से, वर्ण अनुक्रम के लिहाज से, वे ऊपर उठ गये थे।

ब्राह्मणो ने जाति के उदय को वर्णो के मिश्रण के कारण बताकर उसकी व्याख्या करने की कोशिश की। वर्णो के बीच सपर्को के बारे मे कठोर नियमो के

उल्लघना के दृष्टिगत ब्राह्मण विधि अपना ध्यान वर्णों की शुद्धता पर केंद्रित कर रहे थे। एक ही वर्ण के माता पिता की सतान को ही शुद्ध तथा औरस माना जाता था। ब्राह्मण और क्षत्रिय मे विवाह तक को वर्ण विधान मे विचलन माना जाता था। मिश्रित विवाहो मे उत्पन्न सतान – वर्णसकरो – को अपने माता पिता से भिन्न सवर्ग मे एक अलग ही जाति मे रखा जाता था। ब्राह्मणो ने जातियो के जो सामाजिक विकास के, और विशेषकर श्रम विभाजन के परिणामस्वरूप उदित होनेवाले नये सामाजिक समूह थे, उदय की समस्या को इसी प्रकार समझाने का प्रयास किया। अस्पृश्यो का उदय इसी समय का है। उनका स्थान वर्ण व्यवस्था के बाहर था और वे सामाजिक सोपानिका मे सबसे नीचे थे।

ये वे समूह थे जिन्हे सबसे निकृष्ट कार्य (जैसे महतरो डोमो, आदि के) करने होते थे। उच्च जाति के सदस्यो को इन अस्पृश्यो के साथ जिन्हे कभी कभी उनकी नीची जाति के सूचक विशिष्ट चिह्नो से अलग पहचाना जा सकता था किसी भी प्रकार का सपर्क रखने की अनुमति नही थी। अस्पृश्य लोग सभी प्रकार के राजनीतिक अधिकारो से वंचित थे।

ईसवी सवत की पहली सदियो मे धार्मिक पथ तथा दार्शनिक सिद्धात

महायान सप्रदाय

बौद्ध धर्म के इतिहास के बहुत आरभ मे ही उसके अनुगामियो मे अनेक पथ तथा सप्रदाय पैदा हो गये थे। पहली बौद्ध सगीतियो ने भी बौद्ध धर्म के कई सिद्धान्तो की भिन्न भिन्न व्याख्याए प्रस्तुत की। मौर्य काल तक बौद्ध मतावलबियो मे दो मुख्य समूहो अथवा निकायो का उदय हो चुका था – थेरमार्गी अथवा स्थविरवादी (जो स्थविरो अर्थात बुद्ध के मुख्य शिष्यो को मानते थे) और महासाघिक (जो बडे सघ के समर्थक थे और अधिक उदार नियमो का प्रतिपादन करते थे)।

महायान (महान यान अथवा महान मार्ग) शिक्षा का तात्विक अग प्रत्यक्षत महासाघिक निकाय से ही उत्पन्न हुआ है, जिसके अनुगामियो ने अपने को हीन यान (अथवा हीन मार्ग) के अनुगामियो से पृथक मानना शुरू कर दिया। बौद्ध ग्रथो मे हीनयान शब्द का अधिक प्रयोग नही किया

गया है। इसका उपयोग तथाकथित पुरातनपथी बौद्धो द्वारा स्वीकृत विचारो को व्यक्त करने के लिए किया जाता था। भारत मे इन दोनो पथो के अनुगामियो म कोई खुला सघर्ष नही था। आरभ म महायान निकाय के अनुगामियो की सख्या कम ही थी। हुएनत्साग के अनुसार व हीनयान विनय नियमो पर आचरण करते थे। सातवी शताब्दी तक मे तीर्थयात्री इत्सिग ने इसका वणन किया है कि किस प्रकार दोनो – हीनयान तथा महायान – पथो के अनुयायी उत्तरी भारत मे एक ही विहार म साथ साथ रहते ह। उसने लिखा है कि वे उन्ही विनय नियमो का आचरण करते है और बौद्ध धर्म क चार आर्य सत्या को स्वीकार करत ह लेकिन उनमे जो लोग बोधिसत्वो की उपासना करते ह और महायान सूत्रो का पाठ करते है उन्हे महायानी माना जाता है, जब कि अयो को हीनयानी माना जाता है।

प्राचीनतम महायान ग्रथो की रचना प्रत्यक्षत ई० पू० पहली शताब्दी म ही हो चुकी थी लेकिन बहुत से ग्रथ ईसा के बाद की आरभिक सदियो के ह। इन प्राचीनतम महायान ग्रथो म प्रज्ञापारमितासूत्र' भी ह जिनका चीनी भाषा मे दूसरी सदी ई० के अत मे ही अनुवाद हो गया था। महायान निकाय क सबसे लोकप्रिय ग्रथ सद्धर्मपुडरीकसूत्र लकावतारसूत्र', तथा 'सुवर्णप्रभासूत्र' है।

महायानपथी हीनयान सिद्धात को अपने मत के लिए कोई खतरा अथवा भ्रात सिद्धात नही समझते थे। वे उसे बौद्ध विचारो क व्यापक प्रचार के लिए अनुपयुक्त और जरा ज्यादा ही व्यक्तिमूलक सिद्धात समझते थे। महायान योगाचार के सस्थापको मे एक असग, ने हीनयान सिद्धात के सीमित स्वरूप की ओर इगित किया जिसके अनुसार मनुष्य को केवल अपनी व्यक्तिगत मुक्ति के, बोधि प्राप्त करने के निर्वाण लाभ करने के प्रयास मे ही लगे रहना चाहिए। इसके विपरीत महायान इस पर जोर देता था कि व्यक्तिगत गुणावगुण के लिहाज के बिना सभी प्राणियो के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए और उनकी सहायता की जानी चाहिए। महायानी अपने सिद्धात को बुद्ध की सच्ची शिक्षा का पुनरोदय मानते हैं, जिसे – उनके अनुसार – हीनयानपथी (विभाजवादी तथा स्थविरवादी) अपने अहवाद तथा व्यक्तिवाद द्वारा विकृत और अवरुद्ध करते थे। इसी लिए निर्वाण के विचार की अपनी व्याख्या की व्याप्ति और बुद्ध की शिक्षा की छाया मे लाये लोगो की व्यापकता को दर्शाने के लिए उन्होंने अपने सिद्धात को महायान अथवा महामार्ग कहना शुरू किया।

उल्लघना के दृष्टिगत ब्राह्मण विधि अपना ध्यान वर्णों की शुद्धता पर केंद्रित कर रहे थे। एक ही वर्ण के माता पिता की सतान को ही शुद्ध तथा औरस माना जाता था। ब्राह्मण और क्षत्रिय म विवाह तक को वर्ण विधान म विचलन माना जाता था। मिश्रित विवाहो म उत्पन्न सतान – वर्णसकरो – को अपने माता पिता से भिन्न सवर्ग म, एक अलग ही जाति म रखा जाता था। ब्राह्मणो ने जातियो के जो सामाजिक विकास के, और विशेषकर श्रम विभाजन के परिणामस्वरूप उदित होनेवाले नये सामाजिक समूह थे, उदय की समस्या को इसी प्रकार समझाने का प्रयास किया। अस्पृश्यो का उदय इसी समय का है। उनका स्थान वर्ण व्यवस्था के बाहर था और वे सामाजिक सोपानिका मे सबसे नीचे थे।

ये वे समूह थे जिन्हे सबसे निकृष्ट कार्य (जैसे महतरो डोमो, आदि के) करने होते थे। उच्च जाति के सदस्यो को इन अस्पृश्यो के साथ जिन्हे कभी-कभी उनकी नीची जाति के सूचक विशिष्ट चिह्नो से अलग पहचाना जा सकता था किसी भी प्रकार का सपर्क रखने की अनुमति नही थी। अस्पृश्य लोग सभी प्रकार के राजनीतिक अधिकारो से वचित थे।

ईसवी सवत की पहली सदियो मे धार्मिक पथ तथा दार्शनिक सिद्धात

महायान सप्रदाय

बौद्ध धर्म के इतिहास के बहुत आरभ मे ही उसके अनुगामियो म अनेक पथ तथा सप्रदाय पैदा हो गये थे। पहली बौद्ध सगीतियो ने भी बौद्ध धर्म के कई सिद्धातो की भिन्न भिन्न व्याख्याए प्रस्तुत की। मौर्य काल तक बौद्ध मतावलबियो म दो मुख्य समूहो अथवा निकायो का उदय हो चुका था – थेरमार्गी अथवा स्थविरवादी (जो स्थविरो, अर्थात बुद्ध के मुख्य शिष्यो को मानते थे) और महासाघिक (जो बडे सघ के समर्थक थे और अधिक उदार नियमो का प्रतिपादन करते थे)।

महायान (महान यान अथवा महान मार्ग) शिक्षा का तात्विक अश प्रत्यक्षत महासाघिक निकाय से ही उत्पन्न हुआ है जिसके अनुगामियो ने अपने को हीन यान (अथवा हीन मार्ग) के अनुगामियो से पृथक मानना शुरू कर दिया। बौद्ध ग्रथो मे हीनयान शब्द का अधिक प्रयोग नही किया

गया है। इमका उपयोग तथाकथित पुरातनपथी बौद्धो द्वारा स्वीकृत विचारो को व्यक्त करने के लिए किया जाता था। भारत म इन दोनो पथो के अनुगामियो मे कोई खुला मघर्ष नही था। आरभ मे महायान निकाय के अनुगामियो की सख्या कम ही थी। हुएनत्साग के अनुसार व हीनयान विनय नियमो पर आचरण करते थे। मातवी शताब्दी तक मे तीर्थयात्री इत्सिग ने इसका वणन किया है कि किस प्रकार दोनो – हीनयान तथा महायान – पथो के अनुयायी उत्तरी भारत मे एक ही विहार म साथ माथ रहत है। उसन लिखा हे कि वे उन्ही विनय नियमो का आचरण करत है और बौद्ध धर्म के चार आर्य मत्यो को स्वीकार करन ह, नेकिन उनमे जो लोग वोधिमत्वो की उपासना करत है और महायान मूत्रो का पाठ करते ह उन्हे महायानी माना जाता है जब कि अन्या को हीनयानी माना जाता है।

प्राचीनतम महायान ग्रथों की रचना प्रत्यक्षत ई० पू० पहली शताब्दी मे ही हो चुकी थी लेकिन बहुत से ग्रथ ईसा के बाद की आरभिक मदियो के है। इन प्राचीनतम महायान ग्रथो मे प्रज्ञापारमितासूत्र भी है, जिनका चीनी भाषा म दूसरी सदी ई० के अत मे ही अनुवाद हो गया था। महायान निकाय क सबसे लोकप्रिय ग्रथ 'सद्धर्मपुडरीकसूत्र लकावतारसूत्र' तथा सुवर्णप्रभासूत्र' है।

महायानपथी हीनयान सिद्धात को अपने मत के लिए कोई खतरा अथवा भ्रात सिद्धात नही ममझते थे। वे उसे बौद्ध विचारो के व्यापक प्रचार के लिए अनुपयुक्त और जरा ज्यादा ही व्यक्तिमूलक मिद्धात ममझते थे। महायान योगाचार के सस्थापको मे एक, असग न हीनयान सिद्धात के मीमित स्वरूप की ओर इगित किया जिसके अनुसार मनुष्य को कवल अपनी व्यक्तिगत मुक्ति के, वोधि प्राप्त करने के, निर्वाण लाभ करन के प्रयास मे ही लगे रहना चाहिए। इसके विपरीत महायान इस पर जोर दता था कि व्यक्तिगत गुणावगुण क लिहाज के विना सभी प्राणियो के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए और उनकी सहायता की जानी चाहिए। महायानी अपने सिद्धात को बुद्ध की सच्ची शिक्षा का पुनरोदय मानते है, जिसे – उनके अनुसार – हीनयानपथी (विभाजवादी तथा स्थविरवादी) अपने अहवाद तथा व्यक्तिवाद द्वारा विकृत और अवरुद्ध करते थे। इसी लिए निर्वाण के विचार की अपनी व्याख्या की व्याप्ति और बुद्ध की शिक्षा की छाया मे लाये लोगो की व्यापकता को दशान के लिए उन्होंने अपने सिद्धात को महायान अथवा महामार्ग कहना शुरू किया।

महायान सप्रदाय के सबसे महत्वपूर्ण सिद्धातो मे एक बोधिसत्वा के बारे मे है। बोधिसत्वो की अवधारणा हीनयान निकाय मे भी पायी जाती है विशेषकर बाद मे उदित होनेवाले सर्वास्तिवाद के अनुगामियो म (इसके अनुसार बुद्धत्व प्राप्त करने के पहले गौतम शाक्यमुनि एक बोधिसत्व थे)। महायानपथियो के लिए बोधिसत्वोपासना ने कही अधिक महत्व ग्रहण कर लिया था। वे बोधिसत्व को ऐसा प्राणि मानते थे कि जो बुद्धत्व प्राप्त करने (बोधि बनने) की क्षमता रखता था और निर्वाण लाभ कर सकता था, किंतु जिसने अन्य प्राणियो तथा सारे जगत के प्रति अपनी करुणा के कारण निर्वाण लाभ नही किया। महायानियो के लिए बोधिसत्व ने हीनयानिया के अर्हत्व के आदर्श का स्थान ले लिया।

महायानियो की मान्यता थी कि हीनयान निकाय का एक मुख्य दोष उसके लक्ष्य – केवल अपना व्यक्तिगत निर्वाण लाभ – का अत्यधिक सीमित होना था। उनके अनुसार अर्हत भी अपने अतरात्मा के बधनो से पूर्णत मुक्त नही हो पाता है – वह भवचक्र मे, जन्म मरण के चक्र मे पडे अन्य प्राणियो की चिता किये बिना अपना व्यक्तिगत निर्वाण लाभ करने मे ही लगा रहता है। महायानपथियो का कहना था कि अर्हत अपने तथा अन्यो के बीच अतरो को पूर्णत तिरोभूत करने और इस प्रकार स्वय अपने "अभाव" की अवस्था को प्राप्त करने मे अक्षम होता है। इसलिए उनके अनुसार यह स्वाभाविक ही था कि लोग अर्हतो का अनुकरण न करे, जो अपना सारा ध्यान अपने व्यक्तिगत निर्वाण लाभ पर ही केंद्रित करते हैं, वरन बोधिसत्व का अनुसरण करे, जो विश्व के सभी प्राणियो की सहायता करने के लिए उनके निर्वाण के लिए उद्योग करने की खातिर सासारिक सुखभोग से मुह मोड लेता है।

महायानपथी हीनयानी सिद्धातो की सकीर्णता का विरोध करते थे। हीनयान निकाय के अनुसार सासारिक जीवन से पूर्णत नाता तोड लेने के बाद केवल भिक्षु ही निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं, जब कि महायान निकाय के विश्वास के अनुसार श्रमणो – गृहस्थो – के लिए भी निर्वाण लाभ करना सभव है। महायान ग्रथो मे इस बात पर लगातार ज़ोर दिया जाता है कि बोधिसत्व केवल अपने निर्वाण के लिए ही उद्योग नही करते हैं, वरन सारे ससार के लिए सुख की सिद्धि के निमित्त, सभी प्राणियो के निर्वाण लाभ के निमित्त प्रयास करते हैं। बोधिसत्व अन्यो की सहायता करने के लिए स्वेच्छा से दुखभोग को अगीकार करता है और जब तक अन्य सभी प्राणियो को दुखभोग से मुक्ति नही मिल जाती, तब तक अपने निर्वाण का उद्योग नही करता।

इस लिहाज से बुद्ध के सभी अनुगामियो को एकरूप माना जाता है। महायान निकाय के इन सिद्धातो ने उसे आम लोगो मे बहुत लोकप्रिय बना दिया जिनके लिए उसने सवेदनाशील बोधिसत्वो की सहायता के आश्वासन के साथ निर्वाण का पथ उन्मुक्त कर दिया था।

महायान निकाय मे बौद्ध धर्म के सस्थापक बुद्ध की छवि की विवृति बोधि अथवा बुद्ध की वास्तविक अवधारणा से सर्वथा भिन्न थी। जहा हीनयान निकाय बुद्ध को एक वास्तविक ऐतिहासिक व्यक्ति मानता था जिसने अपनी शिक्षा का अनुसरण करनेवालो को निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग दिखलाया था वहा महायान निकाय बुद्ध को सर्वोच्च देवाधिदेव समस्त अणुविश्व की आधारशिला मानता था, और इस प्रकार विशिष्ट आधिभौतिक तथा धार्मिक अभिव्यजकता से युक्त प्रत्येक प्राणि बोधि अथवा बुद्ध बनने की क्षमता रखता है, क्योकि उसमे बुद्धत्व का एक विशेष कण समाहित होता है। यह बुद्धत्व समस्त सृष्टि मे परिव्याप्त है और अपने को तीन कायो (त्रिकाय) मे व्यक्त करता है, जिनमे से प्रत्येक एक ही बुद्ध के तीन अलग अलग पक्ष है — धर्मकाय, सभोगकाय और निर्माणकाय अथवा रूपकाय। महायानी असख्य बुद्धो के अस्तित्व को स्वीकार करते थे जिनमे गौतम मात्र एक थे। उनकी मान्यता थी कि त्रिकाय मे इन अभिव्यक्तियो द्वारा बुद्ध त्रिलोक मे सभी प्राणियो को निर्वाण लाभ कराते हैं।

महायान विश्वास के अनुसार बुद्ध तथा बोधिसत्व उपास्य बन जाते हैं। उपासना के *विधि विधान तथा कर्मकाडीय पक्षो का विशेष महत्व है।* बौद्ध कला मे बुद्ध को ईश्वर के रूप मे प्रकट किया गया है।

महायानी चूकि यह मानते हैं कि निर्वाण बोधिसत्वो की सहायता से प्राप्त होता है, इसलिए इस पथ के अनुयायी मूल्यवान भेट-उपहारो द्वारा उनके अनुग्रह को प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे। ईसवी सवत की प्रारभिक शताब्दियो मे विहारो के पास सभी प्रकार की सपत्ति एकत्रित होने लगी — राजा लोग और बुद्ध के अन्य धनी अनुयायी उन्हे जमीन, धन तथा अन्य मूल्यवान भेटे देते थे।

महायान सिद्धात मे निर्वाण की अपनी विशेषताए है और महायान निकाय की विभिन्न धाराओ ने निर्वाण को अलग-अलग तरह से प्रस्तुत किया है। किंतु हीनयान सिद्धात के विपरीत महायान सिद्धात मे निर्वाण को वास्तविकता अथवा सत्ता का विलोपन अथवा उत्सर्जन नही, वरन स्वय वास्तविकता माना जाता है। महायान निकाय ने पारमिताओ (पूर्णताओ) का सिद्धात

विकसित किया जिनकी सहायता से साधक नैतिक पारमिता प्राप्त कर सकता है। मुख्य पारमिताएं छ मानी गयी है—दान, शील, शांति, वीर्य, ध्यान तथा प्रज्ञा। प्रत्येक पारमिता का पूर्ण ज्ञान (प्रज्ञा—सर्वज्ञता) की सिद्धि में एक कदम माना जाता था। इस प्रकार हीनयान तथा महायान निकायों के मूलभूत सिद्धातो मे बहुत अतर था और कुछ बौद्धधर्मवेत्ता तो महायान निकाय को हीनयान निकाय से सर्वथा भिन्न तक मानते है। अन्य विद्वान महायान सिद्धातो को हीनयान अवधारणाओ का ही सातत्य और विस्तार समझते है।

किंतु आपस मे काफी भेद होने के बावजूद धर्म के प्रतिपादन के बारे मे दोनो निकायो की कुछ सामान्य आधारिक अवधारणाए हैं। दोनो ही निर्वाण और उसकी प्राप्ति के मार्गों पर ध्यान केंद्रित करते है, दोनो ही यह मानते है कि जो कुछ भी अस्तित्वमान है वह अनित्य तथा परिवर्तनशील है, दोनो ही कर्म सिद्धात को मानते है और निर्वाण को मनुष्य के लिए साध्य मानते हैं चाहे भिन्न भिन्न मार्गों से ही सही।

महायान दार्शनिक सप्रदाय

ईसवी सवत की पहली सदियो मे इन सप्रदायो मे सबसे प्रसिद्ध माध्यमिक तथा योगाचार सप्रदाय थे। प्रसिद्ध दार्शनिक नागार्जुन तथा आर्यदेव को, जिनका समय सभवत दूसरी शताब्दी है माध्यमिक सप्रदाय के सस्थापक माना जा सकता है। इस समय तक कुछ महायान ग्रथ लिखे भी जा चुके थे और नागार्जुन ने अपनी कृतियो मे उनका उल्लेख भी किया है।

माध्यमिक दर्शन का मूलाधार शून्यता का सिद्धात था और इसी लिए यह सप्रदाय शून्यवाद के नाम से भी जाना जाता है। नागार्जुन के अनुसार जो कुछ भी है, चाहे भौतिक अथवा आध्यात्मिक, वह अवास्तविक है। साथ ही शून्य अभाव का निषेध, द्वैत का पूर्ण लोप भी है और इसलिए वह नकारात्मक नही सकारात्मक अर्थ रखता है। इससे माध्यमिको ने यह निष्कर्ष निकाला कि निर्वाण और ससार विरोधी नही है। उनका कहना था कि समस्त पारमिताओ से गुजरने और सर्वोच्च आत्मिक पूर्णता प्राप्त कर लेने के बाद विषय और विषयी का निर्वाण और ससार का अस्तित्व और अनस्तित्व का भेद माना मिट जाता है। बुद्ध की शिक्षा—धर्म—को शून्य घोषित कर दिया गया। नागार्जुन के विचारो ने जो बौद्ध धर्म के इतिहास मे एक सबसे महत्वपूर्ण घटना के परिचायक है महायान निकाय के विचारो और प्राचीन तथा मध्यय

गीन भारत म धार्मिक तथा दार्शनिक चिंतन क विकास पर बहुत जबरदस्त प्रभाव डाला।

असग तथा वसुबधु (चौथी तथा पाचवी सदी) को योगाचार सप्रदाय क सस्थापक माना जाता है। यह सप्रदाय केवल मनुष्य की चेतना को ही वास्तविक मानता है और समस्त भौतिक ससार को अवास्तविक भ्राति समझता है। इसके परिणामस्वरूप इस सप्रदाय क अनुगामियो न अपना ध्यान चेतना और मनुष्य की ध्यानविषयक क्षमताओ को परिपूर्ण करने की पद्धतियो (योग) पर ही केंद्रित किया है।

महायान (और विशेषकर माध्यमिक सप्रदाय) का कई देशो म—खासकर सुदूर पूर्व म—व्यापक प्रचार हुआ। इसका स्थानीय धर्मों म आसानी स समन्वय हो गया और इसन उनक विधि विधान का ग्रहण कर लिया। लेकिन स्वय भारत म बौद्ध धम क प्रभाव म गुप्त काल म भारी अवनति आयी।

बौद्ध धर्म का अपकर्ष। हिंदू धर्म

ईसोपरात पहली सदिया म महायान विचारो के प्रसार और हीनयान तथा महायान दार्शनिक सप्रदायो की उन्नति के बावजूद गुप्त काल मे और विशेषकर उसके तुरत बाद बौद्ध धर्म का महत्व घटा। अपने जन्म के देश मे ही बौद्ध धर्म अब उतार पर आ गया था। इस काल के चीनी यात्रियो ने निर्जन पड़ विहारो का उल्लेख किया है और गुप्तकालीन कृतियो म बौद्ध भिक्षुओ पर खुले हमले किये गये है। उपलब्ध तथ्य सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि गुप्त शासक विष्णु तथा शिव के उपासक थे यद्यपि साथ ही वे प्रत्यक्षत धार्मिक सहिष्णुता की नीति पर भी चलते थे। कुछ ही समय के भीतर केवल उत्तर-पश्चिमी भारत और कश्मीर ही बौद्ध धर्म के केंद्र रह गये और गगा की घाटी मे वैष्णव तथा शैव मत अधिकाधिक महत्व ग्रहण करने लग गये।

बौद्ध धम के अपकर्ष के ही साथ-साथ भारतीय धर्म तथा सस्कृति के इतिहास मे एक और महत्वपूर्ण घटना भी देखने मे आती है और यह है हिंदू धम का नवोन्मेष, यद्यपि व्यावहारिक अर्थो मे बौद्ध धर्म के अनेक लक्षणो और विधि विधानो का कभी पूर्ण विलोप नही हुआ। हिंदू परपरा की स्थानीय धर्मो को पचा लेने की विस्मयजनक क्षमता उसके दर्शन मे एक दूसर से

लगभग स्वतंत्र विचारधाराओं के रूप में नाना संप्रदायों के सहअस्तित्व और पारपरिक सामाजिक संस्थाओं के बने रहने तथा विकास (वर्ण व्यवस्था के समर्थन पर यह बात सर्वोपरि रूप में लागू होती है) — इन सभी ने हिंदू धर्म को या यों कहिये कि इस असाधारण धार्मिक समन्वय को, विभिन्न अन्य सुधारोन्मुख धाराओं के मुकाबले अत्यधिक विविध सामाजिक समूहों के लिए भी अधिक ग्राह्य तथा स्वीकार्य बना दिया। मध्य युग के आरंभ तक हीनयान बौद्ध धर्म श्रीलंका का और बाद में दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों के मुख्य धर्म बन जाने के बाद भारत में लगभग पूर्णत विलुप्त हो चुका था बौद्ध धर्म के उत्तरी रूपांतर (महायान) ने भारत में कुछ और सदियों तक अपना कुछ प्रभाव बनाये रखा, किंतु अपनी पौराणिक परंपरा और धार्मिक विधि विधान में भी वह धीरे धीरे हिंदू धर्म के समान होता गया हिंदू धर्म बौद्ध धर्म पर अधिकाधिक प्रभाव डालता जा रहा था और बौद्ध विहारों तक में अब हिंदू देवी-देवताओं की मूर्तियों और चित्रों ने स्थान पाना शुरू कर दिया था। यह उल्लेखनीय है कि बुद्ध को विष्णु का एक अवतार घोषित कर दिया गया था। आठवीं-नवीं सदियों तक हिंदू धर्म ने विशुद्ध भारतीय महायान संप्रदाय की सभी धाराओं को शनै-शनै अपने में विलीन कर लिया था।

गुप्त काल तक पुरातन ब्राह्मण धर्म में भी काफी परिवर्तन आ चुके थे। पुराने देवी-देवता अपनी लोकप्रियता और महत्व को खो चुके थे, वेदों और ब्राह्मण ग्रंथों में निर्धारित विधि विधान कालातीत हो चुके थे और अनावश्यक रूप में जटिल प्रतीत होने लगे थे। लेकिन उपनिषदों और गीता की धार्मिक तथा दार्शनिक अवधारणाओं ने सभी स्थानीय संप्रदायों और विश्वासों का सदियों से पूजित ब्राह्मण परंपरा में समावेश करना संभव बना दिया।

कई सदियां बीतने के बाद ही हिंदू धर्म के नाम से विज्ञात होनेवाली (जब अरब आक्रमण के दृष्टिगत इस समूचे संप्रदाय-समूह को कोई एक सर्वग्राही नाम देना आवश्यक हो गया था) इस प्रणाली के उदय का गुप्त काल के बहुत पहले ही समारंभ हो चुका था और वह ब्राह्मण धर्म की पौराणिक परंपरा को देशज कबीलों (अधिकांशत द्रविड) के स्थानीय विश्वासों के साथ समन्वित करने के पहले प्रयासों से संबद्ध था।

हिंदू धर्म के दो मुख्य सप्रदायो मे से पहले – वैष्णव मत – का उदय मौर्य काल के भी पहले ही हो चुका था किंतु वह व्यापक गुप्त शासको के राज्यकाल मे ही बन पाया। पुराने ग्रंथो मे वैष्णव मत के मुख्य देवता विष्णु को नारायण कहा गया है, जो सभवत उत्तरी भारत के देशज निवासियो द्वारा पूजित देवता रहा होगा। ब्राह्मण ग्रंथो म भी उसे एक शक्तिशाली देवता कहा गया था और कहीं-कहीं तो उत्तर-वैदिक देवता प्रजापति से भी ऊचे स्थान पर रखा गया है।

कालातर मे नारायण विष्णु के, जो आदित्य का एक रूप था, बहुत से नामो मे से कम एक हो गया। विष्णु नाम स्थानीय मूल का ही प्रतीत होता है। बाद मे इस देव को सिर्फ विष्णु ही कहा जाने लगा और उसे देवाधिदेव माननेवाला सप्रदाय वैष्णव सप्रदाय के नाम से जाना जाने लगा।

भारत मे इस सप्रदाय की जबरदस्त लोकप्रियता का कारण काफी हद तक हिंदू धर्म की इस शाखा की विभिन्न स्थानीय धार्मिक विश्वासो और विधि विधान का आत्मसात्करण करने की सचमुच अदभुत क्षमता है। इसे व्यूहो और अवतारो की सुपरिष्कृत प्रणाली ने सभव बनाया है। व्यूह की धारणा का सार यह है कि सर्वशक्तिमान विष्णु अपने को निरतर चार भिन्न रूपो मे प्रकट करता है। इसके परिणामस्वरूप कई लोकप्रिय स्थानीय देवताओ का विष्णु की अवधारणा म समावेश करना सभव हो गया जिनमे एक वासुदेव भी था, जो उत्तरकालीन वैष्णव साहित्य मे लगभग स्वय नारायण से भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया था। मध्य युग मे कल्पित विष्णु के बहुत से लक्षणो के उदगम को सीधे वासुदेव से जोडा जा सकता है, जो अन्य विशेषताओ के अलावा दिव्य गरड पक्षी से भी सबद्ध है। वासुदेव की और बाद मे विष्णु की पूजा मे सकर्षण की उपासना भी समाविष्ट हो गयी, जिसकी कृषिजीवी कबीले पूजा करते थे।

विष्णु की उपासना मे एक और देवता – कृष्ण – का भी समावेश हो गया, जो जल्दी ही सबसे अधिक लोकप्रिय देवताओ मे एक हो गया। कृष्ण को गोपियो के साथ लीला मे रत युवा के रूप मे चित्रित किया जाता है। इस प्रकार व्यूह प्रणाली ने वासुदेव और कृष्ण का वैष्णव मत मे समावेश करना सभव बना दिया।

अवतार के विचार से जुडी वैष्णव मत की समन्वयवादी प्रवृत्ति तो अपने

प्रभाव और परिणामा की दृष्टि म और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रारम्भिक धार्मिक साहित्य म विष्णु क ार अवतारा का उल्लेख आता है जिन क म ना उतकी सख्या चौबीस तक पहुँची गयी है। भिन्न भिन्न उपासना पद्धति का एक ही धम म समावेश कर सकने क इस सिद्धात न नाना प्रकार के धर्मों क नाना प्रकार क स्थानाओ का वैष्णव मत म अगीकरण सभव क दिया। स्थानाभाव क कारण हम यहा उनम स सबस प्रसिद्ध अवतारा का ही उल्लेख करेग। विष्णु क तीन अवतार पशुओ क रूप मन है – वराह मत्स्य और कच्छप। वराह रूप धारकर उन्होंन पृथ्वी का उद्धार किया था, मत्स्य रूप धारण करक प्रलय काल म मानवाधिपति मनु की नौका को बचाया था और कच्छप शरीर अगीकार करके समुद्र मथन म भाग लिया था। राम का अवतार होकर वह सीता स विवाह करता है और राक्षसराज रावण का नाश करता है जिसकी कथा आग चलकर वाल्मीकि की प्रसिद्ध कृति रामायण की विषयवस्तु बनी।

प्रारम्भिक वैष्णव मत क इतिहास क सम्बन्ध म प्राचीन साहित्यिक स्रोता स प्राप्य तथ्या और कालनिर्धारित पुरातत्त्वी अभिलेखा स उपलब्ध सामग्री की तुलना बहुत रोचक है।

पाणिनि (पाचवी अथवा चौथी सदी ई० पू०) क व्याकरण म वासुदेव की उपासना का उल्लेख आता है जिस परम्परानुसार एक वीर क्षत्रिय वृष्णिया (जिनम वासुदेव कुल का प्रमुखता प्राप्त थी) का एक नायक माना जाता था। पतजलि (ई० पू० दूसरी शती) न अपनी कृति म इन दोनो ही विचारा का उपयोग किया है – उसम वासुदेव एक क्षत्रिय क रूप म और उपास्य के रूप म भी प्रकट होता है। दूसर विचार का भगवद्गीता म विशेष विस्तार क साथ निरूपण किया गया है जिसम वासुदव भगवान क एक अवतार के रूप म प्रकट हाता है।

मगस्थनीज के वृत्तात म भारतीय हेराक्लीज क उल्लेख आरभिक मौर्य काल म वासुदव उपासना के प्रसार क परिचायक है। यूनानी राजदूत न वासुदव को एक वीर योद्धा और राक्षसो का विजता कहा है। भारतीय स्रोत ग्रथो के अनुसार वासुदेव की उपासना मथुरा म विशेषकर लोकप्रिय था और यह हेराक्लीज क प्रसग म मेगस्थनीज भी कहता है। यह अनुमान किया जा सकता है कि यूनानी लेखक वैष्णव मत के उस प्रारभिक काल का वर्णन कर रहा है जिसमे वासुदव उपास्य तो हो गया था पर अभी तक कृष्ण का समानार्थक नही बना था।

बेसनगर मे हेलियोडोरस द्वारा स्थापित प्रसिद्ध गरुडध्वज (ई० पू० दूसरी शताब्दी) पर उत्कीर्ण लेख मे देवाधिदेव वासुदेव का उल्लेख है और इस लेख के आधार पर कहा जा सकता है कि इस काल म केवल भारतीयो ही नही, बल्कि उत्तर-पश्चिमी भारत म रहनेवाले यूनानियो म भी वासुदेव की उपासना व्यापक रूप मे प्रचलित थी।

ई० पू० पहली सहस्राब्दी के अत के अन्य पुरालेखीय साक्ष्यो के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उस समय विष्णु, नारायण तथा वासुदेव पथ आपस मे मिलकर एकाकार हो गये थे। वैष्णव देवताओ (विष्णु वासुदेव तथा सकर्षण) के मदिरो का निर्माण होना शुरू हो चुका था, जो मध्ययुगीन हिंदू धर्म का एक चारित्रिक लक्षण है। सकर्षण के सम्मान मे निर्मित मदिरो का अन्यत्र भी उल्लेख मिलता है उदाहरण के लिए अर्थशास्त्र म।

हिंदू धर्म को केवल ब्राह्मण धर्म ही नही, वरन अधिकाश अन्य धर्मो से भी स्पष्टत अलग करनेवाला एक लक्षण यह है कि उसमे एक नही, प्रत्युत तीन देवताओ की उपासना सन्निहित है जिनम से प्रत्येक अन्य दोनो के बराबर है। देवत्रयी का यह शुद्धत भारतीय रूप त्रिमूर्ति के नाम से जाना जाता है। ये तीनो देवता है सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु और सहारकर्ता शिव। इनमे से पहले – ब्रह्मा – को वैदिक देवकुल मे लिया गया था। कालातर म वह स्वय एक पृथक देवता के बजाय सृष्टि के वास्तविक विचार का प्रतीक ही माना जान लगा। ब्रह्मा के सम्मान मे मुश्किल से ही कुछ मदिरो का निर्माण किया गया होगा जब कि इसके विपरीत विष्णु तथा शिव के लिए बहुत बडी सख्या मे मदिर बनाये गये (और मातृदेवी – शक्ति – के लिए भी, जिसने आगे चलकर हिंदू देवी देवताओ मे एक प्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया), यद्यपि धार्मिक ग्रथो मे ब्रह्मा का उल्लेख अक्सर आता है। इन तीनो देवताओ म स प्रत्येक साथ ही मानो जगत को समूचे तौर पर प्रतिबिबित करता था। विष्णु के उपासको के लिए वह विश्व का रक्षक अथवा पालनकर्ता ही नही, वरन उसका सृष्टिकर्ता और सहारकर्ता भी था। इन तीनो कृत्यो को शिव द्वारा भी ग्रहण किया जा सकता था। हिंदू धर्म की इस विशेषता ने अनिवार्यरूपेण धार्मिक सहिष्णुता को पोषित किया और साथ ही इस परपरा के भीतर विभिन्न धार्मिक तथा दार्शनिक धाराओ के सहअस्तित्व को भी सभव और सुगम बनाया।

वैष्णव मत के साथ साथ शैव तथा शाक्त मतो ने भी बहुत लोकप्रियता प्राप्त की। ब्राह्मण साहित्य मे शिव वैदिक देवता रुद्र का समानार्थक है। लेकिन शिव और रुद्र का यह समीकरण बहुत बाद की मजिल म हुआ होगा। वास्तव मे यह ब्राह्मण धर्म मे एक स्थानीय देवता के समाविष्ट किये जाने का प्रश्न था, जिसकी उपासना प्रत्यक्षत इस उपमहाद्वीप के दक्षिणी भाग के निवासियो के धार्मिक विश्वासो के साथ उसी प्रकार जुडी हुई थी कि जिस प्रकार देश के उत्तरी भाग की आबादी के धामिक विश्वासो से नारायण विष्णु की पूजा जुडी हुई थी।

शिव की उपासना भावविभोरता और समाधि के साथ सबद्ध है। शिव श्मशानो मे नाचता है, शरीर पर भस्म मलता है और फूलो के हार के स्थान पर मुडमाला पहनता है। जब वह निर्धन सन्यासी के रूप मे धरती पर आता है तो मानव कपाल को भिक्षापात्र की तरह उपयोग म लाता है। उसकी वशभूषा के अन्य अग भी उसकी विकराल शक्ति और सामर्थ्य के द्योतक हैं- वह बाघबर पहनता है त्रिशूल, धनुष वाण और परशु धारण करता है। किंतु सहार उसके कार्यकलाप के दो रूपो मे से एक ही है। शिव वैराग्य का और बलि का देवता है वह दैनदिन जीवन मे मनुष्य का रक्षक भी है।

मगध, मौर्य तथा शुग कालो म शैव मत के प्रसार का प्रमाण पाणिनि पतजलि और मेगस्थनीज की कृतियो से पाया जा सकता है। पाणिनि अपने व्याकरण मे शिव के गणो के बारे मे लिखता है और पतजलि उसके सम्मानार्थ स्थापित शिवलिगो का उल्लेख करता है। मेगस्थनीज के "भारतीय डायनी सियस ' के उल्लेख स्पष्टत शिव से सबधित है। उसे पर्वतवासियो का प्रिय देवता बताया गया है (भारतीय जनश्रुति के गिरिपति से तुलना कीजिये) जो उसकी पूजा के लिए विशेष समारोह करते थे, जिनमे ढोल बजाये जाते थे और बलि दी जाती थी (बहुत कुछ शिवोपासना की तरह ही)।

शिव को कुषाण सिक्को पर अकसर अकित किया गया है। गणेश और स्कद उसके सदा के सगी हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वे पहले स्वय भी स्वतत्र दवता रहे होंगे। गणेश को जिसकी सकल्पना सभवत बहुत ही प्राचीन मूल की है यहा मनुष्य के शरीर और हाथी के सिर के साथ दिखलाया गया है (जैसा कि अब भी दर्शाया जाता है) और उसके पास ही उसका वाहन मूषक है। शैव देवकुल मे उसका समावेशन एक कृत्रिम समन्वय है, जो बहुत बाद म किया गया था।

शिवपुत्र स्कद को प्रेम के रहस्यो से अनभिज्ञ अकलुषित कुमार के रूप मे दर्शाया गया है, जिसकी कोई जननी नही है (पौराणिक परपरा के अनुसार स्कद को शिव ने स्वय माता के बिना उत्पन्न किया है)। वह शक्तिशाली दव सेना का नायक है और इसलिए राक्षसो के विरुद्ध उसके सघर्ष ने उसके जीवन से सबधित कथाओ म विशेषकर महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है। स्कद हिंदू परपरा के जटिलतम चरित्रो म एक है।

नारायण विष्णु और शिव के पौराणिक चरित्रो के आत्मसात किये जाने के बाद ब्राह्मण धर्म मे भारत भर मे प्रचलित मातृदेवी के नानासख्य और नानारूप पथो क अगीकरण का दौर आया। तात्विक रूप म इस प्रक्रिया का पुरुष देवताओ को उपास्य बनाने के साथ ही समारभ हो चुका था जिन्हे हिंदू धर्म ने उनकी अर्धांगिनियो – लक्ष्मी (विष्णु की पत्नी) और उमा अथवा पार्वती (शिव की पत्नी) – के साथ-साथ ही स्वीकार किया था।

हिंदू कर्मकाड और विधि विधान ब्राह्मण अथवा वैदिक कर्मकाड और विधि विधान से तत्वत भिन्न था। यह आरभिक मध्य युग मे उत्पन्न हुआ और आज तक सनातनी ब्राह्मण लगभग बिना किसी परिवर्तन के उसका पालन करते आये हैं। अधिकाश मामलो मे हिंदू धर्म ने बस पुराने देवताओ की समूचे भारत को अपनी परिधि मे लेनेवाले धर्म के नये उपास्यो से प्रतिस्थापना ही की। उदाहरण के लिए, प्रजापति को ब्रह्मा के और किसी सीमा तक नारायण के समान बना दिया गया।

लेकिन साथ ही कुछ मूलत नये तत्वो का समावेश भी किया गया। पुराने धर्म को उपासना के लिए अलग भवनो की आवश्यकता नही थी, न वह दवताओ के विभिन्न रूपो मे भौतिक प्रतीको से ही परिचित था। हिंदू धर्म ने इस नयी अवस्था मे अपने को सर्वोपरि उपासना के अन्य रूपो म अभिव्यक्त किया – मदिरो को देवगृह माना जाने लगा पुजारियो का कार्य अपने सरक्षको के कल्याण के लिए निरतर प्रार्थना करना ही रह गया, मूर्तिया सबद्ध देवता की वैयक्तिक उपस्थिति को प्रकट करने लगी – हर सुबह मूर्ति को विधिवत स्नान करवाया जाता था, उस पर सुवासित जल छिडका जाता था, सडको पर उसकी यात्रा निकाली जाती थी कि जिससे देवता अपने भक्तो को देखकर प्रसन्न हो और फिर उसे मदिर मे वापस ले जाया जाता था जहा उसका भजनो और गीतो से और नृत्यो से जिन्हे सामान्यत देवदासिया प्रस्तुत करती थी मनोरजन करवाया जाता था।

इस काल मे हिंदू वास्तुकला का भी तेजी से विकास हो रहा था –

मध्ययुगीन भारत क मदिर भारतीय कला के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि के परिचायक है।

भगवद्गीता

महाभारत मे भगवदगीता चाहे उसके भीष्मपर्व का एक छोटा सा प्रकरण मात्र है, किंतु भारत के धार्मिक जीवन मे उसका अपरिमित महत्व है। हिंदू धर्म के सभी प्रमुख विद्वानो ने गीता पर अपनी टीका लिखना या कम से कम उसमे प्रतिपादित शिक्षा के बारे मे अपने विचारो को प्रकट करना आवश्यक समझा है। यूरोपीयो का गीता से उसी समय परिचय हुआ कि जब भारतविद्या का उदय हो ही रहा था और इस प्रकार भारत मे इस विषय पर विद्यमान टीकाओ तथा भाष्यो के महासागर मे यूरोप मे रचित अनेक शास्त्रीय विवेचन भी सम्मिलित हो गये।

इस अनुपम कृति की विषयवस्तु को सक्षेप मे इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—महाकाव्य मे कौरवो तथा पाडवो के वैमनस्य के वणन म, जिसका अत कुरुक्षेत्र के महासमर मे होता है एक छोटा सा प्रकरण यह है कि पाडव बधुओ म से एक, अर्जुन अपने स्वजनो को भ्रातृघातक युद्ध मे उतरने के लिए तैयार खडा देख रणविमुख हो जाता है और अपने सारथी तथा शिक्षक कृष्ण से सलाह मागता है। कृष्ण उसे बताता है कि क्षत्रिय के कर्तव्य यह अपेक्षा करते हैं कि वह युद्ध करने से इन्कार नही कर सकता। अर्जुन कृष्ण की राय को सही मानकर स्वीकार कर लेता है और लडाई के मैदान मे उतर आता है। तथापि स्वय गीता मे महाभारत की मुख्य विषयवस्तु से सबद्ध घटनाओ का केवल आरभ म ही उल्लेख है। मुख्यत यह मनुष्य के लक्ष्य, नैतिकता के सार और लौकिक तथा पारलौकिक के सबधो के बारे म सवाद है। कृष्ण, जो इस महाकाव्य के अनेक चरित-नायको मे एक है, यहा भगवान के पार्थिव अवतार के रूप म प्रकट होता है। उसकी मत्रणा युद्ध के औचित्या नौचित्य क प्रश्न का कोरा उत्तर ही नही है वरन एक विलक्षण दार्शनिक प्रबोधन एक सपूर्ण धार्मिक तथा दार्शनिक सिद्धात है। गीता की विषयवस्तु का अत अर्जुन की ज्ञानप्राप्ति क साथ होता है वह अपने को मात्र योद्धा क्षत्रिय और कौरवो क विरोधी के रूप मे ही नही वरन एक नये पथ के उत्साही अनुगामी क रूप म देखता है जिसे भगवत् न स्वय कृष्णावतार लकर दीक्षित किया है।

इस काव्यात्मक कृति मे जिस शिक्षा का निरूपण किया गया हे उसने ऐसे ममय मे रूप लिया था कि जब उपनिपदो के ब्राह्मण अथवा वैदिक धम बौद्ध धर्म, जैन धर्म, आजीवक पथ, आदि जैमे अत्यधिक भिन्न-भिन्न धर्म और धार्मिक दार्शनिक सप्रदाय साथ साथ ही विद्यमान थे और जब दर्शन मे साख्य तथा योग जैसे पथो का उदय हो रहा था। इन धाराओ के साथ अयोन्यक्रिया करने और उनके कुछ मतो को आत्मसात करने के साथ-माथ गीता एक पूर्णत स्वतत्र और कई बातो मे मौलिक विचार ममष्टि का भी प्रतिनिधित्व करती है। यह एक प्रकार से पुरातन परपरा के ढाचे के भीतर वैदिक विचारो को सुधारने का एक प्रयास था ताकि भारी सामाजिक तथा आध्यात्मिक परिवर्तन की अवस्थाओ मे उसे सुदृढ किया जा सके। इसलिए गीता की शिक्षा के वास्तविक स्वरूप को उसकी उपनिपदो मे निरूपित विचारो और विभिन्न सुधारोन्मुखी धाराओ के विचारो से तुलना करके ही समझा जा सकता है।

पाठ विश्लेषण से यह सिद्ध हो गया है कि गीता का लेखन प्रारभिक उपनिपदो (सातवी पाचवी शताब्दी ई० पू०) के बाद और तथाकथित मध्य उपनिपदो (दूसरी शती ई० पू०–चौथी शती ई०) के समय के आसपास का है। यह सातत्य गीता के रचयिताओ ने जानबूझकर बनाये रखा है। यह अनेक मतसबधी सिद्धातो की समानता और समान शब्दावली के उपयोग मे ही नही, बल्कि लगभग शाब्दिक समानता मे भी प्रतिबिंबित होता है।

गीता के रचयिता साख्य तथा योग दशनो के प्रारभिक स्वरूपो की अपनी सुविज्ञता को छिपाते नही (गीता इन दर्शनो की उत्पत्ति के बारे म अमूल्य सामग्री प्रदान करती है)। गीता तथा प्रारभिक बौद्ध ग्रथो मे समान शब्दावली और दार्शनिक प्रस्थापनाओ के कितने ही उदाहरण मिलते है यद्यपि इन दोना शिक्षाओ का समग्र स्वरूप स्पष्टत बहुत भिन्न है। गीता मे समाविष्ट धार्मिक तथा दार्शनिक सिद्धात धार्मिक तथा दार्शनिक चितन की अन्य धाराओ की उपलब्धियो को ध्यान मे रखते हुए पुरोहितवर्ग के पारपरिक वैदिक सिद्धातो को नये युग की अपेक्षाओ के अनुरूप ढालने के प्रयासो का परिणाम है।

यह नया मत भी अन्य भारतीय धर्मो की ही भाति अपना मुख्य कार्यभार अपने अनुगामियो को मुक्ति के सर्वोच्च धामिक लक्ष्य की सिद्धि पर ले जान क पथो की खोज तथा निरूपण ही मानता है। *गीता का विशिष्ट लक्षण यह है* कि वह (उदाहरण के लिए उपनिपदो के विपरीत) मुक्ति लाभ करन क

मार्गों को स्वीकार ही नही करती, वरन तीन मार्गों – ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग तथा भक्तिमाग – का निरूपण भी करती है। गीता मे इसका कोई असन्दिग्ध सकेत नही है कि इन तीनो मार्गों मे से सबसे महत्वपूर्ण कौनसा है। उन्हे जिस क्रम मे प्रस्तुत किया गया है, उसके मूल मे यह कारण हो सकता है कि यह सारा ही काव्य जिस धार्मिक कारुण्य से ओतप्रोत है, वह भक्ति के प्रकरण म अपने चरम पर पहुच जाता है। यह तथ्य भी कम महत्वपूर्ण नही है कि गीता क रचयिताओ का भगवान कृष्ण की उपासना को सपुष्ट करने का सारा प्रयास भक्ति की धारणा से प्रत्यक्षत जुडा हुआ है।

ज्ञानमार्ग के प्रस्तुतीकरण मे जहा गीता की उपनिषदो से बहुत समानता है, वहा उसम कर्ममार्ग की धारणा पूर्णत मौलिक है। निष्काम कर्म की प्रस्थापना इस काव्य की एक आधारिक प्रस्थापना है, जो निर्वाण अथवा मोक्ष को ही मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य घोषित करनेवाले अन्य भारतीय धार्मिक तथा दार्शनिक सम्प्रदायो से गीता को एकदम अलग कर देती है। यह धारणा पूर्ववर्ती ग्रथो म नही पायी जाती है – इसे उत्तरवर्ती हिंदू धर्म द्वारा अगीकार किया गया था और भारत की आत्मिक परपरा मे गीता का योगदान माना जाता है।

यहा तपस्या पर आधारित शिक्षा की इस पारपरिक दुविधा कि मनुष्य को ससार मे रहना चाहिए या उसका त्याग कर देना चाहिए, के स्थान पर एक दूसरे ही प्रश्न को प्राथमिकता दी गयी है और वह है भक्तिमार्ग पर चलना चाहनेवाले के काय का स्वरूप। गीता इस प्रश्न का जो उत्तर देती है, वह अत्यधिक सरल है – मनुष्य जब निष्काम भाव से कर्म करता है, अर्थात जब वह कार्य को निरासक्त होकर किंतु अपना अनिवार्य कर्तव्य मानकर करता है, तो कार्य उसके लिए बधन नही रहता। जब व्यक्ति ऐसी निष्काम वृत्ति की सिद्धि कर लता है तो आत्मस्वार्थ का लोप हो जाता है, कार्य द्वारा कुछ भी अर्जित करने की लालसा जाती रहती है। इसके अलावा अपने विभिन्न कर्म करता हुआ ऐसा व्यक्ति किसी भी प्रकार अपने अह को जताने का आकाक्षी नही होता – वह अहकार से मुक्त हो जाता है।

दूसर शब्दो मे उपनिषदो म उद्घोषित व्यक्ति के सासारिक जीवन के बधनो तथा अहकार स मोक्ष पाने के आदश के अपने निरूपण म गीता इस आदर्श क लिए सर्वथा भिन्न सकल्पनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करती है। गीता की सारी विषयवस्तु तत्वत इस केद्रीय विचार का ही स्पष्टीकरण करती है।

गीता म भक्तिमार्ग को एक सिद्धात की तरह विकसित किया गया है।

निश्चायक अर्थो मे भक्ति का वर्णन ही इस काव्य की परिणति है – उपनिषदो मे निरूपित आत्मा की द्वैधवृत्ति तथा अहतत्व के परित्याग के आदर्श को कृष्ण की उपासना मे अभिव्यक्ति मिलती है जो मानवरूप देवता होने के साथ-साथ सार्विक परब्रह्म का प्रतीक भी है।

काव्य की अतर्वस्तु का सामाजिक पक्ष उसमे प्रतिपादित धार्मिक तथा दार्शनिक सिद्धात का ही अग है। ससार के अस्तित्व और परमसत्य की सिद्धि करने के मार्गो से सबद्ध प्रश्नो की व्याख्या मे अवैदिक मतो के कई विचारो और वैदिक (ब्राह्मण) धर्म के परिष्कृत रूप के प्रभाव को दर्शाने के साथ-साथ गीता वर्ण सगठन का जो नमूना प्रस्तुत करती है वह वैदिक काल की पुरातन धारणाओ के ही अनुरूप है। बल्कि और भी अधिक अनम्य तथा दृढ वर्ण व्यवस्था का आधार प्रदान करके वह इस दिशा मे और भी आगे चली जाती है जिसने उत्तरकालीन हिंदू धर्म द्वारा विहित शास्त्रसगत" जाति व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित किया।

तथापि गीता की अर्तवस्तु का यह विशुद्धत सामाजिक पक्ष" कई बातो मे भावी पीढियो के लिए प्रासगिक नही रह गया था। गीता को परिष्कृत ब्राह्मण धर्म की, और आगे चलकर सामान्य रूप मे हिंदू धर्म की विचारधारा की केंद्रीभूत अभिव्यक्ति माना जाने लगा। बडे-बडे विचारक भी गीता की अतर्वस्तु के इस या उस पक्ष पर जान-बूझकर जोर देते हुए अपनी निजी पूर्णत मौलिक धारणाओ के मूल को उसी से जोडने लगे। हाल के वर्षो मे भी इस काव्य मे विद्यमान विचारो का भाति भाति के सिद्धातो मे समावेश किया गया है, जिनमे से कुछ तो एक दूसरे के सर्वथा विरोधी है। बीसवी सदी मे बाल गगाधर तिलक, महात्मा गाधी और अरविद घोष (अरविद ने रहस्यवादी दार्शनिक नही राजनीतिक नेता के नाते) जैसे प्रमुख व्यक्तियो ने गीता के विचारो का सहारा लिया है। जवाहरलाल नेहरू ने गीता के विचारो के अध्ययन के महत्व पर जोर दिया है। इस प्रकार भगवद्गीता समस्त भारतीय सस्कृति का एक तात्विक अग उसके प्राचीनतम मूलो और बादवाली शताब्दियो के विकास को जोडनेवाली परपरा के सातत्य का शाश्वत प्रतीक बन गयी है।

प्राचीन भारतीय दर्शन

प्राचीन भारत मे दार्शनिक ज्ञान को बहुत महत्व दिया जाता था। कौटिल्य ने दर्शन को समस्त ज्ञान का दीप और विधि-विधान का स्तभ कहा है।

उपनिषदो मे ही हमे प्राचीन भारतीय दार्शनिक चितन मे कार्यशील दो मुख्य धाराओ – भौतिकवाद अथवा जडवाद और भाववाद अथवा प्रत्ययवाद – मे सघर्ष के पहले चिह्न दिखायी देने लगते है। ईसवी सवत की पहली शताब्दियो मे जब इन दार्शनिक सप्रदायो ने वस्तुत रूप ग्रहण किया, तो इस सघर्ष ने विशद कर स्पष्ट रूप ले लिया। भौतिकवादी अथवा जडवादी सप्रदाय (लोकायत अथवा चार्वाकपथ) ने अपनी अवधारणाओ के सुसगत और विस्तृत निरूपण प्रस्तुत किये। इस काल मे दर्शन के विकास को वैज्ञानिक ज्ञान मे जबरदस्त उपलब्धियो ने सभव बनाया था प्राचीन भारतीय समाज के ऐतिहासिक तथा सास्कृतिक विकास मे एक नये चरण ने उसका पथ प्रशस्त किया था।

प्राचीन भारतीय दशन का अध्ययन यह दिखलाता है कि प्राचीन भारतीय विचारको तथा प्राचीन यूनानी और रोमन विचारको द्वारा प्रस्तुत समस्याओ का दायरा एक जैसा ही था और एक दूसरे से स्वतत्र रूप मे वे उन्ही समाधानो पर पहुचे थे। कई मामलो म भारतीय दार्शनिको ने उन्हे पहले प्राप्त किया था।

प्राचीन भारतीय भौतिकवाद

भारतीय सस्कृति के इतिहास मे भौतिकवाद अथवा जडवाद का एक विशेष स्थान रहा है और उसन बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है।

भौतिकवादी परपरा अपने सबसे आमूलवादी रूप मे दार्शनिक अन्वेषण के क्षेत्र मे उत्पन्न हुई – इस प्रारभिक काल मे भी भारतीय भौतिकवादी परपरा का विशिष्टतासूचक लक्षण चितन को सैद्धातिक (धर्मसैद्धातिक) विधानो धार्मिक मताधता के पूर्वाग्रहो से मुक्त करने का प्रयास था।

लिखित स्रोत सामग्री ने भौतिकवादी दर्शन के अनेक सप्रदायो के नाम हमारे लिए बचाकर रखे है। इनमे सबसे प्रभावशाली सप्रदाय लोकायत था – यह उल्लेखनीय है कि इस दार्शनिक सप्रदाय को व्यक्त करने के लिए जिस शब्द का प्रयोग किया गया है, उसका अर्थ ही लोक (पार्थिव जगत) से जुडा हुआ अथवा लोक (लोगो) मे सबद्ध लोगो म पाया जानेवाला है और यह इस दर्शन के प्रत्ययवादविरोधी स्वरूप की ओर, प्राचीन भारतीय भौतिकवादियो के विचारो के उस समय के समाज के विभिन्न सस्तरो मे व्यापक प्रचार की ओर स्पष्टत इगित करता है। लोकायत (बाद मे भौतिकवादियो को अधिकतर चार्वाकपथी कहा जाने लगा किन्तु यह पारिभाषिक अतर किसी सुस्पष्ट सैद्धातिक अतर को प्रतिबिबित नही करता था) भौतिकवादी विचार

के विकास मे एक सर्वथा नये चरण का द्योतक था। लोकायत के उदगम का प्रश्न आज भी विवाद का विषय बना हुआ है – कभी-कभी इसे देशज आबादी के पुरातन विचारो के साथ जोडा जाता है और इसे इसमे तथा शास्त्रीय वैदिक परपरा म विरोध का कारण माना जा सकता है। वस्तुत इस मत के कुछ पहलू ऐसे प्रतीत हो सकते है कि जिनसे ऐसे ही निष्कर्ष निकाले जा सकते है, तथापि इस दार्शनिक पद्धति का समग्र स्वरूप उच्च स्तर के दार्शनिक चितन को प्रकट करता है और इसके मूलभूत सिद्धातो को किसी भी प्रकार आदिम विश्वास नही कहा जा सकता है।

लोकायत प्रत्यक्षत काफी पहले से ही व्यापक रूप मे प्रचलित था और देश के उत्तरी तथा दक्षिणी, दोनो ही भागो मे उसके अनुगामी थे। उपनिषदो मे भौतिकवादी धारा से जिसकी लोकायतिक विचारो मे काफी सामान्यता है, और बौद्ध तथा जैन ग्रथो मे स्वय इसके उल्लेखो से भी यही प्रतीत होता है। कौटिल्य लोकायत को उन तीन दार्शनिक मतो म से एक बताता है, जो उसके अनुसार कोई अतर्निहित महत्व रखते है। इस सप्रदाय के प्रतिनिधियो का अन्य प्राचीन भारतीय ग्रथो महाकाव्यो पतजलि के व्याकरण (महाभाष्य), हर्षचरित (जो हर्षवर्धन के राजकवि बाण भट्ट की कृति है) आदि मे उल्लेख मिलता है। प्राचीनकालीन भारतीय भौतिकवादियो की रचनाए नही बच पायी है और इसका कारण प्रत्यक्षत यही हो सकता है कि उन्हे उनके विरोधियो ने नष्ट कर दिया हो। तथापि प्रसिद्ध वेदाती दार्शनिक शकर की कृतियो मे और मध्वाचार्य, जयतभट्ट तथा जैन भाष्यकार हरिभद्र के सकलनो मे उनके ग्रथो का विस्तृत यद्यपि स्वोद्देश्यमूलक और प्रतिकूल विश्लेषण प्राप्य है। उत्तर मध्ययुगीन तमिल कृतिया भारत मे भौतिकवादी परपरा के मूल सिद्धातो का सक्षिप्त, कितु अत्यत सारगर्भित विवरण प्रस्तुत करती है। इन ग्रथो के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि इस जमाने मे दक्षिण भारत मे हिंदू परपरा का मुख्य विरोधी भौतिकवाद ही था।

इस प्रकार यहा हमारा भारत के सास्कृतिक इतिहास मे किसी सायोगिक घटना से साबिका नही पड रहा है, जैसा कि कुछ विद्वान विभिन्न अवसरो पर दर्शाने का प्रयास करते रहे है। इस सप्रदाय के विकास का सिलसिला कोई दो हजार साल तक चलता रहा और भौतिकवादियो तथा धर्माधारित दार्शनिक धाराओ के अनुगामियो मे निरतर शास्त्रार्थ का चलते रहना प्राचीन तथा मध्य युग मे भी इन दोनो – भौतिकवादी तथा प्रत्ययवादी – मुख्य दार्शनिक धाराओ म सघर्ष की प्रचडता का परिचायक है।

लोकायत मप्रदाय के विचारो के वारे मे सर्वप्रथम उल्लेख उपनिपन म मिलते है। इस सप्रदाय का मस्थापक बृहस्पति ऋपि को बताया जाता है और उपास्य होने के बावजूद, महाकाव्यो के अनुसार, बृहस्पति क बहुत मे काम ऐसे थे कि जो पुरातन परपरा मे मल नही खाते थे। एक रोचक दृप्टात यह है कि उपनिपदो मे बृहस्पति को एक ऐसे भ्रामक सिद्धात का प्रवर्तक बनाया गया है जिसका उद्देश्य असुरो को मत्य से विच्युत करके निर्बल करना था। यह कथा किसी प्राचीन भौतिकवादी कृति के उपलब्ध सशोधित रूप का ही प्रस्तुत करती है जिसे उसके सपादको ने विवादात्मक मोड द दिया है। कथा के अनुसार असुरो को यह विश्वास दिलाया जाता है कि समस्त सजीव सृष्टि का एकमात्र मारतत्व शरीर है और आत्मा भ्राति के अलावा और कुछ भी नहीं है।

महाभारत मे भौतिकवादी शिक्षा के अधिक विस्तृत उल्लेख मिलते हैं। रोचक बात यह है कि इन्हे ऐसे पूजनीय ऋपियो द्वारा मुखर किया गया है कि जिन्हे ब्राह्मण परपरा मान्यता देती है। महाभारत के बारहवे पर्व म मोक्षधर्म प्रकरण मे और बातो के साथ साथ भारद्वाज के विचारो का भी निरूपण किया गया है जो यहा लोकायतिक दार्शनिको के प्रत्यक्ष पूर्वगामी के रूप म सामने आता है। यहा वह बहुत ही सशयवादी स्वर मे आत्मा के मृत्योपरान्त जीवन का कर्मकाडीय विधियो के पालन और पुरोहितो को दान-दक्षिणा देने से प्राप्य माने जानेवाले मनोवाछित अगले जन्म ' का उल्लेख करता है। भारद्वाज उन श्रद्धालुओ की खिल्ली उडाता है जो ब्राह्मणो को गोदान करने क बाद उसके पुण्यफल से अगले जन्म मे सभी प्रकार के सुखो का वर पाने के सपने देखा करते है।

भारद्वाज आत्मा के आवागमन की धार्मिक धारणा के मुकाबले म प्रकृति मे कार्यशील नियमो के अनुसार एक स्वरूप के जीवन के दूसरे स्वरूप के जीवन मे सहज सक्रमण की भौतिकवादी धारणा को रखता है।

तर्कबुद्धिवादी और भौतिकवादी विचारो की दिशा मे इतना महत्वपूर्ण कदम वैज्ञानिक ज्ञान म, विशेपकर गणित भौतिकी तथा प्रकृतिविज्ञानो के क्षेत्र मे उल्लेखनीय प्रगति के बिना कल्पनीय भी नही हो सकता था।

तत्वो और चेतना के गठन मे उनकी भूमिका की सकल्पना ज्ञान के उन विशिष्ट क्षेत्रो मे उपलब्धियो के साथ जुडी हुई थी जो प्रकृति के भीतर कार्यशील प्रक्रियाओ का स्पप्टीकरण करने म सहायता देते हैं। भौतिकवादी इस पर निरतर जोर देते थे कि उनके अन्वेषण का विपय इद्रियो द्वारा गोचर

ममार है और जिम मत्व का विश्लेषण किया जा सकता है, केवल वही वैज्ञानिक निगमन का सार्थक विषय हो सकता है। व अलौकिक प्रपचो अथवा परिघटनाओं को अस्वीकार करत थ क्योंकि प्रयाग उनके बारे म कोई प्रमाण नही प्रदान कर सकता था।

लोकायत का प्रस्थान बिंदु यह सिद्धात था कि केवल प्रत्यक्ष (इद्रियो द्वारा ग्राह्य) ही प्रमाण (ममार क बार म वास्तविक ज्ञान का स्रोत) हो सकता है। साथ ही उसका कहना था कि आप्तपुरुषो के दावे श्रुतवचन और धार्मिक वचन अनुभव से प्राप्य विचारो म कोई वृद्धि नही कर सकत।

लोकायतिक विश्व का शाश्वत समझने थे और यह मानते थ कि उसके नियम तत्वो से निर्मित पदार्थो म होनवाले परिवर्तनो को नियमित करत है। उन्हे जीवन तथा विचार क उद्भव क प्रश्न की जटिलता का अहसास था और वे जीवन क उच्चतर स्वरूपो को निम्नतर स्वरूपो म परिणत करने का प्रयास नही करत थ। उनकी मान्यता थी कि चतना आधारिक तत्वो की असाधारणत नानारूप अभिव्यक्ति का परिणाम है।

लोकायतिक भारतीय प्रत्ययवादी चितको द्वारा सर्वत स्वीकृत कर्म सिद्धात का जिस तर्क से जवाब दत थ वह बहुत ही रोचक था। व पूछते थे कि यदि आत्मा मे एक शरीर म दूसरे म जान की क्षमता है तो आदमी को अपने पूर्वजन्मो का स्मरण क्यो नही होता या यदि व्यक्ति मृत्यु के बाद नये शरीर म फिर म जन्म लेता है, तो वह अपने सबधियो और प्रियजनो स अनुराग की खातिर अपने पूर्वरूप को फिर स प्राप्त करने की कोशिश क्यो नही करता ?

कर्म को अस्वीकार करके लोकायतिक केवल पुरातन परपरा ही नही, प्रत्युत अन्य सभी दार्शनिक तथा धार्मिक धाराओ को भी अस्वीकार कर रह थ। इस लिहाज से प्राचीन तथा मध्ययुगीन भारतीय चितन के इतिहास मे उनकी स्थिति अनुपम और अपूर्व है। उनके द्वारा प्रतिपादित विचारो की प्रगल्भता इस तथ्य के दृष्टिगत और भी आश्चर्यजनक है कि उनका मुख्य सिद्धात बहुत ही प्राचीन काल मे सामने रखा गया था।

भौतिकवादियों के नैतिक सिद्धात ही उनके विरोधियो को उनके मत के सबसे कमजोर पहलू प्रतीत होते थे। उन्होने लोकायतिको पर अमिताचार का, सासारिक सुखो से आसक्ति का अभियोग लगाया। यह मत उस काल के अनेक आधुनिक अध्ययनो तक मे पाया जाता है। वास्तव मे लोकायतिको के नैतिक विचार एकदम भिन्न थे। लोकायतिक मत का प्रतिपादन करनेवाले अधिकाश ग्रथो मे अनैतिकता अथवा अमिताचार का कोई आह्वान नही है

(इस बात के बावजूद कि इन ग्रथो को लोकायत का विरोध करनेवाला ने उसके खडनार्थ लिखा है)। उनके मत का सारतत्व धार्मिक नैतिक आदर्शो और मनुष्य म सुख अथवा हर्ष की किसी भी अभिव्यक्ति के प्रति उनके महागामी नकारात्मक दृष्टिकोण का अस्वीकरण है। इस पर जोर दना बहुत महत्वपूर्ण है कि लोकायतिको – चार्वाकपथियो – ने मनुष्य के आसपास क वास्तविक विश्व के प्रति स्वार्थपरक दृष्टिकोणो का कभी समयन नही किया। इसके विपरीत वे मनुष्य के सामान्य अस्तित्व को तभी सभव समझते थे कि जब उसका प्रकृति के साथ तादात्म्य हो। सयम को वे सबसे बडा गुण और व्यक्ति के ' सहज सुखवाद " को इस गुण द्वारा नियत्रणाधीन अथवा नियमनाधीन विषय मानते थे। प्राचीन यूनानी तथा रोमन दर्शन के विभिन्न सप्रदायो विशेषकर एपिक्यूरसवाद मे भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अतर्निहित था।

अभाग्यवश चार्वाकपथियो क सामाजिक विचारो के बारे मे बहुत कम जानकारी है। इसके दृष्टिगत भारद्वाज के कथन विशेषकर महत्वपूर्ण हो जाते है। वह वर्णो का विरोध करता है और यह मानना निराधार नही है कि लोकायतिक केवल दर्शन के क्षेत्र मे ही नही, वरन सामाजिक प्रश्नो के क्षेत्र म भी तर्कबुद्धिपरक परिवर्तनवाद के प्रति निष्ठावान बने रहे थे।

कुल मिलाकर दोनो – भौतिकवादी तथा प्रत्ययवादी – परपराओ के मूल सिद्धातो मे अतर इतने आधारभूत थे कि कोई भी पक्ष विरोधी पक्ष क सिद्धातो को अनदेखा करने का प्रयत्न नही करता था, बल्कि इसके विपरीत अपने पक्ष के लिए उनकी अस्वीकरणीयता पर जोर देने के वास्ते उन्हे अतिरजित ही करता था। भौतिकवादी वेदो व आप्त को ही नही बल्कि धार्मिक (वस्तुत गूढ) मोक्ष के आदर्श, आत्मा के आवागमन के विचार और कर्म सिद्धात को भी अस्वीकार करते थे। यह जिस प्रगल्भतापूर्ण दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करता था उसका स्पष्टतम अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि ब्राह्मणिक विचारधारा के प्रति अपने नकारात्मक नजरिये के बावजूद न तो जैन और न ही बौद्ध इनमे से किसी भी सिद्धात को चुनौती देन का साहस कर सके। इस अस्वीकरण से शुरू करने के बाद दूसरा कदम सभी प्रकार के कर्मकाड और किसी भी देवता (केवल वैदिक दवता ही नही) की उपासना का अस्वीकरण था। इससे भी महत्व की बात यह थी कि धार्मिकता के इन स्वरूपो की अब धार्मिक सत्य के अधिक विश्लेपणात्मक निरूपण की तुलना मे आद्य कहकर आलोचना नही की जाती थी बल्कि उन्हे पूरी तरह स अस्वीकार किया जाता था।

इन बातो के दृष्टिगत कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय भौतिकवादी अपने परिवर्तनवाद के प्रति सुसगत थे और दार्शनिक या सामाजिक किसी भी क्षेत्र मे पुरातन पूर्वाग्रहो से सघर्ष मोल लेने के लिए तत्पर रहते थे। शक्तिशाली विरोधियो के प्रतिरोध के बावजूद (वैदिक ब्राह्मणो का 'ग्रथो को सरक्षित रखने पर ही एकाधिकार नही था – भारत जैसे देश म ग्रथो की यदि नकल न की जाती रहती, तो जलवायु के कारण उनके शीघ्र ही नष्ट हो जाने की सभावना रहती थी – बल्कि वे सामाजिक शक्ति के उत्तोलको" को अपने नियत्रण मे बनाये रखने की भी कोशिश करते थे) भौतिकवादी परपरा कई सदियो तक कायम रही। भारतीय चितन की अन्य धाराओ पर उसका प्रभाव अपरिमित था। प्राचीन भारतीय भौतिकवादी चितन ने विश्व दर्शन के इतिहास मे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है – उसके सिद्धात और उसके अभिगमन का प्रागल्भ्य तथा गाभीर्य प्राचीन यूनानी-रोमन दार्शनिको की उपलब्धियो की टक्कर के ही नही थे, बल्कि कई बातो मे उनसे उच्चतर भी थे।

षड्दर्शन। साख्य

हिंदू धर्म मे सबधित दर्शन को परपरानुसार छ पद्धतियो (छ दर्शनो – षड्दर्शन) मे विभाजित किया जाता है। उनके धार्मिक सबध को निर्धारित करनेवाला उनका सामान्य लक्षण यह है कि वे वेदो को आप्त मानते है, कर्म सिद्धात का स्वीकार करते है और अतिम मुक्ति – मोक्ष – को मनुष्य के जीवन का मुख्य लक्ष्य मानते है। इन पद्धतियो मे काफी अतर है – उनमे समाविष्ट दार्शनिक सकल्पनाओ मे विभिन्नता है और वस्तुत बहुधा वे एक दूसरे की विरोधी तक भी है।

साख्य दर्शन का उदगम और स्वरूप एक जटिल प्रश्न है। इस दार्शनिक पद्धति के वास्तविक स्वरूप के बारे मे लगभग डेढ सौ साल से बहस चली आ रही है और इस विषय पर अत्यत विरोधी मत प्रकट किये जाते है – साख्य को कुछ लोग धार्मिक, रहस्यवादी सिद्धात कहते है, तो कुछ उसे भौतिकवादी मत बतलाते है। इस भिन्नता का सर्वोपरि कारण यह है कि अपने प्रतिष्ठित – क्लासिकी – रूप मे साख्य दार्शनिक द्वैतवाद की अभिव्यक्ति के रूप मे प्रकट होता है।

साख्य का उदय बहुत प्राचीन काल मे ही हो गया था। यह अधिकाश उपनिषदो से अधिक पहले का है और उस सुदूर अतीत के स्वतस्फूर्त भौतिक

वाद को उनकी अपेक्षा अधिक पूर्णतर अभिव्यक्ति प्रदान करता है। कौटिल्य ने जिन दर्शनो का उल्लेख किया है, वे साख्य, योग और लोकायत हैं। बादरायण के ब्रह्मसूत्र (दूसरी शती ई० पू० का एक प्रारभिक वेदात ग्रथ) म इसकी कुछ प्रस्थापनाओ की आलोचना की गयी है। मौर्य काल तक साख्य सभवत एक स्वतत्र दार्शनिक पद्धति बन चुका था और बौद्धिक जीवन म महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहा था।

परपरा के अनुसार कपिल ऋषि को साख्य का प्रवर्तक माना जाता है। श्वेताश्वतरोपनिपद् म एक भूरे ऋषि" (कपिल का अर्थ भूरा अथवा बादामी रग भी है) का उल्लेख आता है, किंतु यह निश्चित नही कि यही कपिल वास्तव म इस सप्रदाय का सस्थापक था। इसलिए विद्वानो म इस समस्या का अब यह मध्यमार्गीय समाधान ही सबसे अधिक स्वीकार्य है कि साख्य के विचारो को सबसे पहले निरूपित करनेवाले अथवा सबमे पहला म एक का नाम कपिल था, किंतु यह सिद्ध करना असभव है कि श्वताश्वतरोपनिपद मे उल्लिखित कपिल वही व्यक्ति है। उसकी और उसके शिष्या – आसुरि तथा पचशिख – की कृतिया बच नही पायी हैं, किंतु इसम कोई सन्देह नही कि ये तीनो लेखक वास्तविक व्यक्ति थे और काल्पनिक नही थे। आसुरि का महाकाव्यो मे कई बार उल्लेख आता है। ईश्वरकृष्णकृत साख्यकारिका म पचशिख का उल्लेख किया गया है जिसे इस ग्रथ के लेखक ने अपना पूर्वगामी कहा है।

ईश्वरकृष्ण की कृति मे जो चौथी पाचवी सदियो की प्रतीत होती है, साख्य दर्शन के मूल रूप को फिर से ढालकर प्रस्तुत किया गया है। कारिका के पाठ की साख्य के बारे मे पूर्ववर्ती ग्रथो मे (उदाहरण के लिए, बादरायण की कृति म) टिप्पणियो से तुलना करने से और बौद्ध ग्रथो से भी इस विचार की पुष्टि होती है। भारत मे बौद्ध धर्म से असबद्ध अधिकाश अन्य दार्शनिक ग्रथो के विपरीत साख्यकारिका का चीनी भाषा म अनुवाद किया गया था।

मूल साख्य सिद्धात की सुनिश्चित धारणा बना पाना बहुत कठिन है। इसमे बादरायण के ब्रह्मसूत्र मे बहुत सहायता मिलती है। आरभिक साख्य सिद्धात का विरोधी होने के बावजूद वह उसके उन विशिष्ट लक्षणो का सुसगत विवरण प्रस्तुत करता है जिनका वेदात तथा भारतीय दर्शन की अन्य सबद्ध धाराओ के विचारो के साथ, जो उपनिषदो की प्रत्ययवादी सकल्पनाओ का निरूपण करते थे टकराव था। ब्रह्मसूत्र का लेखक साख्य को प्रधानकारणवाद अथवा अचेतनकारणवाद कहता है। वह इस पर जोर देता

है कि ये दोनो ही सिद्धात वेदातियो के पूर्णत अमान्य हैं जो ब्रह्म अथवा शुद्ध चेतना को ही जगत का आदिकारण मानते हैं।

बादरायण ने साख्य दर्शन के सभवत साख्य के व्यापक प्रभाव और स्वय अपने विश्वासो के साथ उसकी सकल्पनात्मक असगति के कारण ही वेदात का मुख्य विरोधी माना है। वह यह समझता था कि अगर साख्य की प्रस्थापनाओ का खडन कर दिया जाय तो बिना किसी अपवाद के सभी भौतिकवादी सिद्धातो का आधार ध्वस्त हो जायेगा। इस मामले मे शकर उससे सहमत था। ब्रह्मसूत्र के साख्य विषयक विभिन्न खडो के अपने विस्तृत भाष्य मे शकर ने जोर देकर कहा है कि इस विशेष सिद्धात पर वेदातियो की विजय का मतलब उनकी अन्य सभी विरोधियो पर विजय होगा। शकर की दृष्टि मे प्रधान (प्रकृति अथवा मूलतत्व) को जगत का आदिकारण मानने का सिद्धात सभी प्रकार के परमाणुवादी विचारो के लिए साविक सैद्धातिक आधार प्रदान करता है। कई ग्रथो मे (जिनमे पुरातन ब्राह्मणपथी विचारो का प्राधान्य था) साख्य का कोई भी उल्लेख नही पाया जाता है, किंतु उनकी साख्य तथा लोकायत मे से किसी भी सिद्धात का उल्लेख करने की स्पष्ट अनिच्छा का कारण यही हो सकता है कि इन दोनो सिद्धातो को एक दूसरे से घनिष्ठत सबद्ध माना जाता था। साख्य सप्रदाय का मुख्य पक्ष यह अभिवचन है कि जगत का भौतिक आदिकारण – प्रकृति अथवा प्रधान – काल के आरभ से ही विद्यमान है और अपने से इतर किसी भी कारक से प्रभावित नही होता है। प्रकृति शब्द का अर्थ साख्य ग्रथो के सदर्भ मे सामान्यत प्रकृति ही लगाया जाता है। तथापि कई विद्वानो ने प्रत्यायक ढग से यह दर्शाया है कि इसका अर्थ भूत (पदार्थ) लगाना अधिक यथार्थ होगा, क्योकि ग्रथो मे मूलप्रकृति शब्द का प्रयोग प्रकृति के समतुल्य ही किया गया है, जो सत्ता अथवा सत्व के सभी रूपो के आदि स्रोत के नाते प्रकृति की सार्विकता पर बल देता है।

सत्व के दो रूप है – व्यक्त और अव्यक्त। उपनिषदो से अगीकृत इन सकल्पनाओ का साख्य मे अर्थ बदल जाता है। जहा उपनिषदो मे व्यक्त के, अर्थात इद्रियगोचर विश्व के मुकाबले मे जो दार्शनिक दृष्टि से अवास्तविक है, अव्यक्त (अर्थात जो इद्रियो को अगोचर है, किंतु जो एकमात्र वास्तविकता – ब्रह्म – को प्रकट करता है) को रखा जाता है, वहा साख्य मे भूत के दो समान रूप मे वास्तविक स्वरूप बताये जाते हैं – व्यक्त (प्रकृति) को ठोस, स्वत गोचर वस्तुओ की समग्रता के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है और ससार

की भौतिकता के स्वय आधार को ही प्रतिबिंबित करनेवाले अव्यक्त का वस्तु म समान मात्रा म विद्यमान माना जाता है। अव्यक्त सभी सभव स्वरूपा का सभाव्य आधान है। ससार की सृष्टि की प्रक्रिया इस "आद्य साक्ल्य" क कई भौतिक स्वरूपो म विखडन मे ही अभिव्यक्ति पाती है, जिनकी आदिकारण मे उससे अधिक भिन्नता नही होती, जितनी कि मिट्टी के बरतनो की उस मिट्टी के कणो स होती है जिसके वे बने हुए होते है।

लेकिन ससार के बनने और उसके बाद मे परिवर्तनो की प्रक्रियाए कैस चलती है? साख्य इस प्रश्न का जो उत्तर प्रस्तुत करता है, उसे समझन क लिए हमे इस सप्रदाय के दार्शनिको द्वारा निरूपित कार्य कारण सिद्धात पर विचार करना होगा, जो सत्कार्यवाद (कार्य की कारण म उपस्थिति, जा उस कार्य को जन्म देता है का सिद्धात) के नाम से विख्यात हुआ। उनक अनुसार, यदि कारण मे कार्य उपस्थित नही होगा, तो उसकी उत्पत्ति शून्य स मानी जायेगी, अर्थात प्रत्येक नयी परिघटना को किसी अलौकिक अथवा अतिप्राकृतिक हस्तक्षेप की आवश्यकता होगी। वस्तुत कोई भी विशेष कार्य एक विशिष्ट आदिकारण से ही उत्पन्न हो सकता है – दही दूध से उत्पन्न होता है, कपडा सूत से उत्पन्न होता है आदि-आदि। इसके अलावा उत्पन्न होनेवाली प्रत्येक नयी वस्तु उसे उत्पन्न करनेवाले कारण के साथ सबध बनाये रखती है – मेज का भार उसे बनाने मे प्रयुक्त लकडी के भार के बराबर होता है, सुराही का भार उसके बनाने मे लगी मिट्टी के भार के बराबर होता है। तथापि कारण म कार्य की उपस्थिति को स्वीकारने मात्र का मतलब यह होगा कि ससार स्थिर और गतिहीन है परिवर्तनक्षम नही है और सभी कार्यो को अपने को तुरत और एकसाथ अभिव्यक्त करना होगा। साख्य मत के आचार्यो ने यह स्पष्ट किया कि कार्य कारण मे सभाव्य रूप मे अतर्निहित रूप मे विद्यमान रहता है और उसकी सिद्धि करने के लिए अनेक ठोस अवस्थाए अपेक्षित होती है। कारण का काय मे वास्तविक सक्रमण बहुत सी आनुषगिक परिस्थितियो के माध्यम से होता है और उनम ही कारण मे सन्निहित सभावनाओ को प्रकट करने की क्षमता होती है।

विभिन्न सप्रदायो की दार्शनिक कृतियो के मध्ययुगीन सकलन मध्वाचार्य के 'सर्वदर्शनसग्रह मे भारत मे प्राचीन काल तथा मध्य युग मे निरूपित दो कार्य कारण सिद्धातो का उल्लेख किया गया है – परिणामवाद (कारण के कार्य मे रूपातरण की वास्तविकता का सिद्धात) और विवर्तवाद (कार्य के मिथ्या – भ्रात – स्वरूप का सिद्धात)। पहला सिद्धात साख्य से सबद्ध किया

जाता है और दूसरा वेदात मे। इन सिद्धातो को सामान्यत कारण तथा कार्य क बीच सबध के स्वरूप विषयक प्रश्न के दो उत्तरो की सना दी जाती है। यहा भी साख्य दार्शनिको ने एक परिघटना समूह के दूसरे म रूपातरण को भौतिक आधारयुक्त वास्तविक प्रक्रिया मानते हुए भौतिकवादी अभिगमन का समर्थन किया है। इसके विपरीत वेदातियो न इस प्रश्न के बारे मे प्रत्ययवादी दृष्टिकोण अपनाया है क्योकि वे केवल ब्रह्म को ही वस्तुत विद्यमान मानते थे और वस्तुओ तथा उनके रूपातरणो को व भ्राति (मिथ्या) से अधिक कुछ नही मानत थे। साख्य की एक और आधारशिला उसका विकास का सिद्धात था, जिसमे पदार्थ (तत्व) के मूलत एक अभिन्न अव्यक्त रूप म अस्तित्वमान होने की सकल्पना प्रस्तुत की गयी है। उसका हमारी इद्रियो को ग्राह्य वस्तुओ तथा जीवो के जगत मे रूपातरण तीन गुणा (त्रिगुण) क जरिये होता है, जिनक सयोग विश्व की गति और विकास को निर्धारित करत हैं। इन गुणो के नाम ही उनकी प्रवृति को प्रतिबिबित करत है – सत्व रज और तम। इनमे से सबसे महत्वपूर्ण रज (रजोगुण) म ऊर्जा तथा सक्रियता के तत्व तम (तमोगुण) मे जडत्व के और सत्व मे चेतना समचित्तता तथा प्रशाति के तत्व सन्निहित है। इन त्रिगुणो का उल्लेख उपनिषदो मे भी मिलता है, किंतु साख्य मे इनकी सकल्पना को मूलत नया अर्थ प्रदान कर दिया जाता है। ये गुण साख्य के मुख्य सिद्धात – जगत के आदिकारण के भौतिक स्वरूप – से सबद्ध है। गुण को सूत्र (धागा लड) माना जाता है। एक ही शब्द मे दो भिन्न सकल्पनाओ (सूत्र तथा गुण) के सम्मिलन न उन लक्षणाओ अथवा रूपको को जन्म दिया, जिनका साख्य के प्रवर्तको द्वारा पहले से ही परिचित गुण सिद्धात की व्याख्या करने मे उपयोग किया गया है। प्रकृति की तीन गुणो (लडो) से बटी रस्सी से तुलना की गयी है। उनका कहना था कि किसी भी वस्तु मे तीनो गुण अनिवार्यत साथ साथ ही समाविष्ट रहते है और पदार्थ अपने को जिस प्रकार व्यक्त करता है उसके अनुसार इन तीनो सघटको के अनुपात बदलते रहते है।

'' प्रारभिक '' और प्रतिष्ठित (क्लासिकी) साख्य मे अतर के बारे म केवल अनुमान ही लगाये जा सकते है फिर भी उपलब्ध साक्ष्य स यही प्रतीत होता है कि प्रारभिक साख्य मे उसका भौतिकवादी पक्ष विशेषकर सुविकसित था। तथापि साख्य को समूचे तौर पर भौतिकवादी घोषित कर देना भोडा सामान्यीकरण करना होगा। इस दर्शन मे अतर्निहित द्वैत ईश्वरकृष्ण की कृति मे विशेष स्पष्टता के साथ सामने आता है।

यहा हम प्रकृति जो ससार को सृजती और रूप देती है और पुरुष (शुद्ध आत्मा अथवा चेतना) जो प्रकृति से स्वतंत्र है, दोनो को ही पाते है। यह माना जा सकता है कि साख्य मे प्रस्तुत पुरुष का उपनिषदो मे लिया गया है।

पुरुष कर्मण्य नही है, उसका सारतत्व ध्यान–चिंतन–है। वह सभी वस्तुओ मे विद्यमान है और वे पुरुष की विद्यमानता की बदौलत ही अस्तित्व मे आती है। वह दुर्ग्राह्य और सनातनातीत है, फिर भी वह प्रत्येक भौतिक वस्तु मे –नगण्यतम तक मे–विद्यमान है। पुरुष तथा प्रकृति के सयोग से पचास तत्वो अथवा पदार्थों अर्थात अस्तित्व के आद्य रूपो, का उदय होता है, जिनमे–साख्य के अनुसार–शुद्धत आत्मिक (यथा प्रज्ञा) और पूर्णत भौतिक (जल पृथ्वी, वायु आदि) पदार्थ भी सम्मिलित हैं। साख्य के द्वैत ने प्रकृति की स्वतंत्र गति' के लगभग भौतिकवादी विचार का धार्मिक मोक्ष के आदर्श के साथ जो उपनिषदो की पुरातन परपरा के साथ पूर्णत सगत है सयोग करने के प्रयास मे भी अपने को प्रकट किया (गति की प्रत्येक अभिव्यक्ति मे पुरुष की उपस्थिति सन्निहित है)। साख्य आख्यापित करता है कि वस्तुओ की प्राकृतिक गति का बोध करने के बाद ही मनुष्य अचर अपरिवर्तनशील आत्मा की परिवर्तनशील, अस्थिर प्रकृति पर श्रेष्ठता की समझ प्राप्त कर सकता है। यह विचार मनुष्य को आत्मचिंतन और ध्यान की ओर ले जाता है।

प्रकृति और पुरुष के साथ साथ अस्तित्व की व्याख्या करने के प्रयास मे ईश्वरकृष्ण एक लक्षणा का प्रयोग करता है–प्रकृति अधे, लेकिन चलने फिरने मे समर्थ आदमी जैसी है और पुरुष आखोवाले, मगर लूले लगडे आदमी जैसा। प्रतिष्ठित' साख्य के प्रतिपादको ने इस प्रकार प्रकृति के अस्तित्व की पुरानी भौतिकवादी सकल्पना का इस ज्ञात विचार के साथ मेल बिठाने का प्रयास किया कि प्रकृति के साथ साथ कोई आध्यात्मिक पदार्थ भी विद्यमान है।

साख्य का अर्थशास्त्र, ब्रह्मसूत्र महाकाव्यो, चरकसहिता और मनुस्मृति मे उल्लेख किया जाना यह दिखलाता है कि ईसवी सवत के प्रारभिक वर्षों मे यह दर्शन व्यापक रूप मे प्रचलित हो चुका था।

साख्य ने लौकिक सस्कृति के साथ-साथ विभिन्न धार्मिक आदोलनो पर भी जबरदस्त प्रभाव डाला। इसके भौतिकवादी तत्व को धीरे धीरे इससे निकाल दिया गया, तथापि इसका केंद्रीय विचार स्पष्टत प्रकट होता ही रहा और वह था किसी भी सर्वोच्च परम (ब्रह्म) का अस्वीकरण और किसी भी विशिष्ट मानवरूप देवता के विचार से पूर्ण इन्कार।

पहले पहल साख्य म ही प्रतिपादित क्रमिक आत्मविकासक्षम आद्य प्रकृति का विचार प्राचीन काल तथा मध्य युग म अखिल भारतीय भौतिकवादी परपरा के उदय मे एक महत्वपूर्ण योगदान का द्योतक था।

योग

दर्शनो मे योग को एक विशेष स्थान प्राप्त है। सामान्यत इस शब्द का अर्थ व्यक्ति को समाधिवत अवस्था म डालने के उद्देश्य से अथवा बस शरीर की निहित शारीरिक क्षमताओ को विकसित करन और व्यक्ति के अपनी मानसिक अवस्था पर नियत्रण (उन्नीमवी शताब्दी मे यूरोप मे इस शब्द को इमी अर्थ मे ग्रहण किया गया था) को बढाने की ओर लक्षित एक व्यायाम पद्धति समझा जाता है। किंतु वास्तव म योग अपने ही अति मौलिक तत्वो से युक्त एक सुविकसित दार्शनिक पद्धति है।

प्रतिष्ठित योग के प्रारभ को पतजलि के 'योगसूत्र के समय का माना जाता है, जिसमे इसकी सभी आधारिक प्रस्थापनाए विद्यमान है। इन प्रस्थापनाओ को बाद म बहुत से ग्रथो मे और विकसित किया गया उदाहरण के लिए योगसूत्र पर व्यास की टीका व्यासभाष्य (चौथी शताब्दी) और वाचस्पति द्वारा रचित तत्ववैशारदी (नवी शताब्दी) मे। उन्होने योग की पारिभाषिक शब्दावली को निरूपित किया और 'योगसूत्र क कुछेक अशो के समझने के लिए महत्वपूर्ण सूचना उपलब्ध की।

भारतीय परपरा मे साख्य तथा योग को एक दूसर का अनुपूरक माना जाता है। साख्य की अनेक प्रस्थापनाओ (यथा द्वैतवाद पचीस तत्वो का सिद्धात आदि) को योग भी स्वीकार करता हे। फिर भी योग सप्रदाय के दार्शनिक इन प्रस्थापनाओ को अपन सिद्धात का मात्र गौण पक्ष ही समझते थे और उन्होन अपना मुख्य ध्यान मनोविज्ञान (आधुनिक अर्थो म), ज्ञानमीमासा और शरीर पर मनोदैहिक नियत्रण प्राप्त करन की व्यावहारिक विधियो पर केंद्रित किया। इसके अलावा साख्य के विपरीत योग सप्रदाय ने अपने दर्शन को ईश्वरवादी घोषित किया।

मनोवैज्ञानिक कोटियो के निर्वचन को भारतीय दर्शन के इतिहास मे योग सप्रदाय का सबसे महत्वपूर्ण अशदान माना जाता है। इनम सबस मुख्य चित्त (मन अथवा मानस, बल्कि मनुष्य के मानसिक कार्यकलाप के सभी सभाव्य रूपो की समष्टि) है। पतजलि के अनुसार चित्त एक इद्रियानुभविक तथ्य है,

यद्यपि यह व्यक्ति की विशिष्ट अवस्थाओं व सामान्य पुनरावर्तन से अधिक को अभिव्यक्त करता है। यह माना जाता है कि चित्त की आतरिक प्रकृति अपरिवर्तित रहती है और व्यक्ति के मानस की सभी अभिव्यक्तियां स्पान्तरणों के अलावा और कुछ नहीं होती। चित्त भौतिक विश्व के अस्तित्व के वास्तविक नियमों के अनुसार कार्य करता और अस्तित्वमान रहता है। तथापि मनुष्य की प्रत्यक्ष प्रेक्षण से ग्राह्य अवस्थाओं को उसका विकृत विकास, उसका अपने मूल सत्व मे विचलन समझा जाता है। व्यवहार मे अभिव्यक्त मानसिक अवस्थाओं को 'क्लेश' कहा जाता है – यह माना जाता है कि इन क्लेशों से मुक्ति ही चित्त के भाव (होने) की मूल तथा अवर्णनीय शर्त है।

पतंजलि पांच क्लेशों का उल्लेख करता है। उसकी सूची का स्वरूप और उसका क्रम इस पद्धति का समग्ररूपेण खासा स्पष्ट चित्र प्रदान करते हैं। इस सूची का आरंभ अविद्या से होता है, जिसकी अभिव्यक्ति मनुष्य की चर को अचर और अनित्य को नित्य मानने मे होती है। यहां उपनिषदों के प्रत्ययवाद के मुख्य तत्व को व्यक्ति के मनोविज्ञान के क्षेत्र मे स्थानांतरित कर दिया गया है – बाह्य वस्तुओं का दृश्य बाहुल्य और भौतिक स्वरूप भ्रांत (मिथ्या) है और जो केवल एकल, एकीकृत तथा अगोचर है, वही वास्तविक है। दूसरा क्लेश अस्मिता है, जो अहं का मनुष्य के भौतिक शरीर और उसके वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक लक्षणों से समीकरण है। यह भी उपनिषदों मे प्राप्य प्रवृत्ति को ही प्रतिबिंबित करता है – ब्रह्मात्मा का व्यक्ति के ठोस अहं के मुकाबले मे रखा जाना। तीसरा क्लेश राग है – सासारिक सुखों की लालसा। चौथा क्लेश द्वेष है, जो सुख के रास्ते मे आनेवाली सभी बाधाओं के लिए घृणा को व्यक्त करता है। क्लेशों की सूची मे अंतिम अभिनिवेश – सहज जिजीविषा और मृत्यु भय – है।

पतंजलि की कृति मे निरूपित ज्ञानमीमांसा मे भी कितने ही भौतिक विचार हैं। बाह्य विश्व अथवा वस्तुजगत के संपर्क मे आने पर (योगसूत्र के अनुसार विषयनिष्ठ वास्तविकता मनुष्य के बाहर भी विद्यमान होती है – यहां सांख्य का प्रभाव अपने को अनुभूत कराता प्रतीत होता है, केवल मोक्ष से ही अस्तित्व तथा प्रकृति का और विषयनिष्ठ वास्तविकता से त्रस्त अहं का एकसाथ अंत होता है) चित्त उसका सज्ञान करने के अपने साधन विकसित करता है। योग संप्रदाय के दार्शनिक वस्तुओं तथा परिघटनाओं मे समानताओं तथा भेदों को पारिभाषित करने के सिद्धांतों का विस्तारपूर्वक निरूपण करते हैं। मानव चेतना की तार्किक क्रिया भौतिक परिघटनाओं के विकास के पहले

प्रारभिक साम्यानुमानो और वाद म अधिक जटिल स्वरूपो को स्थापित करना सभव वना देती है।

पतजलि और उसके अनुयायी मोक्ष की प्राप्ति क लिए चित्तवृत्तियो को निरद्ध करने के तथाकथित अप्टाग मार्ग अथवा योगागो को आधारभूत महत्व दते है। सभी योग विपयक ग्रथो का अधिकाश इसी के वर्णन से परिपूर्ण है कि किन विधियो से इन सिद्धि साधनो मे पारगति पाने मे सहायता मिल सकती है।

योग के दार्शनिक सिद्धात की परिणति विश्व को शासित करनेवाले ईश्वर के वर्णन मे पायी जाती है। ईश्वर सभी पूर्णताओ मे युक्त है और परमफल की सिद्धि म सहायता देता है। लेकिन यह उल्लेखनीय है कि पतजलि की कृति म ईश्वर का कम ही उल्लेख है और जिन अशो मे उल्लेख आता भी है, व ग्रथ के अभिन्न अग होने क स्थान पर एक प्रकार से अलग ही प्रतीत होते है। प्रारभिक योग म जो साख्य के सृष्टि कारण विचारो को मानता था, विशिष्टीकृत ईश्वर की कारगुजारी के लिए लगभग कोई गुजाइश नही थी। कई अशो मे तो यह तक कहा गया है कि ईश्वर धार्मिक अनुराग के विषय से अधिक कुछ भी नही है और उसका कोई सत्तामीमासीय महत्व नही है। तथापि यह ध्यान मे रखना चाहिए कि इस दर्शन के अनुगामी विशिष्टीकृत ईश्वर को मानते थे जिससे उनके विचार पुरातन परपरा और हिंदू मत के व्यावहारिक पक्षो के अधिक समान हो जाते है।

समूचे तौर पर इस मौलिक दार्शनिक पद्धति का अध्ययन प्राचीन भारतीय दार्शनिक चितन की विभिन्न धाराओ मे अन्योन्यसबधो के जटिल विकास का अधिक कारगर ढग से स्पष्टीकरण करना सभव बनाता है। साथ ही यह पद्धति दर्शन तथा विज्ञान की कुछ शाखाओ की उपलब्धियो मे घनिष्ठ सबध को भी प्रकट करती है—शरीररचना, शरीरक्रिया और मनोविज्ञान के क्षेत्रो मे प्रगति के विना अप्टाग योग हरगिज अस्तित्व मे नहीं आ सकता था।

न्याय तथा वैशेषिक दर्शन

ये दोनो दार्शनिक पद्धतिया, जो ईसवी सवत के आरभ मे उदित हुई थी और गुप्त काल तक निश्चित रूप ग्रहण कर चुकी थी आपस मे घनिष्ठ रूप मे जुडी हुई थी और यह कोई सायोगिक बात ही नही थी। दोनो ही दर्शन प्राकृतिक परिघटनाओ के प्रति तर्कबुद्धिपरक दृष्टिकोण रखते थे, यद्यपि

इनमे प्रथमोक्त ने ज्ञानमीमासा की समस्याओ की ओर विशेष ध्यान दिया और सज्ञान के साधन – तर्क (भारतीय दर्शन मे आगे चलकर 'न्याय' शब्द तर्कशास्त्र को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हुआ है) – का अपना केंद्र बिंदु बनाया, जब कि अतोक्त ने सत्व तथा सत्व के सरचक तत्वो की ओर अधिक ध्यान दिया। इन धाराओ के चितक आपस मे शास्त्रीय विवाद मे कभी नही उलझे – न्याय के अनुगामियो ने वैशेपिक की तत्वमीमासा को स्वीकार किया क्योकि उसे वे अपनी ज्ञानमीमासा का ही स्वाभाविक मातत्य मानते थे।

प्रारभिक वैशेपिक पद्धति भारतीय तर्कबुद्धिवादी परपरा का अभिन्न अग थी। किंतु लोकायत से वह इस हद तक भिन्न है कि बाद मे उसने प्रत्ययवाद और ईश्वरवाद को बहुत सी विशिष्टीकृत तथा अत्यत महत्वपूर्ण रिआयते देना स्वीकार कर लिया।

वैशेपिक नाम ही इस दर्शन के सारतत्व को प्रकट कर देता है और वह है सामान्य तथा विशेष अथवा विशिष्ट का सहसबध। इसके अनुगामी सामान्य तथा मूर्त को सत्व की व्याख्या करने की एकल पद्धति के सघटक मानते थे, साथ ही विशेष को तत्काल गोचर और सामान्य को मनुष्य के तर्क (विवेक) द्वारा परिक्रमित प्रथमोक्त विषयक सूचना की समग्रता का परिणाम माना जाता था। मतलब यह कि वैशेपिक का सबसे मुख्य प्रश्न यह था कि विविध और सामान्य – अनेक – मे सयोग कैसे किया जाये, वस्तुत गोचर से सत्व की समग्ररूपेण व्याख्या करने की साधक सामान्यकारी कोटियो मे सक्रमण कैसे किया जाये। वैशेपिक द्वारा प्रस्तुत समाधान सदा ही विज्ञानसम्मत नही प्रतीत होते किंतु उस सुदूर अतीत में भी इन अन्वेषणो के भौतिकवादी आधार के बारे मे कोई सदेह नही किया जा सकता।

वैशेपिक के प्रवर्तक कणाद (पहली शताब्दी) के अनुसार जगत की उत्पत्ति परमाणुओ की अत क्रिया से होती है, जो किसी के द्वारा भी नहीं बनाये जाते वरन शाश्वत और अविनाश्य होते है। वैशेपिक का यह कणाद विचार उसके ईश्वरवादी माने जाने को असभव बना देता है चाहे आगे चलकर कणाद के भाष्यकारो ने उसकी कृतियो मे ईश्वर के अस्तित्व की स्वीकारोक्ति को और प्रकृति मे कार्यशील नियमित प्रक्रियाओं मे ईश्वर के हस्तक्षेप की मान्यता को खोजने की कितनी भी कोशिश क्यो न की हो। परमाणु चार समूहो मे विभाजित हैं, चार तत्वो के गुणो से युक्त हैं और विभिन्न सयोगो मे उनकी सहलग्नता से सभी जड पदार्थों और प्राणियो का

उत्पत्ति होती है। इस प्रसग मे कणाद ने धर्म शब्द का प्रयोग किया है किंतु नैतिक अथवा धार्मिक विधानो मे सबद्ध कोटि के अर्थ मे नही वरन प्राकृतिक विकास के नियमो तथा कारण-कार्य सबधो के सबसे सामान्य अभिधान के अर्थ मे। कणाद का प्रारभ बिंदु पारपरिक चक्रावर्त सृष्टि का सिद्धात (जगत उत्पन्न होता है विकास करता है और फिर प्रलय मे नष्ट हो जाता है जिसके बाद यही प्रक्रिया फिर शुरू होती है) ही ह किंतु वह उसे प्रकृतिशास्त्रीय अर्थ प्रदान कर देता है – विश्व विध्वस के समय परमाणु विलुप्त नही हो जाते होता बस यह है कि उनकी वह सहलग्नता भग हो जाती है जो मनुष्य द्वारा अनुभूत परिघटनाओ को जन्म देती है। विश्व का पुनर्जन्म परमाणुओ के बारबार सहलग्न होने के परिणामस्वरूप और किसी भी प्रकार के ईश्वरीय हस्तक्षेप के बिना होता है।

पारपरिक धार्मिक-दार्शनिक धाराओ के प्रतिनिधियो के दावो के विपरीत कणाद घोषणा करता है कि प्रकृति मे कार्यशील प्रक्रियाए अलौकिक जीवो के कार्यो से किसी भी प्रकार सबधित नही हैं। बेशक वह ईश्वर के विचार को वास्तव मे कभी पूर्णत नही अस्वीकारता तथापि प्रत्ययवादी सिद्धातो के समर्थक विद्वानो को भी कहना पडा है कि इसे धार्मिक परपरा की प्रस्थापनाओ के साथ "दिखावटी समझौता ही समझना चाहिए। वास्तविकता यह है कि इस असाधारण चितक द्वारा निरूपित पद्धति का अतरस्थ तर्क ही उसे अनीश्वरवादी बना देता है क्योकि वह ईश्वर का जगदस्रष्टा होना अस्वीकारता है।

कणाद के दर्शन के मुख्य सिद्धातो मे एक द्रव्य का सिद्धात है। यह परमाणुओ की प्रारभिक सहलग्नता से शुरू करके प्रकृति के विकास के परिणाम के रूप म उदित विश्व के अस्तित्व के इस या उस पक्ष को व्यक्त करता है। इस कोटि का प्रवर्तन उस प्राचीन काल तथा मध्य युग मे भी अत्यत अर्थगर्भित था, क्योंकि यह इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करने के प्रयास का परिचायक था कि किन क्रियाविधियो के जरिये सामान्य का जटिल मे रूपातरण और जगत मे कार्यशील प्रक्रियाओ का नियमन होता है। द्रव्य सभी कुछ से स्वतत्र एक वास्तविक तथ्य है, जो अन्य द्रव्यो तथा पृथक वस्तुओ (किसी विशेष द्रव्य अथवा कुछेक द्रव्यो के सयोग के गौण परिणाम) पर क्रिया करता है और अविनाश्य है – 'वह कारण या कार्य से नष्ट नही होता ' कणाद लिखता है, ' द्रव्य की इस प्रकार परिभाषा की जा सकती है – वह क्रियाक्षम होता है और गुण युक्त होता है तथा कारण मे अतर्निहित होता है।" वह आगे कहता है द्रव्य वस्तुओ, गुणो तथा कार्यो का सामान्य कारण है, अर्थात उसका मूल अपने

अलावा और कही नही होता (अथवा अधिक सटीक शब्दो म, अपन सरल परमाणुओ के सयोगो के अलावा), स्वत गति कर सकता है और इसलिए कार्यो को जन्म दे सकता है, अनेक द्रव्यो की सक्रियता से जनित उनकी समग्रता ही जगत है।

प्रारंभिक वैशेपिक कृतिया परमात्मा के विचार की उपेक्षा करती हैं और केवल आत्मा के विचार को ही मान्यता देती है। बाद की कृतियों म जाकर ही वेदात से अगीकृत परमात्मा की सकल्पना समग्र वैशेपिक सिद्धात का अग बनती है। तथापि सिद्धात के मूल सारतत्व मे की गयी इन सभी विकृतियो न वैशेपिक और न्याय की ज्ञानमीमासा की भौतिकवादी प्रवृत्ति को प्रभावित नही किया।

भारतीय चितन के इतिहास मे इन मतो का महत्व सर्वोपरि रूप म तर्क तथा ज्ञानमीमासा क प्रश्नो पर दिये गये असाधारण जोर मे निहित है। इस क्षेत्र मे ज्ञान का व्यवस्थित प्रतिपादन प्रस्तुत करनेवाला एकमात्र शेप ग्रथ – गौतम का 'न्यायसूत्र – यह दर्शाता है कि इन तार्किक कोटियो के निरूपण का स्तर कितना उच्च था।

गौतम ने वस्तु जगत की वास्तविकता, उसकी विपयी से स्वतत्रता और इद्रियो द्वारा जिनका तार्किक सश्लेपण मानस मे होता है, विश्व की मूल सज्ञेयता को अपना प्रारभ बिंदु बनाया। न्याय मे सबसे महत्व का स्थान शुद्ध विचारणा के नियमो को प्राप्त है। स्मृति मे रूप ग्रहण करनेवाले बिंब, एकल प्रेक्षण और अनुमान वस्तुओ का पर्याप्त सज्ञान प्रदान करने के लिए अपर्याप्त है। उनकी प्रामाणिकता की वास्तविक कसौटी अनुभव के प्रमाण के अनुरूप होना ही हो सकती है। अनुभव के केवल वे सज्ञापन ही विपयो तथा परिघटनाओ का प्रामाणिक सारतत्व प्रकट कर सकते है कि जो तार्किक विश्लेपण से होकर "गुजर चुके है।

विद्वानो ने सज्ञान के उपायो तथा साधनो और विशेपकर तर्कणापरक उपायो तथा साधनो से सबधित न्याय सिद्धात का विस्तार के साथ निरूपण किया है। न्याय तर्क पद्धति के न्यायवाक्य (सिलोगिज्म) की अरस्तू के त्रिपद अवयव न्यायवाक्य से जिसे पाश्चात्य तर्कशास्त्र का तात्विक अग माना जाता है अपनी विस्तृत तुलना मे फ० इ० श्चेरबात्स्कोय यूनान तथा भारत म तार्किक कोटियो के विकास मे देखे जानेवाले सादृश्यो की ओर ध्यान आकर्पित करत हैं। उन्ह न्याय के अनेक लक्षण इन कोटियो के उदय तथा रूप ग्रहण करन म अतर्निहित सामान्य नियमो के सूचको के रूप म अत्यत रोचक प्रतीत होत हैं।

तर्कशास्त्र के नान के एक पृथक क्षेत्र के रूप म सृजन और विकास म न्याय का योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण था। उसन भारतीय विज्ञान पर समग्ररूपेण महत्वपूर्ण और फलदायी प्रभाव डाला जो उसके विकास के उत्तरवर्ती दौर मे विशेषकर स्पष्टता के साथ प्रकाश मे आया। न्याय की उपलब्धियो ने प्राचीन तथा प्रारभिक मध्ययुगीन भारत के प्रसिद्ध तर्कशास्त्री दिडनाग तथा धमकीर्ति के सिद्धातो के विकास के आधार का निर्माण किया।

कणाद के परमाणु सिद्धात की यूनानियो और विशेषकर एपीदोक्लीज द्वारा प्रतिपादित समान विचारो से कुछ बातो मे समानता थी। एपीदोक्लीज भी चार तत्वो (और उन्ही – पृथ्वी जल अग्नि तथा वायु) को स्वीकार करता था और विश्व की विविधता का कारण इन शाश्वत सत्वो के सयोगो को मानता था। वह वस्तुओ के बनने की आद्य कणो के यान्त्रिक सयोजन तथा वियोजन से व्याख्या करता था और उसने दो विरोधी शक्तियो – राग तथा विराग – मे सोपाधिक विभेद किया है। द्रव्य के समय समय पर अपन सघटक तत्वो मे विखडन और उनकी अत क्रिया की प्रक्रिया मे उसके पुनर्गठन को एपीदोक्लीज उपरोक्त दोनो "हेतुओ" मे से किसी एक के प्राधान्य पर निर्भर बतलाता था। इस प्रस्थापना की वैशेपिको के प्रकृति के भाव के चक्रावर्ती स्वरूप से तुलना की जा सकती है, यद्यपि यूनानी दार्शनिक आवधिक लोप तथा नवीकरण के सिद्धात को इद्रियो द्वारा ग्राह्य समस्त ससार पर लागू नही करता है।

वैशेपिको के और देमोक्रीतस के सिद्धातो मे भी कुछ समानताए देखी जा सकती है – वह भी भौतिक प्रक्रियाओ को अदृश्य कणो अथवा परमाणुओ की गति तथा अत क्रिया का परिणाम मानता था। लेकिन देमोक्रीतस के विचार वैशेपिको से इन अर्थो मे भिन्न थे कि वह परमाणुओ को पूर्णत समजातीय मानता था, उसकी मान्यता थी कि उनके विभिन्न सयोगो के बीच अतर गुणात्मक नही, बल्कि विशुद्धत मात्रात्मक ही होते है। वैशेपिको के सिद्धात और यूनानी भौतिकवाद के महानतम प्रतिनिधि के विचार मे सादृश्य अत्यत सारगर्भित है। निस्सदेह यह भारत द्वारा यूनान पर डाले किसी प्रत्यक्ष प्रभाव की ओर इगित नही करता, बल्कि दोनो सभ्यताओ मे दार्शनिक चितन के विकास की कुछ समानताओ को ही दर्शाता है।

षडदर्शन की पारपरिक सूची का अत मीमासा और वेदात के साथ होता है। ये दोनो आपस म इतने घनिष्ठ रूप मे सबद्ध है कि वेदात को कभी-कभी उत्तरमीमासा भी कहा जाता है और स्वय मीमासा को प्राय पूर्वमीमासा की सज्ञा भी दी जाती रही है। तथापि इन दोनो दर्शनो म वास्तव म अपने मूल सिद्धातो और उनकी सामान्य भावना की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण भेद हैं। यह कह पाना असभव है कि इन दोनो म से कौनसा दर्शन पहले अस्तित्व मे आया – निश्चित रूप मे केवल यही कहा जा सकता है कि उनका एक ही परपरा मे मलयन उत्तर मध्य युग मे हुआ जब वेदात अपना प्राधान्य स्थापित कर चुका था।

मीमासा की प्रवृत्ति सदा ही वेदो को प्रमाण मानने की रही है, इस लिहाज से इसने किसी भी तरह के मध्यमार्गी समाधानो को स्वीकारने की-पारपरिक हिंदू धर्मशास्त्र से भी अधिक – अनिच्छा जतलायी है। मीमासा मे वैदिक सहिताओ को ही समस्त ज्ञान का मूलाधार और स्रोत माना गया है। अनेक अन्य भारतीय धार्मिक अथवा दार्शनिक पद्धतियो की ही भाति मीमासा भी अत्यत व्यावहारिक दर्शन है किंतु व्यवहार पर उसका यह जोर एक बहुत ही विशेष प्रकार का था। इस दार्शनिक पद्धति का केंद्रीय विषय कर्मकाड, उपासना अनुष्ठानो के नियम और स्वरूप हैं। इस विषय के अपने निरूपण मे मीमासा वैदिक परपरा की मूल भावना मे एक तात्विक विचलन दर्शाती है। वेदो मे बलि देवताओ की खातिर दी जाती थी, जब कि मीमासा मे देवता बलि की खातिर है। अब वे प्रकृति के स्वामी, तत्वो की गति तथा मनुष्य के जीवन म हस्तक्षेप करनेवाले नही रह जाते, वे अब कर्मकाड की एक आवश्यक कडी के अलावा और कुछ नही हैं क्योकि उनके बिना बलि निरर्थक हो जायेगी। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि मीमासा ग्रथो मे वेदो के कुछ कर्मकाडीय विधानो के विस्तृत निर्वचना और धर्माधर्म विचार को सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त है।

धार्मिक समस्याओ से अपनी सर्वव्यापक तन्मयता के बावजूद मीमासा का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसकी ज्ञान विषयक शिक्षा – ज्ञानमीमासा – है। जैमिनी, जिसे इस दर्शन का प्रवर्तक माना जाता है, प्रमाण (यथार्थ ज्ञान) के खाता मे आप्त वचन, अर्थात वैदिक ग्रथो अथवा शब्द को भी सम्मिलित करता है, तथापि उसके ग्रथ 'मीमासासूत्र' मे वर्णित अन्य चार स्रोत मीमासा की

समग्ररूपेण धर्माभिमुखता से नही जुडे हुए है। ये है इद्रियबोध, निगमन तुलना और प्रतिज्ञप्ति।

जहा साम्यानुमान क प्रसग म न्याय मे सामान्यत निगमनात्मक प्रणाली का उपयोग किया गया है, मीमामा मे आगमनात्मक प्रणाली को अपनाया गया है। अपने आदर्शो मे परपरानिष्ठ मीमासा और कई बातो के लिहाज से "अपधर्मी" न्याय मे एक ही विषय पर विचार किया जाता है और इस प्रक्रिया मे एक दूसरे के विरुद्ध खूब शास्त्रार्थ चलता है। मीमासा मे वितडा का यह पक्ष पूर्वविचारित अन्य दर्शनो से किसी भी प्रकार कम नही पाया जाता। मीमामा ग्रथ अपने दार्शनिक प्रतिद्वद्वियो के विरुद्ध लक्षित आलोचनापूर्ण उदगारो से परिपूर्ण हैं।

मीमासक प्रतिज्ञप्ति का या अधिक सटीकतापूर्वक कह तो अर्थापत्ति अथवा अभ्युपगमन का विचार प्रस्तुत करत हैं। इसकी सार्थकता इस तथ्य मे निहित है कि यदि हमे कोई भी परिघटना बिना कारण के प्रतीत होती है, तो हम उसकी परोक्ष व्याख्याओ का सहारा लेना पडता है जिसका विश्लेषण निरसन के माध्यम से अतत हमारे लिए उसके वास्तविक कारण को ढूढ पाना सभव बना देता है। इस प्रकार भारतीय चितन मे यहा पहली बार प्राक्कल्पना के विचार का तथा सज्ञान की प्रक्रिया मे उसकी भूमिका का उदय होता है। बेशक अथापत्ति का 'प्राक्कल्पना" से पूर्णत तदात्मीकरण नही किया जा सकता, क्योकि यहा प्रयुक्त अभ्युपगमन अथवा अर्थापत्ति से अभिग्रहीत अथवा कल्पित को नही, वरन निर्विवाद्य निष्कर्ष को व्यक्त किया जाता है।

यह भी उल्लेखनीय ह कि मीमासा द्वारा अनुमोदित विश्व के सामान्य दष्टिकोण म वस्तुवाद का निश्चित तत्व विद्यमान है – विश्व के वास्तविक अस्तित्व तथा उसकी सज्ञेयता पर शका नही की जाती यद्यपि जैमिनी न केवल भौतिकवादियो तथा साख्य, प्रत्युत बौद्ध दर्शन का भी सक्रिय विरोध करता था।

मीमासा का वस्तुवाद इस तथ्य के दृष्टिगत विशेषकर महत्वपूण था कि इस अध्याय मे पूर्ववर्णित दर्शनो के विपरीत यह दर्शन वैदिक कर्मकाड को पूर्णत स्वीकार करता था। यह उल्लेखनीय है कि तब की पारपरिक अवधारणाओ की सत्यता का अन्वेषण करने और उन्हे समीक्षात्मक विश्लेषण का विषय बनाने की प्रवृत्ति ने मीमासा जैसी गहनरूपेण परपरानिष्ठ पद्धतियो को भी प्रभावित किया।

मध्य युग मे वेदात के प्रभाव का बोलबाला हो गया, किंतु इसका मतलब यह नही है कि वेदात का प्रादुर्भाव अन्य दर्शनो के बाद हुआ था – पहला विशुद्धत वेदातीय ग्रथ ब्रह्मसूत्र, जिसे ऋषि बादरायण की कृति बतलाया जाता है, दूसरी शताब्दी ई० पू० का है। स्वय वेदाती यही दिखलाने का प्रयास करते थे कि उनके दर्शन का मूल उपनिषदो म है, जिन्हे व अपनी समस्त दार्शनिक प्रतिपत्तियो का आदि-स्रोत मानते थे। इस मत की निहित प्रयोजनता स्वत स्पष्ट है। इसके अलावा स्वय बादरायण का ग्रथ, जो सक्षिप्त और ऐसी सूक्तियो का सग्रह है कि जो सदा ही बोधगम्य नही हैं, वेदात के विशिष्ट स्वरूप को प्रकट करने की अपेक्षा उसके मुख्य मूलाधारो को ही प्रस्तुत करता है। तथापि उसने उसमे वेदात के मूल सिद्धात को व्यक्त कर दिया है, यद्यपि ऐसा मुख्यत नकारात्मक प्रतिपत्तियो के माध्यम से ही किया गया है – ससार किसी भी प्रकार भौतिक शक्तियो से उद्भूत नही है, ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है और जो कुछ भी सत्य अथवा वास्तविक प्रतीत होता है, अपने सभी रूपो म उसी से उदित होता है। स्वभावत 'ब्रह्मसूत्र' के लेखक ने, जो अत्यत प्रत्ययवादी दृष्टिकोण का समर्थक है, अपने युग के भौतिकवादी विचारो के विरुद्ध अतिसवेदनशीलता का परिचय दिया है – साख्य तथा लोकायत के विरुद्ध लक्षित प्रस्थापनाओ की वितडावादी तीक्ष्णता के मूल म यही कारण है।

बादरायण की अतिसक्षिप्त सूत्रशैली ने स्वाभाविक रूप म भाष्यलेखन की परपरा के विकास का सवर्धन किया – मध्य युग के उषाकाल मे ही गौडपाद ने इस सिद्धात पर लिखे जानेवाले भाष्यो मे से पहले की रचना की, जो अब तक बच रहा है। कालातर मे वेदात दर्शन पाच सप्रदायो मे विभक्त हो गया जिनमे प्रत्येक अपने प्रवर्तक के नाम से जाना जाता है – शकर, रामानुज मध्व, वल्लभ तथा निबार्क। इनमे से प्रत्येक चितक ने अपनी मूल कृति की रचना बादरायण के ग्रथ के भाष्य के रूप म की है। तथापि इनम से केवल दो – शकर तथा रामानुज – ने ही वेदात के विकास पर वास्तव मे कोई सार्थक प्रभाव डाला है।

शकर (आठवी-नवी शताब्दी) और रामानुज (ग्यारहवी बारहवी शताब्दी) की अनेक दार्शनिक कृतिया अब तक बची रह गयी हैं। शकर के मतानुसार ससार परब्रह्म से उदभूत एक भ्राति है भौतिक प्रकृति आनुभविक अह की भाति ही

मिथ्या (अयथार्थ) है। आत्मा (जो मानो परब्रह्म का ही प्रतिबिब है) केवल उस काल्पनिक मनोभौतिक समष्टि का आभास मात्र है जिसे सामान्य दैनदिन भाषा मे मानव व्यक्तित्व कहा जाता है। वेदात के दोनो मुख्य सप्रदायो (अद्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैतवाद) म चले आ रहे सदियो पुराने विवाद को सारत धार्मिक विधि-विधान और ब्रह्मतत्वसिद्धि के प्रश्नो पर विवाद ही कहा जा सकता है — जहा शकर केवल ब्रह्मविद्या अथवा ब्रह्मज्ञान (अर्थात सर्वव्यापी तथा सर्वसमावेशक ब्रह्म की तुलना मे अपने भ्रात स्वरूप का ज्ञान) को सही तथा सत्य मानता है और इसके परिणामस्वरूप इस विचार का समर्थन करता है कि जीवात्मा और परमात्मा एक ही है वहा रामानुज ने, जो भक्तिमार्ग का प्रतिपादक था, अह के परब्रह्म मे सलयन को ही अपना सर्वोच्च साध्य माना है, जिसमे भक्त अपने आराध्य का सामीप्य लाभ तो कर लेता है किंतु उसके समान नही हो जाता।

शकर ने सर्वसमावेशक अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया जिसमे वस्तु-जगत की विभिन्न परिघटनाओ अथवा प्रपचो को परब्रह्म की आत्माभिव्यक्ति मे परिणत कर दिया गया है। धीरे-धीरे शकर के प्रतिपादन को समग्ररूपेण वैदातिक सिद्धात का ही समानार्थक माना जाने लगा। सनातन हिंदू धर्म ने शकर के सिद्धात को अपना प्रामाणिक सिद्धात घोषित कर दिया।

यद्यपि एक समय मे आकर वेदात सबसे प्रभावी सप्रदाय का रूप ले लेता है, पर इससे यह तथ्य नही बदल जाता कि वह पारपरिक दर्शनो मे मात्र एक ही था। वस्तुत अन्य सप्रदायो के मूल जितने ही अधिक प्राचीन थे, उन्होने उतने ही नये विचारो को भी जन्म दिया। वेदात के बहिर्मुखी प्रभुत्व ने अन्य दर्शनो — विशेषकर वैशेषिक और साख्य — के व्यापक प्रभाव को समाप्त नही किया।

कुषाण तथा गुप्तकालीन सस्कृति

नाट्यकला और साहित्य

अभाग्यवश कुषाण काल के बहुत कम साहित्यिक ग्रथ ही अब तक बचे रह पाये हैं। ईसवी सवत की प्रारभिक शताब्दियो मे सस्कृत साहित्य के विकास के बारे मे हमारी सारी जानकारी गुप्तकालीन कृतियो पर आधारित है। तथापि परपरा के अनुसार अश्वघोष के कृतित्व को, जो एक महान लेखक और नाट्यकार तथा बौद्ध सस्कृत साहित्य के सस्थापको मे एक होने के साथ-साथ महान दार्शनिक भी था, कनिष्क के राज्यकाल (प्रारभिक दूसरी शती) का

कालिदास की लेखिनी से बहुत सी रचनाए प्रसूत हुई प्रतीत होती है, किंतु अभी तक विद्वान उसके तीन नाटको अभिज्ञानशाकुतल, मालविकाग्निमित्र तथा विक्रमोर्वशीय – और एक काव्य मेघदूत तथा दो महाकाव्यो – कुमारसभव और रघुवश – की ही खोज कर पाये है।

कालिदास की सभी कृतियो का केद्रबिदु मनुष्य और उसके भावोद्वेग, उसका सासारिक कार्यकलाप, उसके सुख और दुख हैं। उसका कृतित्व अश्वघोष की रचनाओ की तुलना मे जिसने बुद्ध और बुद्ध के शिष्यो का आदर्शीकृत चित्र प्रस्तुत किया था, एक उल्लेखनीय अग्रचरण का परिचायक है। कालिदास के बहुतेरे चरितनायक राजा-महाराजा है। कवि न केवल उनके कारनामो का प्रशस्तिगान करता है, वरन अपयशकारी कार्यों की निदा भी करता है। कालिदास की कुछ कृतिया महाकाव्यलेखन की प्रगति की' सूचक है। कालिदास अपनी नाट्य तथा काव्य कृतियो मे भी अतिनाटकीय विषयो का उपयोग करता है। प्रकृति तथा मनुष्य के मनोभावो का उसका वर्णन गीतात्मकता और मानवतावाद से सराबोर है। पुरानी परपराओ से विचलन किये बिना भी कालिदास कितनी ही बातो मे नूतन का प्रवर्तक भी है। यही कारण है कि सदियो से उसका कृतित्व भारतीय जनमानस के लिए इतना ग्राह्य बना रहा है।

प्राचीन भारत मे नाट्यकला ने भी काफी प्रगति की थी। गुप्त काल मे नाट्यकला के बारे मे विशेष ग्रथ रचे जाने लगे जिनमे नाटक और नाट्यकला के लक्ष्यो, उसमे प्रयुक्त विभिन्न विधाओ आदि का विस्तृत और व्यवस्थित प्रतिपादन किया जाता था।

इन ग्रथो मे से एक हमारे समय तक बच रहा है। नाट्यशास्त्र नामक इस ग्रथ को भरत की रचना बताया जाता है और विद्वानो के अनुसार इसका लेखन ईसवी सवत की प्रारभिक शताब्दियो मे हुआ था। इसे प्राचीन भारतीय रगमच का ज्ञानकोश कहना सर्वथा उचित ही है। इसमे नाटयकला से सबद्ध विविध पक्षो – रग वास्तु, अभिनय नाटय विधाओ, सगीत, रगमच, आदि – का निरूपण किया गया है।

जब प्राचीन भारतीय नाटक पहले पहल यूरोप पहुचे, तो कई विद्वानो ने कहा था कि भारतीय नाटक प्राचीन यूनानी मूल से उत्पन्न हुआ है। किंतु तब से यह निर्विवाद रूप मे सिद्ध किया जा चुका है कि भारत में नाट्य कला का उदय पूर्णत स्वतत्र रूप मे हुआ था। यही नही भारतीय नाटय परपरा प्राचीन यूनानी नाट्य परपरा से कही अधिक प्राचीन है और नाटय सिद्धात की दृष्टि से कही अधिक समृद्ध है।

गुप्त काल मे सबसे प्रारभिक पुराणो की रचना हुई। पुराणो की इन सख्या अठारह है और ये धार्मिक अनुश्रुतियो तथा प्राचीन ऐतिहासिक आख्यानो के भडार है। इनकी रचना बहुत लबे समय के दौरान हुई थी और इस बात उनमे दूरगामी सशोधन और परिवर्तन होते रहे थे।

याज्ञवल्क्यस्मृति (तीसरी शताब्दी) तथा नारदस्मृति (चौथी-पाचवी शताब्दी) जैसे कुछ धर्मशास्त्र भी ईसवी सवत की पहली सदियो मे ही रचे गये थे। इस काल के सस्कृत साहित्य की एक उल्लेखनीय कृति पचतत्र (तीसरी-चौथी शताब्दी) है जो भारत तथा विदेशो तक मे आज भी बहुत लोकप्रिय है। मध्य युग के आरभ मे इस कृति के पहलवी, सीरियक तथा अरबी अनुवाद प्रकाश मे आये। मध्यपूर्व मे इसे कलीला और दीमना के नाम से जाना जाता था। बाद मे यूरोप भी इससे परिचित हो गया। कुल मिलाकर 'पचतत्र' ने पौर्वात्य तथा पाश्चात्य साहित्यो पर काफी प्रभाव डाला है।

गुप्त काल मे ही दक्षिण भारत मे तमिल भाषा मे पहली साहित्यिक कृतियो की रचना की गयी। सबसे प्रसिद्ध प्राचीन तमिल ग्रथो मे एक 'कुरल' है जो नीतिकथाओ का सग्रह है और परपरा के अनुसार खेतिहर जाति मे पैदा हुए तिरुवल्लुवर की रचना माना जाता है। कुरल निस्सदेह लोककथाओ से गृहीत सामग्री पर आधारित था और प्राचीन काल मे भी वह अत्यत लोकप्रियता प्राप्त कर चुका था। चौथी-पाचवी सदियो मे तमिल मे गीतिकाव्यो की रचना होने लगी। दक्षिण की अन्य भाषाओ मे साहित्य रचना बाद मे प्रारभिक मध्य युग मे जाकर ही शुरू हुई।

वैज्ञानिक प्रगति

ईसवी सवत की पहली सदियो मे भारत मे उल्लेखनीय वैज्ञानिक उपलब्धिया प्राप्त की गयी। गणित, खगोल चिकित्सा और रसायन जैसे शास्त्रो पर यह बात विशेषकर लागू होती है। ज्ञान की अनेक शाखाओ से सबद्ध विषयो पर वैज्ञानिक ग्रथो की रचना हुई। अर्थतत्र की आवश्यकताओ ने गणित की प्रगति को काफी बढावा दिया। धार्मिक भवनो के निर्माण और उनके रखरखाव के सदर्भ मे भी गणित का बहुत महत्त्व था।

प्राचीनकालीन तथा प्रारभिक मध्ययुगीन भारत ने आर्यभट (पाचवी-प्रारभिक छठी शताब्दी) वराहमिहिर (छठी शताब्दी) और ब्रह्मगुप्त (छठी शताब्दी का उत्तरार्ध-सातवी शताब्दी का आरभ) जैसे असाधारण

गणितज्ञो को जन्म दिया, जिनकी खोजो ने आधुनिक काल की कितनी ही वैज्ञानिक उपलब्धियो की पहले ही सिद्धि कर ली थी। आर्यभट को π का ३ १४१६ के बराबर होना ज्ञात था। आज पाइथागोरस के प्रमेय के नाम से विज्ञात प्रमेय भी उस समय ज्ञात था। आर्यभट ने दो अज्ञातो के साथ एकघात समीकरण का पूर्णांको मे एक मौलिक समाधान प्रस्तुत किया जिसकी आधुनिक समाधानो से बहुत समानता है।

प्राचीन भारतीयो ने एक नयी परिकलन पद्धति विकसित की जिसमे शून्य का उपयोग किया जाता था। इस पद्धति को बाद मे अरबो ने अपनाया और आगे चलकर उनके जरिये यह अन्य देशो मे भी प्रचलित हुई।

आर्यभट सप्रदाय ज्या (साइन) तथा कोटिज्या (कोसाइन) से भी परिचित था।

आर्यभट के अनुयायी ब्रह्मगुप्त ने कई प्रकार के समीकरणो के समाधान प्रस्तुत किये।

इस काल के भारतीय विद्वानो ने खगोल के क्षेत्र मे भी कई महत्वपूर्ण सफलताए प्राप्त की। इस काल के कुछ खगोलीय ग्रथ – सिद्धात – अब तक बचे रह गये है और वे प्राचीन भारतीयो द्वारा अर्जित खगोलीय ज्ञान के अत्युच्च स्तर को प्रमाणित करते है।

गुप्तकालीन विद्वान आकाशीय पिडो की गतियो से और सूर्य तथा चद्र ग्रहणो के कारणो से अवगत हो चुके थे। आर्यभट ने पृथ्वी के अपनी धुरी (अक्ष) पर परिभ्रमण करने के बारे मे एक अत्यत प्रतिभापूर्ण सिद्धात का प्रतिपादन किया था।

ब्रह्मगुप्त ने न्यूटन से कई सदी पहले ही यह विचार प्रस्तुत कर दिया था कि वस्तुए पार्थिव गुरुत्वाकर्षण के परिणामस्वरूप जमीन पर गिरती है।

वराहमिहिरकृत वृहतसहिता मे खगोल, भूगोल तथा खनिजविज्ञान के बारे मे रोचक सामग्री है।

धातुकर्म मे हुई प्रगति के सदर्भ मे इस समय तक रसायन के नियमो का ज्ञान बहुत महत्व का हो गया था। प्राचीन भारतीय अपने इस्पात बनाने के हुनर, पक्के रग तैयार करने, कपडे और चमडे का परिष्करण करन और विभिन्न औषधे बनाने के अपने कौशल के लिए विख्यात थे। पारे के उपयोग का कितने ही ग्रथो मे उल्लेख आता है। पाचवी शताब्दी मे रसायन तथा कीमिया के क्षेत्रो मे पहले वैज्ञानिक ग्रथो की रचना शुरू हुई। इनम मे कुछ ग्रथो को परपरा के अनुसार असाधारण दार्शनिक नागाजुन के नाम के साथ सबद्ध किया जाता है।

इस काल मे चिकित्सा (आयुर्वेद) का भी तजी से विकास हुआ, विशेषकर शरीररचना विज्ञान का। पहली शताब्दियो के आयुर्वेदिक ग्रथो म मानव शरीर के विस्तृत वर्णन है शवोच्छेदन विधियो का निरूपण किया गया है और विभिन्न अगो के कार्यों के बारे मे बताया गया है। मानव देह को पाच तत्वो (पचभूत) – पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु और आकाश (ईथर) – का सयोग बताया गया है और प्राचीन भारतीयो की मान्यता थी कि सभी शारीरिक रोग इन तत्वो का अनुपात घटने बढने से ही होते हैं। विभिन्न उपकरणो की सहायता से शल्यकर्मीय उपचार इस समय तक सब अच्छी तरह स प्रचलन मे आ चुका था। चिकित्सा की कुछेक शाखाओ को इस समय तक पृथक मान्यता प्रदान की जा चुकी थी, यथा बालचिकित्सा, तन्त्रिकाविकृति भेषजविज्ञान तथा कर्ण कठविज्ञान। रोगो के अभिज्ञान तथा उपचार की ओर बहुत ध्यान दिया जाता था। जलोपचार, जडी-बूटी उपचार और पथ्योपचार को बहुत महत्व दिया जाता था।

उस समय के बच रहे चिकित्सा ग्रथो मे चरक (दूसरी शताब्दी) और सुश्रुत (चौथी पाचवी शती) के लिखे ग्रथ भी हैं। इन ग्रथो मे कपालछेदन हाथ पैर काटे जाने और मोतियाबिंदु के निकाले जाने जैसे जटिल शल्यकर्मों (आपरेशनो) के वर्णन भी सम्मिलित है।

वास्तुकला

कुषाण तथा गुप्त कालो मे लौकिक तथा धार्मिक – दोनो ही प्रकार का – वास्तुकला के क्षेत्र मे विकास का एक नया दौर आया। लगभग १५० ई० पू० म कार्ले (बबई के निकट) के भव्य गुहा मदिरो का निर्माण किया गया। कार्ले का चैत्य भारत का विशालतम गुहा मदिर है – इसकी लबाई लगभग ? मीटर चौडाई १४ मीटर से अधिक और ऊचाई १४ मीटर के लगभग है मुख्य कक्ष म स्तभो की दो पक्तिया एक स्तूप और पत्थर की तरह-तरह क मूर्तिया हैं। कक्ष म प्रकाश लकडी की जाली लगे विशेष झरोखो से आता है बाहर पर कई उभरी हुई आकृतिया खुदी हुई हैं। बुद्ध के अलावा मन्दिर क दान देनेवालो की भी मूर्तिया है। यह सारा का सारा मदिर समूह चट्टान क काटकर बनाया गया है और इसकी भव्यता आज भी दर्शक को चकित क देती है। गुप्त काल म गुहा वास्तु का और भी विकास हुआ – अजता क मदिर इसकी एक खासकर शानदार मिसाल पेश करते हैं। इस काल के मन्दिर

मध्य एशिया मे स्थानीय बाग्त्री शैली का मुकुलन हुआ, जिसका धू
उल्लेखनीय लौकिक लक्षणो को प्रकट करता है, उत्तर पश्चिमी भारत
गाधार शैली गगा की घाटी मे मथुरा शैली और आध्र मे अमरावती शैा
विकास हुआ।

गाधार मूर्तिकला मे कितने ही बाह्य – यूनानी, रोमन और
एशियाई – प्रभाव लक्षित होते हैं और वह प्रबल बौद्ध छाप लिये हुए है।
विद्वानो का कहना था कि गाधार शैली की मूर्तिया यूनानप्रभावित भारत
की बनायी हुई ह, जब कि अन्य विद्वान तो उन्हे रोमन शिल्पियो का र्
मानते थे। यद्यपि पश्चिमी प्रभाव यहा सचमुच सुस्पष्ट है, फिर भा
मूर्तियो का मुख्य प्रेरणा स्रोत स्थानीय परपराओ से ही उद्भूत है। गा
मूतिकला मे बुद्ध को बहुत पहले ही मनुष्य के रूप मे व्यक्त करना शु
जाता है। इसके पूर्व बुद्ध को विभिन्न प्रतीको – चक्र, सिहासन, बोधि
आदि – के माध्यम मे दर्शाया जाता था। यह सभव है कि यह मह
विचारो के प्रभाव के परिणामस्वरूप हुआ हो।

बुद्ध तथा बोधिसत्वो की कुछ प्रतिमाओ मे विद्वान अपनी समय म बल्वर
व अपोलो के अस्मदिग्ध प्रभाव को देखते है, किंतु इस शैली द्वारा सृजित बद्ध र
बहुत मे लक्षण विशुद्ध स्थानीय परपराओ पर आधारित थे। प्रयुक्त सामग्री म
और मूतिया क उपयोग के प्रयोजनो मे भी विभिन्नता थी। भारत म मूर्तिय
आम तौर पर किमी न किसी भवन विशेष का अभिन्न अग हुआ करती था।
मूर्तिया के विषय भारतीय थे किंतु इसमे कोई सदह नही कि प्रयुक्त विधिय
तथा विधाओ म कई का प्ररणा स्रोत यूनानी था। कुछ कला इतिहासकारा क
शब्दो म गाधार शिल्पी का हृदय भारतीय था और हाथ यूनानी थ। मूर्तिक
म गाधार परपरा न मध्य एशिया तथा सुदूर पूर्व के कई देशा म ललित
कलाओ पर भारी प्रभाव डाला।

मथुरा शैली अत्यत मौलिक थी। इस शैली के शिल्पियो न बुद्ध की मूर्ति
क अलावा लौकिक विषयो को लेकर भी काफी मूर्तिया बनायी है। मथुरा
और विशेषत कुषाण शासको की और गृहस्थ लोगो – धनवान दानिया – की
मूर्तिया भी मिलती है। यहा हम जैन एव बाकायदा प्रतिमाशीर्षा म एक
जात है। मथुरा शैली म समूचे तौर पर प्राचीन जैन अथवा मौर्य मूर्तिकला क
प्रभाव का प्राधान्य है। उल्लेखनीय बात यह है कि मथुरा शैली म भी – और
प्रत्यक्षत गाधार शैली स स्वतत्र – बुद्ध की मानवरूप प्रतिमाए भी मिलता है
और सभवत देश क उत्तर-पश्चिमी भाग म भी कुछ पहल ही। मथुरा का द

प्रतिमाए दर्शक के मानस पर तथागत का नैतिक बिंब उत्पन्न करती है किंतु इस चरण में भी इसमें निश्चित अलगाव के चिह्न प्रकट होने लग जाते है।

अमरावती में मूर्तियां वहां माना दूसरी शताब्दी में बनाये गये स्तूप की अनुपूर्ति करती हैं। मुख्य रूप में बुद्ध के जीवन से संबंधित विषयों को ही दर्शाया गया है किंतु मूर्तियों का समग्र रूपण चरित्र विशुद्धत स्थानिक है और इस विशेष शैली के कलाविधान के आधारभूत विशिष्ट सिद्धांतो का ही प्रकट करता है। उत्तर की कला परम्पराओं का प्रभाव भी यहा अपने को अनुभूत करवाता है।

गुप्त काल तक आते आते कला की विभिन्न प्रवृत्तियों की विशिष्टताओ तथा विभेदक लक्षणो को खोजना अधिक कठिन हो चुका होता है। मूर्तिकला में अधिक समान परम्परा विकसित होने लगती है और यह मुख्यतः उत्तरी भारतीय मथुरा शैली पर आधारित है। बुद्ध के बिंब के बौद्ध निरूपण में और भी ज्यादा बारीकी आ जाती है और शिक्षक तथा ज्ञानदाता के मानव पक्ष के प्रतिरूपण के विकास में एक नया चरण लक्षित होने लगता है जिसे अब सर्वोच्च देव रूप में दर्शाया जाता है।

उत्तर-गुप्त काल में बौद्ध धर्म के ह्रास के परिणामस्वरूप बौद्ध मूर्तिकला विधान में कुछ परिवर्तन आया – बुद्ध ने एकरूप धार्मिक तथा शैलीगत लक्षण ग्रहण कर लिये और देश के विभिन्न भागों में मिलनेवाली बुद्ध प्रतिमाओं में निकट साम्य देखने में आने लगता है। बुद्ध की पांचवी सदी में निर्मित सुलतान-गंज (बिहार) और सारनाथ (वाराणसी के निकट) की मूर्तियां इसके श्रेष्ठ उदाहरण है। सुलतानगंज की बुद्ध मूर्ति कांस की बनी हुई है और आकार की दृष्टि से काफी प्रभावोत्पादक है – वह दो मीटर से अधिक ऊंची है और भार में एक टन के लगभग है। यहां बुद्ध को दिव्य शक्ति के मूर्त रूप में व्यक्त करना शुरू हो चुका है – चौड़े वक्ष और क्षीण कटि की इस मूर्ति में पसलियां मुश्किल से ही नजर आती हैं। सारी आकृति एक विशेष शैली में बनायी गयी है – सिर थोड़ा सा झुका हुआ है और दाहिना हाथ कोहनी पर अभय मुद्रा में मुड़ा हुआ है। ज्ञानदाता की आकृति सुस्पष्ट रूप में आदर्शीकृत है – बंधनमुक्त और सहज मुद्रा आतरिक ध्यानस्थता को प्रकट करती है और चेहरे पर आनंदमय मुसकान है।

हिंदू धर्म के नवोन्मेष ने भी भारतीय मूर्तिकला पर प्रत्यक्ष प्रभाव डाला – वैष्णव तथा शैव देवी-देवताओं की मूर्तियों का व्यापक प्रचलन हो गया। गुप्त काल की अधिकांश मूर्तियों में शिव को दर्शाया गया है। यह संभव है कि बुद्ध के मनुष्यरूप प्रतिरूपण (जो ईसवी संवत की आरंभिक सदियों में बौद्ध मूर्तिकला

या सार्गिनिक चरण था) ने हिंदू देवी-देवताओं के प्रतिमांकन के ढंग को प्रभावित किया था।

किंतु मानवरूप के दिए जाने पर भी हिंदू अपने देवताओं की प्रतिमाओं को प्रतीक ही मानते थे और इसलिए यह संभव था कि उनकी मूर्तियों के चार हाथ हों जिनमें से प्रत्येक प्रतीकात्मक रूप में किसी विशिष्ट देवता अथवा उसके द्वारा किए जानेवाले कार्यों से संबद्ध होता था।

विशुद्ध रूप में धार्मिक मूर्तियों के अलावा गुप्त काल में तथाकथित अर्धलौकिक अथवा लौकिक मृतिकला ने भी निश्चित रूप में प्रगति की।

भारत के इतिहास में गुप्त शासकों का राज्यकाल प्राचीन भारतीय चित्रकला के विकास में एक महत्वपूर्ण चरण का परिचायक है। औरंगाबाद (महाराष्ट्र) के निकट स्थित अजंता के विश्वविख्यात भित्तिचित्र* वस्तुतः भारतीय तथा विश्व कला की सर्वोत्कृष्ट कृतियों के उदाहरण हैं। प्रस्तुतीकरण विधियों की दृष्टि से इन्हें यथार्थतम अर्थों में भित्तिचित्र नहीं कहा जा सकता। ये चित्र उनतीस गुफाओं की भित्तियों और छतों पर बने हुए हैं। इनमें नाना प्रकार के विषयों को चित्रित किया गया है – बुद्ध के जीवन से संबंधित प्रकरण, जातक कथाओं के चित्र, बुद्ध के रूपचित्र, यक्ष-यक्षिणियों की आकृतियां, भांति-भांति के अलंकरण और प्रतिरूप आदि-आदि। प्रकृति का और दैनंदिन जीवन के विभिन्न दृश्यों तथा राजदरबारों के दृश्यों का अत्यंत मनोहर चित्रण किया गया है। सातवीं शताब्दी में अजंता की गुफाओं की यात्रा करने के बाद हुएनत्सांग ने लिखा था कि दीवारों पर 'विशाल से विशाल और सूक्ष्म से सूक्ष्म' को चित्रित किया गया है। इन चित्रों में प्रयुक्त रंग भी विलक्षण हैं और वे लगभग हर ही रंगत को व्यक्त करते हैं। इन चित्रों को गुफा की सतह पर बनाया गया है।

अजंता के भित्तिचित्रों को बनाने का कार्य गुप्त काल के पहले ही शुरू हो गया था और सदियों में जाकर पूरा हुआ था। इन चित्रों ने केवल भारतीय संस्कृति ही नहीं, वरन अनेक अन्य पूर्वी देशों की संस्कृतियों पर भी वस्तुतः बहुत भारी प्रभाव डाला है।

---

* अजंता का इलाका गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित नहीं था, बल्कि जैसा कि वहां मिले शिलालेखों से प्रकट होता है वाकाटक राज्य का अंग था।

प्राचीन भारत तथा अन्य देशो मे ऐतिहासिक एव सास्कृतिक सबध

सुदूर अतीत मे भी भारत के बहुत से दूसरे देशो के साथ सबध-सूत्र थे। सदियो के दौर मे ये सबध विकसित और पुष्ट होते चले गये – भारतीय सस्कृति का अन्य जातीय सास्कृतिक क्षेत्रो मे प्रवेश हुआ और उनके पारस्परिक समृद्धिकरण की प्रक्रिया का समारभ हुआ।

इन सास्कृतिक सबध-सूत्रो म प्राचीनतम तथा घनिष्ठतम भारत और ईरान क बीच थे, जिनका मूल नवपापाण काल तक चला जाता है। प्राचीन भारतीय तथा ईरानी जातीय तथा भाषायी दृष्टि से भी आपस मे घनिष्ठत सबद्ध थे। अखमनी साम्राज्य के स्थापित होने के बाद जब उत्तर पश्चिमी भारत के कुछ भाग उसके अग बन गये विशेषकर घनिष्ठ भारत ईरान सबधो के दौर की शुरुआत हुई। अखमनी सस्कृति (वास्तु तथा मूर्तिकला) न मौर्य काल मे भी भारतीय सस्कृति के विकास को प्रभावित किया। भारत से बौद्ध धर्म का ईरान मे भी प्रसार हुआ और अनेक भारतीय वैज्ञानिक उपलब्धिया तथा कलाकृतिया ईरान मे सुज्ञात हो गयी।

मध्य एशिया मे सोवियत पुरातत्वज्ञो के हाल के उत्खनन कार्य ने दिखलाया है कि मध्य एशिया के दक्षिणी भागो और भारत मे प्रत्यक्ष सबध तो ठेठ हडप्पा युग मे भी विद्यमान थे किंतु कुषाण काल मे आकर ये विशेषकर गहन हो गये थे। कुषाणो तथा शको के आगमन के बाद भारत मे मध्य एशियाई प्रभावो ने अपने को अनुभूत करवाया और उधर भारत से मध्य एशिया मे बौद्ध धर्म तथा भारत की बहुत सी सास्कृतिक उपलब्धियो क ज्ञान का प्रसार हुआ।

मध्य एशिया मे मिले शिलालेखो के आधार पर कहा जा सकता है कि कुषाण तथा गुप्त कालो मे भारतीय वहा बस्तिया बसा चुके थे और उन्होने वहा विशाल विहारो का निर्माण किया था। तर्मेज के निकट ईसवी सवत की पहली सदियो मे निर्मित कारा तेपे मे तथा अजीना तेपे (दक्षिणी ताजिकिस्तान) म सातवी सदी के बने बौद्ध विहार इसके सबसे उल्लेखनीय प्रमाण है। मध्य एशिया मे भारत के साथ प्रत्यक्ष सबधो के लिखित प्रमाण – भूर्जपत्र तथा ताडपत्र पर लिखित बौद्ध पाडुलिपिया – भी मिले है।

ईसोपरात पहली सदियो मे भारत तथा चीन के बीच व्यापारिक सबधो का तेजी के साथ विकास हुआ। यह व्यापार महान कौषेय पथ – रेशम के

रास्ते -- से और समुद्र मार्ग से भी किया जाता था। भारत से चीन को दूतमण्डल और बौद्ध प्रचारक दल भेजे आते थे। तीसरी शताब्दी मे चीन म बडे-बड़े बौद्ध विहार बनाये गये और बौद्ध ग्रथो का चीनी भाषा म अनुवाद भी किया जाने लगा।

इस काल मे मध्य एशिया मे भी भारतीय बस्तियो की स्थापना हो रही थी -- खरोष्ठी लिपि मे प्राप्य दस्तावेजो से इसका पर्याप्त प्रमाण मिलता है।

भारत तथा लका के बीच सबधो की स्थापना पहले भारतीय आर्य आबादकारी के इस द्वीप पर आगमन के फौरन बाद ही हो गयी थी। मौर्य शासको के समय मे जब बौद्ध धर्म का श्रीलका मे प्रसार शुरू हुआ, तो सास्कृतिक सबध कही अधिक घनिष्ठ हो गये। भारतीय सस्कृति ने सिंहली साहित्य वास्तुकला तथा धर्म पर बहुत प्रबल प्रभाव डाला। दक्षिण-पूर्वी एशिया के कई देशो के साथ भारत ने बहुत पुराने जमाने मे ही व्यापार करना शुरू कर दिया था और कालातर मे इनमे से कई मे भारतीय बस्तिया पैदा हो गयी। भारतीय आबादकार अपने साथ सस्कृत भाषा और भारतीय सस्कृति की अनेक उपलब्धिया भी लाये। ईसवी सवत की पहली शताब्दियो मे इडोनेशिया में भी भारतीय बस्तिया पैदा हो गयी।

हडप्पा सस्कृति के समय ही भारत के सुमेर के साथ व्यापारिक तथा सास्कृतिक सबध स्थापित हो चुके थे। बाद मे भारतीयो ने अफ्रीका और अरब के साथ भी व्यापार करना शुरू कर दिया और मिस्र सहित भूमध्यसागरीय देशो के साथ अपने सबध-सूत्रो को सुदृढ किया।

सिकदर के आक्रमण के बाद जब यूनानियो ने भारत उसके निवासियो और उसकी परपराओ मे स्वय परिचय प्राप्त किया भारत और पश्चिम के बीच सबधो मे एक नये युग का समारभ हुआ। कुषाण काल मे भारत तथा रोम के बीच सबध और दृढ हुए -- भारत ने मूल्यवान उपहारो के साथ अपने दूतमडल रोम भेजे और रोमनो ने दक्षिण भारत मे अपने व्यापार केन्द्र स्थापित किये।

प्राचीन यूनान और रोम के प्रभाव ने उत्तर पश्चिमी भारत मे भारतीय यूनानी राज्यो के स्थापित किये जाने के समय और बाद मे कुषाण काल म अपने को विशेषकर स्पष्टता के साथ अनुभूत करवाया। इसने अपने को उस काल की कला (गाधार मूर्तिकला) मे विज्ञान म और दर्शन म प्रतिबिबित किया। ईसवी सवत की पहली सदियो के कुछ भारतीय ज्योतिष ग्रथो से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन भारतीय विद्वान सिकदरिया के खगोलज्ञो के

काय से अवगत थे – एक तत्कालीन ज्योतिष ग्रथ (सिद्धात) तो रोमक सिद्धात के नाम से ही विज्ञात है।

अभी कुछ ही समय पहले एक ज्योतिषिक काव्यरचना की पाडुलिपि मिली है, जिसका नाम है यवनजातक। इसे तीसरी शताब्दी मे यूनानी मूलग्रथ से अनूदित अत्यत प्राचीन सामग्री के आधार पर रचा गया था। यह खोज इसका स्पष्ट प्रमाण है कि भारतीय विद्वान प्राचीन यूनानी विद्वानो की उपलब्धियो से अच्छी तरह से परिचित थे।

प्राचीन यूनान तथा रोम के साथ इन सपर्को के बावजूद इन सस्कृतियो ने भारत को कोई बहुत अधिक प्रभावित नही किया। आम तौर पर इस प्रभाव का प्रसार समाज के उच्चतर सस्तरो के बाहर नही हुआ और वह देश के उत्तर-पश्चिमी भागो तथा पश्चिमी तट तक ही सीमित रहा। इसी के साथ-साथ पाश्चात्य विज्ञान, दर्शन तथा सस्कृति पर भारतीय सास्कृतिक प्रभावो को अनुभव किया जाने लगा।

उदाहरण के लिए, यह ज्ञात है कि प्राचीन यूनान और रोम मे भारतीय औषधियो का उपयोग किया जाता था। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि पाइथागोरस के तथा उसके अनुगामियो के कृतित्व मे उपनिषदो के प्रभाव को देखा जा सकता है वे नवअफलातूनवादियो के कृतित्व मे भी भारतीय दर्शन के प्रभाव की ओर इगित करते है आदि-आदि।

तथापि इस प्रसग मे एक और पक्ष पर जोर डालना भी महत्वपूर्ण है और यह है प्राचीन सभ्यता के इन दोनो ही केद्रो मे दार्शनिक ज्ञान का समरूप विकास। विश्व, मनुष्य तथा प्रकृति से सबधित बहुत से प्रश्नो को प्राचीन भारतीय तथा यूनानी और रोमन चितक समान तरीको मे ही प्रस्तुत और हल करते है। यह विशेषता प्राचीन विश्व मे ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया द्वारा निरूपित सास्कृतिक प्रगति के अतर्भूत स्वरूप की ओर इगित करती है। शताब्दियो तक विदेशो के साथ घनिष्ठ व्यापारिक तथा सास्कृतिक सबधो को कायम रखते और सुदृढ करते हुए भी भारत ने अपनी विशिष्ट सस्कृति, दर्शन परपराओ और सामाजिक तथा राजनीतिक प्रथाओ को बनाये रखा।

प्राचीन भारतीय सभ्यता की परपराओ ने समूचे तौर पर भारतीय समाज के और भारतीय सस्कृति के उत्तरवर्ती विकास पर जबरदस्त प्रभाव डाला। विश्व सभ्यता की समृद्ध परपरा मे प्राचीन भारत का योगदान वस्तुत बहुत भारी है।

मध्यकालीन भारत

को॰अ॰अंतोनोवा



छठी से बारहवीं सदियों का भारत

भारतीय सामंतवाद

अधिकांश सोवियत भारतविद छठी-सातवीं से अठारहवीं शताब्दी तक की अवधि को भारत में सामंतवादी व्यवस्था के प्रभुत्व का युग मानते हैं। लेकिन कई विद्वान इस मत को इस तथ्य के दृष्टिगत चुनौती देते हैं कि मध्ययुगीन भारत की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था मध्ययुगीन यूरोप की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था से भिन्न थी, जिसे मूलतः सामंतवाद अथवा सामंती व्यवस्था का नाम दिया गया था। भारत में सामंत वर्ग की सामाजिक संरचना अल्पविकसित थी और कुछ अवधियों में तो सर्वथा अविद्यमान थी। सामान्यतः भूस्वामी अपनी मिल्कि-यतों की स्वयं व्यवस्था नहीं करते थे। बेगार का अधिकांशतः दुर्गों और सिंचाई प्रणालियों आदि के निर्माण में ही प्रयोग किया जाता था। किसानों से लगान आम तौर पर निर्धारित राजकीय कर के रूप में वसूल किया जाता था।

सामंत अपने कृपापात्रों तथा अनुचरों को सशर्त भूस्वामित्व का अनुदान करते थे, अर्थात जमीन नहीं, जमीन की आय का अनुदान किया जाता था, जिसमें राजकीय कर के रूप में एक निश्चित रकम का अदा किया जाना आवश्यक था। सशर्त स्वामित्व के आधार पर जमीन पानेवाले उसमें लगान उगाहते थे, जिसे वे अपने ऊपर खर्च कर सकते थे, पर उन्हें एक निर्धारित संख्या में सैनिक रखने होते थे और इस तरह के सभी सैनिकों को मिलाकर राजा की सेना बनती थी। आम तौर पर न भूमि अनुदान पुश्तैनी होते थे और न ही पदवियां। भारत में भूदासत्व भी नहीं था, अर्थात किसान विधिक रूप से सामंत के अधीन नहीं थे। भूस्वामियों को केवल लगान की वसूली के मामलों में ही न्याय करने और सजा देने का अधिकार था। समाज में श्रेणीगत अवरोधों के स्थान पर जातिगत अवरोध थे। पुश्तैनी भूस्वामित्व, पदवियों और सामाजिक श्रेणियों के न होने से भारतीय इतिहास की कुछ अवधियों में नीची हैसियत के बावजूद योग्य व्यक्तियों के लिए सेनानायकों के रूप में उन्नति करना सुगम था।

भारतीय सामंती व्यवस्था को यूरोपीय सामंतवाद से विभेदित करनेवाला एक विशिष्ट लक्षण भारत में भूमि पर राजकीय स्वामित्व का प्राधान्य था।

लेकिन इसी के साथ साथ मध्ययुगीन यूरोप तथा भारत की सामाजिक व्यवस्थाओ मे महत्वपूर्ण साम्य भी थे। दोनो ही म अर्थतत्र छोटे किसानो और शिल्पकारो के हाथो के श्रम पर आधारित था, जो अपन उत्पादन साधनो (उपकरणो) के स्वामी थे और मुद्राहीन विनिमय के अतर्गत अपना निर्वाह भर क लिए उत्पादन करके जीविका का अर्जन करते थ। समाज लगान की वसूली के माध्यम से मुख्यत आर्थिकेतर बल प्रयोग क जरिये इन समूहो के शोषण पर आधारित था। यही कारण है कि भारत क सन्दर्भ म सामतवाद शब्द का प्रयोग किया जाता है, यद्यपि इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि उसके कुछ लक्षण यूरोपीय सामतवाद से सर्वथा भिन्न थे।

सोवियत इतिहासको मे विस्तारपूर्वक विवेचित किये जानेवाले प्रश्नो म एक भारत मे भूमि के राजकीय स्वामित्व का भी है। राजकीय भूस्वामित्व को किसी भी भारतीय विधिक स्रोतग्रथ मे परिभाषित नही किया गया है, किंतु जमीन से वसूल किये जानेवाले लगान का स्वरूप राजकीय कर का ही होता था। यह भी ध्यान मे रखना चाहिए कि मध्ययुगीन भारत मे "भूमि" शब्द का दो बिलकुल भिन्न चीजो को व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया जाता था किसान के लिए इसका आशय एक खास खेत होता था, जिसे वह काश्त करता था और जिस पर उसका अधिकार तब भी बना रहता था कि वह उसे काफी समय तक उपयोग मे न लाये, इस जमीन को वह वसीयत म द सकता था बेच सकता था अथवा दान कर सकता था बशर्ते कि ग्राम समुदायो के कु परपरागत नियमो का पालन किया जायें। इस जमीन के लिए उसे राज्य क अथवा ऐसे किसी भी व्यक्ति को नियत लगान अदा करना होता था, जि शासक कर वसूल करने का अपना अधिकार हस्तातरित कर देता था

इसके विपरीत सामत अथवा सामती राज्य के लिए "भूमि" का मतल उस इलाके से था, जिसके रहनेवालो से करो की एक निर्धारित राशि वसू की जाती थी। शासक केवल कुछ इलाके को ही अनुदानस्वरूप देता थ जिससे एक नियत रकम के कर इकट्ठा करने होते थे, राज्याधिकारी बाद मे यह तय करते थे कि इस अनुदान मे कौनसा इलाका या इलाके होने चाहिए विकसित सामतवाद की अवस्था मे इन जागीरो मे से अधिकाश सशर्त अनु के इलाके ही होते थे, जिन्हे न उत्तरदान किया जा सकता था, न किसी अ को दिया या अपने से कम सपन्न भूस्वामियो को शिकमी ही दिया जा सक था। किसान अपनी जमीन को किस तरह काश्त करते है, सामत इसमे क दखल नही देते थे। लेकिन चूकि लगान सिर्फ काश्त जमीन से ही वसूल कि

जाता था, इसलिए सामत उसकी पूरी पूरी कोशिश करते थे कि ज्यादा से ज्यादा जमीन काश्त म आय जैसे इसक लिए व किसानो को परती जमीन को काश्त मे लाने पर कुछ वर्षो के लिए लगान की छूट देते थे ज्यादा पैदावार देनवाली फसल बोनवालो को इनाम देते थे आदि आदि।

भूमि पर राजकीय स्वामित्व होने का मतलब यह था कि लगान की रकम और उसकी वसूली क ढग को राज्य नियत करता था। राजकीय लगान का आकार और स्वरूप सामती लगान जैसा ही होता था – बात सिर्फ यह थी कि उसकी वसूली या तो सरकारी अधिकारी करत थ या यह अधिकार स्वय सामतो को ही दे दिया जाता था। नतीजे के तौर पर मध्ययुगीन भारत मे भूमि और भूसापत्तिक अधिकारो के बारे म अलग अलग सामाजिक समूहो की अपनी अपनी विशिष्ट धारणा थी। तथापि यह ध्यान मे रखना चाहिए कि यद्यपि राजकीय स्वामित्व ही भूस्वामित्व का प्रधान स्वरूप था, फिर भी जमीन के कुछ अश पर वशागत स्वतत्र अथवा अधीनस्थ भूस्वामियो (सामतो) का भी स्वामित्व था, जो मुगल काल मे ज़मीदार कहलाने लगे और जो स्वय यह तय करते थे कि अपने काश्तकारो से कितना लगान लिया जाना चाहिए और कभी कभी अपने असामी काश्तकारो अथवा कमकरो की सहायता से अपनी खेती के काम की खुद भी देखरेख किया करते थे।

कृषि श्रम शक्ति की बुनियादी इकाई परिवार था। ग्राम समुदायो और ग्राम पचायतो के बारे मे उल्लेख भी मिलते है जिनके पच समुदाय के अधिकाश प्रमुख सदस्य हुआ करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर भारत मे इन पचायतो मे सबद्ध इलाके को आबाद करनेवाले पूर्वपुरुष अथवा उस कबीले या समूह के साथ किसी सामान्य रिश्ते से जुडे एकाधिक गाव भी होते थे, जिसने इस इलाके को कभी आबाद किया था। दक्षिण भारत मे चौदहवी पद्रहवी शताब्दी तक ये समुदाय खासे बडे हुआ करते थे जिनमे सैकडो – बल्कि हजारो भी – गाव हुआ करते थे और यद्यपि नवी दसवी सदी म ही इतने बडे-बडे समुदाय अखड आर्थिक इकाई नही रह गये थे, फिर भी वे महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति अवश्य बने रहे थे। कुछ समुदायो मे आवधिक अतरालो के बाद जमीन का पुनर्वितरण किया जाता था तो कुछ म कृषिभूमि परिवारो मे स्थायी आधार पर विभाजित होती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्राम समुदाय का समूचे तौर पर परती जमीन पर स्वामित्व था वह यह तय करता था कि अलग-अलग परिवारो द्वारा लगान का कितना हिस्सा अदा किया जायेगा और सभवत कुछ सेवको तथा शिल्पकारो का भी भरण-पोषण करता था। यह

सभव है कि दक्षिणी भारत के ग्राम समुदाय उत्तरी भारत क समुदाया स अधिक सपन्न और शक्तिशाली रहे हो। किसी भी सूरत मे उनके निर्णया तथा आदेशो के पत्थर या अन्य प्रकार की टिकाऊ सामग्री पर अधिक अभिलेख मिलते है। सभी भारतीय ग्राम समुदायो मे अधिक प्रमुख व्यक्तियो (सामान्यत मुखिया अथवा प्रधान और पटवारी) को विशेष स्थिति प्राप्त था। लगता है कि महत्वपूर्ण निर्णय ग्राम पचायतो मे ही लिये जाते थे, लेकिन धीरे-धीरे मुखिया और पटवारी के हाथो मे अधिकाधिक सत्ता केद्रित होता चली गयी। ग्राम समुदाय के उच्चतर सस्तरो के सदस्य अकसर स्वय छोटे सामतो जैसे हो जाते थे जिनकी जमीनो को उनके अधीन लोग काश्त किया करते थे।

पूर्व सामती युग

सामती शोषण के कुछ लक्षण भारत मे प्राचीन काल मे ही प्रकट हो गये थे – एक ओर जमीन को अधिकाशत दासो द्वारा नही, बल्कि ऋणबद्ध श्रमिका-बधुओ – द्वारा काश्त किया जाता था और दूसरी ओर भूमि अनुदान 'राज्य की सेवा' के बदले प्राप्त होत थे। छठी सातवी सदियो म इस प्रकार के अनुदानो को अभिलिखित करने मे प्रयुक्त ताम्रपत्रो की सख्या मे उल्लेखनीय वृद्धि आयी। इन ताम्रपत्रो की सहायता से इतिहासज्ञ सामती सबधो के विकास का अनुगमन कर सकते है। इनसे आबादी से वसूल किये जानेवाले करा की लगातार बढती सख्या के बारे मे पता चलता है – अनुदानग्राही या तो उनकी अदायगी से छूट प्राप्त थे या उन्हे इन करो को अपने उपयोग के लिए इकट्ठा करने का अधिकार था। उन्मुक्ति दान के अधिकाधिक प्रसग आते है, जिनमे द्वारा चट तथा भट (प्रत्यक्षत राज्याधिकारियो और सैनिक दस्ता) के अनुदत्त भूमियो मे प्रवेश को निषिद्ध किया जाता था। सामतो को न्याय करने का अधिकार भी प्राप्त हो गया और किसान अपने स्वामियो के अधिकाधिक अधीन होते गये। अक्सर बड़े सामत जो अपनी उपाधियो से स्थानीय प्रशासका का कार्य करते भी प्रतीत होते है, अपने शासक की अनुमति के बिना ही अपना जमीन के कुछ भागो का सेवार्थ अनुदान कर देते थे। कभी कभी अनुदान तो शासक के नाम पर ही पर राजा के अधीनस्थ सामत के 'अनुरोध पर' किया जाता था।

सामाजिक तथा राजनीतिक विकास की दृष्टि से भारत का रोमन साम्राज्य

के पतन के बाद यूरोप जैसी जबरदस्त उथल-पुथल से नही गुजरना पडा। भूमध्यसागरीय देशो के साथ व्यापार शनै शनै घट गया, पर भारतीय माल का अब भी मिस्र से लेकर चीन तक के देशो को बडे पैमाने पर निर्यात किया जाता था। भारत मुख्यत सूती कपडे और अपने दस्तकारो की बनायी हुई दूसरी चीज़ो के अलावा मसालो हाथीदात रत्नो मूल्यवान लकडियो, आदि का निर्यात किया करता था। आयात के मालो मे रेशम (कौषेय) सोना, विलास वस्तुओ और बनावट तथा रगो मे भारतीय कपडो से भिन्न कुछ तरह के कपडो के अलावा घोडे भी थे जिनका बडी सख्या मे आयात किया जाता था, क्योंकि भारत की जलवायवी तथा प्राकृतिक अवस्थाए अश्वपालन के विकास के लिए उपयुक्त नही थी।

पहली सदी के बाद से सुदूर पूर्व के अनेक देशो और विशेषकर वर्तमान मलेशिया, इडोनेशिया तथा हिदचीन के प्रदश पर भारतीय व्यापारियो की बस्तिया पैदा होन लगी। भारत के पूर के पूर समुद्र तट पर कितन ही बदरगाह थे—भरुकच्छ (वर्तमान भडाच) सुरथ (सूरत) शूरपारक (सोपारा) उरायूर आदि। कई बडे-बडे नगर मुख्य व्यापार मार्गो पर ही स्थित थे—जैसे उत्तर पश्चिम तथा पजाब म तक्षशिला, शाकल (स्यालकोट) और पुरुषपुर (पेशावर), उत्तरी भारत म स्थानश्वर (थानेश्वर) और कान्यकुब्ज (कन्नौज), मध्य भारत म उज्जयनी (उज्जैन) और पश्चिम तथा दक्षिण भारत मे पैठण वातापि, तागर, मदुरई काची, आदि। ये नगर बडे बडे व्यापार तथा शिल्प कद्र थे, यद्यपि बहुत से नगरवासी कृषिकार्य भी करते थे— वे नगरो की सीमाओ के भीतर ही पशुपालन करते थे और खेतो को काश्त करत थे। व्यापारियो की प्रभावशाली श्रेणिया थी जो देश के आर्थिक और— कुछ कम सीमा तक—राजनीतिक जीवन मे महत्वपूर्ण भूमिका निबाहती थी। उपलब्ध स्रोत सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यापारी शिल्पकारो से अधिक धनी थे, जो अक्सर खरीदकर भूसपदा का अर्जन करत थे और मदिरो को मूल्यवान भेटे दिया करते थे। इसके दृष्टिगत कहा जा सकता है कि पूर्व मध्य युग मे नागर जीवन मे कोई अवनति नही आयी थी।

न इस काल मे आतरिक व्यापार मे ही अवनति आयी। आतरिक व्यापार का सबसे सुविधाजनक साधन गगा और उसकी सहायक नदिया थीं। माल को बगाल से तटीय व्यापार पोतो द्वारा या सार्था (काफ्लो) द्वारा दक्षिण ले जाया जाता था।

दक्न के आरपार भी व्यापार मार्गो का जाल था, खासकर बडी नदियो

का व्यापार म बहुत योग था और उाग बड बदरगाहो म माल का भारत भाग म ले जाने म भी सहायता मिलती थी। तथापि देश के भीतर व्यापार इतना विकसित नही था कि जितना वैदेशिक व्यापार था।

छठी से बारहवी शताब्दी तक भारत का राजनीतिक इतिहास

जैसा कि यूरोप मे हुआ था, उसके विपरीत अपने अविच्छिन्न व्यापार सूत्रो और बदरगाहो के विकास के परिणामस्वरूप मध्य युग के आरभ म भारत के विभिन्न भाग एक-दूसरे से अलग थलग नही हुए और न भारत को इस काल म यूरोप जैसे सास्कृतिक ह्रास का ही अनुभव करना पडा। लेकिन भारत म भी सामती सबधो का सुदृढीकरण बडे राज्य सघो के अस्तित्व म बाधक सिद्ध हुआ। उसने छोटे छोटे सामती शासको मे प्रतिद्वद्विता और भीषण सघर्ष को जन्म दिया जिसके परिणामस्वरूप देश का राजनीतिक विखडीकरण हुआ। इन अवस्थाओ म देश के विशाल भाग को एकसाथ रखनेवाले गुप्त साम्राज्य को बाद मे भारत का स्वर्णयुग माना जाने लगा।

इस साम्राज्य का जो पाचवी सदी के अत मे कमजोर होने लग गया था, अतत हूण कबीलो के असख्य आक्रमणो के बाद पतन हो गया, यद्यपि स्वय मगध मे गुप्त वश सातवी शताब्दी के अत तक सत्तारूढ बना रहा। ५१० ई० म भी हूण राजा तोरमाण को भानुगुप्त (बालादित्य) ने पराजित किया था, जो वह अतिम गुप्त शासक है, जिसके बारे मे विश्वसनीय सूचना उपलब्ध है। लेकिन फिर भी ५३० ई० के आसपास तक मिहिरगुल (मिहिरकुल) के अधीन हूण केवल उत्तर-पश्चिमी भारत ही नही, बल्कि मालवा और गगा यमुना घाटी मे वर्तमान ग्वालियर तक के प्रदेश पर शासन करने लग गये थे। ऐसा लगता है कि मिहिरगुल अत्यधिक क्रूर और निर्दय विजेता था। आखिर उत्तरी भारत के भारतीय राजा अपनी शक्तियो को एकजुट करने मे सफल हो गये और ५३३ ई० के आसपास उन्होने मिहिरगुल को बुरी तरह पराजित किया।

हूण आक्रमण के समय भारत आकर यहा बस जानेवाले कबीलो ने देश के आगामी इतिहास के दौर पर गहरा प्रभाव डाला। कुछ हूण कबीले उत्तर-पश्चिमी भारत म बस गये और वहा के रहनेवालो के साथ उनका अत मिश्रण

हुआ। इन्हीं कबीलों के साथ गुजर भी आये जो पंजाब सिंध और राजपूताना में बस गये—इनमें से कुछ बाद में मालवा और देश के उस भाग तक भी जा पहुंचे जो कालांतर में उन्हीं के नाम से गुजरात कहलाया। हूणों तथा गुर्जरों और स्थानीय आबादी में घनिष्ठ संपर्कों और अंतर्विवाहों के परिणामस्वरूप एक नया जातीय समूह पैदा हुआ, जो बाद में राजपूत के नाम से विज्ञात हुआ।

सातवीं शती में ही देश के इस भाग में सामंती संबंध जड़ पकड़ने लग गये। आठवीं सदी में राजपूत गंगा घाटी और मध्य भारत के समृद्ध प्रदेशों में पहुंच गये। भारतीय इतिहास में राजपूत सदियों तक एक घनिष्ठत ऐक्यबद्ध जातीय समूह बने रहे है। उनके इलाकों में जड़ जमानेवाले सामंती संबंध कुछ बातों में और जगहों से भिन्न थे। राजपूतों में सामंती सोपान अपेक्षाकृत अधिक जटिल था और सामंती सेवा या जागीरदारी की परंपराओं की जड़ ज्यादा गहरी थी।

छठी शताब्दी के अंत में उत्तरी भारत में सबसे बड़े राज्य ये थे—गौड़ (उत्तरी तथा पश्चिमी बंगाल) मौखरि राज्य (दोआब और गंगा का मध्यवर्ती प्रदेश), जिसकी राजधानी कन्नौज थी और पुष्यभूति राज्य (ऊपरी दोआब और आधुनिक दिल्ली तथा सरहिंद के आसपास का प्रदेश), जिसकी राजधानी स्थानेश्वर (थानेश्वर) थी। इन तीनों राज्यों में आपस में लगातार लड़ाई-झगड़े चलते रहते थे। गौड़ के शासक शशांक (राज्यकाल छठी सदी के अंत से सातवीं सदी के चौथे दशक तक) ने मगध को और पश्चिम में प्रयाग तक के सारे इलाकों को जीत लिया और पूर्व में महेंद्रगिरि तक के इलाकों (वर्तमान ओडिसा) को अपने राज्य में मिला लिया। उसने मालवा के शासक के साथ मौखरियों के विरुद्ध सहबंध बना लिया। मौखरियों ने पुष्यभूतियों के साथ मेल कर लिया, किंतु वे युद्ध में हार गये। पुष्यभूति राजा राज्यवर्धन के वध के बाद उसका छोटा भाई हर्षवर्धन (हर्ष) सिंहासन पर बैठा।

लोकश्रुति के अनुसार हर्ष ने बीस हज़ार अश्वारोहियों, पचास हज़ार पैदलों और पांच हज़ार हाथियों की शक्तिशाली सेना जुटा ली थी। छः वर्ष की अवधि के भीतर, जिसमें इतिवृत्तकार बाण के अनुसार "न हाथियों के साज़ उतारे गये और न सैनिकों ने अपने शिरस्त्राण उतारे", हर्ष ने लगभग सारे ही उत्तर भारत को जीत लिया। लेकिन दकन पर आक्रमण करने के उसके प्रयास का पश्चिमी चालुक्यवंशी शासक पुलकेशी द्वितीय के हाथों नर्मदा के तट पर पराजय में अंत हुआ प्रतीत होता है। तथापि पुलकेशी ने भी उत्तर की तरफ

बढने का कोई प्रयत्न नही किया। शशाक की मृत्यु के बाद हर्ष ने मगध और बगाल पर अधिकार कर लिया। उसने अपने जीवन के अतिम वर्ष विजित प्रदेशो की आर्थिक व्यवस्था तथा प्रशासन सुधारने म व्यतीत किये।

हर्ष का राज्य तेरहवीं सदी के आरभ तक देश के एक बड भाग को एक विशाल साम्राज्य म सयुक्त करनेवाला अतिम राज्य था। तथापि साम्राज्य के विभिन्न भागो मे सबध गुप्त काल की अपेक्षा कमजोर थे। साम्राज्य के छोटे म भाग पर ही केंद्र का प्रत्यक्ष शासन था, उसके अधिकाश पर अधीनस्थ राजाओ का राज था जिन्हे आतरिक मामलो मे काफी अधिकार प्राप्त थे। इसके अलावा साम्राज्य के सीमात उत्तरी भारत क आगे नही जाते थे और मालवा तथा राजपूताना के कुछ भाग स्वतत्र ही बने रहे थे।

हर्ष के कारनामो के बारे मे मुख्यत बाण द्वारा रचित प्रशस्ति हर्षचरित और उसके राज्यकाल म भारत की यात्रा करनेवाले चीनी बौद्ध तीर्थयात्री हुएनत्साग के लिखे यात्रावृत्तात की बदौलत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। बाण के अनुसार हर्ष के साम्राज्य मे लगान उपज का छठा भाग था। इसके अलावा राजकोष मे कई आतरिक शुल्को ओर बाजार महसूलो से भी धन आता था।

यद्यपि हर्ष के पूर्वज शैव थे, पर वह स्वय बौद्ध था। बौद्ध विहारो के निर्माण पर उसने काफी शक्ति और साधनो का व्यय किया। उसके राज्यकाल म नालदा (पटना के निकट) के विराट बौद्ध विहार तथा विश्वविद्यालय की ख्याति भारत के सीमातो के बाहर भी दूर-दूर तक फैल गयी थी, जिसम हजारो विद्यार्थी रहते और शिक्षा प्राप्त करते थे। इस विश्वविद्यालय के बहुमजिला शैक्षिक तथा आवास भवन अत्यत विस्तृत क्षेत्र पर फैले हुए थे। लेकिन उस समय बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्टत उतार पर था और शिव, विष्णु तथा सूर्य जैसे ब्राह्मण देवता अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे।

हर्ष का साम्राज्य कोई तीस वर्ष तक बना रहा। उसकी मृत्यु के बाद साम्राज्य विच्छिन्न हो गया और उसके बाद सदियो तक भारत नानाविध राज्यो मे बटा रहा। इनम से कुछ खासे बडे थे किंतु उनमे से किसी म भी देश का बहुत बडा भाग शामिल नही था, जैसा कि मौर्य तथा गुप्त साम्राज्यो के मामले मे था। ये आपस मे निरतर लडते और फिर भिडने के पहले अल्पकालिक सश्रय बनाते रहते थे। इस काल के घटनाक्रम के नानारूप और निरतर बदलते चित्र का वर्णन करना अत्यत कठिन है, इसलिए सबसे प्रसिद्ध नामो और घटनाओ का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना ही सबसे उपयुक्त रहेगा।

दक्षिणी भारत मे आपस मे निरतर युद्धरत राज्यो मे वातापि के चालुक्य वशियो का राज्य, जिन्होंने अपने शासक पुलकेशी द्वितीय की हर्ष पर विजय के वाद प्रमुखता प्राप्त कर ली थी और पल्लव तथा पाड्य राज्य मुख्य थे। पुलकेशी ने सम्राट की उपाधि ग्रहण की थी और उसके भाई, जो गुजरात तथा पूर्वी दक्षिणापथ (दकन) के शासक थे, उसके प्रभुत्व को स्वीकार करते थे। लेकिन बाद मे चालुक्यो पर पल्लवो (जिनकी राजधानी काचीपुरम थी) और पाडयो (जिनकी राजधानी मदुरई थी) ने आक्रमण कर दिया। पाड्यो ने धीरे-धीरे एक शक्तिशाली जगी बेडा बना लिया था, जिसकी बदौलत उन्होने अस्थायी अवधियो के लिए श्रीलका को भी अपन नियत्रण मे ले लिया था। पल्लवो ने ६४० ई० मे चालुक्यो को बुरी तरह पराजित किया। पुलकेशी द्वितीय मारा गया और उसकी राजधानी को घेरे मे ले लिया गया। तथापि पुलकेशी के उत्तराधिकारियो ने उसके राज्य के अधिकाश को अक्षत बनाये रखा और कई बार तो दक्षिण की तरफ बढकर नये प्रदेशो को जीतने मे भी सफलता प्राप्त की।

पल्लवो ने भारतीय सस्कृति पर काफी प्रभाव डाला – महाबलिपुरम मे समुद्रतट पर चट्टान को काटकर पाच रथमदिरो का निर्माण किया गया और यहा प्रयुक्त वास्तुशैली कालातर म सारे ही दकन मे फैल गयी जिसमे लगभग पूरा का पूरा मदिर ही तक्षित तथा निम्न-उदभृत मूर्तियो के समूहो से आच्छादित है। इस शैली ने दक्षिण पूर्वी एशिया की कला-शैलियो पर भी अपना प्रभाव डाला, क्योकि पल्लव राज्य बडे पैमाने पर समुद्रपार व्यापार करता था – आज के इडोनेशिया और कपूचिया मे उस समय दक्षिणी भारतीय व्यापारियो की बडी बडी बस्तिया थी। पश्चिमी चालुक्य राज्य आठवी शताब्दी के मध्य तक बना रहा, जब चालुक्य शासक कीर्तिवर्मा (कीर्तिवर्मन) द्वितीय को महाराष्ट्र के राष्ट्रकूटो ने पराजित किया। इसके बाद कोई दो सदी दकन पर राटकूटो का प्रभुत्व बना रहा। ऐलोरा (वर्तमान औरगाबाद के निकट) मे चट्टान को तराशकर बनाये गये विख्यात कैलाश मदिर के रूप मे राष्ट्रकूट अपने राज्यकाल का स्थायी स्मारक खडा कर गये है।

अपने चरमोत्कर्ष काल मे राष्ट्रकूटो ने उत्तर भारत पर कई धावे बोले। उन्हे मुख्यत बिहार तथा बगाल के पाल शासको और गुर्जर-प्रतिहारो (जिनकी राजधानी कन्नौज थी) के विरोध का सामना करना पडा। इन तीनो राज्या म सघर्ष का मुख्य क्षेत्र गगा और यमुना का उपजाऊ दोआब था। उत्तरी भाग्न म भी इस समय कई छोटे-बडे राज्य थे, यथा चदेलवशी, जिन्होंने खजुराहा म

विश्वप्रसिद्ध मंदिर का निर्माण करवाया था और तोमर, जिनकी राजधानी धिल्लिका (वर्तमान दिल्ली) थी।

दसवीं सदी में उत्तरी भारत की ये तीनों शक्तियां उतार पर थीं। छोटे अधीनस्थ रजवाड़े बलवान होते जा रहे थे, अपने प्रदेशों का प्रसार कर रहे थे और धीरे धीरे अपने भूतपूर्व स्वामियों का स्थान लेते जा रहे थे। उदाहरण के लिए गुर्जर प्रतिहार राज्यक्षेत्र में परमारों, चंदेलों, गहलोतों, चौहानों (चाहमानों) और सोलंकियों (चालुक्यों) के स्वतंत्र राज्य पैदा हो गये। पाल राज्य कई छोटे प्रदेशों में विभक्त हो गया, जिनमें सबसे शक्तिशाली सेन राज्य था। चौहानों का पूर्वी तथा मध्य राजस्थान और गुजरात के कुछ भाग पर शासन था, परमारों का पश्चिमी राजस्थान, गुजरात और दक्कन पर कई धावे बोले, केंद्रस्थल मालवा था। तथापि ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य तक परमार राज्य कमजोर हो चुका था। बुंदेलखंड चंदेल राज्य का केंद्र बन गया, मगर दोआब का कुछ भाग, वाराणसी और बिहार के कुछ भाग भी उसके अधीन थे। मध्य भारत में कलचुरि (हैहय) वंश ने, जिनका प्रदेश पहले राष्ट्रकूटों का अधीनस्थ था, अपना स्वतंत्र राज्य (चेदि) स्थापित कर लिया, जो तेरहवीं सदी तक स्वतंत्र बना रहा। उत्तरी गुजरात में सोलंकी राजवंश (चालुक्यवंशियों) ने मजबूती के साथ अपनी जड़ें जमा लीं।

पल्लवों और पांड्यों में शत्रुता ने दोनों ही राज्यों की शक्ति का तलोच्छेदन किया। उरायूर के आसपास छोटे से इलाके पर शासन करनेवाले तमिलभाषी चोल राज्य ने अब प्रमुखता प्राप्त कर ली। ८९३ की लड़ाई में चोलों ने पल्लवों को निर्णायक रूप में पराजित किया और ९१५ में पांड्यों को भी बुरी तरह परास्त करने के बाद उन्होंने लगभग उस सारे प्रदेश को अपने शासन के अंतर्गत ऐक्यबद्ध कर लिया, जो अब तमिलनाडू के नाम से जाना जाता है। चोलों से लगातार युद्धों और उत्तरी भारत पर प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए अपेक्षित निरंतर प्रयासों ने राष्ट्रकूटों को कमजोर कर दिया और ९७३ में चालुक्य शासक तैलप (तैल) द्वितीय ने अंतिम राष्ट्रकूट शासक कर्क द्वितीय को परास्त करके नये अथवा उत्तर चालुक्य (कल्याणी के चालुक्य) वंश के राज्य की स्थापना की। शक्तिशाली राष्ट्रकूट वंश के पतन के परिणामस्वरूप चोलों के लिए दक्षिण भारत पर अगले दो सौ वर्ष अपना प्रभुत्व बनाये रखना संभव हो गया। ग्यारहवीं शताब्दी में चोल उत्कर्षमान थे। राजराज प्रथम (९८५–१०१५) तथा राजेंद्र प्रथम (१०१५–१०४४) के राज्यकालों में चालों का वेंगी के पूर्वी चालुक्यों के साथ दीर्घकालिक संघर्ष चला, जिन्हें उन्होंने

अत मे अपना करद बना लिया किंतु पूर्णत अधीनस्थ न कर सके। लेकिन दूसरी तरफ, चोल श्रीलका को अपने अधिकार म ले लेने म सफल हो गये और वहा उन्होंने मजबूती के साथ और काफी समय के लिए अपनी जडे जमा लीं। श्रीलका की वर्तमान आबादी का कुछ भाग आज भी तमिल मूल का ही है। इसके अलावा चोलो का श्रीविजय राज्य के साथ भी युद्ध चला जिसका केंद्र सुमात्रा था और जावा तथा मलक्का प्रायद्वीप के कुछ भागो पर भी नियत्रण था। चोलो ने १०२५ मे श्रीविजय राज्य के कुछ प्रदेश पर अधिकार जमा लिया, पर उन्हे बाद म वहा से निकाल दिया गया। स्वय भारत मे चोल राज्य वर्तमान कर्णाटक तथा केरल राज्यो के प्रदेश पर फैला हुआ था। चोलो न कल्याणी के चालुक्यो को कई बार पराजित किया और ओडिसा तथा बगाल म दीर्घकालिक सैन्य अभियान चलाया जिसके दौरान – लोकश्रुति के अनुसार – वे गगा नदी तक जा पहुचे।

अपनी शक्तिशाली सेना, सुसज्जित बेडे और श्रीविजय तथा अरब सागरीय देशो के साथ अपने व्यापारिक सबधो की बदौलत चोल खूब फूले फले और अत्यत धनवान बन गये। उन्होने अनेक भव्य मदिरो का निर्माण करवाया (उदाहरण के लिए चिदबरम मे)। उनके राज्यकाल मे असख्य कास्य देव प्रतिमाए बनायी गयी। १०७० म चोल तथा वेगी के पूर्वी चालुक्य वश सयुक्त हो गये और इस प्रकार एक नये चालुक्य चोल वश की स्थापना हुई। बारहवी शताब्दी के आरभ तक चोल राज्य मे कृष्णा तथा तुगभद्रा नदियो के नीचे सारा दक्षिणी भारत शामिल हो चुका था और पूर्व मे वह गोदावरी तक फैला हुआ था। तथापि सामतवाद की विकास प्रक्रिया के चलते रहने से अत मे चोल साम्राज्य विखडित हो गया। साम्राज्य के सीमातक प्रदेशो मे स्वाधीन रजवाडे पैदा हो गये, जो औपचारिक रूप म चोल आधिपत्य मे होने पर भी व्यवहार मे केंद्रीय सरकार की पूर्णत उपेक्षा करते थे और आपस मे अपनी मरजी के मुताबिक लडाइया और सधिया किया करते थे। धीरे धीरे दक्षिणी भारत मे द्वारसमुद्र के होयसल देवगिरि के यादव और वारगल के काकतीय वशो न और पाड्यो ने जिन्होने तमिलनाडू के दक्षिणी भाग मे प्रभुत्व स्थापित कर लिया था, प्रामुख्य प्राप्त कर लिया। बारहवी सदी के अत मे चोल राजाओ के अधिकार मे तजावूर (तजौर) क्षेत्र मे एक नगण्य राज्य ही रह गया था। सिघण के राज्यकाल (१२००–१२४७) मे यादव अपने उत्कर्ष के शिखर पर पहुच गये थे। कृष्णा तथा नर्मदा नदियो के बीच का सारा दकन उनके राज्य का अग था।

विश्वप्रसिद्ध मंदिरो का निर्माण करवाया था और तोमर, जिनकी राजधानी धिल्लिका (वर्तमान दिल्ली) थी।

दसवी सदी म उत्तरी भारत की ये तीनो शक्तिया उतार पर थी। छोटे अधीनस्थ रजवाडे बलवान होते जा रहे थे अपने प्रदेशो का प्रसार कर रहे थे और धीरे धीरे अपने भूतपूर्व स्वामियो का स्थान लेते जा रह थे। उदाहरण के लिए गुर्जर-प्रतिहार राज्यक्षेत्र म परमारो, चदेलो, गहलोतो, चौहानो (चाहमानो) और सोलकियो (चालुक्यो) के स्वतत्र राज्य पैदा हो गये। पाल राज्य कई छोटे प्रदेशो मे विभक्त हो गया जिनमे सबसे शक्तिशाली सेन राज्य था। चौहानो का पूर्वी तथा मध्य राजस्थान और गुजरात के कुछ भाग पर शासन था परमारो का, जिन्होने राजस्थान गुजरात और दक्न पर कई धावे बोले, केंद्रस्थल मालवा था। तथापि ग्यारहवी शताब्दी के मध्य तक परमार राज्य कमजोर हो चुका था। बुदेलखड चदेल राज्य का कद्र बन गया, मगर दोआब का कुछ भाग वाराणसी और बिहार के कुछ भाग भी उसके अधीन थे। मध्य भारत मे कलचूरि (हैहय) वश ने, जिनका प्रदेश पहले राष्ट्रकूटो के अधीनस्थ था, अपना स्वतत्र राज्य (चेदि) स्थापित कर लिया, जो तेरहवी सदी तक स्वतत्र बना रहा। उत्तरी गुजरात मे सोलकी राजवश (चालुक्यवशियो) न मजबूती के साथ अपनी जडे जमा ली।

पल्लवो और पाड्यो म शत्रुता ने दोनो ही राज्यो की शक्ति का तलाच्छदन किया। उरायूर के आसपास छोटे स इलाके पर शासन करनेवाले तमिलभाषी चोल राज्य ने अब प्रमुखता प्राप्त कर ली। ८६३ की लडाई मे चोलो ने पल्लवो को निर्णायक रूप मे पराजित किया और ६१५ मे पाड्यो को भी बुरी तरह परास्त करने के बाद उन्होने लगभग उस सारे प्रदेश को अपने शासन के अतर्गत ऐक्यबद्ध कर लिया, जो अब तमिलनाडू के नाम से जाना जाता है। चोलो से लगातार युद्धो और उत्तरी भारत पर प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए अपेक्षित निरतर प्रयासो ने राष्ट्रकूटो को कमजोर कर दिया और ६७३ मे चालुक्य शासक तैलप (तैल) द्वितीय ने अतिम राष्ट्रकूट शासक कक्कर्क द्वितीय को परास्त करके नये अथवा उत्तर चालुक्य (कल्याणी के चालुक्य) वश के राज्य की स्थापना की। शक्तिशाली राष्ट्रकूट वश के पतन के परिणामस्वरूप चोलो के लिए दक्षिण भारत पर अगले दो सौ वर्ष अपना प्रभुत्व बनाये रखना सभव हो गया। ग्यारहवी शताब्दी मे चोल उत्कर्षमान थे। राजराज प्रथम (६८५-१०१५) तथा राजेद्र प्रथम (१०१५ – १०४४) के राज्यकालो म चोलो का वेगी के पूर्वी चालुक्यो के साथ दीर्घकालिक सघर्ष चला, जिन्हे उन्होने

अत मे अपना करद बना लिया, किंतु पूर्णत अधीनस्थ न कर सके। लेकिन दूसरी तरफ, चोल श्रीलका को अपने अधिकार म ले लेने मे सफल हो गये और वहा उन्होंने मजबूती के साथ और काफी समय के लिए अपनी जडे जमा लीं। श्रीलका की वर्तमान आबादी का कुछ भाग आज भी तमिल मूल का ही है। इसके अलावा चोलो का श्रीविजय राज्य क साथ भी युद्ध चला जिसका केंद्र सुमात्रा था और जावा तथा मलक्का प्रायद्वीप के कुछ भागो पर भी नियत्रण था। चोलो ने १०२५ मे श्रीविजय राज्य के कुछ प्रदश पर अधिकार जमा लिया, पर उन्हे बाद म वहा से निकाल दिया गया। स्वय भारत म चोल राज्य वर्तमान कर्णाटक तथा केरल राज्यो के प्रदेश पर फैला हुआ था। चोलो ने कल्याणी के चालुक्यो को कई बार पराजित किया और ओडिसा तथा बगाल मे दीर्घकालिक सैन्य अभियान चलाया जिसके दौरान – लोकश्रुति के अनुसार – वे गगा नदी तक जा पहुचे।

अपनी शक्तिशाली सेना सुसज्जित बडे और श्रीविजय तथा अरब सागरीय देशो के साथ अपन व्यापारिक सबधो की बदौलत चोल खूब फूले फले और अत्यत धनवान बन गये। उन्होंने अनेक भव्य मदिरो का निर्माण करवाया (उदाहरण के लिए चिदबरम मे)। उनके राज्यकाल मे असख्य कास्य देव प्रतिमाए बनायी गयी। १०७० म चोल तथा वेगी के पूर्वी चालुक्य वश सयुक्त हो गये और इस प्रकार एक नये चालुक्य-चोल वश की स्थापना हुई। बारहवी शताब्दी के आरभ तक चोल राज्य मे कृष्णा तथा तुगभद्रा नदियो के नीचे सारा दक्षिणी भारत शामिल हो चुका था और पूर्व मे वह गोदावरी तक फैला हुआ था। तथापि सामतवाद की विकास प्रक्रिया के चलते रहने से अत मे चोल साम्राज्य विखडित हो गया। साम्राज्य के सीमातक प्रदेशो मे स्वाधीन रजवाड पैदा हो गये, जो औपचारिक रूप मे चोल आधिपत्य मे होने पर भी व्यवहार मे केंद्रीय सरकार की पूर्णत उपेक्षा करते थे और आपस मे अपनी मरजी क मुताबिक लडाइया और सधिया किया करत थे। धीरे धीरे दक्षिणी भारत मे द्वारसमुद्र के होयसल, देवगिरि के यादव और वारगल के काकतीय वशो ने और पाड्यो ने, जिन्होंने तमिलनाडू के दक्षिणी भाग मे प्रभुत्व स्थापित कर लिया था, प्रामुख्य प्राप्त कर लिया। बारहवी सदी के अत म चोल राजाओ के अधिकार मे तजावूर (तजौर) क्षेत्र मे एक नगण्य राज्य ही रह गया था। सिघण के राज्यकाल (१२००–१२४७) मे यादव अपने उत्कर्ष के शिखर पर पहुच गये थे। कृष्णा तथा नर्मदा नदियो के बीच का सारा दकन उनके राज्य का अग था।

उत्तरी भारत म तो और भी प्रचड विखडीकरण हो रहा था। यहा चौहानो (जिनकी राजधानी कभी अजमेर, तो कभी दिल्ली रहती थी) और गहडवालो (जिनके राज्य मे आधुनिक उत्तर प्रदेश और बिहार आते थे) मे भयकर सघर्ष चल रहा था। लेकिन बाद मे जब खुरासानी सेनाओ का आक्रमण हुआ तो ये राज्य उसे न झेल सके। बारहवी सदी म उत्तरी भारत मे खासे बड आकार का बस एक ही राज्य रह गया था और वह था बगाल मे सेन वश का राज्य।

ग्यारहवी सदी के शुरू से भारत पर उत्तर मे मुसलमानो के हमले होने लगे। बारहवी सदी के अत मे उन्होने बडे-बडे भारतीय प्रदेशो पर अधिकार करना शुरू कर दिया और इसके परिणामस्वरूप भारत मे सर्वथा नयी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी।

सामती सबधो का विकास
(छठी से बारहवी सदी)

इधर राजनीतिक मच पर निरतर बदलते राज्यो और राजाओ के आने जाने और उनके बीच लडाइयो और सधियो का सिलसिला चल रहा था और उधर भारतीय समाज के सामाजिक आर्थिक जीवन मे सामतीकरण की एक लबी तथा क्रमिक प्रक्रिया भी चल रही थी। यह प्रक्रिया दो स्तरो पर चल रही थी। एक तरफ तो ऐसी जमीनो को कि जिनसे लगान की प्राप्ति होती था अधिकाधिक अनुदानो या माफियो की तरह बाटा जा रहा था। अनुदानग्राही-माफीदार – केद्रीय सरकार के सदर्भ म और अपने अधीन निवासियो के सदर्भ म भी अधिकाधिक अधिकारो का उपभोग करने लगे। दूसरी तरफ स्वय ग्राम समुदाय म भी ग्रामाधिकारी – विशेषकर मुखिया लोग – ग्रामवासियो के मुकाबले लगातार अधिक अधिकार प्राप्त करते गये, अपने गाव के भीतर लगान के निर्धारण म सबधित उनके अधिकार का महत्व बढ गया। इसका मतलब यह था कि जहा पहले उनका सरोकार का मुख्य विषय ग्राम समुदाय के हितो की रक्षा करना था वहा अब राजकीय तत्र के अग ग्राम प्रशासको के नाते उनकी भूमिका न सर्वाधिक महत्व ग्रहण कर लिया। महत्वपूर्ण सामुदायिक मामलो और गाव की अकृष्ट जमीन के प्रयोग म न्याय जान के ढग पर अपना नियत्रण स्वय भूसपत्ति का अर्जन करने और अन्य ग्रामीणो की नि

सेवाओ के उपयोग के जरिये कुछ मुखिया धीरे धीरे व्यवहार मे छोटे सामतो जैसे बन गये थे और कालातर म उनकी हैसियत को राजाज्ञाओ द्वारा विधिक मान्यता भी प्रदान कर दी गयी। लेकिन ऐतिहासिक दस्तावेजो मे काश्तकारो की कतारो से नये सामता के इस प्रकार उदित होने की प्रक्रिया की बहुत ही कम जानकारी मिल पाती है।

इस काल (छठी से बारहवी शताब्दी) के अधिकाश अभिलेखो म शासक की धर्मपरायणता पर जोर देन के लिए ब्राह्मणो को दिये भूमि अनुदानो का ही उल्लेख मिलता है। ये सनातन ' अनुदान थे और इन्ह टिकाऊ सामग्री पर — आम तौर पर ताम्रपत्रो पर — अभिलिखत किया जाता था। लेकिन सामान्य नागरिको को जो कुछ अनुदान दिय गये थे और जिन्हे नाशवान ताडपत्र (दक्षिण भारत मे उस समय प्रयुक्त सामान्य लेख सामग्री) पर नही वरन ताम्रपत्र पर अभिलिखित किया गया है वे ब्राह्मणो को दिये अनुदानो से मिलते है यद्यपि यह सभव है कि उस समय सेवा काल के लिए सीमित अनुदान भी होते थे।

सामान्यत — और विशेषकर बगाल मे — ये अनुदान सामतो द्वारा किय जाते थे। लेकिन उत्तरी भारत मे गुजर-प्रतिहार राज्य मे इस प्रकार के अनुदान केद्रीय प्रशासनागो की सहमति से या उनकी जानकारी के बिना भी, ऐसे अधीनस्थ सामतो द्वारा दिये जाते थे जिनके इलाके सीमात प्रदेशो मे स्थित थे। दसवी सदी मे बडे राज्यो के अपकर्ष के बाद इस प्रकार के अनुदानो का दिया जाना खासकर आम हो गया।

अभिलेखो मे उल्लिखित विभिन्न सत्ताधारियो — राजाओ प्रातपतियो जिलाधीशो, आदि — की उपाधिया सुविकसित सामती प्रशासनतत्र के अस्तित्व की ओर इगित करती है, विशेषकर बगाल मे। उत्तर मे प्रशासनिक पदो की सख्या काफी कम थी जिससे यही प्रतीत होता है कि वहा स्थानीय सामतो को अधिक स्वतत्रता प्राप्त थी।

भू अनुदान प्राप्त करनवाले अधिकाधिक प्रशासनिक तथा विधिक उन्मुक्ति प्राप्त करते गये। उन्हे अपने इलाको मे रहनेवालो की उस समय अदालतो द्वारा मान्य 'दस अपराधो" के सिलसिले मे सुनवाई करने का अधिकार था। राज्याधिकारियो का सामान्यत इस तरह की माफियो मे प्रवेश वर्जित था। इसका मतलब यह था कि काश्तकार माफीदारो के अधिकाधिक अधीन होते चले गये। राज्य आम तौर पर गभीर अपराधो का, जिनमे मृत्युदड दिया जा सकता था, विचार करने का अधिकार ही अपने लिए रक्षित रखता था।

अवसर — और खासकर बारहवीं सदी के बाद से — जागीरों के स्वामी ही सामुदायिक लगान के भी प्रभारी बन गये।

इस जमाने के अभिलेखों में उन करों का भी उल्लेख है, जिनसे भोक्ताओं को छूट मिली हुई थी। करों की सूची आम तौर पर बढ़ती ही जाती थी, विशेषकर दसवीं शताब्दी में। उल्लिखित करों में विवाह कर, संतानहोनेपर कर, त्योहार कर या भूस्वामी के पारिवारिक उत्सवों-समारोहों के अवसर पर कर भी हैं। राजाज्ञाओं की प्राप्ति पर अथवा गांव में आनेवाले अधिकारियों के स्वागत-सत्कार तथा आवास पर जमा किये जानेवाले शुल्कों, न्यायालयों द्वारा किये जुरमानों महसूलों आदि का भी उल्लेख है। इस उलझाव को सुधारने अर्थात इन वसूलियों को एक ही बुनियादी कर में संयुक्त करने के भी कई प्रयास किये गये। लेकिन देर-अबेर नये-नये कर लगाये ही जाते रहते थे और इससे हालत फिर पूर्ववत हो जाती थी। इससे लोगों के बढ़ते विनाशी उत्पीडन और ग्रामीणों की अधिकाधिक पराधीनता का प्रतिबिंब होता है। राजस्व की भारी मांगों के बोझ के मारे ग्राम समुदायों के सदस्य व्यवहार में अपनी निजी स्वतंत्रता से वंचित होते जा रहे थे।

करों के साथ-साथ बेगार की किस्में भी बढ़ती गयीं, जो अनिवार्य सेवा का ही एक स्वरूप थी। किसानों को पुलों और सड़कों के रख रखाव का ध्यान रखना होता था, गांव आनेवाले अधिकारियों की जरूरतों का ध्यान रखना होता था और विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्यों में भाग लेना होता था। लेकिन यह कहना कठिन है कि उन्हें माफीदार (सामंत) के खेतों पर भी काम करना पड़ता था या नहीं। अभिलेखों में यही कहा गया है कि अनुदानग्राही को ' जमीन को जोतने या उसे जुतवाने " का अधिकार है, किंतु यह स्पष्ट नहीं है कि इसमें बेगार (अनिवार्य खिदमत) सन्निहित है या यह बटाईदारी के आरंभ का परिचायक है। तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि ग्रामीणों का बेगार का व्यापक उपयोग किया जाता था।

वास्तविक शासकों को छोड़कर सामंती संस्तर में सबसे संपन्न निस्संदेह 'सामूहिक स्वामी ' — हिंदू मंदिर और मठ विहार ही थे। उस समय धार्मिक संस्थाओं को दिये जानेवाले अनुदानों और पुरोहितों तथा साधुओं को दिये जानेवाले अनुदानों में अंतर था, जब जमीनों, गांवों अथवा गांवों के हिस्सों का अलग अलग ब्राह्मणों को अथवा ब्राह्मणों के समूहों को अनुदान किया जा सकता था, जो प्राप्त लगान को आपस में बांट लेते थे। ब्राह्मणों को दिये इस तरह के गांवों के प्रशासन संबंधी सभी प्रश्न ब्राह्मण सभा द्वारा निपटाये जाते थे। यह

सभा लगान के बटवारे से सबधित प्रश्नो का भी निर्णय करती थी – और ऐसा वह आम तौर पर मदा मदा के आधार पर ही करती थी।

ब्राह्मण सभा और ग्राम समुदाय अथवा पचायत मे यह भेद था कि सभा मे केवल भूस्वामी ही होते थे यद्यपि कभी-कभी ब्राह्मणो की ये माफिया वशजो मे इतनी बार बट चुकी होती थी कि उनके और अन्य ग्रामीणो के सामान्य खेतो के आकारो मे कोई अतर नही रहता था। धार्मिक सस्थाए अपनी सपत्ति को विभाजित नही करती थी, बल्कि इसके विपरीत धर्मभीरु राजाओ सामतो और ग्राम समुदायो से प्राप्त दानो और भेटो से और जमीन की खरीद तथा रहन, आदि के जरिये उसकी वृद्धि ही करती रहती थी। धार्मिक सस्थाओ को दी गयी माफिया सामान्यत लगान से मुक्त होती थी और इसक अलावा उन्हे तरह-तरह की छूटे और उन्मुक्तिया मिली होती थी।

उपलब्ध अभिलेखो से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आरभ मे केवल अकृष्ट भूमि का ही अनुदान किया जाता था। मदिर को देन के लिए राजा अथवा सामत को सबसे पहले जमीन को खरीदना होता था क्योकि देवभूमि (मदिर की जमीन) का राजस्व सबधी दायित्वो से मुक्त होना आवश्यक था। मध्ययुगीन भारत मे ज़मीन – और विशेषकर अब तक काश्त म न लायी गयी – को अकसर खरीदा बेचा जाता था, यद्यपि इसके लिए हर मामले मे ग्राम पचायत की अथवा ऐसे किसी भी अन्य समूह की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक था कि जिसका उस पर स्वामित्व होता था। तरहवी-चौदहवी सदी के बाद ज़मीन के क्रय-विक्रय से सबद्ध प्रतिबध बढा दिये गये। इसकी सभावना है कि अपनी माफी की जमीनो पर मदिरो और मठो ने खेती शुरू कर दी हो, जिसमे मठवासियो के अलावा दासो और बटाईदारो तथा उजरती मजदूरो के श्रम का भी उपयोग किया जाता था। छठी आठवी सदियो मे मदिरो का माफी म पूरे के पूर गाव भी पाना आम हो गया, जिनके निवासी पुरोहितो अथवा महतो के लिए जमीन को काश्त किया करते थे। यह एक ज्ञात तथ्य है कि सातवी आठवी सदी मे मदिर जिस रूप लगान वसूल किया करते थे। खाद्य पदार्थो के अलावा ग्रामीणो को मदिर को पूजा-उपासना के लिए आवश्यक धूप, तेल घी, फूल और हार तथा वस्त्र जैसी सभी चीज प्रदान करनी पडती थी।

आम तौर पर देवभूमियो का प्रबध ब्राह्मणो और अन्य जातियो के प्रमुखो की परिषदे करती थी। मदिरो मे बहुत स लोग काम किया करते थे – लिपिक शिल्पकार, गायक सगीतज्ञ, नर्तकिया आदि। दक्षिणी भारत म मदिरो

की भूसपदाए विशपकर बहुत वडी बडी और सुव्यस्थित तथा सुप्रशासित था।

यद्यपि जमीन मदिरो को ' यावच्चद्रदिवाकरौ " दी जाती थी और अभिलेखो म ऐसी जमीन का अतिक्रमण करनवालो को अभिशप्त किया गया है, फिर भी ऐतिहासिक सामग्री से यह प्रकट होता है कि बहुधा, और विशेषकर उथल पुथल के समयो पर जब एक राजवश या दूसरा तख्ता उलटता था, या जब स्थानीय आबादी को विदेशी विजेताओ के आक्रमण का सामना करना होता था तब न केवल सामतो ही, बल्कि ब्राह्मणो और मदिरो की जायदाद भी राज्य द्वारा जब्त कर ली जाया करती थी। उस काल म राजकीय स्वामित्व की जमीन और अलग अलग सामतो की जमीन के अनुपात के लगातार बदलते रहने के मूल म यही कारण है।

लेकिन इन सभी बातो के बावजूद भारत मे ग्राम समुदायो के सदस्यो ने अपन अधिकारो – केवल वैयक्तिक स्वतत्रता के ही नही, बल्कि कुछेक अन्य अधिकारो तथा विशेषाधिकारो -- को बनाये रखा। भूमि-अनुदान सारी स्थानीय आबादी – निम्नतम जातियो सहित – की उपस्थिति मे किय जाते थे (बगाल के बारे म यह बात विशेषकर लागू होती है)। दानपत्रो मे "महत्तरा' - समुदाय के प्रतिष्ठित लोगो – का विशेष उल्लेख किया जाता था, जिनमे प्रकटत मुखिया और पटवारी भी होते थे।

दक्षिणी महाराष्ट्र के एक दानपत्र मे लगान से उमुक्त एक भूखड का उल्लेख है, जिस पर गाव के मुखिया का स्वामित्व था। जैसा कि मध्ययुगीन साहित्यिक कृतियो से प्रकट होता है गावो के मुखिया – ग्रामणी – अपनी सत्ता का उपयोग करके अक्सर रिश्वते लिया करते थे, अपन गाववालो से आदर और भेटो की अपेक्षा करते थे और ग्राम समुदाय के अन्य सदस्यो के मुकाबले काफी सपन्न होते थे और उनका प्रभाव अक्सर गाव की सीमाओ के बाहर तक भी फैला होता था। मध्ययुगीन राजवशो मे से कम से कम एक – राष्ट्रकूट वश – का उदय तो ग्रामीणो के इसी तबके से हुआ था, जैसा कि उसके नाम से प्रकट होता है। सिहासनारूढ होने के बाद राष्ट्रकूटो ने अपने ग्राम्य मूल के बारे मे लज्जा का अनुभव किये बिना ग्राम समुदाय म अपनी स्थिति पर आधारित अपनी उपाधि को ही अपना कुलनाम बना लिया।

मध्य युग म ग्राम समुदाय एक शक्तिशाली सगठन था और केवल सामाजिक तथा आर्थिक भूमिका ही नही, बल्कि राजनीतिक भूमिका भी अदा करता था विशेषकर दक्षिणी भारत म। उत्तर मे शायद ग्राम पचायत आकार मे छोटी और कम प्रभावशाली थी किंतु यहा भी उनमे कई कई ग्रामो अथवा

छोटी इकाइयो यथा कोण, पटक (अर्धग्राम) – का समावेश था। प्रत्येक समुदाय मे "प्रमुख सदस्यो' (पचो) की समिति होती थी, जो ज़मीन की व्यवस्था करती थी और सभी स्थानीय विवादो तथा मुकदमो का निपटारा करती थी। दक्षिण भारत मे समुदाय की परिधि मे पूरा का पूरा जिला (नाडू) तक आ सकता था। कर्णाटक मे बडे ग्राम समुदायो को व्यक्त करने के लिए भौगोलिक नाम के साथ एक सख्या लगा दी जाती थी जैसे बेलवोला-३०० अथवा चिरापी-१२। विद्वानो मे अभी इसक बारे मे महमति नही हो पायी ह कि ये सख्याए क्या दिखलाती थी परतु बहुत सभव है कि समुदाय के क्षेत्राधिकार मे आनेवाले खेतो की सख्या अथवा उसमे सम्मिलित स्थानीय ग्राम पचायतो की सख्या को व्यक्त करती हो।

पचायते अपने प्रशासन और प्रतिरक्षा, किसानो मे पारस्परिक सहायता और सिचाई साधनो के निर्माण की स्वय व्यवस्था करती थी और स्थानीय सामतो की लडाइयो मे भी हिस्सा लेती थी। वे अपन आदेशो को प्रस्तर शिलाओ पर उत्कीर्ण करवाती थी, जिन्हे बहुधा मदिरो की दीवारो मे लगवा दिया जाता था। इस तरह के कामो के लिए धन सामुदायिक शुल्को के रूप मे एकत्र किया जाता था, जो कभी कभी लगान से कम नही होते थे। धीरे-धीरे सामतीकरण की प्रक्रिया की प्रगति के साथ साथ ये बडे समुदाय अपनी स्वायत्त ता को गवाते गये और सामान्य प्रशासनिक इकाइयो मे परिणत होते गये जो शनै-शनै केंद्रीय सत्ता द्वारा नियुक्त स्थानीय अधिकारियो के नियत्रण मे आ गये। बडे ग्राम समुदायो का एक-एक दो दो गावो की इकाइयो मे अतिम विखडन सभवत तेरहवी-चौदहवी सदियो मे हुआ होगा।

मध्ययुगीन भारत की इन ग्राम पचायतो मे कृपिभूमि किसानो मे विभाजित होती थी। दक्षिण भारतीय दस्तावेजो मे ग्यारहवी बारहवी सदियो के बाद से किसानो मे अधिक उर्वर भूखडो का और अधिक सुविधाजनक जगहो पर स्थित खेतो का अधिक न्यायसगत बटवारा करने की दष्टि से भूमि के पुनर्वितरण के उल्लेख मिलते है। लेकिन यह किसी भी प्रकार कोई नियम नही था कि ऐसे पुनर्वितरण किये ही जाने चाहिए और वे पचायती जमीन मे किसान के अपने भाग के स्वामित्वाधिकार को प्रभावित नही करते थे जिसे वह हस्तातरित भी कर सकता था। ग्राम समुदाय का सदस्य भूस्वामी भी होता था और उसे अपने खेतो के साथ कुछ भी करने का अधिकार था – वह उन्हे उत्तरदान म दे सकता था और जमीन को खरीद-बेच भी सकता था यद्यपि ग्राम समुदाय मे जमीन का अन्यसक्रमण केवल समुदाय के नियत्रण मे ही हो सकता था।

परती जमीन समूचे तौर पर पंचायत की होती थी और उस पर लगान नहीं लगता था। ग्यारहवीं-बारहवीं सदियों में ग्रामीण शिल्पकारों को गांव की ग्रामीण आबादी से अलग माना जाता था और समुदाय द्वारा उनका भरण-पोषण किया जाता था। दस्तावेजी सामग्री में उस समय तक ग्राम समुदाय के संगठन के बारे में कोई उल्लेख आता ही नहीं था। पंचायत के भीतर आंतरिक परिवर्तन लगान संबंधी इजारे की हैसियत से उसकी स्थिति को प्रभावित नहीं करते थे। इसलिए सामंत ग्राम्य जीवन और मामलों में दखल नहीं देते थे।

मध्ययुगीन भारत में मानो तीन तरह की दुनियाएं और तीन आर्थिक प्रणालियां थीं – सामंत अथवा देवस्थान का परिसर, ग्राम समुदाय और नगर।

तेरहवीं शताब्दी के शुरू के अंत तक और चौदहवीं सदी में भी नगरों को और विशेषकर दक्षिण भारत के समुद्रतटीय बंदरगाही नगरों को, बहुत स्वायत्तता प्राप्त थी। इन नगरों का प्रबंध नगर सभाओं द्वारा किया जाता था, जिनके सदस्यों में अधिक धनवान और प्रभाववान जातियों – बहुधा व्यापारियों और कभी कभी शिल्पकारों भी (जैसे ठठेर और तेली) – के मुखिया शामिल होते थे। नगर सभा न केवल शांति और व्यवस्था को कायम रखती थी और मुकदमों का फैसला करती थी, बल्कि व्यापार शुल्कों तथा शिल्पकारों से करों का संग्रहण भी करती थी और इन करों अथवा शुल्कों की राशि का स्वयं निर्धारण करती थी। नगर प्रशासन अपने उपक्रम पर धर्मस्थानों को धार्मिक समारोहों तथा धर्मार्थ कार्यों के लिए व्यापार शुल्कों अथवा शिल्पकारों के मकानों पर करों के संग्रहण की बदौलत होनेवाली केवल अपनी आय में से ही दान नहीं दे सकता था, बल्कि नगर के स्वामित्व के अधीन वे भूखंड भी दे सकता था, जो तत्कालीन अभिलेखों के शब्दों में ही 'निर्माणार्थ' प्रयोग में नहीं लाये जाते थे। नगर सभाएं अंतजातीय संगठन थीं और काफी बड़ी हद तक वे स्वायत्त थीं।

उस समय व्यापारियों के संगठन (श्रेणियां) भी थे, जिनकी परिधि में पूरे के पूरे व्यापार क्षेत्र आ जाया करते थे। इनकी एक मिसाल ऐहोले की व्यापारी श्रेणी है, जिसका प्रभाव दक्षिणी भारत के कई क्षेत्रों और दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय व्यापारियों के व्यापार केंद्रों तक फैला हुआ था, यद्यपि उसका केंद्र – ५०० स्वामी परिषद – दक्षिणी भारत के ऐहोले नगर में स्थित था। इसी प्रकार का एक और संगठन मणिग्रामम था, जिसका केंद्र वर्तमान केरल में था। इसका प्रभाव क्षेत्र केवल भारत ही नहीं, वरन मिस्र, अरब और दक्षिण पूर्वी एशिया तक भी फैला हुआ था। पनुगोंडा में केंद्रित

कोमाटी व्यापारी श्रेणी का अठारह नगरो की नगर सभाओ मे प्राधान्य था। इमी प्रकार के अन्य मगठन भी थ।

यह सोचना गलत होगा कि उम काल के भारतीय नगर नये, पूजीवादी सबधो के भ्रूण थे। नगरो को प्राप्त व्यापक स्वायत्तता यही दिखलाती थी कि सामत अभी इस स्थिति म नही थे कि देश की अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक जीवन पर अपना नियत्रण स्थापित कर सके। नगरो मे राजकीय प्रतिनिधियो की उपस्थिति क उल्लेख मिल सकते है, जो कुछ मामलो मे अतिम निर्णय लिया करते थ। जैसे-जैसे सामती राज्य की शक्ति विकसित होती गयी, वैसे वैसे नगर धीर धीरे अपनी स्वायत्तता गवाते गये। करो की वसूली राज्याधिकारियो द्वारा की जाती थी, जो उनकी मात्रा का भी निर्धारण करते थे। छोटी दूकानो और नगरो के शिल्पकार महल्लो से प्राप्त कर सामतो के हाथो मे चले जाते थे। नगर सभाए खत्म हो गयी और व्यापारी श्रेणियो का राजनीतिक प्रभाव जाता रहा और अत म तेरहवी सदी के अत और चौदहवी के आरभ से शासको ने सामतो को पूरे के पूरे शहर देना शुरू कर दिया। चौदहवी शताब्दी के बाद से नगर स्वशासन का व्यावहारिक अर्थो म खात्मा हो चुका था। नगरो मे भी सामत वैस ही स्वेच्छाचारी हो गये कि जैस वे गावो मे थे। तब से अपने धन के बावजूद व्यापारी सामतो की मन मरजी के अधीन हो गये—इस या उस सत्ताधारी को जितनी बडी-बडी रकमो की जरूरत होती थी, व्यापारी अगर वह मुहैया नही कर पाते थे, तो उन्हे सताया जाता था और कैदखाने तक मे डाल दिया जाता था।

उस समय के भारतीय समाज का सामाजिक सगठन जाति पर आधारित था। समाज के चार वर्णो से निर्मित होन के वर्गीकरण को प्राचीन काल से कायम रखा गया था। प्रत्येक वर्ण कितनी ही जातियो मे उपविभाजित था। अधिकाश व्यापारी तथा शिल्पी जातिया श्रम विभाजन के परिणामस्वरूप अस्तित्व मे आयी थी और कुछ अन्य जातियो के उद्‌गम को विभिन्न समूहो के नये इलाको मे जाने मे ढूढा जा सकता था, जहा उनके रीति रिवाज और विश्वासो ने उन्हे स्थानीय आबादी के अधिकाश से अलग कर दिया था। बहुत सी जातिया तत्वत अलग अलग कबीलो से बनी थी, जिन्हे उनके पारपरिक व्यवसायो और सामाजिक कार्यों सहित जाति व्यावस्था के ढाचे मे शामिल कर लिया गया था। हर जाति को एक विशिष्ट मात्रा की "शुद्धि" अथवा 'अशुद्धि' स युक्त माना जाता था और जातिगत सोपान मे अन्य जातियो के सदर्भ मे उसे एक विशिष्ट स्थिति प्राप्त थी।

परती जमीन समूह तौर पर पंचायत की होती थी और उस पर लगान नहीं लगता था। ग्यारहवीं-बारहवीं सदियों में ग्रामीण शिल्पकारों को गाव सभा ग्रामीण आबादी में अलग माना जाता था और समुदाय द्वारा उनका भरण-पोषण किया जाता था। दस्तावेजी सामग्री में उस समय तक ग्राम समुदाय की संरचना के बारे में कोई उल्लेख आता ही नहीं था। पंचायत के भीतर आनेवाले परिवर्तन लगान देनेवाले इकाई की हैसियत से उसकी स्थिति को प्रभावित नहीं करते थे। इसलिए सामंत ग्राम्य जीवन और मामलों में दखल नहीं देते थे।

मध्ययुगीन भारत में मानो तीन तरह की दुनियाएं और तीन आर्थिक प्रणालिया थीं – सामंत अथवा देवस्थान का परिसर, ग्राम समुदाय और नगर।

तेरहवीं शताब्दी के बिल्कुल अंत तक और चौदहवीं सदी में भी नगरों को, और विशेषकर दक्षिण भारत के समुद्रतटीय बंदरगाही नगरों को, बहुत स्वायत्तता प्राप्त थी। इन नगरों का प्रबंध नगर सभाओं द्वारा किया जाता था जिनके सदस्यों में अधिक धनवान और प्रभाववान जातियों – बहुधा व्यापारियों और कभी-कभी शिल्पकारों भी (जैसे ठठेरे और तेली) – के मुखिया शामिल होते थे। नगर सभा न केवल शांति और व्यवस्था को कायम रखती थी और मुकदमों का फैसला करती थी बल्कि व्यापार शुल्कों तथा शिल्पकारों से करों का संग्रहण भी करती थी और इन करों अथवा शुल्कों की राशि का स्वयं निर्धारण करती थी। नगर प्रशासन अपने उपक्रम पर धर्मस्थानों को धार्मिक समारोहों तथा धर्मार्थ कार्यों के लिए व्यापार शुल्कों अथवा शिल्पकारों के मकानों पर करों के संग्रहण की बदौलत होनेवाली केवल अपनी आय में से ही दान नहीं दे सकता था, बल्कि नगर के स्वामित्व के अधीन के भूखंड भी दे सकता था, जो तत्कालीन अभिलेखों के शब्दों में ही 'निर्माणार्थ' प्रयोग में नहीं लाये जाते थे। नगर सभाएं अंतजातीय संगठन थीं और काफी बड़ी हद तक वे स्वायत्त थीं।

उस समय व्यापारियों के संगठन (श्रेणियां) भी थे जिनकी परिधि में पूरे के पूरे व्यापार क्षेत्र आ जाया करते थे। इनकी एक मिसाल ऐहोल की व्यापारी श्रेणी है, जिसका प्रभाव दक्षिणी भारत के कई क्षेत्रों और दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय व्यापारियों के व्यापार केंद्रों तक फैला हुआ था यद्यपि उसका केंद्र – ५०० स्वामी परिषद – दक्षिणी भारत के ऐहोल नगर में स्थित था। इसी प्रकार का एक और संगठन मणिग्रामम् था, जिसका केंद्र वर्तमान केरल में था। इसका प्रभाव क्षेत्र केवल भारत ही नहीं, वरन मिस्र, अरब और दक्षिण पूर्वी एशिया तक भी फैला हुआ था। पेनुगोंडा में कन्नि

कोमाटी व्यापारी श्रेणी का अठारह नगरो की नगर सभाओ मे प्राधान्य था। इसी प्रकार के अन्य सगठन भी थे।

यह सोचना गलत होगा कि उस काल के भारतीय नगर नये, पूजीवादी सबधो के भ्रूण थे। नगरो को प्राप्त व्यापक स्वायत्तता यही दिखलाती थी कि सामत अभी इस स्थिति मे नही थे कि देश की अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक जीवन पर अपना नियत्रण स्थापित कर सके। नगरो मे राजकीय प्रतिनिधियो की उपस्थिति के उल्लेख मिल सकते हैं, जो कुछ मामलो मे अतिम निर्णय लिया करते थे। जैसे जैसे सामती राज्य की शक्ति विकसित होती गयी वैसे-वैसे नगर धीर धीरे अपनी स्वायत्तता गवाते गये। करो की वसूली राज्याधिकारियो द्वारा की जाती थी, जो उनकी मात्रा का भी निर्धारण करते थे। छोटी दूकानो और नगरो के शिल्पकार महल्लो से प्राप्त कर सामतो के हाथो मे चले जाते थे। नगर सभाए खत्म हो गयी और व्यापारी श्रेणियो का राजनीतिक प्रभाव जाता रहा और अत मे तरहवी सदी के अत और चौदहवी क आरभ से शासको न सामतो को पूरे के पूरे शहर देना शुरू कर दिया। चौदहवी शताब्दी के बाद से नगर स्वशासन का व्यावहारिक अर्थो मे खातमा हो चुका था। नगरो मे भी सामत वैस ही स्वेच्छाचारी हो गये कि जैसे वे गावो मे थे। तब स अपन धन के बावजूद व्यापारी सामतो की मन मरजी के अधीन हो गय – इस या उस सत्ताधारी को जितनी बडी बडी रकमो की जरूरत होती थी व्यापारी अगर वह मुहैया नही कर पाते थे, तो उन्हे सताया जाता था और कैदखाने तक मे डाल दिया जाता था।

उस समय के भारतीय समाज का सामाजिक सगठन जाति पर आधारित था। समाज के चार वर्णो से निर्मित होने के वर्गीकरण को प्राचीन काल से कायम रखा गया था। प्रत्यक वर्ण कितनी ही जातियो मे उपविभाजित था। अधिकाश व्यापारी तथा शिल्पी जातिया श्रम विभाजन के परिणामस्वरूप अस्तित्व मे आयी थी और कुछ अन्य जातियो के उद्गम को विभिन्न समूहो के नये इलाको मे जाने मे ढूढा जा सकता था, जहा उनके रीति रिवाज और विश्वासो ने उन्हे स्थानीय आबादी के अधिकाश से अलग कर दिया था। बहुत सी जातिया तत्वत अलग अलग कबीलो से बनी थी, जिन्हे उनके पारपरिक व्यवसायो और सामाजिक कार्यो सहित जाति व्यावस्था के ढाचे मे शामिल कर लिया गया था। हर जाति को एक विशिष्ट मात्रा की ' शुद्धि ' अथवा अशुद्धि " से युक्त माना जाता था और जातिगत सोपान मे अन्य जातियो के सदर्भ मे उसे एक विशिष्ट स्थिति प्राप्त थी।

विभिन्न वर्णों को व्यक्त करनेवाले शब्दों के अंतर्निहित अर्थ भी बदल गये थे। ब्राह्मण अब केवल पुरोहित ही नहीं थे – लगातार बढ़ती संख्या में कितने ही ब्राह्मण भूस्वामी, राज्याधिकारी और सेनानायक बन गये थे। उत्तर भारत में राजपूतों ने अब क्षत्रिय होने का दावा करना शुरू कर दिया था। उनका पारंपरिक व्यवसाय अब सिर्फ लड़ना ही नहीं, खेतीबाड़ी भी हो गया था, चाहे हल को हाथ लगाना राजपूत की शान के खिलाफ समझा जाता था और जोताई-बोआई का काम नौकरों तथा बंधुओं से करवाया जाता था। दक्षिण भारत में क्षत्रिय जातियां व्यवहार में पैदा ही नहीं हुई थीं। वहां पशुपालजीवी तथा कृषिजीवी जातियों के लोगों को शूद्र माना जाता था। फलतः इस वर्ण की वास्तविक स्थिति उन्नत ही हुई – शूद्र ग्राम समुदायों के पूर्णांग सदस्य बन गये और ईसवी संवत की प्रारंभिक सदियों में शिल्पकारों के कुछ अंशकों पर भी यही बात लागू होती थी। व्यापारी तथा धनी शिल्पकार वैश्य होने का दावा करने लगे।

जाति व्यवस्था सामान्यतः समाज में वर्ग विभाजन के अनुरूप थी और उसे धार्मिक अनुमोदन प्रदान करती थी। प्रभावशाली और धनी समूहों को जातीय सोपान में उच्चतम स्थान मिले, जब कि आबादी के निम्नतम सामाजिक-आर्थिक समूहों को निम्न जातियों में स्थान मिला। साथ ही अगर कोई खास व्यक्ति या परिवार उच्चतर सामाजिक स्थिति प्राप्त कर लेते थे – मिसाल के लिए बड़े जमींदार, सेनानायक या राजा तक बन जाते थे, तो उन्हें या कम से कम उनके वंशजों को उच्च जाति से – क्षत्रिय अथवा इतनी ही ऊंची मानी जानेवाली जातियों से – उद्भूत माना जाने लगता था। व्यापार कार्य करनेवाले शूद्रों के पूरे के पूरे समूहों ने इस प्रकार अंततः वैश्यों का दरजा प्राप्त कर लिया। अस्पृश्य लोग तक कभी कभी उन्नत होकर शूद्रों के स्तर तक पहुंच सकते थे या कम से कम उच्चतर जाति के होने का दावा तो कर ही सकते थे। लेकिन साथ ही जातीय सोपान में नीचे खिसकना भी संभव था।

मतलब यह कि जाति व्यवस्था सर्वोपरि विद्यमान सामाजिक व्यवस्था के परिरक्षण में सहायक थी। लेकिन परिवर्तन के मामलों में वह अपने को नयी परिस्थितियों के अनुरूप ढाल भी सकती थी। उस समय तक जाति व्यवस्था वैसी प्रस्तरभूत संस्था नहीं बन पायी थी कि जैसी वह बाद में जाकर बन गयी।

मध्य युग म मनुष्य का विश्व दृष्टिकोण अपने को उसके धार्मिक विश्वासो म अभिव्यक्त करता था। भारत मे धर्म की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण थी। प्रस्तुताधीन काल बौद्ध धर्म के पतन का और हिंदू धर्म के प्रभुत्व के समारभ का युग था। विद्वानो म इस परिघटना म अतर्निहित कारणो के बारे मे सहमति नही है। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि भारत म बौद्ध धर्म क्षत्रियो के प्रभुत्व के साथ जुडा हुआ था जो विशाल साम्राज्यो के सर्वेसर्वा थे। अन्य लोग यह मानते हैं कि विहारो और भिक्षुओ की अपनी अत्यत बहुव्ययी व्यवस्था के कारण बौद्ध धर्म मे अपने को प्रारभिक मध्य युग के अधिक सकीर्ण आर्थिक ढाचे के अनुरूप ढालने की क्षमता नही थी। किसी भी सूरत मे महायान सप्रदाय के रूप मे बौद्ध धर्म का अतिम उत्कर्ष काल हर्ष के साम्राज्य म आया था जब नालदा विश्वविद्यालय म विभिन्न बौद्ध देशो से हजारो छात्र अध्ययन करने के लिए आते थे। बगाल के पाल वश ने भी बौद्ध धर्म को सरक्षण प्रदान किया था। वहा आबादी का खासा बडा हिस्सा बारहवी सदी तक भी बौद्ध धर्म का ही अनुगामी बना रहा। दक्षिणी भारत मे बौद्ध धर्म का अपकर्ष आठवी सदी मे ही शुरू हो गया था।

किंतु धर्म मे इस परिवर्तन से जीवन प्रणाली म कोई परिवर्तन नही आया। हिंदू धर्म म नाना सप्रदाय और धाराए ह जिनमे उपास्य देवताओ तथा धार्मिक और उपासना विधि विधान एव रीति रिवाज दोनो ही की दृष्टि से बहुत भेद है। फिर भी कुछेक प्रथाए और विचार सभी म सामान्य है। धर्म की अवधारणा को बहुत महत्व दिया जाता है जिसमे जातिगत दायित्वो का निष्पादन भी सन्निहित है। हिंदू धर्म यह विचार पोषित करता है कि समाज का जातियो मे विभाजन पूर्वनियत है, जातिया अनिवार्य है और जातीय ढाचे मे प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति उसके पूर्वजन्म के कर्मो द्वारा निर्धारित होती है। मनुष्य की मृत्यु के बाद उसकी आत्मा नही मरती, वरन नये शरीर म चली जाती है और अगला जन्म पूर्वजन्म के कृत्यो तथा आचरण पर निर्भर करता है।

अहिसा की अवधारणा भी सभी हिंदुओ मे सामान्य है। इसके अलावा कई पशुओ को विशेष स्थिति प्राप्त है – गाय को पवित्र तथा उपास्य माना जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक किये जानेवाले शास्त्रविहित कृत्य – सस्कार – भी सभी की सामान्य परपरा के अग है, यद्यपि उनके निष्पादन की तफसीला म

अतर हो सकता है। सभी हिंदुओ के लिए बलिदान आवश्यक था – पशुबलि का भी प्रचलन रहा है किंतु इसमे धूप, पुष्पादि का चढाया जाना भी इतना ही महत्वपूर्ण है। सभी मे ब्राह्मणो, मदिरो और साधु-सन्यासियो को दान-दक्षिणा और भेट उपहार देने की अपेक्षा की जाती है। अपने जातिगत अनुष्ठानो सस्कारो दायित्वो और निषेधो के पालन को भी आवश्यक और देवोपासना के समान ही महत्वपूर्ण माना जाता था।

सबसे अधिक पूजे जानेवाले देवता विष्णु और शिव थे। शिव की उपासना के साथ शिव पत्नी की उपासना भी जुडी हुई थी, जो देश के विभिन्न भागो मे पार्वती दुर्गा, उमा शक्ति, काली आदि नामो से जानी जाती थी। वहा काली को रक्तमय बलि की अपेक्षा करनेवाली विकराल देवी माना जाता था वहा पार्वती और उमा की स्नेहमयी जननी के रूप मे कल्पना की गयी था। यह स्पष्ट है कि इन रूपो मे अनेक भिन्न-भिन्न पथो की परपराओ का सलयन था।

शक्ति की उपासना का व्यापक प्रचलन हो गया। शक्ति का महाशक्तिशाली शिव से उद्भूत माना जाता था और शक्ति की इस उपासना ने शाक्त अथवा तत्र सप्रदाय के रूप मे अपने को हिंदू धर्म की अन्य धाराओ से बिल्कुल अलग कर लिया। इस सप्रदाय के अनुयायी नारी को शक्ति का प्रतीक मानते है और अपने विशेष विधि विधान तथा अनुष्ठानो से उसकी पूजा करते है। तत्र मे अभिचार तथा मत्रादि को विशेष महत्व दिया जाता है और पारपरिक हिंदू धर्म द्वारा सामान्यत निषिद्ध विधि विधान तथा प्रथाओ का भी पालन किया जाता है (मद्य मास मैथुन आदि का विधान)। उस समय तत्र का सबसे अधिक निम्न जातियो और अनार्य कबीलो से उद्भूत जातियो मे प्रचलन था।

छठी शताब्दी के बाद से दक्षिण भारत मे भक्ति का व्यापक प्रचलन हुआ। बारहवी शताब्दी मे लिगायत सप्रदाय के प्रवर्तक बासव ने भक्ति और तत्र का आपस मे सलयन करके पारपरिक हिंदू धर्म की जाति व्यवस्था जैसी आधारभूत मान्यताओ को अस्वीकार किया। बासव का कहना था कि विधि विधान का पालन इतना महत्वपूर्ण नही है जितनी शिवभक्ति है। साथ ही उसने तपस्या के महत्व को भी स्वीकार किया। बारहवी-तेरहवी सदियो मे लिगायतो ने प्रामाणिक हिंदू धर्म तथा जैन धर्म का खुले तौर पर विरोध किया।

सातवी और नवी सदियो के बीच भक्ति ने वैष्णवो को भी प्रभावित किया और बाद मे भक्तिपथ ने इसका बगाल मे प्रचार किया। इस बात का स्पष्ट

हुए कि भक्तिपंथी पारंपरिक हिंदू धर्म के विधि विधान और ब्राह्मणो की अनन्य स्थिति को अस्वीकार करते थे भक्ति का प्रचार सामाजिक विरोध के स्वर को भी मुखर करता था।

छठी सदी से दसवी सदी तक समुद्रतटीन प्रदेशो और विशेषकर बदरगाहो म जैन धर्म सबसे अधिक प्रचलित धर्म था। सबसे प्रसिद्ध जैन मदिर सातवी शताब्दी मे निर्मित ऐहोले (ऐवाले) का मदिर था। मध्य युग मे तीर्थकरो के अनेक अन्य मदिरो और मूर्तियो का भी निर्माण हुआ। तमिल देश म जैनो को विशेष प्रभाव प्राप्त था। लेकिन छठी और आठवी सदियो के बीच भक्तिमार्गियो ने जैन धर्म के विरुद्ध प्रचड सघर्ष किया और हिंदू धर्म के मुकाबले उसका प्रभाव शनै शनै घटने लगा। पद्रहवी शताब्दी तक जैन धर्म बस गुजरात के आसपास ही अपने प्रभाव को किसी हद तक कायम रख पाया, यद्यपि कुछ छोटे-छोटे जैन समुदाय (मुख्यत व्यापारी और साहूकार ही) अन्य भारतीय नगरो तथा इलाको मे भी बचे रह गये थे।

इसके बावजूद कि भारत मे दार्शनिक चितन धार्मिक अवधारणाओ से घनिष्ठत जुडा हुआ था मध्य युग मे वह स्वतत्र रूप मे ज्ञान की एक पृथक शाखा के रूप मे विकास करने लग गया था।

इस काल म ही भारतीय षडदर्शन – न्याय वैशेषिक, साख्य योग मीमासा और वेदात – ने, जिनका पहले वर्णन किया जा चुका है, निश्चित रूप ग्रहण किया था। इन दर्शनो को इस लिहाज से परपरानिष्ठ माना जाता था कि वे वेद प्रमाण को स्वीकार करते थ। इनमे स प्रत्येक ने मनुष्य के विश्व के सज्ञान और चितन के नियमो मे अपना विशिष्ट योगदान किया है यद्यपि विचारो को धार्मिक रहस्यात्मक रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इन प्रामाणिक दार्शनिक धाराओ के अलावा बौद्ध दर्शन के माध्यमिक तथा विज्ञानवाद सप्रदाय भी थे जो विश्व तथा ज्ञान की यथार्थता को अस्वीकारते थे और जो ईश्वर को सृष्टिकर्ता भी नही मानते थे। माध्यमिकपथियो का कहना था, "यदि ईश्वर का आरभ नही हो सकता, तो स्वय उसका अस्तित्व भी नही हो सकता।' वे विश्व सारतत्व की दृष्टि से केवल शुद्ध चेतना को ही यथार्थ मानत थे। इसके विपरीत चार्वाकपथ ने आत्मा के अस्तित्व को नकारते हुए, क्योकि यह सिद्ध करना असभव था कि वह देह से स्वतत्र अस्तित्वमान है भौतिकवादी सिद्धात का प्रचार किया। इसी आधार पर चार्वाकपथियो न परमात्मा के अस्तित्व को भी अस्वीकार किया।

आठवी सदी के अत और नवी के आरभ से शकर (७८८–८२०) द्वारा

मस्थापित अद्वैत वेदात अधिकाधिक लोकप्रियता प्राप्त करता गया। अद्वैत न उपनिपदो की प्राचीन शिक्षा का नवोन्मेप करने का प्रयास किया और कहा कि ईश्वर – ब्रह्म – को ही एकमात्र सत्य और जगत को मिथ्या – भ्राति – मानना चाहिए जिसे केवल वे लोग ही सत्य समझते हैं, जिन्हे ज्ञान नही है। ज्ञाता का लक्ष्य अपने को भ्राति से मुक्त करना और ब्रह्म से एकात्म प्राप्त करना होना चाहिए। शकर केवल दार्शनिक ही नही, धर्म सुधारक भी था, जिसन हिंदू धर्म को उसके मूल सारतत्व से भ्रष्ट करनेवाले बाद म जुडे तत्वो से मुक्त करने का प्रयास किया। शकर ने देश के चारो कोनो म चार मठो की स्थापना की और सन्यासी सगठन मे सुधार किया।

लेकिन ग्यारहवी, बारहवी और तेरहवी सदियो मे शकर के केवल वर ण्यो को ही बोधगम्य विचार अपनी लोकप्रियता गवाने लग। रामानुज (ग्यारहवी शताब्दी) ने वेदात दर्शन की अवधारणाओ को सुगम बनाकर सवसाधारण के लिए बोधगम्य बनाया। रामानुज के अनुसार ईश्वर न जगत का अपने से अलग तीन सत्वो – भूत काल और आत्मा – से सृष्टि की है। ईश्वर का सामीप्य-लाभ करने के लिए धर्मग्रथो का गहन ज्ञान आवश्यक नही है ईश्वर की भक्ति कही अधिक महत्वपूर्ण है और उसी से ईश्वर का सामीप्य लाभ करन – मुक्ति प्राप्त करने – का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। भक्ति अथवा उपासना म भक्त की जाति से कोई अतर नही आता। रामानुज की शिक्षा मे ईश्वर को जगत के निरपेक्ष सृष्टा के रूप मे नही प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति की नियति मे सलग्न सर्जक की तरह प्रस्तुत किया जाता है – वह मनुष्य की प्रार्थना और पुकार को सुनता है और उसकी नियति को बदल सकता है। रामानुज का दर्शन अनेक वेदाती सप्रदायो के मत का आधार है।

मध्ययुगीन भारत म वैज्ञानिक ज्ञान ने प्राचीन काल म डाली नीवो के आधार पर महती प्रगति की। गणित, ज्योतिष (खगोल) और चिकित्सा (आयुर्वेद) क क्षेत्रो म, जो कृषि निर्माण कार्य तथा चिकित्सा म लग लोगो क व्यावाहारिक अनुभव से सबद्ध थे, जबरदस्त सफलताए प्राप्त की गयी।

छठी स तेरहवी शताब्दी की अवधि मे भारत के अधिकाश भागो म स्थानीय भाषाओ म साहित्य न विकास किया, यद्यपि बहुत स कवि अब भी 'देववाणी' – सस्कृत – म ही रचना कर रहे थे। सस्कृत साहित्य अधिकाधिक विशिष्ट और राजानुग्रहाकाक्षी होता जा रहा था। सध्याकर नद द्वारा जो बगाल क राजा रामपाल (१०७७–१११६) का राजकवि या रचित

रामचरित इसका एक सजीव उदाहरण है। इस रचना की प्रत्येक पंक्ति दोहरा अर्थ रखती है और उसे रामायण के नायक राम और राजा रामपाल – दोनों में से प्रत्येक से संबद्ध किया जा सकता है और इस प्रकार कवि ने संरक्षक के कारनामों को रामायण के राम के कारनामों के समतुल्य कर दिया है। इस जमाने की कृतियों में जयदेव द्वारा रचित गीतगोविंद (बारहवीं सदी) को बहुत लोकप्रियता प्राप्त थी, जिसमें कृष्ण के लिए राधा के अनुराग का वर्णन किया गया है, जो मनुष्य की आत्मा की ईश्वर साधना का प्रतीक है। गीतगोविंद की मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता और सजीव कल्पना ने लगभग सब ही नयी भारतीय भाषाओं में कविता के विकास पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला और रागात्मक अनुराग के इस प्रकार के रहस्यवादी निरूपण को आगे चलकर भक्तिमार्गी काव्य में व्यापक प्रचलन हुआ।

स्थानीय भाषाओं में साहित्य के विकास ने अपने को केवल संस्कृत में महाकाव्यों के अनुवादों में ही – उदाहरण के लिए तेरहवीं सदी में बुद्ध रेड्डी द्वारा रामायण के तेलुगू में अनुवाद में ही – अभिव्यक्त नहीं किया, वरन मौलिक साहित्य का सृजन भी होने लगा।

यद्यपि मध्य युग में सबसे उल्लेखनीय प्रगति मुख्यतः काव्य की विधा में ही हुई, फिर भी बारहवीं-तेरहवीं सदियों में संस्कृत में गद्य रचना भी हुई, जिनकी कथाओं की विषयवस्तु सामान्य थी। बाण द्वारा रचित 'कादंबरी', जो दो प्रेमियों के दो रूपों में पृथ्वी पर दो बार के जीवन की कथा है, और दंडी की रचना 'दशकुमारचरित', जिसमें राजाओं, राजपुरुषों, सन्यासियों और देवताओं तक की खिल्ली उडायी गयी है, इस प्रकार की गद्यकृतियों के उदाहरण हैं। इसी प्रकार की एक और रचना सातवीं-आठवीं सदियों में हरिभद्र द्वारा प्राकृत में लिखा खलाख्यान है।

दक्षिणी भारत में सबसे विकसित साहित्य तमिल साहित्य था। तमिल में सर्वप्रथम कृतियां ईसवी संवत की पहली सदियों में ही रची जा चुकी थी, किंतु विद्वान तिरुवल्लुवर द्वारा रचित कुरल और शिलपद्दीकारम तथा मणिमेखलै जैसे महाकाव्यों को दूसरी से छठी सदियों के बीच की मानते हैं। आठवीं नवीं सदियों में भक्तिमार्गी काव्य का प्रभाव बढने लगा, जिसने आत्मा और परमात्मा के संयोग को युवक युवती के प्रेम के रूप में सराहा। गहन गेयता से परिपूर्ण अलवारों और नयनारों (भक्तिमार्ग के वैष्णव तथा शैव प्रतिपादकों) के भजन लोकगीतों की तरह दूर दूर तक फैल गये।

उत्तरी भारत में वीरकाव्य के रूप में स्थानीय भाषाओं में एक नयी विधा

का प्रादुर्भाव होने लगा। इसका एक उदाहरण चदबरदाई (११२६-११९६) का पृथ्वीराजरासो है, जिसमे पृथ्वीराज चौहान के मुसलमान आक्रमणकारियो के विरुद्ध सघर्ष का प्रशस्तिगान किया है।

वास्तु तथा मूर्तिकला इस काल मे कला के सर्वाधिक विकसित रूप थे। छठी और आठवी सदियो के बीच मुख्यत गुहा मदिरो (ऐलोरा, एलिफेन्टा और कुछ बाद मे अजता) अथवा महाबलिपुरम या कोणार्क के चट्टानो को तराशकर बनाये गये मदिरो और रथो का ही निर्माण किया गया। इसमे सभवत बहुत जटिल प्रविधिया अपेक्षित नही थी—चट्टान को तराशकर भवनो का निर्माण करना पत्थर को काटने, उसे दूर-दूर ले जाने और उससे ऊचा और टिकाऊ इमारतो को बनाने से आसान था। अजता के गुहा मदिर बौद्धो के थे जब कि ऐलोरा मे बौद्ध गुहा मदिर और हिंदू तथा जैन मदिर अगल-बगल है। गुहा मदिर निम्न उद्भृतो, मूर्तियो अथवा भित्तिचित्रो से अलकृत हैं। इनमे से सबसे प्रसिद्ध नाना आकृतियो से युक्त गगावतरण (सातवी शताब्दी, महाबलिपुरम) और कैलासरूपी रावण (ऐलोरा, जिसमे शिव और पार्वती को पर्वत पर बैठा दर्शाया गया है) जैसे विराट निम्न उद्धृत चित्र हैं।

नवी सदी मे काटे हुए पत्थर से मदिरो का निर्माण किया जाने लगा। उत्तरी भारत मे मदिर पारवलयिक होते थे और उनका शिखर कमलाकार होता था जब कि दक्षिण मे वे आयताकार पिरामिड जैसे होते थे। मन्दिरो के भीतर के कमरे अधियाले और नीची छतोवाले होते थे—गर्भगृह मे हर कोई प्रवेश नही पा सकता था। अधिकाश आराधक तो मदिर के बाहर प्रदक्षिणा करके ही सतोष कर लेते थे। इन मदिरो के प्रागणो मे और उनकी दीवारो पर भी मूर्तिया होती थी, जिनके द्वारा महाकाव्यो के दृश्यो को या मन्दिर से सबद्ध देवता विशेष की उपासना के प्रतीको को चित्रित किया जाता था। कालातर मे और विशेषकर दक्षिण मे मूर्तियो का इतना बाहुल्य हो गया कि स्वय मदिर तो उनका निमित्त अथवा आधार मात्र प्रतीत होने लग गये—दीवार छत तक मूर्तियों, उच्च उद्भृतो और निम्न उद्भृतो से परिपूर्ण हैं। इस बाहुल्य के कारण आदमी की आखो के लिए अलग-अलग मूर्तिया अथवा दृश्यो को चीन्ह पाना भी कठिन हो गया। खजुराहो के मदिरो (९५४-१०५० के आसपास के) के मामले मे और कोणार्क (तेरहवी सदी का मध्य) के मामले मे जहा मदिर फर्श से छत तक इतने जटिल और सूक्ष्म शैल्पिक अलकरण से आच्छादित है कि प्रत्येक पत्थर एक अनुपम आभूषण जैसा प्रतीत होता है यही बात देखने मे आती है। बाद मे इस विराट वास्तु तथा मूर्तिकला मे

दिल्ली सल्तनत के समय का भारत
(तेरहवीं सदी से चौदहवी सदी के आरभ तक)

दिल्ली सल्तनत का राजनीतिक इतिहास

दिल्ली सल्तनत की स्थापना

आठवी शताब्दी के आरभ मे ही भारत पर उत्तर से आक्रमण करके अरबो ने सिध को जीत लिया था और वहा अपना शासन स्थापित कर लिया था। सिध देश से विलग हो गया, किंतु इसने शेष भारत के ऐतिहासिक विकास को प्रभावित नही किया। लेकिन ग्यारहवी सदी के आरभ से भारत तुर्क मूल के मुस्लिम विजेताओ के आक्रमणो का मैदान बन गया, जो ये हमले काफिरो के खिलाफ जिहाद के नाम पर किया करते थे। भारतीय राजा उस समय परस्परघाती युद्धो मे लगे हुए थे, जिससे उनके लिए इन हमलो को झेल पाना कठिन था और इस प्रकार उत्तरी भारत मे मुस्लिम विजेताओ द्वारा शासित एक विशाल राज्य स्थापित हो गया, जो दिल्ली सल्तनत के नाम से जाना जाता है। इस राज्य के उदय ने, जिसका बाद मे दक्षिण मे भी प्रसार हुआ, भारत के समस्त आगामी इतिहास पर अपनी छाप डाली है। इसके परिणाम स्वरूप भारत तथाकथित मुस्लिम विश्व की परिधि मे खिच आया।

तुर्क विजेताओ का पहला हमला १००१ मे हुआ। बाद मे गज़नी के सुलतान महमूद (९९८–१०३०) ने जिसका राज्य उस समय खुरासान के नाम से विख्यात इलाके मे स्थित था, पजाब पर हमला किया। राजा जयपाल न उसे रोकने की कोशिश की, लेकिन उसे पेशावर के पास पराजित होना पडा और उसने आत्महत्या कर ली। इसके बाद महमूद ठेठ १०२६ तक हर सरदियो मे भारत पर नियमित धावे करता रहा। वह मदिरो को नष्ट करता उनकी तथा राजाओ की कई पीढियो द्वारा सचित विपुल सपदाओ को लूटता आबादी से हरजाना वसूल करता और इसके बाद लूट के माल स

लदे काफिलो के साथ लौट जाता। उत्तरी भारत मे महमूद ने पश्चिम मे सोमनाथ (काठियावाड) से लेकर पूर्व मे गगा की घाटी मे कन्नौज तक के विस्तृत क्षेत्र मे छापे मारे। लेकिन उसने जिस अकेले भारतीय प्रदेश को अपने राज्य मे मिलाया और जिस पर अपना प्रत्यक्ष शासन स्थापित किया, वह पजाब ही था।

महमूद के उत्तराधिकारियो के राज्यकाल मे जो कुल वैरो और सेल्जूको के हमले के सतत खतरे का जमाना था गजनवी सुलतानो की राजधानी लाहौर स्थानातरित हो गयी। बारहवी सदी के आठवे दशक मे एक छोटे मे अधीनस्थ राज्य गोर के शासको ने विजेताओ के कुल वैरो का लाभ उठाते हुए ११७३ मे गजनी को जीत लिया और इसके बाद ११८६ मे उन्होने अपने भूतपूर्व अधिपतियो की नयी राजधानी लाहौर को भी जीत लिया। गोर के सुलतान के भाई मुहम्मद गोरी (शहाबुद्दीन) ने पहले पजाब को जीता और उसके बाद भारत मे और आगे बढना शुरू किया। ११९१ मे उसे तराइन की लडाई मे दिल्ली और अजमेर के राजपूत शासक पृथ्वीराज चौहान से पराजित होना पडा, लेकिन अगले ही साल उसने उसी रणक्षेत्र म पृथ्वीराज के नेतृत्व मे लडनेवाले राजपूत राजाओ की सेना को हराया और इस तरह गगा का पथ प्रशस्त कर लिया। कुछ ही समय के भीतर सारा दोआव उसके नियत्रण मे आ गया।

मुहम्मद गोरी की हत्या कर दिये जाने के बाद एक तुर्क गुलाम अगरक्षक सेना के नायक और उत्तरी भारत के सूबेदार कुतुबुद्दीन ऐबक (१२०६–१२१०) ने अपने को भारत मे गोरी इलाको का आजाद सुलतान घोषित कर दिया और दिल्ली को अपने राज्य की राजधानी बना लिया। दिल्ली सल्तनत की स्थापना इस प्रकार हुई थी। कुतुबुद्दीन की मृत्यु के बाद (वह चौगान खेलते हुए अपने घोडे से गिर गया था) जो दूसरा सुलतान – शम्सुद्दीन इल्तुतमिश – गद्दी पर बैठा, वह भी भूतपूर्व गुलाम ही था। चूकि इल्तुतमिश के कुछ उत्तरा धिकारी भी शाही अगरक्षक सेना मे काम करनेवाले गुलामो की कतारो से आये थे इसलिए यह राजवश गुलाम वश के नाम से ही विख्यात हुआ।

गुलाम वश

इल्तुतमिश अपनी सल्तनत का सुदृढीकरण और प्रसार ही कर रहा था कि मगोल आक्रमणकारी ख्वारज्म के शाह जिसे वे पहले ही पराम्त कर चुके

थे के बेटे जलालुद्दीन का पीछा करते हुए भारत के सीमात म आ घुस। उस समय तक मगोल आबादी का निर्दयतापूर्वक सहार करते हुए मचूरिया मे लेकर तुर्किस्तान तक सारे मध्य एशिया को जीत चुके थे। चगज खा का नाम ही लोगो के दिलो को दहशत से भर देता था। इल्तुतमिश न जलालुद्दीन की सहायता करन से इन्कार कर दिया और वह पश्चिमी पजाब, सिंध तथा उत्तरी गुजरात को लूटने के बाद भारत से चला गया। लेकिन इसके बाद भी मगोल आक्रमणो के खतरे का साया बहुत समय तक भारत पर मडराता रहा और यह आशका मुस्लिम सामतो (अमीर-उमरा) को दिल्ली की गद्दी के चहु ओर गोलबद करने मे सहायक सिद्ध हुई।

इल्तुतमिश के राज्यकाल मे ही उत्तरी भारत मे मुस्लिम सिपहसारा के पूर्ण प्रभुत्व की स्थापना हुई। दिल्ली की गगनचुबी कुतुबमीनार का इल्तुतमिश का स्मृतिचिह्न कहा जा सकता है। उसका निर्माण तो कुतुबुद्दीन के समय ही शुरू हो गया था पर पूरा इल्तुतमिश के राज्यकाल म हुआ था। कुतुब मीनार के पास ही इल्तुतमिश का मकबरा भी स्थित है।

उस समय मुस्लिम सैन्य सामत वर्ग मे मुख्यत मध्य एशियाई तुर्क हा थे, जिन्होने अपने को एक मजबूत सगठन मे ऐक्यबद्ध कर रखा था, जो चालीस के दल (चिहलगनी) के नाम से प्रसिद्ध था, क्योकि उसके सस्थापको की सख्या चालीस ही थी। उस समय अधिकाश हाकिम और धार्मिक नेता खुरासानी (अर्थात ताजिक और फारसी) थे। इसलाम (सुन्नी) राज धर्म बन गया और हिंदुओ को जिम्मी अथवा काफिर माना जाने लगा। फारसी राजभाषा बन गयी। शासन पूर्णत निरकुश और स्वेच्छाचारी था।

यद्यपि दिल्ली के पहले दोनो सुलतान मुस्लिम सेनानायको मे से ही चुने गये थे, फिर भी इल्तुतमिश ने बादशाहत को वशागत बनाने का प्रयास किया। उसने अपनी पुत्री रजिया को अपनी उत्तराधिकारिणी बनाया, जिसे वह अपने बेटो से "अधिक मर्दाना" समझता था। रजिया सुलतान सचमुच बडी साहसी और चतुर स्त्री थी, मगर अपने धार्मिक पूर्वाग्रहो के कारण मुस्लिम सेनानायक स्त्री की अधीनता को लज्जास्पद समझते थे। रजिया ने चार वर्ष शासन किया और इसके बाद उसे मार डाला गया। उसके राज्यकाल के बाद अशाति और दरबारी षडयत्रो का एक दौर आया। उसी समय मगोलो न भी भारत पर कई धावे किये और १२४१ मे उन्होंने लाहौर पर कब्जा कर लिया।

आखिर १२४६ म इल्तुतमिश के सबसे छोटे बेटे नासिरुद्दीन को गद्दी पर बैठाया गया, मगर वास्तविक सत्ता उसके योग्य सलाहकार गयासुद्दीन

बलबन के हाथो मे थी, जो नासिरुद्दीन की मृत्यु के बाद १२६५ मे सिहासनारूढ हुआ और जिस पर वह बाईस साल तक, १२८७ मे मृत्युपर्यत आसीन रहा। तख्तनशीन होने के बाद बलबन ने मगोलो को पीछे धकेला और उत्तर-पश्चिमी सीमात पर एक दुर्ग-शृखला का निर्माण किया। बलबन का राज्यकाल सत्ता के सुदढीकरण के लिए अविराम सघष का काल था। विद्रोहियो के दमन म वह एकदम बेरहम था (मिसाल के लिए, दोआब के बागियो के मामले मे) और पकडे गये बागियो को हाथियो के पैरो तले कुचले जाने या उनकी खाल उधेडे जाने की सजाए दिया करता था। उसने चालीस के दल की शक्ति का अत कर दिया और अपने निर्मम उपायो से १२८० मे बगाल मे मुस्लिम अमीरो को भी कुचल दिया। बागियो के नेताओ को सरे आम सूलियो पर चढाकर मौत की सजा दी गयी। वृद्धावस्था मे बलबन की मौत के बाद अमीर उमरा क विभिन्न दलो मे एक बार फिर झगडे शुरु हो गये। इस सघर्ष मे खिलजी (खल्जी) कबीले के तुर्क सिपहसालार विजयी हुए और सत्तरवर्षीय जलालुद्दीन फीरोज को राजगद्दी मिली, जिसन १२९० से १२९६ तक राज्य किया।

खिलजी वश

खिलजी वश के पहले प्रतिनिधि के राज्यकाल मे मगोलो ने भारत पर एक बार फिर आक्रमण किया, लेकिन जलालुद्दीन उनमे से कुछ को परास्त करन और शेष को पैसे के बल पर खरीदने मे सफल हो गया।

जलालुद्दीन के राज्यकाल की सबसे महत्वपूर्ण घटना उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन की दकन पर चढाई थी। देवगिरि के यादववशी राजा रामचद्र को हराने और उसकी सपदा को लूटन के बाद अलाउद्दीन दिल्ली वापस आया। राजधानी के पास उसने अपने श्वसुर की कपटपूर्वक हत्या कर दी और दिल्ली का नया सुलतान बन गया (जहा उसने १२९६ से १३१६ तक राज्य किया)।

यह निर्मम और दृढसकल्प नया सुलतान योग्य सेनानायक और प्रतिभाशाली प्रशासक भी था। उस समय मगोलो के धावे अधिकाधिक प्रायिक होते जा रहे थे और अलाउद्दीन ने अपनी सारी शक्तिया उन्ह परास्त करन पर सकेंद्रित कर दी। उसके चरित्र मे अतर्निहित निर्दयता इसी मे प्रत्यक्ष हो जाती है कि बगावत का सदेह होने पर उसने जलालुद्दीन के राज्यकाल म दिल्ली के पास

आकर बस जानवाले सभी मगोलो को, जो जलालुद्दीन की सना म शामिल होकर लड भी चुके थे, इस तथ्य के बावजूद एक ही रात मे पकडकर मार डाले जाने का आदेश दे दिया कि उनकी सख्या पद्रह और तीस हजार क बाच थी। अपने खजाने को भरन के लिए अलाउद्दीन ने दान और वक्फ की सारी सपत्ति और अमीर-उमरा की माफियो को या तो जब्त कर लिया या उन पर कर लगा दिये। षड्यत्रो की सभावनाओ को खत्म करन के लिए उसन अमीर उमरा की दावतो जश्नो और मजलिसो को निषिद्ध कर दिया और पूरे देश को अपने जासूसो और मुखबिरो से भर दिया।

देश की सारी भूसपदा को अपने ही हाथो मे सकेद्रित करन के लिए अलाउद्दीन ने अब तक की पारपरिक माफियो क स्थान पर इक्तादारा (हाकिमो) को अल्प नकद वेतन देना शुरू करने का निश्चय किया। एक ऐसे देश मे कि जिसमे नैसर्गिक अर्थव्यवस्था ही का प्रचलन रहा था राजधानी मे खाद्य पदार्थो की कीमतो को कम करने और इस प्रकार अपने अल्प वेतनभोगी सैनिको की गुजर-बसर को सुनिश्चित करने के लिए उस अत्यत कठोर उपाय अपनाने पडे। दोआब मे सारी सरकारी जमीनो स लगान का जिस रूप मे ही उगाहने का हुक्म दे दिया गया और व्यापारियो को इस अनाज को दिल्ली मे विशेष रूप मे निर्मित विशाल अन्नागारो मे पहुचाने के लिए मजबूर किया गया। राजधानी मे और दोआब मे बाजार भावो पर सख्त नियत्रण था नियमो क पालन को सुनिश्चित करने के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किये गय थे और ग्राहको को ठगने या कम तोलने पर निष्ठुर दड दिये जाते थे। लगान को फसल के चौथाई से बढाकर आधा कर दिया गया। हिदुओ का हथियार धारण करना, बढिया कपडे पहनना और घोडे पर चढना निषिद्ध कर दिया गया – ये कदम ज्यादा कट्टर मुसलमानो को सतुष्ट करने क लिए उठाये गये थे। लेकिन सैनिको की तनख्वाहे बढा दी गयी।

इन उपायो की बदौलत आरभ मे सुलतान के लिए ४,७५,००० घुडसवारा की विराट और युद्धक्षम सेना खडी करना और मगोलो के आक्रमणा को विफल करना सभव बन गया। अलाउद्दीन के राज्यकाल मे मगोलो ने अतिम बार १३०६ मे भारत मे प्रवेश किया था, जब उसने उन्हे रावी के तट पर बुरी तरह पराजित किया।

लेकिन वास्तव मे अलाउद्दीन के पास बडी सना रखने क वास्ते पर्याप्त साधन न थे और इसलिए उसने एक बार फिर दकन के नये प्रदेशो और नगरा को लूटकर अपने खजाने को भरने का निश्चय किया। इस अभियान पर भेज

गये उसके विश्वस्त अनुचर और सेनानायक मलिक काफूर ने १३०७ मे एक बार फिर देवगिरि को और उसके बाद काकतीय राज्य की राजधानी वारगल (वर्तमान तलगाना क्षेत्र मे) को भी जीत लिया। १३११ म अपने अगले अभियान में उसने होयसल राज्य की राजधानी द्वारसमुद्र और पाडयो के केद्र मदुरा को जीता। आगामी दो तीन वर्षो मे मलिक काफूर ने दक्षिण पर और भी हमले किये और वह भारत के दक्षिणतम छोर – कन्याकुमारी अतरीप – तक पहुच गया। अलाउद्दीन की सेना इन अभियानो से अकूत सपदा – सोना रत्न, घोडे और हाथी लेकर वापस आयी। इन दक्षिणी प्रदेशो के पराजित राजाओ न अपने को दिल्ली सल्तनत के अधीन मान लिया – उन्हे सुलतान को सालाना खिराज देना होता था।

लेकिन अलाउद्दीन का यह विराट साम्राज्य कोई केद्रीकृत राज्य नही था। अलाउद्दीन के अतिम वर्षो म गुजरात म उसके हाकिमो ने विद्रोह किया। राजपूतो को वश मे नही लाया जा सका – वीरकाव्यो मे मुसलमान आक्रमण कारियो के विरुद्ध उनके निरतर सघर्षो का वर्णन किया गया है। बगाल कई स्वतत्र मुस्लिम राज्यो मे विभाजित था। होयसल और पाडय व्यवहार मे स्वतत्र ही बने रहे चाहे वे खिराज अदा करते थे। सिधु नदी के उस पार के उत्तरी प्रदेशो मे आजाद कबीलो का निवास और बोलबाला था।

यद्यपि सुलतान सफल अभियानो से लाये लूट के माल से अपने अमीरो और सैनिको को खूब इनाम दिया करता था, फिर भी उसके सदेही स्वभाव, जुरमानो और जब्तियो हिंदुओ के दमन और अर्थव्यवस्था के ध्वस्त होने के कारण व्यापक असतोष फैल गया था। हर कही बगावते फूटने लग गयी थी। अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद (उसका देहात १३१६ मे जलोदर से हुआ था) सिहासन के लिए प्रचड सघर्ष छिड गया जिसके दौरान सत्ता को हाथ में लेने की कोशिश मे मलिक काफूर मारा गया। कई महीने बाद अलाउद्दीन के एक बेटे को कुतुबुद्दीन मुबारकशाह (१३१६–१३२०) के नाम से तख्तनशीन किया गया। उसने अपने पिता द्वारा नियान्वित सभी आर्थिक सुधारो को रद्द कर दिया, मगर उसने अपने पिता की विजय तथा अधिनहन की नीतियो को नही त्यागा और खुसरो खा की कमान में एक सेना को दकन पर हमला करने के लिए भेजा, जो मदुरा और तेलगाना से लूट का भारी माल लेकर वापस आया। मगर इसके कुछ ही बाद खुसरो ने दिल्ली का खुद सुलतान बनने के इरादे से मुबारकशाह की हत्या कर दी। मगर थोडे ही दिन बाद तुर्क अमीरो के एक दल ने उसका खात्मा कर दिया। इसके बाद पजाब मे सरहद के

सिपहसालार मलिक गाजी को गद्दी मिली, जिसने तख्तनशीन होने समय गयासुद्दीन तुगलक का नाम धारण किया। गयासुद्दीन, जिसने १३२० से १३२५ तक राज्य किया, एक नये राजवंश – तुगलक वंश – का संस्थापक था।

तुगलक वंश

नये सुलतान ने अलाउद्दीन के सुधारों से जनित खामियों का अंत करने के लिए कई नये कदम उठाये। लगान को घटाकर उपज का दसवां भाग कर दिया गया और सरकारी खर्च से नहरों का निर्माण किया गया। गयासुद्दीन ने दिल्ली के पास गुलाबी ग्रेनाइट से एक नये शहर का निर्माण करवाया और उसके चारों ओर मजबूत शहरपनाह बनवायी। इस नगर को तुगलकाबाद का नाम दिया गया (अब यह खंडहर हो चुका है)। इसी के पास उसने सुर्ख और सफेद पत्थर का अपना मकबरा भी बनवाया, जो देखने में किले जैसा ही लगता था। यह मकबरा एक कृत्रिम झील में बनाया गया था, जो अब बिलकुल सूख गयी है।

अपने पूर्वगामियों की ही भांति गयासुद्दीन ने भी सक्रिय विदेश नीति का अनुगमन किया। शाही खजाने को भरने के लिए एक बार फिर सैन्य अभियान संगठित किया गया और सुलतान ने अपने बेटे जौना खां (जूना खां) की कमान में सेना को दकन पर हमला करने के लिए भेजा। उसने काकतीयों की राजधानी वारंगल को सर किया और उसका नाम बदलकर सुलतानपुर रख दिया। गयासुद्दीन ने खुद पूर्वी बंगाल को वशीभूत किया और पश्चिमी बंगाल के शासक को दिल्ली सल्तनत की अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया (१३२४)। जूना खां ने इस अवसर पर अपने पिता के दिल्ली में शानदार स्वागत का आयोजन किया। लेकिन सुलतान की हाथी पर सवारी निकलते समय लकड़ी की एक महराब ढह गयी और सुलतान उसके नीचे कुचलकर मर गया। अरब यात्री इब्न-बतूता के अनुसार इस "दुर्घटना" की सारी योजना जूना खां ने तैयार की थी, जो राजगद्दी हासिल करने का आकांक्षी था। गयासुद्दीन की मौत के बाद उसे तख्तनशीन किया गया और वह मुहम्मद शाह तुगलक (१३२५–१३५१) के नाम से सुलतान बना।

मुहम्मद तुगलक योग्य सेनापति और सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत व्यक्ति था। लेकिन साथ ही वह अत्यंत क्रूर और निरंकुश तथा सनकी भी था और उसके अव्यावहारिक तथा मूर्खतापूर्ण कामों के फलस्वरूप जल्दी ही राज्य पूर्ण अरा-

जक्ता और अव्यवस्था का शिकार हो गया। दिल्ली चूकि सल्तनत के दक्षिणी सीमातो से बहुत दूर थी, इसलिए उसने राजधानी बदलने का निश्चय करके देवगिरि को अपनी नयी राजधानी बना दिया, जिसका नाम बदलकर दौलताबाद रख दिया गया। लेकिन राजधानी के दौलताबाद ले जाये जाने का मतलब सिर्फ राज परिवार, दरबार, अमीर उमरा तथा मुख्य अधिकारियो और उनके परिवारो का ही वहा जाना नही था – सुलतान ने दिल्ली की सारी ही आबादी को दौलताबाद जाने के लिए मजबूर किया। इस लबे सफर मे लोगो को न जाने कितनी तकलीफे उठानी पडी, न जाने कितने रास्ते मे ही मर गये और उसने बेहद असतोष पैदा किया। कुछ साल बाद सुलतान राजधानी को दिल्ली वापस ले आया, लेकिन राजधानी के पुराने वैभव और ध्वस्त आर्थिक जीवन को बहाल करना अत्यत कठिन सिद्ध हुआ।

चूकि इतने विस्तृत साम्राज्य की रक्षा के लिए बहुत बडी सेना और बहुशाखीय केंद्रीय तथा प्रातीय प्रशासनिक सस्थाओ को रखना जरूरी था, इसलिए राजकोष को नये साधनो से भरना भी अत्यावश्यक था। मुहम्मद शाह ने किसानो पर अतिरिक्त महसूल (अबवाब) लगाये। ये महसूल इतने भारी थे कि किसान तबाह हो गये और बहुत से किसान अपनी खेतीबाडी को छोडकर जगलो मे भाग गये। करो के बोझ ने सूबो को कगाल कर दिया और खजाना खाली होने लगा। इसी समय भयकर सूखे के रूप मे एक नयी विपदा आ खडी हुई। इधर सुलतान ने ताबे के सिक्के जारी करना शुरू किया, जिनका मूल्य अब तक चलनेवाले सोने और चादी के सिक्को के जितना ही रहना था। इन कदम ने देश की मुद्रा प्रणाली और अर्थव्यवस्था को भग कर दिया। व्यापारियो ने नये सिक्को के बदले माल बेचने मे इन्कार कर दिया। आखिर सुलतान को सोने चादी के सिक्के देकर इस प्रतीक मुद्रा को वापस लेना पडा जिससे खजाना खाली हो गया। ऊपर से एक और मुसीबत यह आयी कि हिमालय के दुर्गम काराचिल (कूर्माचल) प्रदेश मे सुलतान के अभियान का अत शाही सेनाओ के विनाश मे हुआ। वह स्थानीय राजा को अधीनता स्वीकार करने और खिराज देने के लिए मजबूर करने मे तो सफल हो गया, लेकिन वापसी मे उसकी एक लाख सेना को सिर्फ भूख, बारिश और रास्तो के अभाव ने ही त्रस्त नही किया बल्कि घात लगाये पहाडियो के अप्रत्याशित आक्रमणो ने उसका लगभग पूरी तरह से सफाया भी कर दिया।

मुहम्मद तुगलक के राज्यकाल के अतिम पद्रह वर्ष विराट साम्राज्य के कोने कोने मे फूट पडनेवाले विद्रोहो और जनता मे फूट पडनेवाले उपद्रवो को

जो अक्सर धार्मिक आदोलनो का रूप ले लेते थे, कुचलन के निष्फल प्रयासा म गुजर। अपनी निर्ममता और क्रूरता के कारण लोग उसे खूनी कहते ला थ। १३५१ मे बागी अमीरो का पीछा करते हुए वह थट्टा (सिंध) पहुचा जहा विपम ज्वर से उसकी मृत्यु हो गयी। अमीर उमरा ने वही पर मृत सुलतान के चचेरे भाई को गद्दी पर बैठाया, जिसने फीरोजशाह तुगलक के नाम से १३५१ स १३८८ तक शासन किया।

फीरोज को अपने पूर्वगामी के राज्यकाल के विनाशक परिणामा का निराकरण करने के लिए सख्त उपाय करने पडे। अबवाब रद्द कर दिये गये लगान को कम किया गया, पैदावार बढाने के लिए दोआब म पाच नहरा का निर्माण किया गया, भारी बाजार महसूल खत्म कर दिये गये, सनाधिकारियो को शहरो और गावो की माफिया दी जाने लगी और फरमान जारी करके यत्रणाए दिये जाने का अत कर दिया गया। मुस्लिम सेनाधिकारियो को कई विशेषाधिकार प्रदान किये गये, किंतु इस उपाय ने उनकी खुदमुख्तार हाल और अलगाव की प्रवृत्तियो को बढावा ही दिया।

लेकिन साथ ही फीरोज ने धार्मिक आदोलनो का सख्ती के साथ दमन भी किया और हिंदुओ तथा शिया मुसलमानो पर अत्याचार किये। हिंदू राजाओ (विशेषकर कटेहर के राजा) के खिलाफ अभियानो के दौरान स्थानीय आबादी मे से बडी सख्या मे गुलाम बनाये गये, जिनके श्रम का शाही जागीरा पर उपयोग किया जाता था। सुलतान का अनुकरण करते हुए उसके अधिकारी भी ऐसा ही करते थे। इतिहासकार बरनी के अनुसार देश मे उस समय लगभग १,८० ००० गुलाम थे।

साम्राज्य को अक्षत बनाये रखने के फीरोज के प्रयास निष्फल रहे। बगाल और दक्न तो मुहम्मद तुगलक के समय मे ही सल्तनत से अलग हो गये थ और सिंध तथा ओडिसा मे अभियान असफल सिद्ध हुए। सुलतान की मौत के बाद अमीर-उमरा के शक्तिशाली गुटो मे प्रबल सघर्ष छिड गया, जिनमे से प्रत्येक गुट राजसिंहासन के लिए अपन उम्मीदवार का समर्थक था।

लडखडाते हुए साम्राज्य पर अतिम प्रहार समरकद के अमीर तैमूर की सना न किया (१३९८)। तैमूर ने अपनी सेना के साथ भारतवासियो को अपनी निर्दयता मे आतकित करने के वास्ते कूच किया। स्थानीय आबादी का कत्ले-आम करवान क बाद वह उनके मुडो की मीनारे चुनवा दिया करता था। तैमूर न यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई भी भविष्य म उसका विरोध करन का साहस न कर सके उत्तरी भारत के विभिन्न भागो म बनाये

गये लाखो कैदियो को दिल्ली के बाहर बेरहमी से मरवा डाला। दिल्ली का सुलतान राजधानी को छोडकर गुजरात भाग गया। इधर दिल्ली मे प्रवेश करने के बाद तैमूर की सेनाओ ने कई दिन अविराम लूटमार ओर हत्याए की। इसके बाद लूट के बेशुमार माल को लादकर हजारो कैदियो के साथ तैमूर समरकद वापस चला गया। उसके हमले के बाद भारत अकाल और बीमारियो की जकड मे आ गया और तुगलक साम्राज्य ढह गया।

सैयद वश

अतिम तुगलक सुलतान (सुलतान महमूद) की १४१३ मे मृत्यु हो गयी। वह कोई उत्तराधिकारी छोडकर नही गया था। १४१४ मे मुलतान के भतपूर्व सूबेदार खिज्र खा सैयद ने जो तैमूर के हमले के समय उससे जा मिला था और जिसे तैमूर ने मुलतान और पजाब का सूबेदार नियुक्त कर दिया था दिल्ली को सर लिया ओर सत्ता को अपन हाथो म ले लिया। इस तरह १४१४ को सैयद राजवश के राज्यकाल के आरभ का वप माना जाता है।

१४२१ मे अपनी मृत्यु पर्यत खिज्र खा नाम के लिए तैमूरवशियो के उपशासक (नायब ए अमीर) की हैसियत से राज्य करता रहा। उसके राज्यकाल मे भी देश कगाल ही बना रहा लगान की वसूली सिर्फ सेना की सहायता से की जाती थी और खजाने को पास-पडोस के राज्यो पर सालाना हमलो से हासिल लूट की बदौलत ही भरा रखा जाता था। खिज्र खा का शासन सिर्फ दिल्ली पजाब और दोआब तक ही सीमित था। उसके बेटे और उत्तराधि कारी मुबारक शाह (राज्यकाल–१४२१–१४३४) ने अपने शासन के अतिम वर्ष मे तैमूरी फरमानो को मानना बद कर दिया और अपने नाम से सिक्के ढालने लगा, जो अवज्ञा का परिचायक था। उसने दोआब और दिल्ली के निकटस्थ अन्य प्रदेशो के सामतो के विरुद्ध अनेक अभियानो का सगठन किया। इसके अलावा उसने मालवा के सुलतान से पजाब पर नियत्रण स्थापित करने के लिए खक्करो (खोकरो) से और काबुल के तैमूरवशी अमीर मे भी युद्ध किया। मुबारक शाह की अत मे दरबारियो के पडयत्रो के परिणामस्वरूप हत्या कर दी गयी।

मुबारक शाह के बाद उसका भतीजा मुहम्मद शाह (१४३४–१४४५) गद्दी पर बैठा। लाहौर और सरहिद के सूबेदार बहलोल खा (जो लोदी कबीले

का शासन था)। दिल्ली के सुल्तानों के निरंतर घटते प्रभाव से ... ह
मालवा का था। ... प्रगति
गया। ... और ... का
शासन रहा। ... शाह ही ... के बाद ... का प्रसिद्ध सुल्तान
महमूद शाह (१४४५–१४७१) रहा था। ...
... में प्रतिद्वंद्विता और उसकी सांप्रदायिक की ... के ...
के ... और ... की ...
... शाह का ... के ... कि ...
(दुनिया के मालिक) का हुक्म चलता है, शासन यह ही चलता है।

लोदी वंश

बहलोल ने सिंहासन पर बैठने के बाद सबसे पहले प्रशासन और सेना और इस बार में
आलम शाह को सत्ताच्युत करना और यहीं दाखिल करने में सफल हो गया।
१४५१ से १४८९ तक के अपने शासनकाल में बहलोल ने सारी ताकत को
सल्तनत का सबसे शक्तिशाली सल्तनत बना लिया और दोआब का अधिकांश
क्षेत्रों को दुश्मनों से भर लिया। उसका लगभग चालीस साल का
राज्यकाल सल्तनत का विस्तार करने की ओर सक्रिय अभियान सचालन में
परिपूर्ण रहा। उसका सबसे प्रबल प्रतिद्वंद्वी जौनपुर का सुल्तान था जिसके अंत
में यह १४७६ में परास्त करने में सफल हुआ। उसने मेवाड़ अन्य छोटे शासकों
को भी अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए विवश किया।

बहलोल के बेटे और उत्तराधिकारी सिकन्दर शाह (१४८९–१५१७) ने
अधीनस्थ शासकों और सूबेदारों को कठोर नियत्रण में रखने का प्रयास किया
और इसके लिए उसने गुप्तचरों के एक जटिल और बहुशाखीय संगठन की
स्थापना की। सिकन्दर कट्टर सुन्नी था, यद्यपि उसकी मा हिंदू थी। १५०४ में
उसने वर्तमान आगरा के निकट यमुना के किनारे एक छोटे से दुर्ग का निर्माण
करवाया और वहीं रहना शुरू कर दिया। दोआब के सरकश सामंतों को नियत्रण
में रखने के लिए यह स्थान बड़ा सुविधाजनक था।

उसके पुत्र इब्राहीम लोदी (१५१७–१५२६) ने अमीरों को नियत्रण में
रखते हुए सुलतान की सत्ता को सुदृढ़ करने का प्रयास किया। उसने अफगान
सरदारों के प्रति कोई पक्षपात नहीं दिखलाया और कहा कि सुलतान के कोई
सबधी अथवा कबायली सहचर नहीं हो सकते – उसके बस प्रजाजन तथा अधीन

सामत ही हो सकते है। इब्राहीम के सबसे उल्लेखनीय सैन्य उपक्रम मालवा और ग्वालियर के विरुद्ध सफल अभियान थे। लेकिन उसके निरकुश शासन और अफगान अमीरो की ताकत को कम करने के उसके प्रयासो के परिणाम-स्वरूप असतोष पैदा हो गया। अमीरो का आपसी वैमनस्य और असतोष भी बना ही रहा। अत म अमीरो के एक दल ने काबुल के तैमूरवशी शासक बाबर से अनुरोध किया कि वह उनको सुलतान के अत्याचारो से मुक्ति पाने म सहायता करे। बाबर तो ऐसे अवसर की ताक मे ही था – वह भारत देश की अपार सपदा का स्वय स्वामी बनना चाहता था। बाबर ने १५२६ मे पानीपत की लडाई म इब्राहीम लोदी को पराजित किया और इसी के साथ मुगल साम्राज्य का समारभ हुआ, जिसे भारतीय इतिहास के आगामी दो सौ साल के क्रम को निर्धारित करना था।*

दिल्ली सल्तनत की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति

मुस्लिम विजेताओ ने भारतीय प्रदेशो को अधिकार मे ले लिया और वहा अपनी सत्ता की स्थापना कर दी। लेकिन तुर्क सैन्य नेता सदियो के दौर मे गठित भारतीय सामाजिक सगठन और अर्थव्यवस्था मे आमूल परिवर्तन नही ला पाये। किसानो और सामतो क सबध सारत पहले जैसे ही बने रहे, यद्यपि सामती स्वामित्व के रूपो मे कुछ परिवर्तन अवश्य आया। सबसे पहले तो भूमि पर राज्य के स्वामित्व का प्रबलीकरण हुआ, जिससे विजेताओ को एक काफी सशक्त सेना रखने और विजातीय स्थानीय आबादी पर शासन करने मे सहायता मिली। युद्धो मे जिन बहुत से भारतीय सामत वशो का नाश हो गया, या जिन्हे अपने इलाके छोडकर भागना पडा, उनकी सभी भूमियो का स्वामित्व राज्य को ही प्राप्त हुआ।

* खुरासान अफगान इलाको और उत्तरी भारत मे मुगल न सिर्फ मगोलो को, बल्कि उन मुस्लिम अमीरो को भी कहते थे जो उन इलाको के शासक थे, जिन्हे पहले मगोलो ने जीत लिया था और उनसे नाता जोड लिया था। मध्य एशिया और अफगान इलाको का यह सारा क्षेत्र मुगलिस्तान कहलाता था। बाबर चूकि यही का रहनेवाला था इसलिए उसे और उसके सहचरो को मुगल कहा जाने लगा। मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद यूरोपीय मुगल सम्राट को महान मुगल कहने लगे।

राजकीय स्वामित्व दो प्रकार का था – खालिसा अथवा खालसा और इक्ता। खालसा का लगान माल विभाग के कारिंदो द्वारा जमा किया जाता था। लगान का निधारण आम तौर पर जमीन को नापे बिना अन्दाज से किया जाता था और ग्राम समुदाय के मुखिया से वसूला जाता था। इस लगान म प्रत्येक परिवार के हिस्से का निर्धारण स्वय ग्राम समुदाय द्वारा किया जाता था। इस तरह की जमीन की आय राज दरबार और उन अमीर उमरा तथा सैनिको के भरण पोषण पर खर्च की जाती थी, जिन्हे वेतन नकद या जिस रूप मे मिलता था। कतिपय वनो तथा चरागाहो को भी राजकीय सपत्ति माना जाता था। दिल्ली सल्तनत के कुछ दौरो मे (विशेषकर फीरोज तुगलक के राज्यकाल मे) कुछ सरकारी जमीनो पर शाही कारखाने (काम की जगह – खेत और फलबाग अथवा रातिबखाने) कायम किये गये थे, जिनम गुलाम काम किया करते थे। लेकिन इस तरह की शाही जमीनो का अनुपात कभी बहुत बडा नही था।

राजकीय भूमि का अधिकाश सेवा के बदले अनुदान – इक्ता – के रूप मे दिया जाता था। इस तरह की छोटी-छोटी जमीन – इकता – पानेवाला को इक्ता इक्तादार या वजीहदार (वेतनभोगी अधिकारी) और बडी जमीन – मुक्ता – पानेवालो को मुक्ता या मुकतादार कहा जाता था। इक्तादार अपने इक्तो से लगान या तो स्वय या अपने गुमाश्तो के जरिये इकट्ठा करते थे। उनके परिवार भी सामान्यत इन गावो मे ही रहा करते थे। ऐसे हर परिवार को सरकारी फौज के लिए एक सिपाही देना होता था। जब बलबन न ऐसे परिवारो से जमीन वापस लेने की कोशिश की, जिनमे सैनिक सेवा करने योग्य पुरुष सदस्य नही थे, तो इतना व्यापक असतोष फैलने लगा कि सुलतान को यह विचार ही त्याग देना पडा। इस तरह इक्तादारो की जमीनें अतत निजी जागीरे बन सकती थी, जो मिल्क अथवा इनाम कहलाती थी। जहा तक मुक्तो की बात है, उनके द्वारा सग्रहीत लगान का अधिकाश राजकोष म जाता था। उनके द्वारा वसूले जानेवाले लगान का आकार और स्वरूप (वह नक्द हो या जिस रूप मे) राज्य द्वारा निर्धारित किया जाता था। लगान के नियत भाग का मुक्तादार और उसके सैनिक दस्तो (जिनम भाडे के सिपाही होते थे) के भरण पोषण के लिए उपयोग किया जाता था। स्वामित्व सशर्त था अथात वह पद से जुडा हुआ था और वशागत क्रम म नही प्राप्त होता था।

लेकिन दिल्ली सल्तनत मे ऐसे भूस्वामी भी थे कि जिन्हे राजकीय हस्तान्तर

के विना अपनी जमीन औरो को देने और उस समय प्रथानुकूल लगान वसूल करने की आजादी थी। इस प्रकार के भूस्वामियो की सख्या अधिक नही थी। उनमे सर्वप्रथम मसजिदो तथा मदरसो (जिनकी जमीन वक्फ कहलाती थी) और दरगाहो की, फिर उलमा शायरो कुछ अमीरो और व्यापारियो के एक ऐसे छोटे से समूह की जिन्होने इस तरह की ज़मीन (जिसे आम तौर पर मिल्क कहा जाता था) खरीदकर हासिल की थी गणना की जाती थी। जगल को साफ करके या परती जमीन को काश्त मे लाकर हासिल की गयी मिल्क का भी काफी महत्व था। लेकिन इस तरह की सपत्ति पर वशज आम तौर पर अधिकार तभी कायम रख सकते थे कि जब जगल को ऐसे सामत द्वारा आबाद किया जाता था, जो सरकारी खजाने के दावो से अपनी सपत्ति की रक्षा करने की क्षमता रखता था।

दिल्ली सल्तनत के सारे दौर मे हिदुओ की, और विशेषकर राजपूतो की, जमीनो मे किसी तरह का हस्तक्षेप नही किया गया। मुसलमानो द्वारा उनके प्रदेशो के जीते जाने के पहले भी उनकी पैतृक जागीरे खडित होती जा रही थी। सेवा के बदले जमीन का दिया जाना इस इलाके मे व्यापक रिवाज बनता जा रहा था। मुस्लिम विजय ने इस प्रक्रिया को इस हद तक त्वरित किया कि जहा कुछ राजपूत सामतो का खात्मा हो गया, वहा अन्यो ने सुलतान की अधीनता स्वीकार कर ली और अपनी जमीने वापस पा ली – मगर इकता के रूप मे ही। इन इकतादारो को सुलतान की लडाइयो मे अपनी सैनिक टुकडियो के साथ भाग लेना होता और राजकोष मे सालाना खिराज देना पडता था। मगर उनकी जमीने उनके बाद उनके वशजो को ही मिलती थी।

अलाउद्दीन के सुधारो ने – जिनमे आबादी पर अत्यत भारी करो का और हिंदू सामतो पर अतिरिक्त करो का लगाया जाना तथा सैनिको को जमीन के बजाय नकद वेतन का दिया जाना शामिल था – पुरानी व्यवस्था को आमूलत भग कर दिया था और इसलिए उसकी मृत्यु के फौरन बाद ही उन्हे निरस्त कर दिया गया। इसी प्रकार मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद उसके द्वारा लगाये गये अतिरिक्त भारी महसूलो अथवा अबवाब को भी उठा लिया गया। भारतीय सामती राज्य का प्रयास निरतर यही रहा था कि लगान और महसूलो का स्तर इतना ऊचा होना चाहिए कि वे अदा करनेवाले सामतो को बरबाद किय बिना राजकोष के लिए उच्च राजस्व सुनिश्चित कर सके।

बाद मे खालसा मे जबरदस्त कमी आयी और सशर्त भू-अनुदानो पर राजकीय नियत्रण धीरे धीरे ढीला होता गया। पद्रहवी सदी तक इक्ता जमीन

नगभग इनामो (अर्थात सेवा के बदले प्राप्त निजी जमीनो) जैसी हो हाने लग गयी थी। लोदी शासको के जमाने म इक्ता राजकोष म कुछ भी नहीं देते थे, यद्यपि सिद्धातत लगान का परिमाण अब भी पहले की ही भांति राज्य ही निर्धारित करता था। व्यवहार मे सामत अपने ही हितो म किसानो पर अतिरिक्त कर थोपने की कोशिश करते थे और इस प्रकार ग्रामीण कराधान के बोझ को बढाते थे। केंद्रीय प्रशासन के ढीले पडते नियत्रण के फलस्वरूप उनके लिए यह कर पाना सभव हो गया था। राजकीय प्रशासन व्यवस्था के क्षय तथा पतन ओर सामतो के स्वेच्छाचार के परिणामस्वरूप सोलहवी शताब्दी के आरभ मे ग्रामीण आबादी की स्थिति मे उल्लेखनीय अवनति आयी। यह ध्यान मे रखना चाहिए कि किसानो का भारी बहुलाश हिदुओ का था और मुस्लिम शासको द्वारा हिदुओ पर जिजिया अथवा जजिया का लगाया जाना एक भारी बोझ था।

सामती भूस्वामित्व के स्वरूपो मे आये परिवर्तनो ने कृषक जीवन पर कदाचित ही प्रभाव डाला हो। ग्राम समुदाय (पचायते) अक्षत बने रहे- मुस्लिम इतिवृत्तकारो ने इनके लिए अरबी के जमाअत शब्द का प्रयोग किया है। दिल्ली सल्तनत के लिए ये पचायते सुविधाजनक वित्तीय इकाइया थीं। गाव के मुखिया को अधिकाधिक सरकारी कर्मचारी जैसा समझा जाने लगा और इस तरह की सेवा के बदले उनके लिए लगान से मुक्त छोटे भूखड निर्धारित कर दिये गये। पचायत के भीतर भी सापत्तिक भेद अधिक जोर के साथ अनुभव किये जाने लगे। लेकिन ये भेद इतने बडे नहीं थे और दैवी आपदाओ के समय या अत्यधिक दुष्कर लगान की माग किये जाने पर कगाली का खतरा सभी ग्रामवासियो के सर पर मडरा सकता था।

साथ ही यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि दिल्ली सल्तनत के जमाने मे उत्पादक शक्तियो का धीमा, लेकिन सतत विकास होता रहा था। आबादी का बढना और पहले की जगली जमीन का काश्त म लाया जाना इसके प्रमाण है। नयी बस्तिया पैदा हुईं और जमीन को काश्त करने के अधिक कारगर तरीकों का उपयोग होने लगा। अधिकाश कृष्य भूमि सिचित नहीं थी और पैदावार वर्षा पर निर्भर करती थी। पानी ज्यादातर कूओ से प्राप्त किया जाता था और बहुत से कूए रहटदार थे, मगर इन कूओ म पानी का स्तर भी वर्षा पर ही निर्भर करता था। दिल्ली की सरकार ने सिंचित भूमि के क्षेत्र को बढाने का प्रयास किया। उदाहरण के लिए दिल्ली के पास हौज ए-शम्सी और हौज ए-खास नाम के दो विशाल जलाशयो का निर्माण किया

गया था। फीरोज शाह तुगलक ने सतलज और यमुना मे कुल कोई १८०–२०० किलोमीटर लबाई की नहरो का निर्माण करवाकर जमीन के विराट विस्तारो को पानी पहुचाया। इन नहरो के निर्माण पर पचास हजार लोगो से बेगार करवायी गयी थी।

भारत के अनुकूल जलवायु की बदालत साल मे दो फसले – रबी और खरीफ – उगायी जा सकती थी और सिचाई की सुविधा स युक्त कुछ इलाको मे तो तीन फसले भी सभव थी। मुख्य धान्य फसले गेहू, धान ज्वार और बाजरा थी और धान की कुल कोई इक्कीस किस्मे ज्ञात थी। इन मुख्य फसलो के अलावा जौ चना, तरह-तरह के दलहनो तिलहनो नाना प्रकार की शाक भाजियो, फलो और गन्ने की भी खेती की जाती थी। नील की खेती क लिए, जो कपडा रगने मे प्रयुक्त मुख्य रग था, और रेशम के कीडे पालने क लिए शहतूत के पेडो के वास्त अधिकाधिक जमीन उपयोग मे लायी जा रही थी।

अप्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर कहा जा सकता है कि दिल्ली सल्तनत मे कारीगरो और दस्तकारो की सख्या बढ रही थी। ग्रामीण दस्तकारो को ग्राम समुदाय के सदस्य माना जाता था। कारीगरो – खासकर बुनकरो की लेकिन लोहारो, ठठेरो और अन्य कारीगरो की भी – बस्तिया पैदा होने लग गयी थी। कारीगर विभिन्न कामो को अपने जातीय व्यवसायो के रूप मे अपनाते थे। शहरी दस्तकार अपना माल अपने यहा ही या स्थानीय हाटो मे बेचते थे। इस समय तक निमाण कार्य से सबद्ध कई विशेष शिल्प भी पैदा हो चुके थे, जैस सगतराश, राज, आदि।

अपन दरबार की जरूरतो को पूरा करने के लिए दिल्ली के सुलतान अक्सर बडे-बडे कारखाने कायम किया करते थे। अलाउद्दीन के कारखानो म सत्रह हजार दस्तकार (सात हजार निर्माणकर्मियो सहित) काम करते थे, जिन्ह सरकारी खजाने से वेतन दिया जाता था। मुहम्मद तुगलक के राज्य काल मे कारखानो मे चार हजार तो सिर्फ बुनकर ही थे।

भारत के मध्य एशियाई कबीलो द्वारा जीते जाने के परिणामस्वरूप आरभ मे भारत तथा पूर्व के मुस्लिम देशो के बीच काफिलो द्वारा स्थलीय व्यापार मे वृद्धि हुई। दिल्ली के सुलतानो के ढेर के ढेर सिक्के सिर्फ फारस और मध्य एशिया ही नही, ठेठ वोल्गा के तटो तक भी पाये गये है। दिल्ली सल्तनत की सेना का केद्रक रिसाला था और चूकि उपयुक्त चरागाहो के अभाव म भारत मे घोडे पैदा करना लगभग असभव था, इसलिए घोडो का आयात

विदेश व्यापार की सबसे मुख्य मदो मे एक था। लेकिन मगोलो द्वारा ईरान तथा मध्य एशिया मे कई नगरो के जीते जाने और उनके विनाश के परिणाम स्वरूप भारत के स्थलीय विदेश व्यापार मे जल्दी ही कुछ कमी आ गयी।

इसके कारण दिल्ली सल्तनत के लिए दकन के बदरगाहो का महत्व और भी अधिक हो गया जिसका व्यापक समुद्रपार व्यापार का लबा इतिहास था। भारत सूती कपडे, बगाली रेशम, हथियारो, आभूषणो और माल, चादी तथा ताबे के बरतनो का निर्यात करता था। दास व्यापार भी आम था। मध्य एशिया और फारस से दक्षिण लाये गये बदियो को गुलामो की तरह बेचा जाता था और हिंदू राज्यो के, जिनके खिलाफ जिहाद का ऐलान कर दिया गया था निवासियो को भी गुलाम बनाया जाता था। गुलामो का मुख्यत घरेलू नौकरो की तरह उपयोग किया जाता था।

दकन का जीता जाना आतरिक व्यापार के विकास के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण था। दकन के समुद्रतटीन प्रदेशो से नमक और नारियल (जिससे तेल और जिसकी जटाओ से रस्से रस्सिया बनाये जाते थे) लाये जाते थे। धान की पैदावार के लिए मशहूर बगाल के उपजाऊ इलाके अपनी पैदावार राजधानी भेजा करते थे, जो सुलतान की विशाल सेनाओ के भरण-पोषण के लिए आवश्यक थी। कन्नौज के व्यापारी भारत भर मे और विशेषकर दिल्ली मे शकर बेचते थे। लेकिन अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार जिस रूप लगान ही था। राजकोष म सचित रसद और हस्तशिल्प सामानो का अधिकाश सुलतान, उसके दरबार और भाडे के सैनिको की उसकी विराट सेना की जरूरतो को तुष्ट करने के लिए ही उपयोग किया जाता था।

नाना प्रकार के महसूल और बेगार के विविध स्वरूप दिल्ली सल्तनत मे व्यापार तथा शिल्पो के विकास मे बाधा डालते थे। सभी मुस्लिम देशो मे प्रचलित और मुसलमान व्यापारियो, दस्तकारो तथा कारीगरो द्वारा माल के मूल्य के ढाई प्रतिशत के हिसाब से नकद दी जानेवाली जकात के अलावा उपलब्ध स्रोतो मे कोतवाली (नगर प्रशासक – शहर कोतवाल – का महसूल) मुस्तगल (मकानो और छोटी दूकानो की निर्माणस्थलियो पर लगनेवाला महसूल) और नगर-द्वारो तथा घाटो आदि पर वसूल की जानेवाली विभिन्न चुगियो का भी उल्लेख मिलता है।

यह वह जमाना है, जिसमे इतिवृत्तो म नये-नये नगरो के नाम प्रकट होते है और पुरानो के प्रसार सुदृढीकरण और विकास के भी अधिकाधिक प्रायिक उल्लेख मिलते है। मुख्यत यह बात प्रशासनिक केद्रो तथा सैन्य

मुख्यालयो पर लागू होती थी, क्योकि व्यापारियो और दस्तकारो का सारा धधा सामतो और सेनाओ की आवश्यकताओ पर ही आधारित था। तथाकथित तीर्थस्थलो मे भी नगर पैदा हो गये, जहा तीर्थयात्रियो का जमाव होता था और मेले तथा उत्सव होते थे। इन शहरी केंद्रो की आबादी धीरे धीरे बढती गयी। लेकिन उनका प्रशासन अब भी सामतो के ही हाथो म था – अकसर कारवासरायो तथा दस्तकारो की दूकानो पर भी उन्ही का स्वामित्व होता था और वे ही बाजार भाव भी निर्धारित करते थे। जातियो की परिधि के भीतर ही किसी हद तक स्वायत्तता देखने मे आती थी। शहरी आबादी को अपनी सपत्ति के बारे मे कोई सुरक्षा प्राप्त नही थी। सामत अपनी मरजी के मुताबिक करो को बढा सकते थे और व्यापारियो को अपने द्वारा नियत किये दामो पर सामान बेचने के लिए विवश कर सकते थे। अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक के राज्यकालो मे तो इन सामतो का स्वच्छाचार एकदम अनियत्रित था। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नही कि शहरी आबादी मे असतोष पैदा हुआ और उसने अपने को भाति भाति के धार्मिक आदोलनो मे अभिव्यक्त किया।

जहा तक किसानो की बात है दमन और उत्पीडन के खिलाफ उनका विरोध अक्सर गावो से पलायन का रूप ले लेता था। इतिवृत्तो मे, जो सामान्यत दरबारी रोजनामचागीरो द्वारा ही लिखे गये है जगलो मे पनाह लेनेवाले "डकैत कबीलो" और लुटेरो के गिरोहो" के सक्षिप्त उल्लेख पाये जाते हैं। यह सभव है कि ये लोग वास्तव मे भगोड किसान ही रहे हो।

जिस अकेले कृपक उपद्रव का अधिक विस्तार के साथ वर्णन किया गया है, वह १४१६ मे सारग खा के नेतृत्व मे पजाब मे "बेअक्ल रिआया और जाहिलो का बलवा है। पजाब के सामतो न उसके खिलाफ अपनी फौजे भेजी। सरहिंद के निकट लडाई मे हारने पर सारग खा भागकर पहाडो मे चला गया। लेकिन बेदार किसानो ने उसके आसपास फिर गोलबद होना शुरू कर दिया। आखिर दिल्ली के सुलतान खिज्र खा की सेना ही उसे पूर्णत पराजित करने मे सफल हुई। सारग खा पकडा गया और उसे जान मे मार डाला गया।

दक्षिणी तथा पश्चिमी भारत

बहमनी राज्य

दक्न कुछ समय तक दिल्ली सल्तनत का अग बना रहा। लेकिन महम्म तुगलक के दक्षिणी भारत से रवाना होन के साथ बागी अमीरो ने अपन म से एक सेनानायक—हसन गगू (जफरशाह)—को सुलतान घोषित कर दिया जो अबुल मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमनशाह (१३४७–१३५८) के नाम से गद्दी पर बैठा। वह बहमनी राजवश का सस्थापक था। अपने चरमोत्कर्ष के समय बहमनी राज्य पश्चिम मे अरब सागर से लेकर पूर्व मे ओडिसा तक फैला हुआ था। उत्तर मे उसका विस्तार ताप्ती नदी और दक्षिण म कृष्णा तथा तुगभद्रा नदियो के तटो तक था। इसके भी दक्षिण म विजयनगर राज्य का उदय हो गया था जिसके साथ बहमनी राज्य का दोनो के बीच स्थित उर्वर रायचूर घाटी पर अधिकार के लिए युद्धो का दीर्घकालिक सिलसिला चलता रहा। बहमनशाह के दक्षिण पर हमले सफल रहे। उसने अपन राज्य को सूबो अथवा तरफो (गुलबर्गा, दौलताबाद, बीदर और बरार) में विभाजित किया और गुलबर्गा को अहसानाबाद का नाम देकर अपनी राजधानी बनाया (जिसका नाम उसकी मृत्यु के बाद फिर गुलबर्गा रख दिया गया)।

बहमनी राज्य के राजनीतिक जीवन को विजयनगर के विरुद्ध युद्धो और मुस्लिम सामतो के दो समूहो—दक्नियो (दक्न मे बहुत समय मे रहनवाले मुसलमानो के वशजो) और अफकियो (फारस तथा अय देशो से आनवालो)—के बीच आतरिक कलहो न शासित किया। धार्मिक कारको न इस वैर को और भी प्रखर कर दिया था, क्योकि अफकी अधिकाशत शिया थे, जब कि दक्नी ज्यादातर सुन्नी थे। क्रूर बहमनी सुलतान अहमदशाह (१४२२–१४३५) ने विजयनगर राज्य को बुरी तरह तहस-नहस किया और लूटा और उसकी आबादी का सहार किया। वह सल्तनत की राजधानी बीदर ले गया।

बहमनी राज्य तब अपन उत्कर्ष के शिखर पर पहुच गया कि जब शासन की बागडोर वजीर आजम महमूद गवा के हाथो म थी (१४४६–१४८१)। उसने मालवा पर के पर विजय प्राप्त की अपनी सपदा के लूटा और गोवा को जीता। लेकिन वह अफकी न उसके खिलाफ षड्यत्र

रचकर उस पर झूठे इलजाम लगाये। उन्होंने जाली दस्तावेजे बनाकर सुलतान को – जब वह नशे म था – अपने बहकावे म ले लिया और उसके हुक्म से वृद्ध महमूद गवा का वध कर दिया गया। महमूद गवा की वजारत के जमाने म ही त्वेरवासी व्यापारी अफनासी निकीतिन बीदर आया था। निकीतिन ने बहमनी सुलतानो की विराट सेना अमीर-उमरा क ऐश आराम और शष आबादी की निर्धनता का वर्णन किया है जमीन लोगो से भरी पडी है देहाती फटहाल है और सामत शक्तिशाली तथा सपन्न है।

सामतो के वैमनस्य और तदजनित आतरिक सघर्ष ने इस राज्य को कमजोर कर दिया और सोलहवी सदी म उसका पतन हो गया। १४६० मे बीजापुर स्वतत्र हो गया और उस पर आदिलशाही वश का राज्य स्थापित हो गया। कुछ ही महीनो के भीतर बरार और अहमदनगर ने भी बीजापुर का अनुकरण किया और इस प्रदश मे निजामशाही वश ने अपना शासन स्थापित कर लिया। १५१८ मे गोलकुडा स्वतत्र हो गया जहा कुतुबशाही वश के हाथ म सत्ता आ गयी। १५२५ मे अतिम बहमनी सुलतान, जिसके हाथ म कोई वास्तविक सत्ता नही थी भागकर बीजापुर चला गया। उसके वजीर और सलाहकार कासिम बरीद ने अपने को बीदर का सुलतान घोषित कर दिया।

बीजापुर

बहमनी सल्तनत के खडहरो पर पैदा होनेवाले पाच राज्यो (बीजापुर, गोलकुडा, अहमदनगर बीदर और बरार) मे बीजापुर सबसे बडा था। दकन का इस जमाने का इतिहास इन राज्यो और विजयनगर के बीच और स्वय इन पाचो राज्यो के बीच भी युद्धो से परिपूर्ण है। यद्यपि इन पाचो राज्यो के शासक कट्टर मुसलमान थे और अपने तथा विजित प्रदेशो मे हिदू आबादी पर अत्याचार करते थे, पर उनकी लडाइया धार्मिक प्रश्नो नही, राजनीतिक प्रश्नो को लेकर थी। इन दक्नी मुस्लिम राज्यो मे से अक्सर कोई न कोई अपने मुस्लिम प्रतिद्वद्वी के विरुद्ध विजयनगर के हिदू राजवश के साथ सहबध बना लिया करता था। सामान्यत ये सहबध किसी भी प्रकार स्थायी नही होते थे। इसके अलावा यह बात भी थी कि मुस्लिम राज्यो मे अक्सर काफी हिदू सैनिक और अधिकारी होते थे और उधर काफी मुसलमान विजयनगर की सेवा मे भी थे। वस्तुत भारतीय राज्यो की आबादी का भारी बहुलाश

-अफीकी–आसीन थे और हिंदू व्यापारियो तथा माहूकारो का भी काफी प्रभाव था। गोलकुडा मे रहनेवाले हिंदुओ को आम तौर पर दक्न की दूसरी मुस्लिम सल्तनतो जैमे अत्याचार और दमन को नहीं चलना पडता था।

गुजरात

गुजरात एक और ऐमा सपन्न राज्य था, जिस पर मुस्लिम राजवश का शासन था। यह पश्चिम भारतीय राज्य दक्नी सल्तनता म नही गिना जाता था। दिल्ली के सुलतान द्वारा नियुक्त गुजरात के सूबेदार ने तैमूर द्वारा दिल्ली क विनष्ट किये जाने के कुछ ही बाद अपनी स्वतत्नता की घोपणा कर दी। उमके द्वारा मस्थापित राजवश टाक अथवा अहमदशाही वश के नाम से विनात है और वह तव तक सत्तारुढ बना रहा कि मुगलो न गुजरात को जीतकर अपने साम्राज्य मे मिला नही लिया। आर्थिक दृष्टि म गुजरात भारत क सबसे विकसित प्रदेशो मे था। गुजराती किसान और फसलो के अलावा कपास गन्ने और नील की खेती करत थे। यहा के सफेद और छपे हुए सूती तथा रेशमी कपडे, मखमल और ताफ्ता की दूर दूर क दशो मे भी शोहरत थी। गुजरात की समृद्धि का मुख्य स्रोत विदेश व्यापार था। खभात पश्चिमी समुद्र तट पर भारत का प्रमुख वदरगाह था। यहा से अरब सागर लाल सागर और फारस की खाडी को जहाज जाया करते थे। खभात मे दक्षिण पूर्वी एशिया के देशो और चीन से भी लाये माल खरीदे जा सकते थे यद्यपि गुजरात और चीन के बीच कोई प्रत्यक्ष सपर्क नही था। गुजरात मे एक पूरा अरब व्यापारी समुदाय बसा हुआ था और छठी सदी के बाद से वहा फारस से आनेवाले पारसी लोग भी बसने लग गये थे। गुजरात के बदरगाहो और विशेप कर खभात मे हिंदू और मुसलमान–दोनो ही–व्यापारियो की खासी बडी आवादी थी।

गुजरात क सुलतानो मे सबसे प्रमिद्ध अहमदशाह प्रथम (१४११–१४४२) और महमूद प्रथम बेगढ (१४५८–१५११) थे। अहमदशाह ने अपनी सल्तनत का मजबूत किया और अपा राजपूत पडोसियो से सफल युद्ध किये। राजपूत सामतो को जो पीढियो मे गुजरात मे रहते चले आये थे, उसकी अधीनता स्वीकार करनी पडी। उनकी पैतृक भूसपदा का चतुथाश ही निजी सपत्ति बना रहा, जब कि शेप तीन चौथाई को अब सशर्त माफी वना दिया गया जिस पर खिराज देना होता था। इसके अलावा उनके भूतपूर्व स्वामियो के लिए

हिंदू धर्मावलंबी ही था। इसलिए जब इस काल के किसी राज्य को मुस्लिम राज्य कहा जाता है, तो आशय केवल प्रजा पर थोपे गये और शासकों एवं अधिकांश अमीर-उमरा द्वारा स्वीकृत राजधर्म से ही होता है।

बीजापुर ने पुर्तगालियों का कोई बहुत कारगर प्रतिरोध नहीं किया, जिन्होंने १५१० में उससे गोवा को छीन लिया। गोवा पूर्व में पुर्तगाली प्रभुत्व का केंद्रस्थल बन गया। इस संघर्ष में पुर्तगालियों की तत्कालीन यूरोपीय मानकों के अनुरूप अनुशासित और शस्त्रसज्जित छोटी छोटी टुकड़ियों ने बीजापुर की विशाल सेना पर बारबार अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन किया। बीजापुर के शासकों ने पुर्तगाली टुकड़ियों को अपनी सेना में काम करने के लिए आमंत्रित करना शुरू कर दिया और फिर उनका विजयनगर के विरुद्ध अपने युद्धों में उपयोग किया।

१५६५ में पांचों दकनी मुस्लिम राज्यों ने विजयनगर के विरुद्ध महासंघ बना लिया। इसके बाद कृष्णा के तट पर तालीकोट की लड़ाई में विजयनगर को पराजित कर दिया गया। इस युद्ध के परिणामस्वरूप विजयनगर साम्राज्य का अंत हो गया। पांच साल बाद बीजापुर ने अहमदनगर और कालीकट के साथ एक और सहबंध स्थापित किया – इस बार पुर्तगालियों के विरुद्ध। भारतीय सेना के लगभग ३ लाख सैनिकों ने पुर्तगाली प्रदेश और बन्दरगाह पर असफल घेरा डाला, जहां सेना कुछ ही हज़ार सैनिकों की थी। सोलहवीं सदी के अंत में मुग़लों ने दकन में प्रवेश करना शुरू कर दिया।

गोलकुंडा

पूर्वी समुद्र तट पर कृष्णा और गोदावरी नदियों के बीच स्थित गोलकुंडा आकार में दकनी सल्तनतों में दूसरे स्थान पर था। इस समृद्ध राज्य का विदेश समुद्रपार व्यापार था। उसके शिल्पोद्योग विशेषकर कपड़ा बुनाई, सुविकसित थे और नहरों के व्यापक जाल की बदौलत उसकी कृषि प्रभूत फसलें दिया करती थी। इसके अलावा गोलकुंडा अपनी हीरों की खानों के लिए भी मशहूर था। गोलकुंडा के दस्तकार एक विशेष प्रकार के कपड़े और अपने बढ़िया इस्पात के लिए विख्यात थे। गोलकुंडा से तलवारों, बाणाग्रों और अन्य प्रकार के इस्पात के हथियारों का निर्यात किया जाता था। कुतुबशाही सुलतान ने एक पहाड़ी पर गोलकुंडा के शक्तिशाली दुर्ग का निर्माण किया था। इस पहाड़ी की तलहटी में एक शहर था। राज्य में महत्वपूर्ण पदों पर फारसी

–अफीकी–आसीन थे और हिंदू व्यापारियो तथा साहूकारो का भी काफी प्रभाव था। गोलकुडा मे रहनवाले हिंदुओ को आम तौर पर दक्न की दूसरी मुस्लिम सल्तनता जैसे अत्याचार और दमन को नही झेलना पडता था।

गुजरात

गुजरात एक और ऐसा सपन्न राज्य था जिस पर मुस्लिम राजवश का शासन था। यह पश्चिम भारतीय राज्य दकनी सल्तनता मे नही गिना जाता था। दिल्ली के सुलतान द्वारा नियुक्त गुजरात के सूबेदार न तैमूर द्वारा दिल्ली के विनष्ट किये जाने के कुछ ही बाद अपनी स्वतत्रता की घोपणा कर दी। उसके द्वारा सस्थापित राजवश टाक अथवा अहमदशाही वश के नाम से विनात है और वह तब तक सत्तारूढ बना रहा कि मुगलो ने गुजरात को जीतकर अपन साम्राज्य म मिला नही लिया। आर्थिक दृष्टि स गुजरात भारत क सबस विकसित प्रदेशो मे था। गुजराती किसान और फसलो के अलावा कपास, गन्ने और नील की खेती करते थे। यहा के सफेद और छपे हुए सूती तथा रेशमी कपडे, मखमल और ताफ्ता की दूर-दूर के देशो म भी शोहरत थी। गुजरात की समृद्धि का मुख्य स्रोत विदेश व्यापार था। खभात पश्चिमी समुद्र तट पर भारत का प्रमुख बदरगाह था। यहा से अरब सागर लाल सागर और फारस की खाडी को जहाज जाया करते थे। खभात मे दक्षिण पूर्वी एशिया के देशो और चीन से भी लाये माल खरीद जा सकते थे, यद्यपि गुजरात और चीन के बीच कोई प्रत्यक्ष सपर्क नही था। गुजरात मे एक पूरा अरब व्यापारी समुदाय बसा हुआ था और छठी सदी के बाद से वहा फारस से आनवाले पारसी लोग भी बसने लग गये थे। गुजरात के बदरगाहो और विशेष कर खभात म हिंदू और मुसलमान–दोनो ही–व्यापारियो की खासी बडी आबादी थी।

गुजरात के सुलतानो मे सबसे प्रसिद्ध अहमदशाह प्रथम (१४११–१४४२) और महमूद प्रथम बेगढ (१४५८–१५११) थे। अहमदशाह ने अपनी सल्तनत का मजबूत किया और अपने राजपूत पडोसियो से सफल युद्ध किये। राजपूत सामतो को जो पीढियो से गुजरात मे रहते चले आये थे, उसकी अधीनता स्वीकार करनी पडी। उनकी पैतृक भूसपदा का चतुर्थांश ही निजी सपत्ति बना रहा, जब कि शेप तीन चौथाई को अब सशर्त माफी बना दिया गया, जिस पर खिराज देना होता था। इसके अलावा उनके भूतपूर्व स्वामियो के लिए

सैनिक सेवा अनिवाय कर दी गयी। अहमदशाह ने अहमदाबाद नगर भी बनाया जो सल्तनत की राजधानी बन गयी। उसने प्रशासन को भी सुधारा।

महमूद बगढ न अपनी सल्तनत के सीमातो का प्रसार किया। उसन कच्छ और काठियावाड पर सफल हमले किये, चपानर राज्य को जीता और अभद्य मान जानेवाले राजपूत दुर्ग गिरनार को भी जीता (चपानेर और गिरनार के गढ़ो को जीतने के कारण ही उसका नाम बेगढ – गुजराती म "बे" "दो" को कहत है – पडा)। महमूद अपन सिपहदारो को जो माफिया देता था, वे वशागत जागीरो की तरह स्थायी आधार पर दी जाती थी। उसके राज्यकाल म पुर्तगालियो ने, जिन्होन अरब सागर पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना शुरू कर दिया था और जिसमे वे अपने प्रतिद्वद्वियो – पूर्वी व्यापारियो – के जहाजो को लूटा करते थे, भारत के विभिन्न भागो मे दखल जमाना शुरू कर दिया था। गुजरात न इसका कुदरती तौर पर विरोध किया। महमूद बेगढ न पुर्तगालियो के खिलाफ मिस्र के साथ सहबध स्थापित कर लिया। आरभ म स्थिति महमूद के अनुकूल प्रतीत होती थी, लेकिन १५०६ मे पुर्तगाली उपराजा (वाइसराय) अल्मेइदा ने दीव के निकट सयुक्त बेडे को करारी मात दी जिसके परिणामस्वरूप महमूद को पुर्तगालियो से सुलह करनी पडी और उन्हे खभात की खाडी के प्रवेश मार्ग पर दीव मे अपना व्यापार केंद्र स्थापित करने की अनुमति देनी पडी। पुर्तगालियो की जलदस्युता ने खभात के व्यापार को नुकसान पहुचाया और गुजरात सल्तनत को कमजोर किया।

बहादुरशाह (१५२६–१५६७) का सारा राज्यकाल अविराम युद्धो म ही बीता। १५३१ मे उसने मालवा को अपने राज्य मे मिला लिया और १५३४ मे चित्तौड के अजेय दुर्ग को सर कर लिया। इस लडाई म चित्तौड की सना का नाबालिग राणा की मा जवाहरबाई ने बडी सुयोग्यता और साहस के माथ सचालन किया। वह एक मुठभेड मे मारी गयी, किंतु शिशु राणा को गुप्त रूप से दुर्ग के बाहर सुरक्षित स्थान पर पहुचा दिया गया। इसके बाद दुर्गरक्षको ने केसरिया बाना धारण करके दुर्ग से निकलकर शत्रु का सामना किया और सभी लडते-लडते वीरगति को प्राप्त हुए। उधर दुर्ग के अन्दर सभी स्त्रियो ने जौहर करके अपने प्राण दे दिये।

इसी बीच गुजरात पर पुर्तगालियो का दबाव बढता जा रहा था। १५३५ म बहादुरशाह को इस आश्वासन के बदले पुर्तगालियो को दीव म अपना दुर्ग का निर्माण करन की अनुमति प्रदान करनी पडी कि वे उसके शत्रुओ के विरुद्ध उसकी सहायता करग। लेकिन जब मुगल सेनाओ ने गुजरात पर आक्रमण

किया, तो पुर्तगालियो न अपन वचन को पूरा नही किया। पुर्तगालियो से और बातचीत करने के लिए बहादुरशाह पुर्तगाली उपशामक के ध्वजपोत पर गया जहा उसकी धोखे म हत्या कर दी गयी। उसकी मृत्यु क बाद गुजरात मे विभिन्न सामती दलो मे खुला सघर्ष छिड गया। इस सघर्ष क परिणामस्वरूप गुजरात मुगलो का आसानी स शिकार हो गया और उसे मुगल साम्राज्य म मिला लिया गया।

भारत मे पुर्तगालियो का आगमन

पुर्तगाली बहुत लबे समय से भारत के समुद्री रास्ते की खोज करने के लिए अभियानो का सगठन करत आय थे और आखिर १४६८ मे उन्होने इस लक्ष्य की सिद्धि कर ही ली जब वास्को-द गामा के नेतृत्व म एक पुर्तगाली अभियान कालीकट पहुच गया जो मलाबार तट पर एक महत्वपूर्ण बदरगाह और छोटा सा राज्य था। अफ्रीका के तटो से पुर्तगाली जहाजी कपडे शराब काच के मनको और ऐसी ही अन्य साधारण चीजो क बदले स्थानीय कबीलो से सोना और हाथीदात जैसे मूल्यवान माल प्राप्त करते आये थे। लेकिन भारत पहुचने पर पुर्तगाली यह देखकर दग रह गये कि यूरोपीय मालो ने जो भारतीयो को घटिया कारीगरी क लगत थे अपनी अकूत सपदा के लिए विख्यात भारतीय अभिजातो को जरा भी प्रभावित नही किया। पुर्तगाली अपने साथ ऐसा कुछ भी नही लाये थे कि जो व्यापार क लिए स्वीकार्य होता।

लेकिन दूसरी तरफ पुर्तगाली सैन्य साज सामान भारतीय साज सामान से, और विशेषकर आपस मे निरतर युद्धरत क्षुद्र मलाबारी राज्यो क साज सामान से, कही श्रेष्ठ था। अफ्रीका का चक्कर लगाकर आनेवाले पुर्तगाली जहाज आकार और रफ्तार के लिहाज से भारतीय जहाजो से कही अधिक श्रेष्ठ थे, जो मुख्यत तटवर्ती जहाजरानी के लिए ही अभीष्ट थे। जहाजी तोपो, आर्क्वीबसो (पुराने ढग की तोडेदार तोपो) और बाद मे तोडेदार बदूको से सज्जित सुअनुशासित पुर्तगाली टुकडियो को बडी-बडी भारतीय सेनाओ को भी पराजित करने मे कोई मुश्किल का सामना नही करना पडा, जिनके एकमात्र हथियार 'छोटी छोटी तलवारे और गोल ढाल" और छोटे-छोटे भाले ही थे (अल्मेइदा के बेडे के साथ १५०५ मे भारत आनेवाले एक जर्मन व्यापारी के वृत्तात के अनुसार)। इसका मतलब यह था कि चाहे पुर्तगाली अपने साथ व्यापार के लिए स्वीकार्य कोई माल लेकर नही आये थे,

फिर भी वे भारतीय मालो को हथियारो के बल पर ले लेने की स्थिति म थे। उनका लक्ष्य पूर्वी समुद्रो पर अपने प्रभुत्व को कायम करना था और इसके लिए वे अपन प्रतिद्वद्वियो – पूर्वी समुद्री व्यापारियो और भारत, अरब तथा अफ्रीका के बदरगाहो के, जहा कही भी भारतीय माल मिल सकते थे, व्यापारियो – के साथ अत्यत निर्दयतापूर्वक पेश आते थे। मलाबारी राज्यो मे सूत्रबद्धता के अभाव ने पुर्तगालियो के लिए अपनी स्थिति को मजबूत करना विभिन्न राज्यो को एक दूसरे के खिलाफ भडकाना और तटवर्ती प्रदेशा में सामतो मे वैमनस्य को प्रोत्साहित करना सभव बना दिया। जहा कही भी उनका प्रतिरोध करने की कोशिश की जाती थी वहा पुर्तगाली अपन जहाजो से बदरगाहो और तटवर्ती गावो पर गोलाबारी करते थे और फिर अपन सैनिको को उतारकर सार्विक हत्या, विनाश, लूटमार, नारियल के बागो को काटन ओर साथ न ले जायी जा सकनेवाली हर ही चीज का बरबाद करन का सिलसिला शुरू कर देते थे।

स्वय वास्को द-गामा ने अपनी पहली यात्रा के दौरान ही भारतीय नगरो पर गोलाबारी करके विनाश लीला मचायी थी। कब्राल (१५००), वास्को द गामा (१५०२) तथा अल्बूकर्क (१५१०–१५११) के नेतृत्व म बाद क पुर्तगाली अभियानो के परिणामस्वरूप उन्होने कई महत्वपूर्ण तटवर्ती अड्डो और बीजापुर के गोवा प्रदेश पर अधिकार कर लिया, जो आगे चलकर पूर्व म सभी पुर्तगाली प्रदेशो का मुख्य केद्र बन गया। ये पुर्तगाली दुर्ग ओर्मूज स शुरू करके फारस की खाडी के तट, अफ्रीका तथा अरब के तटो, भारत के पश्चिमी तथा पूर्वी तटो श्रीलका, मलक्का जलसयोजी, मलूकू द्वीपसमूह (मसाले के टापू) पर होत हुए अब थाइलैड के नाम से विज्ञात प्रदेश और ठेठ चीन तक फैले हुए थे। ये अड्डे उन पुर्तगाली जहाजो के लिए ठहरने की जगहा का काम देते थे कि जिन्ह मरम्मत की जरूरत होती थी हर साल पुर्तगाल भेजे जान वाले विभिन्न मालो (खासकर मसालो और सूती कपडे) के विदवमनाद तथा आरक्षित भडारणस्थल उपलब्ध करत थे और पुर्तगाली सेनाओ की छावनिया थे। पुर्तगाली सेनाए भारत के भीतरी प्रदेशो म प्रवेश करन म असफल रही। अपन अधिकृत भारतीय प्रदेशो मे पुर्तगाली स्थानीय आबादी का निर्मम शोषण और उत्पीडन करत थे, यद्यपि गोवा के निकटवर्ती गावो म उन्होने पारपरिक पचायतो को बने रहन दिया था। पुर्तगालियो की धार्मिक असहिष्णुता न (उन्होने मदिरो और मसजिदो को नष्ट किया, गोवा म १५६० म धार्मिक न्यायाधिकरणो – इनक्विजिशन – की स्थापना की गयी

जिमन गैर ईसाइयो और मामवर मुसलमानो पर नूर अत्याचार किय) स्थानीय आवादी के बहुनाश म बहुत रोष उत्पन्न किया।

इस क्षेत्र में सामुद्रिक व्यापार पर पुर्तगाली एकाधिकार ने भारत के अन्य पूर्वी देशो से सुस्थापित व्यापारिक सबधो को कमजोर किया और भारत के आतरिक प्रदेशो को शेष ससार से काटकर उनके विकास को अवरुद्ध किया। विनाशक युद्धो मलाबार तट पर बदरगाहो के नष्ट किय जान और स्थानीय आबादी के सहार—इन सभी कारको—न दीर्घ काल के लिए इस इलाके के विकास को कुठित कर दिया। इन कारको न गुजरात को भी इसी प्रकार प्रभावित और कमजोर किया।

भारतीय शासको की सेनाओ के साथ अपनी इन मुठभेडो मे अपन श्रेष्ठतर हथियारो की बदौलत पुर्तगाली न केवल अपने अधिकृत प्रदेशो को कायम ही रख सके, बल्कि उनका प्रसार करन म भी सफल हुए। लेकिन जैसे ही डच जहाजो के आगमन के साथ हिंद महासागर और दक्षिणी समुद्रो मे पुर्तगालियो की सामुद्रिक प्रभुता का अत हुआ कि उनके लिए भारतीय शासको की सेनाओ का सामना कर पाना असभव हो गया और भारतीयो ने एक के बाद दूसरे पुर्तगाली अड्डे को वापस छीनना शुरू कर दिया।

विजयनगर

बहमनी सल्तनत के उत्कर्ष काल मे ही उसके दक्षिण मे भी कुछेक स्वतत्र राज्यो का उदय हो रहा था (मदुरा सल्तनत, कोंडाविडु के रेड्डियो का राज्य, आदि)। जल्दी ही सगम वश के दो भाइयो—हरिहर और बुक्क—ने, जिन्हे मुहम्मद शाह तुगलक ने काम्पिल का शासन करन के लिए सूबेदार नियुक्त किया था एक छोटा सा राज्य स्थापित कर लिया। उन्होने तुगभद्रा के तट पर विजयनगर नाम का शहर बसाया और शक्तिशाली दुर्ग का निर्माण किया। इसके बाद उन्होंने धीरे धीरे अपने राज्य का विस्तार करना शुरू किया—१३४६ तक वे होयसल राज्य को और अगले ही वर्ष कदब वश के बनवासी द्वारा शासित राज्य को भी अपने नियत्रण में ले चुके थे, १३६० तक उत्तरी तमिलनाडू मे शभूव राय का राजगभीर राज्य उनके अधिकार मे आ चुका था और आठवे दशक तक मदुरा सल्तनत को भी समाप्त करके विजयनगर राज्य मे सम्मिलित किया जा चुका था। रेड्डियो को भी अपने कुछ प्रदेश से हाथ धोना पडा और बाद मे—१४२० मे—उनका राज्य ही खत्म हो गया।

इस प्रकार आठवे दशक तक लगभग सारा ही दक्षिण भारत विजयनगर का परिधि मे आ चुका था। कालातर मे विजयनगर का बहमनी सल्तनत से, और उसके पतन के बाद अन्य दक्नी सल्तनतो से टकराव हुआ। लेकिन कोई दो सौ साल चलते रहनेवाले इन अवरिाम युद्धो के बावजूद विजयनगर के सीमात लगभग वहा के वहा बने रहे।

१४८६ मे सामती अशाति और उपद्रव तथा विजयनगर पर बहमनी सल्तनत और ओडिसा के राजा की सेनाओ के विजयी आक्रमणो के परिणाम स्वरूप सगम वश का अत हो गया। इस वश के अतिम शासक से उसी के एक सबधी मत्री और सेनानायक ने सत्ता छीन ली, जिसने सिहासनारोहण के समय नरसिह सालुव का नाम धारण किया। नरसिह ने विजयनगर से छीने गये प्रदेशो के काफी हिस्से को वापस जीता, मगर उसके पुत्र इम्मादी के राज्यकाल मे इतिहास ने अपने को फिर दुहराया – उसके सेनापति वीर नरसिह ने १५०५ मे उसका तख्ता उलट दिया और तुलुव राजवश की स्थापना की।

वीर नरसिह के भाई कृष्णदेव राय के राज्यकाल (१५०६–१५२६) मे विजयनगर साम्राज्य अपनी शक्ति और वैभव के शिखर पर पहुच गया। कृष्णदेव राय ने साम्राज्य के प्रशासनिक विभाजन और वित्तीय मामलो के सचालन को सुधारा। उसने माफी की जागीरो से लिये जानेवाले लगान की भी नयी और ऊची दरे निर्धारित की। उसने पुर्तगालियो के साथ मैत्रीपूर्ण सबध स्थापित किये और उनकी सहायता से फारस तथा अरब से बढिया घोडे मगवाने लगा। उधर पुर्तगाली अधिकारियो ने दक्नी सल्तनतो द्वारा इन देशो से मगवाये जानेवाले घोडो की सख्या को प्रतिबधित कर दिया। इसके परिणामस्वरूप विजयनगर के लिए और भी अधिक विजय प्राप्त करना सभव हो गया क्योकि उस समय रिसाला भारतीय सेनाओ का मेरुदड था। इसके पहले भारत के मुस्लिम राजवशो को अपने मित्र तथा सहधर्मी अरब और फारस से घोडे मगवाने मे किसी भी कठिनाई का सामना नही करना पडता था। लेकिन हिंद महासागर तथा फारस की खाडी मे पुर्तगाली शक्ति के उदय ने परिस्थिति को आमूलत बदल दिया – अब पुर्तगाली ही इसका निर्धारण करने लग गये कि किन भारतीय राज्यो को विदेशो से घोडो का आयात करने दिया जाना चाहिए।

कई सामत राज्यो के होने के बावजूद विजयनगर साम्राज्य दक्षिणी भारत के पूववर्ती राज्यो की अपेक्षा अधिक केंद्रीकृत था। यद्यपि राज्याध्यक्ष महाराजा था लेकिन सारी सत्ता प्राय उसके मत्री – महाप्रधान – के हाथो मे ही सकेंद्रित

हाती थी। महाराज के अधीन एक बडी राज्य परिपद थी, जिसमे दरबारियो के अलावा महत्वपूर्ण सामत और व्यापारिक समुदायो के प्रतिनिधि भी होते थे। प्रातीय शासक सीधे महाप्रधान क प्रति उत्तरदायी थे। पृथक्कारी हलचलो के खतरे को दूर करने के लिए उन्ह आम तौर पर हर दो तीन साल बाद बदल दिया जाता था। उन्ह राजभूमियो से लगान वसूल करके राजकोप मे भेजना होता था और अमरनायको (सामतो) तथा अधीनस्थ राजाओ से खिराज भी इकट्ठा करना होता था। उन्ह लगान का एक छोटा सा भाग पाने का अधिकार था। प्रात जिलो मे विभाजित थे और केद्रीय सरकार के अधिकारियो के शासनाधीन थे।

राज भूमिया कुछेक शर्तो के साथ सवा क बदले सैन्यकर्मी सामतो – अमरनायको – को प्रदान की जाती थी। अमरनायक इस लिहाज से इकतादारो से भिन्न थे कि किसानो से वसूल किये जानेवाले लगान का निर्धारण वे ही करते थे और उन्हे अपनी जमीन औरो को देने का भी अधिकार था। अमरनायक द्वारा राजकोप मे जमा किये जानेवाले कर का किसानो से वसूल किये लगान के परिमाण से कोई सबध नही था। यह सबद्ध सामत के दरबार मे प्रभाव पर निर्भर करता था। सामान्यत अमरनायक अपनी जागीरो से सग्रहीत लगान का – अपने सैनिको के भरण-पोषण व्यय को काटने के बाद – कोई तीसरा अश खजाने मे देते थे। लेकिन अमरनायक इन मदो पर कम खर्च करते थे और वे अपेक्षित से कही कम सख्या मे पैदल और घुडसवार सैनिक रखने लगे। सिद्धातत अमरनायको की जागीरे उनके वशजो को नही मिल सकती थी, लेकिन व्यवहार मे विजयनगर के लगभग सपूर्ण इतिहास मे ये जमीने अकसर उसी परिवार के अधिकार मे बनी रही। अमरनायको की सेना मे छोटी टुकडियो और दस्तो के नायको को भी या तो अमरनायको से ही या राजा से जमीने मिलती थी। ये जमीने हमेशा पिता से पुत्र को प्राप्त होती थी।

देवस्थानो की गणना उस समय सबसे बडे भूस्वामियो म की जाती थी। वे आम तौर आसपास के काफी बडे इलाको के आर्थिक तथा सास्कृतिक केद्र बन जाया करते थे। वहा दूर-दूर से दर्शनार्थी आया करते थे और मेले लगा करते थे। उनके पास शिल्पकार और व्यापारी बस जाते थे और स्वय देवस्थान भी व्यापार और लेनदेन का काम करते थे। कुछ शिल्पकार सीधे दवस्थान के लिए ही काम करते थे और इसके लिए देवस्थान से जमीन के अलावा उन्ह जिस रूप मे वेतन भी दिया जाता था और देवस्थान की सेवा क ही साथ-साथ व्यवहार मे पिता के बाद पुत्र उसका अधिकारी हो जाता था।

दवस्थान समग्ररूपेण शासक वर्गीय सोपान के अग थे – वे अपन स ऊपर क सामत स्वामियो को कर देते थे और अपनी बारी मे उनके अपने अधीन सामत थे जिन्ह विदेशी सेनाओ अथवा लुटेरो के आक्रमणो की स्थिति म देवस्थान की रक्षा करन के लिए आना होता था।

गावो का काफी हिस्सा ब्राह्मण सभाओ के क्षेत्राधिकार म आता था। इस तरह की सपत्ति का आकार मे बहुत छोटा होना भी कोई विरल बात नही थी – एक-एक गाव पर सौ-सौ ब्राह्मणो का स्वामित्व भी हो सकता था। फिर भी ये सभी सामूहिक भूस्वामी ही होते थे क्योकि इन जमीनो को असामी काश्तकार या अस्पृश्य जातियो के लोग ही काश्त करते थे, जिन्ह ब्राह्मण भूदासो जैसा ही समझते थे।

पूववर्ती युग के लाक्षणिक बडे ग्राम समुदाय अब खडित हो चुके थे। ग्राम समुदायो मे अब आम तौर पर एक गाव की जमीन ही होती थी। कृषि भूमि विभाजित होती थी, लेकिन परती समुदाय की सामूहिक सपत्ति थी और उस पर कर अथवा लगान नही लगता था। तमिलनाडू मे, जहा काफी जमीन सिंचित थी, उसका विभाजन परची डालकर लाटरी द्वारा किया जाता था क्योकि कम वर्षा या सूखे के वर्षो मे ऊचाई पर स्थित जमीनो को काफी पानी नही मिल पाता था।

अमरनायक करो और लगान को लगातार बढाने की ही कोशिश करते थे और नतीजे के तौर पर उनकी समग्र मात्रा भी बढ गयी प्रतीत होती है। चौदहवी शताब्दी के मध्य मे यह निणय किया गया कि लगभग सभी अदायगिया नकद ही की जानी चाहिए और इससे किसानो की हालत और भी खराब हो गयी। उपलब्ध अभिलेखो के आधार पर कहा जा सकता है कि कुछ ग्राम समुदायो को गाव की जमीन के कुछ भाग को बचन या सीधे-सीधे कही और जाकर बस जाने के लिए विवश होना पडा। समुदाय के सदस्यो को इस समय अपन अधिकारो से वचित किया जाना शुरू हो चुका था। अमरनायक ही मुखिया और पटवारी को नियुक्त करते थे। समुदाय के सदस्य (कनीयाची) के वास्तविक सापत्तिक अधिकारो की अभिव्यक्ति अधिकाधिक इस तथ्य म होने लगी कि वह जमीन का न इस्तेमाल करन की लबी अवधि के बाद भी अपनी जमीन पर फिर कब्जा पा सकता था। जल्दी ही ग्राम समुदाय के बहुत स सदस्य गैर मौरूसी काश्तकार (पैयाकारी) बन गये जो उपज म भाग पान के बदले जमीन को काश्त करते थे। गैर मौरूसी काश्तकार अक्सर भूस्वामी के कर्जदार रहते थे और जब उस जमीन का

स्वामित्व रिमी और रा अनगिर लिया जाता था जिस पर व मेती करते थ ता जमीन व माय-माय उन्हे भी भूदासो की तरह ही नय स्वामी को दे दिया जाता था। निम्मदह इन मभी वातों न रिमानो म असतोप पैदा किया। उनके विरोध की अभिव्यक्ति का एक मामान्य रूप यह था कि वाश्तकार गावो से छोडकर चले जाते थ लेकिन १५७६ १५०६ और १५५१ म बडे पैमाने क वनवों व दगाय जान क भी उल्लेख मिलते है।

मामता की शक्ति सिर्फ गावो ही नही बल्कि शहरो मे भी निरतर वढती जा रही थी। शहरी मामला का प्रबध अब केद्रीय प्रशासन द्वारा नियुक्त शासको के हाथो म था (अब तक प्रचलित विभिन्न जातियो क प्रतिनिधियो की मभाओ के स्थान पर) और पत्तन शुल्क तथा वाजार महसूलो का लगाया जाना और मग्रहण मामतो और साहूकारा क हाथो म जाता जा रहा था। विजयनगर म अपना प्रभुत्व स्थापित करनेवाले मामत लगातार अधिकाधिक मपन्न हाते चले गय। माम्राज्य की राजधानी अपने विशाल आकार, अपने सात भीमकाय नगर-प्राचीरो, अपनी जनमस्या अपने वाजारो और सर्राफे क वैभव और उपनम्य मनोरजनो स यात्रियो को चकित कर देती थी। लेकिन पुर्तगाली इतिवृत्तकार नूनिस क शब्दो म किसानो को अपनी उपज का ६/१० भाग अमरनायको को देना होता था जो स्वय अपनी आय का तिहाई से आधा भाग तक राजा को देते थे। बहुत करके नूनिस का आशय यहा गैर मौरूसी काश्तकारो से ही है।

कृष्णदेव राय की मृत्यु क बाद एक बार फिर कृष्णदव राय के भाई और राजा अच्युत (१५३०–१५४२) और उसके मत्री राम राय के बीच सघर्ष फूट पडा जिसने दो सामती समूहो मे परस्परघाती युद्ध का रूप ले लिया। अच्युत की मृत्यु के बाद राम राय ने अच्युत के भतीजे मदाशिव को गद्दी पर बैठा दिया, लेकिन व्यवहार मे वास्तविक सत्ता को उसी ने दबोच लिया था। विजयनगर ने एक के बाद दूसरी दक्नी सल्तनत के साथ गठबधन जोडना और अपने शत्रुओं के प्रदेशो पर लगातार हमले और लूटमार करना शुरू कर दिया। इसके नतीजे के तौर पर दकन की सभी सल्तनतो ने विजयनगर के विरुद्ध सहबध बना लिया और १५६५ म राम राय की सेना का तालीकोट की लडाई म मफाया कर दिया। साम्राज्य की राजधानी विजयनगर को भूमिसात कर दिया गया।

तालीकोट की लडाई के बाद विजयनगर का तेजी से ह्रास होने लगा। सत्रहवी शताब्दी के आरभ तक वह एक छोटा सा राज्य ही रह गया था,

जिसकी राजधानी पेनुगोंडा मे थी। साम्राज्य के अनेक भूतपूर्व सामत राज्य अब स्वतत्र हो चुके थे (मदुरा, तजौर, जिजी, इक्केरी अथवा केन्नार)। साथ ही इस समय तक एक नये राज्य का भी उदय हो चुका था और वह था मैसूर।

अब राम राय के भाई तिरुमल ने अपने को विजयनगर का शासक घोषित कर दिया और उसने विजयनगर के अतिम राजवश—अराविदु वश—की स्थापना की। इस वश का सबसे प्रमुख शासक वेकट द्वितीय (१५८६–१६१४) था, जिसने साम्राज्य को लगभग उसका पूर्व आकार फिर से प्रदान कर दिया। लेकिन उसकी मृत्यु के बाद सिहासन के विभिन्न दावेदारो मे लबा सघर्ष शुरू हो गया जिसमे पडोसी राज्यो ने भी भाग लिया। इस सघर्ष म हाल ही मे फिर से जीते गये प्रदेश दुबारा स्वतत्र होकर अलग हो गये। राजसिहासन के लिए दीर्घकालिक सघर्ष के बाद उस पर राम द्वितीय (१६१४–१६३०) आसीन हुआ जिसका सारा राज्यकाल मदुरा के विरुद्ध युद्धो और अपने सामती राज्यो के विद्रोहो के दमन मे ही बीता। श्रीरगम द्वितीय के राज्यकाल (१६४२–१६७०) मे भूतपूर्व विजयनगर साम्राज्य का प्रदेश बीजापुर और गोलकुडा के बीच विभक्त हो गया। साम्राज्य का भूतपूर्व शासक अब अपना समय इन दोनो भूतपूर्व सामतो के दरबारो मे बिताने लगा, जहा उसकी हैसियत अब सामान्य दरबारी से अधिक नही थी।

तेरहवी से सोलहवी सदियो मे भारतीय सस्कृति

धर्म

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद भारत तथाकथित मुस्लिम विश्व की सास्कृतिक परिधि के भीतर आ गया। इस्लाम के विचारो का सातवी सदी म सिध मे और नवी सदी से उत्तर भारत के अन्य भागो म भी प्रसार होने लगा था। लेकिन दिल्ली सल्तनत मे इस्लाम को राज धर्म बना दिया गया जिसे स्थानीय आबादी पर जबरदस्ती थोपा गया। हिंदू आबादी के विभिन्न अशको न नये धर्म को अगीकार कर लिया—कुछ ने जबरदस्ती के कारण, तो कुछ ने उससे प्राप्य विशेषाधिकारो के लिए क्योकि मुख्य पद मुसलमान ही पा सकते थे। थोडे से लोगो ने जिजिया से बचने के लिए,

तो नीची जातियो के लोगो ने अपनी स्थिति से संलग्न असुविधाओ से मुक्ति पाने की आशा मे नया धर्म ग्रहण किया।

नये विजेता भारत अकेले नही आये थे—उनके पीछे पीछे उनके सबधी और कबीलेवाले भी यहा आने लगे। अन्य देशो से मुस्लिम विद्वान और शायर भारतीय सुलतानो के दरबारो मे स्थान पाने लग गये। नतीजे के तौर पर मुस्लिम आबादी बढने लगी और कुछ इलाको मे तो आबादी मे मुसलमान ही बहुसख्यक हो गये (उदाहरण के लिए बगाल मे जहा बौद्ध धर्म के अपकर्ष के बाद भूतपूर्व बौद्धो की बडी सख्या ने नये धर्म मे दीक्षित किया गया)। लेकिन अन्य मुस्लिम देशो के विपरीत भारत मे इस्लाम दोनो मुख्य धर्मो मे से एक ही बना रहा और कभी भी एकमात्र धर्म नही बन पाया। दिल्ली सल्तनत का अत होने तक मुसलमान देश के अधिकाश भागो मे शासक वर्ग बन चुके थे। दिल्ली सल्तनत की सेनाओ मे अधिकाश अफसर और सैनिक मुसलमान ही थे और सूबेदारो तथा नगराधिकारियो के बारे मे भी यही बात सही थी। दूसरी ओर कर-सग्रहण का काम अब भी हिदुओ के ही हाथो मे था और अधिकाश व्यापारी तथा साहूकार भी हिंदू ही थे। सामान्यत किसान भी हिंदू ही बने रहे।

हिदुओ और मुसलमानो मे भयकर लडाइयो के बावजूद उनके एक ही देश मे दीर्घ काल तक साथ-साथ रहने के परिणामस्वरूप उन्होने एक दूसरे को प्रभावित किया और कुछ सामान्य विश्वासो तथा प्रथाओ का विकास हुआ। भारतीय मुसलमानो ने जातिप्रथा को अपना लिया व्यवहार मे स्थानीय देवताओ को पूजने और इस तरह अतत मानने भी लग गये कि जिसकी इस्लाम मे कोई भी गुजाइश नही थी। उन्होने योग दर्शन के कुछ पक्षो को भी अपना लिया हिंदू उत्सवो मे भाग लेने लग गये और *भारतीय सदर्भ मे स्वय इस्लाम मे किसी हद तक बहुदेवोपासना का प्रवेश* हो गया। अपनी बारी मे हिदुओ पर मुस्लिम भ्रातृत्व के विचारो का, सूफी सतो की जीवन प्रणाली का और ईश्वर से सलयन करने के विभिन्न मार्गो की उनकी शिक्षा का प्रभाव पडा। चौदहवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे ही कट्टर मुस्लिम धार्मिक नेता लोगो के मन मे विष्णु-अवतार राम और अल्लाह के दयालुतासूचक नाम रहीम को उलझाये जाने का विरोध करने लग गये थे। यह समझना बहुत आसान है कि इस्लाम ने भारत में मुख्यत सूफी विचारो के रूप मे ही जड क्यो पकडी—इस रहस्यवादी मत ने इस्लाम मे बहुत से ऐसे विचारो के समावेशन का पथ प्रशस्त कर दिया, जो कट्टर मुस्लिम विचारो से सगत नही थे।

इस्लाम की कुरआन द्वारा विहित अनम्यता व पक्षधर उलमा और करआन की वितंडावादी व्याख्याओं के बजाय शेखों के दिव्यज्ञान का सर्वप्रमुख स्थान प्रदान करनेवाले सूफियों में यह संघर्ष चौदहवीं और पंद्रहवीं सदियों के मध्य दौर में चलता रहा। स्वयं सूफियों में भी कुछ ऐसे संप्रदाय थे, जिनके विचार और रीति रिवाज हिंदू धर्म के अधिक निकट थे (उदाहरण के लिए चिश्तिया और फिरदौसी संप्रदाय) और ऐसे संप्रदाय भी थे कि जो भारतीय इस्लाम में समाविष्ट इन 'नवाचारों" का प्रचंड विरोध करते थे (सुहरावर्दी और शत्तारिया संप्रदाय)।

अन्य मुस्लिम देशों में उलमा जिन विवादों में उलझे हुए थे, उन्होंने भारत में भी मुसलमानों को प्रभावित किया। उस समय के सबसे प्रमुख सूफी संत ये थे – हिंदुओं के प्रति अपनी सहिष्णुता और अपने अनुगामियों अपेक्षित उच्च नैतिक सिद्धांतों के लिए विख्यात निजामुद्दीन औलिया (मृत्यु १३२५) इसके विपरीत सूफियों से सुन्नी सिद्धांतों का कट्टरतापूर्वक पालन करने का तकाजा करनेवाले अलाउद्दौला सिमनानी (१२६१–१३३६) चौदहवीं सदी के मध्य के अपने फतवों के लिए मशहूर शरफुद्दीन अहमद मनरी जिन्होंने उनमें मुसलमानों में चल पड़े हिंदू रीति रिवाजों के प्रति सहिष्णुता व्यक्त की थी और शैखों के लौकिकीकरण का विरोध करते हुए, इन धर्मगुरुओं से सर्वोपरि सासारिक सुखों का त्याग करने की माग की थी, फरीदुद्दीन गंज शकर अथवा बाबा फरीद शकरगंज (११७५–१२६५) जो बहुत लोकप्रिय थे और जिन्होंने अपने सूफी संप्रदाय के सिद्धांतों को पंजाबी और हिंदवी में प्रचारित किया। बाबा फरीद अपनी विनयशीलता और मदयता के लिए प्रसिद्ध थे (वह कहते थे, सूई छुरी से बेहतर है, क्योंकि सूई सांकर मिलाती है जब कि छुरी चीरकर अलग करती है।"), लेकिन सिखों के आदि ग्रंथ में संकलित भजन जिन्हें बाबा फरीद द्वारा लिखे गए बताया जाता है काफी बाद के प्रतीत होते हैं। यही बात मुइनुद्दीन चिश्ती (११४१–१२३६) की जीवनी और शिक्षाओं के बारे में भी है, जो सीस्तान से भारत आये थे।

हिंदू और मुस्लिम धार्मिक विचारों में सौहार्दस्थापन की इस प्रक्रिया ने भक्ति आंदोलन के उत्तरवर्ती चरणों में अपने को खासकर अनुभूत करवाया। सामंती समाज के उत्पीडित संस्तरों (विशेषकर नगरों में व्यापारियों और शिल्पकारों) के इस आंदोलन ने सामंती शासन के प्रति असंतोष और विरोध को एक धार्मिक तथा रहस्यात्मक मार्ग प्रदान किया। शास्त्रानुयायी हिंदू धर्म

और इस्लाम की धार्मिक असहिष्णुता और वितडावाद के स्थान पर भक्तिमार्ग के प्रतिपादको ने केवल एक ईश्वर के विचार का प्रचार किया, जिसकी भक्ति किसी भी धार्मिक सिद्धात से अधिक महत्वपूर्ण थी और जो किसी भी धर्म अथवा जाति के हर आदमी की पहुच के भीतर था। भक्तिमार्गियो के ईश्वर के सम्मुख सभी लोगो की समानता के विचार म सामाजिक समानता के आदर्श की सत्ताधारियो के खिलाफ दोनो ही प्रधान धर्मो – हिंदू और इस्लाम – के नेताओ के विरुद्ध मुसलमानो की विशेष स्थिति और हिंदुओ के जातीय सोपान के विरुद्ध विरोध की झलक देखी जा सकती है। स्वाभाविक तया भक्ति आदोलन के साथ हिंदू ही अधिक सबद्ध थे। लेकिन भक्तिमार्ग के कुछ प्रमुख प्रवर्तक मुसलमान भी थे और सबसे महत्त्व की बात यह थी कि भक्ति का सदेश सिर्फ हिंदुओ ही नही मुसलमानो के लिए भी था। उन्होने अपनी शिक्षाओ को स्थानीय भाषाओ और बोलियो मे भजनो के रूप म सूत्रवद्ध किया। अपने इस जनसुलभ रूप मे भजनो के माध्यम से उनके विचार खूब फैल गये और बहुत से भजन तो लोकगीत भी बन गये। भक्ति आदोलन का कोई एक सगठनात्मक केंद्र नही था और उसने भारत के लगभग सभी भागो मे अपनी जड जमायी।

भक्तिमार्गियो मे सबसे अधिक लोकप्रियता प्राप्त करनेवालो मे एक कबीर (लगभग १३८०–१४१४) थे। कबीर के भजनो (साखियो) मे इस विचार का प्रतिपादन किया गया है कि राम और अल्लाह एक ही ईश्वर के अलग-अलग नाम मात्र है और ईश्वर का निवास मनुष्य के हृदय में है। उन्होने प्रेम के पथ का उपदेश दिया और कहा कि जो कोई भी हरि को भजता है वह हरि का हो जाता है। पद्रहवी सदी मे महाराष्ट्र मे पडरपुर भक्ति आदोलन का एक केंद्र बन गया जहा नामदेव ने जातिप्रथा के अन्यायो के खिलाफ आवाज उठायी। सोलहवी सदी के आरभ मे गुजरात सिंध और पजाब म सतपथ ने काफी लोकप्रियता प्राप्त की। सतपथी धन के विरोधी थे और उद्योग तथा ईमानदारी का प्रचार करते थे – सतपथियो के द्वार सामाजिक स्थिति के लिहाज के बिना सभी लोगो के लिए खुले हुए थे। इधर पजाब मे सिख सप्रदाय का उदय हुआ। इसके प्रवर्तक लाहौर के निवासी नानक (१४६९–१५३९) थे। उनके अनुगामियो मे व्यापारियो और दस्तकारो के अलावा जाट किसान भी थे। नानक ने जातिप्रथा से उदभूत असमानताओ का सख्त विरोध किया और अपने अनुयायियो को जाति के भेद का लिहाज किये बिना साथ साथ खाना पीना करने के लिए कहा। नानक ने वैराग्य और सन्यास के

विचार को अस्वीकार करते हुए अपने अनुगामियो को मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए सक्रिय कार्य करने की शिक्षा दी। नानक ने सूफियो के सगठनात्मक ढाचे को अपनाया जिसमे शिष्य अपने गुरु के आदेशो के पूर्णत अधीन होता है। उन्हे सिखो के दस गुरुओ मे सर्वप्रथम माना जाता है। बगाल मे चैतन्य (१४८६-१५३४) ने भक्ति के सिद्धातो का कृष्णोपासना के साथ सयोग किया। उन्होने सभी जातियो के लोगो को—और मुसलमानो को भी—अपना शिष्य बनाया। चैतन्य ने राधा और कृष्ण के प्रेम को मनुष्य के ईश्वर से प्रेम का समानार्थक बना दिया। उनके भजन आज भी प्रचलित और लोकप्रिय है।

ये विभिन्न धार्मिक आदोलन और नये पथ, जिन्होने आरभ मे जातिप्रथा का विरोध किया था, धीरे धीरे स्वय सवृत अतर्विवाही जातियो मे परिणत हो गये। इनमे से अनेक पथो के अनुगामी धीरे-धीरे स्वेच्छिक आधार पर अपनी आय का कुछ अश अपने पथो के धर्मगुरुओ को भेट स्वरूप देने लगे, जो कालातर मे इन भेटो को अपना वैध अधिकार मानने लग गये और इस तरह वे एक तरह के छोटे सामत बनने लग गये। उदाहरण के लिए सतपथ और सिख सप्रदाय मे ऐसा ही हुआ।

साहित्य

फारसी के दिल्ली सल्तनत की राजभाषा बन जाने के परिणामस्वरूप अब इस भाषा मे भी साहित्य—और विशेषकर काव्य साहित्य—की रचना होने लगी। फारसी ने उत्तर भारत मे उर्दू भाषा की उत्पत्ति मे भी योग दिया जिसका व्याकरण भारतीय मूल का है पर शब्दावली मे फारसी और अरबी शब्दो का प्राचुर्य है। इस काल के एक प्रमुख कवि अमीर खुसरो (१२५३-१३२५) थे जिन्होने फारसी ही नही, हिदवी मे भी रचना की। इस समय तक नयी भारतीय भाषाओ मे भी काव्य रचना होने लग गयी थी—गुजराती, मराठी और पजाबी मे इसने वीरकाव्य का और हिदी (कबीर, पन्द्रहवी सदी), मराठी (नामदेव पद्रहवी सदी) पजाबी (नानक, उत्तर पन्द्रहवी तथा प्रारभिक सोलहवी शताब्दी) आदि मे लिखित भक्तिमार्गी कविता का रूप लिया। भक्तिमार्गियो ने अपनी कविता मे लोकवार्ता के अनेक तत्वो का भी उपयोग किया। उस काल के फारसी गद्यलेखन ने इतिवृत्तो का रूप लिया।

यदि कल्हण द्वारा बारहवी शताब्दी के मध्य मे सस्कृत मे लिखित कश्मीर

क पद्यबद्ध इतिवृत्त 'राजतरंगिणी' की गणना न की जाये तो कहना होगा कि मुस्लिम विजय से पूर्व भारत में कोई भी इतिवृत्त नहीं लिखा गया था। ख्वारज्म का रहनेवाला अबूरहान अलबेरूनी (९७३-१०४८) जिसे महमूद गजनवी बंदी बनाकर गजनी ले गया था, पंजाब पर एक अभियान के समय अपने मालिक के साथ था (प्रत्यक्षतः ज्योतिषी की हैसियत से)। उसने भारत पर उपलब्ध सारी सूचना का अत्यंत सुनिश्चयतापूर्वक संकलन किया और उसके आधार पर बाद में 'कितायुल हिंद' नामक वृहद ग्रंथ की रचना की, जो भारतीय इतिहास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत है।

पहला वास्तविक इतिवृत्त मिनहाजुद्दीन जुरजानी (जन्म-११९३) नामक ईरानी का लिखा हुआ है, जो मंगोल आक्रमणकारियों से बचने के लिए भारत भाग आया था। अपने आश्रयदाता दिल्ली के सुलतान नासिरुद्दीन महमूद के सम्मान में उसने अपने इतिवृत्त का नाम 'तबकात नासिरी' रखा है। चौदहवीं सदी में जियाउद्दीन बरनी और शम्से सिराज अफीफ ने फारसी में मूल्यवान इतिवृत्तों की रचना की। ये दोनों ही ग्रंथ फारसी गद्यलेखन के आदर्श माने जाते हैं। दोनों ही इतिवृत्तकारों ने सुलतान फीरोजशाह तुगलक के सम्मान में अपनी-अपनी कृति का नाम 'तारीखे फीरोजशाही' रखा है।

वास्तुकला

दिल्ली सल्तनत के जमाने में भारत में मुस्लिम परंपरा से संबद्ध पहली इमारतों—मसजिदों, मदरसों, मकबरों, मीनारों—का निर्माण शुरू हुआ। ये भारत के लिए सर्वथा अपरिचित शैली और स्वरूप की इमारतें थीं, जिनमें मूर्तिकलात्मक अलंकरण का सर्वथा अभाव था, किंतु फिर भी जो अपने आकार-प्रकार और निर्माण सौष्ठव की दृष्टि से अत्यंत प्रभावोत्पादक थीं। कुतुब मीनार इस शैली की एक बढ़िया मिसाल है। इसके ज्यामितीय अलंकरण का अरबी कितावत में तक्षण के साथ बड़ा सुंदर समन्वय किया गया है। इल्तुतमिश का मकबरा गुंबजयुक्त वर्गाकार इमारत है, जिसके चारों ओर महराबदार प्रवेशद्वार हैं। इसने बाद में बननेवाले सभी मकबरों के लिए नमूने का काम किया है। इसे नक्काशी और कितावत से अलंकृत किया गया है। तुगलक कालीन इमारतों की खूबी उनकी सादगी है, लेकिन वे भी अपने आकार की भव्यता से प्रभावित किये बिना नहीं रहतीं। अलाउद्दीन द्वारा बसाये गये सीरी और मुहम्मद तुगलक के बसाये तुगलकाबाद के खंडहर दिल्ली सल्तनत

वे लाक्षणिक नागर वास्तु और शहरपनाहो का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। लोदी वश के आगमन तक इस्लामी वास्तु मे हिंदू शैली के कुछ तत्वा का भी प्रवेश होने लगा था। लोदीकालीन इमारते आकार मे छोटी हैं, फिर भी वे मनोहर और भव्य हैं। दकनी और अन्य सल्तनतो की राजधानिया म भी इस्लामी वास्तु विकसित हुआ, उदाहरण के लिए बीदर, गुलबर्गा, माडू और अहमदाबाद मे। लेकिन साथ ही मुस्लिम विजय ने हिंदू वास्तु के विकास को अवरुद्ध भी किया। आक्रमणकारियो ने बहुत से भव्य हिंदू मदिरो का नष्ट किया और इस जमाने मे उल्लेखनीय भवनो का कम ही निर्माण हुआ।

मुगलकालीन भारत
(सोलहवीं से अठारहवी सदी तक)

मुगल राज्य की स्थापना

दिल्ली सल्तनत का अस्तित्व, मुस्लिम सामतो के शासक वर्ग का उदय, हिंदुओ और मुसलमानो का दीर्घकालिक सहअस्तित्व और उनका आपस मे अन्योन्य प्रभाव – इन सभी कारको ने उत्तर भारत म एक नये और शक्तिशाली मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना का पथ प्रशस्त करने मे योग दिया। यद्यपि भारत क तटवर्ती प्रदेश – मलाबार गुजरात कारमडल और बगाल भी जो बहुत समय से अरब देशो, ईरान मलेशिया तथा मलूकू द्वीपो के साथ ममालो और कपडे का जोरदार सामुद्रिक व्यापार करते आये थे आर्थिक दृष्टि मे देश के अन्य भागो की अपेक्षा अधिक विकसित थे फिर भी आतरिक विरोधो ने उन्हे विशीर्ण कर दिया था और उनकी शक्ति को यूरोपीय व्यापारी कपनियो के हस्तक्षेप ने कमजोर कर दिया था जो भारतीयो को धीरे धीरे सामुद्रिक व्यापार से निकाल बाहर करती जा रही थी। यही कारण है कि सत्रहवी सदी म सामती केद्रीकृत ढाचे का मुगल साम्राज्य दक्षिणी भारत के काफी हिस्से क प्रतिरोध को कुचलने और अपने अधीन करने मे सफल रहा।

उत्तर भारत मे इस नये राज्य का सस्थापक तैमूरवशी जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर (१५२६–१५३०) था जो फारगना का भूतपूर्व शासक था जिसे माइबेरिया से आनेवाले उज्बेको न मध्य एशिया मे खदेड भगाया था। बाबर की एक अन्य तैमूरवशी और उसके रिश्तेदार – हेरात क शासक – ने महायता की। बाबर न अफगान इलाको पर नियत्रण स्थापित कर लिया और काबुल म जम गया लेकिन उसका विश्वास था कि भारत को जीतकर ही वह एक समृद्ध और शक्तिशाली राज्य का स्वामी बन सकता है। बाबर न १५१८ और

१५२४ मे पजाब पर हमले किये, फिर दिसबर, १५२५ मे मध्य एशियाई और अफगान तथा गक्खर सैनिको की शक्तिशाली सेना लेकर उसने भारत पर एक बार और आक्रमण किया। मगोलो द्वारा प्रयुक्त युद्ध प्रविधियां – रिसाले के अचानक आक्रमणो और रस्सो से आपस मे बधी गाडियो की आड मे सैन्य विन्यास करने की कला – का उपयोग करते हुए बाबर अत मे दिल्ली के सुलतान इब्राहीमशाह लोदी की सेना को १५२६ मे पानीपत की लडाई मे ध्वस्त करने मे सफल हो गया। एक साल बाद फतहपुर सीकरी थाने के निकट खानवा की लडाई मे उसने चित्तौड के शासक और अनुभवी सेनानायक राणा सागा के नेतृत्व मे राजपूतो को परास्त किया, जो सभी राजपूत शासित प्रदेशो को अपने शासन मे ऐक्यबद्ध करने का इच्छुक था। इन दोनो विजयो ने उत्तर भारत पर बाबर के शासन को सुदृढ कर दिया। बाद मे उसने लगभग सपूर्ण गगा घाटी को अपने नियत्रण म ले लिया।

कुछ अफगान दस्ते लूट के माल से मालामाल होकर स्वदश लौट गये। भारत मे रह जानेवाले सैनिको को बाबर ने उनकी सेवा के बदले जमीन प्रदान की जो आगे चलकर जागीरे कहलायी। इन जागीरो का सारा प्रबध कारिदो के अधीन था जो अधिकाशत हिंदू थे और देश के रीति रिवाज से परिचित थे और यह जानते थे कि किसान कितना लगान दे सकते है।

बाबर ने भारत पर तीन साल शासन किया। वह बडा सुशिक्षित, सुसस्कृत, सतर्क और पारखी दिमाग का आदमी था। वह साहित्यानुरागी और कविहृदय भी था और कला-रसिक था। उसने अपने सस्मरण ('बाबरनामा') तुर्की मे लिखे है। इस पुस्तक की विशेषता उसकी भाषा की सरलता और सुतथ्यता है (इस पुस्तक का अकबर के आदेश से फारसी मे भी अनुवाद किया गया था)। हिदुओ को वह काफिर मानता था और हेय समझता था, मगर उसने उन पर कोई अत्याचार नही किये।

अपनी मृत्यु के पहले बाबर ने अपना राज्य अपने बेटो मे विभाजित कर दिया था। सबसे बडा भाग उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र हुमायू को दिया और अन्यो को जिन्हे पजाब काबुल और कदहार के इलाके मिले, उसने हुमायू की प्रभुता स्वीकार करने का आदेश दिया।

हुमायू ने गुजरात, और राजपूताना तथा बिहार के कुछ हिस्सो को जीतकर अपने राज्य का विस्तार करने का प्रयास किया। लेकिन आरभिक सफलताओ के बावजूद आतरिक झगडो के कारण वह अपनी विजयो का सुदृढीकरण न कर पाया। उसके भाइयो ने उसकी अधीनता से मुक्ति पाने की लालसा मे

दिल्ली पर कब्जा करने का यत्न किया। हुमायू का मुख्य प्रतिद्वद्वी बिहार और बगाल के अफगान सामतो का नेता शेर खा सूर (सूरी) था। लेकिन बिहार मे चौसा की लडाई और उसके बाद कन्नौज की लडाई मे बुरी तरह पराजित होने के बाद हुमायू को अपनी गद्दी और राजधानी को छोडकर सिध भाग जाना पडा। यहा उसने स्थानीय मुस्लिम सिपहसालार की चौदहवर्षीय बेटी हमीदा बानू से शादी की जिसके गर्भ से १५४२ मे उसका प्रसिद्ध पुत्र अकबर पैदा हुआ। लेकिन सिध मे भी मुसीबतो न उसका पीछा नही छोडा और अपन भाइयो से बचने के लिए उसे ईरान भाग जाना पडा। अकबर को हुमायू का भाई और काबुल का शासक कामरान अपने साथ काबुल ले गया।

हुमायू फारसी साहित्य का कुशल पारखी और रणक्षेत्र मे साहसी सेनानायक था। लेकिन अफीम की लत न उसकी निर्णय बुद्धि और विवक को कुठित कर दिया था। दिल्ली पर अपने प्रभुत्व क समय उसन साम्राज्य म एक सुव्यवस्थित प्रशासन प्रणाली का प्रचलन करने का प्रयास किया था लेकिन इस प्रणाली के आधारभूत सिद्धात कृत्रिम और वास्तविकता स दूर थे। उसन अपने दरबारियो को तीन समूहो मे विभाजित किया – वजीरो उलमा और कलाकारो (शायरो, गायको नर्तको आदि)। उसन शासन क चार महकम भी कायम किये – महकमा ए आतिश के अधीन सार फौजी मामले आत थे, महकमा ए-आब सिचाई की देखभाल करता था और शाही सुरा भडार भी इसी क अधीन था, महकमा ए-माल के सुपुर्द मालगुजारी तथा वित्तीय मामलो और खालिसा जमीनो का प्रबध और निर्माण कार्य था। इनके अलावा एक रूहानी महकमा भी था, जिसका सबध उलमा धार्मिक नेताओ शायरो और इतिवृत्तकारो की गतिविधियो और उनक पारिश्रमिक से था। यह प्रशास निक व्यवस्था, जिसम महत्वपूण मामलो का अल्प महत्व क मामलो के साथ सयोग करने का प्रयास किया गया था स्थायी नही हो सकती थी और शेर खा ने गद्दी पर अधिकार करने के साथ उसका अत कर दिया।

१५४० और १५४५ के बीच दिल्ली पर शेर खा ने राज्य किया जिसन सम्राट बनकर शेरशाह का नाम धारण कर लिया था। शेरशाह सामतो को और खासकर बिहार और बगाल के अफगान मूल के सरदारो को वश म रखने को अपना सबसे महत्वपूर्ण कार्यभार समझता था (प्रसगवश उसन स्वय उनकी सहायता से ही सत्ता पर अधिकार किया था)। इस लक्ष्य स उसन अपन जागीरदारो से सख्ती के साथ एक निश्चित सख्या मे घुडसवार सैनिको को रखने की माग करना शुरू किया (अश्वारोहियो की सख्या जागीर

के आकार पर निर्भर करती थी) और ये सैनिक ही शाही सेना के सदस्य थे। स्थिति इन पूर्णतः अपने नियंत्रण में रखने के लिए शेरशाह ने जागीरदार की मोहर से घोड़ा दागे अनिवार्यतः लगाए जाने और सैनिकों के नियमित मुआयना की प्रथा लागू की ताकि जागीरदारों में अब तक प्रचलित मुआयने के समय उपलब्ध घोड़ों और आदमियों को भरती करके पेश कर देने और बाद में बर्खास्त कर देने की प्रथा का अंत किया जा सके। शेरशाह ने उपज में राज्य के प्राप्य अंश का निर्धारित करने और राजस्व के हिसाब में किसानों की जोतों के आकार और उसके आधार पर फसल के परिणाम के माप के बिना कर संग्राहकों के मनमाने निर्धारण को रोकने का प्रयास किया। उसका आग्रह था कि सेना को नकद वेतन ही दिया जाना चाहिए और जहां कहीं भी संभव था उसने जिंस रूप महसूलों के स्थान पर नकद महसूल लेने की कोशिश की। शेरशाह ने किसानों के बगावतों और सभी अलग होने के आंदोलनों को सख्ती के साथ कुचला (उदाहरण के लिए आगरा के पास रहनेवाले नियाजी अफगानों के विद्रोह को)।

अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार करने के प्रयास में शेरशाह ने भी हुमायूं की तरह ही राजपूत राज्यों को जीतने का सिलसिला शुरू किया, ताकि उनके जरिये पश्चिमी तट के बंदरगाहों तक पहुंच सकें। लेकिन १५४५ में राजपूतों के एक दुर्ग—कालिंजर—के घेरे के समय बारूद में आग लग जाने से शेरशाह की मृत्यु हो गयी।

अकबर का राज्यकाल

शेरशाह की मृत्यु के साथ अफगान सामंतों में एक बार फिर गद्दी के लिए संघर्ष छिड़ गया। अंत में गद्दी पर शेरशाह के सबसे छोटे बेटे ने अधिकार कर लिया, जिसने १५५४ तक राज्य किया। उसकी मृत्यु के बाद फिर प्रचंड संघर्ष छिड़ गया और इस बार गद्दी के चार दावेदार थे। हुमायूं ने जो हाल ही में तुर्कों, फारसियों, अफगानों, तुर्कमानों और उज़्बेकों की पचमेल फौज को लेकर ईरान से वापस आया था, इस स्थिति का लाभ उठाया। उसने अन्य दावेदारों की फौजों को परास्त करके १५५५ में दिल्ली को सर कर लिया। लेकिन उसका राज्यकाल अल्पकालिक ही रहा, क्योंकि कुछ ही महीने बाद वह अपने कुतुबखाने (पुस्तकालय) की सीढ़ियों से गिरकर मर गया। तेरह

वर्षीय शाहजादे अकबर के सरक्षक, तुर्कमान सामत बैरम खा ने उसे गद्दी पर आसीन करवा दिया और स्वय प्रतिशासक की हैसियत से कार्य करता रहा।

उस समय मुगलो का राज्य गगा-यमुना की घाटी तक ही सीमित था। पजाब और उत्तर मे अफगान प्रदेशो के साथ सूत्र कटे हुए थे। मुगल शासन को सबसे बडा खतरा हेमू से था जो एक सूर सुलतान का सनापति था। अपने क्षुद्र मूल के बावजूद (वह एक वैश्य व्यापारी परिवार मे पैदा हुआ था) हेमू ने प्रतिभाशाली सेनानायक के नाते प्रमुखता प्राप्त कर ली थी। उसने दिल्ली पर कब्जा कर लिया और राजा विक्रमाजीत (विक्रमादित्य) का नाम धारण करके अपने को शासक घोषित कर दिया। १५५६ मे मुगलो के साथ पानीपत मे अपने सर्वमहत्वपूर्ण युद्ध म हेमू अकबर की सख्या मे अपने स कही बडी सेना के पहलुओं को भेदने म सफल हो गया, लेकिन तभी आख मे अचानक एक तीर के लग जाने से वह घायल होकर अपने हाथी से गिर गया। अपने नेता को गिरते देख हेमू के सैनिक मैदान छोडकर भाग खडे हुए (जैसा कि भारत मे भाडे के सैनिक अपन नायक के मारे जाने पर जिस पर उनका पारिश्रमिक निर्भर करता था आम तौर पर किया करते थे) और अकबर विजयी हो गया। फिर बैरम खा के आदेश से अकबर ने युद्धभूमि म ही अपने अफसरो को जागीरे देना और खिताब प्रदान करना शुरू कर दिया।

अकबर के लगभग पचासवर्षीय राज्य (१५५६-१६०५) मे उत्तर भारत मे मुगल सत्ता दृढतापूर्वक स्थापित हो गयी। अकबर ने यमुनातटीन आगरा को अपनी राजधानी बनाया।

अकबर की विजये

आरभ मे वास्तविक सत्ता अकबर के सरक्षक और प्रतिशासक बैरम खा के ही हाथो म थी। उसने राजपूतो से अजमेर को और ग्वालियर के किले को जीता और पजाब मे मुगल शासन की स्थापना की। लेकिन शिया होने के कारण बैरम खा शियाओ को ही ऊचे पद और जागीरे देता था, जिससे दरबार क सुन्नियो मे असतोष पैदा हो गया। १५६० मे दरबार मे सत्ता दूसरे गुट के हाथो मे आ गयी और बैरम खा को बाइज्जत हज के लिए मक्का जाने की आज्ञा दे दी गयी लेकिन वहा जाते समय रास्ते मे पाटन (गुजरात) म एक पठान ने उसकी हत्या कर दी।

इसके बाद कुछ समय सत्ता उज़्बेको के एक गुट क हाथ मे रही, जो

अकबर की धाय के सबंधी थे। इस जमाने मे मालवा को मुगल सल्तनत मे मिलाया गया। मालवा का शासक बाजबहादुर भाग निकला मगर बाद मे उसने आत्मसमर्पण कर दिया और अकबर की सेवा करने लगा। लेकिन उसकी प्रेमिका रूपमती ने पकडे जाने से मृत्यु को श्रेयस्कर समझा और आत्महत्या कर ली। रूपमती और बाजबहादुर की प्रेमकथा आगे चलकर अनेक लोकगीतो और लोककथाओ का विषय बन गयी।

लेकिन अकबर ने जल्दी ही सभाव्य प्रीतिभाजनो तथा कृपापात्रो और सलाहकारो से पीछा छुडाकर अपने बूते पर शासन करना शुरू कर दिया। अठारहवर्षीय सम्राट बुद्धिमान, बलिष्ठ और बहादुर था, वह शिकार का शौकीन था और उसकी स्मरणशक्ति विस्मयजनक थी। फिर भी अपने शिक्षको के सारे प्रयासो के बावजूद उसने पढना लिखना सीखने की कोई आकाक्षा नही व्यक्त की। कम उम्र मे ही उसने इस बात को समझ लिया था कि भारत पर शासन करना केवल हिदुओ और मुसलमानो—दोनो—के समर्थन से ही सभव हो सकता है। उसने अपना सर्वप्रथम कार्यभार लडाकू राजपूतो का समर्थन प्राप्त करना बनाया और उनके साथ सुलह-सधिया की, जिन्हे उसने राजपूत राजकुमारियो से शादिया करके और भी मजबूत किया। अब राजपूत अश्वारोही भी मुगल सेना मे शामिल हो गये। आमेर के राजा का दत्तक पुत्र मानसिह उसके सबसे प्रमुख और योग्य सेनानायको मे एक था। लेकिन मुसलमान शासक के प्रति राजपूतो की इस मैत्री ने कट्टर राजपूतो मे विरोध पैदा किया जो यह मानते थे कि मुगल दरबार मे सेवा करके हिदू अपने को कलकित करते है।

अपने राजपूत मित्रो की सहायता से अकबर ने विद्रोही राजपूत राज्यो को कुचल दिया। उसने १५६८ मे चित्तौड और १५६९ मे रणथभौर तथा राजपूताना के अधिकाश को जीत लिया। बस मेवाड के शासक राणा प्रताप ने ही हार नही मानी और वह अपने मुट्ठी भर सहयोगियो के साथ पहाडो मे जा छिपा जहा से उसने लगभग चौथाई सदी अकबर के विरुद्ध सघर्ष जारी रखा।

अकबर के एक सेनापति आसफ खा ने गोडवाना के विशाल राज्य को जीत लिया, जिस पर रानी दुर्गावती राज्य करती थी। रानी बडी वीरता के साथ लडी, किंतु पराजित होने पर उसने कटार से आत्महत्या कर ली। इस अत्यत समृद्ध प्रदेश को जीतने और उसके भूतपूर्व शासको के खजाने को लूटने के बाद आसफ खा को यह भ्रम हो गया कि वह इतना शक्तिशाली है कि

स्वतंत्र शासक बन जाये। वह पंजाब मे विद्रोहियो से मिल गया जहा १५६३ मे असतोष पैदा होना शुरू हो गया था और उसका नेतृत्व अकबर के स्वतंत्र शासक बनने की आकाक्षा रखनेवाले सेनापतियो के हाथो मे था। विद्रोहियो ने लाहौर पर कब्जा कर लिया और अकबर के छोटे भाई को जो उस समय काबुल मे रहता था, अपना शासक घोषित कर दिया। सभल के प्रभावशाली उज्बेक अमीर-उमरा जो मिरजा कहलाते थे बागियो से मिल गये। ये सभी लोग राजपूत और हिंदू राजाओ के प्रति अकबर की उदार नीति के विरोधी थे। लेकिन अकबर की खुशकिस्मती से बागी विभिन्न समूहो मे उपयुक्त सबध नही स्थापित कर पाये और १५६७ मे विद्रोही सामतो की बगावत को कुचल दिया गया। मिरजा लोग गुजरात भाग गये।

गुजरात मे पुर्तगालियो द्वारा १५३७ मे बहादुरशाह की कपटपूर्वक हत्या कर दिये जाने के बाद सामान्य जातीय उदगम के आधार पर बने विभिन्न सामती गुटो – तुर्को, अफगानो, हबशियो आदि – मे सत्ता के लिए सघर्ष चलता रहा। मिरजा लोग भी सत्ता के इस सघर्ष मे शामिल थे। अकबर ने उनके विरुद्ध अपनी सेनाए भेजी और १५७२ म गुजरात मुगलो के अधिकार मे आ गया। लेकिन मुगल सेना के आगरा लौटने के साथ मिरजाओ ने फिर विद्रोह कर दिया और इसलिए मुगलो को गुजरात को दुबारा वशीभूत करना पडा।

बगाल को, जिसके सुलतान ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया था (यद्यपि उसे अकबर का करद शासक माना जाता था), वशीभूत करने मे दो साल से अधिक लगे। इसके बाद और विजये प्राप्त करने के पहले कुछ विराम आया। अब ध्यान इस विशाल साम्राज्य के आतरिक प्रशासन से सबधित प्रश्नो पर केंद्रित किया गया।

प्रशासन व्यवस्था

मुगल राज्य मे सर्वप्रमुख प्रशासनिक विभाग वित्त का था। यह दीवान के मातहत था। कर सग्रहकर्ता अधिकाशत हिंदू थे। सेना के विभाग का प्रधान मीर बख्शी था, जो जागीरो के दिये जाने का प्रभारी था और कवायद के समय सैनिको और साज सामान का मुआयना भी करता था। शेष निर्णय टुकडियो के नायको द्वारा लिये जाते थे। धार्मिक तथा न्याय विभाग सदारत कहलाता था। सदरुल सदर मुसलमानो के दीवानी और फौजदारी मामला के

लिए काजी (न्यायाधीश) नियुक्त करता था और सुयूरगल जमाता (माफियो) का वितरण करता था। प्रदेशो और जिला म सैनिक तथा असैनिक अधिकारी साथ साथ काम करते थे, जिन्हे एक दूसर पर निगाह भी रखनी होती थी और अलग या स्वतत्र होने की सभी अभिव्यक्तिया का दमन करना होता था। कुछ बडे प्रदेशो मे स्थानीय सदर भी होते थे।

किसानो की स्थिति

मुगल साम्राज्य की आबादी नाना कबीला और कौमो क लोगो से मिलकर बनी थी जो अत्यत विविध भाषाए बोलते थे सामाजिक विकास के भिन्न भिन्न स्तरो पर थे और अलग-अलग धर्मो तथा जातियो की परिधिया म ब थे। आबादी का अधिकाश अपने अपन ग्राम समुदाय की छोटी और सकीर्ण दुनिया मे रहा करता था। किसान राज्य को लगान की सूरत म भूमि कर अदा करते थे। यह शासन के हितो मे ही था कि इसकी अदायगी नियमित रूप म होती रह मगर किसानो के मामलो मे न तो राज्य और न सामत ही कोई दखल देते थे।

राज्य को उपज का तिहाई भाग लगान के रूप मे देना होता था। कुल मिलाकर इसे 'उचित ही समझा जाता था, यद्यपि कभी कभी किसान इतना नही अदा कर पाते थे। ऐमे अवसरो पर लगान की वसूली सैनिको की सहायता से की जाती थी। तत्कालीन इतिवृत्तो मे सरकश लुटेरो" के गावा के हवाले मिलते है, जिनमे किसान अकबर के सैनिको से बचने के लिए दीवारो की आड मे छिप जाया करते थे। एक बार अकबर ने स्वय ताजीरी दस्तो का नेतृत्व करते हुए अपने हाथी से मिट्टी की दीवार को तोडकर एक गाव म प्रवेश किया था।

जमीन का काश्त किया जाना राज्य के प्रति एक दायित्व था और कर सग्राहको को यह सुनिश्चित करने का आदेश था कि सारी कृष्य भूमि को जोता-बोया जाये। कर सग्रहण को व्यवस्थित करन के लिए अकबर के राजस्व मत्री टोडरमल ने आदेश दिया था कि साम्राज्य के केद्रीय भाग म सारी जमीन की पैमाइश रस्सियो से नही जिन्हे इच्छानुसार ताना या ढीला किया जा सकता था, बल्कि निश्चित आकार की कडियो से की जाये।

मुगल काल मे ग्राम समुदाय का सगठन और ढाचा खासा पेचीदा था। सामूहिक भूस्वामी के नाते समुदाय का आम तौर पर अपन गाव के आसपास

व छोटे से इलाके पर नियत्रण होता था और इस इलाके के भीतर कर्षित भूमि स वसूले जानेवाले लगान का निधारण और सग्रहण गाव के मुखिया के सुपुर्द था। लेकिन गाव मे रहनवाले दस्तकारो और कमकरो को आम तौर पर एक स अधिक गाव के लिए भी काम करना होता था। उदाहरण के लिए, जहा हर गाव का अपना अलग महर (खेतो का रखवाला) होता था वहा एक लोहार दो गावो के लिए और एक सुनार पाच गावो के लिए भी काम कर सकता था। एक विशष ग्रामीण क्षेत्र की आवश्यकताओ की पूर्ति करनेवाले विभिन्न दस्तकारो की कुल सख्या औसतन सात से बारह तक हो सकती थी। दस्तकारो को आम तौर पर अपनी बनायी हर चीज के लिए अदायगी नही की जाती थी बल्कि अपने काम के बदले उपज का एक हिस्सा या खेती के लिए जमीन का टुकडा दे दिया जाता था जो लगान से मुक्त होता था। यह उल्लेखनीय है कि एक ग्राम समुदाय का निवासी निकटवर्ती ग्राम म जमीन का एक अतिरिक्त टुकडा भी रख सकता था (यद्यपि वहा उसे पूरे अधिकार नही प्राप्त होते थे)। इसस अलग अलग समुदाय के अधीन भूक्षेत्र का निर्धारण करना कठिन हो जाता है तथापि यह अवश्य है कि एकाधिक गावो के किसान बाजार पर निर्भर किये बिना अपनी जरूरत के निर्मित माल हासिल कर सकते थे।

मुखिया और पटवारी एक ओर ग्राम समुदाय के प्रतिनिधि थे और दूसरी ओर वे राज्य के सेवक थे। अपने गाव से वसूले जानेवाले पूरे लगान के बदले मुखिया को गाव की कुल काश्त जमीन के चालीसवे भाग के बराबर टुकडा मिलता था और उसकी यह जमीन लगान से मुक्त होती थी।

अकबर द्वारा साम्राज्य के केंद्रीय भागो म जिस रूप लगान के बदले नकद लगान का लागू किया जाना किसानो के लिए भारी बोझ था। किसान अब पैसा प्राप्त करने के लिए अपने बूते पर या अपने गाव के मुखिया की सहायता से अपनी उपज मडी मे बचने के लिए मजबूर हो गया और इस तरह व्यापारियो और महाजनो का बेहद मुहताज हो गया। यद्यपि अकबर ने कई छोटे छोटे करो को खत्म कर दिया था, फिर भी सामत इन करो को किसानो स वसूल करते और अपनी जरूरतो पर खर्च करते रहे।

करो की अदायगी के अलावा किसानो को कभी कभी राज्य क लिए बेगार भी करनी पडती थी – मुख्यत किलो और नगरो आदि के निर्माण मे। बेगार करने की जगह अगर पास ही होती तब तो उसस बच पाना और भी कठिन होता था क्योकि बादशाह द्वारा आसपास क सभी गावो के लिए निर्माण कार्य म भाग लेने क आदेश का पालन अनिवाय होता था।

राजकीय और निजी भूस्वामित्व

सामतयुगीन भारत मे हर बडा राज्य सर्वोपरि भूमि पर अपने स्वामित्व का सुदृढीकरण करने का प्रयास करता था। राजभूमियो के होने से लगान वसूल करके राजकोष को भरा जा सकता था और राज्य सामतो का सेवा के बदले सशर्त भूमि अनुदान भी कर सकता था। इन भूमियो के स्वामियो को सैनिको का दस्ता रखना होता था और राज्य की सेना इस तरह के दस्तो से ही बनती थी। सशक्त सेना से आतरिक उपद्रवो को कुचला जा सकता था, राज्य की पडोसी राज्यो से रक्षा की जा सकती थी और नये इलाके जीते जा सकते थे। लेकिन अधिक शक्तिशाली हो जाने पर नये सामत सशर्त भूमि अनुदानो को अपनी निजी सपत्ति मे परिणत करने का प्रयास करते थे। भूमि के राजकीय तथा निजी स्वामित्व के सिद्धातो मे यह सघर्ष पूरे सामत काल मे चलता रहा।

मुगल साम्राज्य मे राजकीय भूस्वामित्व के दो रूप थे—खालिसा (खालसा) और जागीर।

सारी विजित भूमि राजभूमि का अग—खालिसा—बन जाती थी। यह वह जमीन थी, जिसे बादशाह जागीरो के रूप मे बाटता था और जिसे वह धार्मिक सस्थाओ और धर्मगुरुओ को माफिया दिया करता था। खालिसा के आकार मे निरतर परिवर्तन आते रहने के कारण इन जमीनो के विस्तार का सही अनुमान करना असभव था। खालिसा अनन्यरूपेण राजकीय सपत्ति था।

जागीर सशर्त भूमि अनुदान थी। जागीरदारो को सैनिको के दस्ते रखने होते थे जिनकी सख्या जागीर के आकार के अनुसार भिन्न भिन्न होती थी। ये दस्ते बादशाह की सेना के मेरुदड थे। जागीर के रूप मे वितरित जमीन को राजभूमि ही माना जाता था। लगान के आकार और स्वरूप का निर्धारण जागीरदार द्वारा नही, राज्य द्वारा किया जाता था, जो उसकी वसूली किये जाने के ढग को भी निर्दिष्ट करता था। सामान्यत जागीरदार की जागीर का स्वामित्व उसके परिवार को नही दिया जा सकता था और उसकी मृत्यु के बाद वह राजकीय सपत्ति बन जाती थी। जागीरदार से एक जागीर लेकर उसके बदले दूसरी जागीर दी जा सकती थी, जो देश के बिलकुल दूसरे भाग मे भी स्थित हो सकती थी। अकबर के राज्यकाल मे इस तरह के स्थानान्तरण अलग तथा स्वतत्र होने की प्रवृत्तियो को अकुश मे रखने के लिए अक्सर होते ही रहते थे। इसका मतलब यह था कि जागीरदार का उसी

जागीर पर आम तौर पर दस से अधिक स्वामित्व नही बना रहता था।

लेकिन साथ ही जागीरो मे निजी सामती स्वामित्व की भी अनेक विशिष्टताए विद्यमान थी – बड़े जागीरदार जितना लगान वसूल करते थे उसका कोई एक तिहाई ही वे अपने दस्तो पर खर्च करते थे और छोटे जागीरदार भी अपनी वसूली के आधे से कम को ही इस मद पर लगाते थे। अकबर के राज्यकाल की एक और विशेषता यह थी कि जिन राजाओ ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी उन्हे आम तौर पर उनके भूतपूर्व इलाके ही जागीर के रूप मे दिये जाते थे और ये जागीरे उनके वशजो को मिल सकती थी। सत्रहवी सदी तक तो मौरूसी जागीर शब्द ने जड भी जमा ली थी।

जागीरे आम तौर पर बहुत बडी-बडी – हजारो एकड तक की – होती थी। अकबर के जमाने मे जागीरदार अपने अधिकारो को बहुत महत्व देते थे। अकबर ने जब सोलहवी शताब्दी के आठवे और नवे दशको के बीच जागीरदारी को खत्म करने और उसके स्थान पर नकद वेतन प्रणाली लागू करने का प्रयत्न किया तो पजाब मे जागीरदार विरोध मे खडे हो गये। शाही सिपहसालार शाहबाज खा को सूबे की सारी खालिसा जमीन जागीरो के रूप मे बाटने को मजबूर होना पडा और उसने बादशाह से कहा, "अगर मैंने सैनिको के दिलो को इस तरह ठडा न किया होता, तो उन्होने सीधे बगावत कर दी होती। अब सल्तनत और फौज दोनो आपके साथ है।" अकबर के जमाने मे मुगल साम्राज्य ने रूप लेना ही शुरू किया था इसलिए उस समय जागीरदारो की सख्या सिर्फ दो हजार के लगभग ही थी (छोटे तथा बडे – दोनो ही तरह के जागीरदारो सहित)।

मुगल साम्राज्य मे जमीदारो जैसे निजी भूस्वामी भी थे। अकबर के राज्यकाल मे उन छोटे और शक्तिशाली राजाओ को, जिन्होने मुगलो की अधीनता स्वीकार कर ली थी और बादशाह को खिराज देने के लिए तैयार हो गये थे, जमीदारो का दरजा दे दिया गया था। खिराज की मात्रा अधीनता स्वीकार करने के समय वास्तविक शक्ति सतुलन पर निर्भर करती थी। मुगल साम्राज्य का माल महकमा जमीदार और उसके किसानो के बीच सबधो मे दखल नही देता था। जमीदार किसानो से लगान नही, किराया वसूल करता था। इस किराये की मात्रा और उसकी वसूली के ढग का स्थानीय प्रथाओ के अनुसार निर्धारण किया जाता था। ओडिसा के राजपूत इलाको बिहार तथा कुछ अन्य जगहो मे कुछ जमीदार अपनी सपत्ति की व्यवस्था सामती ढग से करते थे, जिसमे बेगार का उपयोग किया जाता था, लेकिन

कुल मिलाकर मुगल काल म इस प्रथा का शनै शनै विलोपन होना शुरू हो गया था। जमीदारो की जमीनो को सरकारी तौर पर मौरूसी माना जाता था मगर हर नय स्वामी को उसका कब्जा लेन क पहल अपन शासक म सनद लेनी होती थी। लेकिन इस सनद का महत्व तभी होता था कि जब जमीन के कई दावेदार होत थे। इसके अलावा कई जगहो पर छोटे काश्तकारो को भी जमीदार ही कहा जाता था, लेकिन इतिवृत्तो म सिर्फ सामती जमीदारो का ही उल्लेख मिलता है।

मुगल काल म सुयूरगल जागीरे, जिन्ह मुल्क, वक्फ या इनाम भी कहा जाता था सामती नमूने पर सगठित निजी जमीन थी। अधिकाशत य जमीन सूफी शेखो और मुस्लिम धर्मगुरुओ को ही और इक्के-दुक्के मामलो म लौकिक कामकाज करनेवालो को भी प्रदान की जाती थी। अकबर के जमाने म उसकी धार्मिक नीतियो के परिणामस्वरूप इस तरह की कुछ जमीन अन्य धर्मो के पुरोहितो को भी प्रदान की गयी थी। आम तौर पर य छोटे आकार की वशागत जागीर होती थी और उनके स्वामियो से बादशाह के लिए प्रार्थना दुआ करने के अलावा और कोई अपेक्षा नही की जाती थी। राजभूमियो मे इस तरह की जमीनो का हिस्सा ३ / के लगभग था। जमीदारो की जागीरो म देवभूमियो के विस्तार का अनुमान लगाना असभव है।

दस्तकारिया

ग्राम समुदाय म दस्तकार वाछित सामान तैयार कर देता था और उसके बदले उसे समुदाय की उपज का कुछ भाग या लगानमुक्त जमीन का छोटा सा टुकडा मिल जाता था। लेकिन बहुत से दस्तकार ऐसे भी थे कि जो या तो शहरो म, या दस्तकारो की बस्तियो मे रहते थे और सामतो के आदेश पर सामान बनाते थे या अपने बनाये सामान को बाजार मे बेचा करते थे।

भारत मे उस समय सबसे विकसित शिल्प कपडा बुनना था। सूती और रेशमी कपडा कशीदे का और छपा हुआ कपडा सादा और रगा हुआ कपडा-सभी बडे पैमाने पर तैयार किया जाता था। अकबर के तोशाखाने की गद्य सूची मे लगभग सौ प्रकार के भारतीय कपडो का उल्लेख है।

आगरा म बडी सख्या म निर्माणकर्मी रहते थे, जो विभिन्न इमारती कामो मे माहिर थे। गुजरात मे आला दरजे के जडाऊ काम करनेवाले थे तो बगाल मे निपुण पोतनिर्माता थे। इनके अलावा भारत मे और भी कई

उद्यम थे – लोहे तथा अलौह धातुओ और नमक तथा शोर का खनन किया जाता था, इमारती पत्थर का उत्खनन किया जाता था कागज बनाया जाता था, तरह-तरह के आभूषण बनाये जाते थे तिलहनो से तेल निकाला जाता था और मिठाइया बनायी जाती थी। भारतीय शिल्पोद्योग की श्रेष्ठतम कृतिया पुराने समय से अपनी कलात्मकता और उत्कृष्ट कारीगरी के लिए प्रसिद्ध थी। लेकिन भारतीय कारीगर काम बहुत धीरे धीरे करते थे, क्योकि वे बहुत ही सीधे-सादे औजारो का उपयोग करते थे जिन्हे अधिकाशत कारीगर स्वय ही बनाया करते थे। लेकिन साथ ही यह भी ज्ञात है कि भारत मे बुनाई म प्रयुक्त कघिया (करघे का सबसे जटिल पुरजा जिसका उपयोग ताने को सम अतर पर करने के लिए किया जाता है) विक्रयार्थ बनायी जाती थी। यह इस बात का परिचायक है कि हस्तउद्योग ने उस समय भी कितना उच्च स्तर प्राप्त कर लिया था।

शिल्पजीवी जातिया सामती अधिकारियो पर आश्रित थी जो जाति के मुखिया और उनके सामान को बाजार मे बेचनेवाले दलाल को नियुक्त करते थे। सरकारी निर्माणशालाओ मे काम करनेवाले कारीगर तो और भी अधिक पराश्रित थे – वे सेना के लिए साजसामान के अलावा बादशाह के लिए भी सामान तैयार किया करते थे, जिसे वह अपनी मरजी से अपने अनुचरो मे बाट सकता था।

व्यापारियो द्वारा दस्तकारो के शोषण का सबसे व्यापक रूप था पैसे का पेशगी दिया जाना और निर्मित सामान का थोक खरीद लिया जाना। व्यापारी पेशगी पैसा इसलिए देते थे कि दस्तकार खाने पीने का सामान और कच्ची सामग्री खरीद सके और फिर दस्तकार को अपना माल उसी व्यापारी को देना पडता था और वह भी अन्यत्र प्राप्य दामो से कही नीचे दाम पर। भारत के पश्चिमी तटवर्ती प्रदेशा म मुख्य शिल्पोत्पादो और उनके व्यापार पर महसूल लगाये जाते थे और उनकी वसूली ठके पर होती थी। इसके अलावा इन ठेकेदारो को किसी विशेष माल के उत्पादन का एकाधिकार भी प्राप्त होता था (जैसे सूती कपडा, पान धान, हाथीदात की चीजे आदि)। प्रकटत किसी भी व्यक्ति को इनमे से किसी भी चीज़ को ठेकेदार की लिखित अनुमति के बिना बेचने की आज्ञा नही दी जाती होगी, और यह ठेकेदार आम तौर पर कोई धनी व्यापारी या सबद्ध माल का उत्पादन करनेवाली दस्तकार जाति का मुखिया ही होता था।

व्यापार और सूदखोरी

गुजरात तथा बगाल को जीतने के बाद मुगल साम्राज्य को समुद्र का प्रवेशद्वार प्राप्त हो गया था किंतु उसे तुरत ही पुर्तगालियो के विरोध का सामना करना पडा – समुद्र मार्ग से हज के लिए जानेवाले तीर्थयात्रियो के लिए भी पुर्तगालियो की अनुज्ञा प्राप्त करना आवश्यक था। पुर्तगालियो को गुजरात मे उनके दुर्गबद्ध बदरगाहो – दीव तथा दामण – से खदेड बाहर करने के मुगलो के सभी प्रयास असफल रहे। मुगलो को बगाल मे पुर्तगाली बदरगाहो – सतगाव और हुगली – के अस्तित्व को भी बरदाश्त करना पडा। सबसे बडा मुगल बदरगाह गुजरात मे सूरत था, जिसने खभात की जगह ले ली था जो अब अपने पूर्व स्वरूप का आभास मात्र रह गया था और जिसमे प्रवेश करने को अब खभात की खाडी के दोनो तटो पर स्थित पुर्तगाली किले अवरुद्ध करते थे।

मुगलो के पास व्यापारी जहाज तो बहुत थे, पर अपनी जलसेना नही थी। प्रसगवश यह बताना समीचीन होगा कि भारतीय व्यापारियो के व्यापारिक अनुभव और दीर्घकालिक व्यापार सूत्रो का अधिकतम लाभ उठाने की आकाक्षा से पुर्तगाली मध्य सोलहवी शताब्दी मे ही उन्हे अपना भागीदार बनाते जाते थे। मतलब यह कि समुद्री मार्गो का उपयोग करनेवाले भारतीय व्यापारियो की व्यापारिक गतिविधिया पूर्णत खत्म नही हो गयी थी, यद्यपि काफी सीमित अवश्य हो गयी थी। पहले की ही भाति गुजरात का अब भी फारस की खाडी, अफ्रीका और अरब के देशो के साथ व्यापार चल रहा था और बगाली भी सामुद्रिक व्यापार कर रहे थे – अधिकाशत पेगू (ब्रह्मदेश) और मलक्का द्वीपो के साथ। उनका लका और मलाबार तथा कारमडल के साथ भी व्यापार चलता था। मुगल शासन को, जो व्यापार शुल्क लगाता था, इससे आर्थिक लाभ होता था और इसलिए उसने भारत मे यूरोपीय व्यापारियो के प्रवेश के प्रति अस्पष्ट रवैया लिया। एक तरफ तो उसने उनके प्रभाव को सीमित करने का प्रयास किया और दूसरी तरफ उन्हे व्यापारिक विशेषाधिकार भी प्रदान किये।

भारतीय कपडे का सारे पूर्व मे बहुत नाम था और हिंद महासागर तथा दक्षिणी समुद्रो के सभी देशो के लिए वह एक तरह से मार्किट माल था। दूसरे देशो के व्यापारी इन कपडो और मसालो को खरीदने के वास्ते भारत आया करते थे और अपने साथ भारत की देहरी पर विदेशी माल लाते थे।

अधिकाश भारतीय व्यापारी आतरिक मडी म निमित माल की थोक खरीद करके उसे वदरगाहो म लात थ। वे विदेशी मालो क वदरगाहा से भारतीय शासको के दरवारो मे ले जाय जान म भी भाग लेत थे। समुद्र मार्ग से विदेश जानवाले भारतीय व्यापारी अपन जातीय सूत्रा क जरिय वहा वसे अपन हमवतनो के साथ सपर्क रखत थ। य व्यापारी जातिया एक तरह से व्यापारिक कपनिया का काम करती थी। य वाणिज्यिक कारवार और मामलो मे सहायता दती थी, जातीय आधार पर उधार दती थी आदि। मिसाल के लिए गुजरात म सबसे प्रभावशाली व्यापारी वोहरा और खोजा थे जो इस्माइली शिया थे।

भारतीय व्यापारियो के लिए समुद्र मार्ग से व्यापार मे पुर्तगालियो द्वारा पैदा किय अवरोधो के परिणामस्वरूप स्थल मार्ग स फारस के साथ व्यापार म वृद्धि आयी। वगाल से पजाव तक और गुजरात स कश्मीर तक फैले ये व्यापार मार्ग आतरिक व्यापार के प्रसार मे भी सहायक सिद्ध हुए।

आतरिक व्यापार नदीगामी बजरो और काफिलो द्वारा माल लाने ले जानवाले वड-वडे व्यापारियो क अलावा गाव गाव जाकर विक्री करनेवाले फरीवालो क भी हाथो मे था। गावो म नियमित हाट-पैठे लगा करती थी। इन हाटो म किसान नमक, नारियल, लोह के सरिये और दैनदिन आवश्यकता की सभी चीजे खरीद सकत थे। सेना को खाद्य सामग्री की पूर्ति बजारे करत थे, जो सेना के चदावल मे अपन लद्दू जानवरो – ऊटो और बैलो तथा गाडियो पर माल लादे चला करते थे।

साम्राज्य के केंद्र मे ऐसे कोई धनी व्यापारी नही थ कि जिनका तटवर्ती प्रदेशो के ऐश्वर्यमान व्यापारियो से मुकावला किया जा सके। लेकिन केंद्रीय प्रदेशो म महाजनी वहुत विकसित थी। महाजन और साहूकार फौजी अफसरो दरवारियो और किसानो को पैसा उधार देते थे, जिनसे केंद्रीय प्रदेशो म नकद कर ज्यादा सख्ती से वसूल किये जाते थे। अकबर के जमाने मे पैसा २५/ प्रति दिन सूद पर उधार दिया जाता था (६००/ वार्षिक)। यह इसका परिचायक है कि गावो म मौद्रिक सबध कितने कमजोर थे।

भारत म पण्य-द्रव्य सबधो के काफी विकसित होने के वावजूद देश म सारी वास्तविक सत्ता सामतो के हाथो मे ही सकेद्रित थी। देश के राजनीतिक जीवन मे दस्तकारो और शिल्पकारा की तो वात ही क्या वाणिज्यिक क्षेत्रो के प्रतिनिधि – व्यापारी और साहूकार – भी कोई वास्तविक भूमिका अदा नही करते थे, यद्यपि उनके हितो को कुछ सीमा तक ध्यान मे रखा जाता था। उदाहरण के लिए अकबर ने व्यापार का सवर्धन करने के लिए कुछ

कदम उठाये थ – मान व महरा मे मान पर चुगी और घाट गुल्क का खतार १५/ कर दिया गया और विराट मुगल साम्राज्य के सारे विस्तार म माप तौल और मुद्रा की सामान्य इकाइया लागू की गयी।

अकबर के प्रशासनिक सुधार

१५६६ मे अकबर न आगरा म कोई तीस किलोमीटर दूर सीकरी के पास जहा बाबर न राणा सागा का पराजित किया था, एक नये नगर का निमाण करने का आदेश दिया। बादशाह के हुक्म के मुताबिक अकबर के दरबारियो न कुछ ही वर्षो के भीतर इस पहले के वीरान इलाके म महलो और हवेलियो का निमाण करवा लिया। लाल पत्थर का एक खूबसूरत शहर पैदा हो गया जो अकबर की राजधानी बन गया और जिस फतहपुर-सीकरी का नाम दिया गया। जिस जगह पर कभी शेख सलीम चिश्ती का झोपडा था जिसने अकबर के पुत्र होने की भविष्यवाणी की थी (जो अकबर के बाद जहागीर के नाम स सम्राट बना) एक इमारत का निमाण किया गया और बाद म उसका सफेद सगमरमर से पुनर्निमाण किया गया। यह पुनर्निमित भवन आग चलकर मुगलो द्वारा निर्मित सफेद सगमरमर के सभी महलो और मकबरो के लिए माडल बन गया। लेकिन नगर के काफी बढ जाने के बाद यह बात सामने आयी कि वहा पानी की कमी थी और इसलिए नव दशक म अकबर का दरबार फतहपुर-सीकरी छोडकर चला गया, जो आज भी एक वीरान शहर है। यह एक अमूल्य वास्तु निधि है और असख्यो पर्यटको तथा दर्शको के आकर्षण का केंद्र है।

एक विराट साम्राज्य का सर्वोच्च शासक बनने के बाद अकबर ने सारी प्रशासन व्यवस्था को सुधार कर सुचारु रूप देने का निश्चय किया। अकबर द्वारा बाद मे उठाये गये सभी कदम अपने वश के शासन और भारत म मुस्लिम सामतो के प्रभुत्व का सुदढीकरण करने की ओर ही लक्षित थे। साथ ही उसने हिंदू आबादी के धार्मिक उत्पीडन को कम करके उसका समर्थन प्राप्त करने का भी प्रयास किया। उसकी इस नीति ने कुछ मुस्लिम जागीरदारो और शेखो मे विरोध पैदा किया जो सख्ती के रास्ते पर चलना चाहते थे और हिंदुओ के असतोष को निर्ममतापूर्वक कुचल देने के समर्थक थे।

अकबर ने सामत वर्ग के विभिन्न अशको मे सबधो को व्यवस्थित करने की आकाक्षा से १५७४ मे मनसबदारी प्रथा का प्रचलन किया और अपने

मनाधिकारियों को उनके आदेश (जाता) के अनुसार जागीर देना शुरू किया। नतीजा जागीरदारों ने अपनी जागीर देना पर मन का निर्धारण करने वाले आदेशों में बदल के तरीके निकाले और निर्धारित धन में कम खर्च करने लगे। इसलिए और भी नियमन करने की आवश्यकता पड़ी और सवार नाम की एक नयी श्रेणी अस्तित्व में आयी। जात अब भी ओहदे की सूचक थी और सवार से यह सूचित होता था कि मनसबदार को कितने अश्वारोही सैनिक रखने होंगे (मिसाल के लिए पचहजारी जात के मनसबदार से एक हजार या पांच सौ या सिर्फ चार सौ सवार रखने की अपेक्षा की जा सकती थी)। जागीर का आकार अब जात और सवार-संख्या पर निर्भर हो गया। नतीजे के तौर पर मांगियों की तादाद बढ़ गयी और सानिकों के आकार में कमी आयी।

इसके बाद अकबर ने यह विचार सूझा कि जागीरों को बिलकुल ही खत्म कर दिया जाय। १५७८ में उसने तीन साल के लिए एक प्रायोगिक योजना को अमल में लाने का आदेश दिया जिसके अनुसार—जैसा कि स्मिथवृत्ता में पता चलता है— सभी शाही जमीन खालिसा में आ जानी थी और बादशाह ने अपने सिपहसालारों के लिए नकद तनख्वाह मुकर्रर कर दी। लगान की वसूली करोड़ियों को करनी थी। इन अधिकारियों को जमानत के रूप में बहुत बड़ी रकम सरकारी देनी होती थी। अकबर के इस कदम ने जागीरदारों में गहरा विरोध पैदा किया जो इससे अपनी जागीरों से वंचित हो गये थे और इसने रैयत (किसानों) को भी तबाह किया जिनसे ये नवनियुक्त कर संग्राहक (करोड़ी) जो तीन साल के लिए नियुक्त किये जाते थे, अपनी आरंभिक लागत को पूरा करने और अधिकतम मुनाफा कमाने के लिए सभी कुछ ले लेते थे। इसलिए अंत में इस सुधार को निरस्त कर देना पड़ा।

अकबर के धार्मिक सुधार

अकबर द्वारा प्रवर्तित अन्य सुधारों की ही भांति उसके धार्मिक सुधारों का लक्ष्य भी उसकी सत्ता के सामाजिक आधार का प्रसार करना ही था। अकबर ने यह समझ लिया था कि हिंदू प्रजा की निष्ठा को प्राप्त करने के लिए उसे उनकी धार्मिक भावनाओं का आदर करना होगा। यही कारण है कि १५६३ में उसने हिंदुओं पर से तीर्थयात्रा कर उठा लिया और अगले साल

कदम उठाये थे – माल के शहरो में लाने पर चुगी और घाट शुल्क को घटाकर १ ५/ कर दिया गया और विराट मुगल साम्राज्य के सार विस्तार म माप तौल और मुद्रा की सामान्य इकाइया लागू की गयी।

अकबर के प्रशासनिक सुधार

१५६६ मे अकबर ने आगरा से कोई बीस किलोमीटर दूर सीकरी के पास जहा बाबर ने राणा सागा को पराजित किया था, एक नय नगर का निर्माण करने का आदेश दिया। बादशाह के हुक्म के मुताबिक अकबर के दरबारियो ने कुछ ही वर्षो के भीतर इस पहले के वीरान इलाके म महलो और हवेलियो का निर्माण करवा लिया। लाल पत्थर का एक खूबसूरत शहर पैदा हो गया, जो अकबर की राजधानी बन गया और जिसे फतहपुर-सीकरी का नाम दिया गया। जिस जगह पर कभी शैख सलीम चिश्ती का थापडा था जिसन अकबर के पुत्र होने की भविष्यवाणी की थी (जो अकबर के बाद जहागीर के नाम से सम्राट बना), एक इमारत का निर्माण किया गया और बाद में उसका सफेद सगमर्मर से पुनर्निर्माण किया गया। यह पुनर्निर्मित भवन आगे चलकर मुगलो द्वारा निर्मित सफेद सगमर्मर के सभी महलो और मकबरो के लिए मॉडल बन गया। लेकिन नगर के काफी बढ जाने के बाद यह बात सामने आयी कि वहा पानी की कमी थी और इसलिए नवे दशक म अकबर का दरबार फतहपुर-सीकरी छोडकर चला गया, जो आज भी एक वीरान शहर है। यह एक अमूल्य वास्तु निधि है और असख्यो पर्यटको तथा दर्शको के आकर्षण का केद्र है।

एक विराट साम्राज्य का सर्वोच्च शासक बनने के बाद अकबर न माग प्रशासन व्यवस्था को सुधार कर सुचारु रूप देने का निश्चय किया। अकबर द्वारा बाद म उठाय गये सभी कदम अपने वश के शासन और भारत म मुस्लि सामतो के प्रभुत्व का सुदृढीकरण करने की ओर ही लक्षित थ। साथ हिंदू आबादी क धार्मिक उत्पीडन को कम करके उसका समर्थन का भी प्रयास किया। उसकी इस नीति ने कुछ मुस्लिम गैमो म विरोध पैदा किया जो सख्ती के रास्त पर च हिंदुओ के असतोष को निममतापूर्वक कुचन देने के सम

अकबर न सामत वर्ग के विभिन्न अगको म की आकाक्षा स १५७४ म मनसबदारी प्रथा

जिसे उसने दीन इलाही का नाम दिया। दीन इलाही मे अकबर की दृष्टि म भारत के सभी मुख्य धर्मो के उचित तत्वो का समावेश था। इस नये धर्म का सर्वप्रमुख तत्व था 'दीनपरस्त' बादशाह के नाते अकबर को महिमामडित करना, जो महदीपथी विचारो से मेल खाता था और कुछ हिंदू – तथा किसी हद तक मुस्लिम भी – कर्मकाड और पौराणिक विश्वासो का अस्वीकरण करना।

इस कृत्रिम ढग से गढे धर्म ने अधिकाशत आबादी के निर्धन अशको को ही आकर्षित किया जब कि अकबर ने उसमे मुख्यत अपने दरबारियो को ही खीचने की आशा की थी। यद्यपि उसके खिलाफ और बगावत नही हुइ, मगर अनुदार मुसलमानो म उसकी धार्मिक नीतियो का विरोध बना ही रहा। इसी कारण अपन राज्यकाल के अतिम वर्षो मे अकबर ने कट्टरपथी मुस्लिम नताओ के खिलाफ दमनात्मक कदम उठाना, अपना विरोध करनेवाले शेखो को साम्राज्य के सीमातक प्रदेशो मे निर्वासित करना कुछ मसजिदो को बद करना और ऐसे ही अन्य कदम उठाना शुरु किया। अकबर की मौत के बाद दीन इलाही कोई आधी मदी और एक छोटे से धार्मिक पथ की तरह बना रहा। लेकिन धार्मिक महिष्णुता की वास्तविक भावना और अकबर के भारत के दोनो मुख्य धर्मो को मुकाबले पर न रखने बल्कि उन्हे निकट लाने के रास्तो की खोज करने और उनमे किसी तरह का ममन्वय स्थापित करने के लक्ष्य का भारतीय समाज पर बहुत गहरा प्रभाव पडा।

सामाजिक चितन और जन आदोलन

अबुल फजल का पिता शेख मुबारक जिस महदीपथ का अनुयायी था और जिसने उसके विचारो को प्रभावित किया था, शहरी मुसलमान व्यापारियो और दस्तकारो मे पैदा हुआ था। पद्रहवी सदी मे गुजरात मे मीर सैयद मुहम्मद (१४४३–१५०५) नामक विद्वान ने अपने को महदी (मसीहा) घोषित कर दिया। मीर सैयद ने प्रारभिक इस्लाम के लोकतानिक सिद्धातो को फिर से अपनाने और मुसलमानो मे समान सापत्तिक स्तर की पुनःस्थापना करने का आह्वान किया। गुजरात मे महदी सप्रदाय मे अतोक्त सिद्धात का सख्ती के साथ पालन किया जाता था – हर सदस्य की आय एक साझी निधि मे दे दी जाती थी और उसे सभी मे समान रूप मे वितरित कर दिया जाता था। भक्तिमार्ग के अनुगामियो के विपरीत महदियो का सदेश सिर्फ मुसलमानो के लिए ही था। उनकी आशाए प्रारभिक इस्लाम के आदेशो पर चलनेवाले और

ही जिजिया को भी खत्म कर दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि मुसलमान जागीरदारो के दबाव मे ये दोनो कर फिर लगा दिये गये थे, लेकिन उस दशक के आरभ म उसने इन्हे दुबारा समाप्त कर दिया।

कट्टर मुसलमान अधिकारियो द्वारा अपनी नयी धार्मिक नीति के विरोध के कारण अकबर को रूढ इस्लाम के सही होने के बारे म ही शका पैदा हो गयी। खासकर धार्मिक विषयो पर ही विचार और बहस करने के लिए उसने १५७५ म फतहपुर-सीकरी म इबादतखाना बनवाया था। इन बहसो की गरमागरमी ने उसे रूढ इस्लाम से और भी विरक्त कर दिया। इस समय अकबर का एक मित्र और अन्य बातो के अलावा धार्मिक मामला म भी परामर्शदाता अबुल फजल था। उसका पिता शेख मुबारक अपने महत्वपूर्ण विचारो के कारण उत्पीडन का शिकार हुआ था और अपने पिता के साथ बचपन मे अबुल फजल को निर्वासन मे इधर-उधर भटकना पडा था। अबुल फजल स्वय उदार सूफी विचारो का था, जो हठधर्मी मुल्लाओ का विरोध करते हुए कहता था कि सभी रास्ते ईश्वर की तरफ ले जाते हैं और सभी धर्मो म सत्य का अश है। अबुल फजल ने गैर इस्लामी धर्मो और विभिन्न "अपधर्मी" पथो मे भी अकबर की दिलचस्पी पैदा की, जो उस समय सामत वाद के प्रति जनसाधारण के विरोध के प्रतीक थे।

अकबर, जिसकी कई भिन्न-भिन्न धर्मो मे सच्ची दिलचस्पी थी, हिंदुओ, पारसियो, जैनो और ईसाइयो के सिद्धातो से परिचय प्राप्त करने लगा। उसके अनुरोध पर गोवा से जैसुइट पादरियो के तीन दल उसके पास भेजे गये थे। इनमे से एक जैसुइट दल के नेता, मोन्सेरर्राते का विवरण ('कमेंटरी' अर्थात टीका) इतिहासज्ञो के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। अकबर ने अपने दरबार मे हिंदू और पारसी प्रथाओ का प्रचलन करना भी शुरू कर दिया।

इसके विरोध में १५८० मे एक बडा विद्रोह फूट पडा, जिसने अकबर को काफी खतरे मे डाल दिया। विद्रोह का नेतृत्व शेखो के हाथो म था जिन्होंने फतवा जारी करके अकबर को काफिर घोषित कर दिया और उसका तख्ता उलटने का आदेश दिया। विद्रोह बगाल और पजाब मे केन्द्रित था जहा असतुष्ट सामतो ने अकबर के सबसे छोटे सौतेले भाई, काबुल के सूबेदार हकीम को मुगल सिहासन का अपना उम्मीदवार बना लिया था। अकबर बडी मुश्किल स ही इस विद्रोह को कुचल पाया। विजय पाकर आगरा लौटने के बाद अकबर ने अपने दरबार मे एक नये धर्म का प्रचार करना शुरू किया

जिसे उसने दीन इलाही का नाम दिया। दीन इलाही में अकबर की दृष्टि में भारत के सभी मुख्य धर्मों के उचित तत्वों का समावेश था। इस नये धर्म का सर्वप्रमुख तत्व था 'दीनपरस्त' बादशाह के नाते अकबर को महिमामंडित करना, जो महदीपंथी विचारों से मेल खाता था और कुछ हिंदू – तथा किसी हद तक मुस्लिम भी – कर्मकांड और पौराणिक विश्वासों का अस्वीकरण करना।

इस कृत्रिम ढंग से गढ़े धर्म ने अधिकांशतः आबादी के निर्धन अंशों को ही आकर्षित किया, जब कि अकबर ने उसमें मुख्यतः अपने दरबारियों को ही खींचने की आशा की थी। यद्यपि उसके खिलाफ और बगावत नहीं हुई, मगर अनुदार मुसलमानों में उसकी धार्मिक नीतियों का विरोध बना ही रहा। इसी कारण अपने राज्यकाल के अंतिम वर्षों में अकबर ने कट्टरपंथी मुस्लिम नेताओं के खिलाफ दमनात्मक कदम उठाना, अपना विरोध करनेवाले शेखों को साम्राज्य के सीमांतक प्रदेशों में निर्वासित करना, कुछ मसजिदों को बंद करना और ऐसे ही अन्य कदम उठाना शुरू किया। अकबर की मौत के बाद दीन इलाही कोई आधी सदी और एक छोटे से धार्मिक पंथ की तरह बना रहा। लेकिन धार्मिक सहिष्णुता की वास्तविक भावना और अकबर के भारत के दोनों मुख्य धर्मों को मुकाबले पर न रखने, बल्कि उन्हें निकट लाने के रास्तों की खोज करने और उनमें किसी तरह का समन्वय स्थापित करने के लक्ष्य का भारतीय समाज पर बहुत गहन प्रभाव पड़ा।

सामाजिक चिंतन और जन-आंदोलन

अबुल फजल का पिता शेख मुबारक जिस महदीपंथ का अनुयायी था और जिसने उसके विचारों को प्रभावित किया था, शहरी मुसलमान व्यापारियों और दस्तकारों में पैदा हुआ था। पंद्रहवीं सदी में गुजरात में मीर सैयद मुहम्मद (१४४३–१५०५) नामक विद्वान ने अपने को महदी (मसीहा) घोषित कर दिया। मीर सैयद ने प्रारंभिक इस्लाम के लोकतांत्रिक सिद्धांतों को फिर से अपनाने और मुसलमानों में *समान सांपत्तिक स्तर की पुनःस्थापना करने* का आह्वान किया। गुजरात में महदी संप्रदाय में अंतोक्त सिद्धांत का सख्ती के साथ पालन किया जाता था – हर सदस्य की आय एक साझी निधि में दे दी जाती थी और उसे सभी में समान रूप में वितरित कर दिया जाता था। भक्तिमार्ग के अनुगामियों के विपरीत महदियों का संदेश सिर्फ मुसलमानों के लिए ही था। उनकी आशाएं प्रारंभिक इस्लाम के आदेशों पर चलनेवाले और

मुसलमान सम्प्रदाय म समानता के सिद्धात को कार्यरूप मे परिणत करनेवाले दीनपरस्त शासक के गद्दी पर बैठन पर केद्रित थी।

शेरशाह के बेटे इस्लामशाह के राज्यकाल म महदियो न दोआब म बयाना और हिंदिया इलाको को शस्त्रश कब्जा मे ले लिया था और बयाना मे अपने शासन की स्थापना कर दी थी। सपत्ति तथा आय के समान वितरण का सिद्धात महदी बिरादरी म फिर से लागू कर दिया गया। महदिया म शहरी आबादी के अलावा रैयत (साधारण लोग), देहाती दस्तकार और शेख मुबारक सहित कुछ सामत भी शामिल हो गये थ। इस्लामशाह न कठोर दमन का रास्ता पकडा – एक महदी नता को कोडे मारते मारते मार डाला गया दूसरे को सख्त सजा दी गयी और शेष पर भयकर अत्याचार किये गये – १५४६ तक इस आदोलन को पूरी तरह से कुचल दिया गया। लेकिन १५७३ मे उसन दिल्ली और पजाब मे फिर जडे जमा ली – अलबत्ता इस बार वह किसी विद्रोह म नही परिणत हुआ।

ऐसा ही एक और रूढिविरोधी आदोलन सिखो का था जिसकी शिक्षा उत्तरकालीन भक्तिमार्ग से सबद्ध थी। इस धर्म के सस्थापक गुरु नानक (१४६९–१५३९) थे। अकबर के जमाने मे सिख सप्रदाय पजाब म ही सीमित था और उसमे अधिकाशत व्यापारी और दस्तकार ही शामिल थे। लेकिन चौथे गुरु रामदास (१५७४–१५८१) के ज़माने म सिखो ने अमृतसर के पास ज़मीन प्राप्त करके यह नगर बसाया और एक मदिर तथा पवित्र तालाब का निर्माण किया। रामदास ने विशेष रूप से नियुक्त कार्यकर्ताओ के ज़रिये चढावे के नियमित सकलन की व्यवस्था की और अगले गुरु अर्जुन (१५८१–१६०६) ने पहले के इस स्वैच्छिक चढावे को सिखो के इलाके में रहनेवाले सभी लोगो से वसूल किये जानेवाले खानदानी कर मे परिणत कर दिया। अकबर का सिखो के साथ अच्छा बर्ताव था और सिख जनश्रुति के अनुसार उसने गुरु रामदास से सवाद भी किया था।

इधर राजपूताना म भक्त दादू (१५४४–१६०३) ने राजपूत राज्यो म घूम घूमकर त्याग, नम्रता और प्रेम का उपदेश दिया। जनश्रुति के अनुसार दादू को भी अकबर ने मिलने के लिए बुलाया था। लेकिन इसम शका है कि अकबर तुलसीदास से भी परिचित रहा होगा, जिनके 'रामचरितमानस' (१५७५) को शीघ्र ही सारी हिंदीभाषी जनता म अत्यत प्रसिद्ध हो जाना था। तुलसीदास ने जातीय भेदो और उत्पीडन का विरोध किया और अपने आसपास की दुनिया के पाखड की आलोचना की, लेकिन उनकी राय

म इसमे मुक्ति पाने का एकमात्र रास्ता राम के रूप मे ईश्वर से मिलना ही था।

मगर अकबर ने उन साप्रदायिक आदोलनो को दृढतापूर्वक कुचलने का प्रयास किया, जो मुगल सल्तनत की सत्ता के विरुद्ध लक्षित थे। उसने मुसलमानो के रोशनिया सप्रदाय को अपनी पूरी शक्ति के साथ कुचला, जिसके अनुगामियो मे अनेक अफगान कबीले थे सासकर यूसुफजई कबीले के लोग। इस पथ सस्थापक का नाम बेयजीद असारी (१५२४–१५८५) था। बेयजीद असारी ने अपनी जागीरो को सामती ढग से व्यवस्थित करनेवाले अफगान सामतो और मुगल सल्तनत मे अफगान जनता के उत्पीडन के भी खिलाफ आवाज उठायी। अकबर ने १५८५ और १६०० के बीच रोशनिया बागियो के खिलाफ कई ताजीरी अभियान सगठित किये जिन्होने भारत को काबुल से जोडनेवाले कई दर्रो पर कब्जा कर लिया था लेकिन उसे कई भारी पराजयो का भी सामना करना पडा। अतत अकबर अफगान रोशनिया विद्रोहियो को कुचलने मे सफल हो गया लेकिन उसकी मृत्यु के बाद उन्होने फिर हथियार उठा लिये।

नयी विजये

सोलहवी सदी के नवे दशक मे अकबर ने फिर विजय नीति पर चलना शुरू किया, लेकिन अब उसके सामने एक पूर्णत सुदृढीकरण साम्राज्य के सीमातो का प्रसार करने का ही सवाल था। १५८६ मे कश्मीर मे राजसिहासन के लिए विभिन्न दावेदारो के आपसी सघर्ष से उत्पन्न अव्यवस्था का पूरा लाभ उठाते हुए अकबर ने अपनी सेना भेजकर कश्मीर को अपने कब्जे मे ले लिया। लेकिन इस पर्वतीय प्रदेश पर अपने नियत्रण को कायम रखने के लिए अकबर को अपनी सेना दुबारा भेजनी पडी थी। १५८६ मे अकबर ने कश्मीर को अपने अन्य प्रदेशो मे मिला लिया और वहा जिस रूप कर लगाया (ऊन और केसर की शक्ल मे)। कश्मीर के शीतल जलवायु और उसकी झीलो की सुदरता ने अकबर के मन को मोह लिया और कश्मीर वह स्थान बन गया, जहा उसे गरमिया काटना पसद था।

१५६० मे अकबर ने अपने प्रतिपाल्य और बैरम खा के पुत्र अब्दुर्रहीम को थट्टा (सिध) जीतने के लिए भेजा। थट्टा का भूतपूर्व शासक अकबर का दरबारी बन गया। १५६२ मे ओडिसा को जीतकर बगाल के सूबे मे मिला

बगाल मे मुगल शासन के विशेष लक्षण

बगाल को यद्यपि अकबर के समय म ही जीत लिया गया था, फिर भी इस सीमातक प्रदेश म केद्रीय नियत्रण मजबूत नही था। बगाल के जमीदार और जागीरदार स्वतत्रता के आकाक्षी थ और उह काबू मे लान म १६०८ स १६१२ तक चार साल लगे थे। बगाली जमीदारो के नेता मूसा खा और उस्मान खा को आज भी बगाल की स्वाधीनता के अलमबरदारो म माना जाता है।

बगाल मे, जहा व्यापार और शिल्पो के विकास का स्तर अत्युन्न था और भौगोलिक अवस्थाओ के कारण (नदियो तथा दलदलो का बाहुल्य और पहाड) जिसके बहुत से इलाके दुर्गम थे, जागीरदारी के स्वरूपो ने साम्राज्य के अन्य भागो की अपेक्षा पहले ही विकसित होना शुरू कर दिया था। मुगल सूबेदार तथा शक्तिशाली सिपहदार यहा विजित प्रदेश को अपनी निजी मिल्कियत जैसा समझते थे, जागीर बाटते थे, कर सग्रहकर्ता तथा अन्य स्थानीय अधिकारी नियुक्त करते थे और मालिमा वसूलते थे। बगाल मे एक ही आदमी का कई-कई काम अजाम देना आम रिवाज बन गया था। बगाल के सूबेदार व्यवहार मे लगभग स्वतत्र ही होते थे। जहागीर ने बगाल के एक सूबेदार को उसकी मनमानियो के कारण बरखास्त किया, तो सूबेदार ने ढाका के पास एक किले मे मोरचा सभाल लिया और उसे वहा से खदेड बाहर करने के लिए मुगल सम्राट को अपनी सेना को भेजना पडा था।

मुगल बादशाहो के युद्धो ने किसानो को तबाह कर दिया था। बगाली रैयत के लिए एक और अभिशाप करोडी (कर सग्राहक) था जिसकी कारगुजारिया उनमे सख्त नाराजी पैदा करती थी। कामपुर म करोडियो के खिलाफ किसानो का बलवा फूट पडा, जिसका नेता सनातन था। रगमती के किले को जीतने के बाद किसानो का विस्तृत प्रदेशो पर नियत्रण स्थापित हो गया। लेकिन अत मे मुगल सेना ने उन्हे रगमती से खदेड भगाया जिसके बाद बागियो ने धनधाम के किले मे अड्डा जमा लिया। लेकिन लबे सघर्ष के बाद शाही फौजो ने इस किले को भी सर कर लिया।

रोशनिया और सिख आदोलन

सत्रहवी शताब्दी के आरभ मे यूसुफजइयो ने रोशनिया पथ से नाता तोड लिया, मगर अन्य पठान कबीले और खासकर बगश उसके समर्थक बने रहे।

रोशनिया मुगल शासन से मुक्ति की आकाक्षा का किसानो के समानता के तत्वत सामतवादविरोधी स्वरूप के सपने के साथ सयोजन करते थे। रोशनियापथियो का नेता बेयजीद असारी का पौत्र अहदाद था। १६११ मे उसने काबुल को कब्जे मे ले लिया, मगर कुछ ही दिन बाद उसे वहा से बाहर खदेड दिया गया। रोशनियापथियो द्वारा अधिकृत इलाको मे मुगलो को अक्सर अपने ताजीरी दस्ते भेजने होते थे और उन्हे हाथ मे पडे सभी रोशनिया विद्रोहियो को मार डालने का आदेश था। गद्दारो की सहायता से मुगल अत म रोशनियापथियो को कुचलने मे सफल हो गये। जो बागी जिदा बच रहे वे भागकर पहाडो मे चले गये। वर्षो दमन का शिकार रहने के बाद अहदाद १६२६ मे मारा गया। उसके बाद औरो ने उसका स्थान ले लिया और चौथे दशक के अत मे जाकर ही रोशनिया पथ अपने नेतृत्व से पूर्णत वचित हो पाया, जिसके बाद उसका अपकर्ष शुरू हो गया।

इधर सिख चुपचाप मुगलो के विरुद्ध सशस्त्र सघर्ष की योजना बना रहे थे। गुरु हरगोविद (१६०६–१६३८ या १६४५) ने सभी सिखो को हथियारो से लैस होने और लडाई के लिए तैयार रहने का आदेश दिया। हजारो लोग हथियार लेकर उनके नीचे गोलबद हो गये। इन लोगो के पास तोपखाना भी था। १६१२ मे हरगोविद को जहागीर के दरबार मे बुलाया गया। हरगोविद ने अपने सशस्त्र दस्तो को अक्षत रखने के इरादे से मुगलो की मुलाजमत ले ली और साथ ही छिपे छिपे उन्हे प्रशिक्षित भी करते रहे। लेकिन वह कुछ ज्यादा ही खुदमुख्तारी दिखलाने लगे और इसके परिणामस्वरूप उन्हे कैद मे डाल दिया गया और उनकी यह कैद बारह साल चली।

१६२८ और १६३४ के बीच पजाब के मुगल सूबेदारो ने सिखो के खिलाफ कई बार ताजीरी फौजे भेजी मगर सत्रहवी सदी के पूर्वार्ध मे उन्हे कुचल पाना असभव ही सिद्ध हुआ।

दकन मे लडाइया

सत्रहवी सदी के मुगल शासको ने भी सारे दक्षिणी भारत को वशीभूत करने की आशा को त्यागा नही था। इस समय मुगल सेना का दक्षिण के लिए मुख्य प्रयाणस्थल गुजरात था। अहमदनगर बीजापुर और गोलकुडा ने मुगलो की अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। इन तीनो राज्यो मे अपने सीमावर्ती इलाको के लिए आपस मे लगातार लडाइया चलती रहती

थी यद्यपि विरल अवमरो पर वे मुगल सेनाओ का मयुक्त प्रतिरोध करन के लिए आपम मे मेल भी कर लिया करते थे।

मुगलो ने शुरुआत दक्नी सल्तनतो मे से सबसे कमजोर–अहमदनगर–पर हमले के साथ की। लेकिन मुगल आक्रमण से पहले के कुछ वर्षो मे मलिक अबर नामक इथियोपियाई गुलाम द्वारा लाये गये सुधारो के परिणामस्वरूप अहमदनगर की शक्ति मे उल्लेखनीय वृद्धि आ गयी थी। मलिक अबर ने १६१४ मे लगान को घटाकर उपज का एक-तिहाई कर दिया, जिमम वह किमानो के लिए दूभर नही रह गया और साथ ही उसने अपन जुझारूपन के लिए मशहूर मराठो को बडी सख्या मे सेना मे भरती करना भी शुरू कर दिया।

सत्रहवी शताब्दी मे आकर मराठे भारतीय इतिहास मे एक प्रमुख स्थान ग्रहण कर लेते है। महाराष्ट्र के ग्राम समुदायो मे आतरिक सघर्ष पराकाष्ठा पर पहुचने लग गया था और समुदायो के अधिक शक्तिशाली सदस्य शनै शनै छोटे पैमाने के सामत बनते जा रहे थे। मुगल साम्राज्य के पश्चिमी तट को जानेवाले स्थलीय व्यापार मार्ग मराठो के इलाके से होकर गुजरते थे। मराठा ग्राम समुदाय मे पण्य-द्रव्य सबधो का प्रवेश काफी पहले ही हो गया था। जमीन व्यवहार मे निर्बाध खरीदी और बेची जा सकती थी, यद्यपि ओपचारिक रूप मे केवल समुदाय के सदस्यो के अधिकार ही बेचे जा सकते थे जिनम अपनी जमीनो पर उनका अधिकार भी सम्मिलित था।

अहमदनगर की सेना का हलका मराठा रिसाला दुश्मन की टकडियो पर अचानक छापे मारकर रसद ढोनेवाली गाडियो को तितर बितर कर देता था और मुगलो की विशाल, लेकिन भारी भरकम सेना को गभीर क्षति पहुचाता था। मुगल सैनिक अभियान १६०६ से १६२० तक चलते रहे, मगर फिर भी मुगल सेना ने कोई महत्वपूर्ण नयी सफलता नही प्राप्त की। लेकिन बीजापुर और गोलकुडा की सहायता के बावजूद अहमदनगर अब और प्रतिरोध करने की स्थिति मे नही रह गया था–विशाल सेनाओ के उसके इलाके मे होकर आने-जाने ने उसे तहस-नहस कर दिया था और लबी लडाइयो ने उसकी आबादी की शक्ति को निचोड लिया था। १६२१ मे मुगलो ने अहमदनगर की राजधानी को कब्जे मे ले लिया। इसके बाद सपन्न हुई सधि की शर्तों के मुताबिक उसके प्रदेश का कुछ भाग मुगल साम्राज्य मे मिला लिया गया। तीनो दक्नी सल्तनतो को युद्ध का भारी मुआवजा देना पडा। इसके बाद लगभग दस साल तक लडाइया बद रही।

मुगल साम्राज्य का सबसे उन्नत प्रदेश और उसका आर्थिक केंद्र गुजरात था। गुजरात अपने बढिया कपडो नील इंद्रगोपमणि (कार्नीलियन) के हस्तनिर्मित सामानो अलकृत अस्त्रो आदि के लिए विख्यात था। गुजरात के भीतरी भागो मे भी व्यापार सुविकसित था अधिकाश नगरो और बडे गावो मे नित्य लगनेवाली हाटो मे कृषि पदार्थ तथा दस्तकारी के सामान बेचे जाते थे। लेकिन विदेश व्यापार तो और भी अधिक महत्व रखता था। सूरत भारत का सबसे बडा बदरगाह था। यहा से रवाना होनेवाले जहाज फारस की खाडी और अरब सागर के देशो के लिए माल लेकर जाया करते थे और पूरे पश्चिमी तट के साथ-साथ तटवर्ती व्यापार होता था। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि गुजरात की आबादी मे व्यापारियो की सख्या काफी बडी थी और उनमे हिदू और मुसलमान दोनो ही थे।

विशिष्टत व्यापारी जातियो मे मुसलमानो मे खोजाओ और बोहरो के साथ-साथ हिदुओ मे बजारो का और सामान्यत सभी हिदू व्यापारियो के लिए बनियो (बक्कालो) का उल्लेख मिलता है। कुछ गुजराती व्यापारी बहुत धनी और प्रभावशाली थे। सूरत के व्यापारी वीरजी वोरा (वोहरा) को उस समय ससार का सबसे धनी आदमी माना जाता था। उसने अहमदाबाद आगरा, बुरहानपुर और बाद मे गोलकुडा तक मे अपनी कोठिया (कार्यालय) कायम की थी, मगर उसकी शक्ति का वास्तविक स्रोत गुजरात के मलाबार के साथ व्यापार पर उसका लगभग एकाधिकार था। सूरत के सभी व्यापारियो को वीरजी वोरा की इच्छाओ का पालन करना होता था और वीरजी ही आयातित मालो के लिए दिये जानेवाले दामो का निर्धारण किया करता था।

सूरत भारत के साथ ब्रिटिश तथा डच व्यापार का भी एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया था। यूरोपीय व्यापारी सामुद्रिक व्यापार के क्षेत्र से भारतीय व्यापारियो को धकेल बाहर करते जा रहे थे। स्थानीय सामतो और बादशाह द्वारा लगायी पाबदियो के विरुद्ध यूरोपीय व्यापारी रिश्वतो और धमकियो के बल पर भारतीय व्यापारियो के मुकाबले अधिक अनुकूल स्थिति मे आते जा रहे थे।

अधिक शक्तिशाली भारतीय व्यापारी यूरोपीयो के साथ सहयोग करने का यत्न करते थे और उनके भागीदारो के नाते वे उनके सरक्षण का उपभोग

करते थे। गुजरात म इस तरह से विचौलिये अथवा दलाल (काप्रडार) व्यापारियो की अर्थात जो विदेशियो से सबध रखते थे, एक पूरी जमात पैदा हो गयी थी। शाही परिवार के सदस्यो सहित सामत भी सामुद्रिक व्यापार मे सक्रिय भाग लेते थे—वे जहाजो को तैयार करते थे और यूरोपायो का वडी मात्रा मे भारतीय माल बेचा करते थे।

शाहजहा और महाबत खा के विद्रोह

अहमदनगर पर विजय प्राप्त करने के पुरस्कारस्वरूप जहागीर न अपन दूसरे बेटे खुर्रम को शाहजहा का खिताव दिया था और उसे गुजरात का मूबेदार बना दिया था जो साम्राज्य के सबसे सपन्न सूबो मे एक था। लेकिन जहागीर उस समय अपनी चहेती बेगम नूरजहा के बहुत प्रभाव म था और यह मदक्ची शासन की बागडोर धीरे-धीरे नूरजहा के हाथो म ही देता जा रहा था। नूरजहा जहागीर के एक और बेटे शहरयार की समर्थक थी। शाहजहा के छोटे भाई को नूरजहा का यह समर्थन जहागीर के बाद सिहासन पर उसके दावे के लिए खतरा था।

इस आशका का निरोध करने के लिए शाहजहा ने गुजरात की मात गुजारी मे एक बडी सेना खडी कर ली और १६२२ मे अपने पिता के खिलाफ विद्रोह कर दिया। मगर वह हार गया और उसे भागकर गोलकुडा जाना पडा। वहा से वह बगाल जा पहुचा, जहा उसने कई सिपहदारो का समर्थन प्राप्त कर लिया। लेकिन इलाहाबाद के पास उसे फिर पराजित होना पडा। शाहजहा के अहमदनगर मे सेना खडी करने और मुगल सेना को बुरहानपुर मे खदेड बाहर करने के प्रयास भी असफल रहे और उसे अपने पिता से क्षमा याचना करनी पडी। जहागीर न उसे माफ कर दिया मगर उसने गुजरात की सूबेदारी उससे वापस ले ली और बदले मे दकन मे एक छोटी सी जागीर दे दी।

शाहजहा को बारबार पराजित करनेवाली मुगल सेना की कमान महाबत खा के हाथो मे थी। महाबत खा के मुख्य समर्थक राजपूत थे। महाबत खा के बढते प्रभाव को देखकर नूरजहा के गुट के लोग आशकित हो गये और हर तरह से उसके खिलाफ बादशाह के कान भरने लगे। महाबत खा को दरबार मे पेश होने का हुक्म दिया गया और वहा उसके साथ उपेक्षा का बर्ताव किया

गया। महाबत खा ने मौका देखकर अपने सैनिको की सहायता से जहागीर के कश्मीर जाते समय उसके खेमे को घेरकर उसे बदी बना लिया और इस तरह कुछ समय के लिए सत्ता व्यवहार मे उसके ही हाथ मे आ गयी।

लेकिन दूसरे मुगल सिपहदार महाबत खा के राजपूतो के इस तरह अचानक प्रामुख्य प्राप्त कर लेने से नाराज थे। अत मे मुगल और राजपूत सैनिको मे एक मामूली सी झडप ने खूनी लडाई का रूप ले लिया, जिसमे दो हजार राजपूत, जो महाबत खा के मुख्य समर्थक थे मारे गये और स्वय महाबत खा को भागकर शाहजहा के पास शरण लेनी पडी।

१६२७ मे जहागीर का देहात हो गया और उसके बाद शाहजहा गद्दी पर बैठा। गद्दी के और दावेदारो द्वारा विद्रोह करने की सभावनाओ का अत करने के लिए उसने आदेश देकर अपने सभी निकट सबधियो को मरवा डाला।

शाहजहा का राज्यकाल

अपने एश्वर्य तथा वैभव मे शाहजहा का अपने पूर्ववर्तियो मे कोई सानी नही था। उसके जमाने मे साम्राज्य के मुख्य नगरो मे अल्पमूल्य रत्नो से जटित सगमर्मर की इमारते बनायी गयी (आगरा का प्रसिद्ध ताजमहल इनमे से एक है)। इस निमाण कार्य का मतलब अपार व्यय था। सेना मे चाहे अब सैनिको की सख्या कही अधिक थी मगर उसकी युद्ध क्षमता पहले की बनिस्बत बहुत कम हो चुकी थी। सैनिक अभियानो के समय लशकरियो और नौकरो चाकरो की सख्या सैनिको से कही अधिक हुआ करती थी। लडाई मे रिसाले या पैदल सेना की बनिस्बत जगी हाथियो पर ही अधिक निभर किया जाया करता था, जो दुश्मन की फौजो को रौदते जाते थे। नतीजे के तौर पर चाहे कुछ मौको पर, जैसे दकन मे, मुगल सेनाए अब भी विजये प्राप्त करती जा रही थी, वहा अफगान इलाको जैसे पहाडी इलाको मे जो हाथियो के लिए दुर्गम थे, शाहजहा सफलता ही पाने की स्थिति मे नही था।

आतरिक नीति

शाहजहा को लगभग गद्दी पर बैठने के साथ ही विद्रोही सामतो के खिलाफ सघर्ष मे उतरना पडा था। पहले एक बुदेला राजा ने स्वतत्र होने की असफल

कोशिश की, जिसे बाद मे शाहजहा की अधीनता स्वीकार करनी पडी। बाद मे जहागीर के एक कृपापात्र खाजहा ने अपने सम्राट के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और अहमदनगर के पक्ष मे चला गया। लेकिन मुगल सेना न अहमदनगर की सेना को पराजित कर दिया और खाजहा भागकर बुदेलखड चला गया जहा वह उस बुन्देला राजा के हाथो मारा गया, जो अब बादशाह की कृपा प्राप्त करन का आकाक्षी था।

दक्न मे लडाइयो और खजाने के खाली हो जाने के कारण लगान के बढाये जाने के परिणामस्वरूप भयकर अकाल पड गया, जिसन गुजरात दक्न और गालकुडा के कुछ भागो को अपनी जकड मे ले लिया। युद्धध्वस्त दक्न म सबसे अधिक ग्रामीण आबादी को और गुजरात मे शहरी आबादी को ही इसे झेलना पडा। इतिवृत्तो के अनुसार इस अकाल के परिणामस्वरूप गुजरात म कोई तीस लाख लोगो की जाने गयी, जिनमे बहुत से दस्तकार भी थे। इस इलाके मे इतने सारे दस्तकारो की मृत्यु और उसके नतीजे के तौर पर निर्मित सामानो के परिमाण मे कमी को देखते हुए ब्रिटिश ईस्ट इडिया कपनी न कारमडल तट पर कोठिया स्थापित करन का निश्चय किया। कपनी ने वहा जमीन खरीदी, जिस पर कालातर मे मद्रास नगर और बन्दरगाह पैदा हुआ और विकसित हुआ।

गुजरात मे बस पोत निर्माण का ही जोर बधा रहा। वहा पहले के मुकाबले कही अधिक सख्या मे जहाज बनते रहे। सिर्फ स्थानीय व्यापारी ही नही अग्रेज भी गुजरात मे बने जहाजो को खरीदने लगे। लेकिन कुल मिलाकर आर्थिक केंद्र के नाते गुजरात का महत्व धीरे धीरे खत्म होता जा रहा था। उसका स्थान बगाल लेता जा रहा था जहा बढिया कपडे के निर्माण का शिल्प बहुत उन्नत था (खासकर ढाका और पटना मे) और उसके साथ तबाकू और शोरा भी बहुत पैदा होता था।

सत्रहवी सदी मे पुर्तगालियो ने बगाल म अपनी स्थिति को खूब मजबूत कर लिया था। ऐश्वर्यशाली हुगली नगर अब वस्तुत उनके ही हाथा म था। उन्होंने तबाकू पर महसूल लगाया और लोगो को जबरदस्ती ईसाई बनाना शुरू किया। वे तटवर्ती गावो पर हमले करके वहा के निवासियो को पकड लाते थे और उन्हे विदेशो म गुलामी की तरह बेच दिया करते थे। जहागीर के समय म भी इन पुर्तगालियो के खिलाफ सेना भेजी गयी थी। १६३२ म शाहजहा न सत्र घेरे के बाद हुगली को सर कर लिया और वहा से चार हजार पुर्तगाली बैदियो को आगरा भेज दिया गया। इनमे से जिन पुर्तगालियो

ने इस्लाम अगीकार कर लिया उन्हे तो छोड दिया गया और शेष को मार डाला गया।

दकन मे लडाइया

दकन को अपने अधिकार म लाना शाहजहा अपने सबसे मुख्य कार्यभारो म एक समझता था। सैन्य क्रिया क क्षेत्र के अधिक निकट रहन के लिए वह अपनी राजधानी बुरहानपुर ले गया। मलिक अबर की मृत्यु के बाद अहमदनगर म सामतो के आपसी सघर्षो का सिलसिला फिर शुरू हो गया था। अहमदनगर के सुलतान ने अपने कुछ धमाध मुस्लिम दरबारियो के असर मे आकर अपने मराठा सेनापतियो को, जो हिदू थे मरवा डाला था। यही नही, उसने मलिक अबर के पुत्र फतह खा को भी जेलखान म डाल दिया था। जब मुगल सना ने अहमदनगर के कई मजबूत किलो को जीत लिया तो फतह खा को रिहा कर दिया गया और सल्तनत का वजीर आजम बना दिया गया। लेकिन फतह खा ने अपने सुलतान को मार डाला और मुगलो के पक्ष मे चला गया और उनकी मुलाजमत करने लगा। इस तरह अहमदनगर अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा (१६३२)।

इसके बाद मुगलो ने बीजापुर को जीतन की तरफ ध्यान केद्रित किया। बीजापुर की राजधानी पर दो बार घेरा डाला गया लेकिन मुगल छावनी म अन्नाभाव हो जाने (आसपास के गावो के कगाल किसान खाद्य सामग्री जुटाने की स्थिति मे नही थे) और मुगल सेनानायको मे मतभेदो के कारण भी मुगल सेना को अत मे घेरा उठाकर लौटना पडा।

१६३६ मे मुगलो ने दकन को जीतने के लिए नये अभियानो का आयोजन किया। पहले की ही तरह दकनी सल्तनते अब भी आपस म लडाइयो मे लगी हुई थी। उनके दरबारो मे सामती षडयत्रो और दुरभिसधियो का बोलबाला था और जिस समय मुगल सेनाए अपने पीछे पीछे ध्वस्त नगरो और गावो म विनाश लीला मचाते हुए बढती आ रही थी उस समय ये सामत एक दूसरे को मारने मे लगे हुए थे। बीजापुर और गोलकुडा काफी कारगर प्रतिरोध नही कर सके और उन्हे मुगल साम्राज्य के अधीन राज्यो की स्थिति को स्वीकार करना पडा और अपने नये स्वामी को लडाई का हरजाना तथा सालाना खिराज दने के लिए तैयार होना पडा।

शाहजहा ने अपने तीसरे पुत्र औरगजेब को दकन का सूबेदार नियुक्त

किया। इस युद्धध्वस्त इलाके मे मालगुजारी की वसूली को व्यवस्थित करने के लिए औरगजेब के दीवान (माल विभाग का प्रधान) मुर्शिद कुली खा ने मालगुजारी की एक नयी प्रणाली का प्रचलन किया, जिसका लक्ष्य रैयत (किसानो) को तकावी देकर इसके लिए प्रोत्साहित करना था कि व लौटकर उजाड पडी जमीनो को फिर से काश्त करना शुरू करे। सिंचित जमीनो के लिए लगान की निम्न दरे लागू की गयी और लगान की रकम का अधिकारियो और किसानो मे बातचीत के जरिये तय किया जाता था, अर्थात रैयत की लगान अदा करने की क्षमता को ध्यान मे रखा जाता था। यद्यपि दक्कन के जागीरदार मुख्य लगान के अलावा कोई चौदह और महसूल भी लगाते थे, फिर भी मुर्शिद कुली खा की प्रणाली के परिणामस्वरूप दकन म कृषि की धीरे धीरे पूरी तरह से बहाली हो गयी।

जन आदोलन

मुगल शासन के खिलाफ सघर्ष चलता ही रहा, यद्यपि इस समय के इतिवृत्तो मे बडे पैमाने के जन आदोलनो का कोई उल्लेख नही मिलता है। शाहजहा द्वारा भेजे गये तीन ताजीरी अभियानो (१६२८, १६३० तथा १६३१ मे) के बावजूद पजाब मे सिख सरकश ही बने रहे। बगाल म डकैतो के खिलाफ सशस्त्र कार्रवाइया अविराम चलती रही। दोआब म किसान बगावत हुए और १६२६ मे रैयत को काबू मे लाने के लिए सैनिक दस्ता का भजना की जरूरत पडी। १६५० मे इसी इलाके मे मेवातियो (मेवो) का बलवा फूट पडा, जो भागकर जगलो मे जा छिपे। उनका दमन करने के लिए दस हजार सैनिको की सेना भेजी गयी, जिसने जगलो को काटकर और मेवो के गावो को जलात हुए उनका दमन किया और जिदा बचे सभी मेवो को बंदी बनाकर अपने साथ ले गयी।

जागीरदारो मे आपसी लडाइया और झगडे

जन विद्रोहो के कारण राजकोष मे जानेवाले राजस्व मे कमी आ गयी। गोलकुडा न १६३६ मे मुगलो को जो सालाना खिराज देन का वचन दिया था वह उसने नही दिया। इधर खजाने के खाली होने के कारण मुगलो को धन की सख्त जरूरत थी, जब कि गोलकुडा समृद्ध राज्य था। शाहजहा

की अर्थव्यवस्था का एक विशिष्ट लक्षण यह था कि लगभग सारे ही लगान तथा अन्य सरकारी महसूलो की वसूली ठेकेदारो के जरिये की जाती थी। यह प्रथा किसानो और शहरी आबादी दोनो के लिए विनाशक थी। लेकिन साथ ही यह आबादी के धनवान सदस्यो को पैसे के बल पर पद प्राप्त करन और महत्वपूर्ण राज्याधिकारी बनने के अधिक अवसर भी प्रदान करती थी। उदाहरण के लिए सईद अर्दिस्तानी नामक एक धनी फारसी व्यापारी ने जिसके पास गोलकुडा मे सैनिको की एक बडी टुकडी थी विजयनगर से कर्णाटक का एक भाग छीनकर वहा हीरो की खानो से हीर निकालना शुरू कर दिया था। इसके बाद वह और भी उन्नति करते करते गोलकुडा के माल महकमे का प्रधान – मीर जुमला – बन गया। इतिहास मे वह इस उपाधि के नाम से ही जाना जाता है जिसे उसने बाद मे अपना नाम ही बना लिया था। सल्तनत के लगभग सभी प्रमुख पदो को अपने हाथो मे सकेद्रित करके मीर जुमला एक तरह से गोलकुडा का शासक ही बन गया। लेकिन अब तक गोलकुडा के शाह और उसके इस शक्तिशाली वजीर मे मतभेद पैदा हो गये थे, जिसके परिणामस्वरूप मीर जुमला गुप्त रूप मे मुगलो से जा मिला और उनका मुलाजिम हो गया।

इस पर गोलकुडा के शाह ने मीर जुमला क बेटे को कैद कर दिया (१६५६), जिससे औरगजेब को उसके राज्य पर हमला करने का बहाना मिल गया। मुगल सेनाए गोलकुडा की राजधानी भागनगर (वर्तमान हैदराबाद) मे घुस आयी और उन्होने निकट ही स्थित उस किले को घेर लिया जिसमे शाह ने अपने को बद कर लिया था। यह घेरा दो महीने चला, जिसके बाद शाह द्वारा अपने राज्य का एक भाग मुगलो को दे दिये जाने और गोलकुडा की आबादी से मुगलो द्वारा भारी हरजाना वसूले जाने के साथ सधि हो गयी। राजधानी के लूटे जाने और खिराज के दुवह भार ने करो मे भारी वृद्धि को आवश्यक बना दिया। यह पराजय गोलकुडा के आर्थिक अपकर्ष के प्रारभ की द्योतक थी।

गोलकुडा को वशीभूत करने के बाद औरगजेब ने मीर जुमला की सेना सहित बीजापुर पर हमला किया। लेकिन ठीक इसी समय (१६५६ मे) शाहजहा सख्त बीमार हो गया। राजगद्दी के मामले मे भारत मे उस समय चूकि ज्येष्ठाधिकार को कोई मान्यता प्राप्त नही थी और इसलिए बादशाह का हर बेटा गद्दी का समान रूप मे दावेदार होता था। फलत अब शाहजहा के बेटो मे उत्तराधिकार के लिए लडाई शुरू हो गयी। शाहजहा का चहेता

उसका सबसे बड़ा बेटा दारा शिकोह था, जो अत्यन्त सुशिक्षित और उदार विचारों का व्यक्ति था। वह हिंदू साधु-संन्यासियों का सम्मान करता था, सूफीयाना ग्रंथों का अध्येता तथा लेखक था और इस्लाम तथा हिंदू धर्म का समन्वित करने के सपने देखा करता था। लेकिन उसे सैनिक अनुभव बिलकुल भी नहीं था, क्योंकि शाहजहां ने उसे जीवन भर दरबार में ही रखा था। दारा को राजपूतों का समर्थन प्राप्त था, जिन्हें आशा थी कि दारा के बादशाह बन जाने से अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति पर फिर से चला जाने लगेगा।

शाहजहां का दूसरा पुत्र शाह शुजा था, जो कई साल से बंगाल का सूबेदार था। यह गलत समाचार पाने पर कि शाहजहां की मृत्यु हो गयी है, उसने तुरत अपनी ताजपोशी करायी और सेना लेकर आगरा की तरफ कूच कर दिया। दारा की सेना ने शुजा की सेना को पराजित कर दिया। लेकिन जब दारा की फौज बंगाल में थी, तभी शाहजहां के अन्य पुत्र—गुजरात का सूबेदार मुराद और दक्कन का सूबेदार औरंगजेब उसके खिलाफ मैदान में उतर आये। शाहजहां के चारों बेटों में यह संघर्ष दो साल से अधिक समय तक चलता रहा और उसका अंत औरंगजेब की विजय में हुआ। इस धर्मांध और कट्टर मुसलमान शासक ने बहुत लंबे समय तक राज्य किया, पर इतना अपनी शक्ति के बल पर नहीं कि जितना साजिशों, जोड़तोड़ और क्रूरता के बल पर।

औरंगजेब का राज्यकाल

उत्तराधिकार के युद्ध में मीर जुमला ने औरंगजेब की काफी सहायता की थी। पर गद्दी हासिल करते के साथ कपटी औरंगजेब ने उसे दूर रखने के लिए बंगाल का सूबेदार बनाकर भेज दिया। मगर वह वहां भी सक्रिय रहा। उसने असम में निकटवर्ती अहोम राज्य को जीत लिया। लेकिन उसकी मृत्यु के बाद असम के लोगों ने विद्रोह कर दिया और मुगल सेनाओं को अपने देश से खदेड़ भगाया।

सत्रहवीं सदी के उत्तरार्ध मे मुगल साम्राज्य का आर्थिक विकास

औरगजेब अपने लबे शासन की पूरी अवधि भर (१६५८–१७०७) लगातार युद्धो म – सेनाओ को कभी उत्तर तो कभी दक्षिण कभी पूर्व तो कभी पश्चिम भेजने – और साम्राज्य के विभिन्न भागो म विद्रोहो को कुचलने म ही लगा रहा। उस समय तक मुगल सेनाओ की सख्या बढकर १ ७० ००० घुडसवार और लाखो नाकरिया म पहुच गयी थी। लेकिन इसके बावजूद मुगल सेनाओ की युद्ध क्षमता घटती ही गयी। औरगजेब अधिकाधिक अपने रणचातुर्य अथवा सैन्य शक्ति म नही बल्कि घूसो के बल पर विजय प्राप्त कर रहा था। इसके लिए बहुत धन की आवश्यकता थी।

औरगजेब के राज्यकाल म सैनिक तथा नागरिक अधिकारियो की सख्या उसके पिता के समय की अपेक्षा कही अधिक हो गयी थी और अब उन सबको जागीर देने के लिए काफी जमीन नही थी। जागीरदारो की आय मे जबरदस्त कमी आ गयी थी क्योकि राजकोष के लिए उनसे अब ढेरो अतिरिक्त उगाहिया की जाने लगी थी। इसके अलावा बहुत से जागीरदार निरतर युद्धो के कारण कगाली की हालत म पहुच गये थे। निर्दिष्ट सख्या म घुडसवार रखना अब उनकी क्षमता के बाहर हो गया था। कभी कभी तो सैनिको को बरसो वेतन नही मिलता था और इस बीच वे मुख्यत नागरिक आबादी की लूट खसोट करके ही गुजर करते थे। अधिकाधिक जागीर अब पिताओ से पुत्रो को मिलने लगी थी यद्यपि अठारहवी सदी म भी जागीर को सेवा से सबद्ध सशर्त अनुदान ही माना जाता था। पहले की ही भाति अब भी जागीरदार की जायदाद उसकी मृत्यु के बाद फिर राजकीय सपत्ति बन जाती थी और अतिम परिकलन तथा निर्णय राजकोष द्वारा किये जाते थे। लेकिन इस प्रक्रिया मे कई कई साल लग जाया करते थे और इसके परिणामस्वरूप जागीरदारो ने जागीरो के बजाय राजकोष से वेतन दिये जाने का अनुरोध किया। लेकिन सरकार द्वारा इस अनुरोध को अस्वीकार कर दिया गया।

सरकार जिसके पास आवश्यक साधनो का अभाव था, जागीरदार जो अब अपनी अधिकाश आयो से वचित हो गये थे और सेना, जिसे अरसे म नियमित वेतन नही मिल पा रहा था, सभी अपनी स्थिति को सुधारने के आकाक्षी थे और यह सिर्फ किसानों की कीमत पर ही हो सकता था। जहा अकबर के समय अधिकृत लगान उपज का एक तिहाई था वहा औरगजेब

के राज्यकाल म यह बढकर उपज का आधा हो गया था और व्यवहार म तो रैयत से और भी ज्यादा वसूलिया की जाती थी। किसाना को जितना ही अधिक देना होता था, लगान को उगाहना उतना ही अधिक कठिन होता गया। कितने ही जिलो मे तो इन वसूलियो के कारण किसाना क लिए काम करना भी असभव हो गया था और उन्होंने अपन गावो को छोडकर जाना शुरू कर दिया था जहा व पीढियो से रहते और खेती करते आये थे। तत्कालीन इतिवृत्तो मे कगाली के मारे और उजडे हुए गावो क बारे मे बहुत से उल्लेख मिलते है।

बकाया रकम को गावो मे बच रह किसानो से वसूल करने की कोशिशे की जाती थी और भाग जानेवालो की बाकीदारी का उनसे उगाहा जाना एक आम रिवाज बन गया था। इसलिए अचरज की बात नही कि साम्राज्य के एक के बाद दूसरे हिस्से पर अकाल का प्रकोप होने लगा। दकन म १७०२ और १७०४ के बीच विशेषकर भयकर दुर्भिक्ष पडा, जिसने बीस लाख से ज्यादा लोगो क प्राण लिये। आर्थिक स्थिति को सुधारने का एकमात्र तरीका करो को घटाना था, ताकि जमीन को जोतनेवाले अपने काम से कम स कम कुछ तो पा सके। लेकिन सरकार, जिसके लिए अपने सैनिक व्यय की पूर्ति करने के वास्ते साधन निकालना जरूरी था, करो का बोझ घटाने को तैयार नहीं थी। बल्कि इसके विपरीत जागीरदार किसानो से लगान की मागो का लगातार बढाते ही जाते थे।

दस्तकारिया और व्यापार

सत्रहवी सदी मे हस्तशिल्पो का विकास होता रहा खासकर कपडा बुनने (यूरोपीय तथा एशियाई मडियो मे भारतीय कपड की बढती माग के परिणाम स्वरूप) और उससे सबद्ध प्रक्रियाओ – कताई, रगाई और छपाई – का भी। बडे गावो और शहरो मे विशेषकर यूरोपीय कोठियो के निकट दस्तकारो की आबादी बढती जा रही थी। मिसाल के लिए मद्रास एक छोटे स गाव से दक्षिण भारत के व्यापार केंद्र और बुनाई उद्योग के हृदस्थल मे परिणत हो गया था। शहरो के बाह्याचलो मे दस्तकारो के रहने और काम करने के महल्लो का रखा जाना एक आम रिवाज बन गया था – उनके तैयार किये माल को दलाल वही आकर खरीद लेते थे और वहा से सीधे कोठियो को भेज देत थे। एक बडे केंद्र के आसपास के कई कसबे मिलकर एक तरह से एक

आर्थिक क्षेत्र का निर्माण करते थे। हस्तशिल्प के इस विकास और आर्थिक केंद्रो के निर्माण का सिलसिला असमान गति से चलता रहा और मुख्यत तटवर्ती इलाको मे ही सीमित रहा। इन तटवर्ती प्रदेशो म जोरो का व्यापार होता था और उसमे तटवर्ती जहाजरानी का उपयोग किया जाता था।

विदेश व्यापार मे भारत का व्यापार सतुलन उसके अनुकूल था लेकिन उससे प्राप्त साधन विलास वस्तुओ के रूप मे या तिजोरियो मे बद धन के रूप मे परजीवी सामत वर्ग द्वारा ही हथिया लिये जाते थे और इस तरह वे प्राथमिक मचय के स्रोत नही बन पाते थे।

एक ऐसे आर्थिक ढाचे मे जिसमे छोटे पैमाने के उत्पादन का ही प्राधान्य था, पण्य-द्रव्य सबधो की जबरदस्त वृद्धि न अनिवार्यत माल की खरीद कर लेनेवाले बिचौलियो या व्यापार अभिकर्ताओ (एजेटो) को पैदा किया और दस्तकार उन पर अधिकाधिक आश्रित होते चले गये। उनके शोषण का मुग्य स्वरूप भावी उत्पादन के बदले पेशगी मे नकद धन का दिया जाना था। यूरोपीय कोठिया भी इन दलालो का उपयोग करती थी। व्यापारियो का ' अपने " दस्तकारो पर इतना जोर था कि कभी कभी व उन्हे अपनी सुविधा के अनुसार एक जगह से दूसरी जगह भी भेज दिया करते थे।

भारत मे अधिक धनवान व्यापारियो मे से कुछ शासक वर्ग मे सम्मिलित होने लग गये थे। न सिर्फ यह कि सामत अपनी आय को बढाने के लिए व्यापार का उपयोग करते थे, बल्कि व्यापारी भी अपने मुनाफो को बढाने के लिए सामती शोषण के तरीको को अपनाने के लिए हर तरह से तैयार रहते थे। कभी कभी ऐसा भी होता था कि धनवान लोग सशस्त्र दस्ते रखते थे और जागीरदारो की हैसियत ग्रहण कर लेते थे और जागीरदारो के पास अक्सर व्यापारिक जहाज दूकाने तथा कारवामराये होती थी और वे व्यापार मे सक्रिय भाग लेते थे। जहा तक देश मे उत्पादित सबसे मूल्यवान मालो का सबध था उन पर कभी-कभी बादशाह का एकाधिकार घोषित कर दिया जाता था और तब उन्हे प्राप्त करने या बेचने के लिए विशेष अनुमति लेनी होती थी।

सत्रहवी शताब्दी के अत तक जब केंद्रीय सरकार की सत्ता कमजोर होने लग गयी थी, जागीरदारो और जमीदारो ने अपने हितो का सवर्धन करन के लिए दस्तकारो और व्यापारियो पर अतिरिक्त कर लगाना शुरू कर दिया था और वे आबादी के इन अगो पर तरह-तरह के बधन लगाने लग गये थे, जो कभी-कभी तो किसी खास माल के एकाधिकार का रूप भी ले लेते

थे। चूंकि मुगल साम्राज्य मे अधिकाश दस्तकार और व्यापारी हिंदू ही थे इसलिए औरगजेब के शासन के अतर्गत धार्मिक उत्पीडन और उसके लगाये जिजिया से उनमे बहुत रोष पैदा हो गया।

औरगजेब की धार्मिक नीति

औरगजेब के सिहासनारोहण का मतलब यह था कि दरबार मे अब अधिक प्रतिक्रियावादी जागीरदारो का प्रभाव ही निर्णायक हो गया। निष्ठुर और कुटिल राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ औरगजेब धर्माध मुसलमान भी था ओर दारा शिकोह पर उसकी विजय एक ऐसी नीति के सूत्रपात की द्योतक थी जिसके अतर्गत हिदुओ को उनके अधिकारो से वचित कर दिया गया और शियाओ का दमन किया जाने लगा। देश के जीवन को रूढ इस्लाम के सिद्धात की सगति मे लाने के लिए औरगजेब ने शिया त्योहारो, शराब, सगीत, नृत्य, चित्रकला और भाग के बोये जाने, आदि का निषेध कर दिया। १६६१ और १६६६ के बीच उसने कई हिंदू मदिरो के गिराये जाने और उनके मलबे से ममजिदो का निर्माण किये जाने के आदेश दिये। हिदुओ को सम्मान चिह्नो को धारण करने, हाथी पर चढने आदि की अनुमति नही थी।

लेकिन गैर मुस्लिमो पर सबसे बडा बोझ १६७९ मे लगाये गये जिजिया का था जिसे अकबर ने खत्म कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप दिल्ली, गुजरात बुरहानपुर तथा अन्य स्थानो मे जन असतोष भडक उठा। मराठे, राजपूत जाट – सभी उसके खिलाफ खडे हो गये। अफगान मुसलमानो ने भी विद्रोह कर दिया। मुगलो के जूए से मुक्ति पाने की यह आकाक्षा इस तथ्य की परिचायक है कि भारतीयो ने राष्ट्रीय चेतना के पहले लक्षणो का प्रदर्शन करना शुरू कर दिया था। वे मुगल राज्य को एक पराये और दमनकारी अपनी धार्मिक भावनाओ को चोट पहुचानेवाले राज्य की तरह देखने लगे। इन जन आदोलनो ने मुगल साम्राज्य की शक्ति पर कुठाराघात किया।

मराठा जन आदोलन

अपनी स्वाधीनता और स्वतत्रता के सघर्ष मे मराठो की एकता एक राष्ट्र के रूप मे उनके उदय मे एक महत्वपूर्ण चरण की द्योतक थी। दक्खन सुलतानो की सैनिक सेवा के समय से चली आती उनकी दीर्घकालिक सैनिक परपराए मुगलो के विरुद्ध सघर्ष मे बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। उन्ह विरासत

था कि मुगल सत्ता का अंत करने के साथ ही न्यायपूर्ण शासन स्थापित करने में सफल हो जायेंगे। मराठा भक्तिमार्गी कवियों के उपदेश संघर्ष में उतरने का आह्वान करते थे। शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास (१६०८–१६८१) का कहना था : सभी कुछ तो छीन लिया गया है, अब तो सिर्फ अपनी मातृभूमि ही रह गयी है।

दक्कन में प्रमुख राजनीतिक भूमिका का निर्वहन करनेवाला पहला मराठा सरदार शाहजी भोसला था। अपने सशस्त्र दस्ता के साथ कभी अहमदनगर तो कभी बीजापुर की खिदमत करते करते वह सेवा के बदले उनसे इनामी जमीन पाता गया और इस तरह पूना (पुणे) तथा मावळ की जागीरों का स्वामी बन गया। उसके बेटे शिवाजी ने मराठा सिपाहियों के दस्ते जुटाना शुरू किया और उन्हें लेकर मराठा सरदारों की गढ़ियों पर हमले करने लगा। उसने इस तरह से कई गढ़ियों को अपनी चालाकी और सैन्य प्रतिभा तथा शक्ति से जीत लिया।

शिवाजी की बढ़ती शक्ति ने बीजापुर को आशंकित कर दिया और १६५८ में बूढ़े अफजल खां के नेतृत्व में एक बड़ी सेना मराठों के खिलाफ भेजी गयी। अफजल खां ने यह अनुभव करके कि सकरे दर्रे में उसकी भारी भरकम सेना के लिए कावाबाजी करना मुश्किल रहेगा और स्थिति द्रुतगामी मराठों के अनुकूल रहेगी, शिवाजी को एक पहाड़ी की चोटी पर आकर मिलने के लिए आमंत्रित किया। इस भेंट में बस दोनों सेनानायकों को ही मौजूद रहना था और चोटी पर भी सिर्फ उन दोनों को ही चढ़ना था। अफजल खां ने अपने कपड़ों में कटार छिपा रखी थी और शिवाजी का आलिंगन करने के बहाने उसने शिवाजी पर उससे वार किया। लेकिन शिवाजी ने अपने कपड़ों के नीचे बक्तर पहन रखा था, जिसने उसे कटार की चोट से बचा लिया। लेकिन अफजल खां का 'आलिंगन' करते समय उसने अपने हाथ में छिपाये बघनखे से उसे चीर दिया और फिर ललकार देकर अपने सैनिकों को बुला लिया, जिन्होंने दौड़ते हुए पहाड़ी पर चढ़कर अफजल खां का सिर उड़ा दिया। अपने सेनापति से वंचित बीजापुरी सेना जल्दी ही मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुई। इसके बाद शिवाजी के मराठों ने बीजापुर की सीमाओं के भीतर भी छापे मारना शुरू कर दिया और लूट के माल से लदकर लौटने लगे।

औरंगजेब ने मराठों की, जिन्हें वह तिरस्कारपूर्वक 'पहाड़ी चूहे' कहा करता था, सरकशी का अंत करने का निश्चय किया और शाइस्ता खां की

वमान म एक बडी सेना भेजी, जिसने पुणे पर कब्जा कर लिया। लेकिन शिवाजी के रात म अचानक हमले ने शाइस्ता खा को पराजित कर दिया और वह आतंकित होकर भाग गया। उसकी सेना भी नही टिक पायी और वापस चली गयी। १६६४ मे शिवाजी ने सूरत के बंदरगाही नगर पर छापा मारा। शिवाजी द्वारा व्यापारियो की सपत्ति की लूट और मकानो तथा गोदामो के विनाश ने समूचे तौर पर गुजरात के व्यापार और स्वय मुगल साम्राज्य पर भी कठोर प्रहार किया। अब औरगजेब ने अपने एक योग्यतम सेनानायक, जयसिंह को शिवाजी के खिलाफ भेजा और इस बार शिवाजी को हार माननी पडी। १६६५ म उसने पुरदर की सधि पर हस्ताक्षर कर दिये, जिसकी शर्तो के अनुसार उसने अपने बडे किले मुगलो के हवाले कर दिये और मुगलो की सेवा मे आना स्वीकार कर लिया। जयसिह ने मराठो के नेता को सम्राट के आगे सम्मान प्रकट करने के लिए दिल्ली चलने को तैयार कर लिया और उसे आश्वासन दिया कि इस तरह वह बादशाह का कृपाभाजन बन सकेगा। लेकिन मुगल राजधानी पहुचने पर शिवाजी और उसक पुत्र सभाजी (शभूजी) को नजरबद कर दिया गया। वहा से वे लोग काफी मुश्किल से ही भाग सके। वतन पहुचने के बाद शिवाजी न १६७० म फिर से हमले करना और छापे मारना शुरू कर दिया। उसन सूरत पर हमला करक उसे दुबारा लूटा और इस तरह इस बदरगाह के आर्थिक महत्व को घटाया क्योकि अब विदेशी व्यापारी ही नही, उनके जहाज भी वहा जाते हुए डरन लगे।

बीजापुर बरार, खानदेश गुजरात कर्णाटक – सभी शिवाजी क हमलो के शिकार थे। हलका मराठा रिसाला अपनी तेजी के लिए मशहूर था – मुगल सना के इक्के-दुक्के दलो पर अचानक हमले करके वह लूट के माल के साथ तडित गति से लुप्त हो जाता था। उस समय की अन्य सभी भारतीय सनाओ की ही भाति शिवाजी की सेना भी भाडे के सैनिको की ही थी लेकिन सैनिको को वतन राजकोष से दिया जाता था, न कि अलग अलग सनानायको द्वारा। सेना म कठोर सैनिक अनुशासन और पदानुक्रम था। प्रत्यक सनानायक और सैनिक क लिए वतन की निश्चित दरे निर्धारित थी। लेकिन अभियान काल म अर्थात साल म आठ महीन सैनिको और सेनानायको को कोई वेतन नही दिया जाता था। इस अवधि म उनका खर्च शेष आबादी उठाती थी। शत्रु प्रदेशो की आबादी के विपरीत मराठा इलाको की आबादी को नही लूटा जाता था। बरसात मे जब सेना वापस आती थी तो लूट का सारा माल राजकोष म द दिया जाता था और इसके बाद उसका सना के सभी लोगो म

अभियान वाल के लिए निर्धारित वतन की दरा के अनुसार वितरण कर दिया जाता था और बचा हुआ भाग राजकोष म चला जाता था।

मुगलो और बीजापुर स स्वतत्र मराठा राज्य की स्थापना कर लेने पर १६७४ म पुणे म शिवाजी का विधिवत राज्याभिषेक किया गया। इससे मराठो की राष्ट्रीय चेतना को और भी बल प्राप्त हुआ जिन्होने अपने आपको विदेशी उत्पीडको स मुक्त कर लिया था।

शिवाजी ने मुख्य मराठा प्रदेश – महाराष्ट्र – म अपेक्षाकृत हलका ही लगान लगाया था। कोष की अनुपूर्ति लूट और चौथ स की जाती थी जो मुगल प्रदेशो तथा अन्य इलाको के सूबेदारो और शासको द्वारा अपने को मराठो के छापो स बचाने के लिए दिया जानेवाला धन था और उस प्रदेश के सामान्य राजस्व का चौथा भाग हुआ करता था। अठारहवी शताब्दी मे सरदेशमुखी नामक एक और कर की उगाही शुरू की गयी जो कुल राजस्व के दसवे भाग के बराबर थी।

१६७७ म शिवाजी ने गोलकुडा के साथ सधि कर ली और कर्णाटक पर हमला किया। उसकी सेना के पीछे-पीछे लूटमार करनेवालो के गिरोह होते थे जो रास्ते के इलाको को लूटते-बरबाद करते जाते थे। मराठो के आने की खबर सुनकर आक्रात इलाको की आबादी भाग जाया करती थी। मराठा सेनाए इन इलाको म विशुद्धत आक्रामक इरादो के साथ नये प्रदेशो को जीतने के लिए आती थी।

शिवाजी के सहचरो का उद्देश्य स्वराज्य – राष्ट्रीय तथा धार्मिक मुक्ति – के लिए सघर्ष करना था और माली लाभ का विचार उनके लिए इतना महत्वपूर्ण नही था। मुगलो की सेवा करने से वे सभवत कही अधिक पारितोषिक प्राप्त कर सकते थे। लेकिन जमीन और सत्ता प्राप्त करते जाने के साथ-साथ धीरे धीरे व भी सामान्य सामतो जैसे ही होते चले गये। स्वय शिवाजी के बेटे सभाजी के लिए जिदगी मे बेफिक्री और आराम से ज्यादा बडी और कोई चीज नही थी। १६८० मे शिवाजी की मृत्यु के बाद सभाजी ही मराठा राज्य के सिहासन पर आसीन हुआ।

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध मे जन विद्रोह

मुगल साम्राज्य के विभिन्न भागो मे जन विद्रोहो के फूटने का ताता बधा ही रहा। लेकिन उनके मूल मे सन्निहित प्रेरक शक्तियो और लक्ष्यो के

वैभिन्य की ही भाति उनके स्वरूप मे भी विभिन्नता थी और उनम आन्त म समन्वय नही था। मिसाल के लिए जहा अधिकाश विद्रोही जाट किसान थ वहा सिख आदोलन मे शहरी आबादी की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण थी। मराठे राजपूत और सिख उत्पीडन के विरुद्ध और अपन धर्म की रक्षा के सघर्ष को जहा बहुत महत्व देते थे, वहा अपनी स्वतत्रता के लिए सघर्षरत अफगानो के लिए धर्म का प्रश्न गौण था, क्योकि स्वय औरगजेब की तरह व भी सुन्नी ही थे। ये विद्रोह जनता की राष्ट्रीय चेतना के जागरण के रूप स्वरूप शुरू हुए थे। दिल्ली तथा आगरा प्रदेशो मे जाट किसानो न भारी करो क खिलाफ बलवा कर दिया। अपने नेता गोकुला के प्ररित करन म उन्होन १६६६ मे किले बनाकर आगरा और दिल्ली के बीच का रास्ता बन्द कर दिया। लेकिन जाट विशाल मुगल सना का सामना नही कर सके और वीरतापूर्ण प्रतिरोध क बावजूद पराजित हुए। गोकुला को बाद म आगरा म प्राणदड देकर उसके बदन क टुकडे कर-कर डाले गये।

१६७२ मे नारनौल मे सतनामी विद्रोह फूट पडा। विद्रोही जाटो क सघर्ष का लक्ष्य औरगजेब का तख्ता उलटना और न्यायपूर्ण राज्य की स्थापना करना था। इस विद्रोह को कुचलन क लिए दस हजार की सेना भेजनी पडी। लेकिन इसके बाद १६८५-१६९१ मे और फिर चूडामन के नेतृत्व म १७०४ म भी जाटो के और विद्रोह हुए।

कभी यूसुफजइयो तो कभी खट्टकी तो कभी अफरीदियो क नेतृत्व म अफगानो के विद्रोहो का अतहीन सिलसिला चलता रहा। कभी-कभी तो बागी अफगान अपने सकरे पहाडी दर्रो मे मुगलो की अपने खिलाफ भेजी गयी पूरी की पूरी सनाओ को भी नष्ट करने मे कामयाब हो जाते थे। मिसाल के लिए १६६७ और १६७४ म ऐसा ही हुआ था। लेकिन इसक बाद औरगजेब न सना की कमान खुद सभाल ली और उसने कुछ अफगान नताओ को रिश्वत देना तथा विभिन्न अफगान सेनानायको म वैमनस्य पैदा करवाना शुरू कर दिया जिसके परिणामस्वरूप १६७६ तक अफगान कबीलो की एकता टूट गयी। अकेला खुशहाल खा ही जो उत्कट देशभक्त और मशहूर शायर था मुगलो के आग नही झुका और खट्टको क इलाक मे उसन एक आजाद अफगान राज्य स्थापित कर दिया जिसका आतरिक सघर्ष के फलस्वरूप उसकी मृत्यु (१६८९) क कुछ ही बाद अत हो गया। अफगान लोग आज भी शायर और वीर क नात खुशहाल खा का आदर करत है।

सिखो न भी मुगलो के विरुद्ध अपने दुर्धर्ष सघर्ष को जारी रखा। पजाब

की आबादी के अधिकाधिक अशक उनकी कतारो मे शामिल होते चले गये। नव गुरु तेगबहादुर न उनको गोलबद किया और आनदपुर मे एक किले का निर्माण किया। पजाबी किसान भी उनके झडे क तले गोलबद होन लगे। लेकिन मुगलो न गुरु तेगबहादुर को अपनी गिरफ्त मे ले लिया और १६७५ मे उन्ह दिल्ली म मार डाला गया। उनक पुत्र गुरु गोविदसिह न सारे सिख आदोलन का सैनिक आधार पर पुन सगठन किया। तभी से सिख धर्म व्यापारियो और दस्तकारो के ही समर्थन का उपभोग करनेवाला कोरा साप्रदायिक आदोलन नही रह गया बल्कि वह विद्रोही किसाना की सामतवादविरोधी विचारधारा म परिणत होने लग गया। गुरु गोविदसिह न व्यवस्था दी कि गुरु की सत्ता सपूर्ण सिख समुदाय (खालसा) पर लागू होगी। सिखो के लिए अपनी पुरानी जातिगत तथा धार्मिक निष्ठाओ को त्यागना और अन्य सिखो क साथ ही बधुत्व को स्वीकार करना आवश्यक हो गया। सिखो के लिए विहित किये विशेष विधानो ने उन्ह हिदुओ और मुसलमानो स स्पष्टत पृथक कर दिया। सिखो को एकरूपता प्रदान करन के लिए उनके वास्ते केश कच्छा, कघा, कडा और कृपाण धारण करना अनिवाय बना दिया गया।

अपन इन कदमो से गुरु गोविदसिह न सिख समुदाय को एक शक्तिशाली सगठन मे परिणत कर दिया जो पजाब म मुगलो की सत्ता के लिए गभीर खतरा बन गया। सिख आदोलन का मुख्य आधार पजाबी थे किंतु भारत के किसी भी भाग का कोई भी व्यक्ति उसमे सम्मिलित हो सकता था। गुरु गोविदसिह न पजाब मे कई किलो का निर्माण करवाया कई छोटे-छोटे पहाडी राजाओ क साथ सधिया की मगर इस सबके बावजूद वह मुगल सेनाओ के प्रहार को झेलने म असमर्थ रहे। लबे और भीषण प्रतिरोध क बाद आनदपुर मुगलो के अधिकार मे चला गया और गुरु गोविदसिह को वहा से भागना पडा। वह लबे समय तक देश भर मे इधर उधर घूमते रहे और १७०८ मे उनके एक शत्रु ने उनकी हत्या कर दी। लेकिन इस पर भी सिखो न अपने सघर्ष को जारी रखा।

राजपूतो मे भी जो हमेशा से मुगल सेना की मुख्य शक्ति और आधार रह थे, असतोष फूट पडा। १६७८ मे मारवाड (जोधपुर) के राजा जसवत सिह की मृत्यु के बाद जो औरगजेब के दरबार मे ऊचे ओहदे पर था उसके बेटे अजीतसिह के सिहासनारोहण के अधिकार क प्रश्न पर विद्रोह हो गया और बालक अजीतसिह मुगल उत्पीडको के विरुद्ध विद्रोह का प्रतीक बन गया। औरगजेब ने इस विद्रोह को कुचलन के लिए अपनी सेना मारवाड

भेज दी। मुगल सेना ने गावो को मिट्टी मे मिला दिया, शहरो को लूटा और मदिरो को तोडा। इस पर मेवाड के शासक राजसिह ने भी विद्रोह कर दिया। औरगज़ेब ने अपने बेटे अकबर की कमान मे उसके खिलाफ सेना भेजी। लेकिन राजपूतो ने अकबर की सेना को पराजित कर दिया और इसके बाद उनके साथ गुप्त वार्ता शुरू कर दी और उसे आश्वासन दिया कि अगर वह अपने पिता का तख्ता उलटने की कोशिश करे, तो वे उसकी मदद करेगे। अकबर ने अपने पिता के खिलाफ बगावत कर दी, लेकिन औरगजेब ने अपना चालाकी मे राजपूतो और अपने बेटे की एकता को भग करा दिया। अकबर भागकर मराठो की शरण लेने के लिए चला गया।

औरगजेब ने मेवाड के साथ सुलह कर ली, मगर मारवाड ने १७०६ तक मुगलो के खिलाफ सघर्ष जारी रखा। प्रमुखतम और विशालतम राजपूत राज्यों मे से इन दोनो का सामती अलगाव मुगलो के खिलाफ उनके सयुक्त सघर्ष मे बाधक था। राजपूतो के विरुद्ध सघर्ष ने भी किसी हद तक मुगलो को कमजोर किया – राजस्थान मे फौजो को रखने की जरूरत ने उन सेनाओं को उलझाये रखा, जिन्हे अन्यथा मराठो के विरुद्ध कार्रवाइयो मे इस्तेमाल किया जा सकता था।

बीजापुर और गोलकुडा का जीता जाना

उन विद्रोहो के दमन के लिए भारी साधन अपेक्षित थे। औरगजेब ने कोष की पूर्ति करने के लक्ष्य से बीजापुर पर हमला किया। राजधानी को घेर लिया गया और आसपास के इलाके को उजाड दिया गया। अठारह महीने राजधानी घेरे को झेलती रही, लेकिन अत मे अकाल और महामारियो ने १६८६ मे रक्षको के मनोबल को तोड दिया। दुर्ग के पतन के बाद मुगल सैनिको ने सारे शहर को लूटा और उसकी जलपूर्ति प्रणाली सहित उसका विनाश किया। वैभवशाली राजधानी के खडहर ही बच रहे, जिन्हें जगल ने लील लिया। अब गोलकुडा की बारी आयी। मुगल गोलकुडा के सेनानायको को रिश्वतो से खरीदकर ही राजधानी को कब्जे मे ले पाये (१६८६), जिसके बाद गोलकुडा मुगल साम्राज्य मे मिला लिया गया। इन विजयो के परिणामस्वरूप औरगजेब को अपार मात्रा मे लूट का माल मिला।

इस काल मे मुगल साम्राज्य अपने अधिकतम विस्तार पर पहुच गया। धुर दक्षिण मे पेन्नोर और तुगभद्रा नदियो से लेकर उत्तर मे कश्मीर और

की कारवाइया नदी मे जाती नाव की लीक की तरह थी – नाव के गुज़र जाने के साथ पानी फिर एकाकार हो जाता था।

१७०७ मे जब मुगल सेनाए एक और अभियान के बाद बुरहानपुर (जहा औरगजेब १६८१ में अपनी राजधानी स्थानातरित करके ले गया था) लौट रही थी मराठा सेनाओ ने मुगल सेना को घेर लिया। नब्बे साल का हो जाने के बावजूद औरगजेब खुद ही इस अभियान का सचालन कर रहा था और इसी वक्त वह बीमार पड गया। उसके परिचर उसे अहमदनगर पहुचा ही पाये थे कि उसकी मृत्यु हो गयी। औरगजेब के अपने बेटो को अतिम पत्र कडुवेपन से भरे हुए है – 'जिदगी, जो इतनी बेशकीमत है बेकार ही चली गयी है।' दौलताबाद के निकट, जहा उसके अवशेषो को बाद मे ले जाया गया था, उसकी कब्र पर कोई शानदार मकबरा नही है – उस पर सगमर्मर की एक सादी सी पट्टी ही लगी हुई है, जिस पर एक लेख खुदा हुआ है।

औरगजेब के उत्तराधिकारियो – बहादुरशाह (१७०७–१७१२), मुहम्मद शाह (१७१६–१७४८) तथा अहमदशाह (१७४८–१७५४) – के राज्यकाल मे मुगल बादशाह कठपुतलो से अधिक कुछ नही रह गये थे, जो विभिन्न प्रतिद्वद्वी सामती गुटो के हाथो मे शक्तिहीन खिलौने मात्र थे। साम्राज्य मे नित नय नये प्रदेश अलग होकर स्वतत्र राज्य बनते जा रहे थे यद्यपि मुगल सर्वोपरिता के मिथक को अब भी किसी हद तक माना जाता था।

सोलहवी-सत्रहवी सदियो मे भारतीय सस्कृति

सामान्य अभिलाक्षणिकताए

अकबर के राज्यकाल मे भारतीय सस्कृति का मुख्य अभिलक्षण दोनो मुख्य सस्कृतियो – हिदू तथा मुस्लिम – के तत्वो का समन्वय था। फतहपुर सीकरी की इमारतो मे हिदू तत्व स्पष्टत लक्षित होते है – सपाट छतें, फूलमालाओ के अतर्ग्रथन के रूप मे हिदू अलकरण आदि कुछ कार्निस पशुओ की आकृतियो से अलकृत है और महलो के एक कमरे मे एक उभरा चित्र भी था जिस पर पशु-पक्षी अकित थे जिसे बाद मे औरगजेब के हुक्म से कुरआन के प्राणियो को चित्रित न करने के निर्देश की पूर्ति करने के वास्ते हटा दिया गया।

साहित्य

इस ज़माने का साहित्य सिर्फ राजदरबार तक ही सीमित नहीं था। साहित्य की रचना अनेक भाषाओं और विविध विधाओं में हुई। इस काल के साहित्य का सबसे प्रभावशाली रूप सम्भवतः भक्ति काव्य था। भक्तिमार्गी कवि अपनी-अपनी भाषाओं में और अपने लोकगीतों की धुनों पर रचे अपने भजन गाया करते थे जिनमें से बहुत से लोकगीतों के रूप में बादवाली पीढ़ियों को प्राप्त हुए हैं। भक्तिमार्गी लोगों ने जाति के बंधनों का विरोध करने को कहते थे, ईश्वर के सामने सभी की बराबरी की घोषणा करते थे और धनवानों, ज़मींदारों तथा धर्माचार्यों की शक्ति की खिल्ली उड़ाते थे। लेकिन तत्त्वतः इन मानवतावादी विचारों को आम तौर पर धार्मिक आवरण में ही प्रस्तुत किया जाता था। भक्तिमार्गी कवियों में सबसे प्रमुख ये थे—तुलसीदास (१५३२–१६२३) जिनके रामचरितमानस ने लोगों में अत्यंत लोकप्रियता प्राप्त की, सूरसागर आदि के रचयिता सूरदास, अपने भजनों के लिए प्रसिद्ध मीराबाई, महाराष्ट्र के एकनाथ, असम के शंकरदेव और पंजाब के

सभी मिश्र गुरु। इस जमाने की एक सुख्यात कृति बगाली कवि मुकुन्दराम चक्रवर्ती द्वारा रचित 'चडीमगल' है, जिसमे बगाल के तत्कालीन जीवन का बडा यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है और जिसम लोकवार्ता और कल्पना के तत्वो का अतर्ग्रथन है। सत्रहवी सदी के मराठी और पजाबी (सिख) काव्य म भक्तिमार्गी विचारो का प्रतिपादन किया गया है और वे सक्रिय सघर्ष के आह्वानो के साथ अभिन्न रूप से जुडे हुए हैं।

भारत मे दरबारी काव्य की रचना राजभाषा मे की जाती थी न कि आम लोगो की भाषा मे। मुगल साम्राज्य मे राजभाषा फारसी था। यद्यपि इस काव्य मे भी पारपरिक भारतीय विषयो का ही उपयोग किया जाता था और उसमे भारतीय प्रकृति, जीवन प्रणाली आदि के वर्णनो का भी समावेश होने लगा था, फिर भी उसम प्रयुक्त सभी रूप और बिंब बहुधा फारसी-ताजिक मूल के ही हुआ करते थे। अपने दरबारियो के लिए इस परायी भाषा मे रचना करनेवाले कुछ शायरो ने फिर भी वस्तुत कलात्मक कृतियो का सृजन किया है। फारसी मे लिखनेवाले सबसे लोकप्रिय भारतीय शायरो मे फैजी का (विशेषकर जहा तक उसकी गीतात्मक कृतियो का सबध है) और बेदिल (१६६४–१७२१) का विशेष स्थान है। यद्यपि बेदिल ने सूफी रूपको को ही अपना मुख्य माध्यम बनाया फिर भी उसकी शायरी गहन भावात्मकता और विषाद से ओतप्रोत है। उसने लोगो का दमन करनेवाले स्वेच्छाचारियो की निदा की है। जब फारसी राजभाषा नही रही तो बेदिल को स्वय अपने देश मे लगभग भुला दिया गया लेकिन उसकी शायरी को मध्य एशिया मे दूसरा घर मिल गया। यही हश्र उर्दू मे लिखनेवाले दकनी शायर गव्वासी (सोलहवी सदी) का भी हुआ – वह उत्तरी भारत म सुनाते है लेकिन आज दकन के रहनेवाले उसकी कृतिया का नही पढते।

इतिहास

भारतीय इतिहासलेखक अपनी कृतियो के लेखन म बडी मात्रा म स्रोत सामग्रियो का उपयोग किया करते थे और अपने वर्णनो म अक्सर वास्तविक दस्तावजो या उनके साराश का समावेश किया करते थे। बाबर की आत्मकथा 'बाबरनामा' अबुल फजल का इतिवृत्त 'अकबरनामा' और बदायूनी द्वारा लिखित 'मुतखबुत तवारीख' सोलहवी सदी के बारे मे मूल्यवान स्रोतग्रथ हैं।

इनके बाद सत्रहवी सदी मे लिखित बगाल के मुगल सिपहसालार मिरजा नत्थन के सस्मरण 'बहारिस्तान ए गैबी' अब्दुल हमीद लाहौरी के इतिवृत्त 'पादशाहनामा' और मुहम्मद सलीह कबू के 'अमल ए सलीह' का उल्लेख किया जा सकता है। औरगजेब के राज्यकाल मे खफी खा का लिखा 'मुतखबुन लुबाब' भी हमे प्राप्य है।

वास्तुकला

कला की किसी भी अन्य विधा की अपेक्षा वास्तुकला धनी सरक्षको पर अधिक निर्भर करती थी। मुगल साम्राज्य की शक्ति के बढते जाने के साथ-साथ अधिकाधिक सख्या मे शानदार इमारते बनती चली गयी जिनमे स्थानीय भारतीय परपरा के साथ साथ मुस्लिम तत्व भी पाये जाते है। फतहपुर सीकरी का अपने आसपास के भूदृश्य के साथ पूरा मेल बैठता था उसकी इमारते सादी और व्यावहारिक थी। शाहजहा का राज्यकाल वास्तुकला मे भव्यता के चरम का द्योतक था। अकबर के समय मे भी फतहपुर-सीकरी मे शेख सलीम चिश्ती की कब्र पर सफेद सगमर्मर का मकबरा बनाया गया था। लेकिन शाहजहा के जमाने मे आकर तो बढिया सफेद सगमर्मर जिसमे अल्पमोल और कभी कभी तो मूल्यवान रत्नो की जडाई भी होती थी ही वास्तुकला मे प्रयुक्त मुख्य सजावटी सामग्री बन गया खासकर दिल्ली और आगरा मे। औरगजेब के राज्यकाल मे भी आरभ मे मूल्यवान सामग्रियो से इमारते बनायी गयी थी, मिसाल के लिए दिल्ली मे मोती मसजिद लेकिन बाद मे साधनो के अभाव ने बादशाह को अधिक सादी इमारते बनाने के लिए मजबूर कर दिया। उदाहरण के लिए औरगाबाद मे औरगजेब की चहेती बेगम रबिया दौरानी का मकबरा – बीबी का मकबरा – चाहे ताजमहल के नमूने पर ही बनाया गया है पर उसमे मूल कृति जैसी भव्यता लक्षित नही होती। उसकी मुख्य इमारत के सिर्फ सामनेवाले भाग पर सगमर्मर है और वह भी आदमी की ऊचाई जितना ही। शेष इमारत बलुआ पत्थर की और मीनारे ईट की बनी हुई है, जिन पर सीपियो की भस्म मिले चूने का मसाला लगा हुआ है।

दकन मे, जहा वास्तुकला की मुस्लिम शैली ईरान मध्य एशिया और आगरा तथा दिल्ली से आयी थी विन्यास के सौष्ठव अलकरण की सूक्ष्मता और आकार-प्रकार की समस्वरता का प्राधान्य है। इसके विपरीत बगाल की पारपरिक वास्तु शैली इतनी अभिव्यजनापूर्ण नही है – वहा उपासना भवन

सभी मिल गए। इस जमाने की एक सुप्रसिद्ध कृति बंगाली कवि मुकुंदराम चक्रवर्ती द्वारा रचित 'चंडीमंगल' है जिसमें बंगाल के तत्कालीन जीवन का बड़ा यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है और जिसमें लोकवार्ता और कल्पना के तत्वों का अंतर्ग्रथन है। सत्रहवीं सदी में मराठी और पंजाबी (सिख) काव्य में भक्तिमार्गी विचारों का प्रतिपादन किया गया है और वे सामाजिक संघर्ष के आह्वानों के साथ अभिन्न रूप से जुड़ गए हैं।

भारत में दरबारी काव्य की रचना राजभाषा में की जाती थी न कि आम लोगों की भाषा में। मुगल साम्राज्य में राजभाषा फारसी थी। यद्यपि इस काव्य में भी पारंपरिक भारतीय विषयों का ही उपयोग किया जाता था और उसमें भारतीय प्रकृति, जीवन प्रणाली आदि के वर्णनों का भी समावेश होने लगा था, फिर भी उसमें प्रयुक्त सभी रूप और बिंब बहुधा फारसी-ताजिक मूल के ही हुआ करते थे। अपने दरबारियों के लिए इस परायी भाषा में रचना करनेवाले कुछ शायरों ने फिर भी वस्तुतः कलात्मक कृतियों का सृजन किया है। फारसी में लिखनेवाले सबसे लोकप्रिय भारतीय शायरों में फैजी का (विशेषकर जहां तक उसकी गीतात्मक कृतियों का संबंध है) और बेदिल (१६६४–१७२१) का विशेष स्थान है। यद्यपि बेदिल ने सूफी रूपकों को ही अपना मुख्य माध्यम बनाया, फिर भी उसकी शायरी गहन भावात्मकता और विषाद से ओतप्रोत है। उसने लोगों का दमन करनेवाले स्वेच्छाचारियों की निंदा की है। जब फारसी राजभाषा नहीं रही तो बेदिल को स्वयं अपने देश में लगभग भुला दिया गया, लेकिन उसकी शायरी को मध्य एशिया में दूसरा घर मिल गया। यही हश्र उर्दू में लिखनेवाले दकनी शायर गव्वासी (सोलहवीं सदी) का भी हुआ – वह उत्तरी भारत में सुनाते हैं लेकिन आज दकन के रहनेवाले उसकी कृतियां को नहीं पढ़ते।

इतिहास

भारतीय इतिहासलेखक अपनी कृतियों के लेखन में बड़ी मात्रा में स्रोत सामग्रियों का उपयोग किया करते थे और अपने वर्णनों में अक्सर वास्तविक दस्तावेजों या उनके सारांश का समावेश किया करते थे। बाबर की आत्मकथा 'बाबरनामा', अबुल फजल का इतिवृत्त 'अकबरनामा' और बदायूनी द्वारा लिखित 'मुंतखबुत तवारीख' सोलहवीं सदी के बारे में मूल्यवान स्रोतग्रंथ हैं।

इनके बाद सत्रहवी सदी म लिखित बगाल के मुगल सिपहसालार मिरजा नत्थन के सस्मरण 'बहारिस्तान ए गैबी' अब्दुल हमीद लाहौरी के इतिवृत्त 'पात्शाहनामा' और मुहम्मद सलीह कबू के अमल ए सलीह का उल्लेख किया जा सकता है। औरगजब के राज्यकाल म खफी खा का लिखा मुतखबुत लुबाब' भी हम प्राप्य है।

वास्तुकला

कला की किसी भी अन्य विधा की अपेक्षा वास्तुकला धनी सरक्षको पर अधिक निर्भर करती थी। मुगल साम्राज्य की शक्ति क बढत जान के साथ साथ अधिकाधिक सख्या मे शानदार इमारत बनती चली गयी जिनम स्थानीय भारतीय परपरा के साथ साथ मुस्लिम तत्व भी पाये जाते है। फतहपुर सीकरी का अपने आसपास के भूदृश्य के साथ पूरा मेल बैठता था उसकी इमारते सादी और व्यावहारिक थी। शाहजहा का राज्यकाल वास्तुकला मे भव्यता के चरम का द्योतक था। अकबर के समय मे भी फतहपुर सीकरी म शैख सलीम चिश्ती की कब्र पर सफेद सगमर्मर का मकबरा बनाया गया था। लेकिन शाहजहा क जमाने मे आकर तो बढिया सफेद सगमर्मर जिसम अल्पमोल और कभी कभी तो मूल्यवान रत्नो की जडाई भी होती थी ही वास्तुकला म प्रयुक्त मुख्य सजावटी सामग्री बन गया खासकर दिल्ली और आगरा मे। औरगजेब के राज्यकाल म भी आरभ म मूल्यवान सामग्रियो मे इमारते बनायी गयी थी मिसाल के लिए दिल्ली म मोती ममजिद लेकिन बाद मे साधनो क अभाव न बादशाह को अधिक सादी इमारते बनाने क लिए मजबूर कर दिया। उदाहरण के लिए औरगाबाद म औरगजेब की चहेती बेगम रबिया दौरानी का मकबरा – बीबी का मकबरा – चाहे ताजमहल के नमूने पर ही बनाया गया है, पर उसमे मूल कृति जैसी भव्यता लक्षित नही होती। उसकी मुख्य इमारत के सिर्फ सामनेवाले भाग पर सगमर्मर है और वह भी आदमी की ऊचाई जितना ही। शेष इमारत बलुआ पत्थर की और मीनारे ईट की बनी हुई है, जिन पर सीपियो की भस्म मिले चूने का मसाला लगा हुआ है।

दकन मे, जहा वास्तुकला की मुस्लिम शैली ईरान, मध्य एशिया और आगरा तथा दिल्ली से आयी थी विन्यास के सौष्ठव अलकरण की सूक्ष्मता और आकार प्रकार की समस्वरता का प्राधान्य है। इसक विपरीत बगाल की पारपरिक वास्तु शैली इतनी अभिव्यजनापूर्ण नही है – वहा उपासना भवन

और रिहाइशी मकान दोना ही ईंट और मसाले क बन है, दावारा म खिडकिया बहुत कम ह ओर जा ह भी, व बेहद सकरी है।

गरीबो के (और खासकर बगाल और तमिलनाडु म) मकान आम तौर पर बास और सरकडे क होत थ, जिनकी ढलवा छत फश के बीच म ग खभे पर टिकी होती थी। अठारहवी सदी म मुगल प्रदेशो म वास्तु म म ह्रास आने लगा – घटिया सामग्री का उपयोग होने लगा, अलकरण कम है और समग्र डिजाइन मे पारपरिक विषयो को जरा भी विकसित किये बिना दुहराया भर गया ह। लकिन ग्वालियर अलवर और जयपुर जैसे गैर मुगल नगरो पर यह बात लागू नही होती, जो अत्यत मौलिक नमूना पर बनाये ह और पहाडो तथा झीलो (जिनम कई कृत्रिम भी है) की पृष्ठभूमि म सुरम्य स्थलो म अवस्थित है।

चित्रकला

इस काल मे चित्रकला की सबसे मुख्य विधा लघुचित्रण की थी। राजस्थानी लघुचित्र शैली (कलम) न राजस्थान के भित्तिचित्रो के प्रभाव स सत्रहवी सदी मे जड पकड ली थी और यह जैन लघुचित्रण परपरा के सातत्य का भी परिचायक थी। मुगल राजदरबार मे मुगल कलम विकसित हुई जो फारसी परपराओ क सातत्य म ही थी। वास्तव मे इस विधा का उदय ही फारस म हुआ था, यद्यपि मुगल लघुचित्र फारसी चित्रो के मुकाबले अधिक यथार्थपरक ओर कम शैलीकृत थे। राजपूत तथा मुगल कलमो म अन्यान्यप्रभाव भी लक्षित होत ह। मुगल लघुचित्र एकविमीय है, उनमे आयाम को महज रेखाओ स प्रकट किया जाता है और परिप्रेक्ष्य क तीन तल है – निम्न मध्य तथा उच्चतर। मध्य तल मे आकृतिया अन्य दोनो तलो की अपेक्षा बडी होती है। चित्रकार इमारतो को मानो ऊपर से देख रहा होता है। सत्रहवी सदी म और विशेषकर शाहजहा के जमाने मे लघुचित्रो मे कभी कभार यरोपीय विषय भी प्रवेश करन लगे (उदाहरण क लिए गोद म शिशु योशू का लिए माता मरियम) और कुछ यूरोपीय प्रविधिया भी उपयोग मे आने लगी – कुछ चित्रो म आयाम को क्यारोस्कूरो (छाया प्रकाश योजना) की सहायता से प्रकट किया जाने लगता है। चित्रो म प्राकृतिक और अधिकाशत खनिज रगो का उपयोग किया जाता था जो आज तक भी फीके नहा पडे है। दकन म जो शैली विकसित हुई वह आगरा कलम से बहुत समान है लेकिन

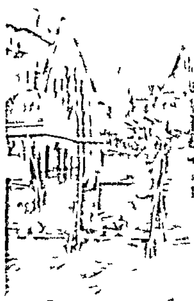
मुगल दरबारी शली क विपरीत उमम तफमील का आधिक्य ह। अठारहवी सदी म पारपरिक शैलियो का अपकप शुरू हो गया लेकिन इसी समय हिमालय क छोट छोट राजपूत राज्या म पहाडी कलमा का विकास हुआ। मुगलकालीन भारत के चित्रकार कवल भारतीय ही नही बल्कि फारस और हरात स आकर यहा बस जानवाले चित्रकार भी थ।

मनोरजन

मध्यकालीन भारत म ऐमे अनक उत्सव थे जिनम सगीत और नत्य का समावश था और ये अधिकाशत प्राचीन पौराणिक कथाओ विशेषकर विष्णु की उपासना स सबधित कथाओ पर आधारित थ। उत्तर भारत की रामलीला तमिलनाडु का तेरावुत्तू कर्णाटक का यक्षगान और आध्र का विधिनाटकम ऐस ही उत्सव थे। इन उत्सवो म बहुधा सामयिक विषयो पर स्वागो का भी प्रवश हो जाता था जैसे पहले मुगल और बाद म ब्रिटिश उत्पीडको क विरुद्ध लक्षित स्वाग। कभी कभी ये उत्सव सामतो क महलो म आयाजित किये जाते थ लकिन तब उनकी सहजता जाती रहती थी और व आडबरपूर्ण तथा दिखावटी बन जात थ।

आधुनिक भारत

को॰ अ॰ अंतोनोवा
ग्रि॰ ग्रि॰ कोतोव्स्की



भारत पर अंग्रेजो का आधिपत्य
(अठारहवीं शताब्दी)

मुगल साम्राज्य का पतन

मुगल साम्राज्य का पतन अठारहवी शताब्दी मे हुआ और उसने अपना प्रभुत्व खो दिया। भारतीय राज्यो और यूरोप की व्यापारिक कपनियो के बीच, जो अपने-अपने देशो के सरक्षण मे भारत मे काम कर रही थी, शक्ति सतुलन बराबर यूरोपीयो के पक्ष मे होता जा रहा था। सोलहवी शताब्दी मे भारत मे यूरोपीयो के अधिकार मे महज कुछ किले और मालगोदाम थे, सत्रहवी शताब्दी म उन्होने व्यापारिक केन्द्रो और बस्तियो की स्थापना करना शुरू कर लिया और अठारहवी शताब्दी मे भारतीय रियासतो को दबाना शुरु कर दिया। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि अठारहवी शताब्दी मे यूरोपीयो का सामना मुगल साम्राज्य से नही जिससे उन्होन जोर-जबरदस्ती और रिश्वतो-भेटो के जरिये व्यापारिक रिआयते प्राप्त कर ली थी, बल्कि अलग-अलग राज्यो से हो रहा था। ये राज्य आपस मे ही लडते-झगडते रहते थे और अपने भारतीय शत्रुओ के साथ कलह मे यूरोपीयो की सहायता ले रहे थे।

मुगल साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया मे, जो औरगजेब के राज्यकाल मे ही प्रारभ हो गयी थी, उसकी मृत्यु के बाद कही ज्यादा तेजी आ गयी। औरगजेब के तीनो बेटो मे उत्तराधिकार का जो युद्ध शुरू हुआ उसम उसके दूसरे लडके मुअज्जम की विजय हुई। वह १७०७ मे दिल्ली म औरगजेब के उत्तराधिकारी के रूप मे बहादुरशाह प्रथम (१७०७–१७१२) क नाम स गद्दी पर बैठा। इस बूढे और निर्णय लेने मे अक्षम बादशाह ने सिखो के खिलाफ ही फौजी कार्रवाइया की, जिनका नेतृत्व गुरु गोविदसिंह की हत्या के बाद

बदा बैरागी कर रहा था। इतिहासकारो के अनुसार दृढ़प्रतिज्ञ बन्दा बैरागी ने नीची जातियो के अनेक असतुष्ट लोगो" को अपने ध्येय के प्रति आकर्षित किया और सरहिंद पर कब्जा कर लिया। तदुपरात सत्तर हजार का फौज लेकर उसने सहारनपुर जिले पर अधिकार जमा लिया और लाहौर पर घेरा डाल दिया। लेकिन वह लाहौर पर कब्जा करने मे असफल रहा। बहादुरशाह ने स्वय अपने सेनापतित्व मे बदा बैरागी के खिलाफ युद्ध का सचालन किया और १७११ मे मुगल फौजो ने सिखो के मुख्य गढ सरहिंद पर कब्जा कर लिया तथा उन्हे हिमालय की तराई मे खदेड दिया।

बहादुरशाह की मृत्यु के बाद उसके बेटो मे गद्दी के लिए नया युद्ध शुरू हो गया। अब की बार गद्दी का सबसे कम प्रतिभाशाली दावेदार जहादारशाह (१७१२-१७१३) अपने एक सुयोग्य वजीर की सहायता से विजयी हुआ। लेकिन जहादारशाह कुछ महीने ही राज्य कर सका। उसका भतीजा फर्रुखसियर (१७१३-१७१९) उसे पदच्युत कर खुद दिल्ली के राजसिहासन पर बैठ गया और बाद मे कारागृह मे उसकी हत्या कर दी गयी। एक प्रकार से इस समय शासन की बागडोर फर्रुखसियर के दो विश्वासपात्रो – बाढ के सैयद वश के जो अकबर के राज्यकाल से ही अपनी लडाकू परपराओ के लिए मशहूर था, दो भाइयो, हुसैन अली और अब्दुला खा – के हाथ मे थी।

इसी बीच बदा बैरागी ने पजाब मे एक बार और फौजी कार्रवाइया शुरू कर दी। लेकिन तोपो की कमी के कारण वह लाहौर पर कब्जा करने मे असफल रहा। फर्रुखसियर ने सिखो से लडने के लिए एक फौज भेजी और उन्हे गुरुदासपुर के किले मे घेर लिया गया। भूख से पीडित होकर किले के रक्षको ने हथियार डाल दिये। दुर्ग मे प्रवेश करके मुगल फौजो ने कत्लआम मचा दिया। बदा और उसके अनुयायियो को गिरफ्तार कर मुगल उन्हे दिल्ली ले गये जहा उन्हे घोर यातनाए देकर मार डाला गया।

अब फर्रुखसियर ने सैयद बधुओ से पिड छुडाने की कोशिश की, लेकिन उन्होने उसे पराजित कर दिया। इसके बाद बहादुरशाह के दो छोटे पोते थोडे-थोडे समय के लिए दिल्ली के राजसिहासन पर बैठे। अत मे उसके नाती पोते ने दरबारियो के एक गुट की मदद से सैयद बधुओ को हटा दिया और मुहम्मद शाह (१७१९-१७४८) के नाम से सिहासनासीन हुआ। लेकिन मुहम्मद शाह इतना विलासप्रिय था कि उसे किसी दूसरे काम के बारे मे सोचने तक की फुर्सत नही थी। उसके ठाठदार दरबार और फौजो के रख-रखाव पर अधाधुध पैसा खर्च किया जाता था। किसानो से जो कुछ भी सभव

हो सकता था, जबरदस्ती वसूल कर लिया जाता था। वस्तुत कर सग्रह के लिए कोई नियम निर्धारित नही थे। अनक किसानो न करो के असहनीय बोझ से बचने के लिए अपनी काश्तो को छोड दिया और वे या तो फौज मे भर्ती हो गये या अपनी टुकडिया बना करके इर्दगिर्द के देहातो मे लूट पाट करने और दिल्ली तक भी धावे मारने की हिम्मत करन लगे। अथव्यवस्था मस्ताहाल हो गयी थी। एक के बाद दूसरे सूबे मुगल साम्राज्य क हाथ से निकलत जा रह थ।

१७१३ मे बगाल मे औरगजेब के सूबेदार मुर्शिद कुली खा न मुगल बादशाह द्वारा भेजे गये अपने अधिकृत उत्तराधिकारी को बगाल स खदेड दिया। उसने दिल्ली को कर देना भी बद कर दिया और मुर्शिदाबाद के नाम से एक नयी राजधानी की स्थापना की। १७१४ और १७१८ के बीच मुर्शिद कुली खा न बिहार और ओडिसा को भी बगाल म मिला लिया।

बगाल का नया राज्य चाहे कथनी मे मुगल बादशाह के प्रभुत्व को स्वीकार करता था लेकिन करनी म वह पूर्णतया स्वतत्र था। मिसाल के लिए उसने अग्रेज़ व्यापारियो को वे रिआयत देन म इन्कार कर दिया जो फर्रुखसियर ने १७१७ मे उन्हे प्रदान की थी। दक्षिण का मुगल सूबेदार आसफजाह भी मुगल साम्राज्य से अलग हो गया और उसने हैदराबाद की स्वाधीन रियासत तथा इसी नाम से गोलकुडा के दुर्ग के निकट उसकी राजधानी कायम की। आसफ-जाह तथा हैदराबाद की गद्दी पर बैठनेवाले उसके उत्तराधिकारियो की जिन्होंने निजाम का खिताब धारण कर लिया था दक्षिण भारत पर प्रभुत्व कायम करने क लिए मराठो के साथ लडाइया चली। उधर १७३९ मे अवध भी मुगलो के हाथ से निकल गया, जो लखनऊ मे अपनी राजधानी के साथ स्वतत्र हो गया। अवध ने रुहेला अफगान कबीलो की, जो दिल्ली प्रदेश के उत्तर-पूर्व मे बस गये थे, कीमत पर अपने राज्य क्षेत्र का विस्तार करने की कोशिश की। अब सिर्फ आगरा-दिल्ली क्षेत्र ही मुगलो के अधिकार मे रह गया था।

सपूर्ण भारत पर सत्ता के प्रमुख दावेदार मराठे थे। जब कि उत्तरी भारत म मुगल राजसिहासन के विभिन्न दावेदारो के बीच सत्ता-सघर्ष चल रहा था, मराठो ने न केवल पश्चिमी भारत मे अपने पैर मजबूती से जमा लिये, बल्कि अपनी फौजो को मध्य भारत मे भी ले आये। चूकि उस क्षेत्र मे कोई ऐसी सगठित फौज नही थी, जो उनका सामना कर सकती इसलिए मराठे बकाया चौथ और सरदेशमुखी वसूल करने के बहाने नगरो और छोटी बस्तियो पर

हमले करने लगे। स्वय महाराष्ट्र मे शभूजी (सभाजी) के पुत्र शाहू, जिन्हे दिल्ली म कैद से मुक्त कर दिया गया था, और राजाराम की विधवा पत्नी ताराबाई के बीच राजसिंहासन के लिए सघर्ष चल रहा था। ताराबाई शाहू की अनुपस्थिति मे एक प्रतिशासक के रूप मे राजकार्य चला रही थी।

इस बीच म पेशवा (मुख्य प्रधान) बालाजी विश्वनाथ (१७१३–१७२०) ने एक प्रभावशाली स्थान प्राप्त कर लिया। उसने वस्तुत अपने हाथ म सारी सत्ता सकेन्द्रित कर ली और इस तरह शासक पेशवा वश की स्थापना की। शाहू की मृत्यु के बाद पेशवा का पद ही मराठा राज्य मे सर्वोच्च माना जाने लगा। उन्होने पुण (पूना) को अपनी राजधानी बनाया। शिवाजी के वशज नाम के लिए अब भी राजा कहलाते थे लेकिन उन्हे अपनी राजधानी से बाहर जाने का भी अधिकार नही था। सैयद बधुओ को समर्थन देने के प्रतिदान के रूप मे बालाजी को मुगल साम्राज्य के छ दक्षिणी प्रातो से चौथ और सरदेशमुखी एकत्र करने का फरमान दे दिया गया था। तात्पर्य यह कि मराठो की लूट मार को वैधता प्रदान कर दी गयी। वे फौजी टुकडियो के सरक्षण मे अपने वसूलदार भेजते थे ताकि वे जो कुछ भी हाथ लगे, वसूल कर सके और धनी लोगो को यातना देकर उनके गुप्त खजानो का पता लगा सके। इन प्रातो के निवासी मराठो को आते देखते ही भय से तितर बितर हो जाते थे।

अठारहवी शताब्दी के तीसरे दशक तक मराठो ने मध्य भारत के विस्तृत भूक्षेत्रो पर अपना नियत्रण कायम कर लिया। परिणामस्वरूप चार विशाल राज्यो के मराठा सघ की स्थापना हुई, जो क्रमश नागपुर के भोसला राजवश, ग्वालियर के शिदे (सिंधिया) राजवश, इदौर के होल्कर राजवश और बडौदा के गायकवाड राजवश के शासनाधीन थे। ये सभी राज्य कुछ हद तक पेशवाओ के मुख्यालय पूना के केन्द्रीय प्रशासन के अधीन थे। मराठा राज्यो का यह सघ शीघ्र ही विभिन्न जातियो और कबीलो के एक जमावडे म, जिसमे मराठा स्वय शासकीय अल्पसख्यक थे रूपातरित हो गया। मराठा सेना आदर्श और राष्ट्रीय भावना से रहित एक पचमेल जमघट बन गयी। मराठा राज्यो मे किसानो की स्थिति अत्यत कठिन थी और उन पर अनेक प्रकार के नये कर लाद दिये गये थे। व्यावहारिक रूप मे मराठा राज्य सघ एक सामती साम्राज्य मे रूपातरित हो गया जो अपने चरमोत्कर्ष-काल म मुगल साम्राज्य से बस इसी बात मे भिन्न था कि वह उसकी अपेक्षा कम केन्द्रीयकृत था।

बालाजी के पुत्र बाजीराव प्रथम (१७२०–१७४०) ने मराठा का उत्तर

की ओर बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। उसका विश्वास था कि यदि मराठे दिल्ली पर कब्जा कर लेते हैं तो वे संपूर्ण भारत पर अपना नियंत्रण कायम करने में समर्थ हो जायेंगे। उसका कहना था : यदि आप मुरझाये वृक्ष के तने पर प्रहार करें तो टहनियां अपने आप झड़ जायेंगी। लेकिन जिस समय मराठे दक्षिण से दिल्ली की तरफ बढ़ रहे थे उसी समय फारस के शासक नादिरशाह की फौजों ने उत्तर से भारत पर आक्रमण किया। मुगल बादशाह मुहम्मद शाह की पस्तहिम्मत फौज उसके आक्रमण को नहीं झेल सकती थी। यद्यपि नादिरशाह की फौजों को वस्तुतः दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्रों तक आने में किसी विरोध का सामना नहीं करना पड़ा, फिर भी मुगलों और फारसियों के बीच असली लड़ाई पानीपत के निकट करनाल में हुई। चूंकि इस लड़ाई का कोई निर्णायक परिणाम नहीं निकला, इसलिए नादिरशाह ने अपनी फौजों को स्वदेश लौटने का आदेश दे दिया। ठीक इसी समय मुहम्मद शाह के दूत नादिरशाह के पास सुलह का प्रस्ताव लेकर आये। तदुपरांत नादिरशाह ने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। वह दिल्ली में दो महीने रहा, जहां उसने भारी कत्लेआम करवाया। मुगल खजानों और लूट के माल को लेकर स्वदेश लौटने के पूर्व उसने मुगल बादशाह से एक फरमान भी प्राप्त किया। इस फरमान ने उसे सिंधु नदी के उत्तर में मुगल-अधिकृत भूक्षेत्रों (वर्तमान अफगानिस्तान के भूक्षेत्र) को अपने नियंत्रण में लेने का अधिकार प्रदान कर दिया। नादिरशाह के लौटने के बाद दिल्ली, जो नष्ट-भ्रष्ट हो गयी थी, लुटेरों की दया पर आश्रित हो गयी। निवासियों के झुंड के झुंड नगर से भाग गये और अमीर उमरा ने अन्य नवाबों के, मुख्यतया लखनऊ (अवध की राजधानी) में, दरबारों में शरण ली।

अफगान दीर्घ काल तक फारसी शासन के अधीन नहीं रहे। १७४७ में नादिरशाह की हत्या के बाद उन्होंने अहमदशाह अब्दाली (दुर्रानी) के शासनाधीन एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर ली।

अहमदशाह नादिरशाह की फौज के साथ दिल्ली गया था। यह देखकर कि मुगल कितने कमजोर हैं, उसने संपूर्ण भारत को जीतने का निश्चय किया। उसने १७४८, १७५०, १७५२, १७५६-५७ और १७५८ में कुल पांच बार भारत पर हमले किये। उसे मुख्यतया मुगलों के नहीं, बल्कि सिखों के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। उन्होंने अफगानिस्तान से रसद लाने के मार्गों को रोककर उसे वापस लौटने के लिए विवश कर दिया।

इधर पेशवा बालाजी बाजीराव (१७४०–१७६१) के सेनापतित्व में

मराठे उत्तर की ओर बढ रहे थे। उनका अहमदशाह के सैन्य दलो से सामना हुआ। १७६१ मे भारत पर प्रभुत्व के इन दोनो दावेदारो म पानीपत के रणक्षेत्र म निर्णायक लडाई हुई। इस लडाई म मराठे बुरी तरह से पराजित हुए। लडाई के दौरान श्रेष्ठतम मराठा सेनापति मारे गये और स्वय पेशवा बालाजी बाजीराव भी इस पराजय के कुछ ही बाद शोकाभिभूत होकर मर गया। लेकिन अहमदशाह के लिए भी यह विजय कोई आसान नही थी। काफी नुक्सान उठाने के बाद उसे नयी शक्ति जुटाने के वास्ते अफगानिस्तान लौट जाने के लिए विवश होना पडा। स्वदेश मे वह उपद्रवो म फस गया और सामती कलहो के चलते उसकी मृत्यु के बाद भारत पर अफगान अभियानो का हमेशा के लिए अत हो गया।

अहमदशाह की फौजो के भारत से वापस लौटने के बाद तुरत सिखो ने अफगान रक्षक सेनाओ को पजाब से मार भगाना शुरू कर दिया और शीघ्र ही व वहा एक स्वतत्र राज्य कायम करने मे सफल हो गये। अब तक निस्संदिग्ध रूप म आगरा दिल्ली क्षेत्र उपमहाद्वीप म आर्थिक कार्यकलापो का केद्र बिलकुल नही रह गया था बल्कि इसका स्थान बगाल और दक्षिणी भारत ने ले लिया था। इन व्यापक लडाइयो के दौरान देश ने इतना खून बहाया था कि उसम यूरोपीय उपनिवेशवादियो के अभियानो का मुकाबला करने की बिलकुल शक्ति नही रह गयी थी।

इसके साथ ही दक्षिणी भारत मे हैदराबाद और मराठो के बीच मदुरा की स्वतत्र रियासत और हैदराबाद की अधीनस्थ अर्काट रियासत के बीच बराबर लडाइया चल रही थी। मैसूर राज्य ने भी, जो विजयनगर के ध्वसाव शेषो पर कायम किया गया था इस सघर्ष मे भाग लिया।

सत्रहवी सदी के अत मे और अठारहवी सदी के दौरान किसान भूस्वामियो की जो सोलहवी सदी से मीरासदार के नाम से जाने जाते थे, सख्या म तेजी से गिरावट आयी। इसी अवधि के दौरान ग्राम समुदायो म काश्तकार भी करदाता भूस्वामियो के अधिकार प्राप्त करने लगे थे। किसानो की विभिन्न श्रेणियो द्वारा प्राप्त भूअधिकारो को एक समान किया जा रहा था किसान कर-बधनो द्वारा अपनी काश्तो से बधे हुए थे, लेकिन उन्हे काश्तो को अपने उत्तराधिकारियो को हस्तारित करने का अधिकार था। रैयत के भूअधिकार उनके द्वारा राजस्व की भरपाई के अधीन थे। सामुदायिक सगठन, जो दस्तकारी और कृषि के समन्वय पर आधारित था, विलुप्त नही हुआ लेकिन अब राजस्व उन क्षेत्रो मे भी समग्रतया एक गाव से वसूल किया जाने लगा

जिनमे पहले यह प्रथा प्रचलित नही थी। सामुदायिक सगठन के इस समवीकरण तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे सामती प्रभुओ को प्राप्त निरकुश सत्ता के परिणामस्वरूप सत्रहवी और अठारहवी सदियो मे भूमि का पुनर्वितरण इस नियम के अनुसार हुआ कि जो जितना ही अधिक राजस्व देगा, उसे उतनी ही अधिक भूमि प्राप्त होगी। ज्यो-ज्यो कर वढत गये त्यो त्यो भूमि अक्सर किसानो के लिए भार बनती गयी और उन्होने "अतिरिक्त' भूमि से छुटकारा पाने तथा इस तरह साथ ही अतिरिक्त करो से मुक्त होन की कोशिश की। छोटे सामती प्रभुओ के रूप मे सामुदायिक मुखियो और पटवारियो का आविर्भाव अधिकाधिक व्यापक बनता गया। बाहर से आकर समुदायो मे मुखिया पद ले लेनेवाले इजारेदार, यानी राजस्व सग्रह के ठेकेदार भी इस हैसियत मे प्रकट हुए। माल अर्थव्यवस्था के विकास से सामती अर्थव्यवस्था कमजोर नही हुई बल्कि उल्टे इसने सामती प्रभुओ पर गाव की निर्भरता को वढा दिया और सामती शोषण को तेज किया तथा ग्राम सामुदायिक सगठन को सरक्षण प्रदान किया।

१७४८ मे हैदराबाद के निजाम आसफजाह की मृत्यु के वाद उसके पुत्र नासिरजग और दौहित्र मुजफ्फरजग के बीच उत्तराधिकार का युद्ध छिड गया। यूरोपीय व्यापारिक कपनिया जिन्होंने अपने बदरगाहो के इर्दगिर्द लघु भूक्षेत्रों पर नियत्रण कायम कर लिया था इस सघर्ष मे कूद पडी। फिर तो उस काल की दो सबसे शक्तिशाली यूरोपीय शक्तियो फ्रास और ब्रिटेन, के बीच जो युद्ध भडक उठा वह वस्तुत व्यापारिक युद्धो मे परिणत हो गया। य ही वे युद्ध थे जिनके परिणामस्वरूप भारत पर अग्रेजो का आधिपत्य कायम हुआ।

भारत स्थित यूरोपीय कपनिया

यूरोपीय व्यापारियो के लिए भारत के साथ व्यापार एक महत्वपूर्ण, कितु जटिल कार्य था। सामान्यतया व्यापारियो ने ऐसी कपनिया कायम की, जिन्हे उनकी सरकारो का समर्थन प्राप्त था। वस्तुत प्रतिद्वद्विता अलग-अलग व्यापारियो के बीच नही, बल्कि उनकी सरकारो के बीच थी। भारत पर पुर्तगाली अभियानो को उनकी शाही सरकार द्वारा आवश्यक साज-सामान और धन प्रदान किया गया। डच और ब्रिटिश व्यापारियो ने ऐसी कपनिया स्थापित की, जिन्हे उनकी सरकारो द्वारा अधिकार-पत्र प्रदान किये गये। उदाहरणार्थ ब्रिटिश ईस्ट इडिया कपनी को, जो सत्रहवी सदी क प्रारभ म

कायम की गयी ब्रिटिश मरकार द्वारा क्रमश अधिकाधिक अधिकार प्रदान किये गये। ब्रिटिश सरकार द्वारा पारित अनेक अधिकारपत्र ब्रिटेन म कपनी की स्थिति सुदृढ बनाने के प्रमुख सीमाचिन्हो के द्योतक थे १६५७ का आमवन अधिकारपत्र १६६१ का अधिकार-पत्र, जिसने ईस्ट इडिया कपनी का युद्ध की घोषणा करने तथा शाति सधि करने का अधिकार प्रदान किया, १६८६ का अधिकारपत्र जिसने कपनी को सिक्के ढालने, फौजी अदालत कायम करने और अपनी सेना तथा बेडा रखने का अधिकार प्रदान किया। १६९८ म निजी व्यापारियो के एक दल ने एक दूसरी ईस्ट इडिया कपनी कायम की और जब दोनो कपनिया अतत १७०२ मे सविलयित हो गयी, तो इस कार्रवाई को १७०८ मे ससद के एक अधिनियम द्वारा सरकारी मान्यता प्रदान का गयी। उस दिन से भारत मे कपनी की गतिविधिया तेजी से बढने लगी।

जहागीर ने अग्रेजो और पुर्तगालियो को एक दूसरे क मुकाबले म बराबर पर रखने की आशा की थी और इस उद्देश्य से उसने ब्रिटिश व्यापारियो को मुगल साम्राज्य के भीतर स्वतत्र व्यापार करने का एक फरमान प्रदान किया। लेकिन तटवर्ती क्षेत्रो मे अग्रेजो के सुस्थापित हो जाने के बाद मुगल शासको ने अनेक बार उन्हे खदेडने क प्रयास किये। मिसाल के लिए १६८७ म औरगजेब ने अग्रेजो को बगाल से बाहर निकालने की कोशिश की। १६९० म एक बडी मुगल सेना ने बबई (पुर्तगाल द्वारा राजकुमारी कैथरीन की ब्रिटिश सम्राट चार्ल्स द्वितीय से शादी के अवसर पर दहेज मे दिया गया टापू) को घेर लिया, जो पश्चिमी तट पर ब्रिटिश अधिकृत प्रदेशो का मुख्य केन्द्र बन गया था। लेकिन मुगल शासको की यह कार्रवाई असफल रही।

अठारहवी सदी मे ब्रिटिश व्यापारिक कपनी भारत मे सबसे धनी कपनी थी। इसका मुख्य गढ कारमडल तट पर मद्रास था, जिसे अग्रेजो ने १६३९–१६४० मे स्थानीय शासक से प्राप्त किया था। अठारहवी सदी के मध्य मे अग्रेजो ने वहा फोर्ट सेंट जार्ज और एक बदरगाह बनाया जो आगे चलकर एक धनी आबादीवाले समृद्ध बदरगाह नगर के रूप म विकसित हो गया।

बगाल म कलकत्ता धीरे-धीरे ब्रिटिश कपनी की गतिविधिया के मुख्याधार के रूप म उभरा। कलकत्ता की स्थापना १६९० म गगा की पश्चिमी सहायक नदी हुगली के तट पर की गयी थी और सत्रहवी सदी म ही वहा कपनी के मालगोदामो की रक्षा करने के लिए एक दुर्ग का निर्माण किया गया था। यह इगलैड क तत्कालीन सम्राट विलियम तृतीय के सम्मान मे फोर्ट विलियम

के नाम मे जात हुआ। बगाल म ईस्ट इडिया कपनी का प्रशासन फोर्ट विलियम से होता था। कपनी को कलकत्ता के इर्दगिर्द तीन गावो का जमीदार भी माना जाता था।

१७१७ मे फर्रुखसियर ने अग्रेजो का और ३८ गाव देने का फरमान प्रदान किया। कपनी के मालो पर से महसूल इस शर्त पर उठा लिया गया था कि अग्रेज इसके बदले म मुगलो के खजाने म तीन हजार रुपये सालाना खिराज जमा करगे। इसके अलावा यह भी निर्धारित किया गया कि व्यापारिक केन्द्र के प्रमुख द्वारा जारी किये गये दस्तक (विशेष अनुमति पत्र) के बल पर ब्रिटिश मालो को बिना महसूल लाने ले जाने की अनुमति होगी। तब से भारत से ब्रिटेन को किये जानेवाले निर्यात म बगाल के मालो का अश अधिकाधिक बढता गया। कपनी की आय एकदम १७१७ मे २,७८,६०० पौड से बढकर १७२६ म ३,६४,००० पौड हो गयी।

बगाल मे कलकत्ता ढाका कासिम बाजार और अन्य अनेक स्थानो मे ब्रिटिश ईस्ट इडिया कपनी के व्यापारिक केद्रो के इर्दगिर्द बुनकर बसने लग गये थे। अकेले कलकत्ता मे ही लगभग आठ हजार बुनकर जो नगर के बाहरी इलाके मे रहते थे कपनी के लिए काम करते थे। ईस्ट इडिया कपनी के देशी गुमाश्ते बुनकरो को कच्चे माल वितरित करते थे तथा वस्त्रो के लिए क्रयादेश देते थे जिनकी यूरोपीय बाजारो मे अच्छी बिक्री होती थी। अक्सर ये गुमाश्ते केवल यूरोपीय व्यापारिक कपनी के हितो का ही प्रतिनिधित्व नही करते थे, बल्कि बिचौलियो के रूप मे अपने नाम मे दस्तकारो के तैयार माल भी खरीदते थे।

ब्रिटिश व्यापार के विस्तार ने बगाल के नवाब को बुरी तरह चितित कर दिया। अब तक वह वस्तुत एक स्वतत्र शासक बन गया था और उसे इस बात का डर पैदा हो गया कि कही नगर तथा किलाबद व्यापारिक केद्र अग्रेजो के ऐसे मजबूत गढ न बन जाये जिनसे उन्हे खदेडना उसकी सरकार के लिए कठिन हो जाये। नवाब ने यह दावा करते हुए कि कपनी के कर्मचारियो द्वारा किया गया व्यापार स्वय कपनी के अपने व्यापार से भी अधिक है, कपनी पर देश के समूचे व्यापार पर इजारेदारी कायम करने का आरोप लगाया।

बगाल से ब्रिटिश कपनी मुख्यतया सूती और रेशमी वस्त्र कच्चे रेशम, शोरा, चीनी, अफीम, नील, घी, तेल और चावल का नियात करती थी। कपनी के पास विशाल धनराशि थी और वह आवश्यक मालो को थोक मे

खरीदने की कोशिश करती थी। उदाहरणार्थ चावल की खरीदारी निम्नलिखित ढंग से की जाती थी। कटाई शुरू होने के बहुत पहले कंपनी के कर्मचारी कई भारतीय महाजनों को, जो बिचौलियों का काम करते थे, सिफारिश पर भारतीय व्यापारियों को विभिन्न धनराशियां दे दिया करते थे। फिर ये व्यापारी खरीदारों को तथा उनके माध्यम से किसानों को अग्रिम धन दे देते थे। दूसरे शब्दों में चावल की फसल तैयार होने के पहले ही सस्ते भाव में खरीद ली जाती थी।

ब्रिटिश कंपनी के गुमाश्ते दस्तकारों के साथ लेन देन में भी यही करते थे और अग्रिम धनराशियों के माध्यम से उन्हें वस्तुतः गुलाम जैसा बना लिया था।

जब मराठों ने ओडिसा पर हमला किया, तो बंगाल के नवाब अलीवर्दी खां (१७४०–१७५६) ने उनके खिलाफ युद्ध में प्राप्त आर्थिक सहायता के बदले में कंपनी को अनेक विशेषाधिकार प्रदान किये। लेकिन उसे ब्रिटिश व्यापारियों के बढ़ते प्रभाव से चिंता थी, जो अब व्यापारिक केन्द्रों के मालिक बन गये थे, जिनमें दसियों हजार बुनकर काम करते थे। वे देशी साहूकारों, महाजनों और व्यापारियों के सहयोग से काम कर रहे थे और पूर्व में भारतीय व्यापारियों को समुद्री व्यापार से धीरे-धीरे बहिष्कृत करते जा रहे थे।

फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी १६६४ में अन्य यूरोपीय कंपनियों की स्थापना के बाद राजनीतिज्ञ और वित्तदाता कोलबेअर के तत्वावधान में संगठित की गयी थी। फ्रांस की सरकार ने फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी को व्यापक अधिकार प्रदान किये थे। इसे अपने विजित भूक्षेत्रों में निर्विवाद प्रभुत्व प्राप्त था। अपने उपनिवेशों में उसे सभी न्यायिक और व्यवस्था संबंधी अधिकार थे और उसे जैसा भी उचित समझे, युद्ध की घोषणा करने तथा शांति संधि करने का अधिकार था। फ्रांसीसी सरकार ने कंपनी की सभी दुश्मनों से रक्षा करने तथा उसके पोतों की निगरानी करने का आश्वासन दिया था। लेकिन सत्रहवीं और अठारहवीं सदियों के दौरान यह सामंती विनियमन के अधीन थी। सम्राट, महानियंत्रक, वाणिज्य मंडल, उपनिवेश तथा नौसेना मंत्री सभी कंपनी के कार्यों में दखलंदाजी करते थे और अलग-अलग निर्देश जारी करते थे। परिणामस्वरूप कंपनी सुदक्षतापूर्वक कार्य नहीं कर पाती थी।

कंपनी का संचालन एक निदेशक मंडल द्वारा किया जाता था, जिसमें कुछ सदस्य सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते थे। व्यवहार में कंपनी के मामले सरकार द्वारा नियुक्त महानियंत्रक और उसके सहायक – विशेष आयुक्त – द्वारा तय किये जाते थे। कंपनी के प्रमुख हिस्सेदार राजदरबार के चहेते

और उनके नौकर-चाकर कपनी के उपनिवेशो का प्रशासन करते थे तथा उसकी फौजो और बडो को नियन्त्रित करते थे। निदेशको मे तथा प्रशासन और पूजी निवेशको के बीच अतहीन कलह और झगडे चलते रहते थे। कपनी के मामलो ने बिगडकर घोर अव्यवस्था का रूप ग्रहण कर लिया था और उसके कर्मचारियो मे घूसखोरी केवल भारत म ही नही बल्कि फ्रास मे भी एक आम प्रथा बन गयी थी।

भारत मे फ्रासीसी उपनिवेशो का केन्द्र कारमडल तट पर अवस्थित पाडिचेरी बदरगाह था जिसे १६८३ म प्राप्त किया गया था। फ्रासीसी हाथो मे दूसरा सबसे महत्वपूर्ण नगर बगाल मे चद्रनगर था। यही वह मुख्य केन्द्र था, जहा बगाल म बुने वस्त्रो को फ्रासीसी पोतो के पहुचने की प्रतीक्षा मे जमा किया जाता था।

अठारहवी सदी मे फ्रासीसी कपनी ब्रिटिश कपनी के मुकाबले मे छोटे पैमाने पर व्यापार कर रही थी। फ्रास को इसके निर्यात की मुख्य वस्तुए थी सूती और विशेषकर रेशमी वस्त्र जिन्ह दक्षिणी भारत से खरीदा जाता था। फ्रासीसी सरकार ने अपने पूर्वी उपनिवेशो और व्यापार को कम महत्व प्रदान किया था। वस्तुत लुई पद्रहवे का एक मत्री अपने इस कथन के लिए ही प्रसिद्ध हो *गया कि यदि वह फ्रास का राजा होता, तो सभी उपनिवेशो* को कौडियो के मोल बेच देता।

फ्रासीसी कपनी के पास कोई शक्तिशाली बेडा नही था और उसकी फौज बदियो से बनी थी। अक्सर युद्ध कौशल के बारे मे अपर्याप्त जानकारी रखनेवाले लोग भी फौजी अफसर बन जाते थे तथा अफसर का पद खरीदा जाता था।

फ्रासीसी और ब्रिटिश कपनिया भारत मे सर्वाधिक प्रभावशाली यूरोपीय कपनिया थी। भारत मे उनके अपने व्यापारिक केन्द्रो और उपनिवेशो के *अलावा निम्नलिखित अन्य कपनिया भी थी कारमडल तट पर सत्रहवी शताब्दी* मे स्थापित नेगापट्टम स्थित डच कपनी जिसकी बगाल मे भी बस्तिया थी (ढाका और चिनसुरा मुख्य व्यापारिक केन्द्र थे) तथा १६७६ मे स्थापित श्रीरामपुर स्थित डेनिश कपनी। लेकिन डच और डेनिश कपनियो ने कोई भी निणायक महत्व की भूमिका नही अदा की।

सत्रहवी सदी मे, जब भारत का समुद्री व्यापार यूरोपीय कपनियो के हाथो म आ गया, तो भारतीयो न अपने उत्तरी पडोसियो के साथ अधिकाधिक काफिला मार्ग से सपर्क स्थापित करना शुरू किया। फारस और बुखारा के रास्ते भारतीय व्यापारी अस्त्राखान तक जा पहुचे और १७वी शताब्दी के पाचवे दशक म वहा अच्छी तरह से जम गये। १६४९ मे एक विशेष परकोटेदार भारतीय भवन का निर्माण हुआ और यहा उन्होने अपनी दूकान, आवास और बाद मे एक विष्णु मदिर भी बनाया। अस्त्राखान के भारतीय व्यापारी मास्को मे और निज्नी-नोव्गोरद (मार्वार्येव्स्काया) मले मे भी मुख्यतया प्राच्य (भारतीय और फारसी) मालो का व्यापार करते थे, हालाकि उनके रूसी प्रतिद्वद्वियो ने उन्ह अस्त्राखान से अन्य रूसी नगरो की व्यापारिक यात्रा करने स रोकने की हर कोशिश की थी। महत्व की दृष्टि से पूर्व के साथ रूस के व्यापार मे भारत के साथ उसके व्यापार का जुल्फा (इस्फहान) के आर्मेनियाइयो के साथ व्यापार के बाद दूसरा स्थान था। आर्मेनियाई मुख्यतया ईरान के शाह के व्यापारी थे, यानी वे फारस के राजकीय माला का व्यापार करते थे जब कि भारतीय मुख्यतया निजी व्यापारियो के रूप म तिजारत करते थे। यही नही वे बडे पैमाने पर व्यापार करते थे और कुछ का कारबार तो हजारो रूबल का था।

सत्रहवी सदी मे जारशाही सरकार ने भारत के साथ सीधे व्यापारिक और राजनयिक सपर्क कायम करने के लिए अनेक प्रयास किये। लेकिन कुछ पूर्वी देशो से होकर यात्रा करन से जुडी कठिनाइयो के कारण यह एमा करने मे असफल रही। १६४६ मे निकीता सीरायेजिन तथा १६५१ म राजियान पुश्निकोव और इवान दरेवेन्स्की के नेतृत्व मे शाहजहा के दरबार म भेजे गये दो रूसी शिष्टमडलो को रास्ते मे फारसी अधिकारियो ने रोक लिया था। बुखारा के मुहम्मद युसूफ कासिमोव के नेतृत्व मे एक और शिष्टमडल काबुल तक पहुच गया, लेकिन औरगजेब न उसे और आगे बढने की अनुमति नही दी। सेम्योन मालेन्की के नेतृत्व मे एक व्यापारिक शिष्टमडल दिल्ली, आगरा सूरत और बुरहानपुर पहुचने मे सफल हो गया। औरगजेब ने इसे तुर्की म लिखे गय एक फरमान द्वारा मुक्त व्यापार का अधिकार प्रदान किया। लेकिन स्वदेश पहुचन के पहले ही फारस मे मालेन्की का देहात हो गया।

अठारहवी शताब्दी म अस्त्राखान मे भारतीय बस्ती न अपनी व्यापारिक

गतिविधिया जारी रखी। लेकिन स्वय भारत के साथ उसके सम्पर्क टूट गये थे और भारतीय व्यापारी फारस और कुछ सीमा तक काकेशस के साथ ही व्यापार कर सकते थे। इसी बीच भारतीय व्यापारी महाजनी धधो पर काफी ध्यान देते रहे। जारशाही सरकार ने इस क्षेत्र मे उनके कारबार को समर्थन प्रदान किया। यहा तक कि उच्च पदस्थ रूसी अफसर भी धन उधार लेते थे। अठारहवी सदी मे अस्त्राखान म रहनवाले भारतीयो न रूस म एक भारतीय व्यापारिक कपनी कायम की थी जो बड पैमाने पर व्यापारिक कारबार करती थी। रूसी व्यापारियो न भी जारशाही सरकार क सरक्षण म अनेक बार भारत के साथ व्यापार करन के लिए कपनियो की योजनाए तैयार की। मगर भारत जान क मार्गो पर उपस्थित कठिनाइयो क कारण कोई भी योजना कार्यान्वित नही हो सकी।

चूकि उस समय रूस म भारतीय स्त्रिया नही थी अत भारतीय व्यापारी तातार स्त्रियो से शादी किया करते थ। अस्त्राखान मे इन शादियो से जन्मे बच्चे अग्रीजान* कहलात थ। धीरे धीरे भारतीय स्थानीय आबादी म घुल मिल गये और १६वी सदी के पाचवे दशक म जारशाही सरकार न भारतीय व्यापारिक कपनी की अवशिष्ट सपत्ति को लावारिस सपत्ति के रूप मे जब्त कर लिया।

भारत के लिए
अग्रेजो और फ्रासीसियो के बीच सघर्ष
(१७४६–१७६३)

भारत मे औपनिवेशिक साम्राज्य कायम करने की कोशिश सर्वप्रथम फ्रासीसी ईस्ट इडिया कपनी न की थी। पाडिचेरी के गवर्नर जोजेफ फ्रासुआ डूप्ले ने १७४० मे फ्रासीसी अफसरो के अधीन भारतीय सिपाहियो की टुकडिया खडी करना शुरू किया। इस तरह पहली बार सिपाही टुकडियो की स्थापना की गयी। ये सिपाही इतनी अच्छी तरह लडते थे कि १७४६ मे अग्रजो ने भी सिपाही टुकडिया खडी करना शुरू कर दिया।

* अग्रीजान शब्द प्रत्यक्षत तुर्की के "ओग्ली" से बना है। तुर्की मे 'ओग्ली' का अर्थ पुत्र" है।

१७४४ म आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के प्रश्न पर ब्रिटेन और फ्रास के बीच युद्ध की औपचारिक घोषणा हो गयी। ला बूर्दोनै के अधीन एक फ्रासीसी जहाजी बेडे क पाडिचेरी पहुचने के साथ भारत भी इस युद्ध से अछूता नहा रहा।

डूप्ले न अपने सिपाहियो को इन पोतो पर सवार कर दिया और ला बूर्दोनै न उन्ह मद्रास मे उतार कर नगर पर कब्जा कर लिया। लेकिन शीघ्र ही मध्यवर्गीय डूप्ले और अभिजात ला बूर्दोनै के बीच इस बात का लेकर मतभेद पैदा हो गया कि विजित मद्रास का क्या किया जाये। ला-बूर्दोनै, जिसने अपने पोतो से नगर पर कब्जा किया था, मद्रास को अपना लूट का माल समझता था और उसने अग्रेजो को घूस लेकर उसे वापस कर देने का वादा किया था। लेकिन डूप्ले का आग्रह था कि बदरगाह को पूर्णतया नष्ट कर दिया जाना चाहिए ताकि देश के इस भाग म अग्रेजो का प्रभाव हमेशा क लिए खत्म हो जाये।

इस मतभेद के परिणामस्वरूप ला-बूर्दोनै अपने बेडे को भारत से वापस ले गया। बेडे के अभाव मे डूप्ले अग्रेजो से कारगर ढग से लडने म असमर्थ हो गया।

१७४८ मे एक्स्लाशेपल की सधि के अनुसार फ्रासीसी सरकार ने यूरोप मे कुछ रिआयतो के बदले मे अग्रेजो को मद्रास किलेबदी को नष्ट किये बिना लौटा दिया। इस निर्णय के नतीजे अगले साल ही उस समय सामने आ गये, जब भारत स्थित ब्रिटिश और फ्रासीसी कपनियो के बीच युद्ध शुरु हो गया।

इस बार डूप्ले ने एक राजवशीय सघर्ष मे हस्तक्षेप किया, जो १७४८ म आसफजाह की मृत्यु के बाद उसके पुत्र नासिरजग और दौहित्र मुजफ्फरजग क बीच शुरू हो गया था। मुजफ्फरजग की सहायता करने हेतु उसके एक रिश्तेदार चदा साहब को पाडिचेरी से ५०० फ्रासीसी सैनिको और २००० सिपाहियो की एक टुकडी के साथ भेजा गया। मुजफ्फर को गद्दी पर बिठा दिया गया और चदा साहब को अर्काट की अधीन रियासत का नवाब बना दिया गया। इस तरह दक्कन प्रायद्वीप का सपूर्ण दक्षिण-पूर्वी भाग फ्रासीसियो के प्रभाव मे आ गया।

अग्रेजो न महसूस किया कि इस परिस्थिति से उनके लिए गभीर खतरा उत्पन्न हो गया है और वे हैदराबाद मे नासिरजग तथा अर्काट म मुहम्मदअली (भूतपूर्व नवाब का पुत्र) की सहायतार्थ युद्ध मे कूद पडे। विद्रोही सामतो ने मुजफ्फरजग को मार डाला। इसके बाद हैदराबाद के कमाडर बुसी न नासिरजग (जिसे हत्यारो न मार डाला था) के नाबालिग बेटे को गद्दी पर

बिठा दिया और हैदराबाद का एक तथाकथित आर्थिक सहायता संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया। इस संधि के अनुसार हैदराबाद के निजाम ने फ्रांसीसी टुकडियों के भरण-पोषण अथवा उनकी आर्थिक सहायता के लिए जैसा कि उन दिनों कहा जाता था कारमंडल तट के उत्तरी सरकार नामक चार समृद्धशाली जिलों को दे देने का वचन दिया। (बाद मे ब्रिटिश उपनिवेशवादियों द्वारा ऐसी ही आर्थिक सहायता संधियों का उपयोग भारत को राजनीतिक रूप से अधीन बनाने के एक साधन के रूप में किया गया। अंग्रेज शासकों ने अपने शासनाधीन क्षेत्रों की भारतीय आबादी पर कर-भार इतना बढ़ा दिया कि वह असहनीय हो गयी। वे भारतीय शासकों के काम आने वाली अपनी फौजों के भरण-पोषण के लिए अधिकाधिक भूमि की माग करते थे।) इस तरह फ्रांसीसी एक बार पुन भारत में अपनी स्थिति मजबूत करने में सफल हो गये।

अब केवल त्रिचनापल्ली का शक्तिशाली दुर्ग, जो दक्षिण भारत का द्वार कहलाता था अंग्रेजों के आश्रित मुहम्मदअली के हाथों में रह गया था। इस दुर्ग पर कब्जा करने के डूप्ले के सारे प्रयास विफल रहे। त्रिचनापल्ली की एक असफल घेराबंदी के दौरान फ्रांसीसियों का आश्रित चंदा साहब मारा गया।

बुसी के पास अपनी फौजी टुकडियों के भरण-पोषण के लिए काफी धन नहीं था। इधर फौजी कार्रवाइयों के कारण भारत से फ्रांस को मालों का निर्यात बिलकुल नहीं हो पा रहा था और फ्रांस के लिए भारत आय का नहीं बल्कि घाटे का स्रोत बन गया था। कंपनी के हिस्सेदार युद्ध बंद करने की माग करने लगे। फ्रांसीसी सरकार को आशा थी कि भारत में रिआयतें प्रदान कर अंग्रेजों के साथ संघर्ष की समाप्ति से इन दोनों यूरोपीय देशों के बीच शांति बनाये रखने में सहायता मिलेगी। इस उद्देश्य से कंपनी के एक निदेशक गोदे को भारत भेजा गया। गोदे ने अंग्रेजों की सभी मागों को स्वीकार करते हुए उनके साथ समझौता कर लिया कर्णाटक को मुहम्मदअली (१७५४–१७९५) के जिम्मे सौंप दिया गया फ्रांसीसियों ने उत्तरी सरकारों पर से अपना आधिपत्य हटा लिया और डूप्ले को फ्रांस वापस बुला लिया गया। तदुपरांत फ्रांसीसी सरकार ने घोषणा की कि डूप्ले और ला-बूर्दोने ही भारत में अपनी सभी पराजयों के लिए दोषी है। ला-बूर्दोने ने कई साल जेल में बिताये और डूप्ले आर्थिक रूप से बर्बाद हो गया तथा १७६३ में फ्रांस में उसकी मृत्यु हो गयी।

१७५६ मे फास और ब्रिटेन के बीच सप्तवर्षीय युद्ध छिड गया। दोनो देशो के बीच इस युद्ध ने यूरोप मे ही नहीं, बल्कि भारत मे भी जोर पकड लिया। १७५८ मे लाली तोल्लेन्दाल की कमान मे एक सैन्य दल भारत आया। लाली आयरिश था तथा अग्रेजो का कट्टर दुश्मन था। इस बीच म अग्रेजो ने केवल पूर्वी तट पर ही अपनी स्थिति नही मजबूत कर ली थी, बल्कि १७५७ मे वे बगाल को भी जीत चुके थे। अब मद्रास की सहायता के लिए धन और सशस्त्र सैनिक बगाल से भेजे जा रहे थे। इसका मतलब यह था कि परिस्थिति फासीसियो के अनुकूल नही थी। फिर भी लाली ने मद्रास के निकट अग्रेजो से फोर्ट सट डेविड को छीन लिया और ब्रिटिश उपनिवेशो के मुख्य गढ मद्रास पर भी घेरा डाल दिया। मद्रास मे ही अपनी सारी फौजो को जमा करने के बाद लाली ने हैदराबाद मे निजाम के दरबार से बुसी को बुला लिया। बुसी क आने के तत्काल बाद अग्रेजो ने हैदराबाद पर कब्जा कर लिया।

लाली ने, जो ईमानदार, परतु जल्द उत्तेजित हो जानेवाला तथा दूसरो की सलाह न माननेवाला था, फासीसी बेडे के कमाडर से झगडा कर लिया। इस पर बेडे के कमाडर ने अपने सभी पोतो को भारत स हटा लिया। तदुपरात वह पाडिचेरी के निदेशक मडल से भी झगड बैठा। इसका परिणाम यह हुआ कि निदेशक-मडल ने फासीसी फौजो को, जो मद्रास पर घेरा डाल हुए थी रसद और साज सामान देना बद कर दिया। लाली भारतीयो से नफरत करता था और उसने कोडो के जोर से पाडिचेरी के लोगो से उनकी जाति के लिहाज के बिना भारी तोपे खीचवायी।

१७५९ मे मद्रास क्षेत्र मे एक अग्रेजी बेडे के पहुचने के साथ लाली को पीछे हटने क लिए मजबूर होना पडा। विन्दवाश मे दो लडाइया म अग्रेजो ने लाली को बुरी तरह से पराजित कर दिया और बुसी को बदी बना लिया। इसके बाद अग्रेजो ने पाडिचेरी नगर को घेर लिया, जिसने घोर भूख से विवश होकर एक साल बाद आत्म समर्पण कर दिया। पाडिचेरी क किला को धूल म मिला दिया गया। लाली फास लौट आया और फासीसी सरकार न भारत मे अपनी सभी पराजयो का दोष उसके मत्थे मढ दिया तथा उसे फासी दे दी।

परिस की सधि के अनुसार फास को केवल पाच नगर ही, जो पहले इसके अधीन थे, लौटाये गये। इसके बाद फास ने भारत क साथ अपने व्यापारिक सबधो को पुन कायम करना शुरू किया। लेकिन दक्षिणी भारत म विस्तृत भूक्षेत्र इसक हाथो से निकल गये थे और उन्हे फिर कभी प्राप्त नहीं किया जा सका। छिटपुट फासीसी टुकडिया जो अब भारतीय शासकों की म**

कर रही थी, अठारहवी सदी के अत तक अग्रेजो से लडती रही। लेकिन जहा-तहा फौजी सफलताओ के बावजूद वे भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य की जड कमजोर करने म सफल नही हुई।

फ्रास पर ब्रिटेन की विजय काफी हद तक उसकी आर्थिक श्रेष्ठता की वजह से हुई। भारत स्थित फ्रासीसी कपनी के अनेक प्रतिनिधियो की उच्च योग्यताओ और ज़ोरदार प्रयासो के बावजूद फ्रास इस वजह से पराजित हुआ कि उसके पास ब्रिटेन के मुकाबले मे कोई बेडा फौज और आर्थिक ससाधन नही थे और यह कि फ्रासीसी सरकार उपनिवेश हासिल करने मे उतनी दिलचस्पी नही रखती थी, जितनी कि ब्रिटिश सरकार रखती थी।

बगाल पर अग्रेज़ो की विजय

अठारहवी शताब्दी के प्रारभ मे बगाल मुगल साम्राज्य के आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक विकसित इलाको मे था। यह इलाका मुगल गद्दी के इर्दगिर्द चल रहे सामतो के राजनीतिक सघर्ष मे प्रत्यक्षत शामिल नही था। बगाल की समृद्धि का आधार मुख्यतया वस्त्र उत्पादन था। वहा माल मुद्रा सबध अन्य प्रातो की तुलना मे अधिक विकसित थे। इस प्रात के किसान विभिन्न प्रकार के चावल, कपास और गन्ने की खेती करते थे। जमीदारो को कर-सग्रह करने और उसे खजाने मे जमा करने के बदले वेतन दिया जाता था। इसके साथ ही स्वय भी उन्हे बडी रकमे जमा करनी पडती थी। शीघ्र ही इस प्रणाली ने बिगडकर ठेके पर भूराजस्व वसूल करने की प्रणाली का रूप ग्रहण कर लिया। अपने ठेके की भूमि पर जमीदार नियमो अथवा कानूनी मानको की कोई परवाह किये बिना अपनी सत्ता का इस्तेमाल करने लगे वे अपनी सशस्त्र टुकडियो के बल पर कर वसूल करते थे अपने इलाको की आबादी का न्याय-दड करते थे और सरकारी अफसरो को रिश्वते देते थे। फिर भी जमीदार और मालगुज़ार अब भी बहुत हद तक बगाल के प्रथम नवाब (शासक) मुर्शिद कुली खा के अधीन थे। बगाल के एक इतिहासकार के शब्दो मे करो के बकाया रह जाने पर वह यहा तक उतर आता था कि उन्ह 'गदगी से भरे" गढे मे डाल देता था।

मुर्शिद कुली खा के उत्तराधिकारियो के शासनकाल मे बगाल के जमीदार अधिक स्वतत्र हो गये। उन्होने नियमित कर जमा करना बद दिया। यही नही वे नवाब के खजाने मे जो रकम जमा भी करते थे, वह उनकी जागीरो

स प्राप्त आय का अल्पाश मात्र होती थी। इसका मतलब यह था कि जमीदारों की जागीरो मे लगानयुक्त कर धीरे-धीरे शुद्ध लगान मे रूपातरित हाते गए जब कि जमीदारो की जागीरे स्वय उत्तराधिकार मे प्राप्त हाती थी और इस प्रकार व निजी सामती जागीरो मे परिणत होती जा रही थी।

मुगल साम्राज्य से अपनी स्वाधीनता को मजबूत बनाने तथा अपने रुतबे ठाट बाट को बनाये रखने के लिए मुर्शिद कुली खा को अत्यधिक धन की सख्त आवश्यकता थी। उसने कई बार अपने खजाची, बगाल मे आ बसे जागत के एक मारवाडी से कर्ज लिये। इसके बदले मे मुर्शिद कुली खा ने उसे सिक्के ढालन के अधिकार सहित अनेक विशेषाधिकार दे दिये और जगत सेठ की उपाधि प्रदान की। जगत सेठ अग्रेजी ईस्ट इडिया कपनी के साथ सहयोग करता था और उम भी ऋण दिया करता था, लेकिन इसके साथ ही वह बगाल मे कपनी के बढते प्रभाव से डरता भी था।

बगाली व्यापारियो और महाजनो को बिचौलिये के रूप म इस्तेमाल करते हुए कपनी अपनी आवश्यकता की वस्तुए—शोरा, कच्चा रेशम, वानस, अफीम, मसाले और सर्वोपरि रूई और रेशम—प्राप्त कर लेती थी।

अठारहवी शताब्दी के चौथे, पाचवे और छठे दशको मे भारत म बडे पैमाने पर निर्यात के परिणामस्वरूप बुनाई उद्योग का काफी विस्तार हुआ पूरे के पूर किसान समुदायो और कुछ नगरो, विशेष रूप से ढाका के निवासि के एक बडे भाग ने बुनाई का धधा अपना लिया। कपनी के कर्मचारी बगाल आतरिक व्यापार मे दखलदाजी करने लग और एक व्यापारिक केन्द्र स दूस व्यापारिक केन्द्र को माल भेजन के बहान वे अपने माल भी खुल्लमखुल्ला भेज लगे।

१७५६ म बगाल मे उत्तराधिकार का युद्ध छिड गया, जिसके बाद सि मिराजुद्दौला नवाब बना। उत्तराधिकार के सघष म पराजित हुए एक नव ने भागकर कलकत्ता में अग्रेजो की शरण ली। जब अग्रेजो न उस सिराजुद्दौ के हाथो म दे देन मे इन्कार किया तो सिराजुद्दौला न अपनी सना ज की और अचानक आक्रमण करके पहले कासिमबाजार और फिर कलक पर धावा मारकर कब्जा कर लिया।

इसक कुछ ही बाद कप्तान क्लाइव और एडमिरल वाटसन की कमान एक टुकडी मद्रास स समुद्र के रास्ते बगाल भेजी गयी। इन दोनो अग्रेज अफ की प्रतिभाए दक्षिणी भारत मे फासीसियो के खिलाफ युद्ध म प्रकाश म गयी थी। क्लाइव न पहले भारतीय सेठो, जगत सेठ और अमीचद म

गरीबी लगातार फैलती गयी। उन्हे शहरो को छोडकर गावो मे जाना पडा जहा वे खुद अपने तथा अपने परिवारो के भरण-पोषण के लिए किन्ही भी शर्तों पर लगान पर भूमि जोतने के लिए विवश थे। बुनकरो की हालत भी जो सस्ते वस्त्रो का उत्पादन करते थे, दिन-ब-दिन बिगडती गयी। बगाल की विजय के कुछ समय पहले ही कपनी ने देशी व्यापारियो से बिचौलिए का काम न लेने का निर्णय कर लिया था और अब वह सीधे कारिन्दो (गुमाश्तो) के जरिये बुनकरो से कारबार करने लगी। बगाल की विजय के बाद गुमाश्ता ने दस्तकारो पर जबरदस्त प्रभाव प्राप्त कर लिया और उन्हे देशी व्यापारियो द्वारा दी गयी कीमतो से २० से ३० प्रतिशत कम कीमता पर कपडे का उत्पादन करने के लिए मजबूर करने लगे और पेशगी रकम लेने तथा तैयार कपडो को कपनी के सुपुर्द करने के लिए जोर जबरदस्ती का प्रयोग करते हुए दबाव डालने लगे।

पलासी की लडाई मे विजय के बाद कपनी के कर्मचारियो ने विजेताओ के रूप मे अपनी स्थिति का पूरा-पूरा उपयोग अपने को मालामाल करने तथा स्थानीय व्यापारियो और निजी यूरोपीय व्यापारियो के बीच से अपने सभी प्रतिद्वद्वियो को धकेल बाहर करने के लिए किया। कपनी ने अपने कर्मचारियो को जिन्हे बहुत कम वेतन मिलता था, हमेशा अपना निजी व्यापार करने की छूट प्रदान की थी। १७१७ मे मुगल बादशाह द्वारा जारी किये गये फरमान की, जिसने अग्रेजी ईस्ट इडिया कपनी को शुल्कमुक्त विदेशी व्यापार करने का एकाधिकार प्रदान किया था, आड मे इसके कर्मचारियो ने देश के भीतर भी शुल्कमुक्त व्यापार करना शुरू कर दिया। इसके अलावा उन्होने अपने कारिन्दो को भी दस्तक (अर्थात माल को एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के अनुमतिपत्र) बेचने शुरू किये, जो ईस्ट इडिया कपनी के माल को शुल्कमुक्त बना देते थे। इन दस्तको का इस्तेमाल करते हुए कारिन्दो ने व्यापार से उन व्यापारियो को निकाल बाहर कर दिया, जो अग्रेजो के साथ सहयोग नही करते थे। एक समकालीन टीकाकार के शब्दो मे बगाल मे ईस्ट इडिया कपनी का आचरण ' व्यापारी के वश मे राज्य" की तरह था।

कर्मठ मीर कासिम ने जिसने वस्तुत अपनी नवाबी अग्रेजो से खरीदी थी यह आशा की थी कि वह बगाल का वास्तविक शासक बन जायेगा और ब्रिटिश ईस्ट इडिया कपनी के हाथो मे मात्र कठपुतली नही रहेगा। करो मे वृद्धि और उनकी निर्ममतापूर्वक वसूली करने के बाद उसने ना वर्ष के भीतर ही अग्रेजो को वह पूरी रकम अदा कर दी जिसे उसने सिहासनारोहण

के समय उन्हे दन का वादा किया था। तदुपरात उसने कपनी के कर्मचारियो से दस्तको का लेन-देन बद करने की माग की जिसकी वजह से दश लगातार बगाल हाता जा रहा था। जब अग्रेजो ने उसकी इस माग को मानने से इन्कार किया तो मीर कासिम ने भारतीय व्यापारियो को भी सभी शुल्को से मुक्त करके वही दर्जा प्रदान कर दिया जो अग्रेजो को प्राप्त था। इसकी जवाबी कार्रवाई के रूप मे कपनी के कर्मचारियो ने हथियार उठा लिये और १७६३ मे पटना नगर पर कब्जा कर लिया। जब मीर कासिम को इसकी सूचना मिली तो उसने अग्रेजो के खिलाफ विद्रोह कर दिया।

वे सभी लोग जो बगाल मे अग्रेजो की ज्यादतियो से असतुष्ट थे, मीर कासिम और उसकी सेना (जिसका मुख्य भाग विभिन्न जातियो के यूरोपीय जाबिमबाजो से बना था) के समर्थन मे एकत्रित हो गये। उसके झडे के नीचे किसान और दस्तकार इकट्ठा हो गये और भारतीय व्यापारियो तथा कलकत्ता के शक्तिशाली आर्मेनियाई व्यापारियो ने उसे आर्थिक सहायता प्रदान की। १७६३ मे मीर कासिम अग्रेजो से पटना छीन लेने मे सफल हो गया। लेकिन इसके शीघ्र बाद ही उसकी बेढगी अप्रशिक्षित सेना पराजित हो गयी।

मीर कासिम भागकर अवध चला गया जहा उसने अवध के नवाब के अलावा मुगल शासक के पुत्र अली गौहर के साथ जो पानीपत की लडाई के बाद बचने के लिए भाग आया था और जो बाद मे शाह आलम द्वितीय (१७६०-१८०६) के नाम से गद्दी पर बैठा सधि की। इसके बाद उनकी मिली-जुली फौज पटना की ओर अग्रसर हुई जिससे अग्रेजो ने अपने को खासी मुश्किल स्थिति मे पाया। लेकिन १७६४ मे बक्सर की निर्णायक लडाई मे अग्रेज पुन अपने दुश्मनो को पराजित करने मे सफल हुए। शाह आलम ने आत्म-समर्पण कर दिया और मीर कासिम दिल्ली भाग गया।

बक्सर की लडाई के बाद गगा के निचले मैदानी क्षेत्रो मे अग्रेजो के प्रभुत्व को गभीर चुनौती देनेवाला कोई नही रहा। मीर जाफर को एक बार फिर बगाल का गुड्डा नवाब बना दिया गया। उसकी मृत्यु के बाद उसके अनेक नाबालिग रिश्तेदारो को एक के बाद एक नवाब नियुक्त किया गया। उन्हे मोटे वज़ीफे बाध दिये गये और उन्होने प्रशासकीय मामलो मे कोई हस्तक्षेप नही किया।

क्लाइव ने जिसे मीर कासिम के विद्रोह को दबाने के बाद बगाल का गवर्नर नियुक्त किया गया था अपने बदी शाह आलम द्वितीय को कपनी को

दीवानी अर्थात राजस्व वसूल करने का अधिकार प्रदान करन के फरमान दस्तखत करन के लिए विवश किया। इसके परिणामस्वरूप "दोहरी सरकार की प्रणाली कायम हुई नागरिक मामले – अदालत, कानून और व्यवस्था का रख-रखाव आदि – स्थानीय बगाली अधिकारियो के जिम्मे थे, जब कि भूराजस्व सग्रह कपनी के नियन्त्रण मे था। शुरू म राजस्व सग्रह अधिकारियो के कार्य और कराधान प्रणाली का पूरा ढाचा ज्यो का त्यो बना रहा।

१७६७ म क्लाइव भारत से चला गया और १७७३ म हाउस आफ कामन्स म एक आयोग ने भारत मे उसके द्वारा हडपी गयी दौलत के मामले की जाच की। क्लाइव को अतत बरी कर दिया गया, क्योकि पाया गया कि उसने अपन देश के लिए महत्वपूर्ण और सराहनीय सेवाए की हैं।

' दोहरी सरकार " की प्रणाली लागू होते ही कपनी तथा उसके कर्मचारियों के लिए व्यापारिक मामले गौण महत्व के हो गये। अब बगाली किसानों से कर-सग्रह ही उनकी आय का मुख्य स्रोत बन गया। कर-सग्रह से प्राप्त रकम से भारतीय वस्तुए खरीदी जाती थी। इस प्रक्रिया को छलपूर्वक निवेश (investment) कहा जाता था। वस्तुत कपनी बिना एक कौडी लगाये इस निवेश ' के जरिये भारत से ब्रिटेन मे मालो का आयात कर रही थी। बगाल म लूट से प्राप्त धन का उपयोग भारत क अन्य भागो म आक्रामक युद्धो का खर्च चलाने मे किया जाता था। इस तरह भारत के लोगो को "अपनी ही कीमत पर गुलाम बनने के लिए बाध्य किया जा रहा था।

किसानो का शोषण जो पहले सामुदायिक प्रथाओ द्वारा सीमित था बेहद बढ गया। राजस्व-सग्रह अधिकारी किसानो से जो कुछ भी प्राप्त हो सकता था, वसूल कर लेते थे। यहा तक कि वे उनके दो जून रोटी के वास्ते रहन का अनाज भी नही छोडते थे। १७७० म फसल के मारे जान के कारण देश म अकाल पड गया लाखो लोग भूखो मर गये और खाद्यान्नो की कीमतें बेतहाशा बढ गयी लेकिन लदन के कुलीनो ने करो म कटौती करने की बात सुनन से भी इन्कार कर दिया। फिर भी १७७१ म कपनी को इंग्लैंड की ससद स ऋण की याचना करन के लिए मजबूर होना पडा। बगाल की आर्थिक स्थिति ह्विग (उदार दल) और टोरी पार्टियो क बीच झगडे का विषय बन गयी। १७७३ म दोनो दलो म एक समझौता होन क बाद रेग्यूलेटिंग एक्ट पास किया गया जिसन कपनी को मात्र एक व्यापारिक सगठन के रूप म ही नही, बल्कि भारतीय भूभागो के शासक के रूप म भी मान्यता प्रदान की। ब्रिटिश सरकार न कपनी की राजनीतिक गतिविधियो की दखरेख करने

का शासित्व ग्रहण कर लिया। ब्रिटिश ससद ने एक गवर्नर-जनरल (यह पद पहली बार कायम किया गया था) और उसके चार सलाहकार नियुक्त किये। पाच सदस्यो के [illegible] बगाल की सर्वोच्च कौंसिल का गठन हुआ जो सभी मामले बहुमत के आधार पर तय करती थी। इसके अलावा कलकत्ता म सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया गया जो शहर निवासियो के सभी मामलो का फैसला करवाता था।

वारेन हेस्टिंग्स जो युवावस्था से ही कपनी म सेवा कर रहा था पहला गवर्नर जनरल बना। स्थानीय परिस्थितियो से भली भाति परिचित होने तथा फारसी और हिन्दुस्तानी भाषाओ का अच्छा ज्ञाता होने के कारण वह कलकत्ता म कपनी का एक महत्वपूर्ण सहायक सिद्ध हुआ था।

इसके पहले हेस्टिंग्स ने मद्रास म काम किया था और वहा उसने कुछ सुधार लागू किये थे। उसने कपनी के कर्मचारियो के वेतनो म वृद्धि की और फौजी साज-सामान के लिए ठेका प्रणाली लागू की जिसने कपनी के कर्मचारियो विशेष रूप से निदेशको के प्रश्रय प्राप्त कर्मचारियो म भ्रष्टाचार और मुनाफाखोरी के प्रसार को तेज कर दिया। इसके अलावा कपनी के बिचौलियो और खरीददारो के रूप म काम करनेवाले भारतीय व्यापारियो की सख्या म कमी करके हेस्टिंग्स ने कपनी की आय म कुछ वृद्धि सभव बना दी। इस कार्रवाई की बदौलत वह लदन म कपनी के निदेशको की निगाह म आ गया। हेस्टिंग्स इस बात से भली भाति परिचित था कि उसका मुख्य कार्य सभी सभव साधनो से कपनी के मुनाफे म वृद्धि करना है। १७७२ म बगाल का गवर्नर नियुक्त होने के बाद हेस्टिंग्स ने बगाल के नवाब और शाह आलम द्वितीय की पेंशन कम कर दी जिनकी रकम क्लाइव ने निर्धारित की थी। इसके बाद उसने कड़ा और इलाहाबाद के जिलो को (जिन्हे पहले क्लाइव ने मुगल शासक को दे दिया था) ५० लाख रुपये म अवध के हाथ बेच दिया और उसे रुहेलो के खिलाफ युद्ध के लिए अग्रेज अफसरो की कमान म फौजी टुकडिया दे दी, हालाकि रुहेलो के विरुद्ध हस्तक्षेप करने का कपनी के पास कोई औचित्य नही था। इस 'कुख्यात युद्ध'* म रुहेले पराजित हुए और रुहेलखड को अवध के नवाब को सौप दिया गया। इन सभी कार्रवाइयो की बदौलत हेस्टिंग्स कपनी के एक वफादार सेवक के रूप म मशहूर हो गया।

---

* Karl Marx *Notes on Indian History* (664—1858) Moscow 1960 p 95

बगाल कौसिल म हेस्टिग्स को सिर्फ बारवल का, जो बगाल म
का एक कर्मचारी था समर्थन प्राप्त था। कौसिल के बाकी तीन स
लार्ड क्लैवरिग कर्नल मानसन और फिलिप फ्रासिस का, जो इग्लै
आये थे कपनी के नहीं बल्कि ताज के प्रतिनिधि समझा जाता था (फि
फ्रासिस पर इगलैड म जूनियस के नाम से प्रकाशित खुले पत्रो का लेखक
का सन्देह किया जाता था जिन्होने सरकार की आलोचना करके बडा स
पैदा की थी)। उन्होने हेस्टिग्स को हटाने की चेष्टा की, उसके कार्य
को गलत बताया और उस पर अपना पद क्लैवरिग को सौप देने के
दबाव डाला। ये घटनाए उस समय ब्रिटेन म कपनी और ब्रिटिश पूजी
वर्ग के उन हलको के बीच चल रहे सघर्ष की प्रतिध्वनि थी, जो भारत
अधाधुध मुनाफा बटोरने म एक बडी भूमिका प्राप्त करने के लिए आतुर

बगाल कौसिल म मतभेद की कलकत्ता के निवासियो को भी जानक
हो गयी और हेस्टिंग्स की जबरदस्ती वसूली के शिकार लोगो ने उसके खिल
मुकदमे दायर कर दिये। लेकिन हेस्टिग्स ने अपने पुरानी सहपाठी और सर्वो
न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश इम्पी की सहायता से अपने प्रमुख आलोचक
धनी ब्राह्मण नदकुमार को जालसाजी के आरोप म फासी की सजा दि
दी, यह अपराध छ साल पहले तब का बताया जाता था, जब कलकत
म ब्रिटिश न्यायालय की स्थापना भी नही हुई थी। नदकुमार को सार्वजनि
रूप से फासी देने के बाद वारेन हेस्टिग्स के खिलाफ और अभियोग लगाने
का किसी का साहस नही हुआ। १७७७ म कर्नल मोनसन की और उसके
शीघ्र बाद क्लैवरिग की मृत्यु हो गयी। इसका मतलब यह था कि अब हेस्टिग्स
को बगाल के निर्विवाद शासक के रूप म सत्ता प्राप्त हो गयी।

विजय के बाद बगाल की आर्थिक स्थिति

बगाल पर अग्रेजो के आधिपत्य ने बगाल तथा भारत के अन्य भागो के
बीच कायम आर्थिक सबधो और दूसरे पूर्वी देशो के साथ इसके व्यापारिक
सबधो को भी छिन्न भिन्न कर दिया। अग्रेजो की विजय के पहले बगाल
दक्षिण पूर्वी एशिया के देशो के साथ व्यापक पैमाने पर व्यापार करता था।
लेकिन अब वस्तुत सारा समुद्री व्यापार अग्रेजो के हाथ म सिमट आया। वे
धीरे धीरे बगाल के आतरिक व्यापार पर भी कब्जा करते जा रहे थे। अठारहवीं
शताब्दी के अत मे भारतीय व्यापारी बडे पैमाने पर व्यापार तभी कर सकते

थे कि जब वे अंग्रेजों के कारिन्दे बन जायें। इसी तरह अंग्रेज भारतीयों को आर्थिक मामलों से भी निकाल बाहर करते जा रहे थे।

विजय के पहले भारतीय बैंकरों और महाजनों (सर्राफों) के सबसे बड़े और लाभकारी धंधे मुर्शिदाबाद के खजाने में कर के जमा करने से सम्बद्ध थे। १७७२ में खजाने को मुर्शिदाबाद से कलकत्ता स्थानांतरित कर दिया गया और इस तरह अब जगत सेठ तथा इसके उत्तराधिकारियों का कोई प्रभाव नहीं रह गया। १७७३–१७७४ में हेस्टिंग्स ने वित्तीय प्रणाली पर सरकारी नियंत्रण को प्रबल और केन्द्रीकृत करने के लिए ढाका, पटना और मुर्शिदाबाद में काम करनेवाली टकसालों को बंद कर दिया और इस प्रकार कलकत्ता को सिक्के ढालने का एकाधिकार प्राप्त हो गया। उसी समय से जगत सेठ और उनके परिवार का धीरे धीरे विनाश आरम्भ हो गया। विनाश की यह प्रक्रिया तीन ब्रिटिश बैंकों के चालू हो जाने से और भी तेज हो गयी, जो बैंक नोट जारी करते थे और ऋण संबंधी तथा अन्य वित्तीय कारबार भी करते थे।

१७७० में पहली बार बनियों, अर्थात अंग्रेजों की सेवा में लगे भारतीय कारिन्दों की जगह निजी अंग्रेजी व्यापारिक एजेंसी कायम की गयी। ये व्यापारिक एजेंसियां धीरे-धीरे अंग्रेज उपनिवेशवादियों द्वारा भारत में शोषण का एक प्रमुख साधन बन गयीं। वे आयात निर्यात के धंधों, ठेके पर लगान वसूल करने और सूद पर रुपया चलाने तथा भारत में लूट की बहुमूल्य वस्तुओं को ब्रिटेन भेजने तथा इसी तरह के अन्य धंधों में लगी हुई थीं। शक्तिशाली भारतीय व्यापारियों और बैंकरों ने, जिन्हें नगरों से बेदखल कर दिया गया था, अपनी पूंजी जमींदारी जागीरें खरीदने और गांवों में सूद पर रुपया चलाने में लगानी शुरू की।

दस्तकारों का शोषण भी तेज हो गया। १७७५ में जब तक बुनकर कंपनी या उसके अलग-अलग कर्मचारियों का अपेक्षित काम पूरा नहीं कर देते थे, तब तक उन्हें अन्य ग्राहकों अथवा बाजार के लिए काम नहीं करने दिया जाता था। इस बात को सुनिश्चित बनाने के लिए कि बुनकर तैयार माल को किसी दूसरे को न बेचने पायें, गुमाश्ते उनके घरों पर पहरेदार बिठा देते थे। इस परिस्थिति ने बुनकरों की रही सही स्वतंत्रता को भी छीन लिया। बुनकरों का घरों को छोड़कर गांवों को चल जाना आम बात हो गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि काश्तकारों की, जिन्हें स्वयं भी कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे, संख्या में अंधाधुंध वृद्धि हुई। १७७३ और १७८६ में शांतिपुर में बुनकरों के विद्रोह हुए। १७८७ में ढाका और १७८९ में सोनारगांव के

मुनारा न शिकायत की कि उनके साथ धोखाधड़ी की जाती है, उ पीटा और गिरफ्तार किया जाता है। नमक मजदूरा न भी शिकायत उन पर कमनकारी अत्याचार किय जात है।

बगाली किसाना की हालत भी लगातार बिगडती जा रही था। न भारतीय राजस्व प्रणाली और उसकी व्यवस्था करनेवाले अहलक अछूता छोड दिया था। वारेन हेस्टिग्स न ब्रिटिश कराधान प्रणाली करनी शुरू की और यह मानते हुए बगाल के किसाना के शोषण के नय तरीके निकाल कि भूमि के सामती राजकीय स्वामित्व का वह अधिका अग्रजा के हाथ म आ गया है जो पहल बगाल के शासका के हाथ म थ जिसे वह जैसा कि फ्रासिस न व्यग्योक्ति म कहा था स्थानीय लोगा क एकदम चूस लेन के अधिकार के रूप म मानता था। दूसरी ओर फ्रांसि दावा था कि भारत म भूमि के एकमात्र वैध अधिकारी 'दगी भूस्वा (जमीदार) है। फ्रासिस के विरोध के बावजूद हेस्टिग्स न अल्पकालिक पर भूमि देन की नीति लागू की। इसके परिणामस्वरूप किसाना का लग दरिद्रीकरण होता गया क्योकि मालगुजारो की दिलचस्पी सिर्फ अपन क कारा म अधिक स अधिक पैसा और अनाज वसूलन म थी। १७६०-१७६ बगाल, बिहार और आडिसा म भूमि-कर का स्तर बढाकर १७६५ (वर्ष पहली बार कपनी न आधिकारिक रूप स करा के जरिये किसाना लूट को अपनी आय का मुख्य साधन बनाया था) म निर्धारित स्तर के मुकाब म दुगुना कर दिया गया। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि अठारह शताब्दी के अत म बगाल का एक तिहाई भूभाग वना म परिवर्तित हो गया जहा कभी फसले पैदा की जाती थी, वहा अब चीते घूमन लग गये थ।

आश्चर्य नही कि एक के बाद एक किसान विद्रोहो का फूट पडना आ बात हो गयी थी। सबस बडा विद्रोह १७८३ म मालगुजार देवीसिह के खिला दिनाजपुर जिले म हुआ, जिसने राजस्व अदायगी को सुनिश्चित बनान के प्रयास म किसानो को शारीरिक यत्रणाए देना शुरू कर दिया था। रगपुर नगर के निकट एकत्रित होने के बाद किसानो ने अपना एक नेता चुना, स्थानीय पुलिस को भगा दिया और एक याचिका कलकत्ता भेजी। कोई जवाब न मिलन पर उन्होने हथियार उठा लिये। लेकिन वहा भेजी गयी अंग्रेजी फौजो न विद्रोह को दबा दिया।

अठारहवी शताब्दी के अतिम चार दशको मे बगाल के विभिन्न भागो म अपेक्षाकृत छोटे पैमाने पर विद्रोह होते रहे। कभी-कभी वनो के पिछड़े

आदिवासी कबीले भी, जो एसे क्षत्रो म बसे हुए थे जहा अग्रेजी फौजा का पहुचना कठिन था किसानो के विद्रोहो म भाग लेते थे। सथालो और चुआरो के विद्रोह ऐसे ही विद्रोह थे। सन्यासियो के नतृत्व म ब्रिटिश अधिकारियो के खिलाफ सशस्त्र प्रतिरोध कई वर्षो तक चलता रहा। एक बार तो हज़ारो-हज़ार सन्यासियो की टुकडिया कलकत्ता के द्वार तक पहुच गयी थी। हेस्टिग्स ने उनके खिलाफ अग्रेज अफसरो की कमान मे कुछ फौजी टुकडिया भेजी। सन्यासियो को किसी भी समर्थन से वचित करन तथा किसानो को उनम और शामिल होन से रोकने के लिए हेस्टिग्स ने आदेश दिया कि हर गिरफ्तार बागी को उसके गाव मे फासी दे दी जाये और यह कि सम्वद्ध गाव के सभी लोगो पर भारी जुमाना किया जाये और फासी दिये गये बागियो के परिवारो को गुलाम बना लिया जाय। अतत हेस्टिग्स अपने कार्यकाल के अत मे सन्यासियो का पराजित करने और उन्हे बगाल से खदेडने म सफल हो गया।

सहायक सधि की ब्रिटिश नीति

अठारहवी शताब्दी के आठवे और नौव दशको मे कपनी की नीति भारत म अपन अधिकृत क्षेत्रो के विस्तार की ओर जितना निदेशित नही थी उतना विजित भूभागो म अपनी सत्ता और भारत के स्वतत्र राज्यो मे अपने प्रभाव को मजबूत बनाने की ओर थी।

यह लक्ष्य भारत के उन स्वतत्र राज्यो को फौजी टुकडिया सुलभ करके प्राप्त किया गया, जो कपनी के साथ सहायक सधि करने की बात मान लेते थे।

इस प्रकार की सधि पर दस्तखत करन क बाद सबद्ध राज्य विदेशी मामलो म अपनी स्वतत्रता खो बैठता था। उसे अपने विदेशी सबध सिर्फ कपनी के ज़रिये चलाने, अपने भूभाग पर तैनात किसी भी फ्रासीसी टुकडी को विघटित करन तथा किसी भी फ्रासीसी को अपनी सेवा म न रखने के लिए विवश किया जाता था। इन दोनो शर्तो ने ऐसी सधि पर हस्ताक्षर करनेवाले राज्यो के लिए अपन को ब्रिटिश प्रभाव से मुक्त करना असभव बना दिया। अत म सहायक सधि के अनुसार ईस्ट इडिया कपनी सभावित आक्रमणकारियो से रक्षा के बहान दस्तखत करनेवाले राज्य के यहा अपनी फौजी टुकडी तैनात करती थी। राज्य का शासक उक्त टुकडी के रख रखाव की जिम्मेदारी ग्रहण करता था और अग्रेज़ो द्वारा निर्धारित पैमान पर उसकी आवश्यकताओ की पूर्ति करता था। कपनी की फौजे अपने अधिकार-क्षत्र म आनवाले इलाका

म कर वसूलन क अधिकार का इस्तेमाल करते हुए उन्हें बेतरह लूट और इस तरह राज्य कपनी का नये इलाके सुपुर्द करने अथवा फौजो के भुगतान के लिए कपनी के कर्मचारियो से लिया गया उधार देने के लिए हो जाता था। ऐसी ही स्थितियो मे राज्य अपने का पूर्ण दिवालिया स्तर मे पाता था। और अत मे बगाल राज्य का उसके खराब प्रशासन के बहाने कपनी के अधिकृत क्षेत्रो मे मिला लिया जाता था।

सहायक सधि के जरिये राज्यो के क्रमिक दासकरण की इस नीति ने आबादी के बीच भयकर विरोध पैदा कर दिया। कभी-कभी एक क्षेत्र की पूरी की पूरी आबादी ब्रिटिश लूट के खिलाफ प्रतिवाद मे खडी हो जाती और स्थानीय विद्रोह बढकर बडा रूप धारण कर लेता था। उदाहरण बनारस (वाराणसी) और अवध की घटनाएं इसी तरह विकसित हुई।

१७७५ मे हेस्टिग्स ने अवध के अधीनस्थ बनारस राज्य का नवाब उसके पिता की मृत्यु के बाद गद्दी के उसके अधिकार की पुष्टि के बदले भुगतान के रूप मे छीन लिया। कपनी ने बनारस के राजा चेतसिह को आश्वासन दिया कि उसके द्वारा अदा की जानेवाली नजराने की रकम को कभी नहीं बढाया जायेगा। लेकिन जब फौजी व्यय को पूरा करने के लिए और धन की आवश्यकता हुई, तो हेस्टिग्स ने राजा से अतिरिक्त रकम मागी। अतत ये माग बढकर यहा तक पहुच गयी कि बनारस राज्य उन्हे अदा करने मे बिलकुल असमर्थ हो गया। फिर हेस्टिग्स यह रकम वसूल करने के लिए खुद बनारस आया। जब चेतसिह ने और मोहलत की माग की तो हेस्टिग्स ने उसकी गिरफ्तारी के आदेश दे दिये। यह समाचार पाकर एक क्रुद्ध भीड महल मे घुस आयी, उसने राज्य की सेवा मे रखे गये ब्रिटिश फौजी सिपाहियो को मार डाला और चेतसिह को मुक्त कर दिया। अग्रेजो द्वारा उनकी निरंतर लूट के परिणामस्वरूप स्थानीय आबादी के बीच असतोष फैल गया था। हेस्टिग्स ने अपने को सकटपूर्ण स्थिति मे पाया। बडी मुश्किल से किसी तरह वह बनारस से बच भागने मे सफल हुआ।

विद्रोह शीघ्र सारे बनारस राज्य मे और यहा तक कि अवध मे भी फैल गया। घबराहट मे अग्रेज वे सभी फौजे जमा करने लगे, जो उनके पास बगाल मे थी। लेकिन चेतसिह की, जो हेस्टिग्स को सुलह के लिए अतहीन अर्जियां भेज रहा था अगुवाई मे बनारस के सामतो की स्थिति और स्थानीय भारतीय बैकरो द्वारा अग्रेजो को दी गयी वित्तीय सहायता ने विद्रोह के दमन को आसान बना दिया। बनारस की गद्दी पर एक दूसरे राजा को बैठा दिया गया, जिसने

अपने पूर्ववर्ती से लगभग दुगुना नज़राना देने तथा कर एकत्र करने और युद्ध की स्थिति मे सिर्फ कपनी की फौजो का इस्तेमाल करने का वचन दिया। बनारस के शक्तिशाली जागीरदारो को अपनी जागीरो से वचित कर दिया गया। कपनी की लूट की वजह से बढते करो के परिणामस्वरूप बनारस की रियासत, जो कभी खूब फल-फूल रही थी अब एक दरिद्र विध्वस्त प्रदेश बनकर रह गयी। १७८८ मे बनारस मे ब्रिटिश रेजिडेट ने घोषणा की कि ऐसा प्रतीत होता है कि रियासत मे हाल के वर्षो मे कुप्रशासन के कारण कम से कम एक तिहाई भाग मे खेती नही हो रही है।

१७८१ मे बनारस मे विद्रोह के दमन के बावजूद अगले ही वर्ष अवध मे भी असतोष भडक उठा। कपनी अवध मे तैनात अग्रेजी फौजो के रख रखाव पर नित बडी से बडी रकम खर्च करने तथा अधिकाधिक क्षेत्र प्रदान करने के लिए नवाब पर दबाव दे रही थी। लेकिन अवध की बाकी जनता ने विद्रोही किसानो को समर्थन नही दिया और अवध के शक्तिशाली सामतो की फौजो ने विद्रोह को कुचल दिया। इस तथ्य के बावजूद कि ब्रिटिश कर भार के कारण १७८४ मे अकाल पड गया था, हेस्टिग्स ने अवध से अपेक्षित खिराज की रकम मे कोई कटौती नही की। अगले वर्षो मे यह ब्रिटिश फौजे ही थी, जिन्होने नवाब को उन करो से उत्पीडित क्रुद्ध जनता से बचाया जिन्हे वह अदा करने की स्थिति मे नही थी।

सामतो के बीच भी असतोष बढता जा रहा था क्योकि अवध का नवाब एक न एक बहाने अपने एकदम खाली खज़ाने को नये सिरे से भरने के लिए कुछ सामतो की सपत्ति जब्त कर रहा था। स्वय नवाब अब सभी तरह से वास्तविक सत्ता से वचित हो गया था। असतुष्ट सामत उस समय बनारस मे निर्वासन मे रह रहे अवध के पूर्ववर्ती नवाब के पोष्य पुत्र वज़ीर अली की सरपरस्ती मे एकत्रित हुए। वजीर अली को बनारस बिहार और बगाल मे अग्रेज़ो द्वारा अपनी सत्ता से वचित मुस्लिम और हिन्दू सामतो, कलकत्ता के आर्मेनियाइयो सहित बगाल के व्यापारियो तथा अवध की स्थानीय फौजो का समर्थन प्राप्त था। उसने रुहेलो के सरदार और ग्वालियर के मराठा राजा के साथ बातचीत शुरू की और अफगानिस्तान मे जमान शाह के पास इस प्रस्ताव के साथ अपने प्रतिनिधि भेजे कि वह भारत पर आक्रमण करे। उसने मस्कत के जरिये फ्रासीसियो के साथ एक सश्रय बनाने की भी कोशिश की। लेकिन अग्रेज़ो ने उसकी गतिविधियो को ताड लिया और उसे कलकत्ता जाने के आदेश दिये। वज़ीर अली ने ऐसा करने से इन्कार किया और विद्रोह कर दिया। यह

गर्नाई जमामयिर थी और विद्रोह को वस्तुत शुरू होने से पहले ही कुचल दिया गया। वज़ीर अली को कलकत्ता निवासित कर दिया गया और १८०१ में हुई एक संधि के अनुसार अवध को गंगा-यमुना घाटी में विशाल भूभाग रुहेलखंड तथा गोरखपुर से हाथ धोना पड़ा। अवध के नवाब को अपनी फ़ौज को विघटित करना पड़ा, जब कि अवध में कंपनी की फ़ौजों को संख्या बढ़ा दी गयी।

१८१४ में जब एक नया नवाब सिंहासनारूढ़ हुआ, तो जनता के असंतोष ने सरकार को भूराजस्व कम करने के लिए बाध्य किया। लेकिन दो साल बाद भारी करों के विरोध में बरेली में विद्रोह शुरू हो गया। इसकी अगुवाई मुफ्ती आवाज़ ने की और विद्रोह को दबाना तभी संभव हुआ, जब विशाल फ़ौज बुलायी गयी। वस्तुत सब कुछ पहले जैसा ही बना रहा। कंपनी ने अवध के अधीन राज्य के खर्चे पर दस हज़ार से अधिक की फ़ौज के रख रखाव को लाभकारी पाया जब कि नवाब ने उनके भुगतान में कोई आपत्ति नहीं की आखिरकार इन फ़ौजों की बदौलत ही तो वह सत्ता में बने रह पा रहा था

दक्षिणी भारत पर अंग्रेजो की विजय

मैसूर राज्य की स्थापना

दक्षिण भारत में अंग्रेज़ी घुसपैठ का सबसे ज़बरदस्त प्रतिरोध मैसूर राज्य ने किया। दक्षिण भारत के मध्य में इस राज्य को जो दो ओर से पूर्वी और पश्चिमी घाटों तथा दक्षिण में कावेरी नदी से घिरे हुए पठार पर अवस्थित है उसकी स्थिति ने अपने शत्रुओं की फ़ौजों के लिए दुर्गम बना दिया था। मुग़लों और मराठों के बीच लंबे युद्धों ने मैसूर को अपनी शक्ति मज़बूत करने का अवसर प्रदान किया था और मुख्य लड़ाइयों के क्षेत्र से दूर रहते हुए इसने ऐसा किया भी। प्रदेश में अनेक पर्वतीय नदियों तथा बांधों और जल भंडारों के जाल सहित कावेरी के प्रचुर जल ने मैसूर के किसानों के लिए भरपूर फ़सलों को सुनिश्चित बना दिया था। भूराजस्व न्यूनाधिक सामान्य था और हस्तोद्योग बहुत विकसित था।

राज्य के अनेक नगरों में कपड़े (मुख्यतया मोटे किस्मों के कपड़े) का उत्पादन होता था, लेकिन मुख्य निर्यात वस्तुएं लोहे की छड़ें थी, जो सारे

भारत म बेची जाती थी। लोहा मुख्यतया पर्वतीय नदियो के रेतीले तटो स प्राप्त किया जाता था जो अयस्क के टुकडा को बहाकर पठार तक ले आती थी। लकडी की प्रचुरता न इस अयस्क को आदिमकालीन भट्ठियो म गलाना और फिर इस छोटी भट्ठियो म बार बार तपा तथा पीटकर लोहा और इस्पात बनाना सभव बना दिया था। इस धधे को ग्रामवासियो ने एक मौसमी आधार पर अपना लिया था। वर्ष के बाकी समय मे मज़दूर या तो अपनी भूमि जोतते थे या अपनी सेवाए अन्य किसानो को मज़दूरी पर दते थे। दस्तकारो के अन्य समूह ये थे शीशागर जो काच की चूडिया बनात थ रगरेज जिल्दसाज नहर बनानवाले और नमक बनानवाले।

१७६१ मे हैदरअली (१७६१–१७८२) नाम के मुस्लिम सेनापति ने हिंदू धर्मावलवी वूडयार राजवश के एक सदस्य के स्थान पर गद्दी पर अधिकार कर लिया। उसने जिस प्रथम कार्य की ज़िम्मेदारी अपन ऊपर ली वह सेना का पुनर्गठन करना था। उसन पहले की टुकडियो क स्थान पर जिन्हे अलग-अलग जागीरदार अपने खर्च पर रखते थे और जो केवल उन्ही के मातहत होती थी खुद अपनी कमान म सिपाहियो और अफसरो की टुकडिया कायम की। उसने जागीर बाटने की पद्धति का समाप्त कर दिया और साथ ही सैनिका के वेतनो का भुगतान सरकारी खजाने से करना शुरू किया। उसने बडे पैमाने पर यूरोपीय अफसरो (विशेष रूप स फ्रासीसी अफसरो) को अपनी सेवा म रखना शुरू किया। इन यूरोपीय अफसरो ने हैदर की सेना को नये सैन्य अनुशासन और नये रणकौशल म प्रशिक्षित कर दिया। हैदर वह पहला भारतीय शासक था जिसने घुडसवार सेना के मुकाबले म पैदल सेना की ओर विशेष ध्यान दिया युद्ध क्षेत्र मे उसकी ४०-५५ हज़ार की फौज मे पैदल सेना के सैनिका की सख्या २६ और ३१ हज़ार के बीच थी। इन मे से २० हज़ार नियमित सैनिक थे जो यूरोपीय पद्धति पर प्रशिक्षित और बदूको से लैस थे। हैदरअली की घुडसवार सेना भी एक ही कमान क अधीन थी और उसने हर घुडसवार सैनिक को एक घोडा प्रदान किया, जिसने घुडसवार सेना को लडाई म और साहस से लडन के लिए प्रात्साहित किया। हैदरअली के पास अग्रेज़ो के तोपखान की टक्कर का और अत्यत गतिशील प्रथम कोटि का एक तोपखाना भी था। उसन एक विशेष फौजी विभाग कायम किया जो युद्ध क्षेत्र म चिकित्सीय देखरेख क सगठन क लिए जिम्मेदार था। फौजी मामलो का उसका सचालन सुसगठित टोह प्रणाली स और भी कार्यक्षम बन गया था।

इन नवीन पद्धतियो और मैसूर क समृद्ध ससाधना क परिणामस्वरूप हैदरअली कुछ वर्षो म ही भारतीय राज्यो की अन्य फौजा क मुकावल म अधिक शक्तिशाली फौज कायम करन म कामयाव हो गया। १७६१ और १७६८ के बीच उसने अनक विजय युद्धो का सचालन किया। १७६१ म उसन हैदरावाद की गद्दी क एक दावेदार से सरा नगर और जिल को तीन लाख रुपय क वदल मे प्राप्त कर लिया। इसके वाद उसन होस्काट, दोद-वल्लपुर, चिक-वल्लपुर, नन्दीदुर्ग गुडीवदा, कोडीकडा और अनक अय निकटवर्ती छोट छाटे रजवाडा को भी अपन राज्य म मिला लिया। इस काल म हैदरअली क राज्य विस्तार म लगभग ६० हज़ार की आवादी क एक वडे नगर वदनोर का जीना जाना सबस महत्वपूर्ण था। पश्चिमी घाट म अवस्थित यह नगर क्लिवदिया के अनक चक्र-व्यूहो से घिरा हुआ था तथा मालावार तट और मालावार और कनारा स मैसूर जानवाले पर्वतीय दर्रो को नियत्रित करता था। वदनार की गद्दी क एक दावदार को समर्थन दन क वहाने हैदरअली ने किले तथा महल क खज़ान की अकूत निधियो पर कब्जा कर लिया, जिन्हे वेदनोर क शासका की कितनी ही पीढिया न सचित किया रखा था। नगर का नाम वदलकर हैदरनगर कर दिया गया और एक महत्वपूण शस्त्रागार म परिवर्तित कर दिया गया।

हैदरअली की फौजो को जिन्हे अव वदनोर दर्रे से हाकर मालावार तट तक निर्बाध रास्ता मिल गया था वेदनोर क अधीन सुडा रियासत का जीतन म कोई कठिनाई नही हुई। वाद म सुडा रियासत कनारा क नाम स विज्ञात हुई जिसम होनावर (ओनूर) और मगलूर क वड वदरगाही नगर सम्मिलित थे। इसके बाद हैदरअली सावनूर क नवाव की फौजो को पराजित करन के लिए आगे वढा लेकिन उसने इस भूभाग को मात्र इसलिए अपन राज्य म न मिलान का निर्णय किया कि हर्जाने की वडी रकम एठी जा सके।

मराठो क विपरीत जा दूसरे राज्यो पर आक्रमण करते तथा उनसे चौथ और सरदेशमुखी वसूल करत थे, हैदरअली न विजित भूभागो को अपन राज्य म मिला लिया। उसने अनक छोटी छोटी रियासतो और जागीरो की जगह एक सयुक्त और शक्तिशाली मैसूर राज्य कायम किया, जो सपूण दक्षिण भारत पर शासन करन और अग्रेज़ो से लोहा लेने मे समर्थ था। परतु सभी विजेताओ की तरह हैदरअली और उसकी सना न अधीन जनता को लूटा और बाद म जब उसे अपनी फौजो के रख रखाव के लिए और धन की आवश्यकता हुई, तो हैदरअली ने नवविजित प्रदेशो म भूमि कर बढा दिये। इन कार्रवाइया न विजित राजाओ और जनता क वीच असतोष पैदा कर

दिया और इस प्रकार मैसूर राज्य के एक के बाद एक क्षेत्रो मे उसक विरुद्ध विद्रोहो के लिए जमीन तैयार की।

हैदरअली के क्षेत्रीय विस्तार ने उसे अनिवार्यत दक्षिण भारत म दो अन्य बडी ताकतो – मराठा सघ तथा हैदराबाद – के साथ सघर्ष मे ला दिया। इन राज्यो मे से किसी की भी सीमाए स्पष्ट रूप से निर्धारित नही थी और सभी अपने पडोसियो की कीमत पर अपन अधिकृत क्षत्रो का विस्तार करने क आकाक्षी थे। अनेक छोटी-छोटी जागीर कभी अपने इस तो कभी उस पडोसी के अधिकार मे आ जाती थी, जिनमे से प्रत्येक उनसे वर्तमान अथवा पूर्ववर्ती अधिराज्य के रूप मे नजराने की माग करता था। जब मराठो न १७६४ म मैसूर पर आक्रमण किया, तो हैदरअली की फौजे दाबारा पराजित हो गयी। लेकिन इसके बाद उसने उन्हे साढे तीन लाख रुपये देकर अपना पिड छुडा लिया।

हैदरअली न अब पश्चिमी घाट पर स्थित बालम और कुर्ग रियासता पर आक्रमण किया, जिनके क्षेत्र म कई महत्वपूर्ण दर्रे थे। बालम न आत्म-समर्पण कर दिया, लेकिन कुर्ग के खिलाफ युद्ध १७६८ तक चलता रहा, जब कि मैसूर फौज को अस्थायी रूप से पीछे हटना पडा था और सुलह करनी पडी थी। हैदरअली की सेना मुस्लिम व्यापारिया मोपला (मप्पिलो) की रक्षा करने के बहाने बालम दर्रे से होकर मालाबार तट तक घुस आयी। १७६५ म कुछ दिनो के भीतर नम्बूद्री ब्राह्मणो ने जिन्होंने कालीकट के सभी महत्वपूर्ण पदो पर कब्जा कर लिया था और योद्धा तथा भूस्वामी नायरो ने, जो कर नही दते थे बशर्ते कि वे फौजी सेवा करत हा छ हजार व्यापारियो को मार डाला था। नायर केवल पैदल सेनाआ की तरह ही लडते थे। उनके मुख्य हथियार तलवार और तीर थ और व हैदरअली की फौज का सामना करने मे असमर्थ थ। अजराकडी नदी क तट पर हुई लडाई म नायरो की सेना पराजित हो गयी और हैदरअली न कालीक्ट पर कब्जा कर लिया। पहली बार मालाबार के पूरे समुद्र तटवर्ती इलाक म भारी भूमि-कर लगाया गया। तीन-चार महीन बाद नायरा न फिर अपनी स्वतत्रता की रक्षा करन का प्रयास किया। नायरा न इस विश्वास क साथ विद्राह कर दिया कि बाढ के जल स उमडती नदिया और अनवरत वर्षा मालाबार को हैदरअली की सेना से निरापद रखगी जो तब तक कोयम्बटूर पहुच गयी थी और हैदरअली द्वारा पीछे छोडी गयी रक्षक-फौजा का पराजित कर दिया। लेकिन मानसून क बावजूद हैदरअली पुन कालीकट पहुच गया और उस

भारी नरसहार के साथ भस्मीभूत कर दिया। १५ हजार स अधिक नायरा को जबरदस्ती मैसूर के मध्य म भज दिया गया।

त्रावणकोर क विरुद्ध हैदरअली क दूसर अभियान न मराठा, हैदराबाद और अग्रजो के आश्रित अर्काट के नवाब को उसक खिलाफ सयुक्त कर दिया। हैदरअली अपने भारतीय शत्रुओ को घूस के बल पर अपनी ओर मिलान म सफल हो गया, लेकिन तभी अग्रेजो न बारामहल पर आक्रमण कर दिया और मध्य मैसूर से होते हुए राजधानी श्रीरगपट्टम तक पहुच जान का खतरा प्रस्तुत कर दिया। यह सूचना मिलने पर हैदरअली के पुत्र टीपू की कमान म घुडसवार सेना ने अर्काट पर हमला कर दिया, जिसक परिणामस्वरूप १७६७ म पहला आग्ल-मैसूर युद्ध शुरू हुआ।

पहला आग्ल-मैसूर युद्ध

दक्षिण भारत मे फ्रासीसियो को पराजित करन तथा बगाल को जीतन क बाद अग्रेजो को आशा थी कि हैदरअली पर उतनी ही द्रुत विजय प्राप्त हो जायेगी। लेकिन १७६७ मे चगमा और त्रिकोमलै मे प्रारभिक लडाइया के बाद हैदरअली बडी मुठभेडो मे नही पडा। उसन अन्य दावपचो और रणकौशल का उपयोग करना शुरू किया उसने अपर्याप्त रूप से रक्षित अलग-अलग टुकडिया और स्थलो पर अचानक प्रहार करत हुए अपनी फौजो को नय युद्ध-क्षेत्रा के लिए बराबर गतिशील बनाये रखा। अग्रेजी पैदल सेना क मुकाबले म मैसूर की घुडसवार सेना और तोपखाने की उच्च गतिशीलता के परिणामस्वरूप इस रणकौशल से हैदरअली ने अनेक अवसरो पर सफलताए प्राप्त की।

शुरू म अभियान अग्रेजो के अनुकूल रहा जो मद्रास और बम्बई दोनो स्थानो से मैसूर पर आक्रमण कर सकते थे। बम्बई की फौज द्वारा समर्थित मालाबार तट के निवासियो न हैदरअली के खिलाफ विद्रोह कर दिया और इस तरह उसे अपनी फौजो को मालाबार स्थानातरित करने के लिए मजबूर होना पडा। इसी बीच मद्रास की सेना ने मैसूर के सपूर्ण दक्षिण पूर्वी भाग पर कब्जा कर लिया। लेकिन अग्रेजी फौजो को, जो अब तक अपने सभरण केन्द्रो से बहुत दूर निकल आयी थी, आहार की कमी खटकने लगी और उन्होने अपनी युद्ध क्षमता को काफी गवा दिया। तभी हैदरअली ने अपनी सर्वोत्कृष्ट फौजो के साथ कर्णाटक पर आक्रमण कर दिया और रास्ते मे पडनवाले गावो को भस्मीभूत करता हुआ अप्रत्याशित तीव्रता के साथ मद्रास के निकटवर्ती

इलाको म पहुच गया। अग्रेज एक शाति सधि पर दस्तखत करन के लिए विवश हुए, जिसके अनुसार दोनो पक्षा ने एक दूसरे से जीते भूभाग लौटा दिये और तीसरे पक्ष द्वारा दोनो म से किसी पर भी आक्रमण होने पर एक दूसरे की सहायता करने का वचन दिया।

परतु जब १७७० मे मराठो न उत्तरी मैसूर पर आक्रमण किया और हैदर न अगजो से सहायता मागी तो अंग्रेज़ो ने इस इस बिना पर ठुकरा दिया कि वे मराठो के साथ एक मैत्री सधि द्वारा पहले से ही आबद्ध है।

हैदरअली के पहले सभी भारतीय राजा अंग्रेजो को अपने जैस शासक ही समझते थे। कभी राजाआ का अग्रेजा क साथ टकराव भी होता था और कभी वे आतरिक शत्रुओ के विरुद्ध उनके साथ सधिया भी कर लेते थे। हैदरअली १७७० मे यह महसूस करनेवाला पहला भारतीय शासक था कि अग्रेज ही भारतीय राज्यो क असली शत्रु है ओर उनके साथ कोई समझौता करन का प्रश्न ही नही पैदा होता। " **हैदरअली और उसके पुत्र टीपू साहब ने कुरान पर हाथ रखकर अग्रेजो से अनत घृणा करने और उन्हे कुचलने की क़सम खायी।"** *

हैदरअली ने १७७२ म मराठा आक्रमणकारियो का तो घूस देकर वापस भेज दिया, क्योकि उसने समझ लिया कि उनके साथ लडने म सपूर्ण मैसूर के ससाधनो को भी नुकसान पहुच सकता है।

अपन खाली ख़ज़ाने को फिर से भरन के लिए हैदरअली ने अधीन राजाओ विशेष रूप से उन राजाओ से ली जानेवाली नज़राने की रकम को बढा दिया, जो पिछले मराठा आक्रमण के दौरान शत्रु पक्ष म जा मिले थ। १७७२–१७७३ मे हैदरअली ने एक बार पुन मालाबार तट पर अधिकार कर लिया और १७७४ म उसने कुर्ग रियासत पर कब्जा कर लिया।

पहला आग्ल-मराठा युद्ध

इसी बीच अंग्रेज़ो और मराठो के बीच युद्ध छिड चुका था और हैदरअली ने अपने को उसमे फसा पाया। १७६१ मे पानीपत की तीसरी लडाई म मराठा सेनाओ के पराजित हो जाने के बाद अन्य मराठा राजाओ पर पेशवा का प्रभुत्व उतना मजबूत नही रह गया था कि जितना वह पहले था। मराठा

---

* Karl Marx *Notes on Indian History* p 95

राज्यो मे अब सबसे प्रमुख ग्वालियर (जहा सिधिया अथवा शिद राजवश सत्तारूढ था) और इदौर (जहा होल्कर राजवश शासन करता था) थ। फिर भी पेशवा माधवराव प्रथम (१७६१–१७७२) के शासनकाल म महाराष्ट्र बराबर दक्षिण भारत म एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता रहा। माधवराव प्रथम की मृत्यु के बाद पूना म सत्ता क प्रतिद्वद्वियो के बीच युद्ध शुरू हो गया। उनमे से एक रघुनाथराव (राघोबा) ने पहले हैदरअली स सहायता की याचना की, जो कुर्ग के खिलाफ अपन अभियान म व्यस्त हाने के कारण ऐसा करने की स्थिति मे नही था। फिर उसन बम्बई कौसिल से सहायता मागी जिसके साथ सधि करके उसन बसई और साष्टी के मराठा भूभागो तथा बम्बई क निकटवर्ती कुछ छोटे द्वीपो को अग्रेजो को दे देन का वादा किया। इसके अलावा रघुनाथराव न २,५०० सैनिका की एक टुकडी के जिसे उसे देने का वचन दिया गया था, रख रखाव क लिए डढ लाख रुपये मासिक भुगतान करना भी स्वीकार कर लिया।

लेकिन आक्रमणकारी अग्रेजी फौजो को सयुक्त मराठा सरदारो के दृढ प्रतिरोध का सामना करना पडा। हेस्टिंग्स ने भारत मे अग्रजी अधिकृत क्षेत्रो के प्रधान की हैसियत से सूरत की सधि को रद्द कर दिया और रघुनाथराव के प्रतिद्वद्वी तथा शिशु पेशवा माधवराव द्वितीय के मत्री नाना फडनवीस के साथ पुरदर की सधि की। इस सधि की शर्तो के अनुसार पेशवा ने अपनी फौज हटाने के बदले मे कपनी को १२ लाख रुपये देने तथा इसके अलावा कपनी को तीन लाख रुपये राजस्व के इलाके देने का वचन दिया। साष्टी द्वीप भी अग्रेजो के हाथ मे बना रहा। बम्बई कौसिल ने हेस्टिंग्स के निर्देशो को नामजूर कर दिया और रघुनाथराव को सत्तारूढ कराने के लिए फिर फौजे भेजी।

बम्बई से भेजी गयी इस सेना ने शीघ्र ही अपने को पूना से मात्र २० किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित वडगाव मे महादजी शिदे (सिधिया) की फौजो से घिरा हुआ पाया। इसकी स्थिति अत्यत गभीर थी, लेकिन महादजी सिधिया अग्रेजो क इस वचन से धोखे मे आ गया कि उसे पेशवा से स्वतत्र रूप म मान्यता प्रदान की जायेगी और वह वडगाव मे अग्रेजो के साथ एक सधि पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार हो गया जिसके अनुसार अग्रेजो ने रघुनाथराव को पेशवा के सुपुर्द कर दिया और वे सारे भूभाग मराठो को लौटा दिये, जो उन्होने १७७६ के बाद जीते थे। सिधिया ने इसके बाद अग्रेजी फौजा को बम्बई के लिए प्रस्थान करने दिया। फौजो के खतरे स बाहर होते ही बम्बई कौसिल ने सधि को पुष्ट करने स इन्कार

कर दिया। इससे मराठा नेता, जिन्हे इतनी निर्ममतापूर्वक धोखा दिया गया था, १७८० मे हैदरअली और निज़ाम के साथ हाथ मिलाने के लिए विवश हो गये। मराठो और हैदराबाद ने मैसूर द्वारा विजित भूभागों को उसके वैध भूभागो के रूप मे मान्यता दे दी, जब कि हैदरअली की फौजो ने कर्णाटक पर निर्णायक प्रहार करने तथा युद्ध का वार स्वय झेलने का दायित्व ग्रहण किया। फ्रासीसियो ने हैदरअली को सहायता देने का वचन दिया क्योकि उस समय वे कनाडा म अपने अधिकृत क्षेत्रो पर अधिकार बनाये रखने के लिए अग्रेजो के साथ युद्ध कर रहे थे। यही व घटनाए थी, जो दूसरे आग्ल मैसूर युद्ध की पीठिका थी जिसका स्वीकृत उद्देश्य एक तत्कालीन अग्रज अफसर की टिप्पणियो के अनुसार भारत मे अग्रेज़ी प्रभुत्व को समाप्त करना था।

उस समय भारत म केवल दो ताकत – मराठा सघ और मैसूर ही अग्रेज़ी विजयो को रोक सकने की स्थिति मे थी। लेकिन इनमे भी मैसूर अधिक केन्द्रीयकृत और ससक्तिशील था उसके पास अधिक आधुनिक सेना थी तथा उसके मध्यवर्ती प्रदेशो की आबादी जातीय दृष्टि से अधिक समरूप थी। यही कारण है कि मैसूर अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे भारत मे अग्रेज़ी प्रसार के प्रतिरोध की अगली पक्ति मे था। लेकिन मैसूर की प्रतिरक्षा मे एक खामी थी उसके द्वारा हाल ही मे जीते गये प्रदेशो – मालाबार कुर्ग आदि -- की जनता अपनी हालत से असतुष्ट थी। अग्रेज़ अकसर इन क्षेत्रो म विद्रोह उकसाते रहते थे, लेकिन उन्हे हैदरअली कुचल देता था। वह मैसूर म भूमि-करो के सग्रह पर बडी सतर्क निगाह रखता था और कर-सग्रह अधिकारियो द्वारा छिपायी गयी रकमो को प्राप्त करने के लिए उन्हे कोडे तक लगवाता था। इस सदर्भ मे उसकी धार्मिक नीति भी महत्वपूर्ण थी। हैदरअली ने हिन्दुओ की धार्मिक भावनाओ को ठेस पहुचाने से बचने की कोशिश की। वह वाणिज्य और दस्तकारी का सरक्षक था और उसन अनेक आयुध निर्माणशालाए स्थापित की, जिनमे यूरोपीय इजीनियरो की निगरानी म हथियार बनाये जाते थे।

दूसरा आग्ल-मैसूर युद्ध

१७८० म हैदरअली ने स्वय अपने सेनापतित्व म एक विशाल सना लकर कर्णाटक पर आक्रमण कर दिया। इससे पहले कभी इतनी बडी किसी और सेना न दक्षिण भारत म सैनिक कार्रवाइया नही की थी। सना के एक हिस्स न

पोर्टो नोवो पर अचानक आक्रमण कर दिया और समृद्ध बदरगाह पर कब्जा करने मे सफल हो गया, जब कि हैदर के पुत्र टीपू के नेतृत्व म दूसरे हिस्से न अर्काट पर घेरा डाल दिया। टीपू की फौजा न कर्नल बेली के मातहत एक बडी टुकडी को घेरकर पराम्बकम (पोलिलूर) की लडाई म नष्ट कर दिया, जब कि अग्रेजी फौज के प्रधान सेनापति मनरो को काजीवरम स हटकर मद्रास जाने के लिए विवश होना पडा। इसक शीघ्र बाद अर्काट पर भी कब्जा हो गया, जिसका मतलब यह था कि वस्तुत सपूर्ण कर्णाटक हैदरअली के हाथा म आ गया।

एक ओर उस समय के उत्कृष्टतम अग्रेज कमाडर आयर कूट के नेतृत्व म बगाल से भेजी गयी कुमक के पहुचने और दूसरी ओर हैदराबाद के निज़ाम के साथ समझौते पर हस्ताक्षर होने से युद्ध का पासा पलट गया। इस समझौते के अनुसार हैदराबाद को ब्रिटिशविरोधी सश्रय से अलग होना और इसके बदले म गुतूर जिला (जिस पर पहले अग्रेजो न कब्जा कर लिया था) प्राप्त करना था। स्थल पर कूट तथा समुद्र पर एडमिरल ह्यूज के सयुक्त प्रयासा न फ्रासीसी फौजो को जो मारिशस से समुद्र के रास्ते रवाना हुई थी उतरने से रोक दिया। कूट ने १७८१ मे पोर्टो-नोवो, पेराम्बकम और शोलिंगलूर म हैदरअली की सेना पर और भी अनेक जीते प्राप्त की।

इसके बाद मालाबार तट बालम और कुर्ग मे मैसूर के खिलाफ विद्रोह शुरू हो गये। इस आशका से कि कही डच हैदरअली के साथ सश्रय न बना ले, अग्रेजी फौजो ने दक्षिणी भारत म डच दुर्ग नेगापट्टम पर कब्जा कर लिया। अग्रेजी टुकडियो ने रात मे अचानक आक्रमण करके ग्वालियर के अभेद्य समझे जानेवाले दुर्ग पर भी कब्जा कर लिया, जहा महादजी सिधिया ने अपनी राजधानी कायम की थी। फलत सिधिया १७८२ मे साल्बाई की सधि पर हस्ताक्षर करने के लिए विवश हुआ, जिसके अनुसार अग्रेजो ने उसे एक स्वतत्र शासक के रूप म मान्यता प्रदान की। बाकी मराठा नेताओ ने भी अग्रेजो के खिलाफ सघर्ष बद कर दिया।

ठीक इसी समय, जब हैदरअली अत्यत बुरी स्थिति मे फसा हुआ था एडमिरल सूफ्रा के नेतृत्व म एक फ्रासीसी बेडा उसकी सहायता के लिए आ पहुचा और जनवरी १७८२ म मद्रास के पास समुद्री लडाई मे फ्रासीसियो ने एडमिरल ह्यूज के युद्ध मे नष्ट-भ्रष्ट जगी जहाजो को पीछे हटने के लिए विवश कर दिया। कर्नल ब्रेथवेट के नेतृत्व म एक बडी अग्रेजी फौज न अपने को अप्रत्याशित रूप से अनागुडी के निकट टीपू की सेना द्वारा घिरा पाया।

एक भारतीय इतिहासकार के विवरण के अनुसार दक्षिण म अग्रेजी फौज इस पराजय से इतनी क्षीण हो गयी कि कुछ समय तक वह दूसरे युद्ध मे भाग लेन म भी असमर्थ हो गयी। फासीसियो के उतरन की प्रतीक्षा म हैदरअली न कडुलूर के बदरगाह पर कब्जा कर लिया जो फासीसी फौजो के लिए अड्डा बन जाता। फासीसी और अग्रेजी बेडो के बीच और भी कई अवसरो पर लडाई हुई, लेकिन युद्ध का परिणाम कभी निर्णायक नही रहा। तभी दिसबर, १७८२ म हैदरअली की जो काफी समय स बीमार था, मृत्यु हो गयी। उसके पुत्र टीपू सुल्तान न मुख्यतया अपने पिता की नीतियो को जारी रखा और भारत स अग्रेजो को भगाना अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य माना। वह एक योग्य कमाडर था और उसे अपनी फौज का वफादार समर्थन प्राप्त था।

लेकिन अपन शासनकाल के प्रारम्भ म ही टीपू न एक भयकर भूल की। उसन इस आशय का एक गुप्त आदेश जारी किया कि हैदर के कृपापात्र और बेदनोर के कमाडर शेख अयाज को जिससे वह घोर नफरत करता था कत्ल कर दिया जाय। यह आदेश खुद अयाज के हाथो मे पड गया और अपना जीवन बचाने के लिए वह अग्रेजो के पक्ष म चला गया और जनवरी, १७८३ मे जनरल मैथ्यूज के नेतृत्व मे बम्बई की फौज को बेदनोर बिना एक भी गोली चले सौप दिया। बेदनोर की क्षति टीपू के लिए भीषण आघात था। इसका मतलब यह था कि अग्रेजो के लिए मैसूर के मध्य तक रास्ता खुल गया था।

टीपू के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि बम्बई की फौज भारत स्थित अग्रेजी फौजो म सबसे कमजोर थी और मैथ्यूज एक अकुशल और अस्थिरबुद्धि कमाडर था। बेदनोर के किले पर कब्जा करन के बाद मैथ्यूज और उसके अफसरो ने वहा सचित विशाल सपदा पर अधिकार कर लिया। सैनिको ने भी समृद्ध नगर के निवासियो से जो कुछ सभव हुआ लूट लिया। इस सब के परिणामस्वरूप बम्बई की फौज भ्रष्ट होती जा रही थी और टीपू बेदनोर के चारो ओर अपनी सभी फौजो को जमा करके और इसे भूखो मारकर नगर पर कब्जा करने म सफल हो गया। मैथ्यूज ने आत्म समर्पण कर दिया। बेदनोर लेने के बाद टीपू ने मालाबार तटवर्ती प्रदेश पर आक्रमण किया, जहा वह अग्रेजो के अनेक किलो पर कब्जा करन मे सफल हुआ। १७८३ उसने मालाबार तट पर बम्बई की फौज के अतिम दुर्ग मगलूर पर घेरा डाल दिया। ठीक इसी समय वयोवृद्ध बुसी के नेतृत्व मे फ्रास से कुमक कडुलूर पहुची।

जुलाई १७८३ मे अग्रेजो और फासीसियो के बीच हुई शाति सधि का

समाचार भारत पहुचा। भारत म सभी फ्रासीसियो, अर्थात कवल बुसी के साथ कड्डलूर आनेवाले फ्रासीसियो न ही नही, वल्कि टीपू क नेतृत्व म सवा करन और मगलूर की घेरेबदी म भाग लेनेवाले फ्रासीसियो ने भी अग्रेज़ो के खिलाफ लडाई जारी रखन स इन्कार कर दिया। ऐसी स्थिति म जब कि सिधिया की फौजो के आक्रमण (चूकि सिधिया अग्रजो का मित्र वन गया था) का सामना करने का खतरा भी प्रस्तुत हो गया था, अकेले घेरा जारी रखने का मैसूर की सेना का प्रयास असफल हो गया। ११ मार्च, १७८४ को टीपू मगलूर की सधि करने के लिए विवश हुआ, जिसके अनुसार उसन कर्णाटक से अपनी सभी फौजे वापस हटान का वचन दिया। अपनी ओर से अग्रेज़ो ने मालावार तट छोडने का वचन दिया। दोना पक्षो ने युद्धवदियो को रिहा करने का भी आश्वासन दिया। इस तरह दूसरा आग्ल-मैसूर युद्ध समाप्त हुआ, जिसके दौरान दोनो पक्षा की नियतियो मे इतन नाटकीय परिवर्तन आये थे।

मगलूर की सधि के समय से ही ब्रिटेन, जो लडाइयो को भडकाता आया था और जिस अपनी विजय पर विश्वास था, मैसूर के खिलाफ सघर्ष म आक्रामक बना रहा था। औद्योगिक क्राति का प्रभाव उसकी वढती फौजी शक्ति मे दिन प्रतिदिन अधिकाधिक प्रकट होता जा रहा था। ऐसी परिस्थिति म टीपू ने अपनी रणनीति बदल दी। अग्रेज़ो क खिलाफ सघर्ष मे उसने मुस्लिम शासको म नये मित्र वनान का प्रयास किया। दक्षिण भारत मे बदली हुई इस स्थिति से ही हम बहुत हद तक उन कारको का पता चलता है, जिनकी बदौलत टीपू सुल्तान की आतरिक और विदेश नीति हैदरअली की आतरिक और विदेश नीति से भिन्न हो गयी।

अग्रेज़ ही नही बल्कि टीपू सुल्तान को भी इसका अहसास था कि दक्षिण भारत मे उनकी प्रतिद्वद्विता की बदौलत एक दूसरा युद्ध होकर रहेगा और दोना पक्षो ने तैयारिया करना शुरू कर दिया था। १७८६ – १७८७ मे टीपू ने मराठो और हैदराबाद के खिलाफ युद्ध शुरू कर दिया और इसमे विजयी होने के बाद अनेक मराठा रियासतो को अपने राज्य मे मिला लिया। लेकिन इस विजय के बावजूद उसने ऐसी शर्तो पर सुलह की जो असल मे मराठा के अनुकूल थी, क्योकि वह उन्हे अग्रेज़ो की गोद म नही धकेलना चाहता था। १७८७ म टीपू न अपनी राजधानी श्रीरगपट्टम मे पादशाह की उपाधि धारण की और इस तरह इस भ्राति का अत कर दिया कि सत्ता का स्वामी मैसूर का हिन्दू राजा है।

अग्रेज आक्रमणकारियो के विरुद्ध एक और युद्ध की सभावना को अनिवार्य

मानकर टीपू ने फ्रास से सहायता का अनुरोध किया। उसने दो शिष्टमडल फ्रास भेजे, जिनमे से एक को कुस्तुन्तुनिया से आगे न जा पाने के कारण स्वदेश लौट आना पडा, जब कि दूसरा जून, १७८८ मे अपने गतव्य-स्थान पर पहुच गया। टीपू का प्रस्ताव था कि फ्रास अग्रेजो के खिलाफ उसके साथ एक रक्षात्मक और आक्रामक सधि कर ले। टीपू के दूता का वेर्साई मे भव्य स्वागत किया गया, लेकिन फ्रास म बुर्जुआ त्राति के ठीक पहले स्थिति ऐसी थी कि वह दूरस्थ भारत को कोई फौज भेजन की स्थिति मे नही था।

इसके पहले १७८४ और १७८५ म भी टीपू ने दो शिष्टमडल कुस्तुन्तुनिया भेजे थे और सुल्तान से एक मुस्लिम बधु की सहायता करने की अपील की थी। लेकिन उस समय तुर्की रूस के साथ युद्ध म फसा हुआ था और स्वय ब्रिटेन से समर्थन की आशा कर रहा था। अत वह टीपू की सहायता करने के लिए तैयार नही हुआ।

इधर मालाबार तट और कुर्ग मे लगातार विद्रोह भडक रहे थे। १७८६ मे टीपू को मालाबार तट को वस्तुत फिर से जीतना पडा था। १७८८ मे भी मैसूर की सेनाओ पर नायरो के आक्रमण जारी ही थे। १७८८ मे कुर्ग मे एक विद्रोह शुरू हो गया। अभी टीपू की सना कुर्ग मे ही थी कि मालाबार तट क लोगो ने हथियार उठा लिये और जव मैसूर की सेनाओ न मालाबार तट के लिए कूच किया तो कुर्ग के लोगो ने एक बार पुन अपने देश को केवल मुख्य किले को छोडकर स्वतत्र कर लिया।

टीपू को कुर्ग मे घटनाओ की उपेक्षा करने के लिए विवश होना पडा क्योकि अब उसके लिए त्रावणकोर की घटनाओ की तरफ ध्यान देना आवश्यक हो गया था। सत्रहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे त्रावणकोर ने तेजी से प्रमुखता प्राप्त कर ली थी और एक छोटी सी रियासत से एक अपेक्षाकृत शक्तिशाली राज्य मे परिवर्तित हो गया था। त्रावणकोर के राजा ने मालाबार तट के सपूर्ण दक्षिणी भाग को जीत लिया और धीरे-धीरे सपूर्ण मालावार तट पर अपना अधिकार करने का इरादा कर रहा था। लेकिन हैदरअली ने उसकी चाल को पहले ही नाकाम कर दिया। परिणाम यह हुआ कि त्रावणकोर के राजा ने मैसूर को अपना असली दुश्मन मान लिया और अग्रेजो से मित्रता करन की कोशिश करने लगा। दूसरे आग्ल मैसूर युद्ध के समय उसन अग्रेजी फौज को सहायता दी। इस बात की आशका से कि ऐसा न हो कि टीपू उस पर आक्रमण कर दे, उसने १७८८ मे सहायक सधि की शर्तो के अनुसार दो बटालियने अपने यहा रख ली थी। फिर उसने मैसूर के अधीन राज्य कोचीन म

किलेबदिया खडी करना शुरू किया। १७८९ के अत म टीपू की फौज इन म घुम गयी, लेकिन वे पराजित हो गयी। परतु उन्ह भेदने का दूसरा प्रयास सफल हुआ। राजा की सेना सिर पर पैर रखकर भाग गयी। तभी अग्रज़ो न अपन मित्र त्रावणकोर की रक्षा करने के बहाने मैसूर पर आक्रमण कर दिया।

तीसरे और चौथे आग्ल-मैसूर युद्ध

भारत के गवर्नर जनरल कार्नवालिस (१७८६–१७९३) ने १७९० मे युद्ध प्रारभ होने क पहले मैसूर के खिलाफ पेशवा और निज़ाम के साथ एक फौजी सधि की जिसके अनुसार विजय प्राप्त करने के बाद अग्रेज़ो के मित्रो को हैदरअली और टीपू द्वारा विजित उनके पहले के भूभाग लौटा दिये जाने ये जब कि मैसूर के अपने स्थायी भूभागो को कपनी, पूना और हैदराबाद के बीच तीन बराबर भागो मे बाट लिया जाना था। निजाम और पेशवा को २५-२५ हजार सैनिक जुटाने तथा अग्रेज़ो के साथ कधे से कधा मिलाकर लडने के लिए विवश किया गया। इसके साथ ही कार्नवालिस ने कुर्ग, कोचीन और मालाबार तट क्षेत्र म असतुष्ट तत्वो से सपर्क स्थापित किया तथा उन्ह फौजी सहायता और इसका आश्वासन दिया कि यदि वे कपनी के अधीन राज्य बनने के लिए सहमत हो जाये तो उनसे बहुत कम खिराज मागा जायेगा।

कार्नवालिस की रणनीतिक योजना के अनुसार अग्रेज़ी फौजो ने मैसूर पर तीन ओर से आक्रमण किया, जब कि मराठा और निज़ाम से मैसूर के सीमावर्ती प्रदेशो को विध्वस्त करने और मैसूर की घुडसवार सेना से अग्रेजी फौजो की रक्षा करने की माग की गयी। सयुक्त मित्र सेनाओ की सख्या ५७ हज़ार थी। बगलूर पर कब्जा कर लिया गया और उसे तहस नहस कर दिया गया। इसके बाद अग्रेजी फौजो ने श्रीरगपट्टम पर घेरा डाल दिया। तीन सप्ताह के घेरे के बाद टीपू सुल्तान सुलह की शर्ते स्वीकार करने के लिए विवश हो गया। कार्नवालिस को भी इस सुलह की सख्त जरूरत थी, क्योकि उसकी फौजे आवश्यक साज सामान का अभाव अनुभव करने लगी थी और उसके भारवाही पशुओ मे महामारी फैल गयी थी।

१७९२ मे श्रीरगपट्टम की सधि पर हस्ताक्षर हुए। टीपू को ३३० लाख रुपये का हरजाना देना पडा और पूरी रकम के अदा हो जाने तक अपने दो पुत्रो को अग्रेज़ो के हाथो मे बधक रखना पडा। मराठो को कृष्णा नदी तक और

हैदराबाद को तुगभद्रा और कृष्णा नदियो के बीच के अपने-अपने पहले के भूभाग वापस मिल गये। इधर अंग्रेजो ने बारामहल और डिडिगुल तथा मालाबार और कुर्ग के एक विशाल भाग को अपने अधिकृत क्षेत्रो मे मिला लिया। इसका मतलब यह था कि अब कर्णाटक और बम्बई से मैसूर जानेवाले मार्गों के सभी दर्रो पर उनका नियत्रण हो गया था। लेकिन कार्नवालिस ने मैसूर को नष्ट करना शुरू नही किया बल्कि उसे मराठो के मुकाबले मे इस्तेमाल करने के लिए एक सतुलनकारी राज्य के रूप मे स्वतत्र राज्य ही बने रहने देने का निश्चय किया।

जब युद्ध समाप्त हुआ तो टीपू ने राज्य प्रशासन को मजबूत करना शुरू किया। उसने देश को नये युद्ध के लिए तैयार करने के उद्देश्य से अनेक आतरिक सुधार लागू किये। पहला उद्देश्य सेना को पुनर्सगठित करना था घुडसवार सेना की सख्या कम कर दी गयी और पैदल सेना का आकार बढाया गया। युद्ध के हरजाने के भुगतान तथा सेना के रख रखाव के लिए काफी ससाधनो की आवश्यकता थी और इस वजह से टीपू ने भूमि-कर मे ३० प्रतिशत और व्यापार शुल्क तथा चुगी मे सात प्रतिशत से अधिक की वृद्धि की। पादशाह ने ऐसी स्थितियो मे छोटे सामतो अथवा पालयक्करो (पोलिगारो) , जागीरदारो और हिन्दू मदिरो की भूमि पर कब्जा करना शुरू कर दिया जब इससे आबादी के बीच अतिशय असतोष पैदा होने की सभावना नही थी।

यह देखते हुए कि हिन्दू दरबारियो – मैसूर के राजा के समर्थको – ने टीपू सुल्तान के साथ बार-बार विश्वासघात किया था पादशाह अपने दरबार मे मुसलमानो पर अत्यधिक विश्वास करने लगा था और उन्हे ही सबसे जिम्मेदार पदो पर रखने का प्रयास करता था। परतु राजस्व के मामले जो ब्राह्मणो के हाथो मे थे, नियत्रित करने के लिए बडे जिलो मे मुस्लिम गवर्नर नियुक्त करने के उसके प्रयासो के फलस्वरूप ऐसे देश मे घूसखोरी और भी बढ गयी, जहा भ्रष्टाचार पहले से ही अतिव्याप्त था। कर-सग्रह अधिकारी किसानो से एक ही कर को बार-बार जबरदस्ती उगाहते थे और राजस्व की प्राप्ति को नियत्रित करने के लिए नियुक्त कर्मचारियो की तो बात ही क्या, मीर सादिक को भी घूस देने से बाज नहीं आते थे, जिसे स्वय टीपू ने राजस्व विभाग का प्रधान नियुक्त किया था। मतलब यह कि राजस्व-सग्रह को राजकीय तत्र के हाथो मे सकेद्रित करने तथा सामतो को प्राप्त व्यापक सपत्ति अधिकारो का उन्मूलन करने के टीपू के प्रयासो को हमेशा उनके दृढ प्रतिरोध का सामना करना पडा।

यूरोपीयो की तकनीकी श्रेष्ठता से भली-भाति परिचित होने के कारण टीपू ने अपने देश मे नये शिल्प, विशेष रूप से फौजी मामलो के लिए आवश्यक शिल्प कायम करने का प्रयास किया। फ्रासीसी अफसरो की सहायता से उसने श्रीरगपट्टम म तोपो और बदूको के उत्पादन का प्रबध किया। लेकिन उत्पादन की गति (प्रति माह एक तोप और पाच-छ बदूके) सेना की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए बिलकुल अपर्याप्त थी। निरकुश विधियो से देश का द्रुत आर्थिक विकास करने के टीपू के सभी प्रयास असफल हुए, उल्टे उन्होंने देश की कठिन आर्थिक स्थिति को और भी कठिन बनान तथा असतोष को वढाने मे ही सहायता की। बेगार के आधार पर राजकीय उद्यम चलाने के प्रयास किये गये व्यापार को राजकीय नियत्रण के अधीन ले आया गया, जिससे व्यापारियो को मालो के लिए वास्तविक लागत से बहुत ऊची कीमते देनी पडती थी, राजकीय इजारेदारी स्थापित करके मालाबार से मालो के आयात को उसके अधीन कर दिया गया और दक्षिण भारत मे अग्रज अधिकृत क्षेत्रो के साथ व्यापार को निषिद्ध कर दिया गया। लोगो को ज़बरदस्ती उन नये नगरो म जाकर बसने के लिए विवश किया गया, जिन्हे टीपू ने अपना नाम फैलाने के लिए अपनी प्रमुख विजयो के स्थलो पर वसाया था। टीपू के कुछ सुधार महज़ उसकी झक्का के परिणाम ही थे और देश के लिए उनका कोई वास्तविक महत्व नही था (उदाहरणार्थ लोगो पर अपनी पोशाको का ढग बदलने के लिए दबाव डालने, सरकारी विभागो और कार्यालयो, महीनो और दिनो के नाम बदलने, जिलो की सख्या बढाने अथवा उन्हे पुनर्सगठित करने, सेना को अतर्विभाजित करने, आदि के प्रयास)।

अनेक बडे प्रयासो के असफल होने के बावजूद टीपू कुछ वर्षो के बाद राजकीय कोष को पुन भरने, कृषित भूमि के रकबे मे वृद्धि करने और शक्तिशाली सेना फिर खडी करने मे सफल हो गया। १७९४ मे अग्रेजो को युद्ध के हरजाने की रकम अदा हो गयी थी और टीपू के पुत्रो को उस वापस लौटा दिया गया था। टीपू पुन एक शक्तिशाली प्रतिद्वद्वी बन गया था और इसलिए अग्रेज़ो ने मैसूर पर आक्रमण करने का निर्णय किया।

टीपू ने फिर व्यग्रतापूर्वक अपने सहधर्मी शासको से सहायता प्राप्त करने की कोशिश शुरू की। उसन अफगानिस्तान के शासक ज़मान शाह को विश्वास दिलाया कि भारत को जीतना आसान होगा। अफगानिस्तान का शाह इन प्रस्तावो और अवध के भूतपूर्व नवाब के बुलावे से भी लालच मे आ गया और उसन पजाब पर हमला बाल दिया। परतु सिखो के कठोर प्रतिरोध का सामना

होने और स्वदेश मे अपन विरुद्ध षडयत्रा का समाचार मिलने के बाद वह अफगानिस्तान लौट गया। टीपू न एक रुहेला सरदार के साथ भी बातचीत शुरू की।

उसने फ्रास से भी सहायता मागी। १७९३ मे टीपू ने एक दूसरा गुप्त शिष्ट मडल फ्रास भजा। लेकिन यह ज्ञात नही है कि शिष्ट मडल ने किसके साथ और किस बारे मे वार्ताए की। १७९५–१७९६ मे टीपू ने भारत से अग्रेज आक्रमणकारियो को खदेडने के उद्देश्य से फ्रास और मैसूर के बीच एक गुप्त आक्रामक तथा रक्षात्मक सश्रय के लिए अपनी योजना फ्रासीसियो को भेजी। १७९७ मे उसने भारत मे फ्रासीसिया के साथ अधिक घनिष्ठ सपर्क कायम करन का निर्णय किया। श्रीरगपट्टम मे एक जैकोबिन क्लब स्थापित किया गया, हालाकि उसका कार्यक्रम बहुत अस्पष्ट था। टीपू सुल्तान की उपस्थिति म क्लब के सदस्या ने विधि विधानपूर्वक एक स्वातत्र्य-वृक्ष लगाया और उस अवसर पर दिये गय अपने भाषणो मे सभी अत्याचारी शासको की मृत्यु की घोषणा की तथा 'नागरिक टीपू' के दीर्घ जीवन की शुभकामना की। उसे साक्यूलोत (फ्रासीसी क्रातिकारी फैशन की) टोपी पहनायी गयी। स्पष्टतया टीपू को उन घटनाओ की समझ नही थी जो उस समय घट रही थी। फिर भी उसने देख लिया कि इस समारोह ने उसे फ्रासीसी टुकडिया का वफादार समर्थन प्राप्त करने म सहायता की और इसे उसने अत्यत महत्त्वपूर्ण माना।

टीपू ने फ्रासीसी सहायता प्राप्त करने का एक और प्रयास किया। उसन एक स्कूनर (दो मस्तूली तेज जहाज़) पर दो गुप्त दूत रवाना किये। उनमे से एक को मारिशस द्वीप स फ्रासीसी फौजे लानी थी और दूसरे को सहायता प्राप्त करन के लिए फ्रास जाना था। परतु दूता के मारिशस द्वीप पहुचने से पहले ही वहा फ्रास मे राज्य-पर्युत्क्षेपण की खबर पहुच गयी थी। मतलब यह कि अब दूतो को फ्रास भेजना बेकार था। द्वीप के गवर्नर ने दूतो के पहुचने का भेद खोल दिया। उसने एक घोषणा करके टीपू के झडे के नीचे अग्रेज़ो के खिलाफ सघर्ष मे स्वयसेवको का आह्वान किया। लेकिन उसका नतीजा नगण्य सिद्ध हुआ दूतो के साथ मात्र ९९ फ्रासीसी मैसूर के लिए रवाना हुए। टीपू की हलचल की सूचना पाकर और बोनापार्त द्वारा, जो भारत पहुचने और टीपू के साथ जा मिलने को आतुर था, शुरू किये गये मिस्री अभियान से आशकित होकर अग्रेज़ो ने सोचा कि उनके लिए अब अपन खतरनाक शत्रु मैसूर को जल्दी से जल्दी नष्ट करना आवश्यक हो गया है।

भारत के नये गवर्नर जनरल लार्ड वेलेज़ली (१७९८–१८०५) द्वारा

प्रस्तावित नीति को लदन म पूर्ण स्वीकृति प्राप्त हुई। शुरू म उसने भारत म ब्रिटेन के एकमात्र प्रबल यूरापीय विरोधी – हैदरावाद के शासक की सेवा म फ्रासीसी टुकडी – को निष्प्रभाव कर देन का निर्णय किया। निज़ाम को फ्रासीसी टुकडी क वदले मे एक अग्रज़ी टुकडी देने का वचन दिया गया। अग्रेज़ो ने फ्रासीसियो को घेर लिया उन्ह बिना एक भी गोली चलाये निरस्त्र कर दिया और निज़ाम पर बकाया उनके वेतना का भुगतान करने के बाद टुकडी को विघटित कर दिया। इसके बाद वेलेजली की सेना न मैसूर पर आक्रमण किया। कानवालिस की सभी गलतियो से सबक ले लिये गये थे। इस वार अग्रेज़ी फौज पूरी तरह लैस थी। टीपू के कमाडरो ने, जो उसके निरकुश व्यवहार स नाराज़ थे, अपन पादशाह के साथ गद्दारी की। परिणामस्वरूप अग्रेजो न श्रीरगपट्टम को फिर घेर लिया और २८ अप्रैल, १७९९ को अचानक आक्रमण करके उसे सर कर लिया। स्वय टीपू वीरतापूर्वक लडते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। अग्रेजी फौजो न कई दिन बिना किसी प्रतिरोध के श्रीरगपट्टम को लूटा।

मैसूर पर इस विजय न अग्रेज़ो द्वारा भारत के पूर्ण अधीनीकरण को सभव बना दिया। तीस वर्ष से मैसूर की जनता बराबर अपनी स्वतत्रता की रक्षा करती आयी थी। अग्रेज विजेताओ के खिलाफ उसका सघर्ष वास्तव म वीरतापूर्ण था। १७९९ म अपने पतन तक मैसूर प्रतिरोध का केन्द्र बना रहा था। सामती मैसूर पर पूजीवादी ब्रिटेन की अतिम विजय अनिवार्य थी। लेकिन मैसूर की जनता के प्रबल प्रतिराध के लवे वर्षो ने ब्रिटिश उपनिवेशवादियो को वडी फौजे निरतर सन्नद्धावस्था मे रखने के लिए विवश कर दिया था।

मैसूर को जीतने के बाद उपनिवेशवादियो ने उसके प्रदेश को अपने अधिकृत क्षेत्रो मे मिलाने का जोखिम नही लिया। उन्होन अपन आधिपत्य को न्यूनीकृत" अधीन राज्य की हैसियत की आड मे छिपा लिया और वूडयार राजाओ के एक उत्तराधिकारी को गद्दी पर बिठा दिया।

कर्णाटक का अधीनीकरण

कर्णाटक की घटनाए सहायक सधि के जरिये एक अधीन राज्य के अधीनीकरण का एक विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। १७६३ मे हस्ताक्षरित पेरिस सधि की शर्तो के अनुसार अग्रेजो के आश्रित शासक मुहम्मदअली को कर्णाटक (अर्काट) का शासक मान लिया गया था लेकिन उसे कोई वास्तविक सत्ता प्राप्त नही थी और वह अग्रजो के हाथो म कठपुतली मात्र था। १७५६–

१७६३ के युद्ध के बाद कपनी ने माग की कि मुहम्मदअली फौजी खर्च अदा करे और इसके लिए ५० लाख रुपये की रकम निधारित की गयी। नये नवाब के पास इतनी रकम नही थी। इस पर कपनी के कुछ कर्मचारियो ने उसे आवश्यक रकम उधार दे दी और बदले मे कुछ ज़िलो म राजस्व वसूल करने के अधिकार की माग की। धूर्त्ततापूर्ण वित्तीय तिकडमो से कपनी के कर्मचारी अपने जिलो मे सामान्य से बहुत ज्यादा अतिरिक्त राजस्व वसूल कर लेते थे और फिर इस रकम स मुहम्मदअली को बेहद ऊचे सूद पर रुपया उधार देते थे। कपनी के एक मामूली क्लर्क पाल वनफील्ड ने खासकर बहुत बडे पैमाने पर लेन-दन किय थे। इस तरह मात्र लगभग दो सौ पौड सालाना वेतन पानेवाले इस आदमी ने नवाब को हजारो पोड कर्ज म दिये थे और अपन को इन ऋणो स मुक्त करने के नवाब के सारे प्रयास व्यर्थ हुए। अपन ऋणो का सूद अदा करन के लिए नवाब को नये ऋण लेन पडते थे। "**महाजनो (अग्रेज धोखेबाज सूदखोरो)** के लिए यह बहुत लाभकर था इससे मूज़ी' बडी जल्दी **बडे जमींदारो की स्थिति पा लेते थे और रैयत को उत्पीडित करके बडी दौलत जमा करने मे समर्थ हो जाते थे।** इस तरह देशी किसानो के प्रति इन **कल के नवाब यूरोपीय** (**अर्थात अग्रेज**) **जमींदारो का अत्याचार** शुरू हुआ जो अत्यत हिंस्र भी था। उन्होने और नवाब न सारे कर्णाटक को बरबाद कर दिया। *

अर्काट और कपनी की फौजो द्वारा समृद्ध तजौर की विजय और लूट भी नवाब के खजाने को फिर से नही भर पायी। १७७१ मे शाही दूत लार्ड लिड्से और १७७६ मे लार्ड पिगट ने कपनी के कर्मचारियो द्वारा कर्णाटक की इस लूट को रोकने के जो प्रयास किये, उनका कोई नतीजा नही हुआ लिड्स को निष्फल होकर लदन लौटना पडा जब कि मद्रास कौसिल क सदस्यो न, कर्णाटक और तजौर की लूट मे जिनके व्यक्तिगत हित थे सीधे यही किया कि लार्ड पिगट को कैदखान म डाल दिया जहा बाद मे उसकी मृत्यु हो गयी। दूसरी ओर पाल वेनफील्ड मालामाल होकर इगलैंड लौटा।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रारभ म कर्णाटक अधीन राज्य न रहकर कपनी का निजी अधिकृत क्षेत्र बन गया था। अत अब ऋणदाताओ क ऋणो का भुगतान नवाब द्वारा न होकर कपनी द्वारा किया जाता था। तब जाकर ब्रिटिश ससद न ऋणो की विश्वसनीयता की एक विस्तृत जाच शुरू की जिसक परिणामस्वरूप

---

* Karl Marx, *Notes on Indian History* p 110

यह प्रमाणित हुआ कि १३ लाख पौड का ऋण देय था, जब कि १६० लाख पौड की रकम को झूठी माग अथवा अप्रमाणित दाव मानकर रद्द कर दिया गया। और २० वर्ष बाद (१८०५ म), जब पुराने ऋणो की अतिम किस्त की अदायगी हो गयी थी, आशा के अनुरूप यह मालूम हुआ कि इस बीच म **मुहम्मदअली ने तीन करोड का नया ऋण ले लिया था।** फिर एक नयी जाच शुरू हुई जो **५० वर्ष चलती रही और नवाब के मामलो के अतिम रूप से निपटाये जाने तक उस पर दस लाख खर्च हुआ।** ब्रिटिश सरकार – क्योकि पिट के बिल के बाद से भारत म शासन की बागडोर कपनी नही, बल्कि सरकार के हाथ मे आ गयी थी – निर्धन भारतीय जनता के साथ इस तरह पेश आयी।"*

अग्रेजो के खिलाफ कुर्ग और त्रावणकोर का सघर्ष

मैसूर की पराजय के बाद भारतीय जनता का सघर्ष विभिन्न छिटफुट विद्रोहो मे ही अभिव्यक्त हुआ, जिन्हे दबाना अपेक्षाकृत आसान था। यहा तक कि उन प्रदेशा क निवासियो ने भी, जो पहले अग्रेजो के साथ सहयोग कर रहे थे और उन्हे मुक्तिदाता मानते थे, अब अग्रेजो के शासनाधीन होन के बाद अपन पर किये जा रहे अत्याचारो के खिलाफ विद्रोह किया। कुर्ग और त्रावणकोर इसके विशिष्ट उदाहरण थे।

श्रीरगपट्टम की सधि (१७९२) के अतर्गत कुर्ग क अग्रजो को दे दिये जान के बाद भूतपूर्व शरणार्थी जमीदार (नायर और नम्बूद्री) वापस लौटने और अपनी जमीनो से मोपलो को निकाल बाहर करने लगे, जिन्होने ये जमीन या तो रेहनदारो के रूप मे उनसे ली थी या जिन्हे टीपू सुल्तान ने वहा बसा दिया था। अग्रेज अधिकारियो ने इस आशा से जमीदारो की इन कार्रवाइया का समर्थन किया कि इससे हिन्दुओ और मुसलमाना के बीच झगडे शुरू हो जायेगे। इसके साथ ही कपनी ने भूमि कर बढा दिया और साला ना कर सग्रह का काम विभिन्न शक्तिशाली सामतो को ठेके पर देन लगी।

१७९३ मे राजस्व वसूली के लिए ठेका देने का समझौता नायरो के नेता पडसी के राजा क साथ नही जिसन इस अधिकार का दावा किया बल्कि उसके मामा के साथ किया गया। यह पडसी के राजा को अग्रजा क खिलाफ

---

* Ibid p 111

प्रतिरोध आदोलन सगठित करने के लिए खडा करने को काफी था। विद्रोहियो ने अग्रज कर-सग्रहण अधिकारिया को खदेड दिया। कपनी न कई अवसरो पर विद्रोहियो के खिलाफ अपनी फौजे भेजी लेकिन विद्रोही घन जगलो मे इतनी अच्छी तरह स छिप जाते थे कि अग्रजो की कुछ नही बनी। १७६७ मे कुर्गी फौजो न १,१०० सिपाहियो की एक अग्रेजी टुकडी पर छापा मारकर उसे पराजित कर दिया। इसके बाद कपनी ने पडसी क राजा को आठ हजार रुपये की सालाना पेशन की घूस दे दी जिससे वह आदोलन से अलग हो गया। विद्रोहियो के अन्य नेताओ न सघर्ष जारी रखा लेकिन वे जगल मे छिपने तथा अपनी कार्रवाइयो को अग्रेज़ी टुकडिया और यातायात मार्गो पर छिटफुट हमलो तक सीमित रखने के लिए विवश हो गये।

१८०० म एक और विद्रोह शुरू हो गया और पडसी के राजा ने पुन इसका नतृत्व अपने हाथ म लिया। इस बार अग्रजी फौजो का नेतृत्व एक योग्य अग्रेज़ कमाडर भावी ड्यूक आफ वेलिगटन आर्थर वलेज़ली कर रहा था। १८०२ म विद्रोहियो के सभी नेताओ को पकड लिया गया और उन्ह फासी दे दी गयी। अग्रेजो न जिन्हान समझा था कि अब प्रतिरोध आदोलन सदा सर्वदा के लिए समाप्त कर दिया गया है, राजस्व म तीव्र वृद्धि कर दी और जिस रूप लगान के बदले नकद लगान की नयी दर लागू कर दी। यह कदम सामान्य किसानो के लिए नुक्सानदेह था। किसानो ने इसके जवाब मे नया विद्रोह कर दिया। इस बार विद्रोह म मुख्य भाग लेनेवाले कुर्ग मे एक क्षेत्र विशेष के निवासी थ। उन्होन तूफानी हमला करके एक प्रमुख अग्रेजी किले पनामरम पर कब्जा कर लिया। इसके बाद उन्होने पर्वतीय दर्रो को अपन नियत्रण मे ले लिया और अग्रेजो के सचार मार्गो पर आक्रमण करके समुद्रतट तक के पूरे इलाके के लोगो को अपने साथ ले लिया। अग्रेज अधिकारियो को रिआयते देनी पडी, भूराजस्व घटाकर पहले जितना कर दिया गया और किसानो की अन्य मागो को पूरा किया गया। १८०५ मे जाकर ही उपनिवेशवादी विद्रोह को समाप्त कर पाये। अधिकाश विद्रोही अतिम लडाई मे मारे गये।

फिर १८१२ म, जब जिस रूप लगान अतत नकद लगान म परिवर्तित कर दिया गया, तो इस क्षेत्र मे एक और विद्रोह भडक उठा। लेकिन मालावार तट से भेजी गयी सनाओ ने उसे जल्दी ही कुचल दिया।

त्रावणकोर मे भी घटनाओ का क्रम ऐसा ही रहा। वहा अग्रेज उत्पीडको के खिलाफ सघर्ष का नतृत्व १८०८ मे दल्वाई (मुख्यमत्री) वेलू तम्पी न किया, जिसकी तीस हज़ार सैनिको की विद्रोही सेना के पास १८ तोपे भी थी।

लेकिन अग्रेज अधिकारियो के पास इससे बडी फौजे थी। विद्रोहियो की दो वडी पराजयो ने युद्ध का निर्णय कर दिया और वलु तम्पी ने अपने ध्येय को असफल होता देख आत्महत्या कर ली। इसके वाद अग्रेज़ी कमान ने विद्रोहिया का इतना निर्ममतापूर्वक दमन किया कि ईस्ट इडिया कपनी के निदेशको ने भी इसकी निन्दा की।

दूसरा ओर तीसरा आग्ल मराठा युद्ध

अब मराठा राज्यो के अलावा दूरस्थ पजाब म सिख राज्य ही भारत के वे भाग रह गय थे जिन पर अग्रेजो का अधिकार होन से रह गया था। मैसूर की विजय के बाद (जिसम मराठा ने कुछ हद तक स्वय भी योगदान किया था) अग्रेजो के लिए मराठा राज्यो के खिलाफ अपनी सभी फौज लामबद करना सभव हो गया। सभी सभावित मित्रो से वचित मराठे इस स्थिति म नही थे कि अपन भीषण शत्रु का डटकर मुकावला कर सक। इस प्रकार टीपू का पतन तत्वत मराठो के पतन का भी सूचक था।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रारभ मे मराठा राजाओ के बीच कलह अतिव्याप्त थे। वे निरतर एक दूसरे के खिलाफ छोट मोटे षडयन्त्र करते रहते थे और इस तरह अग्रजा क लिए उन्हे एक एक करके विघटित और पराजित करना सभव बना रहे थे। १८०१ म ग्वालियर और इदौर क राजाओ – दौलतराव सिंधिया (शिंद) (१७६४ – १८२७) और यशवतराव होल्कर (१७६७ – १८११) – क बीच क्षेत्रीय मतभेदो के परिणामस्वरूप युद्ध छिड गया, जिसमे प्रत्येक पक्ष न दूसरे क भूभाग पर आक्रमण कर दिया और रास्ते मे कत्लआम और लूट खसोट की। उस समय तक दोनो राजाआ की फौजा का पुनर्गठन किया जा चुका था घुडसवार सेना की जगह यूरोपीय अफसरो की कमान म नियमित पैदल सेना फौज की मुख्य शक्ति वन गयी थी। लेकिन यूरोपीय अफसरो की कमान म य फौजी सिपाही भी अग्रेजी फौजो का मुकावला करने की स्थिति म नही थ क्योकि अतत वे जिस सर्वोच्च कमान, अथात राजा और उसक सनापतिया क अधीन थे उसे ता यूरोपीय सैन्य प्रशिक्षण नही प्राप्त था। इसक अलावा अग्रेज विभिन्न मराठा राजाओ के बीच लडाई झगडे भडकात रहत थ।

१८०२ म पूना की लडाई म होल्कर की सेना न सिंधिया और पशवा वाजीराव द्वितीय (१७६६–१८१८) की सयुक्त सेनाआ का बुरी तरह पराजित किया। वाजीराव द्वितीय ने बसई भागकर अग्रजो की शरण ली और दिसम्बर

१८०२ मे सहायक सधि पर हस्ताक्षर कर दिये जिसके अतर्गत उसने महाराष्ट्र मे कम से कम छ हज़ार की अग्रजी फौज रखना तथा उसके रख रखाव पर २६ लाख रुपये सालाना खर्च करना स्वीकार कर लिया। इसके अलावा उसने विदेशी मामलो को अग्रेज़ी अधिकारियो की कडी देख-रेख मे सचालित करन का भी वचन दिया।

इसका मतलब यह था कि महाराष्ट ने वस्तुत अपनी स्वतत्रता को त्याग दिया और वह अग्रेज़ो का एक सरक्षित राज्य बन गया। इसके बाद अग्रेज़ी फौज अविराम कूच करती हुई पूना पहुची जहा उन्होंने पेशवा को गद्दी पर पुन प्रतिष्ठित कर दिया। मराठा राज्यो पर पूना के अधिराजत्व के सबध म गवर्नर जनरल वेलेज़ली ने घोषणा की कि पेशवा के साथ हस्ताक्षरित सधि सभी मराठा राजाओ के लिए बधनकारी होगी। हालाकि सिधिया और होल्कर न बसई की सधि को मानन स इन्कार कर दिया फिर भी व एक दूसरे को सदेह की नज़र स देखते थे और इसलिए अपनी कार्रवाइयो म ताल-मेल बिठाने म असमर्थ थे। इसन दूसरे आग्ल मराठा युद्ध मे एक ज़बरदस्त बाधा उत्पन्न कर दी।

जनरल वेलेज़ली ने शुरू म होल्कर को नज़रअदाज़ करने तथा सिधिया क खिलाफ अपनी सभी फौजो को जमा करने का निर्णय किया। उसन शीघ्र ही अहमदनगर जिसके किल को अभेद्य माना जाता था और इसके बाद निज़ाम तथा सिधिया के अधिकृत क्षेत्रो के बीच खानदेश मे पार-पथो पर कब्ज़ा कर लिया। हैदराबाद की सीमा क निकट असई म जनरल वेलेज़ली न पाच हज़ार सैनिको का नेतृत्व करत हुए दो मराठा राजाओ सिधिया और नागपुर के शासक रघुजी भोसले, की सयुक्त फौजो का सामना किया। इसके बावजूद कि मराठा सैनिको की सख्या अग्रेज़ी सना से सातगुनी अधिक थी वेलेज़ली ने उन पर आक्रमण कर दिया। इसके बाद जो लडाई हुई उसम भासले की सेना सिधिया को युद्ध का वार अकेले झेलन के लिए छोडते हुए पीछे हट गयी। परिणाम यह हुआ कि अग्रेजो की विजय सभव हो गयी। वेलेज़ली न भोसल का पीछा करना शुरू किया और सिधिया न अपन अयोग्य मित्र को बचाने का कोई प्रयास नही किया। आरगाव म जा निर्णायक लडाई हुई उसम भासले की सना पराजित हो गयी और नागपुर क मुख्य किले गाविलगढ पर कब्ज़ा कर लिया गया। दिसम्बर १८०३ म भोसले न देवगाव की सधि पर हस्ताक्षर कर दिया जिसक अनुसार नागपुर राज्य न अपनी स्वतत्रता खो दी और बगाल तथा मद्रास प्रेसिडसियो के भूभागो क बीच अवस्थित कटक प्रात अग्रज़ा का सौप दिया गया।

इसी बीच लेक के नेतृत्व मे अग्रजी फौजो न उत्तर म अलीगढ के किले पर कब्जा कर लिया था और दिल्ली के वाहर लडाई जीतने क वाद उसन दिल्ली और आगरा पर भी अधिकार कर लिया था। इन लडाइया म सिधिया की फौज फ्रासीसी अफसरो पेरो और बुर्के की कमान म थी। लडाई समाप्त हान के बाद पेरो न अलीगढ म और बुर्के न दिल्ली के बाहर अग्रेजो के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया। अब सिधिया की फौजो की कमान मराठा जनरल अम्बाजी इगले के हाथो मे थी। लासवाडी (नासवाडी) की निर्णायक लडाई म मराठा सैनिक जी तोडकर लडे और उनम से अधिकाश युद्ध क्षेत्र मे खेत रहे। सिधिया की उत्तर म युद्धरत सेना नष्ट हो गयी। अग्रेजा न चम्बल नदी के उत्तर म उसक सभी भूभागा पर कब्जा कर लिया। इसके बाद अम्बाजी इगले ने सिधिया के साथ गद्दारी की और राजधानी ग्वालियर तथा उसके किले को अग्रेजो को सौप दिया। इस प्रकार ३० दिसम्बर, १८०३ को सिधिया को सुर्जी अर्जुनगाव की सधि पर दस्तखत करन क लिए विवश होना पडा जिसक अनुसार उसे गगा और यमुना के बीच अपने सपूर्ण क्षेत्रो स वचित कर दिया गया और अहमदनगर तथा भडौच भी अग्रेजा को सौप देन पडे। उसे उन राजपूत रियासतो पर अपना अधिराजत्व छोडना पडा, जिन्होने इस युद्ध म अग्रेजो का समर्थन किया था और सहायक सधि के अतर्गत एक अग्रेजी टुकडी क रख-रखाव का खर्चा पूरा करने के लिए विवश होना पडा, जिसे उसके भूभाग की सीमा पर ब्रिटिश क्षेत्र मे तैनात किया जाना था। अग्रेजो ने दिल्ली की गद्दी पर मुगलवशी शाह आलम द्वितीय के अधिकार को मान्यता दी, जो बूढा था और जिस रुहेला ने अधा कर दिया था। लेकिन उसके हाथ म कोई वास्तविक सत्ता नही थी। ग्वालियर के किले और राजधानी को, जो सामरिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण थे एक छोटी राजपूत रियासत गोहद के राजा को सौप दिया गया।

सिधिया की फौजो के पराजित होने के बाद अग्रेजो न जनवरी १८०४ म होल्कर से माग की कि वह उत्तर भारत से अपनी फौजो को वापस हटा ले और उन प्रदेशो म चौथ वसूल करने के अधिकार के सभी दावे छोड दे। होल्कर ने इन मागो को मानन से इन्कार कर दिया और सिधिया के साथ एक सधि करने की कोशिश की, लेकिन तब तक अग्रेजो ने सिधिया पर अपना नियत्रण कायम कर लिया था।

१८०४ मे होल्कर के साथ युद्ध शुरू हुआ। प्रारभिक चरणो म होल्कर सकीर्ण मुकुदरा दर्रे मे एक अग्रेजी फौज को पराजित करने और भरतपुर के

राजा के साथ मिलकर दिल्ली पर भी घेरा डालने मे सफल हुआ। लकिन वह इस अच्छी तरह से किलेबद नगर को सर नही कर सका और अतत पीछे हट गया। इसी समय अग्रेज़ी सना ने आक्रामक हमला शुरू कर दिया और होल्कर के किले एक के बाद एक गिर गय। इसी बीच भरतपुर के राजा न अग्रेज़ो से सुलह कर ली और होल्कर पजाव भाग गया।

मराठो के खिलाफ युद्ध मे काफी ससाधनो को झोकना पडा था और कपनी के हिस्सेदार अपन लाभाशो के बारे मे चितातुर हो रहे थे। नय कार्यकारी गवर्नर-जनरल जार्ज बार्लो (१८०५–१८०७) ने इस आशा मे ग्वालियर सिधिया को वापस लौटा दिया तथा होल्कर को चम्बल नदी क दक्षिण म उसके भूभाग वापस कर दिये कि इन दोनो राजाओ की शक्ति अपने अधीनस्थ उन राजपूत राजाओ के साथ लडने म क्षीण हो जायेगी, जिन्होंने पहले युद्ध मे अग्रेज़ो की सहायता की थी। मराठा प्रदेशो म सचमुच परस्पर विनाशकारी सघर्ष पुन भडक उठा। सिधिया और होल्कर के पास बडी सनाए थी लेकिन अब उनक सकुचित राज्य इन सेनाओ के रख-रखाव के लिए आवश्यक ससाधन प्रदान करन मे असमर्थ थे। परिणाम यह हुआ कि भाडे के सैनिक लगभग लूट खसोट के जरिये ही अपनी जीविका चलान लग। वे गावो और नगरो पर आक्रमण करते रास्ते म लोगो को यत्रणा देते और हत्याए करते थे तथा जिन चीज़ो को नही ले सकते थे उन्ह नष्ट कर देत थे।

अकसर निर्धन किसानो के पास पिडारियो के नाम से कुख्यात लुटेरो मे शामिल होने के अलावा कोई चारा नही रह जाता था। उनका नेतृत्व होल्कर का एक भूतपूर्व सेनापति अमीर खा रहेला जिसन १८०४ म अग्रजो क खिलाफ युद्ध म ख्याति प्राप्त की थी, करीम खा जो होल्कर से ही सम्बद्ध था सिधिया का एक भूतपूर्व सेनापति चितू और वसील मुहम्मद जो भोपाल के शासक की सेवा मे रह चुका था, कर रहे थे। पिडारियो की सना द्रुत गति से बढी और अतत विध्वस्त राजपूत और मराठा राज्यो म अनाज का अभाव उत्पन्न हो गया।

ब्रिटिश उपनिवेशवादियो न पिडारियो के मामलो म हस्तक्षेप नही किया। लेकिन जब उन्होने १८१६ म कपनी के अधीनस्थ उत्तरी सरकार प्रदेश पर आक्रमण किया, जहा इसके परिणामस्वरूप राजस्व म शीघ्र बडी तज़ी स गिरावट आ गयी, तो अग्रेज अधिकारियो न पिडारियो को समाप्त करन का निर्णय किया। सर्वप्रथम १८१७ म अग्रेज़ो न पेशवा को पूना म एक दूसरी सधि पर दस्तखत करने के लिए विवश किया। उसने मराठा राजाओ पर

अपना अधिराजत्व त्याग दिया, कोकण प्रात अग्रेजो को दे दिया और अन्य रियासतो के साथ सभी मामलो का सचालन ब्रिटिश रेजिडेंट के जरिये करने का दायित्व ग्रहण किया। नागपुर ने भी अग्रेजो के साथ एक सहायक सधि की। सिधिया के सामने भी एक ऐसे समझौते पर हस्ताक्षर करने के अलावा कोई चारा नही रह गया जिसने उसे पिडारियो के खिलाफ अभियान मे अपनी फौजे अग्रेजो को सुलभ करने के लिए विवश कर दिया। इसके अलावा उसे राजपूत रियासतो से तीन साल तक नजराना वसूल न करने और अपनी नेकनीयती के वचन के रूप मे असीरगढ तथा हिंदिया के किले को अग्रेजो को सोप देने के लिए सहमत होना पडा। मतलब यह कि अब अग्रेजो ने सभी मराठा राजाओ को अपनी मुट्ठी मे कर लिया था और पिडारियो के खिलाफ अभियान के लिए तैयारी शुरू कर दी।

लेकिन अग्रेजी फौजो के एक बडे भाग के महाराष्ट्र से प्रस्थान करने के साथ पूना के मराठो ने विद्रोह कर दिया। उनके इस विद्रोह मे नागपुर भी शामिल हो गया। इस स्थिति मे अग्रेजो ने मराठो के खिलाफ जब से भारत मे विजय युद्ध शुरू हुआ, तब से सबसे बडी सेना भेजी। इसमे एक १२० हज़ार सैनिक (जिनमे १३ हज़ार अग्रेज थे) और ३०० तोपे थी। खडकी, सीता वल्दी नागपुर सालीया घाट, आष्टी और शिवनी की लडाइयो मे मराठे पराजित हुए। १८१८ मे अत मे पेशवा ने आत्म समर्पण कर दिया और तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड मायरा ने, जिसे मराठो पर अपनी विजय के उपलक्ष्य मे नवसस्थापित उपाधि मार्क्विस आफ हेस्टिग्स प्रदान की गयी थी, पेशवा पद को ही समाप्त करने का निर्णय किया, ताकि मराठा एकता के उस प्रतीक का कोई नाम निशान न रह जाये। फिर सतारा और कोल्हापुर के छोटे राज्यो को छोडकर जिन्हे शिवाजी के राजनीतिक रूप से प्रभावहीन उत्तराधिकारियो को दे दिया गया, सपूर्ण महाराष्ट्र को बम्बई प्रेसिडेसी मे मिला दिया गया। पिडारियो के एक नेता अमीर खा ने तुरत अपनी सेना विघटित करना स्वीकार कर लिया जिसके बदले मे अग्रेजो ने उसे टोक की छोटी सी रियासत उपहार" मे दे दी। लेकिन अन्य पिडारी नेताओ ने प्रतिरोध करने की कोशिश की।

अग्रेजी फौजो मे फैले हैजे के भीषण प्रकोप के बावजूद जिसने नौ हज़ार सैनिको की जान ले ली थी, अग्रेजो ने पिडारियो का पीछा करना नही छोडा। होल्कर की फौज के कमाडरो ने (अब अपने नेता के पागल हो जाने के बाद) पिडारियो की सहायता करने की कोशिश की। लेकिन होल्कर की सेनाए भी

महीदपुर की वडी लडाई म पराजित हो गयी। इसके बाद पिडारी छोटी-छोटी टुकडिया म विभक्त हो गय और उन्ह नमश नष्ट कर दिया गया। करीम खा न आत्म-समर्पण कर दिया और उस गोरखपुर क निकट एक जागीर द दी गयी। वसील मुहम्मद न ब्रिटिश जल म आत्महत्या कर ली और चित्तू को जगल म एक बाघ न खा डाला।

मराठो का अधीनीकरण अग्रेजो द्वारा भारत की विजय मे मुख्य अध्याय की समाप्ति का परिचायक था। पजाब की विजय का अतिम अग्रेजी फौजी अभियान तीस साल क बाद शुरू हुआ।

अठारहवी शताब्दी के अत और उन्नीसवी शताब्दी के आरभ मे भारत मे औपनिवेशिक अधिकारियो की नीतिया

अग्रेजो द्वारा भारत की विजय न दश म केवल राजनीतिक स्थिति को ही नही, वल्कि आर्थिक स्थिति को भी बदल दिया। पहले क विजेताओ के विपरीत, जो यहा आकर बस गय थे और फिर स्थानीय आबादी म घुल-मिल गये थे ब्रिटेन न जिसन पूजीवादी विकास के पथ पर चलना शुरू कर दिया था भारत को धन दौलत को लूटकर उसे अपने देश भेजन का एक स्रोत ही समभा। अग्रेजो न शोषण की जिन विधियो का इस्तेमाल किया, उनमे हेरफर क बावजूद भारत हमेशा ब्रिटिश साम्राज्य के केन्द्र का एक पुछल्ला बना रहा।

विजय के दौर म भारत स सपदा का जो निर्यात शुरू हुआ वह एक ऐसे निरतर आर्थिक अपवाह म परिवर्तित हो गया, जिसने भारत का खून चूसकर उसे कगाल बना दिया। पद्रहवी शताब्दी म भी अफनासी निकीतिन न भारतीय जनता की निर्धनता का उल्लेख किया था लेकिन औपनिवेशिक काल के दौरान यह निर्धनता और भी भयकर हो गयी। अग्रेजो के आने के बाद वगाल म पहला अकाल १७७० मे पडा जिसने लगभग एक करोड लोगो की जान ले ली। तब से अकाल, जिसके साथ साथ अकसर हैजा, प्लेग और अन्य दैवी आपदाओ का पहाड टूट पडता था, भारतीय जीवन का एक सामान्य लक्षण बन गया।

औपनिवेशिक भारत की जनता अपनी आर्थिक स्थिति म मूलभूत परिवर्तन लान की स्थिति म नही थी। दश का सपूर्ण आगामी इतिहास औपनिवेशिक जुए से स्वतत्रता के लिए सघर्ष का इतिहास है।

विजय के वर्षों मे अग्रेजो ने विभिन्न भारतीय शासको और सामता के खज़ानो की लूट से प्राप्त अपार सपदा का स्वदेश को निर्यात किया। मिसाल के लिए श्रीरगपट्टम के पतन के बाद साधारण फौजी सिपाहियो ने भी हीरे जवाहरातो से अपनी जेबे भर ली थी। ब्रिटिश सत्ता के मज़बूती से स्थापित हो जाने के बाद शोषण की दूसरी अवस्था शुरू हुई। औपनिवेशिक राजस्व का मुख्य स्रोत किसानो से प्राप्त भूमि कर था। लेकिन अग्रेजो द्वारा भूराजस्व की ऐसी प्रणाली स्थापित करने के सभी प्रयास असफल रहे कि जो कृषि की प्रगति म सहायता करती। भूराजस्व की उनकी सभी प्रणालियो – बगाल म स्थायी बदोबस्त दक्षिण भारत मे रैयतवारी उत्तर भारत मे मौज़ावार और पजाब म ग्राम समुदाय प्रणाली – पर यही बात लागू होती थी। प्रणाली विशप क लागू होने का खयाल किये बिना औपनिवेशिक सत्ता न अधिक से अधिक भूमि-कर बसूल किया और किसानो के पास, जिनके पास मात्र गुज़र बसर करने लायक ही बच पाता था, कृपि-उपकरणो और विधियो को सुधारन के लिए कोई ससाधन नही थ। सामती भारत मे सभी राजस्व प्रणालियो म उतार चढाव आता रहता था। प्राकृतिक विपत्तियो के समय म अथवा कीमतो म तेज़ी स गिरावट आने पर कर की माग को कम कर दिया जाता था, क्योकि यह सामतो के हित मे नही था कि खेती का विनाश हो जाये। औपनिवेशिक सरकार के अतर्गत निश्चित कर निर्धारित किये जाते थे और उनकी वसूली की ही जाती थी चाहे परिस्थितिया कितनी ही प्रतिकूल क्यो न हो। पहले जब कोई चारा नही रह जाता था, तो सामती भूस्वामी अपने काश्तकारो को ऋण (जिसे मुगल भारत म तकावी कहा जाता था) भी प्रदान करत थे। कहना अनावश्यक है कि औपनिवेशिक अफसर ऐसे मामलो से कोई सरोकार नही रखते थे उनका काम सिर्फ राजस्व वसूल करना था। परिणाम यह हुआ कि औपनिवेशिक भारत मे किसानो की स्थिति सामती काल स भी बदतर हो गयी।

अधिक स अधिक राजस्व सुनिश्चित करन क लिए अग्रेज अधिकारियो ने, जिन्होने तीन विभिन्न भूकराधान प्रणालिया लागू की, जो प्रयोग किये, उनसे भारतीय किसानो का बडी क्षति पहुची। इस तरह का पहला प्रयास कार्नवालिस ने किया।

१७९३ में गवर्नर जनरल कार्नवालिस ने अपने वरिष्ठ असैनिक अधिकारियों की सलाह की उपेक्षा करते हुए अचानक कलकत्ता में एक कानून द्वारा स्थायी बन्दोबस्त की व्यवस्था को लागू किया। सामान्य रूपरेखा में यह कानून जमींदारों के संबंध में फिलिप फ्रांसिस द्वारा प्रस्तुत विचारों को अमली सूरत प्रदान करता था। कार्नवालिस के अनुसार उसका कानून भारतीय जमींदारों को पैतृक भूस्वामियों के रूप में सदा के लिए मान्यता प्रदान करता था। इसके साथ ही जमींदारों को उस भूराजस्व का ९/१० भाग खजाने में जमा करना था जो उन्होंने १७९० में वसूल किया था और वास्तव में वसूल लगान से निरपेक्ष यही रकम सदा के लिए निश्चित कर दी गयी। भुगतान न करने की स्थिति में जमींदारों की जमींदारी नीलाम कर दी जाती थी। इस कानून को लागू करके कार्नवालिस ने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि भविष्य में खजाने में हमेशा राजस्व के रूप में बहुत धन आता रहे। वह जमींदारों को कृषि के अपेक्षित विकास और लगान की नकद राशि में वृद्धि के फलस्वरूप प्राप्त होनेवाली अतिरिक्त आय पर कर की छूट देकर स्थानीय आबादी में औपनिवेशिक सरकार के प्रति वर्ग समर्थन भी प्राप्त करना चाहता था।

लेकिन व्यवहार में इस कानून ने भूमि पर किसानों के सामंती अधिकारों को समाप्त करके उसे जमींदारों की निजी संपत्ति बना दिया। जब किसी जमींदार की जमींदारी नीलाम की जाती थी तो लगान की रकम के संबंध में जमींदार और किसानों के बीच पहले के सभी समझौतों को मंसूख मान लिया जाता था और नये जमींदार को लगान बढ़ाने का अधिकार था बशर्ते कि वह ऐसा चाहे। मार्क्स के शब्दों में **"कार्नवालिस और पिट ने कृत्रिम ढंग से बंगाल की ग्रामीण आबादी का स्वत्वहरण किया।"*** कार्नवालिस के कानून ने केवल किसानों के भूस्वामित्व के पूर्ववर्ती अधिकारों को समाप्त ही नहीं किया, बल्कि किसानी खेती की विधियों में सुधारों का प्रचलन भी रोक दिया, क्योंकि ऐसे सुधारों के परिणामस्वरूप लगान में और वृद्धि ही हुई होती। बंगाल में कृषि में अवनति आने लगी और उसके किसानों की गिनती संपूर्ण भारत के सबसे गरीब लोगों में होने लगी।

जमींदारों के लिए भूलगान वसूल करने के अपने अधिकारों को ऐसे

---

* Karl Marx, *Notes on Indian History* p 118

उप पट्टेदारो को बेच देना एक आम प्रथा वन गयी, जो फिर उन्हे और भी वडी रकम लेकर दूसरे पट्टेदारा को बेच देते थे। इसका एक कुख्यात उदाहरण वगाल का सबसे शक्तिशाली जमीदार बर्दवान का राजा प्रस्तुत करता था। उसकी जमीदारी मे पाच-छ उप-पट्टेदारो का एक नियमित सोपान वन गया था। इनम स प्रत्येक पट्टे पर प्राप्त अपनी भूमि को और भी ऊची कीमत लेकर दूसरे पट्टदार को बेच देता था। इस तरह स उप पट्टदारो की एक लवी शृखला वन गयी थी जिनके अधिकार पिता से पुत्र को हस्तातरित होते थे।

किसाना के सामती शोषण स प्राप्त राजस्व को जमीदार आम सामती ढग स खर्च करत थे यानी उसे अनुत्पादक कार्यकलापो (मनोरजन, सामती नौकर-चाकरो के रख रखाव आदि) पर उडा दते थे। उन्नीसवी शताब्दी के आरभ म ब्रिटिश औपनिवशिक अधिकारियो के अनुसार जमीदारो की आय मुफ्तखोरो और निठल्लो के भरण पोषण नौकरो और अगरक्षको, वेश्याओ, इलाके के अन्य जमीदारो के मनोरजनार्थ आयोजित दावतो और ब्राह्मणा के सत्कार पर खर्च की जाती थी सब कुछ खाने-पीने पर उडा दिया जाता था और उत्पादन की आवश्यक्ताओ के लिए अलग कुछ नही रखा जाता था और एक भी ऐसा गाव नही था जहा जमीदार अथवा मालगुजार न सुधारो पर पैसा खर्च किया हो।

कभी कभी जमीदार किसानो की घोर गरीबी के कारण उनसे लगान की निधारित आवश्यक रकम नही वसूल कर पाते थे। इसके फलस्वरूप राजस्व की अदायगी न करने पर जमीदारो की जमीदारियो की नीलामी द्वारा बिक्री न एक व्यापक प्रक्रिया का रूप ग्रहण कर लिया। नीलामी से बिकनवाली जमीनो को ईस्ट इडिया कपनी के भारतीय कारिन्दे अदालतो के कर्मचारी और वडे महाजन खरीद लेते थे। इस तरह जमीदारो का एक नया वर्ग प्रकट हुआ जो नगरो म रहनवाले ऐसे लोगो से वना था जो पुरानी सामती विधियो क जरिये किसाना का शोषण करते थे और जमीदारो की जमीदारिया के अभिग्रहण को पूजी निवेश का एक ऐसा रूप समझते थे कि जो महाजनी से कम लाभकारी नही था।

इन प्रक्रियाओ के सबध म कार्ल मार्क्स ने लिखा है,"'बदोबस्त' के परिणाम रैयतो की '**सामुदायिक और निजी सपत्ति**' की इस लूट का पहला नतीजा भूस्वामियो (उन पर थापे गये) के खिलाफ **रैयतो के स्थानीय विद्रोहो का ताता बध जाना**, जिनके परिणामस्वरूप कुछ मामलो मे **जमींदारो का निष्कासन और उनकी जगह ईस्ट इडिया कपनी का मालिक के रूप मे आगे**

आना, अन्य मामला म जमींदारो का दरिद्रीकरण और कर की बक़ाया रक़मो तथा निजी ऋणो के भुगतान के लिए उनकी जमींदारियो की अनिवार्य या स्वैच्छिक रूप से बिक्री। नतीजा यह हुआ कि प्रात की भूसपत्ति का अधिकाश तेजी से एसे मुट्ठी भर शहरी पूजीपतियो के हाथो मे चला गया, जिनके पास अतिरिक्त पूजी थी और जा उसे तत्काल भूमि मे लगा देते थे।"*

वगाल मे किसाना के दरिद्रीकरण न उन्हे हथियारवद विद्रोह करने के लिए विवश कर दिया। कभी कभी विद्रोही किसाना का नतृत्व ऐसे भूतपूर्व जमीदार करते थे, जिन्हे अपनी जमीना से वचित कर दिया गया था। ऐसे मामला मे विद्राही किसान पूरे जिले के समर्थन पर निर्भर कर सकते थे और उनका आदोलन राष्ट्रीय स्वतनता के लिए आदोलन का रूप ले लेता था। उदाहरणार्थ १७६५ म पानशेत म यही हुआ जहा भूतपूर्व जमीदार ने स्थानीय किसानो के साथ मिलकर एक नये जमीदार को तव तक काविज़ होने से रोके रखा जब तक अतत उसने वैध मालिक के अपने अधिकारो को पुन बहाल नही करवा लिया। इसी तरह की घटनाए १७६८ म रायपुर मे और १७६६ म वालासोर म भी हुई। १७६६–१८०० मे किसानो ने नया भूमि-कर लागू करने के खिलाफ विद्राह कर दिया अनेक नगरो और गावो पर कब्जा कर लिया और मिदनापुर नगर म घुसने का खतरा प्रस्तुत कर दिया। परिणामस्वरूप यह कर समाप्त कर दिया गया और जमीदारियो की ज़बरदस्ती बिक्री पर रोक लगा दी गयी। ये विद्रोह स्वत स्फूर्त होते थे इनका स्वरूप स्थानीय था और इस तरह उन्हे जल्दी से दवा दिया जाता था। लेकिन वे कार्नवालिस की भूकराधान प्रणाली के लागू होने के वाद उत्पन्न उस कठिन स्थिति को व्यक्त करते है, जिसमे किसानो ने (और सामती परिवारो ने भी) अपने को फसा पाया।

इस स्थायी वदोवस्त को अमल मे लाकर ब्रिटिश उपनिवेशवादियो ने आर्थिक परिवर्तनो की उस प्रक्रिया के लिए एक कानूनी ढाचा प्रदान किया जो वगाल की विजय के परिणामस्वरूप शुरू हुई थी। अग्रेज विजेताओ ने शासक सामती वर्ग को राजनीतिक सत्ता से वचित कर दिया था और अपने पूजीवादी देश की आवश्यकताओ के अनुरूप सामती भारत की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को रूपातरित करना शुरू कर दिया था।

---

* Karl Marx *Notes on Indian History* p 120

रैयतवारी प्रणाली

अठारहवी शताब्दी के अत म अग्रेजा न मद्रास प्रसिडसी म भी स्थायी बदोवस्त की प्रणाली लागू की। लेकिन मैसूर स अधिगृहीत भूभागा म उपनिवेशवादी उन सामता की जमीन पर अपनी पकड मजबूत बनान क लिए तैयार नही थे जा अभी कुछ समय पहल तक उनक खिलाफ लड रह थ। इस वजह से १७६३ म वहा भूकर की एक दूसरी प्रणाली लागू की गयी, जो बाद म रैयतवारी प्रणाली क नाम स प्रसिद्ध हुई। १८१८ स १८२३ की अवधि म इस प्रणाली को विस्तृत करक मद्रास प्रसिडसी क उन भागा मे भी लागू कर दिया गया जिनम स्थायी बदोबस्त अभी तक लागू नही हुआ था।

रैयतवारी प्रणाली के अतर्गत ब्रिटिश उपनिवेशवादियो न जमीदारा का नही बल्कि मीरासदारा (अर्थात ग्राम समुदाया क उन सदस्या का, जा दाययोग्य हिस्सो के मालिक थे) और किसाना क उन सभी प्रवर्गों को वैध भूस्वामियो के रूप म मान्यता प्रदान की, जिन्ह मीरासदारो क रूप म वही अधिकार तो प्राप्त नही थे लकिन जो राज्य को भूराजस्व सीधे अदा करते थे। अग्रेजो के आगमन के पहल भी कुछ इलाको म कई मीरासदार क्षुद्र सामता के रूप म प्रकट हो चुक थ और कभी कभी तो पूरा का पूरा गाव एक मीरासदार की शक्ति के अधीन आ जाता था। वह पहले राज्य क हित म और फिर अपन फायद के लिए राजस्व वसूल करता था। इस प्रकार वह धीरे धीरे एक ऐसे छोटे भूस्वामी मे परिवर्तित हो गया, जिसकी जमीना को अग्रेजा क शासन के अतर्गत उसकी निजी सपत्ति माना जान लगा। ग्रामीण आबादी के निम्न सस्तरो (अन्य जिलो स हाल ही म आये किसानो के अधिकाश, दासो और अछूत दस्तकारो) को बहुत कम अधिकार प्राप्त थे। पहले स्थानीय प्रथाओ क अनुसार उन्हे तब तक जमीन स बेदखल नही किया जा सकता था, जब तक वे अपने दायित्वो को पूरा करत रहते थे और ग्राम समुदाया के मुखियाओ को अपनी काश्ता के लिए आवश्यक लगान देते थे। अब अधिकाश मामलो मे उन्हे भूमि पर अपने अधिकारो से वचित कर दिया गया और वे अधिकार-रहित काश्तकार अथवा बटाईदार बन गये। उनकी काश्तो पर लगान कभी भी बढाया जा सकता था और उन्हे कभी भी बेदखल किया जा सकता था।

रैयतवारी प्रणाली के अतर्गत चरागाहो और परती भूमि को, जिन पर पहले ग्राम समुदाय का अधिकार था, अब राज्य ने जब्त कर लिया। इस तरह किसानो को उनमे अपने जानवरो को नि शुल्क चराने और ईधन के लिए

लकडी इकट्ठा करने के अवसर से वचित कर दिया गया। अपने दृष्टिकोण को इस सिद्धात पर आधारित करते हुए कि भूमि औपनिवेशिक राज्य की सपत्ति है अग्रेज़ अधिकारी रैयतो को अपने ऐसे स्थायी काश्तकार मानने लगे जिनसे मानो उन्हे लगान की कोई भी रकम मागने यानी उन पर मनमाने राजस्व की माग थोपने का अधिकार था। व्यवहार मे इसका मतलब यह था कि उस अधिकतम रकम को वार्षिक राजस्व निश्चित किया गया जिसे भारतीय किसान अदा कर सकता था, बशर्ते कि परिस्थितिया इष्टतम हो। मद्रास राजस्व विभाग के अभिलेखो के अनुसार रैयतवारी स्थापित करने के पहले प्रयासो ने लगभग हर ही मामले मे देश से सरकारी वसूली को बहुत बढा दिया। किसानो के लिए इतना अधिक राजस्व देना लगभग असभव था और उन पर राजस्व का बकाया निरतर बढता गया। उन्नीसवी शताब्दी के दौरान जब जब राजस्व माग का पुनरीक्षण किया गया तब-तब अग्रेज़ अधिकारियो को बकाया रकम मसूख करने और कराधान की दर को कम करने के लिए बाध्य होना पडा।

भारत मे अग्रेज अधिकारियो ने १८१८ से १८५५ तक और बाद म भी भूकराधान के सपूर्ण इतिहास को कराधान दर म भारी कटौतिया करने और बकाया राशियो को मसूख करने की लगातार और न्याय्य मागो का इतिहास माना है। यह रैयतो से मागे गये अतिशय भूमि करो का परिणाम था। बगाल मे प्रचलित प्रणाली और रैयतवारी प्रणाली मे मुख्य अतर यह था कि बगाल मे ज़मीदारो को भूस्वामी माना जाता था जब कि रैयतवारी प्रणाली क अतर्गत भूस्वामी मुख्यतया किसान थे। हालाकि दक्षिण भारत मे किसानो को अपनी ज़मीनो का मालिक मान लिया गया था लेकिन तब तक भूमि अपना मूल्य गवा चुकी थी। यह ब्रिटिश पूजीपतियो द्वारा पहले सामती और बाद मे अर्ध सामती विधियो से औपनिवेशिक मुनाफे निचोडने का परिणाम था।

मौज़ावार प्रणाली

मध्य भारत के उन भागो मे, जिन्हे ईस्ट इडिया कपनी ने मराठो क खिलाफ युद्धो के दौरान जीता था और बगाल प्रेसिडेसी के तथाकथित ऊपरी प्रात (वर्तमान उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश) के रूप म अलग कर दिया गया था जो प्रणाली लागू की गयी वह मौज़ावार अथवा मालगुज़ारी प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह इस अर्थ मे भूमि प्रशासन की अन्य प्रणालिया स

भिन्न थी कि इसम समग्र रूप म ग्राम समुदाय का एक वित्तीय इकाई और भूस्वामी माना जाता था। फिर भी प्रत्यक अलग-अलग खत पर कर लगाया जा ता था और एक भी काश्तकार के राजस्व क बकाया रह जान पर पूर गाव की जमीन समग्र रूप म नीलाम कर दी जाती थी। इन जमीना का सामान्यतया अदालती और माल विभाग क अधिकारी खरीद लत थे और इस तरह व जमीदार की हैसियत प्राप्त कर लत थ। व बगाल क जमीदारा स कवल इस बात मे ही भिन्न थ कि उन्ह जो रकम खजान म दनी पडती थी, उस समय समय पर पुनरीक्षण करक बढा दिया जाता था।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम तक
भारत पर अग्रेजो की विजय के आर्थिक परिणाम

अग्रेजी शासन क परिणामस्वरूप सबसे पहले तो पुरान सामती परिवारा का अपकर्ष हुआ तथा सामती फौजो बडे सामती अहलकारा और नौकर चाकरा के अमलो का विघटन हुआ। इसन जीवन की उस सपूर्ण पद्धति को बदल दिया, जिसे भारत के सामती वर्ग सैकडो वर्षो से अपनाये हुए थे। इसने अनकानेक दस्तकारा की स्थिति को भी प्रभावित किया जो सामती परिवारा की आवश्यकताओ को पूरा करत थे। मिसाल के लिए बगाल मे ढाका नगर ने अपना वह पुराना महत्व खो दिया जो उसे अपने निवासियो की बढिया कीमती वस्त्रो क उत्पादन मे विशेषज्ञता की बदौलत प्राप्त हुआ था। जो दस्तकार शहरो को छोडकर गाव नही चले गये उनका कपनी बुरी तरह शोषण करती थी, क्योकि उन्हे बगाल और दक्षिण भारत म निजी व्यापारियो को अपनी वस्तुए बेचन की अनुमति नही थी। अठारहवी शताब्दी के अतिम दशक मे कपनी के कारिन्दो द्वारा पिटाई के परिणामस्वरूप कई दस्तकार मर तक जाते थे। साप्ताहिक कोटा पूरा न होन की हालत म कपनी के कर्मचारी बुनकरो को जेल मे बद कर देते थे और उन्ह खाना पानी नही देते थे।

उन्नीसवी शताब्दी के आरभ तक भारत से ब्रिटेन को कपडे का निर्यात होता रहा लेकिन यह निर्यात एक सगठन के रूप मे कपनी द्वारा नही, बल्कि उसके अलग अलग कर्मचारिया द्वारा निजी व्यापारिया की हैसियत से किया जाता था। उन्नीसवी शताब्दी क आरभ के बाद ब्रिटेन को भारतीय वस्त्रो का निर्यात बद हो गया और इसके स्थान पर ब्रिटिश सूती मिलो को

सूत का निर्यात किया जाने लगा। अठारहवी शताब्दी के अत मे बगाल मे रेशम के कीडो के पालन और शोरे तथा नमक के उत्पादन म कमी करने के लिए एक दूसरा कदम उठाया गया। इस परिस्थिति म जब कि हस्तशिल्पो का आम तौर पर पतन हो रहा था और दस्तकारा की सख्या मे तजी से कमी हो रही थी, अग्रेजो के अधीन बगाल म स्थापित उत्पादन का एकमात्र नया क्षेत्र, जिसने स्थानीय श्रमिको को कार्य प्रदान किया कलकत्ता पोत कारखाने मे पोत निर्माण था। यह उद्योग अनन्य रूप से ब्रिटिश नियत्रण मे था। पोत कारखाने मे निर्मित अधिकाश पोतो का उपयोग चीन के साथ व्यापार मे किया जाता था। आर्थिक कार्यकलापो पर कपनी की सख्त जकड ने भारतीयो को बडे पैमाने के वाणिज्यिक और वित्तीय कार्यों से बाहर निकाल दिया।

दक्षिण भारत म कृषि दस्तकारी और वाणिज्य स सबद्ध परिस्थितिया बगाल मे उत्पन्न परिस्थितियो से कुछ भिन्न थी। युद्धो और विध्वस के परिणाम-स्वरूप देश के दक्षिणी भाग मे काश्त जमीन के कुल क्षेत्र म, विशेष रूप से उस जमीन मे, जिसम पहले औद्योगिक फसले बोयी जाती थी ह्रास आया था। अग्रेज़ो के आने से पहले जो सिचाई प्रणालिया बनायी गयी थी वे जीर्ण शीर्ण हो गयी थी। जहा तक दस्तकार आबादी का सबध था दक्षिण भारत मे बुनकरो पर अत्याचार उतना निर्मम नही था जितना बगाल मे था, क्योकि १८१८ के पहले मद्रास प्रेसिडेसी के इर्दगिर्द ऐसे स्वतत्र भारतीय भूभाग थे जहा दस्तकार भागकर शरण प्राप्त कर सकते थे। व्यापार के क्षेत्र मे बजारो की भूमिका जो भारतीय फौजो को लूट के माल के बदले मे खाद्य सामग्रियो की पूर्ति किया करते थे जब अनेक सामती फौजे विघटित हो जाने के बाद पहले की तरह महत्वपूर्ण नही रह गयी थी। मद्रास के चेट्टी जाति के व्यापारी और जैन धीरे-धीरे ब्रिटिश व्यापारियो के देशी दलाल बन गय। अठारहवी शताब्दी के अत म बम्बई के पारसी व्यापारियो और महाजनो के बीच महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने लगे। अग्रेज़ो न बगाल म भारतीयो को बडे पैमाने के वाणिज्य और ऋण तथा वित्तीय कारबार से जिस हद तक बहिष्कृत कर दिया था उस हद तक वे मद्रास म नही जा पाये।

मराठा युद्धो के अत तक बम्बई एक छोटा सा ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र था और अग्रेज़ वहा केवल मराठा प्रदेशो म बसे गुजराती व्यापारियो की सहायता से ही निर्यात के लिए माल प्राप्त कर पाते थे। अग्रेज़ गुजराती व्यापारियो (और बाद म मारवाडी व्यापारियो) से दलालो का काम करवाना चाहत

थे और उन्होंने इन बिचौलिया को इसकी काफी अनुकूल परिस्थितिया प्रदान की। इसके बावजूद कि मराठा भूभागा के अग्रजा द्वारा जीत जान क बाद गुजराती व्यापारियो क लिए अब महाराष्ट्र म राजस्व संग्रह की ठकदारी और उसक हस्तातरण का लाभदायी धधा करना मभव नही रहा, उन्होने अन्य क्षत्रो म अपनी गतिविधिया तेज कर दी। उन्होंने किसाना का शोषण और गुलामी का शिकार बनाया, ब्रिटिश फर्मा क भागीदार बन गय, ठक पर निर्यात क लिए कृपिजन्य माल और हस्तशिल्प का सामान जुटान लग और बम्बई की आबादी और अग्रजी फौजो क लिए उपभाग की आवश्यक वस्तुआ की पूर्ति करन लग। बाद म उन्नीसवी शताब्दी क पहल तीन दशका के दौरान गुजराती व्यापारिया न स्थानीय भारतीय बाजारा म ब्रिटिश माला की बिक्री क लिए बिचौलियो का काम किया। व मालवा स चीन को अफीम और ब्रिटेन को रुई का निर्यात करते थे और अपन कारखाना म जहाज बनात थे। बम्बई क देशी दलाल बडी मात्रा म पूजी जुटा सकते थ और इसन नय व्यापारिक गृहा के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। उन्नीसवी शताब्दी क पाचव दशक क अत तक महाजनी भारतीय हाथो म ही बनी रही।

औपनिवेशिक प्रशासन का ढाचा

भारत क क्रमश उपनिवेश म परिणत हाते जान के साथ साथ कपनी की नीति अधिकाधिक ब्रिटिश औद्योगिक पूजीपति वर्ग द्वारा औपनिवेशिक मुनाफो का एक हिस्सा प्राप्त करने के सघर्ष के परिणामो से निर्धारित होने लगी। यह सघर्ष भारत के प्रशासन म ब्रिटिश ससद की बढती भूमिका म अभिव्यक्त हुआ। लगभग हर दस वर्ष के उपरात कपनी के चार्टर (अधिकार पत्र) का नवीकरण होता था। हर बार यह घटना ब्रिटेन म भयकर राजनीतिक सघर्ष को प्रकट करती थी।

१७७३ म कपनी के मामलो मे ब्रिटिश ससद का प्रथम हस्तक्षेप उसी वर्ष पारित रेग्यूलेटिंग ऐक्ट मे अभिव्यक्त हुआ। इस अधिनियम की शर्तो के अनुसार गवर्नर-जनरल बगाल कौसिल और कलकत्ता स्थित सर्वोच्च न्यायालय के सदस्यो को कपनी नही, बल्कि सम्राट द्वारा नियुक्त किया जाने लगा। १७८४ म जब चार्टर ससद म पुनर्विचार के लिए फिर आया, तो जिन व्यापारियो का कपनी की व्यापारिक इजारेदारी के कारण भारत म प्रवेश प्रतिबधित था, उन्होने कपनी के खिलाफ खूब जहर उगला, जैसा कि 'नवाबा"

(यह शब्द उन लोगो के लिए इस्तमाल किया जाता था जो भारत स लूट की सपदा लेकर लौटते थे और फिर उसक बल पर ससद क लिए निर्वाच्य बनन के लिए राटनबरो कहलानवाले फर्जी निर्वाचन क्षेत्र खरीद लते थ) क राजनीतिक प्रभाव पर क्रुद्ध भूअभिजाता न भी किया। ह्विगो न भी कपनी क खिलाफ विरोध प्रकट किया और कहा कि कपनी और ताज क बीच निकट सबधो न ब्रिटिश स्वतन्त्रताओ के आधार के लिए ही खतरा प्रस्तुत कर दिया है। ब्रिटेन के प्रगतिशील तत्वो न भी इसका विरोध किया और कहा कि कपनी घूसखोरी पर चल रही है और देश म भ्रष्टाचार फैला रही है। ह्विगा द्वारा प्रस्तुत फाक्स का विधेयक ससद म पारित नही हो पाया और स्वय फाक्स को प्रधानमन्त्री पद विलियम पिट को सौपना पडा।

१७८४ मे पारित पिट के इडिया एक्ट (भारत अधिनियम) ने ऊपरी तौर पर कपनी की स्थायी सत्ता की व्यवस्था की जब कि वास्तव म भारतीय प्रशासन के सभी महत्वपूर्ण मामले ब्रिटिश मन्त्रिमडल द्वारा नियुक्त कटोल कौसिल (नियन्त्रण परिषद) के समक्ष रखे जात थे, जो धीरे धीरे भारतीय मामला के एक विभाग मे परिवर्तित हो गयी। फिर भी सरक्षण (सभी नागरिक और सैनिक पदो पर नियुक्ति) का अत्यधिक लाभप्रद अधिकार निदेशको के हाथो म ही बना रहा।

ह्विगो ने जो १७८४ म फाक्स के विधेयक के अस्वीकार होन के बाद पराजित हो गय थ, प्रतिशोध की भावना से वारेन हेस्टिग्स पर महाभियोग चलान का निणय किया। महाभियोग की कार्रवाई १७८८ म हाउस आफ लार्डस (लार्ड सभा) मे बाजाब्ता शुरू हुई और आठ साल चलती रही। ब्रिटन क उत्कृष्टतम वक्ताओ एडमड बर्क और रिचर्ड शरिडन ने अभियोग चलान का दायित्व ग्रहण किया और उन्ह फिलिप फ्रासिस न तथ्य सामग्री प्रदान की, जो भारत म कपनी की काली करतूतो से भली भाति परिचित था। हस्टिग्स पर क्रूरता, अन्याय और भ्रष्टाचार के आरोप लगाये गय। एक प्रकार स यह कपनी ही थी, जो कठघरे में खडी थी। महाभियोग की कार्रवाई शुरू करन-वाला की इच्छाआ के प्रतिकूल महाभियोग के दौरान प्रस्तुत सामग्री न उन विधियो को खोलकर रख दिया जिन्ह अग्रेजा न आद्य सचय काल म भारतीय जनता पर अपना प्रभुत्व जमान और उसका शोषण करने म इस्तेमाल किया था।

लेकिन ठीक इसी वजह से ब्रिटिश पूजीपति वर्ग, जो भारत क औपनिवशिक शोषण के लाभ बटोर रहा था, हस्टिग्स और कपनी का दोषी ठहरान की अनुमति नही दे सकता था। हस्टिग्स की निन्दा भारत म विजय और लूट की

ब्रिटिश नीति की ही निन्दा होती। हस्टिग्स को सभी आरापा स बरी कर दिया गया।

बाद म, जब कपनी का चार्टर १८१३ म नवीकरण क लिए आया, ता भारत के प्रशासन का प्रश्न ससदीय सघर्ष का विषय बन गया। उस समय तक मैसूर और मुख्य मराठा प्रदश जीत जा चुक थे, दूसरा आग्ल-मराठा युद्ध समाप्त हो गया था और एक अत्यधिक लाभप्रद बाजार क नात भारत क शोषण की पूर्वावस्थाओ का निर्माण किया जा चुका था। यही कारण था कि समग्र रूप म ब्रिटिश पूजीपति वर्ग न कपनी की व्यापारिक इजारदारी का विरोध किया। १८१३ के अधिनियम न भारत क प्रशासन क सबध म कपनी क विशेषाधिकारो का प्रभावित किय बिना चीन क साथ चाय क व्यापार का छाडकर उसकी व्यापारिक इजारदारी का समाप्त कर दिया। इसके साथ ही कपनी के राजनीतिक कार्यकलापो पर ससदीय निरीक्षण के एक निकाय क रूप म कट्रोल कौसिल की भूमिका भी बढा दी गयी। इसका मतलब यह था कि भारत अधिकाधिक व्यापक पैमाने पर कपनी के एक उपनिवश से समग्र रूप म ब्रिटिश पूजीपति वर्ग का उपनिवश बनता जा रहा था।

१८३३ म कपनी की स्थिति म और परिवर्तन लाये गये। शासक ह्विग पार्टी की पहल पर लागू किय गय १८३३ क अधिनियम ने भारत पर कपनी के प्रशासन क अधिकार को पुष्ट किया, लेकिन बगाल कौसिल म सम्राट द्वारा नियुक्त एक अधिकारी का सम्मिलित करके उस पर सरकारी नियत्रण को और बढा दिया। उसका विशेष दायित्व सपूर्ण भारत के लिए कानून बनाना था। प्रथम विधि सदस्य उदारतावादी इतिहासकार टी० बी० मैकाले (१८००–१८५९) था। लेकिन उसके द्वारा तैयार की गयी दड सहिता लागू नही की गयी।

भारत के औपनिवेशिक शोषण के यत्र का सगठन क्रमिक रूप म हुआ और यह प्रक्रिया किसी भी मूलभूत परिवर्तन से रहित थी। जब व्यापारिक कपनी वस्तुत भारत की सरकार बन गयी और उसके समक्ष सर्वथा नये कार्य प्रस्तुत हुए, तो उसन इनके कायान्वयन के लिए किसी नये यत्र की स्थापना नही की, बल्कि पहले से ही मौजूद यत्र म हेर फेर करके उसे अपने काम के उपयुक्त बना लिया। व्यापारिक जाल धीरे धीरे विशाल देश के प्रशासन की एक नौकरशाही मशीनरी मे परिणत हो गया। यह एक भारी और अकुशल मशीनरी थी और अनेक मामलो म इसने प्रशासन कार्य मे केवल बाधा ही डाली। सभी कार्यो के सख्त नियमन के बावजूद इसने औपनिवेशिक नौकरशाहा

के मनमाने व्यवहार के लिए काफी सभावना प्रदान की और इसके अलावा विशाल ससाधनो को भी बर्बाद किया। कपनी के प्रशासकीय निकाय भारत और ब्रिटेन दोनो मे थे। ब्रिटेन म कपनी का नेतृत्व हिस्सेदारो या शेयरहोल्डरो की सभा द्वारा निर्वाचित कोर्ट आफ डायरक्टर्स (निदेशक मडल) द्वारा होता था, जिनम से प्रत्येक को अपन शेयरो के मूल्य के अनुरूप एक स चार तक मत प्राप्त थे। मिसाल के लिए १८३२ म ४७४ प्रभावशाली शेयरहोल्डरो का कपनी के कार्यो पर नियत्रण था क्योकि वे कपनी के कुल शेयरो के आधे से अधिक के मालिक थ। मार्क्स न कहा है कि कोर्ट आफ डायरेक्टर्स अग्रेज थैलीशाही के अधीनस्थ अग से अधिक कुछ नही है। * कपनी के निदेशको के लिए आय और प्रभाव का एक महत्वपूर्ण स्रोत सरक्षण का अधिकार था। निदेशक धन, राजनीतिक प्रभाव और ससद म स्थान प्राप्त करन के लिए इस अधिकार के अतर्गत काम करते थे। कोर्ट आफ डायरक्टर्स समितियो म विभाजित था जो औपनिवेशिक नीति के सभी महत्वपूर्ण प्रश्नो के सबध म ब्योरेवार निर्देश और प्रेसिडेसी कौसिल स प्राप्त पत्रो के उत्तर भारत भेजती थी।

भारत के प्रशासन की यह जटिल मशीनरी अत्यत दुर्वह और मथर थी। भारत से लदन पत्र पहुचन म छ से आठ महीने लग जाते थे और उसके बाद कोर्ट आफ डायरेक्टर्स तथा कट्रोल कौसिल मे जब तक किसी प्रश्न पर विचार विमर्श होता तथा दोनो निकायो के बीच मतभेद दूर होते तब तक एक उत्तर पाने म यदि कई वर्ष नही तो कई महीने अवश्य लग जाते थे। इस बीच मे भारत म स्थिति आमूलतया बदल जा सकती थी। इसका मतलब यह था कि व्यवहार म सभी रोजमर्रा के प्रश्न बगाल मद्रास और बम्बई प्रेसिड सियो के गवर्नरो तथा उनकी कौसिलो द्वारा निपटाये जाते थे।

प्रत्येक प्रेसिडेसी को कोर्ट आफ डायरेक्टर्स के साथ स्वतत्र पत्र व्यवहार करने और अपने निर्णयो को प्रकट करने का अधिकार था, जो भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट होने के बाद सबद्ध सपूर्ण प्रेसिडेसी म लागू हो जाते थे। परिणामस्वरूप बगाल मद्रास और बम्बई म अलग अलग कानून लागू थे जो वाणिज्यिक, औद्योगिक और अन्य नागरिक मामलो म भारी समस्याए उत्पन्न करते थे। ब्रिटिश पूजीपति वर्ग की माग थी कि कानूनो का

---

* का० मार्क्स 'भारत का शासन प्रबध' मार्क्स एगेल्स, उपनिवेश-वाद के बारे मे पुस्तक म मास्को १९७८, पृ० ८०।

भारत म सपूर्ण प्रशासन के लिए एकरूप होना चाहिए। यह कहने की आवश्यकता नही कि इस प्रशासकीय मशीनरी म उच्च पद अग्रेजो को ही प्रदान किए जाते थे। भारतीयो को केवल सबसे निचले पदो पर ही रखा जाता था।

औपनिवेशिक प्रशासनतत्र के सदर्भ म देशी सिपाहियो से निर्मित फौज एक महत्वपूर्ण कारक थी। अग्रेजो ने इस फौज की सहायता से भारत को जीता था और अब पुन इसकी सहायता से वे इस नयी अवस्था म देश को नियत्रण म रख पा रहे थे। १८३० म सेना म २ २३ ५०० सैनिक थे। तीसरे आग्ल मराठा युद्ध (१८१७–१८१९) के बाद भारत म तीस साल म कोई युद्ध नही हुआ था और सेना का एक अल्प भाग ही देश की सीमाओ के बाहर युद्धो म फसा था। फिर भी अग्रेजो ने अपनी देशी टुकडियो को विघटित नही किया जो वस्तुत देश म अपरिमित पुलिस कार्य को करती थी। कभी-कभी सिपाहियो को राजस्व वसूलने म सहायता करने के लिए भी भेजा जाता था लेकिन सभी प्रकार की गड बडियो अर्थात भारत म अग्रेजी शासन के प्रति विरोध या विद्रोह के मामलो को दबाने के लिए तो उन्हे अक्सर भेजा जाता था।

भारत म उत्पीडन यत्र म न्यायिक प्रणाली की एक महत्वपूर्ण भूमिका थी जिसम घूसखोरी और भ्रष्टाचार का बोलबाला था। गवाहो व साक्ष्य को जो कानूनी कार्यवाहियो म महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता था, आसानी से खरीदा और जबरदस्ती प्राप्त किया जा सकता था। नागरिक मामलो म अदालती नौकरशाही एक बडी बुराई थी क्योकि मुकदमे वर्षो लम्बा खीचते थे और इस बीच म किसानो के सापत्तिक अधिकारो की अस्पष्ट परिभाषाओ अथवा अधिकार-वचन के परिणामस्वरूप अनेक शिकायते पैदा होती रहती थी। ऐसे बाहरी किसान के अनुकूल होने के कारण जो किसी गाव म कृषि भूमि खरीद तो लेता था मगर ग्राम समुदाय की आम मागो को पूरा नही करता था और सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रो म नियुक्त पुलिस अधिकारियो के मनमाने व्यवहार के भी अनुकूल होने के कारण कानूनी प्रणाली की अकुशलता ने ग्राम समुदाय के पतन म सहायता दी। किसान पुलिस अधिकारियो से डाकुओ से भी ज्यादा डरते थे। ग्राम समुदाय को नष्ट करने तथा भूमि के निजी स्वामित्व को प्रोत्साहित करने की ओर लक्षित ब्रिटिश नीति ने किसानो का शोषण तेज करने म सहायता की।

उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे भारत का आर्थिक विकास

ब्रिटेन म औद्योगिक पूजीपति वर्ग (बूर्जुआजी) द्वारा अपनी स्थिति मजबूत करने के बाद भारत का आर्थिक विकास अधिकाधिक रूप म उस वर्ग के हित म होन लगा। भारत को धीर धीरे ब्रिटिश वस्तुओ के बाजार और ब्रिटिश उद्योग के कच्चे मालो के स्रोत म परिवर्तित कर दिया जाना था।

ब्रिटेन की सीमा शुल्क नीति न भारत को कम निर्यात प्रशुल्को की वजह से ब्रिटिश निर्यात प्रोत्साहित करन म सहायता की जब कि उच्च आयात प्रशुल्क ब्रिटेन मे भारतीय दस्तकारी सामान के आयात म बाधक थे। भारत मे ब्रिटिश कपडे क आयात पर दो और साढे तीन प्रतिशत के बीच शुल्क था। ब्रिटेन म आनेवाले भारतीय कपडो पर आयात शुल्क बीस और तीस प्रतिशत क बीच था। परिणामस्वरूप भारत को पहले की भाति कपडे का निर्यात करने के स्थान पर इसका आयात शुरू करने के लिए विवश होना पडा। अन्य मालो के सबध म भी घटनाक्रम इसी प्रकार चला। ब्रिटिश सीमा शुल्क नीति ही ऐसी थी कि जिससे स्वीडन और रूस से अग्रेजो को प्राप्त इस्पात का भारत मे आयात तो लाभकर हो गया लेकिन एक अग्रेज इजीनियर द्वारा पोर्टो-नोवो म स्थापित छोटा सा इस्पात कारखाना अलाभकर सिद्ध हुआ और कुछ वर्षो के बाद उसे बद होना पडा बावजूद ऐसी परिस्थितियो के जा पहली नजर म उपयुक्त प्रतीत होती थी (खुली खान, लकडी का प्राचुर्य बदरगाह सुविधाओ की सुलभता आदि)। कलकत्ता मे पोत निर्माण की भी यही दशा हुई क्योकि वहा निर्मित पोत ब्रिटेन मे बने पोता का मुकाबला नही कर सकते थे। केवल बम्बई म ही, जहा पोत निर्माण कार्य कपनी से सम्बद्ध पारसियो के हाथो मे था और चीन क साथ कपनी के व्यापार क लिए लाभप्रद था, उत्पादन की यह शाखा उन्नीसवी शताब्दी क मध्य तक फूलती फलती रही।

हालाकि ब्रिटिश वस्त्रो की बिक्री भारत के स्थानीय वस्त्रा की तुलना म कम दाम पर होती थी, फिर भी उन्नीसवी शताब्दी क मध्य तक उनक अधिक माग केवल नगरो मे और बदरगाहा क निकट अवस्थित कुछ ग्रामीण बस्तियो मे ही थी। भारतीय दस्तकारो को जिन्ह अपन पुरान बाजारो स वचित कर दिया गया था अपने हाथ स बुन वस्त्रो को उसी दाम पर बचन क लिए मजबूर होना पडा जिस पर ब्रिटिश मिला म बन वस्त्र बिके जाते थे

परिणामस्वरूप दस्तकारो के जीवन-स्तर मे तेजी से गिरावट आयी उदाहरणार्थ मद्रास प्रेसिडेसी मे बुनकरो की कुल आय मे १८१४ और १८४४ के बीच ७५ प्रतिशत की गिरावट आयी। उन्नीसवी शताब्दी के तीसरे दशक मे भारत मे ब्रिटिश मिल निर्मित सूत का आयात शुरू हुआ और शताब्दी के मध्य तक भारत मे आयातित कुल सूती वस्तुओ मे इस सूत का अश १/६ हो गया था। बुनकरो को सूत मुहैया करानेवाले व्यापारियो और महाजनो ने उनकी स्थिति को और कठिन बना दिया। मिसाल के लिए १८४४ मे ६० प्रतिशत बुनकर व्यापारी बिचौलियो के भारी कर्जे मे फसे हुए थे।

किसानो के शोषण की सामती विधियो का इस्तेमाल करते हुए और उन्हे तेज करते हुए अग्रेजो के लिए पहले से वस्तुत कोई पूजी लगाने की चिता किये बिना छोटी किसानी काश्तो से कच्चा माल प्राप्त करना सभव हो गया। सभवत यही कारण था कि भारत मे बागान (उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे असम के कम आबादीवाले पहाडी क्षेत्रो मे कायम किये गये बागानो को छोड कर) विकसित नही किये गये। अफीम के पोस्त और नील खरीदने के लिए किसानो के साथ बडे पैमाने पर जबरदस्ती ठेके किये जाते थे। इस प्रणाली ने इन फसलो की अपने खेतो मे खेती करनेवाले किसानो को वस्तुत भूदास जैसा बना दिया। नील बागान के अग्रेज मालिक – निलहे साहब – पेशगी पैसा देकर किसानो को बेबस बना देते थे और फिर उनकी पूरी की पूरी फसल को ठेके मे मनमाने तौर पर निर्धारित बहुत ही कम दाम पर हथिया लेते थे जिसका मतलब यह था कि किसान कभी अपने कर्ज अदा नही कर सकता था। मा बाप के कर्ज उनके बच्चो पर चढ जाते थे। हर बागान मालिक के पास गुडो के गिरोह होते थे, जो किसानो को नियत्रण मे रखते थे और उनके भागने पर या तो उन्हे पकडकर वापस ले आते थे या पडोसी बागानो मे काम करनेवाले किसानो को उठा लाते थे। किसानो ने इन गैर-कानूनी तरीको, लूट और अत्याचार का विरोध "नील विद्रोहो" से किया जो अठारहवी शताब्दी के नौवे दशक से लेकर उन्नीसवी शताब्दी के अत तक रह रहकर होते रहे। कभी कभी किसान ऐसे विद्रोहो के बाद अपनी मागो को पूरा करवाने मे कामयाब भी हो जाते थे। यह स्थिति केवल तभी जाकर समाप्त हुई जब रासायनिक रगो का आविष्कार हुआ और नील की खेती एक अलाभकर कारोबार बन गयी।

उन्नीसवी शताब्दी के तीसरे दशक के अत मे ब्रिटिश बागान मालिको ने बिहार के किसानो को गन्ने की खेती बढाने के लिए प्रोत्साहित करना आरभ

किया। इसके साथ ही कपनी बरार मे लबे रेशेवाली कपास की खेती शुरू करने का भी प्रयास कर रही थी। इटली स रेशम क कीड बगाल लाये गये तथा मैसूर मे काफी और तम्बाकू क बागान लगाये गये। लेकिन भारतीय अर्थ-व्यवस्था को उच्च कोटि के कच्च मालो क सभरणकर्ता के रूप मे परिवर्तित करन के ये सभी प्रयास किसानो के निम्न जीवन-स्तर के कारण अधिक सफल न हो सके, जिसने उन्हे कृषि की अपनी परपरागत विधियो को नही छोडन दिया। भारतीय किसानो को अकसर कर तथा लगान की अदायगी के लिए अपनी पैदावार को ऐसे दाम वेचने के लिए मजबूर होना पडता था जिसका उत्पादन की वास्तविक लागत से बिलकुल सबध नही होता था। उन्नीसवी शताब्दी के तीसरे और चौथे दशको म हस्तातरित लाखिराज जमीन के व्यापक पुनरीक्षण के समय मद्रास और बम्बई प्रेसिडसियो म कुल कराधान को बढा दिया गया। इसी तरह बगाल मे भी जैस जैसे जमीदार गावो मे महाजनो की भूमिका अदा करने और कर्जो पर मूद के भुगतान क रूप मे अनाज लेने लग वैसे वैसे भूमि-कर बढता गया। इस तथ्य का कोइ कारण भी खोजना अनावश्यक था कि *उन्नीसवी शताब्दी क पूर्वार्द्ध मे देश के विभिन्न भागो मे सात बार* अकाल पडे, जिनम लगभग १५ लाख लोगो की जान गयी।

विश्व मडियो क साथ भारत के व्यापारिक सपर्को के विस्तार के परिणाम-स्वरूप बदरगाह नगरो का विकास हुआ तथा उनके और देश के भीतरी भागो के बीच व्यापारिक सबध और सक्रिय हो गये। उन्नीसवी शताब्दी क मध्य तक भारत के प्रथम रेलमार्ग बन चुके थे और रेल वर्कशाप तथा मरम्मत कारखान कायम किये जा चुके थे नये वदरगाह अधिष्ठान बनाये जा चुके थे टेलीग्राफ लाइनो का जाल विछाया जान लगा था डाक सचार को सुधारा गया था मौजूदा सिचाई नहरो की मरम्मत की जा चुकी थी और नयी सिचाई नहर बनायी जा चुकी थी। इस प्रकार औद्योगिक पूजी द्वारा भारत क त्वरित समावेशन के लिए पूर्वपरिस्थितिया कायम की जा रही थी (विशेप रूप म लार्ड डलहौजी के प्रशासन काल–१८४८–१८५६–के दौरान)। स्वय भारत म, सर्वप्रथम बम्बई और कलकत्ता म विशेपकर विदशी पूजी स सबधित देशी दलाल पूजीपति वर्ग (काम्प्रेडोर बूर्जुआजी) द्वारा नय व्यापारिक गृह कायम किये जा रहे थे। उनके पास करोडा की पूजी थी और व अपन *वाणिज्यिक और वित्तीय कारोबार यूरोपीय ढग से करत थ।*

उन्नीसवी शताब्दी के चौथे पाचव और छठे दशको के दौरान भारतीय औद्योगिक पूजीपति वर्ग का उदय हुआ और पहली विनिर्माणशालाए (मैन्यूफक्च-

री) और पहली फैक्टरिया (कलकत्ता म निकट एक ब्रिटिश जूट मिल और बम्बई म भारतीय कपडा मिल) लगभग एक ही समय म कायम की गया। लकिन इस भारतीय औद्योगिक पूजीपति वग का उदय मद गति स और कठिन परिस्थितियो का सामना करत हुए हुआ। इस तथ्य क बावजूद कि भारत विश्व व्यापार म खिच आया था और नय व्यापारिक सबध कायम हो गय थ, माल मुद्रा सबधो का और समग्र रूप म कृषि म जिस-उत्पादन का स्तर अब भी बहुत नीचा था। इसक अलावा विकास समरूप नही था। बगाल प्रसिडसी, जहा अग्रज लगभग १०० वर्षो स शासन कर रह थ, और वस्तुत उत्तर पश्चिम प्रात क नाम स एक विशेष प्रात क रूप म कायम किए उत्तर भारत म माल मुद्रा सबध बम्बई प्रसिडसी और खास तौर स मद्रास प्रसिडसी क आतरिक क्षत्रो क मुकाबल म अधिक तजी स विकसित हो रह थ।

सामान्यतया भारत म औपनिवशिक सरकार की आर्थिक नीति एक दोहरी नीति थी एक ओर नय आर्थिक क्षत्रो तथा नय सचार साधनो क विकास को प्रोत्साहित किया जा रहा था जब कि ग्राम समुदायो का ह्रास हो रहा था, दूसरी ओर कराधान क जरिय किसानो क सामती शोषण को तज किया जा रहा था और भूमि के निजी स्वामित्व को इस कदर मजबूत बनाया जा रहा था कि भूस्वामी अपनी जमीन बटाइदारो को लगान पर द रह थ और किसानो को लगभग भूदासो जैसी ही स्थिति म ला रहे थे। एक ओर भारत को ब्रिटन क लिए कच्च मालो और कृषिजन्य उत्पादो क एक स्रोत म परिवर्तित किया जा रहा था और यह एक ऐसा विकास था कि जो दश म पूजीवादी उत्पादन क उदय के लिए जमीन तैयार कर रहा था, जब कि दूसरी ओर राष्ट्रीय उत्पादन क मार्ग म विभिन्न प्रकार की सामती प्रथाए और बाधाए भारतीय अर्थव्यवस्था क विकास को रोक रही थी।

भारत की विजय का अतिम चरण

अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म पजाब उन घटनाओ से अछूता रहा था जो भारत म घटनाक्रम को निर्धारित कर रही थी। उस समय पजाब के भूभाग म बारह सिख मिसले थी। हर मिसल एक सरदार के शासनाधीन थी। ये सरदार मुगलो और अफगान विजेताओ के खिलाफ युद्धो के दौरान सिखो के फौजी नेता रह चुके थे। पजाब म जमीनो का एक बहुत छोटा भाग स्थानीय

मुस्लिम और हिन्दू सामतो के हाथ म था जो सिख विद्रोह के समय भी सुरक्षित बच गय थे।

हालाकि मिसले खालसा, अर्थात समुदाय (खालसा" शब्द की व्युत्पत्ति अरबी शब्द 'खालिस' मे हुई है जिसका अर्थ है शुद्ध) की एक इकाई मानी जाती थी, लेकिन प्रत्येक मिसल अपन आपम एक छोटी रियासत जैसी ही थी। धीरे धीरे यह शब्द एक दूसरा अर्थ भी प्राप्त करने लगा और इसका प्रयोग फौज के नेतृत्व के लिए किया जान लगा। बाद मे फौजी खालसा ने सिख राजाओ का विरोध करना शुरू किया। सरदार स्वतत्र रूप से शासन करते थे और पहल अपन नताओ की परिषद म विचार विमर्श हो जान के बाद ही सयुक्त अभियानो के लिए सम्मिलित होते थे।

चूकि मिसले सिख सामतो के नेतृत्व म थी, इसलिए धीरे धीरे ये सामान्य भारतीय राज्यो की तरह ही बनती गयी। १७६५ और १७६६ के बीच सरदारो मे प्रभुत्व के लिए भयकर सघर्ष चला, क्योकि वे सभी अपन पडोसियो की कीमत पर अपन अपन अधिकृत क्षेत्रो को विस्तारित करने का प्रयास कर रह थे। इस प्रतिद्वद्विता के तथा अफगान शासक जमान शाह क, जिसन अठारह वी शताब्दी के अत मे कई अवसरो पर भारत पर आक्रमण किया था, खिलाफ प्रतिरोध काल म सुकरचकिया मिसल ने एक महत्वपूण स्थिति प्राप्त कर ली, जिसका नतृत्व १७६७ स रणजीतसिह कर रहा था। १७६६ म जब रणजीतसिह (१७६६–१८३६) न लाहौर पर अधिकार कर लिया तो उसन महाराज की उपाधि धारण की और अपने नेतृत्व मे सपूर्ण पजाब का ऐक्यबद्ध करन के लिए अनेक वर्षो तक सघष चलाया। किसान बड शौक क साथ रणजीतसिह की फौज मे भर्ती होने के लिए जमा हो गये क्योकि सरदारो के परस्पर विनाशकारी सघष मे वे मुसीबते उठा रह थे और अपनी सीमा पर कपनी के आगमन से भी वे सशक थे।

उन्नीसवी शताब्दी के तीसर दशक मे पजाब म रणजीतसिह क नतृत्व म एक मजबूत सिख राज्य कायम हो गया था। सरदारो की जमीनो को राजकीय सपत्ति और पजाब की मध्यवर्ती जमीनो का स्वय रणजीतसिह की भूसपत्ति घोषित कर दिया गया था। अपने राज्यक्षेत्र का कश्मीर तथा अफगान प्रदेशो के एक भाग तक विस्तारित करने क बाद रणजीतसिह फौजी सेवा करने क लिए तैयार लोगो को जागीर प्रदान करन और अपनी जमीनो क एक भाग को मालगुजारी को उच्च रकम क बदले म दन की स्थिति म आ गया। अब विशाल ससाधनो क उपलब्ध हो जाने से रणजीतसिह अपन प्रजाजन

पर स कर के भारी बोझ को कम करने और साथ ही अपनी सेना को फ्रांसीसी अफसरों विशेषकर नेपोलियन के भूतपूर्व कमांडरों के निरीक्षण में पुनर्संगठित करने में समर्थ हो गया था। उसकी सेना मुख्यतया किसान पैदल सैनिकों से बनी थी ग्राम समुदायों के ये भूतपूर्व सदस्य बड़े दमदार थे और श्रेष्ठ लड़ाके थे।

पंजाब के एकीकरण ने विशेष रूप से उन क्षेत्रों में दस्तकारी और व्यापार को प्रोत्साहित किया जिनमें होकर व्यापारिक मार्ग गुजरते थे, हालांकि भीतरी भागों में नैसर्गिक अर्थव्यवस्था का ही प्राधान्य था।

रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद राज्य के लिए एक ह्रास काल आया। शक्तिशाली जागीरदार और सूबेदार विशेष रूप से मुल्तान और कश्मीर के जागीरदार और सूबेदार पृथक होने की कोशिश करने लगे, और उधर सत्ता केंद्र में विभिन्न सामंती गुटों के बीच तीव्र प्रतिद्वंद्विता चल रही थी। रणजीत सिंह के नाबालिग पुत्र दलीपसिंह के सिंहासनारूढ होने के पहले कई महाराजा तेज़ी से एक के बाद एक गद्दी पर बैठे। प्रमुख सिख सेनानायक इस सत्ता संघर्ष में फंसे हुए थे।

इस अवस्था में सिख राज्य की फौज ने राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया। फौजी समितियों अर्थात पंचायतों के माध्यम से इसने देश के प्रशासन पर निर्णायक प्रभाव डालना आरंभ किया। सत्ता की बागडोर वस्तुतः पंचायतों के हाथ में थी लेकिन फौज अब भी सिख सामंतों की कमान में थी, हालांकि उनका संचालन पंचायतों द्वारा ही होता था। सिख फौज के सैनिकों पर नामधारी सम्प्रदाय अर्थात कूकाओं की शिक्षा, का बड़ा प्रभाव था। नामधारी सम्प्रदाय के सदस्यों ने अपने अनुयायियों से सिख धर्म के मूल, अतिनैतिकतावादी जनवादी रूप को पुनः अपनाने का उपदेश दिया और सिख अभिजात वर्ग की विलासितापूर्ण वृत्ति का विरोध किया। पंचायतों के प्रभाव से छुटकारा पाने की आकांक्षा से पंजाब के सामंतों ने ऐसे कदम उठाये कि जिससे कंपनी के विरुद्ध युद्ध छिड़ जाये।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने, जो १८३८–१८४२ में अफगानिस्तान पर विजय प्राप्त करने के युद्ध में पराजित हो गयी थी, भारत की अपनी विजय को पूरा करके अपनी प्रतिष्ठा पुनः कायम करने का निर्णय किया। १८४३ में सिंधु नदी के तट पर हैदराबाद में सिंध के अमीरों के खिलाफ लड़ाई के बाद सिंध को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया था। ऊपरी सिंध में रैयतवारी प्रणाली लागू की गयी जब कि निचले सिंध में जमींदारों को वैध भूस्वामियों के रूप में

मान्यता प्रदान की गयी। इस तरह सिंध के अधिग्रहण से अंग्रेजों का पंजाब के खिलाफ आक्रमण करने का एक और सुविधाजनक मार्ग मिल गया।

१८४५ में भारत के अंग्रेज अधिकारियों ने सिखों के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। सिख फौज १८४५ में मुदकी और फीरोजशाह की लड़ाइयों में और १८४६ में सुबराहान की लड़ाई में वीरतापूर्वक लड़ी लेकिन हर बार उसके सेनानायकों और सामंतों ने उसके साथ गद्दारी की अत्यंत महत्वपूर्ण क्षणों में या तो अपनी फौजें हटाकर पीछे ले गये या जान बचाने के लिए भाग गये। परिणामस्वरूप पंजाब को कब्जे में ले लिया गया और सिख राज्य को अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों से हाथ धोना पड़ा।

संभावित विद्रोह की आशंका से अंग्रेज दलीपसिंह को वैध शासक की तरह मानते रहे हालांकि उसकी संरक्षक परिषद का अधिकार लाहौर प्रदेश तथा पेशावर तक ही सीमित था। बहादुर सिख किसानों को यह रिआयत दी गयी कि उन पर भूमि कर कुछ कम कर दिया गया तथा सिख सरदारों द्वारा वसूल किये जा रहे अबवाबों को समाप्त कर दिया गया। लेकिन १८४८ में मुल्तान के सूबेदार को अपदस्थ करने के प्रयासों तथा एक ब्रिटिश टुकड़ी के आगमन ने विद्रोह की चिनगारी भड़का दी जो पंजाब की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं तक फैल गयी। चिलियांवाला और गुजरात में लड़ाइयों में भारी क्षति उठाने के बावजूद अंग्रेजी फौजें विजयी हुईं। पंजाब को साम्राज्य में मिला लिया गया। जम्मू और कश्मीर राज्य को रणजीतसिंह के एक भूतपूर्व सेनानायक और शक्तिशाली जागीरदार गुलाबसिंह डोगरा को एक करोड़ रुपये लेकर दे दिया गया जिसने कंपनी का अधीनस्थ राजा बनना स्वीकार कर लिया।

पंजाब की विजय के बाद के प्रारंभिक वर्षों में अंग्रेजों ने ग्राम समुदायों की संरचना में कोई परिवर्तन नहीं किया हालांकि उन्होंने सामुदायिक भूमि के धनी काश्तकारों को तथाकथित मालिकाना हक (यानी सदा-सर्वदा के लिए अपनी काश्तों पर खेती करने का अधिकार बशर्ते कि वही लगान अदा किये जाते रहें) के अंतर्गत राजस्व में छूट प्रदान की। संपूर्ण पंजाब में जिस रूप में लगान को नकद कर में परिवर्तित कर दिया गया। परिणामस्वरूप भूस्वामियों को अपनी पैदावार बाजार में बेचने के लिए मजबूर होना पड़ा जिससे खाद्य पदार्थों की कीमतों में गिरावट आयी किसानों की परिस्थितियों में ह्रास आया और महाजनों का प्रभाव बढ़ा। सिख सामंत, जिनके मालिकाना हक मजबूत हो गये थे, ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के लिए समर्थन के आधार बन गये।

ओपनिवेशिक शासनविरोधी आदोलन

भारत पर ब्रिटिश प्रभुत्व के मजबूती से स्थापित हो जाने के बाद मे औपनिवशिक अधिकारी अब इतना आश्वस्त हो गये थे कि उन्होने धीरे धीरे सपूर्ण भारतीय प्रदेश पर प्रत्यक्ष ब्रिटिश प्रशासन की प्रणाली कायम करके देशी राज्यो को समाप्त करने का निणय किया। इस उद्देश्य को प्राप्त करने का एक साधन उत्तराधिकार अपहरण का सिद्धात या राज्यलय नीति था जिसके अनुसार यदि कोई शासक निस्सतान रह जाता था तो उसका राज्य उसके दत्तक सतान को उत्तराधिकार मे प्राप्त नही करने दिया जाता था। इस तरह १८४८ और १८५८ के बीच के वर्षो मे सतारा, नागपुर, झासी सभलपुर, आदि राज्यो को समाप्त कर दिया गया। तजौर के राजा तथा कर्णाटक (अर्काट) के नवाब की मृत्यु के बाद इन उपाधियो को सदा के लिए समाप्त कर दिया गया। हैदराबाद के निजाम के कर्जों की अदायगी के लिए राज्य के सबसे विकसित कपास उत्पादन क्षेत्र बरार को छीन लिया गया। १८३१ के बाद मैसूर राज्य को सीधे ब्रिटिश प्रशासन मे ले लिया गया हालाकि बदले मे राजा को पेशन मिलती थी जब कि पेशवा बाजीराव द्वितीय के उत्तराधिकारियो को तो पेशनो से भी वचित कर दिया गया। अत मे १८५६ के प्रारभ मे अवध को खराब प्रशासन के बहाने ब्रिटिश राज्य मे मिला लिया गया।

अपनी सत्ता और उपाधियो के समाप्त कर दिये जाने पर भूतपूव राजाओ ने अपने दरबारो को भग कर दिया। परिणामस्वरूप भूतपूर्व दरबारी और परिचर अपनी जीविका से वचित हो गये दस्तकारो ने अपने को निर्धनावस्था मे पाया, क्योकि अब अभिजातो और राजाओ को उनकी सेवाओ की कोई आवश्यकता नही थी। लगान बढा दिया गया, जिससे किसानो की स्थिति पहले से भी खराब हो गयी, क्योकि ब्रिटिश सरकार फसलो के खराब होने पर न तो कोई छूट देती थी और न तकावी ही प्रदान करती थी। और अतिम बात यह थी कि भारतीय राजाओ की हैसियत को सामान्य ब्रिटिश नागरिक की हैसियत जैसा कर दिया जाना भारतीयो के राष्ट्रीय गर्व पर एक गहरा आघात था। इसके परिणामस्वरूप भारतीय आबादी के व्यापक हिस्सो मे असतोष व्याप्त हो गया था और अक्सर किसान विद्रोहो का नेतृत्व भूतपूर्व सामतो के हाथो मे होता था। असतोष का दूसरा कारण भारतीय आदिवासियो के प्रति औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा अपनाया गया रुख था, जिनमे से अधिकाश को पहले कोई लगान नही देना पडता था, बल्कि उसके बदले मार्गो की सुरक्षा को

सुनिश्चित बनाने के लिए कुछ समय फौजी सेवा अथवा पहरेदारी करनी पडती थी। अंग्रेज़ो के विचार म आदिवासियो का यह काय अनावश्यक था और उन्होने उनकी काश्तो पर लगान लगा दिया। इसके विरोध म सपूर्ण भारत म आदिवासियो के विद्रोह होने लगे।

उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध भर भारत के विभिन्न भागो मे किसानो आदिवासियो और सत्ताच्युत सामतो की औपनिवेशिक शासनविरोधी कार्रवाइयो का सिलसिला चलता रहा। उत्तरी सरकारो म सामत (पालयक्कार) उन्नीसवी शताब्दी क प्रारभ स ही ब्रिटिश प्रभुत्व का दृढतापूर्वक विरोध करते जा रहे थ और १८०१–१८०५ म उस क्षेत्र म एक के बाद एक ब्रिटिश दडात्मक अभियान भेजे गये। १८१३–१८१४ म और इसके बाद १८३१ म पुन विद्रोह भडके। १८३१ के विद्रोह को दबाने म कई वर्ष लग गये।

१८०७ म दिल्ली के पूरे इलाके म बगावत हुई। १८१४ म मुनीर का टप्पा (वाराणसी के निकट) म हथियारबद राजपूत किसानो ने एक बाहरी व्यक्ति को अपने ग्राम समुदाय की सार्वजनिक नीलामी द्वारा बिक्री को मसूख करवा दिया। १८१७–१८१८ म ओडिसा के किसानो न एक स्थानीय सामत के नेतृत्व म अपनी लाखिराज ज़मीनो पर कर लगान के खिलाफ विद्रोह कर दिया। पूना ज़िले म १८२६ से १८२९ तक भूतपूर्व मराठा फौजो क सैनिको द्वारा समर्थित रामोशियो का विद्रोह प्रचड रूप से चलता रहा। अधिकारियो को उन्हे बहुत कम लगान पर कृषि भूमि देने के लिए मजबूर होना पडा। १८३०–१८३१ मे ब्रिटिश फौजो को बदनोर ज़िले म करो म वृद्धि क परिणाम स्वरूप भडक उठे किसान विद्रोह को दबाने के लिए मैसूर भेजा गया। १८३५–१८३७ म हुसुर (मद्रास प्रेसिडेसी) म बकाया रकम की अदायगी न करने के कारण एक स्थानीय सामत की रियासत को ज़ब्त करने तथा सीधे ब्रिटिश शासन लागू करने के खिलाफ एक विद्रोह हुआ। १८४२ म इसी वजह स सागर म विद्रोह भडक उठा। १८४६–१८४७ म कुर्नूल म किसानो न स्थानीय पालयक्कारो के नेतृत्व मे विद्रोह कर दिया। १८४८ म रुहेलो न हथियार उठा लिये। १८४४ मे बम्बई प्रेसिडेसी स लगे कोल्हापुर और सावतवाडी राज्यो मे राजा द्वारा नज़राना देने के लिए भूराजस्व म वृद्धि करने क अंग्रेज़ो के निर्णय के विरोध म एक बडा विद्रोह फूट पडा। स्वय बम्बई प्रेसिडेसी म खानदेश के किसानो न वहा की गयी पैमाइश क विरोध म विद्रोह कर दिया जिसके परिणामस्वरूप लगान म वद्धि हो गयी थी।

आदिवासियो के भी विद्रोह हो ही रहे थे जिन्होने औपनिवेशिक

अधिकारिया रा कठिन और रनातिरर 'नघु युद्ध" चलान र लिए विवश किया। वगान प्रसिडसी म छाटा नागपुर म १८३१–१८३२ म आदिवासिया क विद्राह क बाद एसा ही हुआ था। बम्बई प्रसिडसी म १८१८–१८३१ म भीला १८२८ म कोलिया तथा १८२८ और १८२९ म कित्तूर म किसाना क भी अनक विद्राह हुए और कच्छ म १८१५ और १८३२ क बीच अनवरत हलचल चलती रही। कोलिया न पुन सह्याद्रि म १८३९ और १८४४–१८४६ म विद्राह किया। दश क अन्य भागा म भी इस तरह क विद्राह हुए १८३० म राजपूताना म मवा रा विद्राह हुआ १८४६ म गाडा न आडिसा म विद्राह किया और १८५५ म बिहार म सथाल विद्रोह हुआ।

भारत क नगरा म भी नय कर लागू करन क परिणामस्वरूप गडबडिया होती रहती थी। य आम तौर पर हडताला का रूप लती थी। नया गृह-कर लागू करन क बाद बनारस म तथा नय पुलिस कर की घाषणा क बाद १८१६ म बरली म एसी ही हडताल हुइ। इस तरह क विद्राहा म कृपक समूह क अकसर खासे व्यापक सगठना क नतृत्व म हानवाल विद्राह अधिक सकल्पपूर्ण थ जिनकी पहल स सावधानीपूवक तैयारी की जाती थी। सामान्यतया य सगठन किसी न किसी प्रकार की साम्प्रदायिक शिक्षा का प्रतिपादन करत थ और अपन अनुयायिया का काफिरा , यानी अग्रजा क खिलाफ सघप म शामिल हान क लिए आह्वान करत थ। मिसाल क लिए १८१० म बम्बइ प्रसिडसी म एक भूतपूर्व सनानायक अब्दुरहमान क नतृत्व म महदिया वोहरा न सूरत क निकट एक किल पर कब्जा कर लिया, जिसक बाद अब्दुर्रहमान न अपन को महदी घाषित कर दिया।

होल्कर क एक भूतपूव सनानायक सैयद अहमद बरेलवी (१७८६–१८३१) द्वारा सस्थापित वहावी आदोलन अधिक गहरा और स्थायी था। उसन भारत म सत्ता का हथिया लेनवाले काफिरा के खिलाफ जिहाद करन का आह्वान किया। बगाल और बिहार के मुस्लिम किसाना तथा शहरी दस्तकारा और छोटे दूकानदारो न उसका समर्थन किया। वहाबी केवल अग्रेजो के खिलाफ सघर्ष के लिए ही तैयारी नही कर रहे थे, बल्कि बहुत अस्पष्ट शब्दो म निरूपित सामाजिक न्याय के अपने सिद्धातो क अनुरूप समाज के पुनर्निर्माण की माग भी कर रहे थे। १८२० म औपनिवशिक प्रशासन न वहाबियो को बिहार से खदेड दिया और इसके बाद व पख्तून इलाके म सितना मे जा बसे। वहा वहाबिया का सिखो से टकराव हुआ। १८३१ मे सिखो ने सैयद अहमद को मार डाला। लेकिन बगाल और बिहार म वहाबी सम्प्रदाय ने

अपना सघर्ष जारी रखा। १८३१ म तीन चार हजार हथियारबद वहाबियो ने बारासात जिले म एक छोटे स कसबे पर कब्जा कर लिया और इसके बाद उन्होंने कलकत्ता की ओर बढना शुरू किया। एक भयकर लडाई क बाद ही अतत उन्ह तोपो की गोलाबारी स तितर बितर किया जा सका।

हाजी शरियतुल्लाह क नतृत्व म फरायजी पथ के नाम स विज्ञात नया सम्प्रदाय वहाबियो की ही एक शाखा था। इसके सदस्य घृणित भूस्वामियो स चाहे व हिन्दू मुस्लिम अथवा अग्रज बागबान हो प्रतिशाध लेन की कोशिश करते थ। बगाल मे फरायजी आदोलन मूलतया मध्यकालीन ढर्रे का किसान आदोलन था। अपन पूर्ववर्ती वहाबियो की भाति फरायजी भी इस्लाम की पवित्रता को बनाय रखना तथा खुदा के समक्ष सभी लोगो की समानता को स्थापित करना चाहते थ लेकिन साथ ही यह भी कहते थे कि उनक सम्प्रदाय के सभी सदस्य बराबर ह भूमि खुदा की सपत्ति है और किसी को भी अपन लाभ के लिए किसानो स लगान मागने का अधिकार नही है। इसी बीच १८५२ म पटना मे वहाबियो ने अग्रजो क खिलाफ जिहाद की घोषणा कर दी थी। किसाना शहरी आबादी और विशेषकर बगाली फौज क सिपाहियो न उनका उत्साहपूर्वक समथन किया।

इन औपनिवेशिक शासनविराधी आदालनो की सूची मात्र से ही यह पता चल जाता है कि ब्रिटिशविरोधी भावना कितनी गहरी थी। फिर भी यह आदोलन ब्रिटिश प्रभुत्व क स्थान पर केवल स्वतत्र सामती भारत का विचार ही प्रस्तुत कर सकता था। यही कारण है कि औपनिवेशिक उत्पीडन क खिलाफ सघर्ष मे उसके नेता विगत के सामती स्वरूपो की तरफ मुडन की ही आवाज उठाते थे।

पूजीपति वर्गीय आदोलन का उदय

इस समय तक भारत म एक दूसरा आदोलन विकसित होन लगा था। इसके नेता ऐसे लोग थे जो यह महसूस करत थे कि भारत एक पिछडा दश है और जो अनेक परम्परागत प्रथाओ और रीतियो के विरोधी थ। इन लोगो ने पाश्चात्य शिक्षा पायी थी और वे सामती प्रथाओ की तर्कवादी, मानवतावादी दृष्टिकोण से आलोचना करत थे। लेकिन हिन्दू धर्म म सुधार क लिए आदोलन चलाते हुए उन्होन अग्रेजो के साथ इस आशा से सहयाग किया

कि प्रबुद्ध होन क नात व जनता म शिक्षा का प्रसार करन और युगा युगो पुरान पूर्वाग्रहा स सघर्ष करन म सहायता करग। बगाल म इस नय आदोलन के सदस्य मुख्यतया जमीदार और कपनी क कर्मचारी, बम्बइ म धनी पारसी और मद्रास म व्यापारी थ। व अक्सर औपनिवेशिक प्रशासन की कार्रवाइयो की आलोचना तो करत थ लकिन भारत म औपनिवेशिक प्रभुत्व क खिलाफ आवाज नही उठात थ।

नय आदोलन क पहल प्रतिनिधि प्रमुख बगाली जमीदार राममोहन राय (१७७२–१८३३) थे। १८१५ म उन्होन आत्म सभा नामक सस्था की और १८२८ म ब्रह्म समाज क नाम स विनात एक और सस्था की स्थापना की। यह भारत म आधुनिक किस्म का पहला एसा सामाजिक सगठन था, जो एक निर्वाचित नतृत्व आदि क साथ यूरोपीय ढर्रे पर गठित था, हालाकि उसम धार्मिक सगठन क लक्षण भी विद्यमान थे। राममोहन राय न हिन्दू धर्म को इसकी निकृष्टतम सामती प्रथाओ और रूढियो स मुक्त करन का प्रयास किया, जिन्हे उन्होन हाल की अपवृद्धि बतलाया। लगभग १८२१ म उन्होने बगला भाषा म प्रकाशित प्रथम भारतीय साप्ताहिक पत्रिका 'सवाद कौमुदी' और फिर १८२२ मे फारसी म प्रकाशित 'मिरातुल अखबार' की स्थापना की। इन दोनो पत्रो म भारत और बगाल म सामाजिक जीवन के प्रश्नो की चर्चा की जाती थी।

राममोहन राय के कार्यकलापो क विरोधी भारतीय व्यापारियो न ब्रह्म समाज के प्रभाव को खत्म करने क लिए १८३० म एक धर्म समाज नामक सस्था की स्थापना की। इसी समय म हेनरी डेरोजियो (जिसका पिता पुर्तगाली और माता हिन्दू थी) ने आधुनिक ढग के एक शैक्षिक सगठन, हिन्दू कालेज म छात्र शैक्षिक सघ की स्थापना की। यह सघ परम्परागत रूढियो और अध विश्वासो के विरोध मे अन्य एसे सगठनो से अधिक दृढ था। इस सघ से ही युवा बगाल की स्थापना हुई। हिन्दू कालेज के कर्मचारियो द्वारा तग करन के कारण जब यह सगठन विघटित हो गया, तो इसके भूतपूर्व सदस्य ब्रह्म समाज म सम्मिलित हो गय। राममोहन राय की मृत्यु के बाद से इस समाज का नतृत्व एक प्रमुख बगाली व्यापारी तथा यूरोपीय पद्धति पर सचालित प्रथम भारतीय व्यापारिक कपनी के सस्थापक द्वारकानाथ ठाकुर (१७९४–१८४६) के हाथ म था। उन्नीसवी शताब्दी के चौथे और पाचवे दशको के दौरान बगाल म ज्ञान प्रसार और ऐसे ही अन्य लक्ष्यो के सवर्धक समाज एक के बाद एक प्रकट हुए। अत म १८५१ मे कलकत्ता म ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन

नामक एक परिपक्व राष्ट्रीय राजनीतिक सगठन कायम किया गया।

इस तरह की घटनाए बम्बई म भी देखी जा सकती थी। देश क इस भाग म एक आदोलनो क प्रमुख नेता धनी और सुसम्मानित पारसी जो औपनिवेशिक प्रशासन क साथ सहयोग कर रहे थ और युवा उदीयमान महाराष्ट्रीय बुद्धिजीवी थ जो यूरोपीय पद्धति पर सचालित स्थानीय शैक्षणिक सस्था एल्फिन्स्टन कालेज म जुड हुए थ। इन बुद्धिजीवियो म प्रमुख थ बालशास्त्री जाम्बेकर (१८१०–१८४६) जिन्होने अग्रेजी मराठी साप्ताहिक बम्बई दर्पण की स्थापना की जो अपन देश क प्रशासन म भारतीयो का हिस्सा बढा दन क लिए अग्रेजो का सबोधित करता था तथा औपनिवेशिक कर एव शुल्क नीतियो की आलोचना करता था रामकृष्ण विश्वनाथ जिन्होने मराठी म भारत क इतिहास पर एक पुस्तक प्रकाशित की जिसम उन्होने भारत म ब्रिटिश नीति की आलोचना की हालाकि उनका विचार था कि सब कुछ ठीक किया जा सकता ह बशर्ते कि प्रबुद्ध अग्रेजो और भारतीयो क बीच घनिष्ठतर सपर्क हो गोपाल हरि देशमुख जो पूना क प्रभाकर म लोकहित वादी क उपनाम स लिखत थ। उन्होने भारत की स्वतत्रता के अपहरण क कारणो का विश्लेषण किया जो उनकी राय म पुरानी सामती प्रथाओ का पालन और अभिजात वर्ग तथा भारतीय जनता का एक दूसर स पृथक करनेवाली खाई थ। ज्ञान प्रसार का आह्वान करते हुए देशमुख न भविष्यवाणी की कि भारतीयो को ब्रिटिश सरक्षण स अपन को मुक्त करन म कम स कम दो सौ वर्ष लग जायग।

१८५२ म स्थापित और बगाल क एसोसिएशन स मिलते-जुलते बम्बई एसोसिएशन म तब फूट पड गयी जब युवा छात्रो न सभी भारतीयो क लिए अग्रेजो क समान अधिकारो की माग की और नरमपथी उच्चवर्गीय व्यापारी इसस अलग हो गय। अकेले मद्रास एसोसिएशन न ही भारतीय जमीदारो द्वारा किसानो क शोषण को बद करन क प्रश्न को उठाया। उस समय ईस्ट इडिया कपनी क चार्टर का फिर पुनरीक्षण हो रहा था इसलिए तीनो एसोसिएशनो न भारत म औपनिवेशिक प्रशासन के 'अन्यायो' क बारे म लदन म ससद को याचिकाए भजी।

उदीयमान पूजीवादी राष्ट्रीय आदोलन किसानो तथा शहरी निर्धनो क उन सस्तरो स कटा हुआ था जो विद्रोह करक अग्रेजो को भारत से खदेडने के प्रयास कर रहे थ। यही कारण था कि १८५७–१८५६ के जन-विद्रोह के दौरान प्रभावशाली पूजीवादी हलको न अपन को अलग रखा और उसम भाग नही लिया।

१८५७–१८५९ का महान जन-विद्रोह

ब्रिटिश औपनिवेशिक जुए के विरुद्ध उन्नीसवी शताब्दी के सपूर्ण पूर्वार्द्ध म आवादी के विशिष्ट वर्गों की छिटपुट, सर्वथा स्थानीय कार्रवाइयो म अभिव्यक्त हानेवाला रोष तव कुछ कुछ एकाकार होने लगा, जव राष्ट्रीय आदोलन का नतृत्व दीर्घकाल से सगठित कार्रवाइयो क अभ्यस्त सिपाहियो ने अपन हाथो म ले लिया। कपनी की मना क ये सिपाही वगाल, वम्वई और मद्रास प्रेसिडसियो की तीन सेनाओ म विभाजित थे और इनम १७० हजार सिपाहियो (जिनम १४० हजार भारतीय थ) की सवसे वडी वगाल सेना ही सामाजिक दृष्टि से सवाधिक समरूप थी। वगाल फौज के सिपाही लगभग पूर्णत अवध, विहार और उत्तर-पश्चिमी प्रातो के ब्राह्मणो, राजपूतो, जाटो और मुसलमानो (सैयदो और पठानो) स भर्ती किये जाते थे। इन समूहो के प्रतिनिधि या तो ग्राम समुदाया क ऊपरी सस्तरा (पट्टीदारो) से आते थे या छोट सामतो (ग्रामीण जमीदारो) के पुत्र थे। व सभी हिन्दुस्तानी बोलते थे और अपने अपने गावो स घनिष्ठ सपर्क रखते थे।

चूकि सिपाहियो ने लव अर्से स युद्धो मे भाग नही लिया था और वे आरक्षी कार्यो म ही लगे हुए थ इसलिए वे सपूर्ण उत्तरी भारत, विशप रूप स दोआव मे फैली विभिन्न फौजी छावनियो मे तैनात थे। हालाकि भारतीय मानको के अनुरूप उन्हे अच्छे वेतन मिलते थे, फिर भी अव तक सिपाहियो के बीच असतोष व्याप्त हो गया था भारतीय सिपाही हवलदार के पद से आगे पदान्नति नही कर सकते थे जब कि ब्रिटेन से आनवाल किसी भी नये अग्रेज रगरूट को उनके ऊपर रख दिया जाता था। फौजी छावनियो म अग्रेजा क अपन अलग मैस (भोजनालय) थे और वे आरामदेह वगलो म रहत थ जव कि सिपाहियो का अपनी स्त्रियो और वच्चो सहित पुरानी झोपडिया म रखा जाता था।

इन सिपाहिया न वहावी प्रचार म उत्साहपूर्वक भाग लिया, विशेप रूप स इस वजह से भी कि पलासी की लडाई की सौवी जयती आ रही थी और सिपाही ठीक उसी दिवस पर ब्रिटिश शासन का तख्ता उलटने की तैयारी कर रह थे। विद्रोह का विचार तो वहुत पहले ही जड पकड चुका था लकिन यह एक सुव्यवस्थित ढग स सगठित विद्रोह नही था। वास्तव म यह स्वत स्फूर्त ढग स ही शुरू हुआ। न विद्रोह की स्वत स्फूर्तता विद्रोह क ठीक पहले साकतिक रूप म एक गाव स दूसरे गाव को चपातिया भेजन के तथ्य स गलत सिद्ध

होती है, क्योंकि सामती काल म ही सकट की सूचना दन क लिए इसका प्रयोग किया जाता था।

विद्रोह का तात्कालिक कारण अग्रेजो द्वारा एन्फील्ड राइफलो क लिए नये कारतूसो का दिया जाना था। अफवाह थी कि इन कारतूसो पर गाय और सूअर की चरबी लगी ह जिस हिन्दू और मुसलमान भी अस्पृश्य समझत थे। लेकिन ब्रिटिश कमान ने नये कारतूसा का इस्तेमाल करन से इन्कार करनवाले सिपाहियो के खिलाफ कडी कार्रवाई की। मेरठ मे १० मई १८५७ को कारतूसो को इस्तेमाल करन से इन्कार करनेवाला क एक दल की सार्वजनिक रूप से पदावनति कर दी गयी और उन्ह कठोर सजाए दी गयी। इसन सिपाहियो के विद्रोह को भडकान म चिनगारी का काम किया जिन्हे शहरी निर्धनो और निकटवर्ती गावो के किसानो का समर्थन प्राप्त था। ब्रिटिश अफसरो की हत्या करने के बाद ११ मई को सिपाहियो न दिल्ली की ओर प्रस्थान किया जहा दिल्ली गैरिसन (नगर सना) के सिपाही भी उनस आ मिले। दिल्ली पर कब्ज़ा करन और वहा ब्रिटिश अफसरा के खिलाफ प्रतिशोधात्मक कार्रवाइयो क बाद सिपाही लाल किल की ओर बढे और वृद्ध बहादुरशाह द्वितीय (१८३७–१८५७) को, जिस अग्रेजो न पशन देकर सार सत्ता से वचित कर दिया था, अपन को भारत का शासक घोषित करने तथा विद्रोहियो के आदेश पर लिखी एक अपील पर हस्ताक्षर करन के लिए विवश किया। मुस्लिम उलेमा ने अग्रेज़ो के खिलाफ जिहाद की घोषणा करते हुए एक फतवा जारी किया। दिल्ली म एक सरकार बनायी गयी जिसम दरबारी अमीर-उमरा शामिल थे। बहादुरशाह विद्रोही जनता के लिए भारत की पुन स्थापित स्वाधीनता का प्रतीक बन गया।

लेकिन देश के विभिन्न भागो से सिपाही टुकडियो क दिल्ली म जमा होन के साथ वहा अजब गडबड और अव्यवस्था की स्थिति पैदा हो गयी थी। सिपाही केवल अपने ही नायको के आदशो का पालन करते थ और दिल्ली की दरबारी सरकार पर उन्ह कोई विश्वास नही था। नगर म खाद्य सामग्री और ससाधनो का अभाव था क्योकि जमीदारा न लगान का धन दिल्ली भेजना बद कर दिया था। शीघ्र ही सिपाहिया म अनुशासन बहुत खराब हो गया।

इन कठिन परिस्थितियो म सिपाहियो न जलसा (परिषद) क नाम म विज्ञात अपना प्रशासकीय निकाय कायम किया जिसम सिपाहियो क छ और नागरिको क चार प्रतिनिधि थे। लकिन यह परिषद भी दिल्ली म विद्यमान कठिन परिस्थिति का काबू म करने की स्थिति म नही थी। कान

मार्क्स ने उस समय लिखा था रगारग के विद्रोही सैनिको की भीड जिन्होंने अपने अफसरो को मार डाला है, अनुशासन के सभी नियम तोड डाले है और जिन्हे अभी तक कोई ऐसा व्यक्ति नही मिला कि जिसे वे अपनी सर्वोच्च कमान सौप सकते ऐसी भीड से गभीर और दीर्घकालिक प्रतिरोध के सगठन की आशा कम से कम की जानी चाहिए।"*

दृढ अनुशासन के अभ्यस्त, किंतु युद्ध कला अथवा एक टुकडी से बडी फौजी इकाइयो का सचालन करने मे अकुशल सिपाही रणनीतिक मामलो को नही बल्कि केवल यौद्धिक प्रश्नो को ही निपटा सकते थे। दिल्ली मे लाल किले जैसे प्रमुख दुर्ग पर कब्जा करने के बाद उन्होने अछूते क्षेत्रो को विद्रोह की परिधि मे लाने के बजाय रक्षात्मक रुख अपना लिया। इसने अग्रेजो को फिर से सभलने, अपनी वफादार फौजो को जमा करने तथा दिल्ली पर घेरा डालने मे समर्थ बना दिया।

विद्रोह वास्तव मे दोआब और मध्य भारत के कुछ भागो से और आगे नही फैला। बगाल मे गवर्नर जनरल कैनिंग (१८५६–१८६२) उस प्रदेश मे रहनेवाली ब्रिटिश नागरिक आबादी सहित सपूर्ण यूरोपीयो को लामबद करने के बाद सिपाहियो के सभाव्य बलवे की पेशबदी करने मे सफल हो गया उसने उन्हे निरस्त्र कर दिया और जिन इकाइयो मे छिटपुट विद्रोह हुए भी, उन्हे कुचल दिया। पजाब मे भी ब्रिटिश कमान व्यापक सिपाही विद्रोह को रोकने मे सफल रही। विद्रोही गैरिसनो की कार्रवाई छिटपुट थी और केवल कुछ टुकडिया ही दिल्ली मे सिपाही फौज मे सम्मिलित होने के लिए वहा पहुच सकी। सिख आबादी हिन्दुस्तानी – पजाब के बाहर के – सिपाहियो को आधिपत्यकारी सेना के समझती थी और उसने उन्हे कोई समर्थन प्रदान नही किया।

इसके विपरीत अवध और बुदेलखड के किसान अविलम्ब विद्रोह मे शामिल हो गये। उन्होने 'बाहरी" नये भूस्वामियो को खदेड दिया, स्थानीय सरकारी भवनो पर आक्रमण किया और यहा तक कि अपने पुराने जमीदारो और ताल्लुकदारो को भी लगान देना बद कर दिया। औपनिवेशिक प्रशासन के स्थानीय प्रतिनिधियो को भगाने के बाद किसानो ने अपने-अपने गावो की रक्षा के लिए सशस्त्र टुकडिया कायम कर ली और ग्राम समुदाय की अग्रेज विजेताओ द्वारा जब्त जमीनो पर अपने अधिकार की रक्षा के लिए खडे हो गये।

दोआब की शहरी आबादी ने विद्रोह मे सक्रिय भूमिका अदा की। अलीगढ

---

* कार्ल मार्क्स, भारत मे विद्रोह' मार्क्स, एगेल्स 'उपनिवेशवाद के बारे मे' पुस्तक मे, मास्को, १९७८ पृ० १५३।

(२१ मई) बरेली और लखनऊ (३१ मई) कानपुर (८ जून) इलाहाबाद (६ जून) जैसे अनेक बड़े नगरों को स्वतंत्र करने के बाद उन्होंने इनमें से प्रत्येक नगर में अपनी सरकार कायम कर ली। बरेली में नये प्रशासन का नेतृत्व हाफिज रहमत खा रुहेला जो १७७२ में अवध और कंपनी की फौजों के खिलाफ लड़ाई में मारा गया था के एक वंशज वृद्ध सैन्य नेता खान बहादुर खा के हाथ में था। कानपुर में नये प्रशासन का नेतृत्व दिवंगत पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नानासाहब ने किया जिसे डलहौजी ने अपनी रियासत से वंचित कर दिया था। इलाहाबाद में एक अध्यापक तथा वहाबी सम्प्रदाय के अनुयायी मौलवी लियाकत खा ने शासन का भार संभाल लिया और पटना में विद्रोह का नेतृत्व एक वहाबी पुस्तक विक्रेता पीरअली के हाथ में था।

इधर दिल्ली की रक्षा करनेवाले सिपाहियों ने कई धावे बोले लेकिन उन्होंने कोई बड़ा आक्रमण नहीं किया था। यहां तक कि बरेली की टुकड़ी का सक्रिय नेता बख्त खा भी जो सबसे प्रतिभाशाली विद्रोही नायकों में एक था इसके लिए उठाये सख्त कदमों के बावजूद कोई व्यवस्था नहीं स्थापित कर पाया। सिपाहियों की इस निष्क्रियता के परिणामस्वरूप अंग्रेजों को पहल लेने का मौका मिल गया और उन्होंने मद्रास तथा ईरान से मंगायी बड़ी फौजों और चीन भेजी जानेवाली इकाइयों को जमा करना शुरू कर दिया। लगभग ६५ हजार सिपाहियों की फौज दिल्ली की दीवारों से मात्र छ हजार की ब्रिटिश फौज को पीछे धकेलने में असमर्थ रही। असफलताओं और धनाभाव के कारण कुछ सिपाही अपनी मर्जी से दिल्ली छोड़कर चले गये। नजफगढ़ में अंग्रेजों द्वारा बख्त खा की विद्रोही टुकड़ियों का हराया जाना सिपाहियों के लिए एक और गहरा आघात सिद्ध हुआ। इसके अलावा सितम्बर १८५७ में जारी की गयी विद्रोहियों की घोषणा में विजय के बाद अनेक सुधारों–व्यापारियों मुस्लिम धार्मिक नेताओं आदि के लिए अनेक प्रकार के विशेषाधिकारों और लाभों–की तो घोषणा की गयी थी लेकिन लगान में कमी करने के बारे में कुछ नहीं कहा गया था। इससे सिपाही जो अधिकांशतया ग्रामवासी थे, निराश हो गये। १४ सितम्बर को अंग्रेजों ने जिन्होंने अब तक अपनी फौजें जमा कर ली थीं दिल्ली पर धावा बोल दिया और पांच दिन के बाद नगर और किले पर कब्जा कर लिया।

इसके बाद विद्रोहियों के खिलाफ बर्बरतापूर्ण प्रतिशोध की कार्रवाइयां शुरू हुईं। बम्बई के गवर्नर एलफिन्स्टन तक ने लिखा है कि दिल्ली पर कब्जा

करने के बाद ब्रिटिश फौजो द्वारा किये गये अपराध अवर्णनीय है। उनके प्रतिशोध मे मित्र या शत्रु कोई भी निरापद नही था। उनकी लूट और मार-काट के सामने नादिरशाह के कारनामे भी फीके पड गये।

दिल्ली पर कब्जा करके अंग्रेजो ने न केवल अपने १७ हजार सैनिको को ही मुक्त कर लिया बल्कि उन लोगो के मनोबल को भी क्षीण कर दिया जिन्होने विद्रोह मे भाग लिया था, क्योकि दिल्ली सिपाहियो के लिए स्वतंत्र मुगल भारत का प्रतीक बन गयी थी। बहादुरशाह को, जो दिल्ली के बाहर हुमायू के मकबरे मे जाकर छिपा गया था बंदी बना लिया गया। उस पर मुकदमा चलाया गया और देशनिकाला देकर रगून भेज दिया गया, जहा वह १८६२ मे मर गया। एक ब्रिटिश अफसर हडसन ने उसके पुत्रो की गोली मारकर हत्या कर दी जो उन्हे युद्धबंदी बनाकर अपने साथ ले जा रहा था। इस भयंकर कत्लआम के बाद दिल्ली वर्षो तक उजाड पडी रही।

उधर जनरल नील ने जो दिल्ली स्थित ब्रिटिश सेना की सहायता करने के लिए कलकत्ता से आ रहा था, रास्ते मे पडनेवाले विद्रोही बनारस और इलाहाबाद नगरो मे सिपाहियो और आबादी का निर्ममतापूर्वक सहार किया। उसकी नृशसता पर लार्ड कैनिंग तक नाराज हो गया और उसने उसे कमान से मुक्त करके उसका पद जनरल हैवलाक को दे दिया। हैवलाक ने तो अपनी बारी मे अपने रास्ते मे आनेवाले गावो को जलाकर और सैकडो को पेडो पर लटकाकर फासी देकर सचमुच कत्लेआम किया। जिन नगरो से होकर वह गुजरा उनमे एक कानपुर भी था, जो दिल्ली और लखनऊ के साथ-साथ विद्रोह का एक प्रमुख केन्द्र था। कानपुर मे विद्रोहियो का नेतृत्व नानासाहब उसके अंगरक्षक तात्या टोपे और उसके सचिव अजीमुल्लाह खा कर रहे थे। अजीमुल्लाह खा सुशिक्षित था और दो बार यूरोप की यात्रा कर चुका था। ब्रिटिश सैनिको ने अपने परिवारो सहित छावनी की किलेबंदी मे शरण ले रखी थी और वे अपने तोपखाने के बल पर घेरा डालनेवाले सिपाहियो को रोके रहे। लेकिन तीन हफ्ते बाद उन्हे आत्मसमर्पण करना पडा।

इसी बीच लगभग दस हजार विद्रोही सिपाही और किसान नगर मे जमा हो गये थे, जहा खाद्य सामग्री का अभाव था और दिल्ली मे विद्रोहियो को जिन समस्याओ का सामना करना पडा था वे यहा भी पैदा हो गयी। दो अवसरो पर सिपाही फौजो ने हैवलाक की सेना से जाकर टक्कर ली लेकिन दोनो ही बार वे बहादुरी से लडने के बावजूद पराजित हुई। जून के मध्य मे कानपुर मे घुस आने के बाद हैवलाक की सेना ने नगर मे तबाही मचा दी।

उसके बाद हैवलाक न विद्रोह क एक और प्रमुख कन्द्र लखनऊ मे घुसन की दो वार असफल कोशिशे की।

लखनऊ मे घटनाओ का क्रम इस तरह चला। विद्रोह के बाद पुराने राजवश (अवध के नवावा के राजवश) को सत्ता सौप दी गयी और पुरान दरवारी अभिजातो ने नगर का प्रशासन अपने हाथो मे ले लिया। वहा विद्रोह का असली नेता अहमदउल्लाह शाह था जो मद्रास के एक अभिजात परिवार का था। वह ब्रिटेन की यात्रा कर चुका था लेकिन वापस लौटन पर वह वहावी बन गया था और जगह जगह जाकर प्रचार करने लगा था। ब्रिटिश सैनिको न वीवियो और वच्चो के साथ रेजिडसी के भीतर शरण ले ली। सिपाहियो ने रेज़िडेसी पर लबे समय तक घेरा डाल रखा और बराबर गोलावारी करते रह। लेकिन ब्रिटिश फौजा को कोई भारी क्षति नही हुई क्योकि सिपाही कुशल निशानेवाज नही थे। इस पर विद्रोहियो न रजिडेसी पहुचने के लिए एक सुरग खोदना शुरू की। २१ सितम्वर को हैवलाक लखनऊ पहुच गया। लेकिन सिपाहियो ने उसकी टुकडी को घेर लिया।

इस बीच मे लखनऊ मे केवल दोआब के विभिन्न भागो से विद्रोही सिपाही और किसान ही नही बल्कि ब्रिटिश फौजो से जान बचाकर भागनवाले स्त्री-पुरुष भी जमा हो गये थे जो मार्ग म सब कुछ लूटती और जलाती जा रही थी। कुल मिलाकर नगर मे ५० हजार से अधिक लोग इक्ट्ठा हो गये थे। ब्रिटिश फौज का प्रधान सेनापति जनरल कैम्पवेल साढे चार हजार सिपाहियो और तोपखाने के साथ १७ नवम्बर १८५७ को कानपुर से लखनऊ आ पहुचा। वह लखनऊ को तो सर नही कर सका लेकिन जब वह वहा से चला तो अपने साथ उन अग्रेजो को भी ले लिया, जो रेज़िडेसी म घिरे पडे हुए थे। इधर तात्या टोपे ने ग्वालियर के सिपाहियो (जिन्होने अग्रजा क प्रति वफादार बन रहनेवाले अपने राजा की आज्ञा का उल्लघन करके अग्रेजो क खिलाफ विद्रोह कर दिया था) की एक टुकडी के साथ बडी तेज़ी से कानपुर पहुचकर वहा विडहम की ब्रिटिश टुकडी को पराजित कर दिया। इसक बाद की लडाई म कैम्पवेल तात्या टोपे को पराजित करन और कानपुर पर फिर कब्ज़ा करन म कामयाब हो गया। तीन महीने बाद ४५ हजार सिपाहियो की फौज जमा करन के बाद कैम्पवेल ने लखनऊ पर अतिम आक्रमण करने का निश्चय किया। वहा उस समय तक जमा हुए सभी लोगो (लगभग दो लाख) न नगर की रक्षा करन मे भाग लिया। वे वहादुरी स लड लकिन उनक पास हथियारो और कुशल सनानायको का अभाव था। लखनऊ क लिए लडाई एक महीन तक

चलती रही। १६ मार्च, १८५८ को नगर पर कब्जा हो गया और लगभग दो हफ्ते तक ब्रिटिश फौज लूट और कत्लेआम मचाती रही। लूट का माल वस्तुत बहुत अधिक था।

लखनऊ के पतन के बाद, जो सिपाहियो के प्रतिरोध का अतिम प्रमुख केन्द्र था वे छोटी टुकडियो म बिखर गये और उन्होने ब्रिटिश टुकडियो के साथ छोटी मोटी टक्कर लेते हुए छापामार युद्ध करना शुरू कर दिया। मार्च, १८५८ म गवर्नर जनरल कैनिग ने घोषणा की कि अवध के ताल्लुकेदारो की जागीर ज़ब्त कर ली जायगी, हालाकि अब तक वे तटस्थ रहे थे। ताल्लुकेदार अपनी जागीरो की रक्षा करने के लिए उठ खडे हुए और बरेली म खा बहादुर खा के साथ शरीक हो गये। कैम्पबल को इतने सख्त प्रतिरोध का सामना करना पडा कि वह मई १८५८ म जाकर ही बरेली पर कब्जा करने म सफल हो सका। उसके बाद नानासाहब और अवध के कुछ अभिजातो के साथ सिपाहियो के कुछ दल नेपाल की सीमा की ओर चले गये, जब कि अहमदउल्लाह के साथ अन्य दल और कुछ दूसरे नेता अवध वापस लौट आये, जहा एक सामत ने कपटपूर्वक अहमदउल्लाह की हत्या कर दी।

बुदेलखड म तात्या टोपे अब भी सक्रिय था और उसने अपने को एक अत्यत योग्य सेनानायक सिद्ध किया। बम्बई से जनरल ह्यू रोज़ ने अपनी फौज के साथ बुदेलखड की तरफ कूच किया। झासी की एक छोटी सी रियासत उसके रास्ते म पडती थी। झासी भी उन राज्यो मे था, जिन्हे डलहौज़ी की नीति के अतर्गत ब्रिटिश क्षेत्र म मिला लिया गया था। विद्रोह फूट पडने पर विधवा रानी लक्ष्मीबाई के गोद के बेटे को फिर शासक घोषित कर दिया गया और लक्ष्मीबाई उसकी सरक्षिका बनकर शासन करने लगी। झासी के लोगो के विद्रोह म कुछ अग्रेज़ मारे गये थे। हालाकि लक्ष्मीबाई ने अपनी प्रजा को किसी भी तरह की अतिवादी कार्रवाई करने से रोके रखा फिर भी अग्रज़ो की हत्या से ह्यू रोज़ को झासी पर आक्रमण करने का एक पर्याप्त बहाना मिल गया। पहले लक्ष्मीबाई ने उसे यह समझाने की कोशिश की कि उसका हत्याओ से कोई सबध नही है। लेकिन जब उसके प्रयासो के बावजूद ब्रिटिश फौजो ने झासी पर घेरा डालना शुरू कर दिया, तो लक्ष्मीबाई ने किले की रक्षा की कमान स्वय सभाल ली।

अग्रेजो द्वारा झासी के जीते जाने के बाद लक्ष्मीबाई वहा से बच निकली और तात्या टोपे की सेना से जा मिली। वे ग्वालियर को जीतने म सफल हो गये, लेकिन तभी ह्यू रोज़ ने तात्या टोपे के खिलाफ अपनी फौज भेज दी और

उसे पराजित कर दिया। लक्ष्मीबाई जो घुडसवार सेना का नतृत्व कर रही थी, लडाई म मारी गयी और तात्या टोपे अपनी पराजित टुकडियो के साथ पीछे हट गया। पीछा करनेवालो म वचन के लिए वह अपना मार्ग वदलता रहा। पहले वह खानदेश की ओर आग बढा लेकिन बाद म मुडकर पुन ग्वालियर लौट आया। अतत उसके साथ गद्दारी करके अग्रजो के हाथो मे दे दिया गया तथा १८ अप्रैल, १८५६ को उसे फासी दे दी गयी।

१ नवम्बर, १८५८ को महारानी विक्टोरिया के नाम स एक उद्घोषणा की गयी, जिसके अनुसार भारत का प्रशासन ब्रिटिश ताज को सौप दिया गया और ईस्ट इडिया कपनी भग कर दी गयी। महारानी न किसी भी अग्रेज की हत्या म प्रत्यक्ष रूप म भाग लेनेवालो के सिवा विद्रोह म शामिल होनेवाले सभी सामतो को क्षमादान का आश्वासन दिया। उसने यह भी घोषणा की कि नयी सरकार भारतीय सामतो के सापत्तिक अधिकारो का सम्मान करेगी।

इस उद्घोषणा का यह परिणाम हुआ कि सामती उच्च वर्गों न अब अपने को विद्रोह से अलग कर लिया। अवध के ताल्लुकेदारो, राजाओ और जमीदारो ने जिन्होने कैनिग की मार्च घोषणा के बाद विद्रोह कर दिया था, अब हथियार रख दिय। केवल उन्ही सामतो ने सघर्ष जारी रखा जिन्ह क्षमादान की आशा नही थी।

अतत उनका प्रतिरोध भी टूट गया। नानासाहव और अजीमुल्लाह अग्रजो के हाथ तो नही पडे मगर सभवत जगल म ही मृत्यु को प्राप्त हो गये और खा बहादुर खा को अग्रेजो न फासी दे दी। विद्रोह को कुचल दिया गया।

१८५७–१८५६ का यह जन विद्रोह अनक कारणो से पराजित हुआ। हालाकि इसकी मुख्य लडाकू शक्ति किसान और दस्तकार थे फिर भी इसका नेतृत्व सामती अभिजात वर्ग कर रहा था। इन नेताओ न अपन को राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष का नेतृत्व करन मे असमर्थ सिद्ध कर दिया था। वे सयुक्त रणनीति अथवा सयुक्त कमान नही स्थापित कर पाये। अकसर वे अपन निजी हितो का साधन करने लगत थे। स्वतस्फूर्त ढग से उभरे विद्रोह के तीनो केन्द्रो न एक दूसरे से स्वतत्र रूप म काम किया। इसके अलावा सामतो ने किसानो की अवस्था को सुधारने के लिए कोई कदम नही उठाया और इस तरह किसानो क कुछ हिस्सो को विद्रोह से विमुख कर दिया। जब ब्रिटिश सरकार न सामतो को रिआयत दीं, तो उन्होने अपने को विद्रोह से अलग कर लिया। विद्रोही सेनानायक इतना पेचीदा युद्ध चलान की योग्यता नही रखत थे। व यौद्धिक समस्याओ को तो सुलझा सकते थे लेकिन रणनीतिक चितन पूरे अभियान

की प्रक्रिया का आकलन करने का उन्हे कोई प्रशिक्षण नही था। अत मे विग्राहिय ने स्पष्ट लक्ष्य पेश नही किये। उन्होने विगत की ओर, मुगलकालीन स्वतत्र भारत की ओर लौटने का आह्वान किया था, हालाकि उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे सामती समाज की ओर लौटना सवथा अवास्तविक था।

अग्रेजो ने विद्रोह को कुचल दिया फिर भी उन्हे भारत मे अपनी नीति मे सुधार करने के लिए मजबूर होना पडा। ईस्ट इडिया कपनी को खत्म कर दिया गया और भारत ब्रिटिश सरकार का एक उपनिवेश बन गया, जो अब औपनिवेशिक प्रशासन के सभी कर्मचारियो को नियुक्त करने लगी। अग्रेज इसके भी आकाक्षी थे कि सामतो का असतोष न भडके और इसलिए उन्होने अधिक सतर्कतापूर्ण नीति अपनायी और अधिक प्रभावशाली सामतो को रिआयते प्रदान की। विद्रोह के बाद भारत मे ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति मे एक नये चरण का आरभ हुआ।

अठारहवी शताब्दी और उन्नीसवी शताब्दी के प्रारभ मे भारतीय सस्कृति

मुगल साम्राज्य के पतन व्यापक आर्थिक अव्यवस्था और भारत की स्वतत्रता के क्रमिक लोप के फलस्वरूप सामान्य सास्कृतिक अवनति विचाराधीन काल की विशिष्ट विशेषता है। फिर भी साथ ही सस्कृति के कुछ क्षेत्रो मे उपलब्धिया भी प्राप्त की गयी और स्मरणीय कलाकृतियो का सृजन हुआ। लेकिन अधिकाशतया इस काल मे हम उन कला रूपो का विशदीकरण ही पाते है जो मध्ययुगीन जमाने मे पहले ही विकसित हो चुके थे। उदाहरण के लिए साहित्य मे पहले की तरह ही ध्यान काव्य पर कद्रित था वास्तु मे प्रारभिक भवन निर्माण शैलियो की अनुकृतियो का प्राचुर्य था और चित्रकला लघुचित्रो तक ही सीमित थी। लेकिन उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे नयी प्रक्रियाए उभरी जो कुछ हद तक अग्रेजो से अपनायी गयी थी। साहित्य के बारे मे यह बात विशेष रूप से सही है गद्य रचनाओ, समकालीन विषयो पर लेख सग्रहो का अनेक भारतीय भाषाओ मे प्रकाशन शुरू हुआ तथा पत्रकारिता का आरभ हुआ, जो अब तक भारत मे सर्वथा अज्ञात थी। तो भी ये रचनाए ब्रिटिश शैलियो की हूबहू नकल नही थी। समकालीन जीवन से लिये गये विषयो के विवेचन के परिणामस्वरूप नयी शैली के अनुरूप एक पूरी की पूरी नयी शब्दावली पैदा हो गयी।

जहा तक वास्तु का सबध है भारतीय अब भी मुगलकालीन भवनो जैसे भवना का ही निर्माण कर रहे थे लकिन कुछ मामलो म तकनीकी विधिया का समुन्नत किया जा रहा था। अलवत्ता अग्रजो द्वारा निर्मित आमूलतया नय ढग क भवन भी प्रकट हो रहे थे। इनम से कुछ भवनो न बाद म विशेष रूप से उन्नीसवी शताब्दी क उत्तरार्द्ध म वास्तुकला की एक विशिष्ट, तथाकथित आग्ल-भारतीय शैली के विकास को प्रभावित किया।

इतिहास

अठारहवी शताब्दी म पुरानी शैली म इतिवृत्तलेखन बदस्तूर जारी रहा। इसकी एक बढ़िया मिसाल मियरुल मुतआखरिन (अतिम शासको की जीवनी') थी जिसन १७८० तक की अवधि का विवरण प्रस्तुत किया। यह पुस्तक एक प्रमुख अमीर गुलाम हुसैन खा तबातबाइ द्वारा लिखी गयी थी जो दिल्ली म मुगल तथा बगाल क नवाबो के दरबारो म रहा था और जिसने मीर कासिम की पराजय क बाद कपनी की नौकरी कर ली थी। इस तरह की पुस्तक हैदरअली और टीपू सुल्तान के दरबारो मे मीर हुसैन अली खा किरमानी द्वारा भी लिखी गयी थी।

अठारहवी शताब्दी के पाचवे और छठ दशको क दौरान गुजरात म दीवान अलीमुहम्मद खा द्वारा लिखित गुजरात का इतिहास मिरात अहमदी ('अहमद का दर्पण') एक अत्यत मूल्यवान कृति है। लेखक न केवल अनक फरमानो और अन्य दस्तावेजो का उल्लेख ही नही किया बल्कि अपनी कृति के परिशिष्ट म अठारहवी शताब्दी म गुजरात के भवनो व्यापार ऐतिहासिक स्थलो प्रसिद्ध व्यक्तियो की सक्षिप्त जीवनियो का व्यापक वर्णन भी प्रस्तुत किया। एक अन्य सर्वांगपूर्ण कृति माआसिरुल उमरा' ('अमीरो के कारनामे') स्रोत-सामग्री के प्रभावशाली ज्ञान की परिचायक है। इस विशाल कृति क लेखक शाहनवाज खा ने पहले आसफजाह और बाद मे नासिरजग के यहा नौकरी की थी। बाद म १७५८ म फ्रासीसियो न उसकी हत्या कर दी, जिनका उसने विरोध किया था। उसकी कृति मे सोलहवी सत्रहवी और अठारहवी शताब्दियो म मुगल भारत के सात सौ अभिजातो की जीवनिया है। यह अत्यत मूल्यवान ऐतिहासिक स्रोत सामग्री प्रदान करती है और इसम विपुल महत्वपूर्ण सूचनाए दी गयी है। सक्षेप म मुगलो के अधीन ऐतिहासिक ज्ञान की उत्कृष्ट परपराए अठारहवी शताब्दी म भी विकसित होती रही। उन्नीसवी शताब्दी मे इतिहास लेखन लगभग बद हो गया, क्योकि दरअसल

अब ऐसे मरक्षक नही रह गये थे, जो इन कृतियो के सकलन के लिए वित्तीय साधन प्रदान कर सकते थे।

ज्योतिप

तकनीकी विनानो म केवल फलित तथा गणित ज्योतिप म ही प्रगति हुई। यह वात विशप रूप से जयपुर के राजा सवाई जयसिह (? –१७४३) क कार्य के वारे म सही है। उसन प्राचीन यूनानियो, अरवो और पुर्तगालिया की खोजो के बार म जानकारी प्राप्त की और जयपुर, दिल्ली, मथुरा, उज्जैन और वाराणसी म विशाल वेधशालाए वनायी।

साहित्य एक सामान्य अवलोकन

अठारहवी शताब्दी मे और उन्नीसवी शताब्दी क पूर्वार्द्ध मे भारत की विभिन्न साहित्यिक भापाए और अधिक विकसित हुई, हालाकि विवेचित विपय तथा विपयवस्तु परपरागत प्रकार के ही वन रहे। उन्नीसवी शताब्दी के प्रारभ म पत्रकारिता का भी उदय हुआ। चूकि भारत का साहित्य बहुभापी साहित्य है, इसलिए यहा मुख्य भापाओ क साहित्य का अलग-अलग विवेचन किया जायगा।

हिन्दुस्तानी साहित्य

इस समय तक खडी वोली के आधार पर वोलचाल की हिन्दुस्तानी वोली का उदय हो चुका था जिसने दो साहित्यिक रूप – हिन्दी तथा उर्दू – ग्रहण किये। इस समय के जनप्रिय शायर नजीर अकवरावादी (१७४०–१८३०) न, जो आगरे के रहनवाले थे और पेशे से शिक्षक थे, फारसी काव्य की शैली मे भारतीय जन जीवन, मौसम, प्रकृति उत्सवो आदि के बारे म काव्य रचना की, जिसकी विशेपता भापा की सहजता और सरल सस्कृत तथा फारसी शब्दो का प्रयोग है। यही कारण है कि दोनो ही भापाआ क अनुरागी नजीर को अपना मानते है – उर्दूवाले उन्ह अपना शायर कहते हे तो हिन्दीवाले उन्ह अपना कवि मानते है।

कलकत्ता मे अग्रेजो न अपने कर्मचारियो को भारतीय भापाओ से परिचित कराने के लिए फोर्ट विलियम कॉलेज नामक विशेप विद्यालय की स्थापना की थी जहा भारतीय भापाओ म अनक पाठ्यपुस्तका की रचना भी की गयी। इसके लिए हिन्दी और उर्दू भापाआ म पहली वार गद्य कृतिया की

रचना हुई। इस समय क मवसे प्रसिद्ध गद्यलेखक हिन्दी म प्रेमसागर' के रचयिता लल्लूलाल (१७४६–१८२५) और उर्दू मे बागाबहार' (१८०१–१८०३) के लेखक मीर अमन है। सदासुखलाल (१७४६–१८२५) और इशाअल्लाखा इस समय के प्रसिद्ध हिन्दी गद्यकार ह। शायर मिर्ज़ा मुहम्मद रफी सौदा मूलत व्यग्यकार थ, लेकिन अपन विरोधिया पर तीखी चाटे करत हुए उन्हान वस्तुत भारतीय सामती समाज क पतन की तस्वीर प्रस्तुत की और यह दिखाया कि परपरागत नैतिक सिद्धाता का कैसे उल्लघन हो रहा है दरबार म लाभकारी पदो के लिए भयकर सघर्ष के साथ भ्रष्टाचार निरतर बढता जा रहा है आदि। उनके ममकालीन मीर तकी मीर (१७२५–१८१०) मुख्यत ग़ज़लगो थ। सच्ची भावना स परिपूर्ण उनकी गजलो मे प्रेयसी स असफल प्रेम का वणन किया गया है जिसका प्रतिष्ठा और फायदे क ख्याल स किसी और मे विवाह कर दिया गया है। उन्होने सभी प्रकार की निरकुशता और जबरदस्ती के खिलाफ आवाज उठायी जिनका उनके समय की दिल्ली म बोलबाला था।

अपन समय के अन्य उर्दू शायरो क विपरीत नज़ीर अकबराबादी (१७४०–१८३०) ने किसी दरबार के आश्रित होन स इन्कार किया और आगरा मे मामूली शिक्षक बने रहे। जनता के विभिन्न सस्तरो से उनका सपर्क घनिष्ठ था। वह सभी के धार्मिक उत्सवो त्योहारो म भाग लते थे और आम लोगो के जीवन के बारे म जीवत बोलचाल की भाषा मे लिखत थे।

मिर्ज़ा असदुल्लाह खा गालिब (१७९६–१८६९) को उस काल का महानतम उर्दू लेखक माना जाता है। अपनी गजलो मे उन्होंने अपनी भावनाओ और गभीर चितन को व्यक्त किया और नये शब्दो तथा अभिव्यक्तियो के प्रयोग से भाषा की कतिपय कमियो को दूर करन का प्रयास किया, जिनमे से अनक उर्दू भाषा के अग बन गये और उन्होने इसे समृद्ध बनाया। अपने खतो के प्रकाशन से गालिब उर्दू गद्य-लेखन के जनक बन गय और उन्होन ही साहित्य म बोलचाल की भाषा का सबसे पहले इस्तेमाल किया। मुगल समाज के पतन के कारण निराशाग्रस्त गालिब ने १८५७–१८५९ के जन विद्रोह म भाग नही लिया, हालांकि वह मुगल दरबार के आश्रित रहे थे।

मराठी साहित्य

अठारहवी शताब्दी मे मराठी म अनक पद्यबद्ध वीरगाथाए (पाआड) रची गयी। इनमे शिवाजी के समय से महाराष्ट क इतिहास की घटनाआ का

वर्णन प्रस्तुत किया गया था। उस काल के प्रथम उल्लेखनीय कवि रामजोशी (१७५८–१८१२) और अनंत फंदी (१७४४–१८१९) थे। उस काल की एक नया विकास मराठी गद्य का उदय था विशेष रूप से पत्रकारिता के माध्यम से। मराठी साहित्यिक भाषा के विकास में जिन लोगों ने बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया है उनमें कुछ उल्लेखनीय नाम ये हैं – बालशास्त्री जाम्बेकर, जिन्होंने १८३२ में स्थापित आंग्ल मराठी पत्रिका 'बम्बई दर्पण' में सामाजिक प्रश्नों पर लिखा रामकृष्ण विश्वनाथ जिन्होंने १८४३ में 'भारतीय दृश्यपटल, अतीत और वर्तमान' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित की और लोकहितवादी, जिन्होंने १८४० में स्थापित 'प्रभाकर' पत्रिका में १८४८–१८५० में धारावाहिक लेखमाला प्रकाशित की थी जो बाद में 'शतपत्र' नाम से पुस्तकाकार अलग भी प्रकाशित हुई। इन सभी कृतियों में लेखकों ने ऐसे विषयों को लिया था जिन्हें अभी तक मराठी साहित्य में छुआ भी नहीं गया था और उन्होंने नयी अवधारणाओं और उक्तियों का प्रयोग शुरू किया। इसके परिणामस्वरूप मराठी भाषा उस समय भारत में प्रत्यक्षतः सबसे विकसित साहित्यिक भाषा बन गयी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में मराठी साहित्यिक भाषा की व्याकरणिक तथा शाब्दिक संरचना का व्यापक अध्ययन किया गया। उस काल के एक सुप्रसिद्ध मराठी भाषा विज्ञानी दादोबा पांडुरंग (१८१४–१८८२) थे।

बंगला साहित्य

अठारहवीं शताब्दी में बंगाल में मध्यकालीन काव्यात्मक विधाओं का और विशदीकरण हुआ। हालांकि साहित्य के विषय और रूप परंपरागत बने रहे थे किंतु स्वयं भाषा विकसित होती जा रही थी और कवियों के वर्णन रूप अधिकाधिक सूक्ष्म बनते जा रहे थे। उपमाएं अधिक जीवंत हो गयी थीं और अब पहले की तरह उतनी रूढ़िबद्ध नहीं रह गयी थीं तथा पात्र अधिक वास्तविक हो गये थे। इस काल के प्रमुख कवि रामप्रसाद सेन (१७१८–१७७५) और भरतचंद्र राय (१७१२–१७६०) नदिया दरबार के आश्रित थे। भरतचंद्र राय की दो प्रेमियों के बारे में 'विद्यासुंदर' कविता की काव्यात्मकता और रूप मर्मज्ञता ने प्रथम रूसी भारतविद गेरासिम लेबेदेव (१७४९–१८१७) का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने इसका रूसी में अनुवाद किया और भरतचन्द्र राय के कुछ पद्यों को संगीतबद्ध किया, जिसे

१७९५ मे कलकत्ता मे अभिनीत एक नाटय प्रस्तुति म सम्मिलित किया गया था।

राममोहन राय नयी शैली क वह प्रथम लेखक थ, जिन्होन बगला गद्य के विकास मे बहुत भारी योगदान किया। उन्हो सवाद कौमुदी नामक पत्रिका की स्थापना की और विभिन्न सामाजिक विषयो पर अनक लेख भी लिखे। उन्होन हिन्दू धर्म के पूर्वाग्रहो और कालातीत प्रथाआ के विरुद्ध सघर्ष किया। राममोहन राय ने बगला गद्य के उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म होनवाल विकास की आधारशिला रखी।

तमिल साहित्य

दक्षिण भारत का सबसे विकसित साहित्य तमिल साहित्य था जिसम सस्कृत ग्रथो पर टीका की मध्यकालीन परम्परा बनी रही थी। लेकिन अठारहवी शताब्दी मे लेखको ने जिन ग्रथो की टीकाए लिखी उनका अब उन्हान पुरानी परपरा के अनुसार अपन विचारो और रूपातरणो द्वारा भाष्य प्रस्तुत करन की नही बल्कि उनकी सहायता से भारत के ऐतिहासिक अतीत को – और कभी कभी अत्यत आदर्शीकृत रूप म – प्रस्तुत करने की कोशिश की। प्राचीन भारत की गौरवशाली स्मृतियो न तमिलभाषियो को अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करन का एक साधन प्रदान किया।

अठारहवी शताब्दी क प्रथम चतुर्थक मे इतालवी मिशनरी कोस्ताज़िया वेस्ची (१६८०–१७४६) ने तमिल गद्य के विकास म एक बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया। वीरम मुनि क उपनाम से उसने ईसाई धम सबधी विषयो पर अनक कृतियो की रचना की लेकिन बोलचाल की तमिल म परी कथा सग्रह परमार्थ गुरु की कथाए' न उसे विशष लोकप्रियता प्रदान की।

तमिल कवि तायुमानवर जिनका रचना काल अठारहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध था, भक्ति मार्गी थे हालाकि उन्होंने शिव को एक एस अमूर्त दवता के रूप म चित्रित किया, जो सभी लोगो और धर्मो के लिए कल्याणकारी है। इस तरह अन्य भक्तो की ही भाति तायुमानवर न भी लोगो क बीच समानता का विचार प्रचारित किया। उन्नीसवी शताब्दी क पूर्वार्द्ध म य विचार सुन्दरम पिल्लै और फिर रामलिंग स्वामी (१८२३–१८७४) की कविताआ म और विकसित हुए जिनकी भाषा बोलचाल की भाषा स मिलती जुलती थी। रामलिग स्वामी ने कहानिया भी लिखी, जिन्होंने तमिल गद्य क विकास म

महत्वपूर्ण योग दिया। आम्मुग नावलार (१८२२–१८७८) इस काल क प्रमुख गद्य लेखक मान जात ह। लेकिन तमिल उपन्यासा का लेखन उन्नीसवी शताब्दी क उत्तरार्द्ध म जाकर ही शुरू हुआ।

नाट्यकला

अठारहवी शताब्दी म जब नाट्यकला न एक ह्रास काल म प्रवश किया, नाटक उतना रगमचीय प्रस्तुतियो क लिए नही लिख जात थ, जितना ऊच स्वर म पढकर सुनान क लिए। प्राचीन भारतीय महाकाव्या म ली गयी विषयवस्तुओ पर आधारित लाकप्रिय नाटक मला म प्रस्तुत किय जात थ, लकिन य परम्परागत विषयवस्तुओ के रूपातरण मात्र हात थ। १७५७ म कपनी न अग्रज निवासिया क लिए कलकत्ता म एक थियेटर कायम किया। स्थानीय भारतीय इस थियेटर म नाटक दखने नही जात थ क्याकि वे एसी विषयवस्तुआ पर आधारित होत थ, जिनस उनका दूर का भी सबध नही था और उस समय एसे बहुत कम लोग थ, जो अग्रजी म मच पर जा पश किया जाता था उस समझ सकत थे।

कलकत्ता क जीवन म एक महत्वपूण घटना १७९५ म भारतीयो क लिए एक आधुनिक थियेटर की स्थापना थी। इसके सस्थापक सगीतकार और बाद म भारतविद गरासिम लेबेदेव थे। उन्हाने भारत म १२ वर्ष बिताय और सस्कृत, बगला तथा हिन्दुस्तानी भाषाओ का अध्ययन किया। उन्होंने घटना स्थल को भारत स्थानातरित करक तथा बगालिया को नायक बनाते हुए दा अंग्रेजी नाटका को बोलचाल की बगला भाषा म रूपातरित किया। कपनी थियेटर के मालिका ने कई तिकडमो और साजिशो से यह सुनिश्चित कर लिया कि उनके प्रतिद्वद्वी का दिवाला पिट जाये जिससे यह थियेटर बद हो गया। लेबेदेव को भारत छोडना पडा और १८३१ म जाकर ही प्रथम ठाकुर न हिन्दू थियेटर नामक दशी थियेटर की स्थापना की, लेकिन इसम भी नाटक अग्रजी म ही पेश किये जाते थे। लेकिन उन्नीसवी शताब्दी के पाचव दशक म कलकत्ता मे एसे अनक थियेटर कायम हा चुक थे, जिनमे बगला म भी प्रस्तुतिया मचित की जाती थी।

वास्तुकला

कुल मिलाकर अठारहवी शताब्दी मे वास्तुकला म अवनति ही आयी। आयामो का भव्य सामजस्य जो मुगल साम्राज्य के चरमोत्कर्ष काल के भवनो

का विशिष्ट लक्षण था, जब विगत की वस्तु बन गया था। अठारहवी शताब्दी की शैली की विशेषता सरचना म सवथा असगत अतिशय अलकरण है, जो असल म समग्रता से ध्यान हटाने और उसे भग करने म ही सहायता देती थी। लेकिन साथ ही नयी वास्तु शैलियां और तकनीके भी प्रकट हो रही थी।

अठारहवी शताब्दी म महलो सडको पुलो आदि से युक्त अनेक नये नगर पैदा हुए। इनका एक उदाहरण जयपुर था जिसका निर्माण राजा जयसिह ने शुरू किया था। जयपुर का राजमहल अनेक भवनो का एक सपूर्ण समुच्चय था, जिनम सबसे सुप्रसिद्ध हवामहल था। इस विशाल भवन म ऐसे अनेक आले और झरोखे थे जो इसे ठडा बनाते तथा ऐसी वायु धाराए पैदा करते थे जो भवन म मद मद सरसराती बहती थी। महल के भीतरी भाग म बहुरगी सगमरमर और पत्थर के बेलबूट के काम की सजावट थी। महलो और किलो के बीच अग्रेजी शैली म उद्यान बनाये गये थे जो शहरपनाह के बाहर की पहाडी पृष्ठभूमि से पूरी तरह से मेल खाते थे। इस तरह का दूसरा नगर ग्वालियर राज्य की नयी राजधानी लश्कर था जिसकी स्थापना १८१२ म हुई थी। वहा निर्माण मे परम्परागत तत्वो को सम्मिलित किया गया था उदाहरणार्थ भवन के आगे बरामदे छोटे पतले स्तभो पर बारीक काम के मेहराबदार छज्जे, सूक्ष्म पच्चीकारी से सज्जित आकर्षक झरोखेदार छज्जे। एक खूबसूरत पुल लश्कर का एक दूसरा आकर्षण था।

उत्तर भारत म महलो मस्जिदो, शासको और अभिजातो के मकबरो, बडे और छोटे इमामबाडे की मजलिसो (इबादतखानो) आदि भवनो के पूरे के पूरे समुच्चय से युक्त अवध के नवाबो की राजधानी लखनऊ का निर्माण अठारहवी शताब्दी मे किया गया था। इमामबाडे म मुहर्रम म इमाम हुसैन के मकबरे का रत्नजटित लकडी का ताज़िया रखा है। ये सभी भवन भूरे बलुए पत्थर और सपाट शिलापट्टियो से बनाये गये है, जिन पर घिसी हुई सीपियो और चूने का पलस्तर है। उन्हे सिर पर वर्त्तुलाकार छडियो के गट्ठो और पखुडीदार गुम्बजो पर बनी विभिन्न आकारो की बुर्जियो सहित आकृतियो और काल्पनिक चित्रो से पूरी तरह सजाया गया है। ये भवन अपनी मौलिक और भडकदार डिजाइन के लिए विशिष्ट है, उदाहरणार्थ इमामबाडे का विशाल आयाताकार हाल (करीब ८०० वर्ग मीटर) जिसकी सपाट छत स्तभ अथवा अवलब रहित है और इसे इस तरह बनाया गया है कि एक सिरे पर फुसफुसाकर बोले गये शब्द भी दूसरे सिरे पर साफ साफ सुनायी देते है।

वाराणसी म गगा क तट क अनक मदिर, महल और मठ तथा घाट भी अठारहवी शताब्दी म बनाय गय थ। प्रारम्भिक उन्नीसवी शताब्दी क कुछ भवन भी उल्लेखनीय है। इनम अहमदाबाद म सफेद सगमरमर का धमनाथ जैन मदिर (१८४४–१८४८) और बीकानर क एक धनी व्यापारी द्वारा निमित नक्काशी और प्रतिमाओ क अलकरण से परिपूर्ण मुडरदार छतवाली एक चार मजिला हवली शामिल है। अठारहवी शताब्दी की एक उत्कृष्ट वास्तुकृति अमृतसर म सिखो का भव्य मडपो स युक्त स्वण मदिर है, जिसक ताब क गुम्बज पर सोन की चादर लगी हुई है। यह १७६४ या १७६६ म बनाया गया था। दिल्ली म सफदरजग का मकबरा (१७५३) मुगल साम्राज्य क चरमोत्कर्ष के दौरान निर्मित भवनो की प्रतिकृति है, लेकिन इसके निर्माण म कम खर्चीली सामग्रियो का प्रयोग किया गया है।

अठारहवी शताब्दी म भारत म विशप रूप स बगाल मे, यूरोपीय शैली क भवन भी बनन लगे थ (हालाकि सोलहवी शताब्दी क कुछ पुर्तगाली गिरजाघर सत्रहवी शताब्दी के डच मालगोदाम और आवासगृह दक्षिण भारत मे अब भी देखे जा सकते है)। अठारहवी शताब्दी म निर्मित अग्रजी भवन मुख्यतया खभो से युक्त क्लासिकी शैली के है और आसपास की भूदृश्यावली मे बिलकुल मेल नही खाते। उस काल के निर्मित यूरोपीय भवनो म भोडेपन का चरम उदाहरण लखनऊ म ला मार्तिनियर कालेज है। इसे एक फ्रासीसी जाबाज क्लाद मातिन न एक कृत्रिम झील के तट पर बनवाया था, जो अवध के प्रारभिक नवाबो के तोपखान का कमाडर था और जिसने भारत म अपार धन दौलत जमा कर ली थी। रिक्त दीवारो, वर्गाकार और गोलाकार मीनारो, तीसरी मजिल पर ऊचे बुर्जो का यह भवन विभिन्न बेमेल शैलियो म किसी यूरोपीय गढी का स्मरण दिलाता है। मीनारो पर विभिन्न स्तरो पर यूरोपीय क्लासिकी शैली मे मूर्तिया लगायी गयी है और ड्योढी पर पत्थर के दो विशाल शेरो क खुले मुहो से आकाश देखा जा सकता है। सौभाग्य स ऐसे भवनो ने वास्तुकला की भारतीय शैलियो को किसी भी रूप मे प्रभावित नही किया।

चित्रकला

अठारहवी शताब्दी मे मुगल लघुचित्र अधिकाधिक लोकप्रियता प्राप्त करते थे। वे पुराने नमूनो की पुनरावृत्ति करते थे लेकिन उनमे प्रयुक्त रग

चमत्कार और कभी-कभी तो बहुत भोंडे भी होते थे। दस्तकारी सामान उदाहरणार्थ मंजूषाओं, दीवारों, हाथीदांत के तानाबानों, फलकों आदि को लघुचित्रों से सजाया जाता था। अठारहवीं शताब्दी के मध्य के बाद लघुचित्रों की मुगल शैली पूर्णतया विलुप्त हो गयी। उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध जम्मू, चम्बा, मंडी, कांगड़ा और टिहरी गढ़वाल की छोटी पहाड़ी रियासतों (यही कारण है कि इन्हें 'पहाड़ी' शैली के लघुचित्र कहा जाता है) में लघुचित्रण की विविध शैलियों के सम्मान का काल था।

इनमें सबसे उल्लेखनीय कांगड़ा शैली थी। मुगल शैली के लघुचित्रों के विपरीत, जिनमें मुगल अभिजातों के जीवन को चित्रित किया जाता था अथवा जिनका उपयोग फारसी कवियों की कृतियों को अलंकृत करने में किया जाता था, कांगड़ा शैली के लघुचित्रों ने मुख्यतया हिन्दू महाकाव्यों पर आधारित विषयों और विशेष रूप से कृष्ण भक्ति से सम्बद्ध विषयों—कृष्ण की बाल्यावस्था, गोपियों के बीच बांसुरी वादन, राधा और उसकी सहेलियां, कृष्ण और राधा का मिलन आदि—को चित्रित किया। कृष्ण को इन लघुचित्रों में हमेशा असामान्य फीके नीले रंग में चित्रित किया गया है। बड़ी-बड़ी आंखोंवाली आकृतियों के द्विविम चित्रण में राजपूत शैली की पुनरावृत्ति नजर आती है। परिप्रेक्ष्य प्रायः अविद्यमान है और भीड़ को इस ढंग से चित्रित किया जाता है, मानो लोग आगे की पंक्तियों के लोगों से व्यवस्थित क्रम में कुछ ऊंचाई पर पंक्तिबद्ध हों। कुछ परम्परागत शैली में हैं, दृश्य अकसर रातों के हैं, जब आकाश तारों से भरा होता है, फिर भी प्रयुक्त रंग चमकदार हैं, हालांकि वे न्यूनाधिक हलके और गहरे नीले रंगों, सुनहरे भूरे रंगों आदि तक ही सीमित हैं। उल्लेखनीय है कि कांगड़ा लघुचित्र केवल दरबारी वातावरण को ही नहीं, बल्कि किसानों, गडरियों, दस्तकारों, आदि को भी चित्रित करते हैं।

अठारहवीं शताब्दी के अंत में अधिक हलके रंगों का प्रयोग किया जाने लगा, इनमें रचना कौशल में उल्लेखनीय ह्रास नजर आता है और यहां तक कि देवता भी यथार्थवादी दैनंदिन परिवेश में, अकसर पारिवारिक हलके के भीतर सामान्य नश्वरों के रूप में चित्रित किये गये हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चित्रकला कला से अधिक शिल्प बन जाती है। ब्रिटिश अधिकारियों और सभी प्रकार के रस्मी जुलूसों का चित्रण होने लगता है। लघुचित्र अब केवल पुस्तक चित्रण के साधन ही नहीं रहते, बल्कि दैनंदिन वस्तुओं के लिए अलंकरण भी प्रदान करते हैं।

साम्राज्यवादी युग के प्रारभ के समय भारत
(१८६०-१८९७)

आपनिवेशिक प्रशासन प्रणाली मे परिवर्तन

१८५७-१८५९ का जन विद्राह भारत के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण मीमाचिह्न है। उमन ब्रिटिश शासन के सामाजिक आधार की आपक्षिक कमजारी का प्रकट किया और अपन शासको क प्रति जनसाधारण की गहरी नफरत को व्यक्त किया। जवाहरलाल नेहरू ने हिंदुस्तान की कहानी' म कहा है, अगरचे गदर ने सीधे तौर पर देश के सिर्फ कुछ ही हिस्सा को प्रभावित किया मगर उसन सारे हिंदुस्तान को और खासकर, अग्रजी हुकूमत को हिला दिया।

उन्नीसवी शताब्दी के सातवे दशक मे
प्रशासनिक सुधार

ब्रिटिश पूजीपति वर्ग प्रशासनतत्र को मजबूत करने और इस नयी एतिहासिक परिस्थितियो क अनुकूल बनान के वास्ते औपनिवेशिक प्रशासन प्रणाली म महत्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिए विवश हो गया था। इन प्रशासनिक सुधारा क दौरान कुल मिलाकर राजकीय तत्र, यानी ब्रिटेन क भारत के औपनिवेशिक दासीकरण के मूल साधन का अतिम रूप सामन आया।

जैसा कि मार्क्स न लिखा है ईस्ट इडिया कपनी युद्ध समाप्त हान क पहले ही भग हो चुकी थी",* क्योकि इसने अपने को कवल भारत म ही

* Karl Marx *Notes on Indian History* p 186

नही, वल्कि ब्रिटन म भी बदनाम कर लिया था और यह वहुत पहले एक एतिहासिक पुरावशप बन चुकी थी।

२ अगस्त १८५८ को ब्रिटिश ससद न भारत क वेहतर शासन के लिए एक अधिनियम पारित किया जिसके तहत भारत म राजकीय सत्ता ब्रिटिश ताज को हस्तातरित कर दी गयी और औपनिवशिक प्रशासन ब्रिटिश ससद और सरकार के प्रत्यक्ष नियत्रण म आ गया। द्वैध शासन प्रणाली अर्थात वाड आफ कट्रोल और ईस्ट इडिया कपनी क कार्ट आफ डायरेक्टर्स वे जरिय शासन को समाप्त कर दिया गया। इन निकायो को भग कर दिया गया और उनके कार्यो को भारतीय मामलो के लिए एक नवगठित मत्रालय को हस्तातरित कर दिया गया जिसके (भारत मत्री के) तत्वावधान म एक परामर्शदात्री परिषद अर्थात इडिया काउसिल कायम की गयी जिसके सदस्य ब्रिटिश और भारतीय सिविल सविस क वड अफसर थे। ब्रिटिश गवर्नर जनरल को वाइसराय (उपशासक) की भी उपाधि दे दी गयी और इस प्रकार वह देश मे ब्रिटिश ताज का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि वन गया। प्रशासन का केन्द्रीयकरण करके ब्रिटिश पूजीपति वग न औपनिवेशिक प्रशासन के कायकलाप पर अपना नियत्रण मजबूत वना लिया। ईस्ट इडिया कपनी की परिसपत्ति को ब्रिटिश राज्य को हस्तातरित कर दिया गया लेकिन उसके हिस्सेदारो को कुल ३० लाख पौड का मुआवजा प्रदान किया गया, जो भारतीय वजट से काटा गया यानी भारतीय करदाताओ से वसूल किया गया।

१८५७–१८५६ के विद्रोह म देशी टुकडिया की सक्रिय भागीदारी न १८६१–१८६४ क फौजी सुधारो को प्ररित किया। औपनिवशिक सना का इस ढग स पुनर्गठित किया गया कि ब्रिटिश टुकडिया की भूमिका अब काफी अधिक हो गयी (सुधार के पहल ब्रिटिश और भारतीय सिपाहियो का अनुपात १ ६ था लेकिन वाद म इस घटाकर १ २ कर दिया गया और फिर यह १ ३ हो गया)। टुकडियो की भर्ती और तैनाती म इसका ध्यान रखा जाता था कि नसली धार्मिक और जातीय समूहो का आपस म मेल न हो सके। अव अधिकाश सिपाही पजावी सिखो और हिमालय तथा नेपाल की तराइया के पर्वतीय लोगो यानी एस नसली समूहो स भर्ती किये जान लगे जिनका देश के मुख्य भागो की आवादी स वहुत कम सपर्क था। सिपाहियो को मामूली वदूकें दी जाती थी जब कि ब्रिटिश सैनिको को चूडीदार वदूक दी जाती थी। फौजी टेकनालाजी क सबध म देशी टुकडिया क मुकावले म ब्रिटिश टुकडिया

की श्रेष्ठता इस तथ्य से और भी बढ जाती थी कि तोपखाने मे केवल ब्रिटिश सैनिक ही होते थे।

फौजी सुधार के दौरान अवर अफसरो की नियुक्ति की एक नयी व्यवस्था कायम की गयी ताकि भारतीय सामती अभिजात वर्ग के सदस्य ही फौजी सोपान पर चढ सके।

देश के औपनिवेशिक प्रशासन मे अन्य परिवर्तनो की भाति इस फौजी सुधार का उद्देश्य भी दो लक्ष्यो को प्राप्त करना था एक ओर भारत मे ब्रिटिश राजकीय तत्र को केन्द्रीकृत तथा मजबूत बनाना और दूसरी ओर भारतीय समाज के भीतर औपनिवेशिक सरकार के प्रति समर्थन के लिए एक मजबूत आधार की स्थापना करना, अर्थात सामती वर्ग के समर्थन को सुनिश्चित बनाना।

इस समय के प्रशासनिक सुधार का सारतत्व यही था। १८६१ के इडिया काउसिल्स एक्ट (भारतीय परिषद अधिनियम) के अनुसार वाइसराय तीनो प्रेसिडेसियो के गवर्नरो तथा उत्तर-पश्चिम प्रात और पजाब के लेफ्टिनट गवर्नरो के अधीन लेजिस्लेटिव काउसिले (विधान परिषद) कायम की गयी, जो उन्हे सलाह दे सकती थी। काउसिलो के कम से कम आधे सदस्य ऐसे लोगो मे से चुने जाते थे, जो सिविल सर्विस (असैनिक सेवा) मे नही थे। १८६१ मे हाउस आफ कामन्स मे दिये गये भाषण मे भारत मत्री सर चार्ल्स वुड ने इस सुधार के उद्देश्य को बिलकुल स्पष्ट कर दिया। उन्होने यह कहते हुए लेजिस्लेटिव काउसिलो के काय मे भारतीय सामतो को शामिल करने की आवश्यकता को स्पष्ट किया कि मुझे पूरा विश्वास है कि यह इस बात का सुनिश्चित करने का सर्वोत्तम तरीका है कि उच्च पदस्थ देशी नागरिक ब्रिटिश शासन के पक्षपाती बने रहे।

लेजिस्लेटिव काउसिलो ने वाइसराय और प्रातीय गवर्नरो के शासन के निरकुशतावादी स्वरूप को जरा भी प्रभावित नही किया। यह उल्लेखनीय है कि १८६१ के अधिनियम मे इस बात का विशेष रूप से उल्लेख किया गया था कि वित्त कराधान सशस्त्र सेनाओ, देशी राज्यो के बीच सबधो और विदेश सबधो जैसे प्रमुख नीतिगत मामलो पर काउसिल विचार नहीं कर सकती। वाइसराय की सहायता के लिए एक कार्यकारिणी परिषद गठित की गयी जिसमे औपनिवेशिक प्रशासन के विभिन्न विभागो के प्रधान थे। वाइसराय को केन्द्रीय और प्रातीय लेजिस्लेटिव काउसिलो के निर्णयो पर निषेधाधिकार प्राप्त था।

इस समय लागू किये गये अदालती सुधार का उद्देश्य भी राजकीय तत्र क केन्द्रीकरण और उसके भीतर ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियो क प्रभाव को बढावा देना था। परिणामस्वरूप सर्वोच्च न्यायालय और कपनी अदालतो (सदर दीवानी और निज़ामत अदालतो) को समाप्त कर दिया गया और १८६१ म तीनो प्रेसिडेसियो मे और फिर १८६६ मे उत्तर-पश्चिम प्रात म अलग अलग उच्च न्यायालय (हाई कोर्ट) कायम किये गये।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे औपनिवेशिक भारत का राजकीय तत्र न्यूनाधिक निश्चित रूप ग्रहण कर चुका था। इसकी मूलभूत विशेषता यह थी कि यह सर्वोपरि ब्रिटिश शासक वर्गो का हितसाधन करता था। यही कारण था कि इसक ऊपरी सोपान (ससद जो भारत के लिए कानून बनाती थी और सरकार जो एक विशेष मत्रालय द्वारा औपनिवेशिक प्रशासन के कार्य-कलापो को नियत्रित करती थी) ब्रिटेन म अवस्थित थे।

राजाओ और सामतो के साथ गठजोड

औपनिवेशिक प्रशासन न भारतीय उच्च सामती वर्ग क सबध मे अपनायी गयी नीति को जिस १ नवम्बर १८५८ की महारानी विक्टोरिया की उदघोषणा म ही घोषित कर दिया गया था पक्के तौर पर और सतत ढग स लागू किया।

अग्रजो न उच्च सामती वर्ग को विद्रोह के दौरान दिये समर्थन क लिए उदारतापूर्वक पुरस्कृत किया। १८६७–१८७० की अवधि म उत्तर-पश्चिम प्रात के अनक सामतो को राजा और नवाब की सम्मानसूचक उपाधिया प्रदान की गयी , उन्ह भूअनुदानो और पेशनो सहित बडी-बडी रकम भी दी गयी। पटियाला , जीद , रामपुर और ग्वालियर के शासको जैस कुछ राजाओ को विद्रोह म भाग लेनेवाले लोगो से जब्त किय गय विस्तृत इलाक प्रदान किये गये।

सामतो और राजाओ को ज़मीन प्रदान करन क पीछ अग्रजो का उद्देश्य आर्थिक साधनो के माध्यम से भारतीय समाज के उच्च वर्ग क साथ अपन गठजोड को मज़बूत करना था। इस गठजोड की जड भारत की जनता क राष्ट्रीय हितो के प्रति सामतो क विश्वासघात म जमी हुई थी। यह कार्यनीति भारत म ब्रिटिश नीति के एक मूलभूत सिद्धात फूट डालो और राज करो म अभिव्यक्त हुई। उपनिवेशवादियो न देशी रियासतो की सीमाए बदल दी

ताकि ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जा सकें, जिनमें जनता के बीच धार्मिक तनाव भड़काना आसान हो।

नवम्बर १८५९ में आगरा में राजपूताना तथा भारत के कुछ अन्य भागों की रियासतों के राजाओं को गवर्नर-जनरल और भारत के प्रथम वाइसराय लार्ड कैनिंग (१८५६–१८६२) से मिलने और "जब्त रियासतों" (अर्थात जिन रियासतों में कोई वंशक्रमोत्पन्न पुरुष उत्तराधिकारी नहीं था) के संबंध में ब्रिटिश नीति में परिवर्तनों की पहली घोषणा सुनने के लिए एक बड़े दरबार में आमन्त्रित किया गया। कैनिंग ने ग्वालियर राज्य के शासक सिंधिया को अपना उत्तराधिकारी गोद लेने की अनुमति प्रदान की। अगले वर्ष जागीरदार की उपाधि से ऊंची उपाधियोंवाले सभी सामंतों को अपना उत्तराधिकारी गोद लेने का अधिकार इस शर्त पर प्रदान कर दिया गया कि वे ब्रिटिश सरकार की वफादारी में सेवा करेंगे। कुछ राज्यों को, जिन्हें पहले अंग्रेजों ने जब्त कर लिया था, उनके भूतपूर्व के शासकों के दत्तक पुत्रों को लौटा दिया गया: १८५९ में टेहरी-गढ़वाल, १८६१ में कोल्हापुर और १८६४ में धार। औपनिवेशिक अधिकारियों के, जिन्होंने अब डलहौज़ी के "राज्य अपहरण" के सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया था, इन कदमों ने राजाओं की रियासतों को निरापद और अक्षुण्ण बनाये रखने की महारानी विक्टोरिया की उदघोषणा में दिये गये आश्वासन को व्यावहारिक रूप प्रदान किया।

लेकिन फिर भी डलहौज़ी द्वारा ब्रिटिश प्रदेश में मिलाये गये राज्यों का अधिकांश भाग ब्रिटिश भारत का ही अंग बना रहा। इसमें हैदराबाद का अत्यधिक उपजाऊ भाग बरार भी शामिल था, जिसे एक "बेमियादी पट्टे" के तहत ब्रिटिश प्रदेश में मिला लिया गया था।

अपने दरबारों में राजाओं और अभिजातों के मुक्तहस्त खर्च और उपनिवेशवादियों को दिये जानेवाले खिराज के परिणामस्वरूप राज्यों में अकसर वित्तीय घाटा बना रहता था और उनके शासक व्यापारिक गृहों और बड़े महाजनों और सराफों के भारी कर्जों में फंस जाते थे। १८५७–१८५९ के विद्रोह के फौरन पहलेवाले वर्षों में औपनिवेशिक प्रशासन ने इस ऋणग्रस्तता का उपयोग विभिन्न राज्यों को ब्रिटिश प्रदेश में मिलाने के लिए किया था। लेकिन अब जिस नयी आंतरिक नीति पर चला जा रहा था, उसके दृष्टिगत वित्तीय मामलों में गड़बड़ी से ग्रस्त राज्यों को अस्थायी तौर पर ब्रिटिश अधिकारियों के नियन्त्रण में रखने की व्यवस्था कर दी गयी थी।

आश्रित राज्यों के प्रति "पुचकार" की नीति पर चलते हुए भी अंग्रेजों

न फौजी मामलों म उन पर पूर्ण नियत्रण बनाये रखा। रूसी विद्वान और भारतविद इ० प० मिनायव न १८८० म मध्य भारत की यात्रा करते हुए अपनी डायरी म लिखा था कि राज्या म ब्रिटिश रेजिडट ही सर्वेसर्वा होता है।

राजाओं का अपनी सैनिक टुकडिया रखने का अधिकार बना रहा। ये टुकडिया सर्वोपरि राज्यों म सामतवादविरोधी और उपनिवशवादविरोधी आदोलन को कुचलने के लिए थी। राजाओ की फौज जो न तो सुप्रशिक्षित थी और न ही अच्छी तरह हथियारबद थी उपनिवेशवादियो के लिए कोई गभीर खतरा नही थी खासकर इसलिए कि खुद राजा अग्रेजो के वफादार सेवक थे। लेकिन साथ ही राज्यो मे विभिन्न ब्रिटिश रेजिडटो और राजनीतिक एजटो की सत्ता के प्रभाव को रखने क लिए आग्ल भारतीय फौजो की टुकडिया भी रखी जाती थी। महत्वपूर्ण रणनीतिक स्थलो पर ब्रिटिश टुकडिया तैनात थी और वे अत्यावश्यक मार्गों पर निगरानी रखती थी।

ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन का राज्यो पर अब जो मजबूत नियत्रण कायम हो गया था उसे १ जनवरी १८७७ को वाइसराय द्वारा भारतीय राजाओ के विशेष दरबार म वैध रूप प्रदान किया गया जिसम महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया गया था। परिणामस्वरूप देशी राज्य ब्रिटिश साम्राज्य के अग बन गये और उनके शासको ने कवल व्यावहारिक दृष्टि से ही नही बल्कि कानूनी दृष्टि से भी ब्रिटिश ताज की वैयक्तिक अधीनता स्वीकार कर ली।

अपना औपनिवशिक साम्राज्य कायम करत समय अग्रेजों ने देश को केवल "ब्रिटिश भारत" और सैकडो 'देशी रियासतो म ही विभाजित नही कर दिया बल्कि प्रत्यक रियासत को पहले ईस्ट इडिया कपनी और फिर बाद मे ब्रिटिश ताज के साथ एक विशेष सविदात्मक आधार पर भी रख दिया। राज्यो द्वारा दिये जानेवाले खिराज की रकमो और विभिन्न राज्यो पर ब्रिटिश अधिकारियों के फौजी और राजनीतिक नियत्रण की सीमा मे अतर राजाओ के बीच तनाव बढाने मे सहायता देते थे। *उस प्रणाली को कायम रखने के परिणाम* स्वरूप, जिसके तहत छोटी रियासत अधिक शक्तिशाली रियासतो की आश्रित रियासत बनी रही रियासतो क शासको क बीच अतहीन अनबन और गलतफहमिया होती रहती थी। औपनिवेशिक अधिकारी जो सामान्यतया ऐसे झगडो और सघर्षो म मध्यस्थ का काम करत थे अपनी इस भूमिका का उपयोग राज्यो म ब्रिटिश प्रभाव को और मजबूत बनान क लिए करत थ।

अलग अलग राजाओं द्वारा विरोध की अभिव्यक्तिया सामान्यतया दिखावा

मान होती थी और उनका उपयोग व्यक्तिगत मामलो पर मतभेदो म औपनिव शिक अधिकारियो पर दवाव डालन के लिए ही किया जाता था। मध्य एशिया के रूस म मिलाये जाने के समय, जब आग्ल-रूसी सवध तेजी से विगड रह थ कुछ राजाआ न (उदाहरणार्थ १८६५ और १८७० मे कश्मीर क, १८६७ मे इदौर क, १८७९ म ग्वालियर के और १८८० म जयपुर के शासको न) ताशकद मे रूसी प्रशासन क साथ सपर्क कायम करन की कोशिश की। लेकिन ज़ारशाही सरकार के ब्रिटिश उपनिवेशो के आतरिक मामला म अहस्तक्षप की नीति पर चलन क सतर्कतापूर्ण रुख की वजह स य प्रयास असफल रहे।

ब्रिटिश शासन क विरोधी राजाओ को औपनिवेशिक अधिकारियो न या तो विभिन्न वहानो स गद्दी से उतार दिया (१८७५ म वडौदा के शासक को और १८८९ मे कश्मीर के शासक को) या एक या दूसरे प्रकार की छूट दकर 'शात' कर दिया। १८८६ मे ग्वालियर का सामरिक दृष्टि स महत्वपूर्ण और एतिहासिक किला सिधिया का वापस दे दिया गया और मैसूर म ब्रिटिश अधिकारिया क लगभग ५० वर्ष तक शासन के वाद सत्ता पुन महाराजा क हाथ म दी गयी।

लेकिन छिटपुट मतभदो और सघर्षो ने राजाओ और औपनिवशिक अधिकारिया के सवधो पर कोई वस्तुत महत्वपूण प्रभाव नही डाला। उन्नीसवी शताब्दी क उत्तरार्द्ध म अधीन राजाओ और शक्तिशाली सामती, जमीदारा क प्रति ब्रिटिश उपनिवेशवादियो की नीति का उद्देश्य उनके साथ अपन गठजोड को विस्तारित करना और मज़वूत वनाना था। भूमि सवधो और कराधान क सवध म भी औपनिवशिक नीति इसी उद्देश्य की आर निर्दशित थी।

उन्नीसवी शताब्दी के सातवे और दसवे दशको के वीच भारत का आर्थिक विकास

उन्नीसवी शताब्दी के सातव दशक स ब्रिटन क पूजीवाद की अतिम अवस्था अथात साम्राज्यवाद म सक्रमण को अभिव्यक्त करनवाल कुछ कारक दश क आर्थिक और राजनीतिक जीवन म अधिकाधिक खुलकर प्रकट हान लग। साम्राज्य क कन्द्र म अर्थव्यवस्था म इन परिवर्तना क परिणामस्वरूप भारत क औपनिवशिक अधीनीकरण और लूट क नय रूप और तरीक प्रकट

हुए। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे बडे पैमाने पर जमीन की पैमाइश और वदोवस्त सबधी कार्रवाइयो न नयी ऐतिहासिक परिस्थितियो मे ब्रिटिश उपनिवेशवादियो की सत्ता को मजबूत बनाने और भारत के शोषण को तेज करने के काय म सहायता की।

ब्रिटिश कृषिक नीति।
औपनिवेशिक ओर सामती भूएकाधिकार

उन्नीसवी शताब्दी के आठवे दशक के अत तक अतत रैयतवारी और *अस्थायी जमीदारी के इलाको म नयी पैमाइश और लगान वदोबस्त के दौरान* सामती भूस्वामियो के विभिन्न समूहा के मालिकाना अधिकारो को निजी स्वामित्व के आधार पर तय किया जा चुका था। इसी अवधि मे भूराजस्व प्रणालियो का सुधार भी अतिम रूप से पूरा किया गया, हालाकि इस पर कार्य शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे ही शुरू हो गया था।

औपनिवेशिक अधिकारियो ने विद्रोह की गहरी जकड म आनवाले इलाको मे भूसापत्तिक अधिकारो की तरफ विशेष ध्यान दिया। विद्रोह के दौरान प्रशासन द्वारा जब्त कुल २३ ५२२ गावो म से २३ १५७ गाव अवध के ताल्लुके-दारो को लौटा दिये गये। *भूस्वामियो के रूप मे उनके अधिकार १८६९ और* १८७० मे जारी किये गये विशेष कानूनो म सूत्रबद्ध किये गये।

लेकिन सामती जमीदाराना भूस्वामित्व को मजबूत बनाते समय औपनिवेशिक अधिकारियो को ग्राम समुदायो के उन उच्च सस्तरो के हितो को भी ध्यान मे रखना पडा जिन्होने विद्रोह मे सक्रिय भाग लिया था। भूराजस्व सुधार को लागू करते समय समुदायो के नेताओ तथा उत्तर-पश्चिम प्रात और अवध के इनामदारो को भी मालगुजारो और भूस्वामियो (जमीदारो और ताल्लुक दारो) के बीच सामती उपस्वामियो बिचौलियो का दर्जा प्रदान किया गया।

सामती जमीदारा के विभिन्न समूहो क बीच सापत्तिक अधिकारा के विभाजन को कुछ हद तक बनाये रखकर अग्रज औपनिवशिक शासन के सामा-जिक आधार को विस्तारित और मजबूत बनाना चाह रहे थे।

औपनिवेशिक अधिकारियो द्वारा अनुसृत कृषिक नीति आतरिक विरोधा से परिपूर्ण थी। एक ओर अठारहवी शताब्दी क अत से लागू किय गय भूराजस्व सुधारो ने जमीन के स्वामित्व तथा उपयोग के सामुदायिक ढाचा का नष्ट करते हुए सामती निजी स्वामित्व और छाट पैमान क किसानी स्वामित्व

(अतोक्त रैयतवारी वंदोबस्त के क्षेत्रों में) के अंतिम रूप ग्रहण करने की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया था। लेकिन दूसरी ओर भूमि-कर संग्रह प्रणाली के भीतर राजकीय स्वामित्व के अवशेषों के बने रहने और भूमि के उपयोग पर लगाये गये प्रतिबंधों (उदाहरणार्थ उन्नीसवीं शताब्दी के छठे से लेकर नौवें दशकों के काश्तकारी कानून स्पष्टतया इसी लक्ष्य की ओर निर्देशित थे) ने भारत के कृषिक ढांचे को सामंती स्वामित्व के विघटन की अंतिम अवस्था की ठीक पहलेवाली अवस्था में बनाये रखा था।

जमींदाराना सामंती भूस्वामित्व को मजबूत करने में औपनिवेशिक अधिकारियों को पंजाब में भूतपूर्व ग्रामीण समुदायों के उच्च संस्तरों के हितों को ध्यान में लेना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि पंजाबी सामंती भूस्वामियों (मिसाल के लिए ताल्लुकेदार और आला मालिक) की ऊपरी श्रेणियां राज्य द्वारा पोषित पेंशनर बन गयीं। कर संबंधी विशेषाधिकारप्राप्त सामंती भूस्वामियों के सांपत्तिक अधिकारों को तय करते समय उनकी जमीनों का कम तक किया गया (यह बात जागीरदारों और इनामदारों पर लागू होती है)।

कुछ प्रांतों में जागीरदार कानूनी किस्म के भूस्वामी बन गये, जो इनामदारों की तरह अपने भूमि-कर न्यूनीकृत दर पर अदा करते थे (उदाहरणार्थ बम्बई और बरार में)। सिंध में जागीरदारों के सांपत्तिक अधिकार जो पहले सशर्त अनुदानों के मालिक थे, अब अंग्रेजों ने उनके पास बची जमीनों के हिसाब से निश्चित किये। लेकिन अधिकांश जागीरदारों और सामंतों के कुछ दूसरे समूहों को भी धीरे धीरे लगान की वसूली में भाग लेने से अलग कर दिया गया। इसके अलावा इनामों और जागीरों की जांच-पड़ताल करने वाली समितियों द्वारा जांच-पड़ताल के समय कुछ इनामदारों और जागीरदारों को अपनी भूमि और नकद अनुदान से वंचित कर दिया गया। ऐसा उन इलाकों में किया गया, जहां औपनिवेशिक शासन को १८५७–१८५९ के विद्रोह के दौरान सबसे कम नुक्सान पहुंचा था और इसलिए जहां उपनिवेशवादियों ने अपनी स्थिति को अधिक सुरक्षित महसूस किया (पंजाब, सिंध, पश्चिमी और दक्षिण भारत)। बम्बई प्रेसिडेंसी में इनामों और जागीरों की संख्या में विशेष रूप से कटौती की गयी। इनामदारों और जागीरदारों की भूसंपत्तियों में कटौती उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तीस वर्षों के दौरान मराठा निम्न और मध्यम भूस्वामियों के एक भाग और इन श्रेणियों के बुद्धिजीवियों के बीच असंतोष और विरोध का एक मुख्य कारण था।

ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने अपने को केवल भूस्वामियों की बड़ी जागीरों

को बनाये रखन तक ही सीमित नही रखा। १८६० म मध्य प्रात के अधिकाश इलाको म भूस्वामित्व का अधिकार ज़मीदारा और ताल्लुकेदारो जैसे कवल पुरान सामती अभिजात वर्ग क प्रतिनिधियो को ही नही बल्कि भूराजस्व अदा करने के लिए राज्य क प्रति ज़िम्मेदार लोगो तथाकथित मालगुजारा को भी प्रदान किया गया। ब्रिटिश विजय के पहल उनम म अधिकाश ग्रामीण समुदायो के प्रधान अथवा लगान ठकेदार थ। मतलब यह कि भारत क इन भागो मे ब्रिटिश उपनिवशवादी उन लोगा के बीच से भूस्वामी वर्ग की एक नयी श्रेणी के विकास को बढावा दे रहे थे जो सामती काल म उस भूमि के अधिकाश के नाममात्र के भी अधिकारी नही थे जो अब उनकी सपत्ति थी। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म भूमि क इस औपनिवशिक सामती एकाधिकार न निश्चित रूप ग्रहण कर लिया।

कच्चे मालो के स्रोत तथा बाजार के रूप मे भारत के शोषण का तीव्रीकरण। माल मुद्रा सबधो का विकास

ब्रिटिश कृषिक नीति को केवल उपनिवशवादिया क गढ भारत के सामती भूस्वामी वर्ग की स्थिति को आर्थिक रूप से मजबूत बनान की आवश्यकता ही नही बल्कि भारत म औपनिवेशिक शोषण की प्रणाली के भीतर घट रह परिवर्तनो न भी निर्धारित किया। उन्नीसवी शताब्दी के छठे और सातव दशको म ही कच्चे माला के स्रोत तथा बाजार के रूप म भारत का शोषण औपनिवेशिक लूट का मुख्य रूप हो गया था। पूजीवादी ब्रिटेन के कृषिजन्य और कच्चे माल के पूरक क रूप म देश के शोषण क तीव्रीकरण से कृषि-जन्य उत्पादन के विकास विशेष रूप से इसकी विक्रयता म वृद्धि करन के लिए अधिक अनुकूल परिस्थितिया कायम करन की आवश्यकता पैदा हुई जिसके लिए अपनी बारी म भूस्वामित्व क निजी अधिकारो को मजबूत बनाना भी अनिवार्य था।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म ब्रिटेन क ठीक ऐस ही पूरक म भारत का रूपातरण मुख्यतया पूरा हो चुका था। दुनिया की वर्कशाप के रूप म ब्रिटेन की भूमिका क क्रमश ह्रास तथा अफ्रीका दक्षिण-पूर्व एशिया और ओशेनिया मे जर्मन और फ्रासीसी विस्तार क तीव्रीकरण क परिणामस्वरूप जिसन प्रमुख औद्योगिक शक्ति क रूप म ब्रिटन की स्थिति का सीमित कर

दिया ब्रिटिश अथतत्र के विकास के लिए भारत का महत्व बढ गया। यह प्रक्रिया उन्नीसवी शताब्दी के सातवे दशक मे रूई की गरमबाजारी से और तेज हो गयी जब ब्रिटिश पूजीपतियो ने भारत से अपने कच्चे माल के निर्यात विशेष रूप मे रूई के निर्यात का बहुत अधिक बढा दिया। सयुक्त राज्य अमरीका मे गृह युद्ध (१८६१–१८६५) ने यूरोपीय बाजार का अमरीकी रूई के निर्यात का कम कर दिया और इसने तत्काल भारतीय रूई की माग बढा दी। १८६०–१८६८ की अवधि मे ब्रिटेन के कपास आयात मे इसका अश तिगुना हो गया। भारत ब्रिटेन का मुख्य रूई सभरणकर्ता बनने लग गया था।

निर्यात मागो ने भारत मे कपास-उत्पादन के विकास को एकदम तेज कर दिया। उन्नीसवी शताब्दी के सातवे दशक मे मध्य और पश्चिमी भारत (बम्बई सिंध राजपूताना मध्य भारत की रियासत, बरार, मध्य प्रात और हैदराबाद) निर्यात के लिए कपास के उत्पादन मे विशेषीकृत प्रदेशो मे रूपातरित हो गये।

सयुक्त राज्य अमरीका मे गृह-युद्ध की समाप्ति का मतलब था रूई की गरमबाजारी का अत और भारतीय रूई की कीमतो मे गिरावट। फिर भी देश मे कपास उत्पादन का विकास जारी रहा। शताब्दी के अतिम तीन दशको मे पजाब और सिंध मे विशेष रूप से सिंचित इलाको मे, कपास उत्पादन के नये केन्द्र विकसित हो गये। भारत और ब्रिटेन के बीच व्यापार मे विकास ब्रिटिश ससाधन उद्योग और भारतीय कृषि के बीच, ब्रिटिश नगरो और भारतीय गावो के बीच हो रहे श्रम विभाजन को अभिव्यक्त करता था।

उन्नीसवी शताब्दी के सातवे दशक के प्रारभ से ब्रिटिश पूजीपति वर्ग ने भारत से अधिकाधिक कृषिजन्य पैदावार लाना शुरू किया, जिसमे रूई, ऊन, जूट नारियल के रेशे चावल, गेहू, तिलहन, मसाले, नील और अफीम मुख्य वस्तुए थी। भातर के कुल निर्यात का अधिकाश (मिसाल के लिए रूई का ८० प्रतिशत) ब्रिटेन जाता था। भारत ब्रिटेन का मुख्य खाद्य सभरणकर्ता बनता जा रहा था। भारत से प्रति वर्ष लाये जानेवाले मालो का कुल मूल्य १८६० और शताब्दी के अत के बीच तिगुना हो गया।

बाजार के रूप मे भारत का शोषण भी बढ गया था। विचाराधीन अवधि मे ब्रिटेन से भारत के आयातो मे पाचगुनी वृद्धि हुई। इन आयातो का अधिकाश भाग कपडे धातु के बर्तन और अन्य प्रकार के उपभोक्ता सामानो का था।

भारत के विदेश व्यापार का औपनिवेशिक स्वरूप निम्नलिखित आकडा

से प्रकट हो जाता है १८७६ म कुल भारतीय निर्यात म तैयार माला का अश मात्र आठ प्रतिशत था जब कि उसके आयात मे उनका अश ६५ प्रतिशत था। इस बीच मे भारत के औपनिवेशिक शाषण की प्रणाली के भीतर देश की महनतकश जनता, विशेप रूप स किसाना के खून को चूसनवाले कमरतोड कर महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते रह।

सातवे दशक क मध्य मे ग्रामीण आबादी पर नये कर लगाये गय, भूकर की दरे बढायी जान लगी। इधर स्वय औपनिवेशिक अधिकारियो को भी मानना पडा कि पट्टेदारो से भूमि-कर अच्छे वर्षो की तरह ही खराब वर्षो म भी नियमित रूप से वसूल किय जाते ये।

ब्रिटिश औपनिवेशिक राज्य का राजस्व जिमका मुख्य स्रोत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर थे १८५६ मे ३६ १ करोड रुपय से वढकर १८६० म ८५ १ करोड रुपये हो गया। कर-भार की वृद्धि से यह प्रकट हो जाता है कि कैसे देश को एक कृषिजन्य और कच्चे माल के पूरक मे परिवर्तित किया जा रहा था। करो के कारण भारतीय किसानो को बाजारो म अपनी उपज का एक वडा भाग वेचना पडता था। इससे पैदा हुई परिस्थितियो से अग्रेजा के लिए कृषिजन्य कच्चे मालो को देश के बाहर भेजना अधिक आसान बन गया।

उस समय विश्व अनाज व्यापार का उल्लेख करते हुए मार्क्स न लिखा है कि रूस और भारत के किसानो को 'एक निर्मम और निरकुश राज्य द्वारा—अकसर यत्रणा के जरिये—अपन से ऐंठे जानवाले करो के लिए धन प्राप्त करन क उद्देश्य से अपनी उपज का एक अश, और वह भी सतत वढता हुआ अश बेचना पडता था। *

मतलब यह था कि नये युग की शुरूआत के साथ औपनिवेशिक शोपण की पुरानी विधिया नय लक्ष्यो अर्थात स्वदश म ब्रिटन की अपनी आवश्यकताओ के लिए कच्चे मालो की खसोट क अनुरूप बनायी जान लगी थी।

कच्चे मालो के स्रोत तथा औद्योगिक वस्तुआ क लिए बाजार क रूप म भारत के तीव्रीकृत शोपण न भारतीय नगरो और गावा म माल मुद्रा सबधो क विकास को वढावा दन म सहायता की। एक ऐस समय म जब कि पूजीवादी उत्पादन पद्धति अब भी उदय की प्रक्रिया म ही थी, साधारण जिस उत्पादन के विकास न कृषि उत्पादन और दस्तकारी उद्योग क क्षेत्र

* Karl Marx *Capital* Vol III Moscow, 1974 p 726

म व्यापारिक और साहूकारी पूजी की और घुसपैठ म मदद की।

व्यापारी और महाजन जातिया (बनियो मारवाडिया, आदि) के सदस्य जिन्होने सामती काल म व्यापार और ऋण लेन-देन पर एकाधिकार कायम कर लिया था अब एकफसली खेती के इलाको, विशेष रूप से पजाब, पश्चिमी और मध्य भारत म बसने लगे। भारतीय व्यापारिया और महाजनो द्वारा सचलन म लगायी गयी पूजी ने भारत की जिस वितरण प्रणाली म निम्न और मध्यम कडिया – आयात निर्यात कारोबार करनेवाले शक्तिशाली ब्रिटिश अथवा भारतीय थोकविक्रेता से उपभोक्ता और उत्पादक भारतीय किसान और दस्तकार तक – बनायी।

भारतीय व्यापारियो और महाजनो द्वारा द्रव्य या नकदी पूजी के सचय के दो महत्वपूर्ण सामाजिक आर्थिक परिणाम हुए एक ओर व्यापारी और महाजन जातियो का आबादी के भूस्वामी सस्तर म प्रवेश और दूसरी ओर राष्ट्रीय उद्योग के निर्माण के लिए पूर्व-परिस्थितिया का निर्माण।

किसानो की बढती ऋणग्रस्तता और भूमिहीनता

सातवे और आठवे दशको म रैयतवारी क्षेत्रो मे १८५७–१८५९ के विद्रोह के पूर्व आरभ की गयी जमीन की पैमाइश और बदोबस्त कार्रवाइया पूरी हो चुकी थी। नये भूकर के लागू करने के दौरान रैयतो के निजी भूस्वामित्व के मालिकाना अधिकारो को अतिम रूप दे दिया गया।

एक ऐसी स्थिति म जब कि माल मुद्रा सबधो का विकास तेज हो रहा था निजी भूस्वामित्व के अधिकारो के दृढीकरण के परिणामस्वरूप भूमि अधिक मूल्यवान हो गयी और बाजारी जिस परिचालन म अधिकाधिक खीचती गयी। भूमि की कीमतो मे तेजी से वृद्धि हुई, जो कृषि-पैदावार की कीमतो म आम वृद्धि से अधिक थी। अविकसित पूजीवादी उद्यम के सदर्भ म भूमि की खरीद ही सबसे लाभप्रद तरीका बन गया, जिसमे व्यापारी, महाजन और सामत अपनी सचित रकम लगा सकते थे।

चूकि भूमि को महाजन के ऋण के लिए प्रतिभूति का सर्वोत्तम साधन माना जाने लगा था अत जमीन की रेहनदारी वह मुख्य तरीका बन गया जिसके जरिये व्यापारी महाजन और सामत किसानो की जमीनो को हथिया सकते थे।

मिसाल के लिए उत्तर पश्चिमी प्रात मे १८४० और उसी शताब्दी

के आठवं दशक के प्रारंभिक वर्षों के बीच लगभग दस लाख एकड भूमि ' गैर-किसानो " के हाथो म आ गयी और जमीन की मिल्कियत म उनका अश दस प्रतिशत से बढकर सत्ताईस प्रतिशत हो गया। पजाब म सातव और आठव दशक के प्रारभ मे व्यापारिया और महाजनो न कुल बेची गयी जमीन का ४५ प्रतिशत हथिया लिया। किसानो को अपनी भूमि मे वचित करन की यह प्रक्रिया महाराष्ट्र म विशेष रूप से प्रचड गति स चली जहा उदाहरणार्थ सतारा जिले म महाजनो न उन्नीसवी शताब्दी क आठव दशक क अत तक कुल कृषि-भूमि का लगभग एक-तिहाई हथिया लिया था।

यही कारण था कि रैयतवारी क्षेत्रा और पजाब म सामती भूस्वामियो क अलावा व्यापारियो और महाजनो की पाता स नय भूस्वामी प्रकट हुए।

जमीन के महाजना व्यापारिया और जमीदारो क हाथो म जान न भारतीय कृषि के आर्थिक आधार को परिवर्तित नही किया। किसान जो अपनी काश्त का मालिक नही रह गया था, अब कमरतोड लगान स पगु काश्तकार की तरह ही उस पर खेती करता रहा। पट्टे पर दी गयी जमीन के रकबे तथा काश्तकारो की सख्या मे वृद्धि हुई। इसक साथ ही ऐस लागो की सख्या मे भी वृद्धि हुई जिनकी आय का मुख्य स्रोत लगान था सामती भूस्वामी वर्ग की सख्या म भी वृद्धि हुई जनगणना आकडो के अनुसार १८८१ और १८९१ के बीच की अवधि मे यह २५ लाख स बढकर ४० लाख हो गयी।

उन्नीसवी शताब्दी के पाचव छठ और सातव दशको म और विशष रूप से विद्रोह के दौरान किसानो के बीच असतोष की बढती लहर न उपनिवशवादियो को विद्रोह के बाद के तीन दशको म बगाल उत्तर-पश्चिमी प्रात, पजाब और मध्य प्रात म जमीदार-काश्तकार सबधो के नियामक कानून बनाने के लिए विवश किया। इन कानूनो न नाम क लिए जमीदारा द्वारा काश्तकारो के अधिक सुविधाप्राप्त समूहा के सामती शोषण का सीमित कर दिया। पर व्यवहार मे भूस्वामी किसाना स उनकी फसला का आधा या इससे भी अधिक लगान के रूप म लेत रहे। इसक अलावा किसाना का अपन सामतो क लिए तरह-तरह की बेगार भी करनी पडती थी।

औपनिवेशिक काश्तकारी कानून न जिसका उद्देश्य भारतीय किसाना क असताप का रोकना था, व्यवहार म उनक शापण की सामती विधिया का बढावा ही दिया। लेकिन साथ ही ऊपरी सस्तरा क काश्तकारा क मालिकाना अधिकारो के दृढीकरण और इन अधिकारा क क्रय विक्रय क विषय म रूपातरण,

लगान वृद्धि पर कुछ परिसीमनो तथा जिस के रूप म लगान के स्थान पर नकद लगान का बढाया जाना – इन सबन समृद्ध किसानो का एक सस्तर कायम करन म सहायता की। एक ऐसी स्थिति म, जिसम काश्तकारा का बहुलाश अधिकाधिक कगाल होता जा रहा था, इस विकास न किसाना के वग स्तरीकरण को बढावा दनवाली अवस्थाए पैदा की।

किसानो के भीतर सपत्तिगत अतर, जो सामती ग्राम समुदाय के दिना म ही पैदा हो चुके थ अब एक नये सामाजिक-आर्थिक आधार पर उभरने लग थे, जब धनी किसानो और द्रव्य पूजी के मालिको द्वारा जमीन पर स्वामित्व भारतीय कृषि म पूजीवादी सबधा के उदय के लिए माग प्रशस्त कर रहा था। यह सामती समाज के भीतर अतर्विरोधा के और तीव्रीकरण म याग दनवाला एक महत्वपूण कारक था।

ब्रिटिश पूजीपति वर्ग द्वारा औपनिवेशिक शोषण की नयी विधिया के अपनाय जाने अथात पूजी के नियात न भारत म उत्पादन की पूजीवादी प्रणाली के विकास को तेज़ करन म सहायता की।

भारत का ब्रिटिश पूजी के लिए निवेश का क्षेत्र बन जाना

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य म भारत का ब्रिटिश पूजी के लिए निवश के एक क्षेत्र के रूप मे प्रयोग शुरू हो गया। भारत म ब्रिटिश निवेश का पहला प्रमुख साधन रलवे न प्रदान किया। कच्चे मालो के स्रोत तथा बाजार के रूप मे भारत के शोषण के लिए सचार और परिवहन के आधुनिक साधना की ज़रूरत थी। उन्नीसवी शताब्दी के सातवे और दसव दशको के बीच रेलमार्गो की कुल लम्बाई १ ३०० किलोमीटर से बढकर २५,६०० किलोमीटर हो गयी। बडे बदरगाहो से भीतरी भागो की ओर फैलने और भारत म प्रमुख ब्रिटिश केन्द्रा को जोडनेवाले रलमार्गो के जाल के प्रसार तथा विन्यास का सर्वोपरि फौजी और रणनीतिक विचारो ने निदेशित किया था।

रेलमार्गो का निमाण इस इरादे और तरीके से किया गया था कि उसस ब्रिटिश उपनिवेशवादियो द्वारा दश के दासीकरण और शोषण म सहायता मिले। माल ढुलाई की दरो की निर्धारित किराया प्रणाली म यह बात स्पष्ट दखी जा सकती थी। भीतरी प्रदेशो को जोडनवाली लाइनो पर किराया भीतरी प्रदेशो स बदरगाहो को जानवाली लाइनो की तुलना म अधिक था।

यह प्रणाली निर्यात के लिए परिवहन को बढ़ावा देती थी और देश के भीतर माल-परिवहन के विकास में बाधा डालती थी। रेलमार्ग तीन तरह के बनाये गये थे—बड़ी लाइन, छोटी लाइन और सकरी लाइन (नैरो गेज)—जिनने देश के भीतर परिवहन को और महंगा बना दिया, क्योंकि मालों को अक्सर दूसरी लाइनों पर पुनः लादना पड़ता था।

रेलमार्गों का निर्माण ब्रिटिश व्यापारियों के लिए धन का अजस्र स्रोत बन गया, क्योंकि औपनिवेशिक अधिकारी रेल कंपनियों को उनके वास्तविक व्यय से निरपेक्ष अधिकतम मुनाफे प्रत्याभूत करते थे। ब्रिटिश ठेकेदारों के मुक्तहस्त अपव्यय की कीमत भारतीय करदाताओं के खून और पसीने से चुकायी जाती थी।

ब्रिटिश पूंजी निवेश के लिए दूसरा महत्त्वपूर्ण क्षेत्र सिंचाई-नहरों का निर्माण था। ये नहरें उन क्षेत्रों में बनायी गयीं, जहां निर्यात के लिए फसलों की खेती होती थी (उदाहरणार्थ सिंध और पंजाब, जो निर्यात के लिए कपास और गेहूं की खेती के मुख्य क्षेत्र बन गये थे)। सिंचाई शुल्कों के जरिये अंग्रेजों के लिए न केवल किसानों से स्वयं अपनी लागत पूरा करना ही, बल्कि भारी मुनाफ़े कमाना भी संभव हो गया।

सिंचाई साधन और रेलमार्ग सामान्यतः ब्रिटेन के ही स्वामित्व में थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के बाद में निजी पूंजी के निवेश का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बागान थे। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक राज्य ने बागान-मालिकों को चाय, कॉफी और रबड़ की खेती के लिए उपयुक्त जमीन अनुकूल शर्तों पर बेचकर अथवा पट्टे पर देकर बागान कायम करने को प्रोत्साहित किया। ब्रिटिश पूंजी फैक्टरियों और खानों के निर्माण में भी लगायी गयी। (कलकत्ता में जूट फैक्टरियां और कानपुर में सूती मिलें पर ब्रिटिश पूंजीपतियों का ही स्वामित्व था।) रेलमार्गों के निर्माण तथा विस्तार ने इस तरह की परियोजनाओं के लिए नया उद्दीपन प्रदान किया था—रेलइंजिनों को कोयले और रेलों को धातुओं की जरूरत थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक कलकत्ता में ब्रिटिश स्वामित्व में एक छोटा सा कारखाना काम करने लगा था। इसके वास्ते ईंधन के लिए इस्तेमाल किया जानेवाला कोयला भारत में ही निकाला जा रहा था। रेलों के चल पड़ने के बाद मरम्मत कारखानों तथा फालतू पुर्जों के उत्पादन के लिए छोटे-छोटे ढलाईघरों और कारखानों की स्थापना आवश्यक हो गयी थी।

शोषण के निमय के नाते साम्राज्यवादी ढांचा (पूंजी के आयात और कच्चे

माला क तीव्रीकृत नियात) स भारत क प्रति यह नया रुख एक ऐतिहासिक अनिवार्यता थी। जैसा कि लेनिन न कहा है ' साम्राज्यवाद की दो महत्व पूर्ण लाक्षणिक विशेषताए ग्रेट ब्रिटेन म उन्नीसवी शताब्दी क मध्य म ही दिखायी पडन लगी थी अथात विस्तृत औपनिवेशिक कब्जदारिया और विश्व बाजार म इजारेदाराना स्थिति। *

ब्रिटिश साम्राज्यवादी औपनिवेशिक शोषण की सभी विधियो – कराधान, तैयार माला का आयात कच्च मालो का नियात – का इस्तेमाल करते हुए इस गुलाम देश म विशाल औपनिवेशिक 'खिराज ' निचोड रह थ, जिसका कुल मूल्य लगभग दस करोड पौंड सालाना क बराबर था। १८८१ म मार्क्स ने भारत म विद्यमान स्थिति पर निम्नलिखित टिप्पणी की, 'हर साल अग्रेज भारतीयो स लगाना रकमो क लाभाश, – जिन रकमो स भारतीयो का कोई लाभ नहीं पहुचता – सैनिक तथा असैनिक कमचारियो की पेशना अफगानि स्तान की लडाई तथा अन्य लडाइयो क खचा इत्यादि क रूप म भारी रकम वसूल करत है। इन रकमो क बदले मे भारतीयो को कुछ भी नहीं मिलता। य रकम उन रकमो स अलग है, जिनस अग्रेज भारत क अन्दर हर साल अपनी जब भरत है। इस सबध म पहल प्रकार की रकमो क मूल्य का ही – अथात केवल उस सामान के मूल्य का, जो भारतीयो को हर साल इगलैण्ड म भेट स्वरूप भेजना पडता है, – उल्लख कर देना काफी होगा। कुल मिलाकर यह धन खेतीबारी और उद्योगो मे काम करनेवाले ६ करोड भारतीयो की कुल आय से अधिक है। यह तो खून निचोडनेवाली बात है ! यह तो हृदय विदारक बात है ! भारत म एक क बाद एक दुर्भिक्ष फूट रहे है, और उनक विस्तार के बारे म यूरोपवाले अभी तक अनुमान तक नही लगा सकते। ' **

भारतीय पूजीवादी उद्यम का विकास

भारत म बडे पूजीवादी उद्यमो (फैक्टरियो रेलवे, बागानो) के आविर्भाव ने भारत के राष्ट्रीय पूजीवाद क विकास को प्रोत्साहित किया। अब

---

* व्ला० इ० लेनिन साम्राज्यवाद, पूजीवाद की चरम अवस्था' सकलित रचनाए, भाग २ मास्को, १९७४, म पृ० १३९।

** का० मार्क्स, न० फ० डेनियलसन को पत्र १९ फरवरी १८८१, का० मार्क्स, फ्रे० एगेल्स, उपनिवेशवाद के बारे म' पुस्तक म मास्को १९७८, पृ० ३९१।

व्यापारियो और महाजना के लिए जो व्यापक क्षेत्र खुल गया था उसने दग म द्रव्य पूजी के सचय को बढावा दिया। विचौलिय अथवा दलाल का काम करनेवाल भारतीय व्यापारियो न काफी धन जमा कर लिया।

इसी अवधि म श्रम बाजार भी रूप लेन लगा था। बरबाद दस्तकारा और कगाल किसानो न बागानो निमाण-कार्य और पहली फैक्टरिया तथा सूती मिलो के लिए मजदूर वग के पहले जत्थे प्रदान किये।

इसका मतलब यह था कि उन्नीसवी शताब्दी क उत्तरार्द्ध म पूजीवादी उत्पादन प्रणाली के विकास के लिए दा मुख्य परिस्थितिया पूरी हो चुकी थी उत्पादन क साधनो स रहित मजदूर प्रकट हा चुके थे और पूजी का प्राथमिक सचय (भारतीय व्यापारियो और दलाला द्वारा सचय) हा चुका था।

भारत मे पूजीवाद का विकास दो मामानातर मार्गो पर हुआ। भूतपूर्व दस्तकारो की शिल्पशालाओ के आधार पर पूजीवादी विनिर्माणशालाए (मैन्यूफेक्चरिया) विकसित हाने लगी और य शोषण क चरम रूपा (पूजीवादी विधियो के साथ महाजना की जकड और नीची जातियो पर ऊची जातिया क अत्याचार) के सहारे और सस्ते आयातित अथवा स्थानीय रूप से उत्पादित अध-तैयार मालो का इस्तेमाल करक बडी फैक्टरिया की प्रतियोगिता को झेल सकती थी। मिलो मे उत्पादित सूत के आधार पर विनिर्माणशालाओ के ढाचे के भीतर हाथ बुनाई का फिर स उत्कर्ष हुआ। भारत क विभिन्न भागा विशेष रूप स महाराष्ट मद्रास और उत्तर पश्चिमी प्रात म विशेषीकृत कुटीर उद्योगो के बड-बड कन्द्र कायम किय गय। १८६१ की जनगणना के अनुसार कुटीर उद्योगो मे ४५० लाख लाग (अपने परिवारो सहित) लग हुए थ। उन्नीसवी शताब्दी के अतिम दशक के अत मे लघु पैमान क इन उद्योगा न फैक्टरियो की तुलना म ढाईगुने अधिक सूत का इस्तेमाल किया।

दस्तकार और विनिर्माणशालाओ के मालिक तथा मजदूर उपनिवेशवादिया के जुए को खासकर तीक्ष्ण रूप स महसूस करते थ। उन्ह समान माला का उत्पादन करनवाले ब्रिटिश उद्यमा की प्रतियोगिता भारी कराधान और औपनिवेशिक प्रशासन क निर्मम व्यवहार का झेलना करना पडता था।

किसाना के बाद भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आदालन की सबस बडी शक्ति शहरी और ग्रामीण दस्तकार शिल्पशालाओ और विनिमाणशालाओ क मजदूर छोट मालिक और व्यापारी थ।

इन उद्यमा क अलावा, जिनम काम हाथ स हाता था उन्नीसवी शताब्दी क मध्य म दश की पहली बडी फैक्टरिया की भी स्थापना शुरू हो गयी।

माला के तीव्रीकृत नियात) से भारत के प्रति यह नया रुख एक एतिहासिक अनिवार्यता थी। जैसा कि लेनिन ने कहा है, " साम्राज्यवाद की दो महत्वपूर्ण लाक्षणिक विशेषताए ग्रेट ब्रिटेन मे उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे ही दिखायी पडने लगी थी अर्थात विस्तृत औपनिवेशिक कब्जदारिया और विश्व बाजार मे इजारेदाराना स्थिति। *

ब्रिटिश साम्राज्यवादी ओपनिवेशिक शोषण की सभी विधिया – कराधान, तैयार मालो का आयात कच्चे मालो का नियात – का इस्तेमाल करते हुए इस गुलाम देश से विशाल औपनिवेशिक "खिराज" निचोड रहे थे जिसका कुल मूल्य लगभग दस करोड पौड सालाना के बराबर था। १८८१ मे मार्क्स ने भारत मे विद्यमान स्थिति पर निम्नलिखित टिप्पणी की, "हर साल अग्रेज भारतीयो से लगानो रेलो के लाभाश, – जिन रेलो से भारतीयो को कोई लाभ नही पहुचता – सेनिक तथा असैनिक कर्मचारियो की पेशना, अफगानिस्तान की लडाई तथा अन्य लडाइयो के खर्चो इत्यादि के रूप मे भारी रकम वसूल करते है। इन रकमो के **बदले मे भारतीयो को कुछ भी नहीं मिलता।** ये रकमे उन रकमो से अलग है जिनसे अग्रेज भारत के अन्दर हर साल अपनी जेब भरते है। इस सबध मे पहले प्रकार की रकमो के मूल्य का ही – अर्थात **केवल उस सामान के मूल्य** का, जो भारतीयो को हर साल इगलैण्ड मे **भेंट स्वरूप** भेजना पडता है – उल्लेख कर देना काफी होगा। कुल मिलाकर यह **धन खेतीबारी और उद्योगो मे काम करनेवाले ६ करोड भारतीयो की कुल आय से अधिक है।** यह तो खून निचोडनेवाली बात है! यह तो हृदय विदारक बात है! भारत मे एक के बाद एक दुर्भिक्ष फूट रहे है, और उनके विस्तार के बारे मे यूरोपवाले अभी तक अनुमान तक नही लगा सकते।"**

भारतीय पूजीवादी उद्यम का विकास

भारत मे बडे पूजीवादी उद्यमो (फैक्टरिया, रेलवे बागाना) के आविर्भाव ने भारत के राष्ट्रीय पूजीवाद के विकास को प्रोत्साहित किया। अब

* व्ला० इ० लेनिन, साम्राज्यवाद, पूजीवाद की चरम अवस्था सकलित रचनाए भाग २, मास्को, १९७४, मे पृ० १३९।

** का० मार्क्स न० फ० डेनियलसन को पत्र १९ फरवरी, १८८१, का० मार्क्स, फ्रे० एगेल्स 'उपनिवेशवाद के बारे मे' पुस्तक मे मास्को १९७८ पृ० ३९१।

व्यापारियो और महाजना के निए जो व्यापक क्षेत्र खुल गया था उसने देश मे द्रव्य पूजी के सचय को बढावा दिया। बिचौलिये अथवा दलाल का काम करनेवाले भारतीय व्यापारियो ने काफी धन जमा कर लिया।

इसी अवधि मे श्रम बाजार भी रूप लेने लगा था। बरबाद दस्तकारो और कगाल किसानो ने बागानो निर्माण कार्य और पहली फैक्टरियो तथा सूती मिलो के लिए मजदूर वर्ग के पहले जत्थे प्रदान किये।

इसका मतलब यह था कि उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे पूजीवादी उत्पादन प्रणाली के विकास के लिए दो मुख्य परिस्थितिया पूरी हो चुकी थी उत्पादन के साधनो से रहित मजदूर प्रकट हो चुके थे और पूजी का प्राथमिक सचय (भारतीय व्यापारियो और दलालो द्वारा सचय) हो चुका था।

भारत मे पूजीवाद का विकास दो समानातर मार्गों पर हुआ। भूतपूर्व दस्तकारो की शिल्पशालाओ के आधार पर पूजीवादी विनिर्माणशालाए (मैन्यूफैक्चरिया) विकसित होने लगी और ये शोषण के चरम रूपो (पूजीवादी विधियो के साथ महाजनो की जकड और नीची जातियो पर ऊची जातियो के अत्याचार) के सहारे और सस्ते आयातित अथवा स्थानीय रूप से उत्पादित अध-तैयार मालो का इस्तेमाल करके बडी फैक्टरियो की प्रतियोगिता को झेल सकती थी। मिलो मे उत्पादित सूत के आधार पर विनिर्माणशालाओ के ढाचे के भीतर हाथ-बुनाई का फिर से उत्कर्ष हुआ। भारत के विभिन्न भागो विशेष रूप से महाराष्ट्र, मद्रास और उत्तर पश्चिमी प्रात मे विशेषीकृत कुटीर उद्योगो के बडे बडे केन्द्र कायम किये गये। १८६१ की जनगणना के अनुसार कुटीर उद्योगो मे ४५० लाख लोग (अपने परिवारो सहित) लगे हुए थे। उन्नीसवी शताब्दी के अतिम दशक के अत मे लघु पैमाने के इन उद्योगो ने फैक्टरियो की तुलना मे ढाईगुने अधिक सूत का इस्तेमाल किया।

दस्तकार और विनिर्माणशालाओ के मालिक तथा मजदूर उपनिवेशवादियो के जुए को खासकर तीक्ष्ण रूप से महसूस करते थे। उन्हे समान मालो का उत्पादन करनेवाले ब्रिटिश उद्यमो की प्रतियोगिता भारी कराधान और औपनिवेशिक प्रशासन के निर्मम व्यवहार को झेलना करना पडता था।

किसानो के बाद भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन की सबसे बडी शक्ति शहरी और ग्रामीण दस्तकार, शिल्पशालाओ और विनिर्माणशालाओ के मजदूर छोटे मालिक और व्यापारी थे।

इन उद्यमो के अलावा, जिनमे काम हाथ से होता था उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे देश की पहली बडी फैक्टरियो की भी स्थापना शुरू हो गयी।

बम्बई भारत म बड पैमान क उद्योग का प्रमुख केन्द्र बन गया। अपनी व्यापारिक गतिविधियो क कारण बम्बई के व्यापारियो और दलाला के लिए खासी वडी पूजी जमा करना सभव हो गया था (अधिकाशतया ये लाग पारसी तथा मारवाडी थे)। वे बड पैमान पर कारबार करत थे और अफीम व्यापार म बिचौलियो क रूप म भाग लेन की वजह स व केवल चीनी बाजारा स ही नही बल्कि समग्र रूप म सुदूर पूव के बाजारो से भी भली भाति परिचित थ। उन्नीसवी शताब्दी क पाचव छठे और सातव दशको क दौरान बम्बई क वडे व्यापारिक गृहा क ब्रिटेन म अपने प्रतिनिधि थे और इस तरह वे बड पैमान क उद्योग के विकास की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त कर सकते थे।

इस परिस्थिति म बम्बई क व्यापारिया न सूती मिलो का निमाण करना शुरू किया जो बीसवी शताब्दी के प्रारभ तक मुख्यतया चीन और अन्य सुदूर पूर्वी बाजारा क लिए सूत का उत्पादन करती थी।

१८५४ म बम्बइ मे पहली सूती मिल और १८६१ म अहमदाबाद म, जा देश म दूसरा सबसे महत्वपूर्ण सूती कन्द्र बननेवाला था दूसरी सूती मिल खुली।

उन्नीसवी शताब्दी के अतिम तीन दशको म बम्बई और कानपुर म ब्रिटिश पूजीपतियो की सूती मिल भी खुली। लेकिन कलकत्ता और इसके आसपास के इलाका म सकेद्रित जूट मिले ब्रिटिश पूजी का ही गढ बनी रही। कृपिजन्य कच्चे मालो के प्रारभिक ससाधन मे लगे अनेक उद्यमो पर भी ब्रिटिश पूजी का ही स्वामित्व था।

उन्नीसवी शताब्दी के अत म फैक्टरियो और बागाना मे वडे पैमान के उत्पादन म दो तिहाई शायर ब्रिटिश हाथो म थ जब कि मात्र एक तिहाई भारतीयो के हाथो मे थे। यह भारत म वडे पैमान क पूजीवादी उद्यम म ब्रिटिश प्रभुत्व को प्रदर्शित कर दता हे।

नये वर्गो की उत्पत्ति और राष्ट्रीय अतर्विरोधो की वृद्धि

पूजीवाद के विकास ने मजदूर वर्ग के उभार का माग प्रशस्त किया। वड पैमान क उद्योग के असमान विकास क फलस्वरूप देश के सर्वाधिक विकसित प्राता बम्बई और बगाल म इसका सकन्द्रण हो गया। उन्नीसवी शताब्दी क अत म वडे पैमान की फैक्टरिया रलवे और खानो म लग मजदूरा

की कुल सख्या आठ लाख थी। इनम स अधिकाश मजदूर सूती उद्योग क थ।

भारतीय मजदूरा की रहन और काम करन की परिस्थितिया भयकर थी। फैक्टरी मजदूरो की मजदूरी इतनी कम थी कि मजदूर क लिए आम तौर पर अपन परिवार का भरण-पोषण करने क लिए अपर्याप्त होती थी। इसम यह स्पष्ट हो जाता है कि क्या बड पैमान क उद्योग क प्रारभिक दशका म अधिकाश मजदूर गावो स आये थे जो या तो छोटी काश्त क स्वामी या पट्टेदार थे। इसम यह भी स्पष्ट हो जाता है कि क्या फैक्टरियो और खाना म स्त्रिया और बच्चा क श्रम का व्यापक इस्तेमाल किया जाता था।

पूजीवादी शोषण के अलावा मजदूर विभिन्न गैर आर्थिक मजबूरियो तथा ऋणदासत्व के भी शिकार थे।

उन्नीसवी शताब्दी क अतिम तीन दशको म भारतीय फैक्टरियो म काय सप्ताह ब्रिटिश फैक्टरियो म ५६ घटे क मुकाबल ८० घटे का था। काय दिवस १६ घटे का था यह सामान्यतया सूर्योदय क पद्रह मिनट पहले आरभ होता था और सूर्यास्त क पद्रह मिनट बाद समाप्त होता था क्योकि खानो मे बिजली की रोशनी की व्यवस्था नही थी।

भारतीय मजदूरा क शोषण का यह चरम रूप इस सुनिश्चित करने का मुख्य कारक था कि भारतीय फैक्टरी मालिक बाजार म जम रह सके जहा उन्ह ब्रिटिश उद्योगपतियो की प्रतियोगिता का सामना करना पडता था।

सूती मिलो के ब्रिटिश मालिको न जो उत्पादन लागतो का बढाकर भारतीय उद्योगपतियो से और भी आगे निकल जान क आकाक्षी थे ब्रिटिश ससद म अपन प्रतिनिधिया के जरिये भारत म फैक्टरी कानून लागू करने की माग उठाना शुरू की। लकिन इस कदम का केवल भारतीय फैक्टरी मालिका ही नही बल्कि बडे पैमान की भारतीय फैक्टरियो क कुछ ब्रिटिश मालिका न भी विरोध किया। सबद्ध कानून क बनन स भी उस भीषण शोषण की मात्रा म तत्वत लशमात्र भी कमी नही हुई जिसका मजदूर वग शिकार था। १८८१ और १८९१ के कानूनो ने बाल श्रम के लिए न्यूनतम आयु पहले सात साल और फिर नौ साल निधारित की। बच्चो और किशोरो क कार्य दिवस को भी सीमित किया गया। स्वय यह कानून जिस बहुत अपर्याप्त ढग से लागू किया जाता था, भारतीय मजदूर वर्ग की भयकर स्थिति का प्रकट करता है।

ब्रिटिश पूजीपति वग भारत क विकासमान राष्ट्रीय उद्योग मे अपन विभिन्न एकाधिकारो के बल पर उपकरणो और माला को बहुत ऊचे दामा

पर उपलब्ध करके भारी "खिराज" वसूल करता था। इजीनियरो और तकनीशियनो के लिए ब्रिटेन मे दिये जानेवाले वेतनो से कही ऊचे वेतनो की माग की जाती थी। इन अतिरिक्त व्ययो को पूरा करने का साधन भारतीय मजदूर वर्ग का और अधिक शोषण ही था, जो इस तरह भारतीय और ब्रिटिश पूजीपति वर्गो के दोहरे जुए का शिकार था।

ब्रिटिश पूजीपति वर्ग ने भारत मे अपने राजनीतिक प्रभुत्व का इस्तेमाल करते हुए जहा भी सभव हुआ भारत के स्वतत्र आर्थिक विकास को रोका। १८७६ मे लकाशायर के मिल मालिक भारत मे आयातित सूती वस्त्रो पर से शुल्क उठवाने मे सफल हो गये जिसका मतलब यह था कि नवस्थापित भारतीय सूती उद्योग दुनिया मे सबसे शक्तिशाली ब्रिटेन के सूती उद्योग से टक्कर लेने की स्थिति मे नही रहा। १८८२ मे भारत मे आयातित अन्य ब्रिटिश वस्तुओ पर से भी महसूल उठा लिये गये। १८९४ मे आयातित वस्त्रो पर वित्तीय कारणो से ये प्रशुल्क पुन लागू कर दिये गये, लेकिन साथ ही भारतीय वस्त्रो पर उत्पादन शुल्क भी लगा दिया गया।

एक दूसरी भारी बाधा सगठित पूजीवादी ऋण सुविधाओ का अभाव थी। भारत मे ब्रिटिश बैक केवल औपनिवेशिक तत्र ब्रिटिश व्यापारिक गृहो और औद्योगिक उद्यमो को ही ऋण प्रदान करते थे और वे अधिकाशतया विदेश व्यापार कार्यो से ही सबध रखते थे। इस परिस्थिति मे भारतीय मिल मालिको ने अपने को तथाकथित मैनेजिग एजेसियो पर निर्भर पाया, जो बडी ब्रिटिश इजारेदारियो की शाखाए होती थी। ये एजेसिया आवश्यक ऋण और औद्योगिक उपकरणो की आपूर्ति तो करती थी, लेकिन जब फैक्टरी चालू हो जाती थी तो वे कच्चे मालो की आपूर्ति तथा तैयार मालो के लिए बाजारो को सुनिश्चित करके अक्सर उसका सचालन अपने हाथो मे ले लेती थी। इन मैनेजिग एजेसियो के हित मे भारतीय मिल मालिको के मुनाफो से बडी रकम काट ली जाती थी।

इस तथ्य ने कि कृषि मे सामती पद्धतिया अब भी प्रबल थी और गावो तथा लघु औद्योगिक उत्पादन पर व्यापारी और सूदखोर पूजी हावी थी, देश के पूजीवादी विकास के अवसरो को बहुत सीमित कर दिया था।

एक वर्ग के रूप मे अपनी उत्पत्ति की प्रारभिक अवस्थाओ से ही उदीयमान भारतीय पूजीपति वर्ग को साम्राज्यवादी शासन के आर्थिक तथा राजनीतिक जुए को झेलना पडा। लेकिन सामती शोषण, और वह भी व्यापारियो और महाजनो के हाथो के साथ यह उत्पीडन सबसे अधिक लघुस्तरीय जिस उत्पादन

क भत्र यानी कृषि और शिल्प उद्योग म महसूस किया जाता था।

उपनिवेशवादियो सामतो व्यापारियो और महाजनो द्वारा शोषण क परिणामस्वरूप किसानो दस्तकारो और मज़दूरो का निर्धनीकरण होता गया और इस निधनता क साथ साथ सूखाग्रस्त वर्षों क दौरान व्यापक अकाल भी पडते रह। १८२५ और १८५० क बीच भारत म दो बार अकाल पडा और उसम चार लाख लोगो की जान गयी १८५० और १८७५ क बीच छ बार अकाल पडा जब कि १८७५ और १९०० क बीच १८ बार अकाल पडा। इन अकालो म मृतको की सख्या बढत हुए पहल ५० लाख और फिर २६० लाख तक पहुच गयी।

औपनिवेशिक शोषण क तीव्रीकरण तथा इसक साथ ही सामतो और महाजनो द्वारा उत्पीडन क और बढन तथा पूजीवाद क विकास क भी जो पूजीवादी समाज क विभिन्न वर्गो को जन्म द रहा था परिणामस्वरूप देश क भीतर और भारतीय समाज क विभिन्न वर्गो तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादियो क बीच वर्ग अतर्विरोध अधिकाधिक गहर होत गय।

पूजीवादी क्षत्र किसानी खतो और अर्द्ध वस्तु विनिमय क आधार पर सचालित तथा पूर्व-पूजीवादी ढाच क दस्तकार उद्यमो क समुद्र म एक द्वीप की तरह था। इस कारक न इस औपनिवेशिक सामती समाज की सामाजिक और वर्ग सरचना की विशेषताओ को निरूपित किया और यह विभिन्न वर्गो क सघर्ष की अतर्वस्तु और रूपो म अभिव्यक्त हुआ।

उन्नीसवी शताब्दी के सातवे और अतिम दशको के बीच भारतीय जनता का राष्ट्रीय मुक्ति-सघर्ष

भारतीय समाज म आतरिक और बाह्य अतर्विरोधो का सबसे जीता-जागता उदाहरण उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध म आम जनता—किसानो और दस्तकारो—की जागृति थी।

बगाल मे किसान आदोलन

इस असतोष का पहला बडा विस्फोट जिसम ग्रामीण आबादी भी शामिल थी १८५९–१८६२ के वर्षो मे पूर्व बगाल का प्रसिद्ध नील विद्रोह था।

नील का उत्पादन करनेवाले लघु उद्यमो के ब्रिटिश मालिक ज़मीदार से अनेक वर्षो की अवधि के लिए रैयतो से लगान वसूल करने का अधिकार खरीद लेते थे और उन्हे नील की खेती करने के लिए विवश करते थे। किसानो को अपनी सारी फसल इन "बागान मालिको" को ऊपर से ज़बरदस्ती थापी गयी कीमतो पर बेचनी पडती थी। धीरे-धीरे रैयत अपनी बढती ऋणग्रस्तता के कारण ब्रिटिश बागान-मालिको के मुहताज हो गये, जिन्होने गावो मे नादिरशाही चला रखी थी।

जबरी ठेका प्रणाली के खिलाफ निर्दिष्ट किसान-आदोलन ने नील की खेती करने तथा बागान-मालिको को पुराने कर्ज अदा करने से इन्कार का रूप ग्रहण किया। विद्रोह, जो अनेक गावो मे स्वतःस्फूर्त ढग से शुरू हुआ था, तेज़ी से बगाल के पाच जिलो मे फैल गया। बागान-मालिको द्वारा रैयतो की हडताल को बल प्रयोग से दबाने के प्रयासो का दृढ प्रतिरोध हुआ और उनके परिणामस्वरूप स्वय बागान मालिको की भूसपत्तियो पर हमले होने लगे।

आदोलन की व्यापकता ने औपनिवेशिक प्रशासन को इतना भयभीत कर दिया कि इन घटनाओ की जाच करने के लिए स्थापित समिति ने जबरी ठेका प्रणाली समाप्त करने की माग की।

आदोलनग्रस्त गावो मे फौजी पुलिस की दडात्मक टुकडियो के भेजे जाने के बावजूद सघर्ष लगभग तीन साल तक चलता रहा। परिणामस्वरूप रैयतो – मौरूसी काश्तकारो – ने बडी जीत हासिल की जबरी ठेका प्रणाली समाप्त कर दी गयी। अनेक बागान-मालिको ने हडतालग्रस्त ज़िलो मे अपना कारबार बद कर दिया।

इस आदोलन के दौरान एक किसान-सगठन – रैयत सभा – का बीजवपन हुआ। बगाली किसानो के आगामी बडे विद्रोह (१८७२–१८७३) के दौरान रैयत सभा ने अधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

जहा 'नील विद्रोह" ब्रिटिश उद्यमकर्ताओ के खिलाफ निर्दिष्ट था, वहा बगाल के पबना और बोगडा ज़िलो मे किसान-विद्रोह स्वरूप मे सामतवादविरोधी था। विद्रोह का सीधा कारण १८७१ मे कलकत्ता उच्च न्यायालय के १८५६ के बगाल काश्तकारी कानून की कुछ धाराओ का ज़मीदारो के पक्ष मे निर्णय देने के परिणामस्वरूप ज़मीदारो द्वारा लगान दरो मे अधाधुध वृद्धि करना था।

किसानो ने जमीदारो की कोठियो को लूट लिया और लगान के इकरारनामो तथा रसीदो को नष्ट कर दिया। आदोलन का नेतृत्व ऐसे सगठनो ने

किया, जो अपने को विद्रोही संघ कहते थे। पवना और बोगडा में किसान-आंदोलन के परिणामस्वरूप, जिसे उपनिवेशवादियों ने निर्ममतापूर्वक कुचला बंगाल में काश्तकारी संबंधों के विनियमन के लिए एक नया कानून बनाया गया, जिसने रक्षित काश्तकारों के प्रवर्ग को कुछ विस्तारित किया।

उत्तरी और उत्तर पश्चिमी भारत में जन अशांति

सामंतविरोधी और उपनिवेशवाद विरोधी किसान विद्रोहों के अलावा जनव्यापी विरोध ने अपने को पारंपरिक धार्मिक और सांप्रदायिक आंदोलनों में भी अभिव्यक्त किया। न केवल अर्थतंत्र पर सामंती प्रथाओं का प्रभुत्व बना हुआ था, बल्कि अधिकांश आबादी के मस्तिष्कों पर सामंती सिद्धांत और रुख अब भी हावी थे। इसके कारण सामंतों और विदेशी उत्पीडकों के खिलाफ संघर्ष अक्सर "सच्चे धर्म" की रक्षा के संघर्ष में अभिव्यक्त होता था। १८५७–१८५९ के विद्रोह की पराजय के बावजूद अंग्रेज़ वहाबी आंदोलन को पूरी तरह से नहीं कुचल पाये, जिसके अनुयायियों ने विद्रोह का नेतृत्व करने में प्रमुख भूमिका अदा की थी। सातवें दशक के प्रारंभ में वहाबियों ने पटना (बिहार प्रांत) में फिर अपना गुप्त संगठन कायम कर लिया और उपनिवेशवादियों के खिलाफ नयी हथियारबंद कारवाई की जोर शोर से तैयारियां करना शुरू कर दिया। इस संगठन में किसान और दस्तकार ही नहीं शामिल थे, बल्कि इसके नेताओं में छोटे अफसर, व्यापारी और बुद्धिजीवी वर्ग के सदस्य भी थे।

पठान कबायली क्षेत्र में अवस्थित सितना में एक विशाल फौजी शिविर था, जिसे वहाबियों ने पहले से ही कायम कर रखा था और जहां अब स्वयंसेवकों ने एकत्रित होना तथा गुप्त रूप से हथियार और रसद जमा करना शुरू कर दिया। इस सम्प्रदाय के नेताओं के विचार में सितना को काफिरों, यानी अंग्रेज़ों के खिलाफ जिहाद का गढ़ बन जाना था।

१८६३ में अंग्रेज़ों ने सितना में विद्रोहियों के खिलाफ एक पूरी फौजी कोर भेजी और अनेक जानें गंवाकर वहाबियों का समर्थन करनेवाले पठान कबीलों को छिन्न भिन्न करने के बाद जाकर ही अंग्रेज़ विद्रोह के इस केन्द्र को कुचल सके। १८६४ में पटना और दिल्ली में वहाबी गढ़ों को नष्ट कर दिया गया और इसके बाद इस आंदोलन में धीरे धीरे उतार आने लगा।

पजाव मे उन्नीसवी शताब्दी के सातव और नौवे दशको के दौरान सामत वादविरोधी और उपनिवेशवादविरोधी सघर्ष अधिकाधिक जोर पकडता गया, जिसकी अभिव्यक्ति उन्नीसवी शताब्दी के प्रारभ म स्थापित नामधारी सिख सम्प्रदाय की सरगरमिया मे हुई।

नामधारी सम्प्रदाय न १८४६ म एक बढई के पुत्र रामसिह द्वारा नतृत्व ग्रहण किये जान के बाद अपना सघर्ष तेज कर दिया। १८६३ म रामसिह ने नामधारी शिक्षा की अपनी व्याख्या का प्रचार करना आरभ किया जिसम उसने अपन अनुयायियो को ब्रिटिश वस्तुओ का इस्तेमाल न करन और औपनिवेशिक प्रशासन की सस्थाओ मे सेवा न करने का आदेश दिया। रामसिह ने जो फौज म रह चुका था, सम्प्रदाय की सागठनिक सरचना म सुधार किया और जिलो तहसीलो और गावो मे सुनिश्चित फौजी ढग का सगठन कायम किया। सम्प्रदाय न औपनिवेशिक सेना म काम करनेवाले सिखो म सपर्क कायम किये। नामधारी जिनकी सख्या तेजी से बढत हुए अब लगभग ५० हजार हो गयी थी और जो सुसगठित तथा रामसिह के प्रति पूर्ण निष्ठावान थ विशेष रूप से इस वजह से एक खतरनाक शक्ति थे कि उन्हे सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त था। इसी वजह से सम्प्रदाय पर सख्त पुलिस निगरानी लगी हुई थी।

उन्नीसवी शताब्दी के सातव दशक क उत्तरार्द्ध म सम्प्रदाय ने अपनी कार्रवाइया सिख सामतो के खिलाफ सकेद्रित की, जिन्होने मदिरो की जमीनो को हथिया लिया था जो पहले सपूर्ण सिख समुदाय की थी। लेकिन अग्रेजो न स्थानीय सिख सामतो के समर्थन से नामधारियो के अनेक खुल आक्रमणो को कुचल दिया।

सातवे दशक के अत और आठवे दशक के प्रारभ मे सम्प्रदाय के कार्य कलापो न सकीर्णतर धार्मिक तथा साम्प्रदायिक स्वरूप ग्रहण कर लिया। रामसिह न इसका सख्त विरोध किया, क्योकि उसने यह समझ लिया था कि अग्रेज इसका लाभ उठाकर सिख मुस्लिम सघर्ष भडकायगे और इस प्रकार इसे आदोलन को कुचलने का बहाना बना लेगे।

लेकिन सम्प्रदाय के भीतर एक मजबूत विरोधी गुट उभरने लगा, जिसन रामसिह के विरोध के बावजूद जनवरी, १८७२ के मध्य म पजाब के मलेर कोटला नामक छोटे राज्य क शासक पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

मलेर कोटला के माग मे सौ स अधिक नामधारियो ने मलोत क किले पर हमला कर दिया, जो एक सिख सामत का आवास था। जिसन पहले

सम्प्रदाय का कुचलन मे अग्रेजो की सक्रिय सहायता की थी। आक्रमणकारिया को विश्वास था कि वे अपन को किले मे मिलनवाले हथियारो स लैस कर लेगे। लेकिन मलोत और मलेर कोटला को सर करने के उनके प्रयास विफल रहे। पडोसी सिख रियासतो से भेजी गयी टुकडियो न नामधारियो को तितर-बितर कर दिया। गद्दार राजाओ न जन आदोलन को कुचलन म फिर अपन को अग्रेजा के वफादार समर्थक सिद्ध किया।

अग्रेजो के आदेश पर बदी बनाये गये नामधारियो को बिना मुकदमा चलाये तोपो से उडा दिया गया। दमन क इस बर्बर कृत्य को महान रूसी चित्रकार वेरेश्चागिन ने जिन्होने १८७५ म भारत की यात्रा की थी एक कैनवास पर चित्रित किया।

१८७२ की इस असफल कार्रवाई के बाद नामधारी सम्प्रदाय को बर्बर प्रतिशोध का शिकार बनाया गया। रामसिह सहित उसके नेताओ को बर्मा मे निर्वासित कर दिया गया।

इन घटनाओ के कुछ समय बाद पश्चिमी और दक्षिणी भारत म जन-आदोलन की एक नयी लहर शुरू हो गयी।

महाराष्ट्र मे किसान आदोलन। वसुदेव बलवत फडके के नेतृत्व मे विद्रोह

महाराष्ट्र एक ऐसा प्रदेश था जहा किसाना को अपनी जमीना से वचित किया जा रहा था और ये जमीने बडी तेजी के साथ महाजनो के कब्जे मे जा रही थी। इसका कारण यह था कि उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध विशेष रूप से सातवे दशक मे, रूई की गरमबाजारी के दौरान पश्चिमी और मध्य भारत मे कृषि को वाणिज्यिक निर्यात फसला के उत्पादन के लिए तेजी स पुनर्सगठित किया गया था जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रा मे माल मुद्रा सबधो का विकास हुआ तथा व्यापारिया और महाजना की पूजी को वहा अधिक सक्रिय भूमिका प्राप्त हो गयी।

इस प्रकार महाराष्ट्र मे किसान आदोलन ने महाजना के खिलाफ विरोध का रूप ग्रहण किया। किसान उनकी बहियो को छीनकर नष्ट कर देते थे तथा प्रतिरोध करने पर वे महाजनो को गावो म खदेड देते थे और उनके घरो को जला देते थे। देश के इस भाग म किसान-आदोलन सशस्त्र सघर्ष म

परिणत हो गया। १८७३–१८७५ मे महाराष्ट्र के सभी ज़िलो म सशस्त्र किसान दल सक्रिय थे, जिनम सबसे बडा किसान नेता कगलिया के नतृत्व म था। किसान उसे 'कजदारो का मित्र" कहते थ। १८७६ मे ब्रिटिश दडात्मक टुकडियो क कगलिया को पकडन और विद्रोही किसानो के मुख्य दस्ता का नष्ट करने के बाद आदोलन का जोर कुछ समय के लिए ठडा पड गया। लेकिन १८७८–१८७९ मे बम्बई प्रात म सशस्त्र किसानो के नये दल पैदा हो गये मुख्यतया रामोशी जाति के सशस्त्र किसानो के, जो सामान्यतया जमीदारो और महाजनो के ऋण बधन म थ। प्रभावी किसान जातियो के धनी किसानो न भी इस आदोलन मे भाग लिया।

१८७६–१८७८ मे बम्बई प्रात मे भयकर अकाल पडा था। इसके बावजूद अग्रेज़ो न नमक-कर को बढा दिया और १८७८ मे भारतीय उद्यमकर्ताओ और व्यापारियो पर पैटेट शुल्क नामक एक और कर थोप दिया। इन कार्रवाइयो ने आबादी के व्यापक सम्तरो के बीच ब्रिटिशविरोधी भावना भडकाने म सहायता की। अनक स्थानो मे विरोध सभाए और प्रदर्शन हुए। १८७८ मे व्यापारियो और दस्तकारो के अग्रेजो के खिलाफ खडे हो जाने के साथ यह आदोलन अपन चरम पर पहुच गया।

१८७०–१८८० की अवधि मे महाराष्ट म किसानो, दस्तकारो और व्यापारियो के आदोलन न जो सशस्त्र सघर्ष मे परिणत हो गया था, वसुदेव बलवत फडके (१८४५–१८८३) के नेतृत्व म वीरतापूर्ण विद्रोह का मार्ग प्रशस्त किया।

फडके का जन्म एक गरीब परिवार म हुआ था जो कभी मराठा पेशवाओ की सेवा म रहा था। वह सुशिक्षित था और सस्कृत तथा अग्रेज़ी म भी पारगत था। पूना म एक प्रशासकीय विभाग म एक छोटे कर्मचारी क रूप म काम करते हुए फडक न भारतीय निम्न-पूजीवादी बुद्धिजीवियो के साथ किय जानवाले अपमानपूर्ण व्यवहार का प्रत्यक्ष अनुभव किया था। जिज्ञासु बुद्धि से सपन्न और प्रगाढ देशभक्तिपूण भावना से ओत प्रोत फडक शीघ्र ही अपन देश के विदशी उत्पीडको के प्रति तीव्र घृणा महसूस करन लगा।

शुरू म वह पूना म मराठा युवजना के बीच अग्रेजो क खिलाफ प्रचार करन लगा और फिर उसने अपनी दीर्घकालीन योजना क क्रियान्वयन की तैयारी अर्थात ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार का तख्ता उलटन क लिए सशस्त्र विद्रोह की तैयारी करना शुरू कर दी। १८७९ के वसत म विद्रोही किसानो क नता हरि नायक स सपर्क स्थापित करन क बाद उसन एक सशस्त्र

दल खडा कर लिया। गुरू म उसकी कारवाइया स्थानीय महाजना और सामता क खिलाफ निदिप्ट थी जिनकी बहुमूल्य वस्तुआ को वह छीन लता था। उसकी योजना इस तरह जमा की गयी रकम स पेशवर सैनिक भरती करक एक बडा सैन्य दल बनान की थी जा औपनिवशिक प्रशासन के केन्द्रा पर आक्रमण करता महत्वपूण सचार साधना और परिवहन मार्गो को काट दता और इस तरह सपूण महाराष्ट्र म विद्राह का सकत दता जो फिर सारे बाकी दश म फैल जाता।

इन याजनाओ म फडक न महाराष्ट्र क किसाना के समर्थन पर भरोसा किया था और वस्तुत उनक सक्रिय समर्थन से उसन १८७९ के वसत और गरमी म साहसपूण छाप मार थ और बड पैमान पर सपत्ति की जब्तिया भी की थी। किंतु अपन कमजोर फौजी सगठन तथा आदालन को कुचलन के लिए भजी गयी दडात्मक टुकडिया की भारी सख्यात्मक श्रेष्ठता क कारण गरमी क मध्य तक उसक मुख्य दला का कुचल दिया गया। स्वय फडके को बदी बनाकर पूना म ब्रिटिश अदालत म उस पर मुकदमा चलाया गया और उस आजीवन कठोर श्रम कारावास की सज़ा दी गयी।

उन जिला म जहा उसका दल सक्रिय था फडक ब्रिटिश अधिकारियो क नाम पर्चे वितरित करता था जिनम वह अपन कार्यक्रम क मुख्य मुद्दो – कम कर, सावजनिक कार्यो का सगठन तथा ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियो की मोटी तनख्वाह म कटौती – का पेश करता था। फडके ने धमकी की कि यदि उसका कायक्रम नही स्वीकार किया गया तो वह सपूर्ण महाराष्ट्र म विद्राह शुरू कर दगा। फडके की डायरियो से यह स्पष्ट है कि उसने अपने कायक्रम म भारतीय स्वामित्व म उद्योग और वाणिज्य क विकास की तरफ काफी ध्यान दिया था। उसक राजनीतिक विचार सारसग्रहवादी – जनतत्रवादी और राजतत्रवादी आदर्शो का पचमेल – थे।

फिर भी उसकी विचारधारा और व्यावहारिक सरगरमिया औपनिवेशिक शासन क प्रति घार घृणा सशस्त्र सघष द्वारा राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करन के दृढ निश्चय स परिपूर्ण थी।

फडके का आदोलन ऐसे प्रथम जन आदोलन के नाते उल्लेखनीय है, जिसम राष्ट्रीय मुक्ति सघष और स्थानीय महाजनो के विरुद्ध सघर्ष एकाकार हो गये थे। यह ऐसे सघर्ष का भी पहला उदाहरण था, जिसमे आम जनता निम्न पूजीवादी जनवादिया के उग्र सुधारवादी पक्ष क साथ कधे से कधा मिलाकर चली थी।

रम्पा मे विद्रोह

फडक के आदोलन के साथ ही मद्रास प्रेसिडेसी म गोदावरी नदी क किनार रम्पा क्षेत्र म भी एक वडा किसान-विद्रोह भडक उठा था।

इस विद्रोह की चिनगारी भडकानवाला प्रत्यक्ष कारण, जिसकी प्रेरक शक्ति प्रारभ म रम्पा म वसे पर्वतीय आदिवासी थे, ब्रिटिश अधिकारिया द्वारा करो म वृद्धि करन का निर्णय और इस पूरे इलाके से लगान उगाहनवाल मालगुजार का उत्पीडन था। आदोलन का नेतृत्व छोटे सामती भूस्वामिया तथा ग्राम मुखिया क हाथो मे था। मार्च और जुलाई, १८७९ के वीच सगस्त्र किसानो क जत्था के छिटपुट धावे पूर्ण छापामार युद्ध म परिणत हो गये, जो १८८० क मध्य तक अस्थायी सफलताओ के साथ जारी रहा।

यह विद्राह जिसके दौरान विद्रोहियो के अनेक वडे दस्ते वन गये थ, गोदावरी और विजगापट्टम जिलो क विस्तृत क्षेत्र म फैल गया, जिनकी आबादी २० लाख से अधिक थी। जिन जिलो मे विद्रोही सक्रिय थे, वहा के किसानो न उन्ह काफी सहायता प्रदान की। इस पर्वतीय और वन्य भूभाग द्वारा उपलब्ध सुविधाओ का पूरा पूरा उपयोग करते हुए तथा कुशल छापामार रणनीति का इस्तेमाल करते हुए विद्रोहियो ने अपने को दबाने के लिए भेजी गयी नियमित सेना की सख्यात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ टुकडियो को गभीर नुक्सान पहुचाया। विद्रोही अपने को शत्रु से और पुलिस चौकियो से भी लूटे हथियारो से लैस कर लेते थे।

१८७९ क मध्य तक सपूर्ण रम्पा क्षेत्र और इससे लगे जिले विद्रोहियो क हाथो म आ चुके थे और उन्होने विद्रोह को कुचलने के लिए गोदावरी नदी म फौजो को लेकर भेजे गये दो जहाजो पर कब्जा करने तथा एक जहाज को जलान म भी सफलता प्राप्त कर ली थी।

लेकिन विद्राहियो के पास कोई कार्यक्रम नही था और विद्राह स्वरूप म सवथा स्वतस्फूर्त था। विभिन्न दस्तो के नताओ के वीच काई एकता नही थी, जो विरल अवसरो पर ही समन्वित कार्रवाई कर पाते थ। स्थिति को पचीदा वनानवाला एक और कारक था आदोलन की नानारूप वर्ग सरचना जिसम गरीव स गरीव किसान और छोटे सामत दोनो सम्मिलित थ। जब ब्रिटिश औपनिवशिक अफसरो, पुलिसवालो महाजनो और मालगुजारो को भगा दिया गया और विद्रोह का लक्ष्य लगभग प्राप्त हो गया तो विद्रोही दस्तो क नताओ न अपन को राजा अथवा 'महाराजा घोषित कर दिया।

केवल हथियारो की शक्ति पर ही भरोसा न करते हुए अग्रेजो ने विद्रोह के अलग-अलग नेताओ के बीच फूट, साजिशो ओर रिश्वतो के बल पर भी किस्मत आजमाने का फैसला किया। १८७९ के शरद म विद्रोही दस्तो क एक उत्कृष्ट नायक, अम्मल रेड्डी के साथ गद्दारी करके अग्रेजो के हाथो म दे दिया गया और फिर १८८० म आदोलन के एक असाधारण नेता धाराकोड चद्रैया की उसके एक नौकर ने गद्दारी से हत्या कर दी।

चद्रैया की मृत्यु के बाद विद्रोह का ज्वार धीरे धीर उतरन लगा। छिटपुट दल रम्पा के जगलो म ब्रिटिश दडात्मक टुकडियो से अपनी रक्षा करते रहे। लेकिन अतिम प्रमुख छापामार नेता और चद्रैया के सहयोद्धा तम्मन दोरा की मृत्यु के बाद जुलाई, १८८० मे प्रतिरोध का अत हो गया।

आम जनता के इन बडे आदोलनो के अलावा उन्नीसवी शताब्दी क आठवे दशक और नौव दशक के प्रारभ म मध्य और उत्तर-पूर्वी भारत म आदिवासियो (भीलो, सथालो, गोडो, लुशाइयो कूकाओ नागाओ आदि) के भी विद्रोह हुए। यह सब पडोसी, अपेक्षाकृत अधिक विकसित जातियो के जमीदारो और महाजनो द्वारा उनके दासीकरण तथा उनकी जमीनो के हथियाये जाने के विरोध मे हुआ था। आदोलन के ये उभार स्वरूप मे आम तौर पर खुल्लमखुल्ला उपनिवेशवादविरोधी थे, क्योकि वे स्थानीय औपनिवेशिक प्रशासन के खिलाफ निर्दिष्ट थे।

राजनीतिक जागरण रियासतो की आबादी मे भी सतत बढता जा रहा था, जिन्ह "सामतवाद के सुरक्षित क्षेत्र' और भारत म ब्रिटिश शासन के गढ माना जाता था। १८७४ मे पश्चिम भारत मे बडौदा म राजा को सत्ताच्युत किये जाने से व्यापक ब्रिटिशविरोधी आदोलन भडक उठा। १८८० म कोल्हापुर के राजा और उसके औपनिवेशिक सरक्षको के खिलाफ षड्यत्र का पता चला, जो फडके के आदोलन को ही प्रतिबिबित करता था।

सातवे और नौवे दशक के प्रारभ के बीच के जन आदोलन स्थानीय और सामान्यतया स्वत स्फूर्त स्वरूप के होते थे, जिनमे भाग लेनवालो के पास कोई स्पष्ट राजनीतिक कार्यक्रम नही होता था और वे अकसर अपने धर्म अथवा सहज राजतत्रवाद की खातिर आदोलन करते थे। फिर भी इन आदोलनो मे आम किसानो दस्तकारो और कुछ मामलो मे छोट व्यापारिया तथा उदीयमान निम्न पूजीवादी बुद्धिजीवियो की सहभागिता, देश के सभी प्रमुख क्षत्रो मे जन-असतोष की अभिव्यक्तिया और सशस्त्र विद्रोहा तक सघर्ष के अधिक दृढ रूपो का सगठित किया जाना – ये सभी तथ्य यही दिखात

है कि उस समय के जन आदोलन भारत म ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के लिए गभीर खतरा बन गये थे।

वास्तव म देश एक नये क्रातिकारी सकट के कगार पर था।

तथापि किसानो और दस्तकारो की उपनिवेशवादविरोधी और सामत वादविरोधी कारवाइया ही औपनिवेशिक सरकार को नष्ट करने के लिए काफी नही थी। इधर पूजीवादी समाज के नये वर्ग – मजदूर वग और राष्ट्रीय पूजीपति वग – जो राष्ट्रीय मुक्ति सघप का नतृत्व कर सकते थे, अभी अपने राजनीतिक गठन की प्रारभिक अवस्था म ही थे।

मजदूर आदोलन की शुरूआत

मजदूर वर्ग का सबसे बडा सकेन्द्रण सूती उद्योग म था। यही वजह है कि सूती मिलो के मजदूर अपने उत्पीडको के खिलाफ भारतीय मजदूर वर्ग के सघर्ष म नताओ के रूप म उभरे। पहली मजदूर-हडताल १८७७ म नागपुर म एक सूती मिल म हुई। १८८२ और १८९० के बीच बम्बई और मद्रास प्राता म २५ हडताले हुई। औद्योगिक और रेलवे मजदूरो के अलावा हम्मालो, जनोपयोगी सेवाओ के मजदूरो ने भी हडताल आदोलन म भाग लिया। ये पहली हडताल स्वत स्फूर्त ढग से शुरू होनेवाली अल्पकालिक और वास्तव म स्थानीय हडताल ही होती थी। हडताली आर्थिक माग पेश करते थे।

भारतीय मजदूर वर्ग का सबसे सक्रिय दस्ता बम्बई म था। यही पर मजदूर सगठन कायम करने के पहले प्रयास किये गये, जो टेड यूनियनो – श्रमिक सघो – के पूर्वगामी थे। १८८४ म बम्बई म सूती मजदूरो की पहली आम सभा हुई जिसम एक प्रस्ताव स्वीकार करके यह माग की गयी थी कि एक दिन की छुट्टी अनिवार्यत होनी चाहिए, कार्य दिवस की अवधि कम की जानी चाहिए आदि। उसी साल बम्बई की एक फैक्टरी के एक महाराष्ट्रीय क्लर्क एन० एम० लोखडे ने सूती मजदूरो के पहले सगठन की स्थापना की। लेकिन इसकी सदस्य-सख्या बहुत अस्थिर थी। इस सगठन ने मराठी म पूजीवादी लोकोपकारी रुझान का एक अखबार 'दीनबधु' भी निकाला।

उन्नीसवी शताब्दी के नौवे दशक के अत और अतिम दशक के प्रारभ म हडताल आदोलन धीरे धीरे तेज होने लगा। मुश्किल से ही ऐसी कोई फैक्टरी होगी जिसम साल म एक दो बार हडताले न होती हो। बम्बई के मेहनतकशो के अलावा कलकत्ता मद्रास, अहमदाबाद आदि नगरो के मजदूर

भी सघष म भाग लेन लग। महिला कमिया न भी इसम अधिकाधिक सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया था।

बम्बई मजदूर सघ की कार्रवाइया भी तज हो गयी। १८८६ म लाखड न बम्बई के सूती मजदूरो की दूसरी आम सभा का आयोजन किया। सघ अधिकाधिक ब्रिटिश ढर्रे के सुधारवादी टड यूनियनो जैसा होता जा रहा था। भारत म मजदूर आदोलन की इस प्रारभिक अवस्था म भी पूजीपति वग उस पर अपनी विचारधारा थापन की कोशिश कर रहा था।

ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियो क दमन क परिणामस्वरूप नाव दशक म कुछ काल शात रहने के बाद अतिम दशक म हडताल आदोलन पुन तज हो गया। यह तेजी जन-आदोलन की नयी लहर क साथ साथ आयी जिसक केन्द्र रियासत थी।

उन्नीसवी शताब्दी के अतिम दशक मे जन आदोलन

१८६० म पश्चिमी भारत म खभात नामक छोटी सी रियासत म विद्रोही किसानो न नवाब को भागन क लिए मजबूर कर दिया और काफी सफलताए प्राप्त की। ब्रिटिश अधिकारियो न जिन्ह अब रियासत के आतरिक मामलो म हस्तक्षेप करना तथा नवाब को बाजाब्ता सत्ता स हटाना पडा लगान का कम कर दिया।

इस अवधि म जा सबस बडा जन आदोलन भडका वह १८६१ म मणिपुर रियासत म विद्रोह था। पूर्वी भारत की इस रियासत म सामता के एक गुट न राजमहली तख्तापलट क बाद १८६० क शरद म सत्ता को हथिया लिया था। उनका नेता सत्ताच्युत राजा का भाई था जो प्रतिशासक क नात रियासत का तथ्यत शासक बन गया था। ज्यो ही अग्रजो न यह सुना कि प्रतिशासक टिकेन्द्रजीत सिह ब्रिटिशविरोधी भावनाए रखता है उन्होन एक टुकडी मणिपुर रियासत की राजधानी इम्फाल भज दी। माच १८६१ म अग्रजो न किसी भी प्रतिरोध का सामना किय बिना इम्फाल म प्रवेश किया। लेकिन महल पर कब्जा करन क असफल प्रयास क बाद ब्रिटिश टुकडी ने अपन को इम्फाल म ब्रिटिश रजिडट क आवास म घिरा पाया। अनक अफसरो सहित अपनी टुकडी क बड भाग का गवान क बाद अग्रज पीछ हट गय।

ब्रिटिश टुकडी की इस पराजय ने कलकत्ता म औपनिवेशिक अधिकारियो के बीच आतक फैला दिया और उसी वर्ष के अप्रैल मे एक बडे फौजी दल को मणिपुर जाने के लिए सज्जित किया गया। रियासत की जनता के प्रतिरोध के बावजूद, जिसने अनेक ब्रिटिश फौजी ठिकानो और सचार के सभी साधनो को नष्ट कर दिया था, अग्रेजो न इम्फाल पर अधिकार कर लिया और उसे तहस-नहस कर दिया। उन्होने टिकेन्द्रजीत सिह को बदी बना लिया और उसे तथा विद्रोह के अन्य नेताओ को फासी दे दी। इसके बाद एक ब्रिटिश अफ्सर को नाबालिग राजा का प्रतिशासक नियुक्त कर दिया गया।

मणिपुर मे यह विद्रोह सामती तत्वो के नेतृत्व म जनता की अतिम उपनिवेशवादविरोधी कार्रवाई थी।

१८६१ म ही पूर्वी भारत म केओझर रियासत म भी एक सामतवाद विरोधी विद्रोह भडक उठा।

उन्नीसवी शताब्दी के अतिम दशक म स्वय भारत मे आम जनता का कोई बडा आदोलन नही हुआ, लेकिन सीमावर्ती क्षेत्रो मे उपनिवेशवादियो को पश्चिम मे पठान कबीलो और पूर्व मे नागाओ के जबरदस्त प्रतिरोध का सामना करना पडा।

पठान कबीलो का सघर्ष विशेष रूप से १८६३ के बाद तेज हो गया, जब ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियो और अफगान अमीर अब्दुर्रहमान के बीच सीमा विवादो पर एक समझौता हो गया। परिणामस्वरूप अनेक पठान कबीले ड्यूरेड रेखा' द्वारा अफगानिस्तान से कटकर ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र म आ गये। अग्रेजो द्वारा इन कबीलो के इलाको मे किले कायम करने तथा पठानो से कर वसूल करने के प्रयासो का उन्होने सशस्त्र प्रतिरोध किया।

इनमे सबसे बडे विद्रोह १८६४, १८६५ और १८६७ मे हुए। अतिम विद्रोह को अग्रेज तोपखाने सहित सभी प्रकार की इकाइयो के ४० हजार सैनिको को लाकर ही दबा पाये।

लेकिन इसके बाद भी सीमावर्ती पठान कबायली इलाको और उत्तर पूर्वी सीमावर्ती क्षेत्रो मे ब्रिटेन का फौजी और राजनीतिक नियत्रण किसी भी तरह मजबूत नही था।

पूजीवादी राष्ट्रवाद और उसकी विभिन्न प्रवृत्तियो का उदय

भारत मे पूजीवाद के विकास और भारतीय राष्ट्रीय पूजीपति वर्ग के उदय क परिणामस्वरूप पूजीवादी-राष्ट्रीय आदोलन का जम हुआ। उपनिवेश-वादविरोधी और साम्राज्यवादविरोधी जन-आदोलनो न भारतीय पूजीपति वर्ग के राजनीतिक गठन पर बहुत बडा प्रभाव डाला था।

भारत मे पूजीवादी राष्ट्रवाद का विकास दो अवस्थाओ से होकर गुजरा। उन्नीसवी शताब्दी के सातव और आठवे दशको म दश के विभिन्न भागो मे पूजीपति वर्ग और सामतो के स्थानीय राजनीतिक सगठन अस्तित्व म आये। पूजीवादी राष्ट्रीय आदोलन के विकास की अगली अवस्था नौवे दशक के मध्य मे राष्ट्रव्यापी स्तर पर उसका एकीकरण थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के सातवे और आठवे दशको मे पूजीवादी राष्ट्रीय आदोलन

पूजीपति वर्ग और सामतो के पहले सामाजिक राजनीतिक सगठन भारत के आर्थिक दृष्टि से सबसे विकसित प्राता अर्थात बगाल और बम्बई मे उभरे। पाचवे दशक से ही कलकत्ता मे ब्रिटिश इडिया एसोसिएशन और बम्बई प्रेसिडेसी एसोसिएशन बरावर सक्रिय रहे थे। य दोनो सगठन शक्ति शाली व्यापारियो और विदेशी पूजी के देशी दलालो तथा पूजीपति वर्ग और सामतो की पातो से उत्पन्न भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग की ऊपरी श्रेणियो के हिता का प्रतिनिधित्व करते थे। इसके अलावा यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश इडिया एसोसिएशन म बगाल के उदारवादी ज़मीदारो को सबसे महत्वपूण प्रभाव प्राप्त था।

इन सगठनो के आर्थिक कार्यक्रम मे करो के घटाये जाने और औपनिवशिक प्रशासन के व्ययो मे कटौती की मागे सम्मिलित थी। उनका राजनीतिक कार्यक्रम भी अत्यत सीमित था यह मूलतया औपनिवेशिक प्रशासन म पदोन्नति के लिए भारतीय समाज के ऊपरी वर्गों के वास्ते यूरोपीय शिक्षा प्राप्त करन के अवसरो के विस्तार की माग तथा दश म व्याप्त नसली भेदभाव क ख़िलाफ विरोध प्रकट करने तक ही सीमित था।

जन विद्रोहा न नरमपथी राष्ट्रवादिया को उपनिवेशवादिया के साथ और भी अधिक घनिष्ठ सबध बनाने के लिए मजबूर कर दिया।

एसी परिस्थिति म, जब कि राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन अधिकाधिक जोरदार बनता जा रहा था पुरान सगठनो का सामाजिक महत्व तेजी स कम होन लगा। भारतीय पूजीवादी राष्ट्रवादियो क लिए नय, अधिक उग्रवादी सगठनो की वस्तुगत आवश्यकता पैदा हो गयी।

१८७० म महाराष्ट्र म पूना सावजनिक सभा गठित हुई, जब कि १८७६ म कलकत्ता म इडिया एसोसिएशन कायम किया गया। दोनो सगठनो न भारतीय पूजीपति वर्ग के आर्थिक और राजनीतिक हितो की अधिक सक्रियता स हिमायत करना शुरू किया।

प्रारभ म ही वस्तुत सपूर्ण पूजीवादी राष्ट्रवादी आदोलन की तरह ही नये सगठनो क भीतर कोई एकता नही थी। पूजीवादी-राष्ट्रीय आदोलन क आतरिक इतिहास की विशेपता उसके भीतर दो मुख्य प्रवृत्तिया – नरमपथी अथवा उदारवादी और जनवादी प्रवृत्तियो – का उदभव और विकास है।

सातवे दशक से लेकर नौवे दशक के प्रारभ तक राष्टीय आदोलन क सगठन पर नरम दल का प्रभुत्व था, क्योकि उस समय तक निम्न पूजीवादी जनवादी अपन सगठन नही कायम कर पाये थे।

नरमपथिया न जिनके प्रमुख नेता बगाल म सुरेद्रनाथ बनर्जी तथा बम्बई प्रेसिडसी म दादाभाई नौरोजी और महादेव गोविद रानाडे थे औपनिवेशिक सरकार से माग की कि वह नये भारतीय उद्योग के प्रति सरक्षणवादी नीति लागू कर करो का घटाये और औपनिवेशिक खिराज कम करे। कृषि समस्या क सबध म वे जमीदारो की भूसपत्तियो को बनाये रखन (करो क कम किय जाने क साथ साथ) और बडी जमीदारियो के क्रमिक विकास को बढावा देन के पक्ष म थे।

उनके राजनीतिक कार्यक्रम ने मात्र वाइसराय तथा प्रातीय गवर्नरो क नतृत्व म परामर्शदायी निकायो मे भारतीय समाज के धनी उच्च सस्तरो का प्रतिनिधित्व बढान की माग की तथा नसली भेदभाव के खिलाफ विरोध प्रकट किया। उन्होन यह भी माग की कि सिविल सर्विस परीक्षाओ म बैठन क अधिकार की आयु बढायी जाये तथा परीक्षाए भारत और ब्रिटेन दोनो देशो म आयोजित हो।

यह अतिम माग इस तथ्य से उत्पन्न हुई थी कि उपनिवेशवादी पूजीवादी युवा अग्रेजो क हित म औपनिवेशिक प्रशासन तत्र मे मोटी तनख्वाहो के पदो पर अपनी इजारेदारी बनाये रखने का प्रयास कर रह थ। इसी वजह स यह निधारित किया गया था कि लदन म आयोजित सिविल सर्विस परीक्षाओ

म केवल २२ साल की आयु तक उम्मीदवार ही बैठ सकते है। इस नियम ने वस्तुत भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग के एक बडे भाग को इडियन सिविल सर्विस मे जाने के अवसर से वचित कर दिया था। उस समय भारतीय छात्र कालेज की शिक्षा उससे अधिक आयु म पूरी कर पाते थे जिसम अग्रेज़ अपने देश मे पूरी कर लेते थे। इसके अलावा धनी से धनी भारतीय परिवारो के युवको के लिए भी ब्रिटेन की यात्रा करना बहुत खर्चीला और पेचीदा काय था।

भारतीय नरमपथियो की कार्यनीति उनके राजनीतिक कायक्रम की तरह ही सतर्क और नरम थी। ससद और ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियो को भेजी गयी याचिकाए वाइसराय के पास अथवा ब्रिटेन प्रतिनिधि मडल भेजना अखबारो मे भीरु प्रतिवाद, राष्ट्रीय सगठनो की सभाओ म प्रस्ताव स्वीकार करना – राष्ट्रीय आदोलन के नरम दल ने अपने को सघर्ष के इन्ही रूपो तक सीमित रखा था।

नरमपथी जन-विरोध के बडे आलोचक थे और उनका विचार था कि देश मे औपनिवेशिक शासन को बनाये रखा जाना चाहिए।

लेकिन राष्ट्रीय आदोलन के भीतर एक वामपथी उग्रवादी पक्ष अधिकाधिक प्रबल होता जा रहा था। निम्न पूजीवादी जनवादी व्यापारी पूजीपति वर्ग के निम्न स्तरो, लघु औद्योगिक सस्थानो के मालिको, बुद्धिजीवी वर्ग के अल्प वेतनभोगी हिस्सा – अध्यापको क्लर्को डाक्टरो – का प्रतिनिधित्व करते थे और उनका निर्धन छोटे भूस्वामियो तथा समृद्ध किसानो के साथ भी सपर्क बना हुआ था।

नरमपथियो के विपरीत बगाल मे निम्न पूजीवादी जनवादी जनता के सामतवादविरोधी सघर्ष के प्रति गहन सहानुभूति रखते थे। नील विद्रोह के दौरान लेखक और जनवादी दीनबधु मित्र ने नील दर्पण' शीर्षक एक नाटक लिखा, जिसने जबरी ठेका और नील साहबो के अत्याचारो को बेनकाब किया। इस नाटक ने बगाली समाज के प्रगतिशील हलको पर जबरदस्त प्रभाव डाला था। १८७३ म पबना म विद्रोह के दौरान मीर मुशर्रफ हुसैन ने जमीदार दर्पण' शीर्षक नाटक प्रकाशित किया जिसने सभी जमीदारियो म जमीदारो की नादिरशाही का परदाफाश किया। गावो म किसान अभिनेताओ के माध्यम से इस नाटक ने बगाल के किसानो म क्रातिकारी दृष्टिकोण फैलाने म सहायता की।

बगाली राष्ट्रवादियो के वामपथी दल को आशा थी कि किसानो का व्यापक आदोलन प्रशासनिक प्रणाली म परिवर्तन लाने औपनिवेशिक उत्पीडन

ऐसी परिस्थिति में जब कि राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन अधिकाधिक जागरूक बनता जा रहा था पुराने संगठनों का सामाजिक महत्व तेजी से कम होने लगा। भारतीय पूंजीवादी राष्ट्रवादियों के लिए नये अधिक उग्रवादी संगठनों की वस्तुगत आवश्यकता पैदा हो गयी।

१८७० में महाराष्ट्र में पूना सार्वजनिक सभा गठित हुई, जब कि १८७६ में कलकत्ता में इंडियन एसोसिएशन कायम किया गया। दोनों संगठनों ने भारतीय पूंजीपति वर्ग के आर्थिक और राजनीतिक हितों की अधिक सक्रियता से हिमायत करना शुरू किया।

प्रारभ में ही वस्तुतः संपूर्ण पूंजीवादी राष्ट्रवादी आंदोलन की तरह इन नये संगठनों के भीतर कोई एकता नहीं थी। पूंजीवादी राष्ट्रीय आन्दोलन के आतरिक इतिहास की विशेषता उसके भीतर दो मुख्य प्रवृत्तियों – नरमपंथी अथवा उदारवादी और जनवादी प्रवृत्तियों – का उद्भव और विकास है।

सातवें दशक से लेकर नौवें दशक के प्रारंभ तक राष्ट्रीय आन्दोलन के संगठन पर नरम दल का प्रभुत्व था, क्योंकि उस समय तक निम्न-पूंजीवादी जनवादी अपने संगठन नहीं क़ायम कर पाये थे।

नरमपंथियों ने जिनके प्रमुख नेता बंगाल में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा बम्बई प्रेसिडेंसी में दादाभाई नौरोजी और महादेव गोविंद रानाडे थे, औपनिवेशिक सरकार से मांग की कि वह नये भारतीय उद्योग के प्रति संरक्षणवादी नीति लागू करे करों को घटाये और औपनिवेशिक खिराज कम करे। कृषिक समस्या के संबंध में वे ज़मींदारों की भूसंपत्तियों को बनाये रखने (करों के कम किये जाने के साथ साथ) और बड़ी ज़मींदारियों के क्रमिक विकास को बढ़ावा देने के पक्ष में थे।

उनके राजनीतिक कार्यक्रम ने मात्र वाइसराय तथा प्रांतीय गवर्नरों के नेतृत्व में परामर्शदायी निकायों में भारतीय समाज के धनी उच्च स्तरों का प्रतिनिधित्व बढ़ाने की मांग की तथा नसली भेदभाव के खिलाफ़ विरोध प्रकट किया। उन्होंने यह भी मांग की कि सिविल सर्विस परीक्षाओं में बैठने के अधिकार की आयु बढ़ायी जाये तथा परीक्षाएं भारत और ब्रिटेन दोनों जगह में आयोजित हों।

यह अंतिम मांग इस तथ्य से उत्पन्न हुई थी कि उपनिवेशवादी पूंजीवादी युवा अंग्रेजों के हित में औपनिवेशिक प्रशासन तंत्र में मोटी तनख्वाहों के पदों पर अपनी इजारेदारी बनाये रखने का प्रयास कर रहे थे। इसी वजह से यह निर्धारित किया गया था कि लंदन में आयोजित सिविल सर्विस परीक्षाओं

म केवल २२ साल की आयु तक उम्मीदवार ही बैठ सकते है। इस नियम ने वस्तुत भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग के एक बडे भाग को इडियन सिविल सर्विस मे जाने के अवसर से वचित कर दिया था। उस समय भारतीय छात्र कालेज की शिक्षा उससे अधिक आयु मे पूरी कर पाते थे जिसमे अग्रेज अपने देश मे पूरी कर लेते थे। इसके अलावा धनी से धनी भारतीय परिवारो के युवको के लिए भी ब्रिटेन की यात्रा करना बहुत खर्चीला और पेचीदा कार्य था।

भारतीय नरमपथियो की कार्यनीति उनके राजनीतिक कार्यक्रम की तरह ही सतर्क और नरम थी। ससद और ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियो को भेजी गयी याचिकाए वाइसराय के पास अथवा ब्रिटेन प्रतिनिधि मडल भेजना अखबारो मे भीरु प्रतिवाद राष्ट्रीय सगठनो की सभाओ मे प्रस्ताव स्वीकार करना – राष्ट्रीय आदोलन के नरम दल ने अपने को सघर्ष के इन्ही रूपो तक सीमित रखा था।

नरमपथी जन विरोध के बडे आलोचक थे और उनका विचार था कि देश मे औपनिवेशिक शासन को बनाये रखा जाना चाहिए।

लेकिन राष्ट्रीय आदोलन के भीतर एक वामपथी, उग्रवादी पक्ष अधिकाधिक प्रबल होता जा रहा था। निम्न पूजीवादी जनवादी व्यापारी पूजीपति वर्ग के निम्न सस्तरो, लघु औद्योगिक सस्थानो के मालिको बुद्धिजीवी वर्ग के अल्प वेतनभोगी हिस्सो – अध्यापको क्लर्को डाक्टरो – का प्रतिनिधित्व करते थे और उनका निर्धन छोटे भूस्वामियो तथा समृद्ध किसानो के साथ भी सपर्क बना हुआ था।

नरमपथियो के विपरीत बगाल मे निम्न पूजीवादी जनवादी जनता के सामतवादविरोधी सघर्ष के प्रति गहन सहानुभूति रखते थे। नील विद्रोह के दौरान लेखक और जनवादी दीनबधु मित्र ने नील दर्पण' शीर्षक एक नाटक लिखा, जिसने जबरी ठेका और नील साहबो के अत्याचारो को बेनकाब किया। इस नाटक ने बगाली समाज के प्रगतिशील हलको पर जबरदस्त प्रभाव डाला था। १८७३ मे पबना मे विद्रोह के दौरान मीर मुशर्रफ हुसैन ने जमीदार दर्पण' शीर्षक नाटक प्रकाशित किया जिसने सभी जमीदारियो मे जमीदारो की नादिरशाही का परदाफाश किया। गावो मे किसान अभिनेताओ के माध्यम से इस नाटक ने बगाल के किसानो मे क्रातिकारी दृष्टिकोण फैलाने मे सहायता की।

बगाली राष्ट्रवादियो के वामपथी दल को आशा थी कि किसानो का व्यापक आदोलन प्रशासनिक प्रणाली मे परिवर्तन लाने औपनिवेशिक उत्पीडन

को कमज़ोर करन और अतत उससे मुक्त होने मे सहायक होगा।

बगाल म निम्न पूजीवादी जनवादियो के सामाजिक राजनीतिक विचारा क सामतवादविरोधी स्वरूप के मूल मे यह कारण भी था कि व भारत म पूजीवादी विकास का समर्थन करनवाले लोगो के हितो के सबसे सतत पक्षधर थ।

निम्न-पूजीवादी जनवादी भारतीय निम्न-पूजीवादी युवजनो क व्यापक सस्तरा को देशानुरागी शिक्षा दना अपना मुख्य व्यावहारिक कार्य मानते थे। इसी वजह स उन्होंने अखबारो म अपने विचारो के प्रचार को प्रधानता प्रदान की। घोष वधुओ हरिश्चद्र मुखर्जी, उस काल के असाधारण लेखक बकिमच चटर्जी, आदि न अपन द्वारा प्रकाशित अखबारो और पत्रिकाओ म निम्न पूजीवादी राष्टवाद क विचारो का प्रचार किया। उनकी कमज़ोरी इस तथ्य म निहित थी कि उनके पास नरमपथियो के राजनीतिक सगठनो से अलग अपन कोई राजनीतिक सगठन नही थे। महाराष्ट्र के निम्न-पूजीवादी जनवादियो के बीच भी यही कमज़ोरी महसूस की गयी, जो भारत म बगाल के बा राष्टीय आदोलन का दूसरा कन्द्र था।

महाराष्ट्र मे वामपथी राष्ट्रवाद का उभार असाधारण भारतीय क्रातिकारी और जनवादी बाल गगाधर तिलक (१८५६–१९२०) के नाम से जुडा हुआ है। तिलक न जो एक प्राचीन महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार के थे, कैशार्य से ही शिवाजी के अधीन स्थापित मराठा राज्य की स्थापना के समय से ही चला आती मराठो के मुक्ति सघर्ष की परम्पराओ को आत्मसात किया था। उनका सपूण राजनीतिक कार्यकलाप इन राष्ट्रीय परम्पराओ से ओतप्रोत था। जब वह कालेज म ही थे, तभी तिलक ने समान विचारवाले छात्रो के एक दल क साथ मिलकर एक ऐसा स्कूल खोलने की योजना बनायी थी, जिसके दरवाज हरेक क लिए खुले होते और जिसम मराठा तरुणो को मराठा राष्ट्रीय परम्पराओ मे शिक्षित किया जाना था। १८८० म पूना म न्यू इगलिश स्कूल खाला गया और अगले वर्ष तिलक ने मराठी मे 'केसरी' और अग्रेजी म 'मराठा नाम स अखबार निकालना शुरू किये।

इन अखबारो म प्रकाशित लेखो तथा स्कूलो मे दिय व्याख्याना क ज़रिय तिलक और उनके समर्थको ने अपन को सपूर्ण भारतीय पूजीपति वर्ग क हिता क दृढ पक्षधरा क रूप म प्रकट किया। तिलक न भारतीय उद्योगपतिया के हिता का समर्थन करने के लिए जिस तरीके को अपनाया, वह ब्रिटिश माला क बहिष्कार (बायकाट) का था।

बगाल क निम्न-पूजीवादी जनवादिया की तरह तिलक न भी जनता

की माली हालत म सुधार लान की आवाज उठायी लकिन उन्होन कृषिक प्रश्न पर कोई सुस्पष्ट कार्यक्रम नही पेश किया।

यद्यपि तिलक औपनिवेशिक शासन क खिलाफ जनता के आदोलन के प्रति सहानुभूति रखत थ फिर भी वह सशस्त्र सघष को स्वतत्रता प्राप्त करने का सही रास्ता नही समभत थ। इस अवस्था म तिलक और उनके अनुयायी स्वतत्रता प्राप्त करन क भावी सघष क लिए जनता (यानी समाज के व्यापक निम्न-पूजीवादी वर्गो) का तैयार करना ही अपना मुख्य कार्य मानत थे।

आठव और नौव दशको म बगाल और महाराष्ट्र क अलावा भारत के अन्य भागो म राष्ट्रीय आदोलन अभी विकास क एस स्तर पर नही पहुच पाया था।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय आदोलन का आरभ और राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना

ब्रिटिश उपनिवेशवादियो न देश क भीतर राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन के विकास का जवाब दमनकारी कार्रवाइयो स दिया। १८७८ मे वाइसराय लिटन (१८७०–१८८०) न इडियन आर्म्स एक्ट (भारतीय शस्त्र अधिनियम) जारी किया, जिसक अनुसार भारतीयो का जगली जानवरो से अपनी रक्षा करन क लिए भी आग्नेय अस्त्र रखना वर्जित हो गया। उसी वर्ष अत्यत कठोर प्रेस कानून भी बना जिसन भारतीय भाषाओ म सभी प्रकाशनो पर प्रारभिक सेसरशिप लागू कर दी और जो सचमुच दमनकारी स्वरूप का कानून था।

लेकिन इन दमनात्मक उपायो से इष्ट परिणाम नही प्राप्त किये जा सके। फलस्वरूप ब्रिटेन म लिबरल पार्टी ने १८८० मे सत्तारूढ होने के बाद पूजीवादी और जमीदार मूल के भारतीय राष्ट्रवादियो के साथ मेल-जोल करने का दिखावा आरभ किया। नये वाइसराय रिपन (१८८०–१८८४) ने प्रेस कानून को रद्द कर दिया।

१८८२ म नगरो म नगरपालिकाओ के अधिकाश सदस्य उच्चस्तरीय सपत्तिशाली वर्गो द्वारा निर्वाचित होने लगे। भारतीय नरमपथियो के साथ मेल-जोल रखते हुए रिपन ने कार्यकारी परिषद के सदस्य इल्बर्ट द्वारा तैयार किये विधेयक का समर्थन किया जिसका लक्ष्य न्यायालयो को नसली भेदभाव से मुक्त करना था। लेकिन ब्रिटिश नौकरशाही और ब्रिटिश व्यापारियो के प्रतिरोध ने ससद द्वारा उसके स्वीकार किये जाने की सभी सभावनाओ को समाप्त

कर लिया और उसके कारण रिपन को अपना पद त्यागना पड़ा। इस प्रश्न पर संघर्ष ने भारतीय राष्ट्रवादियों को अपनी शक्तियों को एकजुट करने तथा अपने आंदोलन को राष्ट्रव्यापी बनाने के लिए विवश कर दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक तथा नौवें दशक के प्रारंभ में भारत में एक नया क्रांतिकारी संकट पैदा होने लग गया था। उपनिवेशवादियों को विशेष रूप से इसका डर था कि कहीं पूंजीवादी राष्ट्रवादियों के उग्रवादी पक्ष तथा जन आंदोलन में आपस में सहयोग न स्थापित हो जाय। एक वरिष्ठ सरकारी अधिकारी ए॰ ओ॰ ह्यूम ने अपनी एक रिपोर्ट में लिखा था कि यदि शिक्षित वर्गों के प्रतिनिधि जन विद्रोहों का नेतृत्व करने लगेंगे, तो वे अधिक दृढ़संकल्प बन जायेंगे और राष्ट्रीय विद्रोह में परिवर्तित हो सकते हैं।

यही कारण है कि उपनिवेशवादियों ने नरमपंथियों के नेतृत्व में एक देशव्यापी संयुक्त राजनीतिक संगठन की स्थापना का समर्थन किया।

उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक के अंत में विभिन्न सामाजिक राजनीतिक समूहों के प्रतिनिधियों के बीच निकट संपर्क बढ़ते जा रहे थे और १८८३–१८८४ में राष्ट्रवादियों का एक अखिल भारतीय संगठन स्थापित करने के पहले प्रयास किये गये।

अंत में १८८५ में बम्बई में राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन का समायोजन किया गया। यह ज़मींदारों और पूंजीपतियों का पहला अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन था। यह अधिकारियों की अनुमति से कायम किया गया और वाइसराय लार्ड डफरिन (१८८४–१८८८) के अनुरोध पर ह्यूम को इसका महासचिव बनाया गया।

राष्ट्रीय कांग्रेस ने राष्ट्रवादी भावनाएं रखनेवाले भारतीय पूंजीपति वर्ग और ज़मींदारों के हितों को व्यक्त किया। कांग्रेस के पहले छः अधिवेशनों के ४० प्रतिशत प्रतिनिधि पूंजीपति वर्ग और भूस्वामी वर्गों से आनेवाले बुद्धिजीवियों के थे, २५ प्रतिशत प्रतिनिधि व्यापार और सूदखोरी में लगे लोगों के हितों का प्रतिनिधित्व करते थे और २५ प्रतिशत प्रतिनिधि ज़मींदार थे।

कांग्रेस में राष्ट्रीय आंदोलन के नरमपंथी दल का प्रभुत्व था। लेकिन अपने कार्यक्रम में वह कुछ आगे बढ़ा। राष्ट्रीय उद्योग की रक्षा और विकास, कर में कमी तथा भारत में एक संगठित पूंजीवादी ऋण व्यवस्था की स्थापना के लिए अधिक दृढ़ मांग पेश की गयी। कांग्रेस ने उपनिवेशवादियों की प्रशुल्क नीति में अंतर्निहित भारतीय उद्योग के खिलाफ भेदभाव पर पहले से अधिक ज़ोरदार ढंग से विरोध प्रकट किया। अब राष्ट्रीय उद्योग के विकास की

प्रोत्साहित करने के लिए काग्रेस के तत्वावधान मे औद्योगिक सम्मेलन और प्रदर्शनिया आयोजित की जाने लगी। काग्रेस का कृषिक कार्यक्रम पूरे देश मे स्थायी बदोबस्त लागू करने की माग तक ही सीमित था।

आम जनता से अलग थलग होने के कारण राष्ट्रीय नरमपंथी अपने ही लोगो मे डरते थे। १८९३ मे काग्रेस के अधिवेशन मे नौरोजी ने कहा था कि सरकार को दृढ और न्यायपूर्ण होना चाहिए। उन्होने कहा कि सरकार का प्रत्यक्ष कार्य किसी भी अव्यवस्था और नागरिक शांति भंग करने के किसी भी प्रयास को दृढ हाथ से दबाना है।

काग्रेस की मुख्य राजनीतिक माग यह थी कि लेजिस्लेटिव काउसिलो (विधान परिषदो) के गठन को व्यापक बनाया जाय और उनमे भारतीय समाज के पूजीपति वर्ग और उच्चस्तरीय भूस्वामियो द्वारा चुने प्रतिनिधियो का बहुमत होना चाहिए। १८९२ मे इन वर्गो का प्रतिनिधित्व कुछ बढा दिया गया।

राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना के बाद राष्ट्रीय आदोलन के भीतर विभिन्न गुटो के बीच सघर्ष तेज हो गया। उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम दशक के मध्य मे तिलक पूना सार्वजनिक सभा के अधिकाश नेताओ का समर्थन प्राप्त करने मे सफल हो गये। इस समय तक वह देश के निम्न पूजीवादी जनवादियो के मान्य नेता बन चुके थे। 'मराठा' मे उनके लेखो ने दूसरे प्रातो मे भी उग्रवादी राष्ट्रवाद के विकास पर बडा प्रभाव डाला था।

१८९५ मे तिलक ने गणेश पूजा और शिवाजी के सम्मान मे जन समारोह सगठित करना आरभ किया। ये समारोह शीघ्र ही एक ऐसे राजनीतिक मच मे परिवर्तित हो गये जिसके माध्यम से तिलक के समर्थक जनता के बीच राजनीतिक प्रचार करते थे। इसी तरह के समारोह बगाल मे भी आयोजित किये जाने लगे।

लेकिन तिलक के समर्थको के कार्यकलाप के सकीर्ण साप्रदायिक और नकारात्मक पहलू भी थे। परिणामस्वरूप अग्रेजो की सक्रिय सहायता से नौवे दशक के प्रारभ मे पूजीवादी राष्ट्रवाद का विरोध करने के प्रयास मे कुछ मुस्लिम सास्कृतिक सगठनो ने अपनी गतिविधिया बढा दी। इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय आदोलन मे हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य का तत्व आ गया।

इस आदोलन के नेता सैयद अहमद खा थे जो शिक्षित मुस्लिम सामतो और शक्तिशाली व्यापारियो का प्रतिनिधित्व करते थे। उन्होने मुसलमानो मे शिक्षा को बढावा देने के लिए सस्थाए स्थापित की तथा अलीगढ कालेज

कर दिया और उसके कारण रिपन को अपना पद त्यागना पड़ा। इस पर संघर्ष ने भारतीय राष्ट्रवादियो को अपनी शक्तियो को एकजुट करने अपने आदोलन को राष्ट्रव्यापी बनाने के लिए विवश कर दिया।

उन्नीसवी शताब्दी के आठवे दशक तथा नौवे दशक के प्रारभ मे में एक नया क्रांतिकारी संकट पैदा होने लग गया था। उपनिवेशवादियो विशेष रूप से इसका डर था कि कही पूजीवादी राष्ट्रवादियो के उग्रवादी तथा जन आदोलन मे आपस मे सहयोग न स्थापित हो जाय। एक व सरकारी अधिकारी एलन ह्यूम ने अपनी एक रिपोर्ट मे लिखा था कि शिक्षित वर्गो के प्रतिनिधि जन विद्रोहो का नेतृत्व करने लगेगे, तो व अ दृढ़सकल्प बन जायेगे और राष्ट्रीय विद्रोह मे परिवर्तित हो सकते हैं।

यही कारण है कि उपनिवेशवादियो ने नरमपथियो के नेतृत्व मे देशव्यापी सयुक्त राजनीतिक सगठन की स्थापना का समर्थन किया।

उन्नीसवी शताब्दी के आठवे दशक के अत से विभिन्न सामाजिक राजनीति समूहो के प्रतिनिधियो के बीच निकट सपर्क बढते जा रहे थे और १८८३–१८ मे राष्ट्रवादियो का एक अखिल भारतीय सगठन स्थापित करने के प्रयास किये गये।

अत मे १८८५ मे बम्बई मे राष्ट्रीय काग्रेस के पहले अधिवेशन का स याजन किया गया। यह जमीदारो और पूजीपतियो का पहला अखिल भारत राजनीतिक सगठन था। यह अधिकारियो की अनुमति से कायम किया ग और वाइसराय लार्ड डफरिन (१८८४–१८८८) के अनुरोध पर ह्यूम इसका महासचिव बनाया गया।

राष्ट्रीय काग्रेस ने राष्ट्रवादी भावनाए रखनेवाले भारतीय पूजीपति व और जमीदारो के हितो को व्यक्त किया। काग्रेस के पहले छ अधिवेशन के ४० प्रतिशत प्रतिनिधि पूजीपति वर्ग और भूस्वामी वर्गो से आनेवाले बुद्धि जीवियो के थे २५ प्रतिशत प्रतिनिधि व्यापार और सूदखोरी मे लगे लोग के हितो का प्रतिनिधित्व करते थे और २५ प्रतिशत प्रतिनिधि जमीदार थे।

काग्रेस मे राष्ट्रीय आदोलन के नरमपथी दल का प्रभुत्व था। लेकिन अपने कार्यक्रम मे वह कुछ आगे बढा राष्ट्रीय उद्योग की रक्षा और विकास, कर मे कमी तथा भारत मे एक संगठित पूजीवादी ऋण व्यवस्था की स्थापना के लिए अधिक दृढ माग पेश की गयी। काग्रेस ने उपनिवेशवादियो की प्रशुल्क नीति मे अतर्निहित भारतीय उद्योग के खिलाफ भेदभाव पर पहले से अधिक जोरदार ढग से विरोध प्रकट किया। जब राष्ट्रीय उद्योग के विकास का

की स्थापना की जो औपनिवेशिक प्रशासनिक तत्र म काम करन के लिए युवा मुस्लिमो को प्रशिक्षित करता था। सैयद अहमद खा औपनिवशिक शासन के प्रबल समर्थक थे।

सैयद अहमद खा द्वारा शुरू किय इस आदोलन के अलावा दिल्ली क निकट देववद म निम्न पूजीवादी जनवादियो का एक और सगठन भी था, जो उत्तर भारत क मुसलमानो के बीच सक्रिय था। पर इस आन्दोलन के धार्मिक स्वरूप के कारण भी देववद स्थित कन्द्र और अन्य सामाजिक-राजनातिक राष्ट्रीय सगठनो क बीच निकट सहयोग अधिक जटिल बन गया।

उन्नीसवी शताब्दी के आठव दशक से हिन्दुओ और मुसलमाना के बीच झगड भडकाना ब्रिटेन की 'फूट डालो और राज करो" नीति की एक सतत विशेषता बन गयी। उन्नीसवी शताब्दी के अतिम दशक म अग्रेज बम्बई म दोनो समुदायो क बीच भारी दगा करवाने मे सफल हो गये।

१८९७ मे जब ब्रिटिश विरोधी भावना प्रचड थी, महाराष्ट्र म तिलक के अनुयायी चापकर बधुआ ने एक अग्रेज अफसर की हत्या कर दी। तिलक को गिरफ्तार कर लिया गया और राजद्रोह का आरोप लगाकर जेल भेज दिया गया।

उन्नीसवी शताब्दी के अत मे भारत एक जटिल राजनीतिक चित्र प्रस्तुत करता था। राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष की एक नयी अवस्था का समारभ हा रहा था।

युद्ध-पूर्व साम्राज्यवाद के काल तथा एशिया के जागरण के दौरान भारत (१८९७–१९१७)

ब्रिटेन और भारत के बीच बढते अतर्विरोध

बीसवी शताब्दी के प्रारभ मे भारत के आर्थिक और सामाजिक जीवन मे वे प्रवृत्तिया अधिक सुस्पष्ट हो गयी जो उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे उभरने लगी थी। इस प्रक्रिया की आतरिक अतर्वस्तु पूजीवाद का विकास था, जिसने उपमहाद्वीप के विभिन्न वर्गों और जातियो के बीच तीव्र अतर्विरोधो को जन्म दिया था।

औपनिवेशिक शोषण का तीव्रीकरण

युग सधि के समय साम्राज्यवादी युग की मूलभूत विशिष्टताओ के अनुरूप औपनिवेशिक लूट के रूपो और विधियो का महत्व बढ गया था।

१८९३–१८९९ के वर्षों मे औपनिवेशिक अधिकारियो ने एक वित्तीय सुधार किया, जिसने औपनिवेशिक सत्ता के लिए कृषिजन्य पैदावार और कच्चे मालो के स्रोत के नाते भारत की स्थिति को मजबूत बनाया और देश म ब्रिटिश पूजी की घुसपैठ को सुविधाजनक बनाया। भारत म चादी के रुपये ढालनेवाली टकसालो को बद कर दिया गया और पहले के रजत मान क स्थान पर रुपये का स्वर्ण मान स्थापित किया गया। रुपय की विनिमय दर बढा दी गयी तथा ब्रिटिश पौड स्टर्लिंग के अधीन कर दी गयी। इन कार्रवाइयो ने भारत मे आयातित तथा निर्यातित मालो की कीमता क बीच अतर को बढाने के साथ-साथ भारत और ब्रिटेन के बीच माल विनिमय को भी बढावा दिया। इसके साथ ही इनके परिणामस्वरूप अन्य एशियाई देशा

के साथ उनकी रजत मुद्रा का मूल्य घट जाने के कारण भारत के सवध पचाग बन गये। इन कार्रवाइयो मे व्यापार और असमान विनिमय के फलस्वरूप ब्रिटिश नियातका को ही लाभ हुआ। सुधार का तात्कालिक परिणाम अनेक भारतीय व्यापारिक गृहो का निर्धनीकरण, कीमतो मे वृद्धि और सर्वोपरि चादी के आभूषणो का भारी मूल्य-ह्रास था जो आम जनता की बचत का मुख्य रूप थे। इसका मतलब श्रमिक जनता पर एक नया आघात था।

वित्तीय सुधार जिसने भारतीय बाजार मे ब्रिटिश नियातको की स्थिति को मजबूत बनाया देश को पहले की बनिस्वत कही अधिक सीमा तक ब्रिटेन के लिए कृषिजन्य पैदावार और कच्चे मालो के स्रोत मे परिवर्तित करने मे सहायक हुआ। भारत और ब्रिटेन तथा अन्य पूजीवादी देशो के बीच व्यापार सबधो मे असमान विनिमय के परिणामस्वरूप अपार भौतिक सम्पदाओ का निर्यात होने लगा जिनकी या तो उनके वास्तविक मूल्य से बहुत कम अदायगी की जाती थी या बिलकुल ही नही की जाती थी। निम्नलिखित आकडे इसे बडी अच्छी तरह दर्शाते है १६०१ मे निर्यात आयात से ११० लाख पौंड स्टर्लिंग अधिक था जब कि १६०६-१०—१६१३-१४ मे इसका औसत २२५ लाख था।

इसके साथ ही ब्रिटिश पूजी के लिए निवेश के क्षेत्र के रूप मे भारत का शोषण अधिकाधिक महत्व प्राप्त करता जा रहा था। पहले की तरह ही ब्रिटिश निवेश रेलवे और सचार निर्माण परियोजनाओ, सिचाई, बागानो खनन और सूती तथा खाद्य उद्योगो मे सकेन्द्रित किये जा रहे थे। काफी पूजी बैंकिंग तथा बीमा व्यवसाय मे भी लगायी जा रही थी।

ब्रिटिश वित्तीय पूजी सर्वोपरि रूप से भारतीय अर्थतत्र के उन क्षेत्रो मे घुसपैठ कर रही थी जो देश के शोषण से सीधे जुडे हुए थे और जिनके विकास के लिए भारतीय बाजार मे ब्रिटिश मालो को किसी गभीर प्रतियोगिता का सामना नही करना पडता था।

बगाल असम और देश के दक्षिण मे अधिकाश चाय बागानो मैसूर मे काफी बागानो तथा त्रावणकोर मे रबड बागानो कलकत्ता मे सभी जूट मिलो मशीनो की मरम्मत के अधिकाश कारखानो बम्बई और अन्य प्रातो मे बडी सख्या मे सूती मिलो देश मे लगभग सभी रेलवे वर्कशापो और खानो पर ब्रिटिश इजारेदारियो का नियत्रण था। देश के सबसे बडे औद्योगिक प्रतिष्ठान भी अग्रेजो के स्वामित्व मे थे। १६१४ मे जूट उद्योग और बन्दरगाहो मे सभी मजदूर रेलवे और ट्राम कारखानो मे

लगभग सभी मजदूर, चीनी और ऊन उद्योगो म आधे मजदूर कागज उद्योग म लगभग ८० प्रतिशत मजदूर तथा निर्माण और धातुकर्म उद्योगो म लगभग ६० प्रतिशत मजदूर ब्रिटिश पूजीपतियो क कारखाना म काम कर रहे थे।

१८६६ से १६१० की अवधि म भारत म ब्रिटिश पूजी निवेश ४००-५०० करोड रुपये से बढकर ६००-७०० करोड हो गया। देश क अर्थतत्र पर ब्रिटिश वित्तीय पूजी की जकड निम्नलिखित आकडो स स्पष्ट हो जाती है १६०५ मे ब्रिटेन मे पजीयित किंतु भारत म काम करनेवाली १६५ कपनिया की पूजी स्वय भारत म पजीयित कपनियो (ब्रिटिश और भारतीय दोनो) की पूजी से तिगुनी अधिक थी।

लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था म ब्रिटिश इजारेदारियो की स्थिति को केवल अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओ म प्रत्यक्ष ब्रिटिश पूजी निवेश ही नही निधारित करता था। ब्रिटिश पूजीपति वग अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए उन आर्थिक उत्तोलको का भी इस्तेमाल करता था जिन्हे उसने स्वय ही कायम किया था।

पहले की तरह ही ब्रिटेन का भारत पर अपना आथिक और राजनीतिक प्रभुत्व बनाये रखने म समर्थ बनानेवाला मुख्य आथिक उत्तोलक औपनिवेशिक राजकीय तत्र था। भारत म कुल ब्रिटिश पूजी निवेश म औपनिवेशिक राज्य द्वारा जारी किये गये बाडो और प्रतिभूतियो का अश आधे स अधिक था। पहले की तरह ही ब्रिटिश साम्राज्यवादियो की एशिया और अफ्रीका मे औपनिवेशिक फौजी मुहिमबाजियो—चीन म बाक्सर विद्रोह' का दमन तिब्बत पर फौजी अभियान बोएर युद्ध आदि—के खर्चे के भार को भारत की जनता को ही झेलना पडा। १६०० स १६१३ की अवधि म भारत का स्टर्लिंग 'ऋण" १३३ करोड स बढकर १७७ करोड पाड स्टर्लिंग हो गया।

भारत म ब्रिटिश औपनिवेशिक इजारेदारियो द्वारा स्थापित मैनेजिंग एजेंसियो का महत्व भी निरतर बढता जा रहा था। पुरानी मैनेजिंग एजेंसिया और नयी मैनेजिंग एजेंसिया (बडी इजारेदारियो क सम्बद्ध प्रतिष्ठान) दोनो ब्रिटिश वित्तीय पूजी से, प्रमुख ब्रिटिश औपनिवेशिक बैको स निकट रूप स जुडी हुई थी। वे भारत म औपनिवेशिक प्रशासन क ऊपरी सोपानो, ब्रिटिश वित्तीय अल्पतत्र और नौकरशाही के साथ निकट सहयोग म काम करती थी। सुप्रसिद्ध भारतीय अर्थशास्त्री पी० लोकनाथन न मैनेजिंग एजेंसियो की तुलना व्यग्यात्मक ढग से एक तरह के ऐसे सकीर्ण मार्ग म की है जिसके जरिये ब्रिटिश पूजी भारत म प्रवाहित होती थी और फिर उन्ही एजेंसियो द्वारा

कायम विभिन्न उद्यमा के बीच वितरित हो जाती थी। एजसिया, जा सम्बद्ध उद्यमा द्वारा अर्जित मुनाफा मे हिस्सा प्राप्त करती थी, भारत म सचलित ब्रिटिश और भारतीय पूजी के अधिकाश भाग को नियन्त्रित करती थी।

जैसे जैस भारत म औपनिवशिक शोषण तज होता गया, वैसे-वैस ब्रिटिश औपनिवशिक वेको की भूमिका भी बढती गयी – व ब्रिटिश पूजीपतिया द्वारा सचालित एक दूसरा महत्वपूर्ण आर्थिक उत्तोलक बन गय। मर्केटाइल वैक, चाटर्ड वैक आफ इडिया, आदि दश के विदेश व्यापार का नियन्त्रित करते थ और आयात निर्यात व्यापार म लग प्रमुख ब्रिटिश थोक विक्रेताआ का वित्त उपलब्ध करते थ। भारतीय व्यापारी तथा सूदखोर बिचौलिया पूजी के माध्यम से ये वैक गावा – कच्च मालो क उत्पादको और ब्रिटिश निर्मित जन उपभा वस्तुओ के उपभोक्ताआ – के साथ सपर्क कायम रखत थ। साथ ही देश म वस्तुत सगठित औद्योगिक ऋण अनुपलभ्य था और भारतीय उद्यमकर्ता या तो मैनजिग एजसिया या वडे महाजनो का मुह जोहन को विवश थे, जिनका देश के आतरिक व्यापार पर नियत्रण था और जिन पर दस्तकार तथा छाटे कारखानेदार आश्रित थे।

देश म, जहा सामती और साम्राज्यवादी सवधो का प्रभुत्व था, माल मुद्रा सवधो क सतत विकास तथा आतरिक बाजार के उदय ने व्यापारी और सूदखोर पूजी के महत्व म भारी वृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया, जो सर्वोपरि विदेशी इजारेदारियो की दलाल के रूप मे प्रकट हुई थी। बीसवी शताब्दी के पहले दशक के प्रारभ म महाजनो द्वारा प्राप्त वार्षिक आय लगभग २० कराड रुपये हो गयी थी।

देश के मुख्य आर्थिक केन्द्रो मे एक शक्तिशाली दलाल पूजीपति वर्ग विकसित हो गया, जो भारत मे ब्रिटिश निर्यात-आयात कारबार का आधार था।

राष्ट्रीय पूजीपति वर्ग का दृढीकरण

इसके साथ ही भारतीय सपत्तिशाली वर्गो द्वारा व्यापार और महाजनी के ज़रिये सचित पूजी अधिकाधिक औद्योगिक निवेश मे लगती गयी। भारतीय उद्यमकर्ताओ को अकुश म रखने की ब्रिटिश नीति के बावजूद भारतीय अर्थ व्यवस्था मे पूजीवादी स्वरूप अधिकाधिक मज़बूत जड पकडते गये। १६०० से १६१४ की अवधि मे पजीयित सयुक्त पूजी कपनियो की सख्या १,३६० से वढकर २,५५२ तथा प्रदत्त पूजी ३६ २ करोड से वढकर ७१ १ करोड रुपये

हो गयी। पहले की भाति ही सूती उद्योग ही भारतीय मिल मालिको के कार्यकलाप का मुख्य क्षेत्र था। इसके साथ साथ भारतीय पूजी बागानो और खानो मे प्रवेश करने लग गयी थी, अधिकाश रूई ओटाई मिले चावल मिले तेल मिले तथा छपाई कारखाने भी भारतीयो के हाथो म थे।

लेकिन भारतीय स्वामित्व के अधिकाश उद्यम लघु और मध्यम आकार के थे और उनमे ८० प्रतिशत यत्रीकृत नही थे। आधुनिक किस्म के बडे औद्योगिक उद्यमो के अलावा विनिर्माणशालाओ की सख्या भी बढती जा रही थी। पूजीवादी उद्यमो के सबसे सीधे-सादे रूप सूती कपडे और चमडे के सामान, बर्तनो और अन्य घरेलू वस्तुओ के उत्पादन तथा कृषि-जन्य कच्चे मालो के प्रारभिक ससाधन मे सर्वाधिक प्रचलित थे। कुटीर उद्योगो और कृषि म सबसे अधिक मजदूर लगे हुए थे। उनकी सख्या दसिया लाख थी।

उदीयमान राष्ट्रीय पूजीपति वर्ग न देश की अर्थव्यवस्था मे अपनी स्थिति मजबूत बनाने के प्रयासो मे अब भारी उद्योग के क्षेत्र मे भारतीय स्वामित्व म उद्यम कायम करने की कोशिश की। १६११ मे जमशेदजी टाटा ने जमशेदपुर (बिहार) मे भारतीय स्वामित्व मे पहला लोहा तथा इस्पात कारखाना कायम किया। इसकी स्थापना म भारतीय पूजीपति वर्ग के शक्तिशाली हलको का समर्थन प्राप्त था। १६१५ मे टाटा प्रतिष्ठान ने एक बिजली कपनी भी स्थापित की और उसके लिए एक बड पनबिजलीघर का निर्माण किया।

चूकि राष्ट्रीय उद्योग क सफल विकास की एक महत्वपूर्ण शर्त पूजीवादी ऋण प्रणाली का निर्माण थी, अत भारतीय पूजीपति वर्ग ने अपने बैक कायम करना शुरू किये। पिछली शताब्दी के अत तक अनेक बडे भारतीय सयुक्त पूजी बैक खोले जा चुके थे। १६१३ मे ऐसे १८ बैक थे, इनके अलावा भारतीय पूजीपतियो के २३ मध्यम बैक भी थे। लेकिन इस अवधि मे भारतीय बैकिग पूजी का इस्तेमाल मुख्यतया घरेलू व्यापार मे ही होता था।

भारतीय पूजीवादी उद्योग के विकास तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादियो के हाथो भारत के शोषण के तीव्रीकरण ने उदीयमान भारतीय पूजीपति वर्ग और विदेशी इजारेदारियो के बीच अतर्विरोधो को अधिक विषम बनाया।

दोनो गुटो के बीच हितो का सघर्ष भारतीय कपडा बाजार मे सबसे प्रचड था। उन्नीसवी शताब्दी के बाद सुदूर-पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया के बाजारो मे सस्ते जापानी वस्त्रो के आगमन ने भारतीय सूती मिलो म नियात के लिए सूत की जगह मुख्यतया घरेलू बाजार के लिए सूती वस्त्रो के उत्पादन के शुरू किये जाने को तेज कर दिया। विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला करन

के लिए अपनाया जानेवाला एक तरीका हस्त निर्मित वस्त्रों का उत्पादन बढ़ाना था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में सूती मिलों और हथकरघा बुनकरों के बीच घनिष्ठ अन्योन्याश्रितता थी जिनकी संख्या उस समय एक करोड़ से अधिक थी। १८९७–१९०१ में सूती मिलों ने औसतन ८५० लाख पौंड सानाना और हथकरघा बुनकरों (स्वतंत्र बुनकरों और हस्तनिमाणशालाओं के बुनकरों) ने कुल २० करोड़ पाउंड मानाना सूत का इस्तेमाल किया था।

१८८६ और १९०५ के बीच सूती कपड़ा मिलों की संख्या ९५ से बढ़कर १९७ हो गयी जिनमें से अधिकांश भारतीयों की थीं। उसी अवधि में तकुओं की संख्या दुगुनी और करघों की संख्या तिगुनी हो गयी। ब्रिटिश उद्योगपतियों ने भारत में सूती कपड़े के अपने आयात को बढ़ा दिया। सत्ता के औपनिवेशिक अंगों का इस्तेमाल करते हुए उन्होंने भारतीय सूती वस्त्रों पर ३.५ प्रतिशत उत्पादन शुल्क लगा दिया तो भी कपड़ा बाजार का आयातित कपड़ा द्वारा प्राप्त अंश १९०१ और १९०६ के बीच ६३ प्रतिशत से गिरकर ५७ प्रतिशत हो गया, जब कि उसी अवधि में मिल निर्मित तथा हस्तनिर्मित भारतीय वस्त्रों का अंश क्रमशः १२ प्रतिशत से बढ़कर १५ प्रतिशत और २५ प्रतिशत से बढ़कर २८ प्रतिशत हो गया।

इस मंजिल में भारतीय बुनकरों ने भारतीय मिलों की प्रतियोगिता के वास्तविक दबाव को अभी तक महसूस नहीं किया था। लेकिन अब से स्थानीय मिलों में उत्पादित कपड़े केवल ब्रिटिश माल के साथ प्रतियोगिता में ही नहीं बल्कि स्थानीय बुनकरों के काम के साथ प्रतियोगिता में भी जमकर टक्कर लेने लग गये। १९०१ और १९११ के बीच लगभग पांच लाख बुनकर बरबाद हो गये अथवा अपनी आजीविका से वंचित हो गये। १९०७ और १९१४ के बीच हस्तनिर्मित वस्त्रों के उत्पादन स्तर में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, जब कि मिलों में सूती वस्त्रों का उत्पादन तिगुना हो गया। फिर भी भारतीय मिल मालिकों और बुनकरों के लिए असली खतरा अब भी लंकाशायर ही बना रहा।

समूचे तौर पर इस अवधि की मुख्य विशेषता ब्रिटिश साम्राज्यवादियों और भारतीय राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के बीच अंतर्विरोधों में वृद्धि थी। साथ ही भारतीय पूंजीपति वर्ग के ऊपरी संस्तर ऋणों के बंदोबस्त, साज सामान के प्रदाय, आदि के कारण विशेषकर ब्रिटिश वित्तीय पूंजी के साथ घनिष्ठ संपर्क बनाये रखते थे। पूंजीपति वर्ग का यह हिस्सा सामंती समाज के शोषणकारी वर्गों के साथ और भी अधिक घनिष्ठतः जुड़ा हुआ था। भारतीय फैक्टरी मालिक जो पहले अधिकांशतया बड़े व्यापारी और महाजन थे, अपनी आय

का एक भाग व्यापार और महाजनी स प्राप्त करन रह। उद्योगपति भारतीय सयुक्त पूजी वाणिज्यिक बैको के माध्यम स भी जो तब तक कायम हो चुक थे व्यापारिया और महाजनो के साथ निकट सपर्क म जात थ।

पूजी, विशेषकर व्यापारी तथा सूदखार पूजी क सामती भूस्वामित्व क साथ सलयन की प्रक्रिया भी चल रही थी। व्यापारियो महाजना और छाट उद्योगपतियो द्वारा जमीन का हथियाया जाना इतना बढ गया कि औपनिवेशिक अधिकारियो को एक कानून बनाकर पजाब क किमाना के हाथ म गैर किसान वर्गा क हाथो म भूमि के हस्तातरण पर प्रतिबध लगाना पडा। इधर अनेक शक्तिशाली जमीदार और कुछ राजा भी औद्योगिक कपनिया और बैकिग प्रतिष्ठानो मे शेयर खरीद रह थे। भारतीय राष्ट्रीय पूजीपति वर्ग तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादियो के बीच और विशप रूप म भारतीय राष्ट्रीय पूजीपति वग और सामतो के बीच आर्थिक सबधा न राष्टीय पूजीपति वर्ग क राजनीतिक कायक्रम और राष्ट्रीय मुक्ति आदालन म उसकी भूमिका पर अपनी छाप डाली।

मेहनतकशो की बिगडती स्थिति। वर्ग और नसली अतर्विरोधो का बढना

पूजीवाद की प्रगति के बावजूद उन्नीसवी शताब्दी की समाप्ति पर भारत एक पिछडा हुआ कृषि प्रधान दश ही था जहा विगत क सामती स्वरूपा का प्रभुत्व बरकरार था। हालाकि असख्या दस्तकारा क काम क बिना तबाह और असहाय होते जान क साथ-साथ औद्यागिक सर्वहारा वग सख्या म बढता जा रहा था, फिर भी १६०१ और १६११ के बीच कृषि म लगी आबादी का अनुपात ६६ प्रतिशत से बढकर ७२ प्रतिशत हो गया। पहल की भाति ही किसान ब्रिटिश साम्राज्यवादिया जमीदारा और व्यापारी तथा सूदखार पूजी क तिहर शोषण क शिकार थ। रैयतवारी क्षत्रा म भूसपत्ति का त्वरित सकेन्द्रण और छोटे बटाईदारो को लगान पर दी जानवाली जमीन की बढती मात्रा इसके परिचायक थे कि अधिकाधिक किसान अपनी जमीन खात जा रहे थ, जो जमीदारा और धनी किसाना क हाथा म सकेन्द्रित हाती जा रही थी।

इधर कृषिजन्य पैदावार की बढती कीमता क फलस्वरूप किसाना क अधिक सपन्न सस्तरा की स्थिति सुधर रही थी। वाणिज्यिक कृषि क प्रसार और नगरा म पूजीपति तत्वा क अधिक मजबूती म जड जमात जान क साथ

साथ भारतीय गावो मे नये पूजीवादी सबध रूप ग्रहण करने लगे। नगरो अथवा बागानो और गहन कृषि के इलाको को लोगो का निरतर स्थानातरण कगाल किसानो के सर्वहाराकरण की बढती प्रक्रिया को अभिव्यक्त करता था। बढता कृषि जनाधिक्य सदा उपलभ्य श्रम-आपूर्ति का सूचक था, जिसने अपनी बारी मे धनी किसानो और कुछ जमीदारो के फार्मों मे उजरती सबधो के विकास को प्रेरित किया। लेकिन गावो मे पूजीवादी सबध अब भी प्रारम्भिक अवस्था मे थे। अभी नगर ही भारत की जनता और ब्रिटिश साम्राज्यवादियो के बीच वर्ग और राष्ट्रीय अतर्विरोधो का केन्द्र-बिंदु था। जहा उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे अधिकाश जन सघर्ष बहिर्वर्ती क्षेत्रो मे ही हुए थे, वहा साम्राज्यवादी युग के शुरू होने के साथ क्रातिकारी सघर्ष के केन्द्र मुख्यतया नगरो मे पैदा होने लगे।

इस समय तक बहुत सी फैक्टरियो मे बहुत समय से सेवारत अनुभवी मजदूर काम करने लग गये थे। मजदूरो की सख्या और सकेन्द्रण मे भी मुख्य औद्योगिक केन्द्रो – कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, अहमदाबाद और कुछ अन्य नगरो – मे वृद्धि होती जा रही थी। लेकिन मजदूरो की माली हालत मे कोई सुधार नहीं आया था। पहले की तरह ही स्थानीय और विदेशी पूजीपतियो, महाजनो और विभिन्न प्रकार के बिचौलियो द्वारा उनका शोषण किया जाता था। अधिकाश फैक्टरियो मे कार्य-दिवस १२ से १४ घटे के बीच था। ब्रिटिश इजारेदारियो के साथ अपनी प्रतियोगिता मे भारतीय पूजीपति मजदूरी मे कटौती करके उत्पादन लागत कम करने की कोशिश करते थे। परिणामस्वरूप मजदूर वर्ग के आर्थिक सघर्ष ने, जो बीसवी शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों मे अधिक प्रखर होता जा रहा था, अनिवार्यत साम्राज्यवादविरोधी स्वरूप भी ग्रहण कर लिया।

उस समय अस्तित्व मे आ रहे औद्योगिक सर्वहारा के अलावा नगरो मे राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन की मुख्य शक्ति विनिर्माणशालाओ के कारीगर मजदूर और मालिक तथा छोटे व्यापारी थे। शहरी समाज के यही वे सस्तर थे, जिन्होने ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन की नौकरशाही मशीनरी का निरतर सामना करते हुए भारत के ब्रिटिश मालो की बिक्री के लिए बाजार मे रूपातरण के भीषण परिणामो को झेला था।

अब भी निम्न-पूजीवादी बुद्धिजीवी वर्ग ही साम्राज्यवादविरोधी सघर्ष का मुख्य प्रचारक था, जिसका शहरी आबादी के निम्न-पूजीवादी सस्तरो तथा तबाह छोटे भूस्वामियो के साथ घनिष्ठ सपर्क था और जो बडी मुश्किल

से जीवन यापन करता था। भारतीय बुद्धिजीवी समुदाय को जिसम मुख्यतया स्वतत्र पेशो के प्रतिनिधि, अध्यापक और छोटे अधिकारी थे, न केवल अपनी रोजमर्रा की जीविका के लिए ही कठिन सघर्ष करना पडता था बल्कि उसे बढती बेरोजगारी की समस्या का भी सामना करना पडता था। पूजीवाद के विकास ने, जो औपनिवेशिक परिस्थितियो मे एक धीमी और वीभत्स प्रक्रिया थी, भारतीय कालेजो और विश्वविद्यालयो के स्नातको के लिए रोजगार के अवसरो को सीमित कर दिया था। भारतीय छात्र समुदाय जिसकी सख्या लगभग दस लाख थी, भारतीय समाज का एक सबसे क्रातिकारी घटक था।

अपने दैनदिन कार्यकलाप मे भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को निरतर नसली भेदभाव और अपनी राष्ट्रीय गरिमा के अपमानो का सामना करना पडता था। व्यापक भारतीय जनता के लिए औपनिवेशिक तत्र म केवल निम्न पद ही प्राप्य थे। यह उल्लेखनीय है कि इडियन सिविल सर्विस मे कार्यरत आठ हजार अग्रेज कुल १४० लाख पौड वेतन प्राप्त करते थे जब कि १,३०००० भारतीयो को कुल ३० लाख पौड ही मिलते थे।

इस तरह भारत मे पूजीवाद का विकास भारतीय समाज मे विभिन्न वर्गो और सामाजिक समूहो की राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने मे सहायक हुआ। साम्राज्यवादी युग के प्रारभ क बाद जनता की भौतिक स्थिति के ह्रास और सामतो, व्यापारियो तथा महाजनो के बढते शोषण और पूजीवादी शोषण के तीव्रीकरण ने भी उनकी क्रातिकारी भावना को उत्तेजित किया।

जहा खाद्य पदार्थो की कीमतो मे भारी वृद्धि आयी वहा औद्योगिक मजदूरो और सफेदपोश कर्मचारियो तथा आबादी के अन्य सस्तरो की आय लगभग उतनी ही बनी रही। सूखे अथवा खराब फसलो के सालो म हमेशा अकाल पडता था १८९६–१८९७ मे ६२० लाख की आबादी के इलाको म, १८९९–१९०० मे २८० लाख की आबादी के इलाको म, १९०५–१९०६ मे ३३ लाख आबादी के इलाको मे, १९०६–१९०७ मे १३० लाख आबादी क इलाको मे और १९०७–१९०८ मे ४९६ लाख आबादी के इलाको म अकाल पडा। इन अकालो के साथ-साथ हैजा और प्लेग जैसी महामारिया भी फैलती थी। १८९६ और १९०८ के बीच ६० लाख से अधिक लोग प्लेग स मरे। प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय आय म तेजी से गिरावट आयी। देश म निरपेक्ष निर्धनीकरण की तीव्र प्रक्रिया घटित हो रही थी।

ब्रिटिश उपनिवेशवादियो ने देश मे अपनी आतरिक नीति स भी असतोष को बढाने और राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन की लहरो को भडकाने म योग दिया।

१९०५–१९०८ में
क्रांतिकारी आंदोलन की बढ़ती लहर

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में औपनिवेशिक शासन की आंतरिक नीति और क्रांतिकारी आंदोलन

१८९९ में लार्ड कर्जन को भारत का वाइसराय (१८९९–१९०५) नियुक्त किया गया। वह ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के घोर प्रतिक्रियावादी और युद्धलोलुप के गुट का प्रतिनिधित्व करता था। कर्जन ने राष्ट्रीय आंदोलन के पूरी शक्ति के साथ दमन और खुले नसली भेदभाव की नीति का अनुसरण किया। कर्जन का प्रशासन ब्रिटिश उद्यमकर्ताओं को सक्रिय समर्थन प्रदान करता था और भारतीय उद्योगपतियों के कार्य में खुल्लमखुल्ला बाधा डालता था। १९०३ में एक विशेष कानून लागू किया गया, जिसका उद्देश्य भारत की प्राकृतिक संपदा का पूर्वेक्षण और उपयोग करने के ब्रिटिश इजारेदारियों के प्रयासों को सभी संभव तरीकों से आसान बनाना था।

कर्जन भारतीय बुद्धिजीवियों से विशेषकर घृणा करता था। उसने कर लगाने की न्यूनतम सीमा को पांच सौ रुपये से घटाकर सौ रुपये सालाना कर दिया। इस कदम ने तथाकथित शहरी मध्यम वर्गों के व्यापक हिस्सों को गंभीर नुकसान पहुंचाया।

१८९८ और फिर १९०४ में भारतीय राष्ट्रीय प्रेस के खिलाफ निर्दिष्ट सरकारी गोपनीयता कानून को अधिक व्यापक कर दिया गया।

नये वाइसराय के सबसे पहले कदमों में से एक यह था कि उसने कलकत्ता नगरपालिका की सदस्य संख्या कम कर दी, ताकि उसमें संपत्तिशाली भारतीय वर्गों के प्रतिनिधित्व को कम किया जा सके। १९०४ में कर्जन ने एक विश्वविद्यालय सुधार लागू किया। शिक्षा शुल्कों को बहुत अधिक बढ़ा दिया गया और विश्वविद्यालयों के सभी कार्यों को ब्रिटिश औपनिवेशिक नौकरशाही के नियंत्रण में रख दिया गया। औपनिवेशिक अधिकारियों ने यह कदम भारतीय मध्यम वर्गों के लोगों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने से रोकने के लिए उठाया था।

राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति अपने रुख के संबंध में कर्जन का कहना था कि वह उसकी शांतिपूर्ण मृत्यु प्राप्त करने में सहायता देने का इरादा रखता है। वह भारतीय संस्कृति के प्रति अपने द्वेष को छिपाता नहीं था। कलकत्ता विश्वविद्यालय में अपने एक भाषण में उसने देश की महान सांस्कृतिक विरासत का खुल्लमखुल्ला तिरस्कार किया था।

इस प्रतिक्रियावादी आतरिक नीति का अनुसरण करते हुए कर्जन एशिया म नयी फौजी मुहिमवाजियो की सक्रियतापूर्वक तयारी कर रहा था। उसन तेजी के साथ सना और पुलिस का पुनगठन किया। बोअरो क दमनकर्ता जनरल किचनर को प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया। फौजी व्यय क लिए निर्धारित रकम मे भारी वृद्धि की गयी। उत्तर-पश्चिमी सीमा पर सामरिक महत्व की नयी रेल लाइन बिछायी गयी। सीमावर्ती क्षेत्रो का एक विशेष उत्तर पश्चिमी सीमा प्रात म ले आया गया ताकि अग्रेज उस क्षत्र पर अधिक मजबूत नियत्रण कायम कर सके तथा पठान कबीलो के निरतर सघर्ष पर प्रहार भी कर सक।

लेकिन कर्जन की दमन नीतियो न उपनिवेशवादविरोधी रुखो का मजबूत बनान तथा क्रातिकारी आदोलन को बढान म ही सहायता की।

१८९८ म जल स रिहा होन क बाद तिलक न केसरी के सपादकत्व की जिम्मदारी फिर सभाल ली। महाराष्ट म राष्टीय आदोलन का वामपक्ष अब अधिक सक्रिय हो गया। पुलिस के लिए अर्धवैध खेल और युवा सगठनो को पूर्णत प्रतिबधित करना असभव था जिनम राष्टवादी महाराष्टीय तरुण भविष्य म औपनिवेशिक उत्पीडको क खिलाफ सक्रिय सघर्ष के लिए अपन को तैयार कर रहे थे। तिलक, जो राष्टीय आदोलन क वामपक्ष क सवमान्य नता बन गये थे का प्रभाव अब बम्बई प्रात की सीमाओ क पार दूर तक फैल गया। महाराष्ट्रीय देशभक्तो ओर बगाली राष्टवादियो क बीच सपर्क विशेषकर घनिष्ठ थे।

महाराष्ट्र की तरह बगाल म भी शताब्दियो क सधिकाल म वामपथी राष्टवादियो के विभिन्न अर्धवैध सगठन और सघ कायम हो गय थ। उनक सदस्यो न राष्ट्रीय काग्रेस के नताओ क नरम विरोध क प्रति अत्यत आलोचना त्मक रुख अपनाया ओर उन्होन भारत म ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार का तख्ता उलटन क समर्थन म आदोलन चलाया।

महाराष्ट्र म शिवाजी उत्सवो का अनुकरण करत हुए बगाल म भी आयोजित जनव्यापी शिवाजी उत्सव जबरदस्त देशभक्तिपूर्ण प्रदर्शनो म परिणत हो गय, जो राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन म भारत की जनता की एकजुटता क प्रतीक थे। १९०२ म कलकत्ता म एक गुप्त सगठन कायम किया गया जिसका घोषित लक्ष्य सशस्त्र विद्रोह की तैयारी करना था।

राष्ट्रीय काग्रेस क स्थानीय सगठन भी अधिकाधिक सक्रिय होत जा रह थ उसक प्रातीय सम्मलनो म वामपथी निम्न-पूजीवादी राष्ट्रवादियो की आवाज अधिकाधिक जोर स सुनायी देती थी। वामपथी राष्ट्रवादियो क अन्य

१९०५–१९०८ मे
क्रातिकारी आदोलन की बढती लहर

बीसवीं शताब्दी के प्रारभ मे औपनिवेशिक शासन की आतरिक नीति और क्रातिकारी आदोलन

१८९९ म लार्ड कर्ज़न को भारत का वाइसराय (१८९९–१९०५) नियुक्त किया गया। वह ब्रिटिश साम्राज्यवादियो के घोर प्रतिक्रियावादी और युद्धलालुपो के गुट का प्रतिनिधित्व करता था। कर्ज़न ने राष्ट्रीय आदोलन के पूरी शक्ति के साथ दमन और खुल नसली भेदभाव की नीति का अनुसरण किया। कर्ज़न का प्रशासन ब्रिटिश उद्यमकर्ताओ को सक्रिय समर्थन प्रदान करता था और भारतीय उद्योगपतियो के काय म खुल्लमखुल्ला बाधा डालता था। १९०३ म एक विशेष कानून लागू किया गया जिसका उद्देश्य भारत की प्राकृतिक सपदा का पूर्वेक्षण और उपयोग करने के ब्रिटिश इजारदारियो के प्रयासो को सभी सभव तरीको स आसान बनाना था।

कर्ज़न भारतीय बुद्धिजीवियो से विशेषकर घृणा करता था। उसने कर लगान की न्यूनतम सीमा को पाच सौ रुपये से घटाकर सौ रुपये सालाना कर दिया। इस कदम ने तथाकथित शहरी मध्यम वर्गो के व्यापक हिस्सो को गभीर नुकसान पहुचाया।

१८९८ और फिर १९०४ म भारतीय राष्ट्रीय प्रेस के खिलाफ निर्दिष्ट सरकारी गोपनीयता कानून को अधिक व्यापक कर दिया गया।

नये वाइसराय के सबस पहले कदमो म से एक यह था कि उसने कलकत्ता नगरपालिका की सदस्य सख्या कम कर दी, ताकि उसम सपत्तिशाली भारतीय वर्गो के प्रतिनिधित्व को कम किया जा सके। १९०४ म कर्जन ने एक विश्व विद्यालय सुधार लागू किया। शिक्षा शुल्को को बहुत अधिक बढा दिया गया और विश्वविद्यालयो के सभी कार्यो को ब्रिटिश औपनिवेशिक नौकरशाही के नियत्रण म रख दिया गया। औपनिवेशिक अधिकारियो ने यह कदम भारतीय मध्यम वर्गो के लोगो को उच्च शिक्षा प्राप्त करने से रोकने के लिए उठाया था।

राष्ट्रीय काग्रेस के प्रति अपने रुख के सबध म कर्ज़न का कहना था कि वह उसकी शातिपूर्ण मृत्यु प्राप्त करने मे सहायता देने का इरादा रखता है। वह भारतीय सस्कृति के प्रति अपने द्वेष को छिपाता नही था। कलकत्ता विश्वविद्यालय मे अपने एक भाषण म उसने देश की महान सास्कृतिक विरासत का खुल्लमखुल्ला तिरस्कार किया था।

इस प्रतिक्रियावादी आतरिक नीति का अनुसरण करते हुए कर्जन एशिया में नयी फौजी मुहिमबाजियो की सक्रियतापूर्वक तैयारी कर रहा था। उसने तेज़ी के साथ सेना और पुलिस का पुनर्गठन किया। बोअरो के दमनकर्ता जनरल किचनर को प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया। फौजी व्यय के लिए निर्धारित रकम में भारी वृद्धि की गयी। उत्तर-पश्चिमी सीमा पर सामरिक महत्व की नयी रेल लाइन बिछायी गयी। सीमावर्ती क्षेत्रो को एक विशेष उत्तर पश्चिमी सीमा प्रात में ले आया गया ताकि अग्रेज उस क्षेत्र पर अधिक मजबूत नियत्रण कायम कर सके तथा पठान कबीलो के निरतर सघर्ष पर प्रहार भी कर सके।

लेकिन कर्जन की दमन नीतियो ने उपनिवेशवादविरोधी रुखो को मजबूत बनाने तथा क्रातिकारी आदोलन को बढ़ाने में ही सहायता की।

१८९८ में जेल से रिहा होने के बाद तिलक ने केसरी के सपादकत्व की जिम्मेदारी फिर सभाल ली। महाराष्ट्र में राष्ट्रीय आदोलन का वामपक्ष अब अधिक सक्रिय हो गया। पुलिस के लिए अर्धवैध सैन्य और युवा सगठनो का पूर्णत प्रतिबधित करना असभव था जिनमें राष्ट्रवादी महाराष्ट्रीय तरुण भविष्य में औपनिवेशिक उत्पीडको के खिलाफ सक्रिय सघर्ष के लिए अपने को तैयार कर रहे थे। तिलक, जो राष्ट्रीय आदोलन के वामपक्ष के सर्वमान्य नेता बन गये थे का प्रभाव अब बम्बई प्रात की सीमाओ के पार दूर तक फैल गया। महाराष्ट्रीय देशभक्तो और बगाली राष्ट्रवादियो के बीच सपर्क विशेषकर घनिष्ठ थे।

महाराष्ट्र की तरह बगाल में भी शताब्दियो के सधिकाल में वामपथी राष्ट्रवादियो के विभिन्न अर्धवैध सगठन और सघ कायम हो गये थे। उनके सदस्यो ने राष्ट्रीय काग्रेस के नेताओ के नरम विरोध के प्रति अत्यत आलोचनात्मक रुख अपनाया और उन्होने भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार का तख्ता उलटने के समर्थन में आदोलन चलाया।

महाराष्ट्र में शिवाजी उत्सवो का अनुकरण करते हुए बगाल में भी आयोजित जनव्यापी शिवाजी उत्सव जबरदस्त देशभक्तिपूर्ण प्रदर्शनो में परिणत हो गये जो राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन में भारत की जनता की एकजुटता के प्रतीक थे। १९०२ में कलकत्ता में एक गुप्त सगठन कायम किया गया जिसका घोषित लक्ष्य सशस्त्र विद्रोह की तैयारी करना था।

राष्ट्रीय काग्रेस के स्थानीय सगठन भी अधिकाधिक सक्रिय होते जा रहे थे उसके प्रातीय सम्मेलनो में वामपथी निम्न पूजीवादी राष्ट्रवादियो की आवाज अधिकाधिक जोर से सुनायी देती थी। वामपथी राष्ट्रवादियो ने अन्य

नता – बगाल म विपिनचद्र पाल और अरविद घाप तथा पजाब म लाला लाजपत राय – भी तिलक जैसी ही ख्याति प्राप्त करन लग। इस समय वामपथी राष्ट्रवादियो को नरमदलिया या नरमपथिया क मुकाबले म "गरमन्ली" कहा जाने लगा था।

१६०५ मे बगाल का विभाजन और जन-आदोलन की शुरूआत

क्राति की सभावित शुरूआत को रोकन के प्रयास म ब्रिटिश औपनिवशिक अधिकारियो न राष्ट्रवादी शक्तियो पर खुद ही पहल प्रहार करन का निर्णय किया। इसी उद्देश्य स वाइसराय कर्जन न १६०५ म बगाल का विभाजित करन का निर्णय किया।

बीसवी शताब्दी क प्रारभ म भी बगाल ही राष्ट्रीय मुक्ति-आदालन का मुख्य कन्द्र था। उस समय भारतीय जनता म बगालियो म ही जातीय चेतना सबसे अधिक थी और उनकी एकता देश के इस भाग म राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन के विकास मे एक महत्वपूर्ण कारक थी। पश्चिमी बगाल (बिहार और ओडिसा सहित) तथा पूर्वी बगाल (जिसम असम सम्मिलित था) म बगाल के विभाजन ने धार्मिक और जातीय अतरो को बहुत प्रखर बना दिया। इससे असल म हुआ यह कि पश्चिमी बगाल की आबादी म बाहुल्य बिहारियो और ओडियाओ का हो गया, जब कि पूर्वी बगाल म बगालियो की प्रमुखता के बने रहने के बावजूद आबादी म मुस्लिमो का प्राधान्य हो गया। पूर्वी बगाल के मुस्लिम ज़मीदारो तथा व्यापारियो को यह बताया गया था कि नवगठित प्रात के प्रशासन म मुस्लिम बुद्धिजीवी हिन्दुओ से अधिक महत्वपूर्ण पदो पर काम करेगे।

लेकिन उपनिवेशवादियो की योजनाओ के विपरीत बगाल के विभाजन ने बगाली समाज के सभी सस्तरो को उद्वेलित कर दिया। उद्योग और वाणिज्य मे लगे राष्ट्रीय पूजीपति वर्ग को यह डर पैदा हुआ कि ऐसा न हो कि बगाल का विभाजन स्थापित आर्थिक व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर दे और उनके हितो का प्रतिनिधित्व करनेवाली मुख्य सस्था, वाणिज्य तथा उद्योग मडल (चैबर ऑफ कामर्स एड इडस्ट्री) के प्रभाव को क्षीण कर दे। ज़मीदारो को यह आशका थी कि ऐसा न हो कि विभाजन के बाद स्थायी बदोबस्त की प्रणाली समाप्त कर दी जाये और भूमि करो को बढा दिया जाये। बुद्धिजीवी

वर्ग को आशका थी कि विभाजन के बाद कलकत्ता म प्रशासनिक तथा अन्य सरकारी सस्थाओ म छटनी होगी जिससे उच्च शिक्षाप्राप्त लोगा के बीच बेरोजगारी और भी बदतर हो जायेगी। इस विचार का समर्थन करत हुए बगाल म नरमपथी राष्टवादिया क नता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा कि बगालिया को यह लग रहा है कि उन्ह अपमानित और तिरस्कृत किया जा रहा ह और उनका सपूर्ण भविष्य खतर म है। बनर्जी क विचार म विभाजन बगला भाषी आबादी की बढती एकजुटता तथा जातीय चेतना पर पूर्वनियोजित प्रहार था।

बगाल के विभाजन का स्वागत केवल भूस्वामियो और दलाल पूजीपति वर्ग के कुछ छोट छोटे समूहो तथा मुस्लिम सामती बुद्धिजीवी वर्ग के एक हिस्से न किया। जुलाई, १६०५ म औपनिवशिक अधिकारिया ने बग भग के निर्णय की औपचारिक घोषणा कर दी और अगस्त के प्रारभ म ही कलकत्ता म विशाल विरोध सभाए आयाजित की जान लगी। इनम से एक म ब्रिटिश मालो का बहिष्कार शुरू करन का निणय किया गया। इसके साथ ही राष्टवादी अखबारो, जन सभाओ तथा राष्ट्रीय राजनीतिक सगठना की सभाआ म जनता से भारतीय उद्योग को प्रोत्साहित करन और स्वदशी वस्तुए खरीदन की अपीले की जान लगी।

अपने स्वरूप म आर्थिक प्रतीत होने के बावजूद स्वदशी आदालन शीघ्र ही एक देशव्यापी जन-आन्दोलन बन गया। १६०५ के शरद म यह बगाल की सीमाओ क पार देश क अन्य प्रदेशो विशेष रूप से महाराष्ट्र और पजाब म भी फैल गया। तिलक और उनके अनुयायियो ने इस आदोलन का सक्रिय समर्थन किया। हर जगह स्वदेशी माला की दूकाने और औद्योगिक प्रतिष्ठान खुल गये तथा विदेशी वस्तुओ की बिक्री करनवाली दूकानो पर धरन दिय जान लगे।

बग भग के अमल मे आने के दिन १६ अक्तूबर १६०५ को राष्ट्रीय शोक दिवस घोषित कर दिया गया। कलकत्ता म एक विशाल प्रदर्शन आयाजित किया गया, जिसके दौरान एक बडा जुलूस राष्ट्रीय गीत 'बदमातरम' गाते हुए बग भग को समाप्त करने की शपथ लेन के लिए गगा क तट पर गया। नगर म व्यापारिक कायकलाप ठप्प हो गय लोगो ने उपवास रखे। अपनी पवित्र शपथ के प्रतीक के रूप मे बगालियो न एक दूसरे की कलाइयो पर राखिया बाधी। स्वदेशी आदोलन बढकर ग्रामीण क्षेत्रा म भी फैल गया। बहिष्कार आदोलन का विरोध करनवालो का सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप अनक व्यापारी और विदशी पूजी क दशी दलाल

ववाद हो गये। कलकत्ता तथा बगाल के अन्य नगरो मे मुख्यतया गुप्त समाजो और तरुण दल सगठनो पर आधारित स्वयसेवक सगठन कायम किये गये। स्वयसेवक जो विशेष वर्दी (पीली पगडी और लाल कमीज) पहनते थे जन प्रदर्शनो और सभाओ के मुख्य सगठनकर्ता थे और वे ही ब्रिटिश व्यापारिक प्रतिष्ठानो पर धरना देते थे।

स्वदेशी आदोलन ने राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व को भी प्रभावित किया। १६०५ के अत मे काग्रेस अधिवेशन मे नरमपथी राष्ट्रवादियो के प्रमुख नेता और काग्रेस के अध्यक्ष गोपालकृष्ण गोखले ने बग-भग के खिलाफ प्रतिवाद के एक रूप के तौर पर ब्रिटिश वस्तुओ के बहिष्कार के प्रति अपना समर्थन व्यक्त किया। लेकिन नरमदलियो ने तिलक और गरमदलियो के इस सुझाव का समर्थन नही किया कि स्वदेशी आदोलन को व्यापक बनाया जाय, ताकि उसकी परिधि मे भारत के सभी प्रातो को सम्मिलित किया जा सके और भारत मे जन जीवन के सभी क्षेत्रो मे बहिष्कार लागू किया जा सके।

इस अधिवेशन ने यह प्रदर्शित कर दिया कि नरमदली नेता जन आदोलन के प्रति उदासीन नही रह सकते थे। लेकिन साथ ही उनके हर सभव तरीके से सघर्ष के क्षेत्र को सीमित करने के प्रयासो ने उनके तथा गरमदलियो के बीच गभीर मतभेदो की ओर सकेत किया। राष्ट्रीय आदोलन के भीतर ये मतभेद क्रातिकारी सघर्ष के तेज होने के साथ और भी स्पष्ट हो गये।

स्वदेशी आदोलन का विकास और जन व्यापन

१६०६ के प्रारभ से स्वदेशी आदोलन बगाल के नगरो और गावो तथा देश के अन्य भागो मे हर जगह जनव्यापी साम्राज्यवादविरोधी आदोलन का रूप धारण करते हुए फैलता गया।

बगाल महाराष्ट्र पजाब और अन्य प्रातो मे उग्रपथियो ने अपनी गतिविधिया तेज कर दी। ढाका मे अनुशीलन समिति नामक एक अवैध क्राति कारी सगठन कायम हो गया, जिसने भूमिगत क्रातिकारियो के प्रयासो को समन्वित करने मे सहायता की। बम्बई प्रात और पजाब मे भी इसी तरह के सगठन कायम हो गये। ये गुप्त सगठन शहरी आबादी के निम्न पूजीवादी सस्तरो, विशेष रूप से उच्च विद्यालयो के छात्रो के बीच सक्रिय थे।

वामपथी राजनीतिक विचारो के नये प्रकाशन भी प्रकट होने लगे। इनमे बगाली समाचारपत्र युगातर और वदेमातरम विशेषकर लोकप्रिय थे।

१८५७–१८५९ के जन विद्रोह गरिबाल्दी मात्सीनी और रूसी क्रांति के बारे में पर्चे भी छाप और वितरित किये जाते थे।

अपने भूमिगत कार्यकलापों को कानूनी आड़ प्रदान करने के लिए उग्रपंथियों ने पूरे देश में स्थापित अखाड़ों व्यायामशालाओं और युवा क्लबों तथा स्वदेशी दूकानों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों को भी इस्तेमाल किया। स्वदेशी आंदोलन के जरिये भारतीय निम्न पूंजीवादी राष्ट्रवादियों ने आम जनता को साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन में शामिल करने की कोशिश की। उन्होंने अपने कार्यकलापों को केवल शहरी निम्न पूंजीपति वर्ग तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि मजदूरों और यहां तक कि ग्रामीण आबादी के बीच भी प्रचार कार्य चलाया।

जन सभाओं और प्रदर्शनों को जिनमें अधिकांशतया शहरी आबादी के निम्न पूंजीवादी सस्तर शामिल होते थे मज़दूर वर्ग का समर्थन प्राप्त था। १९०५ के शरद में बम्बई की कपड़ा मिलों में अनेक बड़ी हड़तालें की गयीं जिनके परिणामस्वरूप मजदूरों ने कार्य दिवस को कुछ कम करवा लिया। १९०६ में बंगाल हड़ताल आंदोलन का केन्द्र बन गया।

गरमियों में ईस्ट इंडिया रेलवे में दो बड़ी हड़तालें फूट पड़ीं। कलकत्ता में सरकारी मुद्रणालय के मजदूरों और सफेदपोश कर्मचारियों तथा नगरपालिका कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी। १९०६ के मध्य और उत्तरार्द्ध में वहां अंग्रेजों की कपड़ा मिलों में भी कुछ बड़ी हड़तालें हुईं।

१९०६ की गरमियों और शरद का हड़ताल आंदोलन इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण घटना थी कि मज़दूरों ने केवल विशुद्ध रूप से आर्थिक मांगें ही नहीं, बल्कि अनेक राजनीतिक मांगें भी पेश करना शुरू कर दीं विशेष रूप से उन्होंने ब्रिटिश प्रशासन के नसली भेदभाव के खिलाफ प्रतिवाद करना आरंभ किया। रेलवे और कपड़ा मजदूरों की हड़तालों के दौरान बंगाली निम्न-पूंजीवादी जनवादियों की सहायता से स्थानीय ट्रेड-यूनियन कायम की गयीं। आम जनवादी साम्राज्यवादविरोधी आंदोलन और मजदूर वर्ग के संघर्ष का परस्पर निकट आना राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में एक नये तत्व के शामिल होने का परिचायक था।

उग्रपंथियों (विशेष रूप से बंगाल और पंजाब में) ने किसानों के बीच भी आंदोलन करना आरंभ कर दिया। गांवों में ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार के समर्थन में सभाओं और जलूसों का आयोजन अधिकाधिक तेज होता गया। उग्रपंथी किसानों में क्रांतिकारी पर्चे बांटते थे। इनमें से एक पर्चे में कहा गया था 'हम इन चोरों को अपने शासक कैसे मान सकते हैं जिन्होंने हमारे

उद्यमो को नष्ट कर दिया है, हमारे बुनकरो और ठठेरो की रोजी छीन ली है? वे अपने देश मे उत्पादित वस्तुओ की अनंत मात्राओ का आयात करते है और उन्हे हमारे बाजारो मे हमारे लोगो के जरिये बेचते है और इस तरह हमे हमारी संपदा और हमारे लोगो को रोजी से वंचित कर देते हैं। हम उन लोगो को अपने शासक कैसे मान सकते है, जो हमारे खेतो से फसल लूट लेते है और हमे भूख, ज्वर और प्लेग की दाढ़ो मे झोक देते है? हम इन विदेशियो को अपने शासक कैसे मान सकते है, जो हम पर दिनोदिन नये करो का बोझ लादते है? भाइयो, जितना ही अधिक आप बर्दाश्त करेगे, उतना ही ये धूर्त लोग आपको सतायेगे। हमे साहस करना चाहिए और मुक्ति के साधन की खोज करनी चाहिए। भाइयो, हमारे बिना दुनिया का काम नही चल सकता। हमारे ही पैसे से ये लोग काम किये बिना मुटिया रहे है। वे हमारा खून पीते है। हम यह क्यो बर्दाश्त करे?। हिंदू भाइयो, काली दुर्गा, महादेव और श्रीकृष्ण की शपथ लो, मुसलमान भाइयो अल्लाह की कसम खाओ और हर गाव मे ऐलान कर दो कि हिन्दू और मुसलमान अपनी मातृभूमि के लिए एकसाथ खडे होगे उठो, भाइयो! अपने को मातृभूमि के योग्य पुत्र सिद्ध करो, वीरतापूर्वक लडो और बंग जननी के लिए बलिदान करने को तैयार हो जाओ!"

हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए यह अपील कोई सायोगिक बात नही थी। जन आदोलन के सीधे दमन—सभाओ, जलूसो और 'वंदेमातरम' गान पर प्रतिबंध सभाओ को तितर बितर करने, आदि के अलावा ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियो ने हिन्दू और मुस्लिम समुदायो के बीच धार्मिक द्वेष भडकाकर आदोलन मे फूट डालने के अपने प्रयासो पर सब कुछ दाव पर लगा दिया था। लेकिन १९०५–१९०६ मे वे गभीर हिन्दू-मुस्लिम विवाद पैदा करने मे नाकाम रहे। बढते क्रातिकारी आदोलन की इस स्थिति मे शासक ब्रिटिशभक्त शक्तिशाली मुसलमान सामतो तथा दलाल पूजीपति वर्ग को समर्थन के लिए जुटाने की बेतहाशा कोशिशो मे लग गये।

१९०६ के शरद मे "प्रमुख मुस्लिमो" के एक प्रतिनिधिमडल की नये वाइसराय लार्ड मिटो (१९०६–१९१०) से मुलाकात की व्यवस्था की गयी। प्रतिनिधिमडल द्वारा वाइसराय को दिये गये ज्ञापन मे निवेदन किया गया था कि नगरपालिकाओ और विधान परिषदो मे मुस्लिमो के लिए एक विशेष निर्वाचन क्षेत्र रखे जाय। शक्तिशाली मुस्लिम सामतो के इन दावो का ब्रिटिश औपनिवेशिक नौकरशाही से अनुकूल समर्थन प्राप्त हुआ। यह घोषणा की

गयी कि पूर्वी बगाल के मुस्लिमो को प्रशासकीय सेवा मे गुजाइश पैदा होने पर विशेष सुविधाए प्रदान की जायगी।

उसी वर्ष दिसम्बर मे ढाका मे मुस्लिम लीग नामक एक प्रतिक्रियावादी ब्रिटिश समर्थक सगठन कायम किया गया जिसका उद्देश्य भारत के मुसलमानो मे ब्रिटिश अधिकारियो के प्रति वफादारी की भावना पैदा करना था।

उसी वर्ष कुछ राज्यभक्त और प्रतिक्रियावादी हिदुओ ने अधिकारियो के समर्थन से श्री भारत धर्ममडल नामक धार्मिक सगठन कायम किया।

लेकिन आदोलन के विकास की प्रारभिक अवस्थाओ मे अग्रेज भारतीय राष्ट्रवादियो के विभिन्न गुटो के बीच मतभेदो से लाभ उठाने मे सफल नही हो पाये। नरमपथियो ने हालाकि कुछ शर्तो के साथ स्वदेशी आदोलन को समर्थन देना जारी रखा, जिसने भारतीय स्वामित्व मे पूजीवादी प्रतिष्ठानो के विकास के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया। वस्तुत भारतीय स्वामित्व मे उद्योग के समर्थन मे इस आदोलन के दौरान ही टाटा इस्पात कारखाने ने अपने सात हजार हिस्सेदारो को शेयर दिये थे। भारतीय पूजीपति वर्ग का प्रमुख हिस्सा अब ब्रिटिश निर्मित वस्तुओ के बहिष्कार के लाभ बटोरने लगा था। यह उल्लेखनीय है कि १९०५ और १९०७ के बीच भारतीय कपडो की कीमतो मे आठ प्रतिशत की वृद्धि हुई जब कि ब्रिटिश कपडो की कीमतो मे २५ प्रतिशत की गिरावट आयी।

काग्रेस मे गरमदलियो के मन मे नरमपथियो के साथ खुली फूट की बात नही आयी थी। १९०६ के शरद मे कलकत्ता मे राष्ट्रीय काग्रेस के अधि-वेशन मे गरमदलियो ने अध्यक्ष पद के लिए तिलक को अपने उम्मीदवार के रूप मे प्रस्तुत किया। लेकिन नरमदलियो ने उन्हे निर्वाचित न होने देने के लिए यह पद वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ दादाभाई नौरोजी को दिलवा दिया, जिन्हे भारतीय राष्ट्रवादियो के बीच व्यापक सम्मान प्राप्त था।

कलकत्ता अधिवेशन मे गरमदलियो के दबाव से राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन मे पहली बार स्वराज्य की माग उठायी गयी। उस समय स्वराज्य का मतलब स्वशासी ब्रिटिश उपनिवेशो द्वारा प्राप्त स्थिति के अनुरूप ब्रिटिश साम्राज्य के ढाचे के भीतर स्वशासन की प्राप्ति माना जाता था।

राष्ट्रीय काग्रेस के अधिवेशन ने यह प्रदर्शित कर दिया कि भारत मे राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन पर पहली रूसी क्राति ने कितना गहरा असर डाला था। अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने कहा कि यदि रूसी किसान स्वशासन के लिए सिर्फ तैयार ही नही है, बल्कि उस अधिकार को पृथ्वी पर सबसे शक्ति

खिलाफ जन-सभाओ, जलूसो और हडतालो मे भाग लिया। लाला लाजपत राय और अजीत सिह के नेतृत्व मे निम्न पूजीवादी जनवादियो ने भारतीय सैनिको के साथ सपर्क कायम किया जो जनसभाओ मे भाग लेने लगे। जब लाजपत राय और अजीत सिह को गिरफ्तार करके निर्वासित कर दिया गया तो इससे रावलपिडी नगर मे भारतीय सैनिको का विद्रोह फूट पडा जिसे ब्रिटिश इकाइयो ने कुचल दिया। पजाब मे नगरो मे होनेवाले प्रदर्शनो मे स्थानीय किसान भी भाग लेते थे। आदोलन वस्तुत राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण करने लगा।

बगाल मे भी सघर्ष अधिक तेज़ हो गया जहा वन्देमातरम सप्रदाय नामक एक नये गुप्त सगठन की स्थापना हुई। इस सगठन ने सशस्त्र कार्रवाई की तैयारी करना शुरू कर दिया। राष्ट्रवादी स्वयसेवक अधिकाधिक प्रायिकता से बाज़ारो की नाकाबदी करने और ब्रिटिश वस्तुओ को नष्ट करने लगे। प्रदर्शनो और सभाओ का अत अक्सर पुलिस के साथ मुठभेडो मे होता था। इस तरह की एक मुठभेड मे कलकत्ता मे पुलिस का एक दल प्रदर्शनकारियो के पक्ष मे जा मिला।

अनेक शहरो मे हडतालो का सिलसिला फिर शुरू हो गया। पूववर्ती वर्ष १६०६ की तरह ही रेलवे मजदूर इसके हिरावल मे थे। वसत मे बम्बई के रेलवे मजदूरो ने हडताल कर दी और अक्तूबर मे एक दस दिवसीय हडताल हुई, जिसमे ईस्ट इडियन रेलवे के मज़दूरो और सफेदपोश कर्मचारियो ने भाग लिया। बगाल का आर्थिक जीवन ठप्प हो गया कोयले के अभाव से कलकत्ता और अन्य नगरो मे फैक्टरिया बद हो गयी बडी सख्या मे माल से लदी मालगाडियो के जमाव के कारण स्टेशन अवरुद्ध हो गये। पर सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि वाइसराय ने अपने को बाकी सपूर्ण देश से कटा हुआ पाया, जिसके कारण क्रातिकारी उभार मे फसे देश मे औपनिवेशिक सरकार की प्रतिष्ठा को गभीर क्षति पहुची। साल के अत तक जगह-जगह हडतालें होती रही। पहले की तरह ही उग्रपथी इनके सगठन मे सक्रिय भूमिका अदा कर रहे थे।

राष्ट्रवादियो के बीच गहराता सघर्ष। राष्ट्रीय काग्रेस मे फूट

क्रातिकारी सघर्ष के तेज़ होने के साथ ही नरमदलियो और गरमदलियो के बीच मतभेद अधिकाधिक गभीर होते गये। नरमदली जो बडे भारतीय पूजीपति वर्ग पूजीवादी बुद्धिजीवी वर्ग के ऊपरी सस्तरो और राष्ट्रीय आदोलन

गाली निरकुश शासन मे छीनने मे भी सफल हो गये है, यदि एशिया के पूर्व म चीन म और पश्चिम मे फारस मे हलचल मच रही है यदि जापान पहले ही जागत हो चुका है, यदि रूस अपनी मुक्ति के लिए वीरतापूवक लड रहा है तो हम भारत ब्रिटिश साम्राज्य के तथाकथित स्वतत्र नागरिक कैसे निरकुश शासन के अधीन सभी अधिकारो से वचित होकर रह सकते है?

राष्ट्रीय आदोलन पर पहली रूसी क्राति (१९०५) का प्रभाव। सघर्ष की दूसरी अवस्था स्वराज्य

पहली रूसी क्राति ने गरमदलियो के कार्यकलाप को ही प्रभावित किया। रूस म क्रान्तिकारी घटनाओ की खबरे मुख्यतया यूरोप के पूजीवादी समाचारपत्रो के जरिये भारत पहुचती थी जो आम तौर पर वैयक्तिक आतक की कार्रवाइयो पर ही ध्यान केद्रित करते हुए उन्हे 'रूसी तरीको" की सज्ञा देते थे। लेकिन क्रातिकारी घटनाओ के बारे मे गुप्त रूप से छपी पुस्तिकाए भी भारत पहुचती थी। भारत म निम्न पूजीवादी जनवादी तथा गुप्त समाजो के सदस्य जो रूसी क्राति की व्याख्या अपने दृष्टिकोण से करते थे देशभक्तिपूर्ण रुझानवाले नौजवानो को आग्नेय अस्त्र चलाना सिखाने लगे थे।

यूरोप म प्रवासी भारतीय क्रातिकारियो के कार्यकलापो ने भी रूस के क्रान्तिकारी अनुभव को फैलाने म सहायता की। १९०५-१९०७ की अवधि म पहले लदन और फिर पेरिस मे निवासित भारतीय क्रातिकारियो का एक सगठन कायम किया गया। इन उत्प्रवासियो ने रूसी सामाजिक जनवादियो के साथ सपर्क कायम किये, जिन्होने भारतीयो को अपना क्रातिकारी अनुभव प्रदान किया। दूसरे इटरनेशनल की स्टुटगार्ट काग्रेस म भारतीय प्रतिनिधियो ने उपनिवेशवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ भाषण दिये। उन्होने कहा कि भारतीय देशभक्त रूसी क्राति के वीरतापूर्ण उदाहरण की सराहना करते है।

रूस म क्रातिकारी तूफान की प्रतिध्वनि ने भारत पहुचकर देश म क्रातिकारी उभार को और तेज कर दिया। राष्ट्रीय काग्रेस का कलकत्ता अधिवेशन मानो सघर्ष की पहली अवस्था की समाप्ति का परिचायक था। १९०७ के बाद स्वदेशी आदोलन स्वराज्य आन्दोलन म विकसित हो गया।

इस जन आदोलन की हलचल १९०७ के वसत म पजाब म अपने चरम पर पहुच गयी। मजदूरो सहित शहरी आबादी के व्यापक हिस्सो ने अग्रेजो के

खिलाफ जन सभाओ, जलूसो और हडतालो मे भाग लिया। लाला लाजपत राय और अजीत सिंह के नेतृत्व मे निम्न पूजीवादी जनवादियो ने भारतीय सैनिको के साथ सपर्क कायम किया जो जन सभाओ मे भाग लेने लगे। जब लाजपत राय और अजीत सिंह को गिरफ्तार करके निर्वासित कर दिया गया, तो इससे रावलपिंडी नगर मे भारतीय सैनिको का विद्रोह फूट पडा जिसे ब्रिटिश इकाइयो ने कुचल दिया। पजाब मे नगरो मे होनेवाले प्रदर्शनो मे स्थानीय किसान भी भाग लेते थे। आदोलन वस्तुत राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण करने लगा।

बगाल मे भी सघर्ष अधिक तेज हो गया जहा वदेमातरम सप्रदाय नामक एक नये गुप्त सगठन की स्थापना हुई। इस सगठन ने सशस्त्र कार्रवाई की तैयारी करना शुरू कर दिया। राष्ट्रवादी स्वयसेवक अधिकाधिक प्रायिकता से बाजारो की नाकाबदी करने और ब्रिटिश वस्तुओ को नष्ट करने लगे। प्रदर्शनो और सभाओ का अत अकसर पुलिस के साथ मुठभेडो मे होता था। इस तरह की एक मुठभेड मे कलकत्ता मे पुलिस का एक दल प्रदर्शनकारियो के पक्ष मे जा मिला।

अनेक शहरो मे हडतालो का सिलसिला फिर शुरू हो गया। पूर्ववर्ती वर्ष १९०६ की तरह ही रेलवे मजदूर इसके हिरावल मे थे। वसत मे बम्बई के रेलवे मजदूरो ने हडताल कर दी और अक्तूबर मे एक दस-दिवसीय हडताल हुई, जिसमे ईस्ट इंडियन रेलवे के मजदूरो और सफेदपोश कर्मचारियो ने भाग लिया। बगाल का आर्थिक जीवन ठप्प हो गया कोयले के अभाव से कलकत्ता और अन्य नगरो मे फैक्टरिया बद हो गयी बडी सख्या मे माल से लदी मालगाडियो के जमाव के कारण स्टेशन अवरुद्ध हो गये। पर सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि वाइसराय ने अपने को बाकी सपूर्ण देश से कटा हुआ पाया जिसके कारण क्रातिकारी उभार मे फसे देश मे औपनिवेशिक सरकार की प्रतिष्ठा को गभीर क्षति पहुची। साल के अत तक जगह जगह हडताले होती रही। पहले की तरह ही उग्रपथी इनके सगठन मे सक्रिय भूमिका अदा कर रहे थे।

राष्ट्रवादियो के बीच गहराता सघर्ष। राष्ट्रीय काग्रेस मे फूट

क्रातिकारी सघर्ष के तेज होने के साथ ही नरमदलियो और गरमदलियो के बीच मतभेद अधिकाधिक गभीर होते गये। नरमदली जो बडे भारतीय पूजीपति वर्ग पूजीवादी बुद्धिजीवी वर्ग के ऊपरी सस्तरो और राष्ट्रीय आदोलन

के समथक जमीदारो का प्रतिनिधित्व करत थ, एक सरक्षणवादी नाति क कार्यान्वयन, विदेशी पूजी पर कुछ प्रतिबधा, तथा वाइसराय और प्रातीय गवर्नरो के अधीन विधान परिषदो म भारत के सपत्तिशाली वर्गो क अधिक व्यापक प्रतिनिधित्व के जरिये स्वशासन के विस्तार से ज्यादा कुछ नही मागत थे। उनकी माग थी कि इन परिषदा को कुछ मामला म औपनिवेशिक प्रशासन के कार्यकलापो को नियन्त्रित करने क अधिकार दिय जाने चाहिए।

गरमदली भारत की पूर्ण स्वतत्रता क समर्थक थे। हालाकि उनम से अधिकाश सशस्त्र विद्रोह के पक्ष म नही थे, उनका मत था कि स्वतत्रता राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन म जनता की सक्रिय भागीदारी क बिना नही प्राप्त की जा सकती। वे मानते थे कि भविष्य म भारत म सघीय जनतत्र स्थापित हागा और रियासतो को समाप्त कर दिया जायेगा। हालाकि गरमदलियो क पास भारत की आतरिक सामाजिक समस्याआ के समाधान का कोई सुस्पष्ट कार्यक्रम नही था, पर जनता से सघर्ष म भाग लेन के उनके आह्वान ने वस्तुगत रूप से मजदूरो और किसाना को वर्ग सघर्ष म सम्मिलित होन के लिए प्रोत्साहित किया। गरमदलियो की कमजोरी इस तथ्य म निहित थी कि उनके पास अपना कोई राष्ट्रव्यापी सगठन नही था और वे केवल राष्ट्रीय काग्रस क प्रातीय सगठनो के भीतर काम कर रहे थे।

जनता के क्रातिकारी उपक्रम की उन्मुक्ति और हडताल आदोलन के विस्तार न भारतीय पूजीपति वर्ग के ऊपरी सस्तरा और नरमदलियो को आशकित कर दिया। बम्बई के बडे फैक्टरी मालिको और गोखले और बनर्जी जैसे नरमदली नेताओ के भाषणो मे औपनिवेशिक अधिकारियो के साथ समझौता करने की आवाजे अधिकाधिक मुखर होने लगी।

दक्षिणपथी राष्ट्रवादिया के इस पश्चगमन को तेज करने के लिए वाइसराय मिटो ने घोषणा की कि प्रशासकीय सुधार के लिए काम शुरू हो गया है। औपनिवेशिक धिकारि न बगाल के ... को आश्वासन दिया कि उनके अधिकार ज... रहगे।

१६०७ के वसत ... नेतृत्व ... का एक प्रतिनिधिमडल वाइसर ... के ... म काबू के बाहर जाते ... का ... न किया। अन्य प्रा ... आने लगे, उस ... द्वारा भी ...

इधर तिलक देश भर म घूमते हुए गरमदलिया क लिए समर्थन को मजबूत करन का अभियान चला रह थ। उनक भाषणा को सपूर्ण भारतीय प्रेस म विस्तार से प्रकाशित किया जाता था। उनके द्वारा भारतीय सविधान को दड सहिता की सना देन म पूरा राष्ट उनम सहमत था।

राष्टीय काग्रस के अगले अधिवशन म अध्यक्ष पद के लिए नामजदगी करन क प्रश्न पर तीव्र विवाद पैदा हो गया लेकिन अब भी गरमदली तिलक को यह पद न दिलवा सके।

सूरत म हुए इस अधिवशन क अधिकाश प्रतिनिधि दक्षिणपथी थ। उदघाटन सभा म ही तिलक न नरमपथियो पर पिछले अधिवशन म स्वीकृत स्वराज्य के आदोलन को त्याग दने का आरोप लगाया। सभा का अत हाथापाई म हुआ और नरमदलिया न पुलिस को हस्तक्षेप करन के लिए बुला लिया। अगले दिन दोनो गुटो न अलग अलग सभाए की। नरमदलिया क भाषणा तथा प्रस्तावो स यह स्पष्ट हो गया कि वे साम्राज्यवादिया क समक्ष आत्म-समर्पण कर रहे है। गरमदलियो ने अपना सगठन कायम करन का असफल प्रयास किया, जिसक बाद उन्हान जन आदोलन का और विस्तार करन की अपील की। काग्रस म फूट अब एक निर्विवाद तथ्य बन गया था।

जन सघर्ष का विकास।
बम्बई मे राजनीतिक हडताल

नरमपथियो के आत्म-समर्पण के बाद बगाल म जन-आदोलन मे उतार आ गया, जब कि गुप्त समाजो की गतिविधिया वैयक्तिक आतक की कार्रवाई तक ही सीमित थी। सघर्ष का केन्द्र अब महाराष्ट्र और दक्षिण भारत बन गया।

१९०८ के वसत म तिन्नैवेली और तूतीकोरिन नगरो मे एक व्यापक आदोलन शुरू हो गया, जा उस क्षेत्र म गरमदली सगठनो के नतृत्व मे आम राजनीतिक हडताल मे परिणत हा गया। ब्रिटिश फौजो न इस आदोलन को निर्ममतापूर्वक कुचल दिया।

महाराष्ट्र म गरमदली बम्बई प्रात के हर ताल्लुके मे अपने केन्द्र कायम करन के लिए व्यापक पैमाने के सागठनिक कार्य मे लग गये। उन्होंने बम्बई क मजदूरो के बीच अपना कार्य तेज कर दिया जिन्होने अनेक बडी हडताल सगठित की। इनमे से एक – तारबाबुओ की हडताल – अन्य नगरो मे भी फैल गयी।

अनुरूप ढाल लिया। निम्न पूजीवादी क्रातिकारी जनवादियो की विचारधारा की प्रगति भारतीयो की बढती राष्ट्रीय चेतना मे अभिव्यक्त हुई। तिलक, विपिनचद्र पाल अरविद घोष और अन्य गरमदलियो के लेखो और भाषणो मे यह स्पष्ट रूप मे लक्षित होता था।

लेकिन १६०५-१६०८ की स्थानीय स्वरूप की घटनाओ ने राष्ट्रीय आदोलन की कमजोरी को भी सामने ला दिया, जो स्वय देश के आर्थिक और सामाजिक विकास के तत्कालीन स्तर का परिणाम थी। दो मुख्य समस्याए थी राष्ट्रीय शक्तियो की पांतो मे फूट और निम्न पूजीवादी जनवादियो के राष्ट्रव्यापी सगठन का अभाव।

हालाकि बीसवी शताब्दी के पहले दशक की घटनाओ ने जनता को राष्ट्रीय आदोलन मे सम्मिलित करने की सभावनाओ को स्पष्ट कर दिया था (जो साम्राज्यवादविरोधी सघर्ष की सफलता की अनिवार्य पूर्वापेक्षा थी), किसानो का जो भारतीय आबादी का सबसे बडा हिस्सा थे, बहुलाश अभी राजनीतिक सघर्ष के लिए पर्याप्त चेतना नही प्राप्त कर पाया था।

राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन मे इस अवस्था का ऐतिहासिक महत्व इस तथ्य मे निहित है कि यह भारतीय समाज के उन वर्गो और सस्तरो के राजनीतिक जागरण के प्रारभ का परिचायक था जो आगे चलकर तीसरे दशक की क्रातिकारी प्रगति के दौरान उपनिवेशवादविरोधी सघर्ष की मूल प्रेरक शक्ति बने।

प्रथम विश्व युद्ध से पहले और युद्ध के वर्षो का भारत

मार्ले मिटो सुधार

बम्बई की राजनीतिक हडताल के बाद जन आदोलन मे एक अस्थायी मदी आ गयी। कुछ हद तक इसका कारण उपनिवेशवादविरोधी शिविर के भीतर फूट को गहरा बनाने की आग्ल-भारतीय अधिकारियो की आतरिक नीति थी। पहले की तरह ही ब्रिटिश प्रशासन रिआयतो और दमन की नीति पर चलता रहा।

एक ओर औपनिवेशिक शासन के सक्रिय विरोधियो को निर्मम दमन का

निकार बनाया गया। १६०८–१६१२ के वर्षों में भूमिगत ब्रिटिशविरोधी संगठनों के खिलाफ पास किये गये कानूनों – १६०८ के विस्फोटक पदार्थ अधिनियम १६०८ और १६१३ के दंड विधि (संशोधन) अधिनियमों – का उद्देश्य आतंक की नीति को वैध आधार प्रदान करना था।

विद्रोह के उद्देश्य से की जानेवाली सभाओं को प्रतिबंधित करने की मंशा से जारी किये १६०७ के अस्थायी कानून को पहले तो १६११ तक विस्तारित किया गया और फिर अनिश्चित काल के लिए और बढ़ा दिया गया। १६१० में एक नया भारतीय प्रेस अधिनियम लागू हुआ जिसमें औपनिवेशिक अधिकारियों को राष्ट्रवादी प्रेस को सताने के लिए व्यापक अवसर मिले। कुछ ही वर्षों में सैकड़ों भारतीय प्रकाशन बंद या जब्त कर दिये गये अथवा उन पर भारी जुर्माने लगाये गये।

दूसरी ओर अंग्रेजों ने भारत में अपने समर्थक संपत्तिशाली वर्गों (राजाओं सामंतों भूस्वामियों विदेशी पूंजी के देशी दलालों आदि) की स्थिति मजबूत बनाने और राष्ट्रीय आंदोलन के नरमदली नेताओं को अपने पक्ष में लाने के लिए विभिन्न राजनीतिक कदम लागू किये।

१६०६ में वाइसराय मिंटो और भारत मंत्री मार्ले ने नया भारत शासन विधान (इंडियन कौंसिल एक्ट) लागू किया जो मार्ले मिंटो सुधारों के नाम से प्रसिद्ध है। १६१० में लागू इस कानून के अनुसार नये वाइसराय की केन्द्रीय (शाही) विधान परिषद (इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल) में निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ाकर कुल सदस्य संख्या के आधे के बराबर कर दी गयी जब कि बड़े प्रांतों में गवर्नरों की विधान परिषदों में निर्वाचित प्रतिनिधियों का बहुमत हो गया। इसके साथ ही तीन प्रकार के प्रतिनिधित्व – सामान्य भूस्वामी और मुस्लिम – की प्रणाली लागू की गयी और मुस्लिम प्रतिनिधियों के लिए सुरक्षित स्थानों की संख्या बढ़ा दी गयी। इसके अलावा जहां भूस्वामियों और मुस्लिम मतदाताओं का प्रत्यक्ष मताधिकार था सामान्य सूची के प्रतिनिधियों का चुनाव दो या तीन चरणों में होता था। इन कार्रवाइयों के परिणामस्वरूप सामंतों और मुस्लिम समुदाय के नेताओं को हिन्दू पूंजीपति वर्ग और पूंजीवादी बुद्धिजीवियों के ऊपरी वर्गों की तुलना में विशेषाधिकारपूर्ण स्थिति प्राप्त हो गयी यह सब हिन्दू और मुस्लिम समुदायों को एक दूसरे के खिलाफ खड़ा करने के उद्देश्य से अनुसृत ' फूट डालो और राज करो ' की नीति के अनुरूप था।

१६०६ के प्रशासनिक सुधारों से अधिसंख्य भारतीयों का कोई लाभ न

दिलचस्पी स मिला। भारत की क्लासिकी कला म इस दिलचस्पी का वद्वान म ब्रिटन क कला इतिहासन और कलकत्ता कला विद्यालय क प्रिंसिपल ई० बी० हैवल और उनक भारतीय सहयोगी आनद कुमारस्वामी न महत्वपूर्ण भूमिका अदा की, जिन्होन भारतीय कलाओ और शिल्पो क अध्ययन और पुनरुज्जीवन के लिए बडा प्रयास किया था।

उन्नीसवी शताब्दी क अत म कुछ खास प्रकार की शिल्प वस्तुओ म यूरोपीय और स्थानीय कलाप्रमियो की दिलचस्पी बढन स भारतीय अनुप्रयुक्त कलाओ (प्रस्तर उत्कीर्णन, धातुशिल्प, काष्ठशिल्प जवाहरात, मृत्तिकाशिल्प, कपडा बुनाई कढाई, आदि) की परपराओ को प्रोत्साहित करन म सहायता मिली। किंतु काफी हद तक यूरोपीय उपभोक्ता को ध्यान म रखकर बनायी गयी शिल्प वस्तुओ (कश्मीरी शाल, आभूषणो आदि) म कुछ विदेशी प्रभाव भी देखा जा सकता था।

क्लासिकी भारतीय चित्रकला की परपराओ को बनाय रखन तथा विकसित करने म लग विभिन्न भारतीय कलाकारों न चित्रकला म यूरोपीय और प्राच्य (जापानी और चीनी) शैलिया अपनायी। भारतीय ललित कलाओ म इस आदोलन के सस्थापक अवनीन्द्रनाथ ठाकुर (१८७१–१९५१) थ, जो कलकत्ता म रहते थ। वह उस सुप्रसिद्ध ठाकुर–टैगोर–परिवार के सदस्य थे जिसन देश के प्रबोधन म बहुत योगदान किया था और रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैस महान कवि को जन्म दिया था। इस शैली के अधिकाश अनुयायी बगाली थे इसी लिए भारतीय कला म यह आदोलन बगाली पुनर्जागरण के नाम स प्रसिद्ध हुआ। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, नन्दलाल बोस, ए० के० हाल्दार समरेन्द्रनाथ गुप्त एस० सी० उकील, आदि की कृतियो न आधुनिक भारतीय चित्रकला और ग्राफिक कला की आधारशिला रखी।

नयी भारतीय सस्कृति का उभार, जो औपनिवेशिक भारत म पूजावादी समाज के जन्म तथा विकास से सबद्ध था, सर्वाधिक सुस्पष्ट रूप से भारतीय भाषाओ के साहित्य के मुकुलन म व्यक्त होता है। बीसवी शताब्दी के प्रारंभिक दशकों मे भारतीय लेखको ने यूरोपीय गद्य शैलिया–उपन्यास, लघु कहानी और निबध–को आत्मसात करन की लबी और सजटिल प्रक्रिया पूरी की। साहित्यकारो न अपनी गद्य कृतिया, नाटको तथा काव्यो के लिए भी विषय वस्तुए अधिकाशत भारत क अतीत से ली। भारत के औपनिवेशिक सन्दर्भ म विगत की लडाइयो और विद्रोहो के वीरो का चरितगायन ही भारतीय लेखको को अपन पाठको म देशभक्ति की भावनाए विकसित करने की वस्तुत

एकमात्र सभावना प्रदान करता था। ऐतिहासिक और वीरोचित विषय वस्तुआ पर इस ध्यान सकेद्रण का परिणाम यह हुआ कि आधुनिक काल का भारतीय साहित्य स्वरूप म लबे समय तक मुख्यतया रोमाटिक बना रहा।

लेकिन यह भी उल्लेखनीय है कि साहित्यिक दृष्टि स वस्तुत उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यासा के अलावा ऐसी अनेक घटिया कृतिया भी रची गयी जिनमे पौराणिक और ऐतिहासिक विषय वस्तुआ का रोमाटिक विवेचन विकृत होकर सामती विगत का प्रतिक्रियावादी आदर्शीकरण मात्र बनकर रह गया है।

बीसवी शताब्दी के प्रारभ म इस रोमाटिसिज्म का स्थान आलोचनात्मक यथार्थवाद ग्रहण करने लगा वीरोचित और रोमाटिक विषय वस्तुओ को इस ढग स रूपातरित किया जाने लगा कि भारतीय गद्य म सामाजिक लक्ष्य अधिक मुखर बन जाये। अब ऐसी समस्याओ पर अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा था, जिनमे शिक्षित भारतीय युवजनो के प्रगतिशील हिस्सा की दिलचस्पी थी। प्रमुख भारतीय लेखको की कृतियो म सामाजिक सघर्ष स जुडी विषय वस्तुए पहले से अधिक स्पष्ट रूप से सामने आन लगी।

नयी साहित्यिक प्रवृत्तिया बगाल म अत्यत जीवत रूप म अभिव्यक्त हुई। बगला साहित्य न भारत के नये साहित्यो म अपना प्रमुख स्थान बनाये रखा। उसके मूर्द्धन्य प्रतिनिधि महान भारतीय लेखक सगीतकार कलाकार दार्शनिक, शिक्षक और लोकसेवक रवीन्द्रनाथ ठाकुर (१८६१–१९४१) थे जिन्होने बीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध म अपने देश के सास्कृतिक जीवन पर जबरदस्त प्रभाव डाला। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम भारतीय साहित्य के इतिहास म अपने उपन्यासो कहानियो साहित्यिक आलोचना शब्द चित्रा दार्शनिक निबधो, कविताओ और नाटको की बदौलत सदा स्वर्णाक्षरो म अकित रहेगा। उन्नीसवी शताब्दी के अतिम दशका म ही वह काव्य सग्रहा नाटको और लघु कहानियो के लेखक के रूप म सुप्रसिद्ध हो चुके थे। लेकिन बीसवी शताब्दी मे बगाली बुद्धिजीवियो की मानसिक दुविधाओ और आदर्शो के बारे म अपने उपन्यास गोरा' (१९०७–१९१०) तथा 'घर और बाहर' (१९१५–१९१६) प्रकाशित करने के बाद वह एक चितक और उपन्यासकार के रूप म भी सुविख्यात हो गये। भारतीय साहित्य म राष्ट्रीय आदोलन का विषय सबसे पहले उठाने के कारण घर और बाहर' विशेष रूप स प्रभावी सिद्ध हुआ। इस कृति ने स्वदेशी और स्वराज्य आदोलना क दौरान राष्ट्रीय जीवन म सक्रिय विभिन्न धाराओ के प्रति लेखक के मत को अभिव्यक्त किया। अपने कृतित्व के माध्यम से जिसे विश्वव्यापी मान्यता प्राप्त हुई रवीन्द्रनाथ

ठाकुर ने भारतीय साहित्य म आलोचनात्मक यथार्थवाद की विजय का सुनिश्चित किया। १९१३ म रवीन्द्रनाथ ठाकुर साहित्य के लिए नाबेल पुरस्कार प्राप्त करनेवाले प्रथम भारतीय बने।

इस अवधि म यथार्थवादी शैली के दूसरे महत्वपूर्ण बगला लेखक शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय (१८७६–१९३८) थे, जिनके उपन्यास तत्कालीन बगाल के जन जीवन को वास्तविक रूप म अभिव्यक्त करते है।

आधुनिक काल के अन्य भारतीय साहित्यो म भी इसी तरह की प्रक्रियाए–नयी शैलियो का विकास और आलोचनात्मक यथार्थवाद का उदय–पायी जाती हे। महाराष्ट्र म इन प्रवृत्तियो के मार्गदर्शक आधुनिक मराठी गद्य के जनक हरिनारायण आप्टे (१८६४–१९१९) थे, जिनके विचार कुछ सामानक तिलक स प्रभावित थे। हिन्दी (श्रीनिवास दास, किशारीलाल गास्वामी आदि) तलुगु (श्रीनिवास राव, वी० वी० शास्त्री, आदि) और अन्य भारतीय भाषाओ के अनेक उपन्यासकारो और नाटककारो ने भी एतिहासिक विषय वस्तुओ का सहारा लिया। आधुनिक ओडिया साहित्य के जनक फकीर मोहन सेनापति (१८४७–१९१८) ने अपने उपन्यास छ बीघा आठ लट्ठा ज़मीन (१९०२) म भारतीय ग्रामीण जीवन की ज्वलत सामाजिक समस्याओ का विवेचन किया।

नयी विधाओ के साथ साथ परपरागत विधाए मुख्यतया काव्य और कुछ हद तक नाट्य लेखन म, विकसित होती रही। लेकिन अभिनव परिवर्तन की चपेट म काव्य लेखन भी आ गया था काव्य की अतर्वस्तु और अतर्निहित सदेश परिवर्तित होने लगे थे। इसी काल म आधुनिक भारत के एक दूसरे असाधारण कवि मुहम्मद इकबाल (१८७३–१९३८) ने उर्दू, फारसी और पजाबी म अपनी रचनाए प्रकाशित करना आरभ किया। इकबाल के काव्य म सामाजिक विषय-वस्तुओ और देशप्रेम ने बीसवी शताब्दी के प्रारभ म ही एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था।

भारत की विभिन्न जातियो के इन नये साहित्यो के उभार मे साहित्यिक पत्रिकाओ और प्रमुख राष्ट्रीय लेखको तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियो द्वारा स्थापित भारतीय भाषाओ और साहित्य के अध्ययन केन्द्रो ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इनका एक उदाहरण काशी नागरी प्रचारिणी सभा है जो हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास के अध्ययन तथा प्रचार के लिए १८९३ मे कायम की गयी थी। हिन्दी साहित्य पर महावीरप्रसाद द्विवेदी, उर्दू साहित्य पर एम० एच० आज़ाद और तमिल साहित्य पर एस० अटयर की कृतिया

उन कृतियो मे से है, जिन्होने भारतीय साहित्यिक आलोचना की आधारशिला रखी।

नयी प्रवृत्ति के इन लेखको की कृतिया म बोलचाल के मुहावरो से युक्त एक आधुनिक जीवत भाषा मूर्त रूप ग्रहण करने लगी। उनम से कुछ ने साहित्यिक भाषा के वास्तीवक सुधारको के रूप म ख्याति अर्जित की उदाहरणार्थ तेलुगु लेखक कदुकूरि वीरेशलिगम (१८४८–१९१९) और गुरज़ाडा अप्पाराव (१८६१–१९१५)।

स्वतत्रता आदोलन ने आधुनिक और परपरागत साहित्य की अतर्वस्तु और प्रतिबद्धता पर निर्णायक प्रभाव डाला। यही बात काफी हद तक उस काल की लोक नाट्यकला, गीतो और नृत्यो के बारे मे भी कही जा सकती है जिन्होने भारतीय महाकाव्यो के पात्रा की सक्षिप्त सूत्रवत उक्तियो के माध्यम स जनता को औपनिवेशिक शासन के खिलाफ सघर्ष करने के लिए एकजुट किया। स्वतत्रता के ध्येय के प्रति लोक कलाओ की यह प्रतिवद्धता ब्रिटिश विरोधी भूमिगत सगठनो के कार्यकर्ताओ के राजनीतिक और वैचारिक आदर्शो की ही गूज थी।

भूमिगत क्रातिकारी सगठनो का कार्य

उन्नीसवी-बीसवी शताब्दियो के सधिकाल मे महाराष्ट्र और वगाल म उत्पन्न तथा स्वदेशी और स्वराज्य आदोलनो म सक्रिय अर्ध कानूनी क्रातिकारी सगठनो और गुप्त समाजो ने जन-आदोलन मे ह्रास आने के वाद राजनीतिक आतक की कार्यनीति अपना ली थी। वगाल मे मुख्य भूमिगत सगठन ढाका म अनुशीलन समिति और कलकत्ता म युगातर पार्टी थे, जिनकी अन्य नगरो और गावो मे भी अनेक शाखाए थी। क्रातिकारी सगठन अपने कार्यभारो और लक्ष्यो की रूपरेखा पर्चो और कलकत्ता के अखवार युगातर के माध्यम से प्रस्तुत करते थे। उनका उद्देश्य भारतीय युवजनो म राष्ट्रीय भावना और भारत की पूर्ण स्वतत्रता के लिए सभी उपलब्ध साधनो से सघर्ष चलाने की तत्परता विकसित करना और अतत सशस्त्र आक्रमणो की तैयारी तथा आतक की कार्रवाइया करना था। एक भूमिगत सगठन द्वारा प्रकाशित 'वर्तमान रणनीति' शीर्षक पुस्तिका मे कहा गया था, "यदि उत्पीडन किन्ही अन्य साधनो से समाप्त नही किया जा सकता, यदि गुलामी का कोढ हमारे राष्ट्र रूपी शरीर मे रक्त को विषाक्त करता है और उसे अपनी जीवन-शक्ति से वचित करता है, तो सग्राम अनिवार्य है।

भारतीय भूमिगत क्रातिकारियो द्वारा राजनीतिक आतक की कार्रवाइया को अपनाया जाना बहुत हद तक यूरोप, विशेष रूप से रूस मे कुछ क्रातिकारी सगठना के प्रभाव का परिणाम था। १९०७ मे युगातर पार्टी के एक नेता हेमचन्द्र दास को पश्चिम यूरोप भेजा गया, जहा उन्होंने निर्वासित रूसी क्रातिकारियो के साथ सपर्क स्थापित किया और उनसे गोलाबारूद बनाना सीखा। १९०८ के प्रारभ म उनके भारत लौटने के बाद भारतीय क्रातिकारी सगठनो म यह कहिये कि "बम पथ" ही फैल गया। भारतीय क्रातिकारियो के लिए वैयक्तिक आतक की कार्रवाइया अपने आप मे ध्येय नही थी, क्योकि आतक की कारवाइया केवल उन्ही अग्रेजो अथवा भारतीयो के खिलाफ की जाती थी जो भूमिगत आदोलन के लिए प्रत्यक्ष खतरा होते थे। भूमिगत सगठनो के नेता मानते थे कि आतकवादी कार्रवाई भारतीय समाज के भीतर क्रातिकारी कार्यकलापो के लिए उत्प्रेरक सिद्ध होगी। बगाली आतकवादियो के एक नेता बारीद्र घोष ने लिखा था कि वह और उनके साथी कुछ अग्रेजो की हत्या करके अपने देश को मुक्त करने की आशा नही करते थे, बल्कि असल म अपने देशवासियो को यह दिखाना चाहते थे कि उन्ह खतरे और मृत्यु का सामना कैसे करना चाहिए। इस प्रकार आतक की कारवाइया अलग अलग भूमिगत सगठनो के लिए अलग-अलग महत्व रखती थी। जहा युगातर पार्टी का चरमपथी गुट मानिकतल्ला उद्यान समाज आतक की कार्रवाई अपने क्रातिकारी कार्यकलाप का मुख्य अग मानता था, वहा अनुशीलन समिति और ग्वालियर म नवभारत समाज जैसे अन्य गुट मुख्यतया भावी विद्रोह के लिए तैयारियो पर ही ध्यान केंद्रित करते थे।

भूमिगत क्रातिकारी महाराष्ट्र मे भी सक्रिय थे। वहा का सबसे प्रभावशाली सगठन १९०७ मे स्थापित अभिनव भारत था जिसके नेता सावरकर बधु– विनायक और गणेश – थे। पजाब, सयुक्त प्रात मध्य प्रात और दक्षिण भारत म भी अन्य भूमिगत सगठन सक्रिय थे, जो बगाल और महाराष्ट्र के केन्द्रीय सगठनो से सबद्ध थे।

पहली आतकवादी कार्रवाइया १९०८ म बगाल और महाराष्ट्र म हुईं। औपनिवेशिक अधिकारियो न भूमिगत क्रातिकारिया के खिलाफ निर्मम प्रतिशोधपूर्ण कदम उठाये – जिन लोगो का हत्याओ म सीधे हाथ था उन्ह फासी की सजा दी गयी और गुप्त समाजो के सदस्या को जल और कठोर श्रम की लबी सजाए दी गयी। १९०८–१९०९ म मानिकतल्ला उद्यान समाज अभिनव भारत और को कुचल दिया गया, और बारीद्र घोष,

यू० दत्त, हेमचद्र दास यू० एन० बनर्जी जे० बनर्जी पी० बी० दास बी० सी० नाग तथा सावरकर् बधुओ तथा अन्य भूमिगत क्रातिकारी सगठनो के नेताओ को जेल मे बद कर दिया गया। लेकिन य दमनकारी उपाय क्राति कारियो के क्रियाकलाप को बद नही कर पाये। जिन गुटा और समाजो को खत्म कर दिया गया था उनक स्थान पर नय गुट और समाज कायम हो गये। प्रथम विश्व युद्ध क ठीक पहल १६०६ म बनारस म पुन कायम की गयी अनुशीलन समिति की एक शाखा महाराष्ट म नवभारत समाज कलकत्ता म राजा बाज़ार समाज पूर्व बगाल म बारिसाल समिति – सभी बहुत सक्रिय थे। अग्रेजा और भारतीयो खासकर पुलिस क मुखबिरा के खिलाफ भी आतक की कार्रवाइया जारी रही १६०६–१६१४ की अवधि मे कुल ३२ ऐसी कार्रवाइया दर्ज की गयी। १६१२ म वाइसराय हार्डिंग की हत्या करने का प्रयास किया गया जो एक बम विस्फोट से गभीर रूप से घायल हो गया।

जब १६०५–१६०६ म राष्ट्रीय आदोलन ने पहली बार सवेग प्राप्त करना शुरू किया था, तब भूमिगत क्रातिकारियो ने आग्ल भारतीय सना की इकाइया म प्रचार करन पर ध्यान केद्रित किया था क्योकि वे भारतीय सैनिको और गैर-कमीशन अफसरो को विद्रोह म महत्वपूर्ण शक्ति समभते थे। १६०६ म कलकत्ता म तैनात पजाब रेजिमट के सैनिको को विद्रोह करने क लिए भडकाने का असफल प्रयास किया गया था। फरवरी १६१५ म पजाब के मुख्य नगर लाहौर सहित उत्तर भारत म एकसाथ पाच विभिन्न छावनियो म विद्रोह के लिए तैयारिया की गयी। लेकिन एक भेदिय ने योजनाओ का भेद खोल दिया और षडयत्र मे शामिल लोगो को बदी बना लिया गया तथा सगठन-कर्ताओ के केन्द्र को छिन्न भिन्न कर दिया गया जिसक सचालक रासबिहारी बोस थे।

निम्न पूजीवादी राष्ट्रवादी क्रातिकारियो की असफलताओ का कारण सवप्रथम आम जनता से उनक दुर्बल सबध और किसी आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम का न होना था। पर्याप्त भौतिक साधनो से हीन पुलिस के निमम दमन क शिकार ये छिटपुट और अल्पसख्यक भूमिगत सगठन अपनी हलचलो म मुख्यतया छात्रो, निम्न पूजीवादी शहरिया और निम्न पूजीवादी बुद्धि जीवियो को ही लाने की कोशिश करते थे। हालाकि कुछ वर्षो म विभिन्न क्रातिकारी गुटो के बीच सपर्क भी रहे थे, फिर भी कोई राष्टव्यापी सगठन कभी नही कायम किया गया। क्रातिकारियो के कार्यक्लाप म सामजस्य क इस अभाव का कारण बडी सीमा तक तत्कालीन भारतीय समाज क रहन सहन

की हालते तथा नसली क्षेत्रीय, जातिगत और सबसे महत्वपूर्ण धार्मिक बाधाए थी।

इसके दृष्टिगत कि अधिकाश भारतीयो के दृष्टिकोण को धर्म और अन्य परपरागत सस्थाए ही निर्धारित करती थी, जन-साधारण के मन पर प्रभाव डालने के लिए धार्मिक रूपो का ही सहारा लेना पडता था। यह बात गरम दलियो और भूमिगत क्रातिकारियो दोनो के कार्यो के बारे म सही थी, जिनकी विचारधारा पर १९०५ – १९०८ के वर्षो मे अरविंद घोष का बहुत प्रभाव पडा था (१९०९ के बाद अरविंद घोष ने सक्रिय राजनीति से सन्यास ले लिया और अपना ध्यान धार्मिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयो पर केद्रित कर दिया)। यही कारण है कि विभिन्न धार्मिक समुदायो के बीच शाति, मेल और एकता के आह्वानो के बावजूद केवल हिन्दुओ ने ही इन भूमिगत क्रातिकारी सगठनो मे भाग लिया। उधर भारतीय मुस्लिमो के बीच उग्रपथी तत्वो की कार्रवाइया साप्रदायिक सगठना के ढाचे मे चली।

प्रवासी भारतीय क्रातिकारी

बीसवी शताब्दी के प्रारभ मे भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन म उग्रवादी निम्न पूजीवादी प्रवृत्ति केवल भारत मे ही नही, बल्कि देश की सीमाओ के पार भी विकसित हुई। भारतीय प्रवासियो के क्रातिकारी सगठन यूरोप म और बाद मे अमरीका तथा पूर्वी देशो मे भी कायम किये गये। भारतीय प्रवासियो का पहला केन्द्र १९०५ मे लदन मे कायम किया गया था। श्यामजी कृष्ण वर्मा नामक एक प्रवासी ने इडिया होम रूल सोसाइटी की स्थापना की। श्यामजी कृष्ण वर्मा 'इडियन सोशियोलॉजिस्ट' नामक राष्ट्रवादी पत्रिका प्रकाशित करते थे, जो पाठको को भारतीय स्वतत्रता के लिए लडने के लिए ललकारती थी। उनके द्वारा ब्रिटिश विश्वविद्यालयो मे पढने आनेवाले भारतीय छात्रो के लिए स्थापित छात्रावास 'इडिया हाउस' लदन म प्रवासी भारतीयो का केद्र बन गया था। इस सगठन के नेताओ म श्यामजी कृष्ण वर्मा के अलावा वी० सावरकर वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, एस० रावभाई राणा, वी० वी० एस० अय्यर, आदि थे। ब्रिटिश पुलिस के उत्पीडन ने इसके अधिकाश सदस्यो को १९०९–१९१० मे पेरिस चले जाने के लिए मजबूर कर दिया। १९१०–१९१४ की अवधि मे वहा भारतीय प्रवासियो का एक दूसरा बडा केन्द्र कायम हो गया।

परिस ग्रुप जिसके सवप्रमुख सदस्या मे मैडम कामा लाला हरदयाल तथा लदन से आये श्यामजी कृष्ण वमा एस० रावभाई राणा वीरन्द्र चट्टोपाध्याय और वी० वी० एस० अय्यर थे, के गठन क बाद भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन के वामपथी गुटो क अतराष्ट्रीय सपर्क अधिक व्यापक होत गये जब कि पहले ये मुख्यतया ब्रिटिश उदारवादी दल और लेबर पार्टी क सदस्यो के साथ सपर्कों तक ही सीमित थ। मैडम कामा, राणा हरदयाल आदि न केवल फ्रासीसी समाजवादियो के साथ ही नही बल्कि अन्य यूरोपीय दशो के क्रातिकारियो विशेष रूप से रूसी उत्प्रवासियो (सामाजिक-जनवादियो) और समाजवादी इटरनशनल के साथ भी सपर्क स्थापित किये। परिस केन्द्र न भारत म भूमिगत सगठनो से सहयोग करना और वहा अपनी प्रत्रिकाए– इडियन सोशियोलाजिस्ट' (श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा सपादित) और 'वदेमातरम (मैडम कामा और एस० रावभाई राणा द्वारा सपादित)– भेजना शुरू किया। प्रथम विश्व युद्ध प्रारभ होन क बाद प्रवासी भारतीय क्रातिकारियो का परिस केन्द्र वस्तुत भग हो गया– राणा और मैडम कामा को नजरबद कर दिया गया, श्यामजी कृष्ण वर्मा स्विटजरलैड और वीरेंद्र चट्टोपाध्याय बर्लिन चले गय। उनकी पत्रिकाओ का प्रकाशन भी बद हो गया।

यूरोप मे इन सगठनो क अलावा उसी अवधि म उत्तर अमरीका–कनाडा और सयुक्त राज्य अमरीका–मे भी राष्ट्रवादी सगठन कायम किये गये। पहले सगठन (उदाहरणार्थ युनाइटेड इडियन लीग) भारतीय प्रवासियो द्वारा अमरीका और कनाडा म फैक्टरियो और कार्यालयो म काम करनेवाले भारतीयो को अपने स्थानीय सहकर्मियो के समान अधिकार दिलाने का आदोलन चलाने के लिए कायम किये गये गुट थे। लेकिन भारतीय क्रातिकारियो क प्रभाव क अतर्गत इन सगठनो ने शीघ्र ही राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लिया।

ब्रिटिश औपनिवशिक शासन के खिलाफ प्रचार म तारकनाथ दास न बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की जो १६०६ म कनाडा पहुचे थ। १६०८ म तारकनाथ दास न सयुक्त राज्य अमरीका पहुचकर 'फ्री हिन्दुस्तान' पत्रिका निकालना शुरू किया जो भारतीय प्रवासियो के बीच बहुत लोकप्रिय हो गयी। तारकनाथ दास के सामाजिक-राजनीतिक विचार समतावादी दृष्टिकोण स आधुनिक पूजीवादी सभ्यता के प्रति आलाचनात्मक दृष्टि से रजित थ। अपन प्रसिद्ध लेव तोलस्तोय को खुला पत्र म उन्होने लिखा था कि वह मानव क विश्व बधुत्व मे विश्वास करत हैं और किसी भी जाति नसल समाज और व्यक्ति द्वारा दूसरी जाति नसल समाज और व्यक्ति के शोषण क किसी भी

रूप के विरोधी है। तारकनाथ दास के प्रचार कार्य ने प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियो के समक्ष बडे सगठन के गठन के लिए आधार तैयार किया, जिसके मुख्य सूत्रधार लाला हरदयाल थे।

१९११ मे तीन फासिस्टो पहुचने के बाद हरदयाल शीघ्र ही अमरीका मे भारतीय प्रवासियो के बीच प्रमुख व्यक्ति बन गये। १९१३ मे उनकी पहल पर और १८५७–१८५९ के जन विद्रोह की स्मृति मे 'ग़दर' नामक अखबार शुरू किया गया। उसी वर्ष अमरीका मे विभिन्न भारतीय समुदायो के प्रतिनिधियो के सम्मेलन मे इडियन एसोसिएशन नामक सगठन कायम किया गया और उसके प्रमुख नेता भी हरदयाल ही थे। शीघ्र ही इसका नाम बदलकर गदर पार्टी रख दिया गया। इसकी अमरीका तथा जापान, फिलीपीन, इडोनेशिया मलाया और चीन सहित प्रशात महासागर के विभिन्न देशो मे व्यापक शाखाए थी। इस सगठन के सदस्यो ने भारत मे विद्रोह की अनेक योजनाए बनायी जिनके कार्यान्वयन के लिए प्रवासियो ने लडाकू दल खडे किये, जिन्हे पार्टी नेताओ की योजनाओ के अनुसार विद्रोहियो के केन्द्रीय सगठन बन जाना था। इस उद्देश्य से प्रवासियो से, जिनमे से कुछ काफी धनी थे, एकत्रित धन का उपयोग हथियार खरीदने के लिए किया गया। अमरीका मे पार्टी सदस्यो द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक अखबार 'गदर' और अनेक भारतीय भाषाओ मे पुस्तिकाए जिन्हे भारत मे वितरित किया जाता था, जनता के बीच ब्रिटिशविरोधी भावना पोषित करने मे प्रचार का शक्तिशाली साधन थे।

१९१४ की गरमियो मे शुरू होनेवाले प्रथम विश्व युद्ध ने भारत मे निम्न पूजीवादी क्रातिकारियो और वस्तुत अन्य सामाजिक राजनीतिक शक्तियो की स्थिति तथा नज़रिये पर भी गहरा प्रभाव डाला।

युद्ध के वर्षों मे भारतीय पूजी

१९१३–१९१७ के वर्षों मे अनेक भारतीय बैको का दिवाला निकला और इसने उत्पादन तथा जिस परिचलन क्षेत्र मे भारतीय उद्यमो को गम्भीर धक्का पहुचाया। यह प्रक्रिया मूलतया भारत मे आर्थिक सरचना के औपनिवेशिक स्वरूप का तथा सरकार और शक्तिशाली ब्रिटिश बैको द्वारा भारतीय बैकिग पूजी को समर्थन न दिये जाने का परिणाम थी।

युद्ध के वर्षों मे भारत की ब्रिटिश लूट और तेज़ हो गयी। खाद्य पदार्थों कृषिजन्य और औद्योगिक कच्चे मालो, खनन और धातु उद्योगो के उत्पादन के

निर्यात के परिणामस्वरूप आतरिक उत्पादन का विस्तार कठिन हो गया। ब्रिटिश खजान ने आम भारतीय करदाताओ के कर भार म वृद्धि करके अपने भारी युद्धकालीन व्यया को पूरा करने की कोशिश की। इस नीति के परिणामस्वरूप भारत म केवल आम जनता ही नही बल्कि सपत्तिशाली वर्गो को भी मुसीबत उठानी पडी। औपनिवेशिक अधिकारिया और ब्रिटिश व्यापारियो की वित्तीय और मौद्रिक तिकडमो स मुद्रास्फीति उत्पन्न हो गयी (१९१४–१९१८ मे करसी नोटो की कुल सख्या लगभग तिगुनी हो गयी थी) और चादी की कीमत म भारी तेजी आयी। भारतीय विदेश व्यापार के विशृखलित होन के परिणाम स्वरूप देश के आयात निर्यात म तेजी स गिरावट आयी। इस सबका देश की आर्थिक स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव पडा।

वित्त और विदेश व्यापार पर अधिक कडे सरकारी नियत्रण और विनियमन, भारतीय प्रतिष्ठाना को बडे फौजी आर्डरो और खजान द्वारा घरेलू बाजार म बडी खरीदो न भारतीय अर्थव्यवस्था के भीतर राजकीय पूजीवाद के तत्वो के उदय म सहायता की। औपनिवेशिक राज्य की आर्थिक नीति से उत्पन्न प्रतिबध न स्थानीय उद्यमो के भारतीय मालिको के कार्यकलाप म अधिकाधिक बाधा डाली।

लेकिन साथ ही स्थानीय पूजीपति वर्ग के समृद्धिकरण के लिए अनुकूल परिस्थितिया भी उत्पन्न हो रही थी क्योकि युद्ध के वर्षो मे भारत म ब्रिटिश सगठनो और विभागो द्वारा खरीदी गयी अधिकाश सामग्रिया भारतीय उद्योगपतियो के उद्यमो म उत्पादित होती थी। इस अवधि म भारत म पजीयित सयुक्त पूजी कपनियो की सख्या म दस प्रतिशत और उनकी कुल पूजी मे लगभग ३० प्रतिशत की वृद्धि हुई। जहा आयातित और हस्त निर्मित सूती कपडो का अश घट रहा था, वहा भारतीय मिलो मे उत्पादित तथा देश मे उपभोग किये जानवाले वस्त्रो के कुल अश मे काफी वृद्धि हो रही थी और १९१७ तक यह एक तिहाई से अधिक हो गया था। युद्ध के वर्षो मे भारतीय फैक्टरी मालिको के मुनाफो म भी काफी वृद्धि हुई।

अधिकाश आबादी की बढती निर्धनता और पूजीगत उपस्कर के आयात के अवसरो के अभाव के फलस्वरूप आतरिक बाजार मे ह्रास ने आर्थिक समस्याओ को उग्र बना दिया था। इन परिस्थितियो मे भारतीय औद्योगिक पूजीपतियो तथा व्यापारियो और साहूकारो के विभिन्न समूहो द्वारा सचित धन को लगाने की बहुत सीमित सभावनाए थी।

इस सबने राष्ट्रीय पूजीपति वर्ग की राजनीतिक नीति को प्रभावित किया,

जिसकी पाता म ब्रिटिश फौजी प्रयासा क लिए पूर्ण समर्थन के बावजूद औपनिवेशिक शासन के प्रति असतोष भी बढता जा रहा था। राष्ट्रीय काग्रेस और मुस्लिम लीग (जो देश के मुख्य राष्ट्रीय सगठन थे) क भीतर भी विरोध अधिकाधिक प्रबल होता जा रहा था।

प्रथम विश्व युद्ध के पहले और उसके दौरान राष्ट्रीय काग्रेस और मुस्लिम लीग। होम रूल आदोलन

जन-आदोलन क ह्रास क दौर मे प्रवेश करन पर गरम दल, जिसन अपना कोई सगठन कायम नही किया था, अस्तव्यस्त हो गया। उसके कुछ नता (उदाहरणार्थ तिलक) जेल म थे, अरविद घोप जैसे कुछ नताआ न राजनीतिक सघर्ष से सन्यास ले लिया, जब कि विपिनचद्र पाल और उनक अनुयायियो का एक तीसरा गुट अधिक नरमपथी रुख अपनान लगा था। नरमपथियो के नेताओ ने जिनका काग्रेस मे प्रभुत्व था, ऐसे समय म कि जब भूमिगत क्रातिकारी सगठन अधिक सक्रिय हो रहे थे, फौरन ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार के प्रति अपनी वफादारी की घोपणा कर दी। १६१२ म काग्रेस का सविधान स्वीकृत किया गया, जिसने घोपणा की कि ब्रिटिश साम्राज्य के ढाचे क भीतर किंतु केवल "सवैधानिक साधनो" के माध्यम स, स्वशासन प्राप्त करना राष्ट्रीय आदोलन का लक्ष्य है। काग्रेस के वार्षिक अधिवेशना के लिए प्रतिनिधियो को चुनने की ऐसी प्रणाली निकाली गयी, जिसन वामपथी राष्ट्रवादियो का नेतृत्व म चुना जाना रोक दिया। लेकिन शीघ्र ही नरमदलिया और गरमदलियो, दोनो ही की पातो म पुनर्मेल करने के प्रयास होनेवाले थे।

१६१४ मे तिलक को सजा पूरी हो जाने पर रिहा कर दिया गया। राजनीतिक क्षेत्र मे उनकी वापसी पर जो व्यापक हर्ष हुआ, उसने यह प्रदर्शित कर दिया कि राष्ट्रवादी हलको म उनकी लोकप्रियता पहले की भाति थी। कुछ तो अधिकारियो के दबाव और कुछ कार्यनीतिक वजहो से भी तिलक ने भारत मे ब्रिटिश शासन के प्रति वफादारी की घोपणा की तथा आतकवादी कार्रवाइयो की निन्दा की। अब तिलक द्वारा प्रतिपादित नीति बहिष्कार की कार्यनीति से यथार्थत जन-स्तर पर राजनीतिक आदोलन म सक्रमण थी जिससे गरमदलियो के लिए भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के भीतर अपनी स्थिति का फिर से कायम करना सभव हो गया। तिलक और उनके अनुयायियो न होम रूल आदोलन अर्थात स्वशासन आदोलन का नेतृत्व किया, जिसकी

सस्थापक भारतीय थियोसोफिकल सोसाइटी की नेता एनी बेसट थी। १९१६ के वसत म तिलक न पूना म होम रूल लीग की स्थापना की, जो उनके अनुयायियो को एक सयुक्त सगठन म ले आयी। १९१६ के दौरान भारत के विभिन्न भागो मे होम रूल लीग की शाखाए कायम हो गयी और उस वर्ष शरत मे मद्रास मे ऐनी बेसेट के नेतृत्व म अखिल-भारतीय होम रूल लीग की स्थापना हुई।

इस सफल जन प्रचार ने राष्ट्रीय आदोलन के भीतर तिलक की स्थिति को मजबूत बनाया। इसके साथ ही एक ओर उनके राजनीतिक विचारो के नरमवादी स्वरूप और दूसरी ओर राष्ट्रीय काग्रेस के भीतर विरोध पक्ष के उदय न तिलक तथा गोपालकृष्ण गोखले और फीरोजशाह मेहता के नेतृत्व म काग्रेस के नेताओ के बीच मेल मिलाप का मार्ग प्रशस्त किया। १९१५–१९१६ मे हुई वार्ताओं के बाद १९१२ मे काग्रेस सविधान मे लागू किये गये प्रतिबधो को हटा दिया गया जिसने तिलक के नेतृत्व म गरमदलियो के लिए १९१६ मे लखनऊ म काग्रेस अधिवेशन म भाग लेना सभव बना दिया। इस अधिवेशन मे होम रूल लीगो के कार्यकलापो को काग्रेस की स्वीकृति प्रदान की गयी।

होम रूल लीगे गरमदलियो के सगठन का आधार बन गयी और उनका आदोलन आबादी, मुख्यतया मध्यम वर्गो के बडे हिस्सो को स्वशासन के लिए सघर्ष मे खीचने का एक साधन बन गया।

लखनऊ अधिवेशन मे वैध कार्रवाइयो मे लगी राष्ट्रीय आदोलन की सभी मुख्य शक्तियो का दृढीकरण हुआ। काग्रेस के दोनो गुटो के एकसाथ आने के अलावा मुस्लिम लीग के साथ भी समझौता हुआ जिसका नेतृत्व कुछ दिन पहले नये लोगो के हाथ मे चला गया था।

शताब्दियो के सधिकाल मे मुस्लिम समुदाय के आदोलन के भीतर एक नयी जनवादी प्रवृत्ति परिलक्षित होने लगी थी, जो राजनीतिक कार्यो मे मुस्लिम निम्न-पूजीवादी वर्ग और बुद्धिजीवियो की सहभागिता से उत्पन्न हुई थी। इस प्रवृत्ति के निरूपको मे शिबली नोमानी अबुल कलाम आज़ाद, मुहम्मद अली, आदि थे। उनके भाषण और लेख भारत मे शिक्षित मुस्लिम युवजनो को अपने समय की राजनीतिक समस्याओ से परिचित कराने तथा देश के जन-सगठनो के कार्यकलाप के निकटतर सपर्क मे लाने के प्रयास को अभिव्यक्त करते थे।

औपनिवेशिक शासन की – चाहे नरम नजरिये से ही सही – आलोचना आज़ाद द्वारा सपादित 'अलहिलाल', मुहम्मद अली द्वारा सपादित कामरेड'

जिसकी पाता म ब्रिटिश फौजी प्रयासो के लिए पूर्ण समर्थन क बावजूद औपनिवेशिक शासन के प्रति असतोष भी वढता जा रहा था। राष्ट्रीय काग्रेस और मुस्लिम लीग (जो देश के मुख्य राष्ट्रीय सगठन थे) क भीतर भी विरोध अधिकाधिक प्रवल होता जा रहा था।

प्रथम विश्व युद्ध के पहले और उसके दौरान राष्ट्रीय काग्रेस और मुस्लिम लीग। होम रूल आदोलन

जन-आदालन क ह्रास क दौर म प्रवश करन पर गरम दल, जिसन अपना कोई सगठन कायम नही किया था, अस्तव्यस्त हो गया। उसके कुछ नेता (उदाहरणार्थ तिलक) जेल म थे, अरविद घोप जैसे कुछ नताआ न राज नीतिक सघर्प स सन्यास ले लिया, जब कि विपिनचद्र पाल और उनक अनुयायिया का एक तीसरा गुट अधिक नरमपथी रुख अपनान लगा था। नरमपथियो के नेताओ न, जिनका काग्रेस मे प्रभुत्व था, एस समय म कि जब भूमिगत क्रातिकारी सगठन अधिक सक्रिय हो रहे थे, फौरन ब्रिटिश औपनिवे शिक सरकार क प्रति अपनी वफादारी की घोपणा कर दी। १६१२ म काग्रेस का सविधान स्वीकृत किया गया, जिसने घोपणा की कि ब्रिटिश साम्राज्य क ढाचे के भीतर किंतु केवल ' सवैधानिक साधनो ' के माध्यम स स्वशासन प्राप्त करना राष्ट्रीय आदोलन का लक्ष्य है। काग्रेस के वार्पिक अधिवेशनो के लिए प्रतिनिधियो को चुनने की ऐसी प्रणाली निकाली गयी जिसन वामपथी राष्ट्रवादियो का नेतृत्व मे चुना जाना रोक दिया। लेकिन शीघ्र ही नरमदलियो और गरमदलियो, दोनो ही की पातो म पुनर्मेल करने के प्रयास होनेवाले थे।

१६१४ मे तिलक को सज़ा पूरी हो जान पर रिहा कर दिया गया। राजनीतिक क्षेत्र मे उनकी वापसी पर जो व्यापक हर्प हुआ, उसन यह प्रदर्शित कर दिया कि राष्ट्रवादी हलको मे उनकी लोकप्रियता पहले की भाति थी। कुछ तो अधिकारियो के दवाव और कुछ कार्यनीतिक वजहो से भी तिलक न भारत म ब्रिटिश शासन क प्रति वफादारी की घोपणा की तथा आतकवादी कार्रवाइयो की निन्दा की। अब तिलक द्वारा प्रतिपादित नीति वहिष्कार की कार्यनीति से यथार्थत जन-स्तर पर राजनीतिक आदोलन मे सक्रमण थी, जिससे गरमदलियो के लिए भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के भीतर अपनी स्थिति को फिर से कायम करना सभव हो गया। तिलक और उनके अनुयायियो न होम रूल आदोलन अर्थात स्वशासन आदोलन का नेतृत्व किया, जिसकी

सस्थापक भारतीय थियोसोफिकल सोसाइटी की नेता एनी बेसेंट थी। १६१६ के वसत म तिलक ने पूना मे होम रूल लीग की स्थापना की जो उनके अनुयायियो को एक सयुक्त सगठन म ले आयी। १६१६ के दौरान भारत के विभिन्न भागो मे होम रूल लीग की शाखाए कायम हो गयी और उस वर्ष शरत म मद्रास मे ऐनी बेसेट के नेतृत्व मे अखिल-भारतीय होम रूल लीग की स्थापना हुई।

इस सफल जन-प्रचार ने राष्ट्रीय आदोलन के भीतर तिलक की स्थिति को मजबूत बनाया। इसके साथ ही एक ओर उनके राजनीतिक विचारा के नरमवादी स्वरूप और दूसरी ओर राष्ट्रीय काग्रेस के भीतर विरोध पक्ष के उदय ने तिलक तथा गोपालकृष्ण गोखले और फीरोजशाह मेहता के नेतृत्व मे काग्रेस के नेताओ के बीच मेल मिलाप का मार्ग प्रशस्त किया। १६१५–१६१६ मे हुई वार्ताओ के बाद १६१२ मे काग्रेस सविधान मे लागू किये गये प्रतिबधो को हटा दिया गया, जिसने तिलक के नेतृत्व मे गरमदलियो के लिए १६१६ मे लखनऊ मे काग्रेस अधिवेशन मे भाग लेना सभव बना दिया। इस अधिवेशन मे होम रूल लीगो के कार्यकलापो को काग्रेस की स्वीकृति प्रदान की गयी।

होम रूल लीगे गरमदलियो के सगठन का आधार बन गयी और उनका आदोलन आबादी, मुख्यतया मध्यम वर्गो के बडे हिस्सो को स्वशासन के लिए सघर्ष मे खीचने का एक साधन बन गया।

लखनऊ अधिवेशन मे वैध कार्रवाइयो मे लगी राष्ट्रीय आदोलन की सभी मुख्य शक्तियो का दृढीकरण हुआ। काग्रेस के दोनो गुटो के एकसाथ आने के अलावा मुस्लिम लीग के साथ भी समझौता हुआ, जिसका नेतृत्व कुछ दिन पहले नये लोगो के हाथ मे चला गया था।

शताब्दियो के सधिकाल म मुस्लिम समुदाय के आदोलन के भीतर एक नयी जनवादी प्रवृत्ति परिलक्षित होने लगी थी, जो राजनीतिक कार्यो मे मुस्लिम निम्न-पूजीवादी वर्ग और बुद्धिजीवियो की सहभागिता से उत्पन्न हुई थी। इस प्रवृत्ति के निरूपको मे शिबली नोमानी, अबुल कलाम आजाद, मुहम्मद अली, आदि थे। उनके भाषण और लेख भारत मे शिक्षित मुस्लिम युवजनो को अपने समय की राजनीतिक समस्याओ से परिचित कराने तथा देश के जन-सगठनो के कार्यकलाप के निकटतर सपर्क मे लाने के प्रयास को अभिव्यक्त करते थे।

औपनिवेशिक शासन की – चाहे नरम नजरिये से ही सही – आलोचना आजाद द्वारा सपादित 'अलहिलाल', मुहम्मद अली द्वारा सपादित 'कामरेड'

और जफर अली खा द्वारा सपादित 'जमीदार' समाचारपत्रा म पायी जाती थी। १६०५-१६०८ की क्रातिकारी घटनाओ म अबुल कलाम आजाद की भूमिका न उन्ह मुस्लिम समुदाय के मध्यम वर्गों के भीतर और लाकप्रिय बना दिया। आजाद के इर्दगिर्द मुस्लिम लीग के वाम पक्ष—अली बधुआ, मुहम्मद अली और शौकत अली आदि ने सगठन की राजनीतिक अवस्थिति को बदलन के लिए अभियान शुरू किया। १६१३ मे इसके सविधान मे सशोधन किया गया। अब उसका लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्य के ढाचे के भीतर स्वशासन प्राप्त करना बन गया। हालाकि लीग साप्रदायिक सगठन ही बनी रही, पर घोषणापत्र मे अन्य राष्ट्रीय सगठनो के साथ सहयोग की अनिवार्य आवश्यकता पर भी जोर दिया गया।

लीग के भीतर वाम पक्ष की यह विजय १६१५ मे मुहम्मद अली जिन्ना के अध्यक्ष चुने जाने से और मजबूत बनी, जिन्हे आजाद और अन्य वामपथी नेताओ का समर्थन प्राप्त था।

इन परिवर्तना ने स्वराज्य प्राप्त करने के लिए सयुक्त कार्रवाई के सबध मे लीग और काग्रेस के बीच एक आधिकारिक समझौते का आधार तैयार किया। यह समझौता सभी साम्राज्यवादविरोधी शक्तियो के एकीकरण के माग पर एक महत्वपूण सीमा चिह्न था। इसके साथ ही लखनऊ समझौते मे यह भी निश्चित किया गया कि निर्वाच्य विधानमडलो म लीग का मुस्लिमा के प्रतिनिधित्व म एकाधिकार प्रदान किया जायेगा, जो केवल अपने विशष निर्वाचक मडल द्वारा निर्वाचित होगे। काग्रेस नेतृत्व द्वारा साप्रदायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धात को दी गयी इस रिआयत ने हिन्दुआ को मुस्लिमो के खिलाफ लडान की ब्रिटिश नीति को जारी रखने का आधार प्रदान किया। लेकिन काग्रस और लीग के नेताओ के बीच समझौते (लखनऊ मे लीग की भी बैठक हुई थी) को व्यापक भारतीय जनता ने देश की स्वतत्रता के लिए सघर्ष म हिन्दू मुस्लिम एकता की स्थापना के आरभ का द्योतक ही माना।

महात्मा गाधी के राजनीतिक कार्यकलाप की प्रारभिक अवस्था

इस समय राजनीतिक रगभूमि मे राष्ट्रीय मुक्ति-आदालन के भावी नता माहनदास-करमचद गाधी (१८६९-१९४८) का अवतरण, जा १९१५ म भारत लौटे थ, सामाजिक राजनीतिक विकास की एक महत्वपूर्ण घटना थी।

गाधीजी रा जम राजराट म एक सपन्न वैश्य गुजराती परिवार मे हुआ था। ब्रिटन म वैरिस्टर वनन र वाद गाधीजी १६०३ और १६१८ क वीच दक्षिण अफ्रीका म रह, जहा उन्हान वकालत की। वही पर उनके राजनीतिक कायवलाप तव आरभ हुए जव उन्हाने भारतीय प्रवासिया क अधिकारो के लिए सघर्ष करना शुरू किया जा निर्मम नसली भेदभाव का शिकार थे (वहा भारतीय समुदाय की सख्या एक लाख स अधिक थी)। दक्षिण अफ्रीका म रहन क दौरान गाधीजी क दार्शनिक और सामाजिक राजनीतिक विचारो न न्यूनाधिक अतिम रूप ग्रहण किया जिन्हान उस कायनीति को निर्धारित किया, जिस उन्हाने वाद म ब्रिटिश उपनिवशवाद के खिलाफ सघर्ष मे अपनाया। वहाँ पर उन्हाने व्यवहार म अहिसात्मक प्रतिरोध अर्थात सत्याग्रह क सिद्धातो का प्रयाग किया जो वहुत हद तक वीसवी शताब्दी क प्रारभ म रूसी सामाजिक और राजनीतिक जीवन की घटनाआ से प्रभावित थ। रूस मे क्रातिकारी घटनाओ, विशप रूप स राष्ट्रव्यापी राजनीतिक हडताल स प्राप्त अनुभव ने गाधीजी को राजनीतिक विरोधिया पर दवाव डालन के एक साधन के रूप म सगठित जनव्यापी आदालन की आवश्यकता का कायल कर दिया। रूस म १६०५ की घटनाआ का मूल्याकन करते हुए गाधीजी न ज़ोर देते हुए कहा था कि 'सवसे शक्तिशाली शासक भी शासिता के सहयोग के विना शासन नही कर सकत"। अहिसा क विपय पर तोलस्ताय की कृतियो से गाधीजी न अहिसात्मक सघप की अपनी रणनीति अपनायी। १६०८ मे उन्होने अपना पहला सविनय अवना आदोलन छेडा – दक्षिण अफ्रीका म औपनिवेशिक शासन क भदभावमूलक क़ानूना के खिलाफ सगठित प्रतिरोध।

हरक आदोलन छेडन क पहले गाधीजी अधिकारिया के साथ वातचीत करत थे। वह अपन सत्याग्रह अभियान के दौरान भी अधिकारियो के साथ समझौता करने का प्रयास करते थ। अपनी कार्रवाइयो के अहिसात्मक, शातिपूर्ण स्वरूप की आर ध्यान खीचकर वह ब्रिटिश अधिकारियो के प्रति अपनी वफादारी साफ दिखा देत थे। १६०६ म गाधीजी ने भारतीयो द्वारा गठित एक चिकित्सा दल का नेतृत्व किया, जिसन जुलु विद्रोह के समय औपनिवेशिक फौजो के पक्ष म काम किया था और वाद मे प्रथम विश्व युद्ध के दौरान उन्हाने ब्रिटेन का सक्रिय समर्थन किया तथा गुजरात मे किसानो को सेना मे भर्ती करने के अभियान मे भाग लिया।

अफ्रीका म अनेक सविनय अवना आदोलनो के सफल कार्यान्वयन और अखवारो विशेष रूप से उनके द्वारा सपादित 'इडियन ओपिनियन' नामक

पत्रिका म प्रकाशित अनक लेखो ने स्वय भारत मे गाधीजी के नाम को अधिकाधिक प्रसिद्धि और लोकप्रियता प्रदान कर दी। स्वदेश लौटने क बाद गाधीजी ने १६१५ मे गुजराती पूजीपति वर्ग के समर्थन से अहमदाबाद म सत्याग्रह के विचारो क प्रचार के लिए एक सगठन – सत्याग्रह आश्रम – कायम किया और फिर १६१५ मे राजकोट राज्य मे कुछ महसूलो को समाप्त करने के लिए १६१७ मे भारत के बाहर कार्य के लिए कुलियो (गिरमिटियो) की भर्ती की प्रणाली मे सुधार करने के लिए और १६१७ के अत तथा १६१८ के प्रारभ मे बिहार मे ब्रिटिश बागान-मालिको द्वारा किसानो के शोषण के खिलाफ तीन सविनय अवज्ञा आदोलन सफलतापूर्वक सगठित किये। इन आदोलनो ने जनमत पर जबरदस्त प्रभाव डाला और गाधीजी को भारतीय राजनीतिक जीवन की अगली पक्ति मे ला दिया। उनके भाषणो और लेखो ने राष्ट्रवादियो को औपनिवेशिक शासन के खिलाफ सघर्ष मे जनता को सम्मिलित करने की आवश्यकता का कायल करने मे सहायता की।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान क्रातिकारी भूमिगत सगठन

युद्ध काल मे निम्न-पूजीवादी राष्ट्रीय क्रातिकारी सगठनो के कार्यकलाप अधिक सक्रिय हो गये। यूरोप और अन्य युद्ध-स्थलो मे युद्ध की शुरूआत से, जहा ब्रिटिश सेना की मुख्य फौजो और बेडो को भेजा गया था, पैदा हुई अवस्थाओ को गदर पार्टी के नेताओ ने भारत मे सशस्त्र विद्रोह के लिए अपनी योजनाओ के कार्यान्वयन के लिए अत्यधिक अनुकूल समझा। युद्ध के प्रारभिक महीनो मे पार्टी नेतृत्व के आह्वान पर पार्टी के हजारो सदस्य और हमदर्द विभिन्न मार्गो से, अकसर चीन, स्याम और बर्मा होते हुए स्वदेश लौट आये। सोहनसिह भकना के नेतृत्व मे कुछ नेता भी स्वदेश लौट आये। १६१४–१६१५ मे लगभग आठ हजार भारतीय स्वदेश लौटे। बडी मात्रा मे भारत को हथियार भेजने के प्रयास किये गये, जो अधिकाशत असफल सिद्ध हुए। स्वदेश लौटने पर गदर पार्टी के सदस्यो ने स्थानीय भूमिगत सगठनो से सपर्क कायम किये और विदेशी प्रवासी सगठनो के समर्थन से, जिनकी कार्रवाइया प्रवासियो की बर्लिन समिति द्वारा समन्वित की जा रही थी, विद्रोह के लिए तैयारी करना शुरू कर दिया। चूकि गदर पार्टी के अधिकाश सदस्य सिख थे, इसलिए पार्टी को पजाब म सबसे अधिक समर्थन प्राप्त हुआ।

इस विद्रोह मे निर्णायक भूमिका आग्ल-भारतीय सेना के भारतीय सैनिको को अदा करनी थी जिनके बीच गदर पार्टी न सफल ब्रिटिशविरोधी प्रचार किया था। विद्रोह, जो उत्तर और उत्तर पश्चिमी भारत की अनेक छावनियो म बगावता क साथ शुरू होनेवाला था पहले तो नवम्बर १६१४ मे आरभ होन को नियत था, लेकिन बाद म तिथि स्थगित करके फरवरी, १६१५ कर दी गयी। लेकिन कमज़ोर सगठन तथा पार्टी के सदस्या म भेदियो के कार्यकलाप से, जिन्होंने अधिकारियो को विद्रोह की योजना से अवगत करा दिया, इसकी पूर्ण विफलता निश्चित हो गयी। हज़ारो भूमिगत कार्यकर्ताओ को और पजाब मे फूट पडनेवाले 'किसान दगो" म भाग लेनेवालो को गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया। नवम्बर १६१५ म सिगापुर मे भारतीय रेजिमेट का विद्रोह एक अकेला विद्रोह था और इसलिए आसानी से कुचल दिया गया। इन विफलताओ क बावजूद गदर पार्टी के सदस्यो ने सघर्ष जारी रखन का प्रयास किया, लेकिन चूकि उन्ह कोई उचित नतृत्व और भौतिक समर्थन प्राप्त नही था, इसलिए उनके प्रयास शीघ्र ही विफल हो गये। युद्ध की समाप्ति तक अमरीका और प्रशात के अन्य देशो म उसके सभी केन्द्र भग हो गये थे।

गदर आदोलन के साथ-साथ देवबद (उत्तर भारत) म दारुलउलूम के इर्दगिर्द कायम मुस्लिम राष्ट्रवादियो का एक भूमिगत सगठन भी भारत मे औपनिवेशिक शासन का बलपूर्वक तख्ता उलटने की तैयारिया कर रहा था। इस सगठन के नेता मुस्लिम साप्रदायिक आदोलन के भीतर राष्ट्रीय क्राति-कारी चरमपथी वाम पक्ष के सिद्धातकार महमूद हसन थे। महमूद हसन और उनके अनुयायियो न सर्व इस्लामवाद के नाम पर तथा तुर्की खलीफा क अधि कारो की रक्षा मे अग्रेज़ो के खिलाफ अपना प्रचार अभियान चलाया। देवबद केन्द्र ने भारत के बाहर मुस्लिमो तथा ब्रिटेन के साथ युद्ध मे लगे देशो की सरकारो, विशेष रूप से जर्मनी और उस्मान साम्राज्य के साथ भी सपर्क स्थापित करने की कोशिश की। १६१५ म महमूद हसन क एक साथी उबेदु-ल्लाह सिधी बर्लिन स्थित प्रवासी केन्द्र के प्रतिनिधियो तथा जर्मन दूतावास के साथ बातचीत करने के लिए काबुल पहुचे। इसके साथ ही उन्होंने अफ-गानिस्तान के अमीर हबीबुल्लाह को अग्रेजो के खिलाफ आगे आन के लिए सम्मत करने की भी कोशिश की, जिसने सीमावर्ती इलाको मे पठान कबीला को भी विद्रोह करने की हरी झडी दे दी होती।

लेकिन हबीबुल्लाह ने तटस्थता की नीति का अनुसरण करना जारी रखा।

जिस सामग्री पर योजनाए तैयार की गयी थी, उसके दृष्टिगत "रेशमी षडयत्र" के नाम से प्रसिद्ध इस षड्यत्र का ब्रिटिश अधिकारियो को भेद गया और उसमे भाग लेनवालो को सजाए दी गयी।

स्वय भारत म क्रातिकारी और उपनिवेशवाद के खिलाफ सघर्ष म लेनवाले भारतीय प्रवासी भी युद्ध मे ब्रिटेन के शत्रुओ के समर्थन की अ कर रहे थे। जर्मनी और तुर्की की सरकारो के साथ मुख्यतया १६१५ म स्था बर्लिन की भारतीय स्वतत्रता समिति सपर्क बना रही थी। १६१६ म समिति ने एक घोषणापत्र द्वारा भारतीयो और ब्रिटेन के बीच युद्ध की घो कर दी। उस समय हरदयाल और वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे प्रमुख भारत क्रातिकारी बर्लिन केन्द्र मे काम कर रहे थे। १६१५ मे इस समिति के सम से काबुल मे एक निर्वासित अस्थायी सरकार कायम की गयी। इसके राष्ट्र महेन्द्रप्रताप प्रधान मत्री बरकतुल्लाह और विदेश मत्री उबेदुल्लाह १६१६–१६१७ मे इस अस्थायी सरकार ने पहले रूसी जारशाही सरक और बाद म अस्थायी सरकार का समर्थन प्राप्त करने की भोली भाली आ से तीन अवसरो पर अपने दूत भेजे थे।

युद्ध की समाप्ति तक राष्ट्रीय क्रातिकारियो को यह स्पष्ट हो गया न तो शाही जर्मनी और न ही उस्मान साम्राज्य औपनिवेशिक शासन के खिला भारत के सघर्ष को समर्थन देने मे दिलचस्पी रखते है। १६१६ म बर्लि केन्द्र के अधिकाश सक्रिय सदस्य स्टाकहोम चले गये, जहा उन्होने उपनिवेशवा विरोधी प्रचार करना जारी रखा।

भारतीय राजनीति मे "विस्फोटक सामग्री" के सचय के बावजूद राष्ट्री आदोलन के भीतर नरमदलियो, गरमदलियो और राष्ट्रीय क्रातिकारियो क तीन मुख्य प्रवृत्तियो मे से कोई भी औपनिवेशिक प्रशासन से कोई महत्वपू रिआयत नही प्राप्त कर पायी। फिर भी इन भारतीय देशभक्तो के कार्यो प्रथम विश्व युद्ध तथा रूस म महान अक्तूबर समाजवादी क्राति की विजय व बाद उत्पन्न होनेवाली क्रातिकारी परिस्थिति के विकास के लिए आवश्यक कुछ तत्वो के पैदा होने मे अवश्य सहायता की।

समकालीन भारत

ग्रि॰ ग्रि॰ कोतोव्स्की



जिस सामग्री पर योजनाए तैयार की गयी थी, उसके दृष्टिगत "रेशमी पत्र षडयत्र' के नाम से प्रसिद्ध इस षडयत्र का ब्रिटिश अधिकारियो को भेद मिल गया और उसमे भाग लेनवालो को सजाए दी गयी।

स्वय भारत म क्रातिकारी और उपनिवेशवाद के खिलाफ सघर्ष म भाग लेनेवाले भारतीय प्रवासी भी युद्ध म ब्रिटेन के शत्रुओ के समर्थन की आशा कर रह थे। जर्मनी और तुर्की की सरकारो के साथ मुख्यतया १६१५ म स्थापित बर्लिन की भारतीय स्वतत्रता समिति सपर्क बना रही थी। १६१६ म इस समिति ने एक घोषणापत्र द्वारा भारतीयो और ब्रिटेन के बीच युद्ध की घोष कर दी। उस समय हरदयाल और वीरेन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे प्रमुख भार क्रातिकारी बर्लिन केन्द्र मे काम कर रह थे। १६१५ मे इस समिति के स से काबुल म एक निर्वासित अस्थायी सरकार कायम की गयी। इसके र महेन्द्रप्रताप प्रधान मत्री बरकतुल्लाह और विदेश मत्री उबेदुल्ल १६१६–१६१७ मे इस अस्थायी सरकार ने पहले रूसी जारशाही और बाद म अस्थायी सरकार का समर्थन प्राप्त करने की भोली से तीन अवसरो पर अपने दूत भेजे थे।

युद्ध की समाप्ति तक राष्ट्रीय क्रातिकारियो को यह स्पष्ट न तो शाही जर्मनी और न ही उस्मान साम्राज्य औपनिवेशिक शा भारत के सघर्ष को समर्थन देने म दिलचस्पी रखते है। १६ केन्द्र के अधिकाश सक्रिय सदस्य स्टाकहोम चले गये, जहा उन्होने विरोधी प्रचार करना जारी रखा।

भारतीय राजनीति मे 'विस्फोटक सामग्री' के सचय के आदोलन के भीतर नरमदलियो गरमदलियो और राष्ट्रीय क्र तीन मुख्य प्रवृत्तियो मे से कोई भी औपनिवेशिक प्रशासन स रिआयत नही प्राप्त कर पायी। फिर भी इन भारतीय देशभक्त प्रथम विश्व युद्ध तथा रूस मे महान अक्तूबर समाजवादी क्राति बाद उत्पन्न होनेवाली क्रातिकारी परिस्थिति के विकास के लि कुछ तत्वो के पैदा होने मे अवश्य सहायता की।

पहला क्रातिकारी प्रहार और राजनीतिक जन-सगठनो का उदय (१९१८-१९२७)

रूस म अक्तूबर क्रांति न पूजीवाद का आम सकट प्रारभ कर दिया जो अतत औपनिवशिक प्रणाली का सकट था। बीसवी शताब्दी क प्रारभ म ही राजनीतिक कार्रवाई क प्रति सजग होत हुए पूर्व क जनगण अब साम्राज्यवादी उत्पीडन का खात्मा करन म जुट गय। भारत म तीसर दशक क प्रारभिक वर्षों की घटनाए इस विशाल आदोलन का ही अग थी जिसन एशिया क लगभग सभी उपनिवशो और अर्ध-उपनिवशो को अपनी परिधि म ले लिया था। भारत न इतिहास क आधुनिक दौर म ब्रिटिश उपनिवशवाद क साथ सघर्ष करत हुए प्रवश किया।

राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन का ज्वार

आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का बिगडना

प्रथम विश्व युद्ध क दौरान जब ब्रिटेन न अधिकाश फौजी व्यय को अपन मुख्य उपनिवश क कधो पर लाद दिया था, भारत की तीव्र लूट ने आम जनता क लिए भीषण परिणाम पैदा किये।

विश्व आर्थिक सबधो की युद्धकालीन गडबडी के परिणामस्वरूप जूट, रूई, तिलहन और अन्य तकनीकी फसलो के निर्यात म ह्रास ने किसानो के हितो को प्रभावित किया। जमीदारो और व्यापारी वर्ग ने अपनी क्षति प्रत्यक्ष उत्पादको—किसानो—के शोषण को तेज करके पूरी करने की कोशिश की। १९११ और १९२५ के बीच किसानो पर साहूकारो का ऋण दुगुना होकर लगभग कोई ६०० करोड रुपये हो गया।

पहला क्रातिकारी प्रहार ओर राजनीतिक जन-सगठनो का उदय (१६१८–१६२७)

रूस म अक्तूबर क्राति न पूजीवाद का आम सकट प्रारभ कर दिया जो अ गत औपनिवशिक प्रणाली का सकट था। बीसवी शताब्दी के प्रारभ म ही राजनीतिक कार्रवाई क प्रति सचत हुए पूर्व के जनगण अब साम्राज्यवादी उत्पीडन का खात्मा करन म जुट गये। भारत म तीसरे दशक के प्रारभिक वर्षो की घटनाए इस विशाल आदोलन का ही अश थी जिसन एशिया के लगभग सभी उपनिवशो और अर्ध-उपनिवशो को अपनी परिधि म ले लिया था। भारत न इतिहास क आधुनिक दौर म ब्रिटिश उपनिवेशवाद के साथ सघर्ष करत हुए प्रवश किया।

राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन का ज्वार

आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का बिगडना

प्रथम विश्व युद्ध क दौरान, जब ब्रिटेन ने अधिकाश फौजी व्यय को अपने मुख्य उपनिवेश क कधो पर लाद दिया था भारत की तीव्र लूट न आम जनता के लिए भीषण परिणाम पैदा किये।

विश्व आर्थिक सबधो की युद्धकालीन गडबडी के परिणामस्वरूप जूट, रूई, तिलहन और अन्य तकनीकी फसलो के निर्यात म ह्रास ने किसानो के हितो को प्रभावित किया। जमीदारो और व्यापारी वर्ग ने अपनी क्षति प्रत्यक्ष उत्पादको—किसानो—के शोषण को तेज करके पूरी करने की कोशिश की। १६११ और १६२५ के बीच किसानो पर साहूकारा का ऋण दुगुना होकर लगभग कोई ६०० करोड रुपये हो गया।

सामती जमीदारो, औपनिवशिक राज्य और साहूकारो द्वारा किसाना क तीव्रीकृत शोषण के परिणामस्वरूप भूमि हस्तातरण मे काफी वृद्धि आयी। अधिकाधिक किसानो को गिरवी अथवा बिक्री के ज़रिये अपनी ज़मीना को गवाना पड रहा था।

किसाना के बाद जिनको सबसे भीषण कठिनाइयो का सामना करना पड रहा था, वे दस्तकार और उनके परिवार थे। प्रथम विश्व युद्ध के पहल और उसके दौरान अनक शिल्प और कुटीर उद्योगो के उत्पादन म (विशष रूप स कपडा बुनन मे) जो कटौती हुई थी, उसके परिणामस्वरूप करोडा दस्तकारो छोटे उत्पादका और फलत छोटे व्यापारियो की आय म भारी कमी आयी।

श्रम बाजार मे लाखो तबाह दस्तकारो के आगमन ने औद्योगिक सर्वहारा की स्थिति पर नकारात्मक प्रभाव डाला, जिनकी वास्तविक मजदूरी का मूल्य कीमतो मे उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ लगातार घटता गया।

१६१८–१६१६ और १६२०–१६२१ मे दो खराब फसलो के बुरे प्रभावा स देश मे आर्थिक स्थिति और अधिक गभीर हो गयी। खाद्य उत्पादन म भारी गिरावट क परिणामस्वरूप जब कि अनाज का निर्यात ज्यो का त्या बना रहा, व्यापक अकाल पड गया जिसके कुप्रभावो को इन्फ्लुएन्ज़ा की महामारी न और भी बदतर बना दिया, जिसमे १३० लाख लोगो की जान गयी।

खाद्य पदार्थो के अभाव और ऊची कीमतो ने केवल श्रमजीवी जनता के मुख्य हिस्सो के हितो को ही नही, बल्कि मध्यम वर्ग – उपक्रमी वर्ग के निम्न सस्तरो, बुद्धिजीवियो और सफेदपोश कर्मचारियो के हितो को भी प्रभावित किया।

भारतीय राष्ट्रीय पूजीपति वर्ग जिसने युद्ध के दौरान अपन उपक्रमी कार्यकलाप का विस्तार किया था और अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत बना लिया था अब औपनिवेशिक उत्पीडन से उत्पन्न प्रतिबधो तथा देश के आर्थिक, राजनीतिक और सास्कृतिक मामलो के विभिन्न क्षेत्रो म औपनिवशिक अधिकारियो के भेदभावमूलक कदमो के परिणामो के प्रति पहले से अधिक सचेत था।

बीसवी शताब्दी के तीसरे दशक के प्रारभ तक भारत म अतर्विरोधा के दो क्षेत्रा – दश के भीतर शोषक और शोषित वर्गो के बीच तथा एक ओर भारतीय समाज के मुख्य वर्गो और सामाजिक श्रेणियो और दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्यवादिया के बीच, जिन्होने सामती भूस्वामी वर्ग राजाओ तालु

पूजीपति वर्ग और इन समूहा के साथ सहयोग करनवाले व्यापारियो और महाजनो का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश जारी रखी – म विशेषकर तीव्रता आ गयी थी।

राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष का तीव्रीकरण मजदूर वर्ग की नयी कार्रवाइयो के साथ शुरू हुआ। १६१८ म बम्बई मद्रास कानपुर और अहमदाबाद मे उस समय के लिहाज से कई खासी बडी हडताल हुई। ये स्वत स्फूर्त आर्थिक स्वरूप की हडताले थी, जो बडी हद तक युद्धकालीन उत्पादन के बद किय जाने के बाद मजदूरो की व्यापक बर्खास्तगी क परिणामस्वरूप हुई थी। हडताल आदोलन के तेज होन के साथ टेड-यूनियने प्रकट होने लगी (भारत म बीसवी शताब्दी के प्रारभ मे स्थापित औद्योगिक और सफेदपोश कर्मचारिया के ट्रेड-यूनियनो की तरह काम करनेवाल अनेक सगठन प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति तक विघटित हो चुक थे)। ये यूनियन पूजीवादी राष्ट्रवादिया और परोप कारियो द्वारा सगठित की गयी थी। पहली ट्रेड-यूनियन १६१८ मे मद्रास मे बी० पी० वाडिया न स्थापित की थी और बाद मे बम्बई, कुछ अन्य औद्योगिक नगरो और अहमदाबाद मे भी कुछ ट्रेड-यूनियन कायम की गयी जहा उसी वर्ष गाधीजी की सहभागिता स अहमदाबाद मिल मजदूर यूनियन कायम की गयी।

देश म क्रातिकारी भावनाओ की लहर को रूस मे क्राति की सूचनाओ स नया सवेग प्राप्त हुआ जो धीरे धीरे भारत पहुचने लग गयी थी।

भारत पर अक्तूबर क्राति का प्रभाव

फरवरी क्राति तथा जार का तख्ता उलटने क समाचार ने, जो ब्रिटिश प्रस के जरिये भारत पहुचा था भारतीय राष्ट्रवादिया पर गहरा प्रभाव डाला जो रूसी निरकुशता को हमेशा भारत मे ब्रिटिश निरकुशता के समतुल्य ही समझते आये थे। होम रूल समिति द्वारा १६१७ मे रूस से सबक' (होम रूल सिरीज २३) के प्रतीकात्मक शीर्षक से प्रकाशित एक पुस्तिका म शिक्षित वर्गो से रूस मे मुक्ति क्राति के महत्व और निहितार्थो के बारे मे आम भारतीय जनता को समझाने की अपील की गयी थी। रूस मे विजयी क्राति न भारतीय राष्ट्रवादियो को अपना मुक्ति सघर्ष तेज करन के लिए प्ररित किया। इन घटनाओ क प्रति उस समय के भारतीय राष्ट्रवादी प्रेस का रुख इलाहाबाद क अखबार अभ्युदय' (२४ मार्च १६१७) म प्रकाशित एक लेख म अभिव्यक्त

होता है जिसमे कहा गया था कि "ऐसी क्रांति हमे इसका विश्वास दिलाती है कि दुनिया मे कोई भी ऐसी शक्ति नही है, जिसे स्फूर्तिदायी और जीवन दायी राष्ट्रवाद पराजित न कर सकता हो"।

रूस मे क्रांतिकारी घटनाओ की प्रगति के साथ ब्रिटिश अखबारो सहित पश्चिम मे पूजीवादी प्रेस ने नवोदित सोवियत जनतत्र को खुल्लमखुल्ला बदनाम करने के प्रयास मे अपने पाठको को अधिकाधिक गुमराह करना शुरू कर दिया। ब्रिटिश अधिकारियो द्वारा रूस मे घटनाओ सबधी सूचना के प्रकाशन का सख्ती से कठोर सेसर किया जाता था और भारत मे कम्युनिस्ट साहित्य की छपाई पर पूर्ण प्रतिबध लगा दिया गया था। लेकिन औपनिवेशिक प्रशासन की इन सभी कार्रवाइयो के बावजूद अक्तूबर क्रांति के बारे मे सच्चाई भारत मे काफी तेजी से फैल गयी। भारत मत्री माटग्यू और वाइसराय चेम्सफ़ोर्ड को १६१८ मे प्रकाशित 'भारतीय सवैधानिक सुधार पर रिपोर्ट' मे यह स्वीकार करना पडा कि "रूस मे क्रांति और इसकी शुरूआत को भारत मे निरकुशता पर विजय समझा गया इसने भारतीय राजनीतिक आकाक्षाओ को उत्प्रेरणा दी है"।

भारतीय ग्रामीण जनता को युद्ध की समाप्ति पर यूरोप और मध्य-पूर्व के युद्ध-क्षेत्रो से लौटनेवाले सैनिको से दूरवर्ती रूस मे घट रही घटनाओ के बारे मे जानकारी प्राप्त हुई। उत्तरी भारत, विशेष रूप से पजाब, के गावो के बारे मे यह बात खासकर सही थी जहा से युद्ध मे तथा तुर्किस्तान मध्य एशिया और कास्पियन सागर से लगे इलाको मे फौजी कार्रवाइयो मे भाग लेनेवाली भारतीय फौजो के अधिकाश सैनिक भर्ती किये गये थे।

भारतीय राष्ट्रवादी प्रेस ने, जिसने १६१७ के नवम्बर के मध्य मे सोवियत रूस मे घटनाओ की खबर प्रकाशित करना शुरू कर दिया था, लेनिन की विख्यात 'रूस के जनगण के अधिकारो की घोषणा' (१५ नवम्बर, १६१७ को स्वीकृत) तथा उसी वर्ष ३ दिसम्बर को जन-कमिसार परिषद द्वारा प्रकाशित 'रूस और पूर्व के सभी मुस्लिम मेहनतकशो से अपील' की तरफ विशेष ध्यान दिया।

अक्तूबर क्रांति के बाद के प्रारभिक वर्षो मे अधिकाश भारतीय राष्ट्रवादियो ने जिन्होने रूस मे चल रहे सघर्ष का स्वागत किया था इन क्रांतिकारी घटनाओ के सामाजिक निहितार्थो को वस्तुत नही समझा था। फिर भी वे नवोदित सोवियत राज्य को राष्ट्रीय और औपनिवेशिक उत्पीडन के खिलाफ़ सघर्ष का समर्थक अवश्य समझते थे। लेकिन उस अवस्था मे भी राष्ट्रीय

आदोलन के वामपथी नेताओ ने अक्तूबर क्राति को एक युगातरकारी सामाजिक परिवर्तन माना था।

बाल गगाधर तिलक ने 'केसरी' (२६ जनवरी, १९१८) मे ब्रिटिश प्रेस मे लेनिन पर निन्दात्मक आक्रमणो के खिलाफ उनके समर्थन मे लिखे एक सपादकीय मे यह कहा कि "अभिजातो की जमीनो के किसानो को बाटे जाने के परिणामस्वरूप सेना और जनता मे लेनिन का प्रभाव बढ गया है" वामपथी राष्ट्रवादियो के एक और नेता, विपिनचद्र पाल ने, जो नवोदित सोवियत राज्य के मूलभूत राजनीतिक सिद्धातो का उत्साहपूर्वक समर्थन करते थे, १९१९ मे अपने एक भाषण मे साफ साफ कहा था कि बोल्शेविक सभी प्रकार के आर्थिक और पूजीवादी शोषण तथा सट्टेबाजी के खिलाफ है और वे सामाजिक असमानता का विरोध करते है।

राष्ट्रवादी प्रेस मे सोवियत रूस के बारे मे सही सूचना के प्रकाशन के परिणामस्वरूप भारतीय समाज की बोल्शेविको के कार्यक्रम और नीतियो मे दिलचस्पी तेजी से बढती गयी। तीसरे दशक के प्रारभ मे लेनिन और सोवियत राज्य पर भारतीय लेखको की कृतिया भी प्रकाशित होने लगी। भारत मे अलग पुस्तक की तरह प्रकाशित लेनिन की पहली जीवनी दक्षिण भारत के समाजवादी जी० वी० कृष्णराव ने अग्रेजी मे लिखी थी। यह 'निकोलाई लेनिन उनका जीवन और कृतित्व' थी, जो १९२० मे मद्रास मे प्रकाशित हुई थी। १९२१ और १९२४ के बीच पत्र-पत्रिकाओ मे अनेक लेखो के अलावा भारत मे लेनिन और अक्तूबर क्राति के बारे मे हिन्दी, उर्दू, बगला मराठी कन्नड और अग्रेजी मे एक दर्जन से अधिक पुस्तके प्रकाशित हुई।

भूमिगत क्रातिकारी सगठनो मे काम करनेवाले वामपथी भारतीय राष्ट्रवादियो ने सोवियत जनतत्र को ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के खिलाफ सघर्ष मे अपना निकट मित्र माना और सोवियत रूस के साथ सीधे सपर्क स्थापित करने लगे। १९१७ के अत मे दिल्ली मे मुस्लिम राष्ट्रवादियो की एक सभा मे रूसी क्राति का अभिनदन करते हुए एक सदेश स्वीकृत किया गया और इसे जनवरी १९१८ मे गैर कानूनी प्रकाशनो मे प्रकाशित किया गया। खैरी बधुओ – सत्तार और जब्बार – को सोवियत सरकार को यह सदेश पहुचाने के लिए मास्को भेजा गया। वे नवम्बर १९१८ मे बहुत चक्करदार मार्ग से यूरोप से होते हुए आखिर सोवियत राजधानी पहुच ही गये। विदेशी मामलो की जन कमिसारियत को दिये गये अपने ज्ञापन मे इन भारतीय निम्न-पूजीवादी क्रातिकारियो ने रूसी क्राति के प्रति अपनी सराहना के साथ यह आशा व्यक्त

री कि इस भारत में औपनिवेशिक जुए से मुक्ति पाने के संघर्ष की सहायता प्रदान करेगा। २३ नवम्बर को यह प्रतिनिधिमंडल लेनिन से मिला और दो दिन बाद उसने अखिल रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति की एक बैठक में भाग लिया जिसमें जब्बार खेरी ने भाषण भी दिया। मास्को में उन्होंने जो कुछ देखा उससे तथा लेनिन और स्वर्दलोव के साथ उनकी मुलाकातों का भारतीय प्रतिनिधियों पर गहरा प्रभाव हुआ, जैसा कि उनके वापस लौटने पर भारत में प्रकाशित घोषणापत्र से स्पष्ट है।

प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों ने भी सोवियत रूस के साथ संपर्क कायम रखना शुरू कर दिया था। मार्च, १९१८ में भारत की काबुल में स्थापित अस्थायी सरकार के राष्ट्रपति महेन्द्रप्रताप पेत्रोग्राद पहुंचे। इस अवसर पर भारत के साथ एकजुटता व्यक्त करने के लिए लूनाचार्स्की की अध्यक्षता में एक राजनीतिक सभा आयोजित की गयी थी। बाद में महेन्द्रप्रताप द्वारा प्रकाशित संस्मरणों में इस अवसर को अविस्मरणीय और शानदार बताया गया है। उसी वर्ष इस सरकार के प्रधान मंत्री बरकतुल्लाह ने मास्को की यात्रा की जिन्होंने इज्वेस्तिया के एक संवाददाता के साथ भेंटवार्ता में सोवियत रूस के प्रति प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों के रवैये की सुस्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने कहा कि वह न तो कम्युनिस्ट हैं और न समाजवादी, लेकिन उनके राजनीतिक कार्यक्रम में, उन्होंने कहा कि अंग्रेजों को एशिया से खदेड़ दिया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि वह अपने को कम्युनिस्टों का [illegible] एशिया में यूरोपीय पूंजीवाद का कट्टर शत्रु समझते हैं और इस पर जोर दिया कि इस मामले में प्रवासी भारतीय क्रांतिकारी और कम्युनिस्ट स्वाभाविक मित्र हैं।

बाद में १९१९ में महेन्द्रप्रताप और बरकतुल्लाह के नेतृत्व में प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों का एक प्रतिनिधिमंडल मास्को आया और उसने ७ मई को लेनिन से मुलाकात की।

इसके बाद लेनिन और मास्को आनेवाले भारतीय क्रांतिकारियों के बीच अनेक मुलाकातें हुईं। भारत में मजदूरों और किसानों के प्रथम [illegible] के [illegible] भारत में राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलन के विकास में गहरी [illegible] थी [illegible] साम्राज्यवादियों के विरुद्ध [illegible] [illegible] [illegible]

और पिछले बरसों म यही बहुमत असाधारण तत्री क साथ अपनी मुक्ति के सघप म खिचा है।"*

२० मई, १९२० को भारतीय क्रांतिकारी सघ (महेन्द्रप्रताप द्वारा कायम एक सगठन) द्वारा काबुल म आयोजित सभा के अभिनदन सदेश का उत्तर दते हुए लेनिन न अपनी असाधारण अतर्दृष्टि से भारत म सघष की सफलता का निधारित करनेवाल एक अत्यत महत्वपूर्ण कारक अर्थात हिन्दू मुस्लिम एकता, की ओर ध्यान खीचा था हम मुसलमानो और गैर मुसलमानो की घनिष्ठ एकता का स्वागत करत है। हमारी हार्दिक कामना है कि यह एकता पूर्व क समस्त महनतकशो को एक सूत्र म पिरोये। **

इस प्रकार अक्तूबर क्राति की विजय से भारतीय मुक्ति आदोलन के अतराष्ट्रीय सबधो म काफी विस्तार हुआ और उनम गुणात्मक रूप से एक नय तत्व – दुनिया के प्रथम समाजवादी राज्य तथा पूर्व के जनगण क राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष क बीच एक सहबध – का समावेश हुआ।

भारतीय राष्ट्रीय आदोलन की विभिन्न धाराओ पर यह प्रभाव अलग अलग परिमाण मे पडा। समाजवादी क्राति क प्रभाव के परिणामस्वरूप राष्ट्र वादियो के वामपक्ष का, जो मजदूर वग की एतिहासिक भूमिका को धीरे धीरे समझने लगा था, सामाजिक कार्यक्रम अधिक मूलगामी बन गया। २३ दिसम्बर १९१९ को आयोजित एक सभा म तिलक ने कहा था मजदूर सगठनो की महिमा कालातर म और बढन जा रही है और यह मजदूर ही है जो शासक बनन जा रहे है।"*** अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस के पहले अधिवेशन म अपने अध्यक्षीय भाषण म लाला लाजपत राय ने कहा था कि 'यूरोपीय मजदूर ने सीधी कार्रवाई म एक दूसरा हथियार पा लिया है। सबके ऊपर रूसी मजदूर है, जिसका लक्ष्य सर्वहारा अधिनायकत्व कायम करना है ****

अक्तूबर क्राति क प्रभाव के परिणामस्वरूप निस्सदिग्ध रूप म उग्रपथियो और क्रातिकारियो के कुछ समूहो भूमिगत ब्रिटिशविरोधी सगठनो के सदस्यो

---

* व्ला० इ० लेनिन चाहे कम हो पर बहतर हो', सकलित रचनाए भाग ४, मास्को, १९७५ म पृ० ३२८।

** व्ला० इ० लेनिन, भारतीय क्रान्तिकारी सघ को, एशिया का जागरण पुस्तक म मास्को १९७२ पृ० ६१।

*** Quoted in S G Sardesai *India and the Russian Revolution* New Delhi PPH, August 1967 p 24

**** Ibid p 39

द्वारा वैज्ञानिक समाजवादी धारा के स्वीकार किये जाने में तेजी आयी।

जहा तक प्रभावशाली राष्ट्रीय राजनीतिक सगठन भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का सबध है, कुल मिलाकर इसके नेताओ ने अक्तूबर क्राति का स्वागत ही किया हालाकि वे इसके सामाजिक-राजनीतिक कार्यक्रम का अनुमोदन नही करते थे। १६१७ में भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के एक अधिवेशन में एनी बेसेंट ने कहा था कि 'रूसी क्राति तथा यूरोप और एशिया में रूसी जनतत्र के सभावित उदय ने भारत में पहले विद्यमान परिस्थितियो को पूर्णतया बदल दिया है। *

भारत पर अक्तूबर क्राति का प्रभाव एक लबी और बहुविध प्रक्रिया थी। भारतीय समाज के विभिन्न वर्गो और उनका प्रतिनिधित्व करनेवाले सामाजिक राजनीतिक सगठनो द्वारा रूस मे क्रातिकारी घटनाओ से प्राप्त सबसे महत्वपूर्ण और सुस्पष्ट सबक यह था कि मुक्ति सघर्ष केवल तभी सफल हो सकता है कि जब जनसाधारण उसमे सक्रिय भाग ले।

भारत मे ब्रिटिश नीति। माटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार

आग्ल-भारतीय प्रशासन ने रूस मे क्रातिकारी घटनाओ के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त की किंतु अपनी विशिष्ट शैली मे ही।

मई १६१७ में ही वाइसराय चेम्सफोर्ड ने ब्रिटिश सरकार का ध्यान भारत के प्रति ब्रिटिश नीति मे परिवर्तन लाने की अनिवार्य आवश्यकता की ओर आकृष्ट किया। कारण यह था कि देश में स्थिति रूसी क्राति के प्रभाव के परिणामस्वरूप बदल गयी थी। उस वर्ष २० अगस्त को भारत मत्री माटेग्यू ने हाउस आफ कामन्स मे भारत के प्रति नीति के बारे में एक सरकारी घोषणा की जिसका उद्देश्य कथित रूप से देश में एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिए आधार तैयार करना था। इस घोषणा के अनुरूप माटेग्यू और चेम्सफोर्ड ने ब्रिटिश सरकार और ससद के लिए भारत में ब्रिटिश नीति पर एक रिपोर्ट तैयार की, जिसे जुलाई, १६१८ में प्रकाशित किया गया। इस रिपोर्ट की मुख्य बातो को ब्रिटिश ससद द्वारा १६१६ में पास किये गये गवर्नमेंट

* *Congress Presidential Addresses* (Second Series) Madras 1934 p 310

आफ इडिया ऐक्ट (भारत शासन अधिनियम) म शामिल किया गया जो बाद म माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार के नाम स प्रसिद्ध हुआ।

इस ऐक्ट म १९०९ के मार्ले मिटो सुधार के बाद मताधिकार प्राप्त सभी वयस्को क ० २ प्रतिशत क मुकाबले केन्द्रीय (वयस्क आबादी का एक प्रतिशत) और प्रातीय (वयस्क आबादी का तीन प्रतिशत) विधान परिषदो के लिए निर्वाचक मडल म कुछ विस्तार का प्रावधान था। इसके परिणामस्वरूप जल्दी ही केन्द्रीय विधान मडल के निम्न सदन (विधान सभा) और उच्च सदन (विधान परिषद्र) तथा प्रातीय विधान परिषदो म निर्वाचित सदस्यो का स्थिर बहुमत हो गया।

भारतीयो को वाइसराय की तथा प्रातीय गवर्नरो की कार्यकारिणी परिषदो म जगह दी गयी और स्वास्थ्य शिक्षा तथा औपनिवेशिक प्रशासन म कुछ और गौण क्षेत्रा मे मन्त्रि पद प्राप्त करन की छूट मिल गयी। केन्द्रीय कार्य कारिणी मे यद्यपि भारतीयो की सख्या बढा दी गयी मगर अब भी वह ब्रिटिश ससद के प्रति उत्तरदायी बनी रही।

प्रशासकीय सुधार के ये प्रावधान भारत के सपत्तिशाली वर्गो को कुछ रिआयतो के परिचायक थे और इनका उद्देश्य एक आर राष्ट्वादी रुझान के पूजीवादी वर्ग जमीदारो तथा पूजीवादी और भूस्वामी परिवारा मे उत्पन्न बुद्धिजीवियो और दूसरी ओर राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन क बीच दरार डालना था।

भारतीय राष्ट्रवादियो की पातो म फूट डालने के उद्देश्य स दूसरा महत्व पूर्ण प्रावधान विधान परिषदो के चुनावो म साप्रदायिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली का समावश था जिसन केवल हिंदुओ और मुस्लिमो क लिए अलग मतदान ही नही बल्कि मुस्लिमो के लिए कुछ विशेषाधिकार भी सुनिश्चित किये। उन प्रातो म भी जहा वे मतदाताओ मे अल्पसख्यक थ मुसलमानो को विधान परिषदो मे ३० प्रतिशत स्थान दिय गये और जहा व बहुसख्यक थे वहा उनको आधे से अधिक स्थान दिय गये।

नये गवर्नमेट ऑफ इडिया एक्ट मे हिंदुआ और मुस्लिमो को एक दूसर के खिलाफ करन की ओर लक्षित ब्रिटिश नीति को और भी आगे ले जान का प्रावधान रखा गया था।

भारतीय समाज के ऊपरी सस्तरा क प्रतिनिधिया के दश क प्रशासनतत्र म उच्च पदो पर नियुक्त किय जाने के अवसरा का कुछ विस्तार हो जान क बावजूद अग्रेजो क अधिकारो म वस्तुत कोई भी कमी नही आयी थी। पहले की तरह ही वित्त सना पुलिस आदि स सबधित सभी मामलो पर

उनका पूण नियत्रण था। इसक अलावा वाइसराय और प्रातीय गवनरा का विधान परिपदा का भग करन तथा उनक द्वारा स्वीकृत निणया का अपन विवकानुसार अस्वीकार करन का अधिकार भी बना रहा। सत्ता का यह ढाचा, जिसम निर्वाचन सिद्धात तथा विधान परिपदा क प्रति भारतीय मत्रिया क सीमित उत्तरदायित्व का वाइसराय और उसक प्रतिनिधिया–प्रातीय गवनरा–की निरकुशता क साथ सयाग था, द्वैध शासन प्रणाली क नाम स प्रसिद्ध हुई। इसक साथ ही भारत म अधिक दृढ सामाजिक आधार प्राप्त करन क लिए अग्रजा न दश म राष्ट्रीय मुक्ति-आदालन का कुचलन क लिए प्रयुक्त प्रशासनतत्र का मजबूत करन क कदम भी उठाय।

१६१८ म अग्रज न्यायाधीश रौलट की अध्यक्षता म एक समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसम भारत म सरकारविरोधी कार्रवाइया का उल्लख किया गया था। भारत म स्वतत्रता सग्रामिया क खिलाफ दमन का तज करन क लिए समिति क पश किय निष्कर्षो और सुझावा न रौलट एक्ट क नाम स विख्यात उस विशप कानून का आधार प्रदान किया जिसकी घाषणा १८ मार्च १६१६ को की गयी। इस नय निमम कानून न वाइसराय और प्रातीय गवनरा को अन्य चीजा क अलावा लागा का गिरफ्तार करन और उन्ह अदालत म मुकदमा चलाय विना काला पानी का दड दन का अधिकार प्रदान किया।

डाट पुचकार की यह नीति जिसका भारत म ब्रिटिश साम्राज्यवादी बीसवी शताब्दी क प्रारभ स इस्तमाल कर रह थ, अब असफल सिद्ध हान लगी थी। राष्ट्रीय मुक्ति-सघर्ष के बढत ज्वार को राकन क लिए न ता माटग्यू चेम्सफाड सुधार और न ही रौलट ऐक्ट काफी थ। इसक साथ ही इन उपाया न मानो जन सघर्ष और सगठित राष्ट्रीय आदालन म परिवर्तन के लिए एक उत्प्रेरक प्रदान किया।

काग्रेस के दृष्टिकोण मे परिवर्तन। गाधीजी द्वारा राष्ट्रीय आदोलन के नेतृत्व का ग्रहण

तिलक के नतृत्व मे गरमदलियो की वापसी और होम रूल लीगो की सरगर्मियो के परिणामस्वरूप काग्रस के नरमदली, उदारतावादी नेतृत्व के खिलाफ धीरे-धीरे विरोध पैदा होने लगा। अगस्त, १६१८ म बम्बई म माटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार पर विचार करने के लिए बुलाये जानेवाले विशेष अधिवेशन मे काग्रेस मे खुली फूट हो गयी। बहुमत स ब्रिटिश प्रस्तावा को

नाकाफी, असतोषजनक और निराशाजनक मानते हुए अस्वीकार कर दिया गया। राष्ट्रीय काग्रेस आज़ादी के पूजीवादी और निम्न-पूजीवादी स्तरो मे व्याप्त साम्राज्यवादविरोधी भावनाओ को अधिकाधिक ज़ोरदार ढग से अभि-व्यक्त करने लगी थी।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व मे काग्रेस के दक्षिणपथी सदस्य और कुछ अन्य नरमदली नेता काग्रेस से अलग हो गये और उन्होने लिबरल फेडरेशन नामक एक नयी पार्टी बना ली। यह राजनीतिक सगठन जिसके सदस्य पूजीवादी और ज़मीदार वर्गो की ऊपरी श्रेणिया से थे बडी सीमा तक देशी दलाल पूजीवादी वर्ग के हितो का प्रतिनिधित्व करता था और आनेवाले वर्षो मे इसने औपनिवेशिक शासन को अविचल रूप से अपना पूर्ण समर्थन प्रदान किया और देश के सामाजिक राजनीतिक कार्यकलाप मे महत्व की कोई भूमिका अदा नही की।

तभी से काग्रेस के भीतर गाधीजी का प्रभाव तेजी से बढने लगा। भारत मे दो सत्याग्रह आदोलनो के सगठन अहमदाबाद मे मज़दूर सघ के सगठन मे उनकी सक्रिय सहभागिता पत्र पत्रिकाओ मे उनके अनेक लेखो तथा राज नीतिक सभाओ मे भाषणो ने गाधीजी को तीसरे दशक के प्रारभ तक भारतीय राष्ट्रवादियो के बीच सबसे लोकप्रिय नेताओ मे एक बना दिया था। उन्होने काग्रेस के साथ सहयोग किया लेकिन शुरू मे इसके बाहर काम किया।

राष्ट्रव्यापी पैमाने पर जन-आदोलन विकसित करने के उद्देश्य से गाधीजी की पहली बडी कार्रवाई रौलट ऐक्ट के खिलाफ विरोध आदोलन का सगठन था। १९१८ मे अपने सहायको और अनुयायियो के एक दल के साथ उन्होने सत्याग्रह प्रतिज्ञा को सूत्रबद्ध और हस्ताक्षरित किया जिसमे उन्होने सविनय अवज्ञा के ज़रिये भारत मे राष्ट्रीय आदोलन को दबाने के उद्देश्य से इस और ऐसे ही अन्य कानूनो का प्रतिरोध करने की शपथ ली। बम्बई मे गाधीजी ने एक सत्याग्रह सभा सगठित की जिसने सत्याग्रह प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर एकत्रित करना शुरू किया। इस अभियान मे सफलता के परिणामस्वरूप गाधीजी के लिए अगला कदम उठाना सभव हो गया और सत्याग्रह सभा के नाम पर तथा रौलट एक्ट के विरोध मे उन्होने मार्च, १९१९ मे आम हडताल करने की अपील की। हडताल के दिन उपवास और प्रार्थना करने की अपील केवल हिन्दुओ से ही नही बल्कि मुस्लिमो से भी की गयी। हडताल का दिन ६ अप्रैल, १९१९ रखा गया। गाधीजी के आह्वान के व्यापक अनुचार तथा काग्रेस द्वारा इसके समर्थन ने यह प्रदर्शित कर दिया कि गाधीजी राष्ट्रीय आदोलन के सर्वमान्य नेता बनने लगे थे।

राष्ट्रीय नेता के रूप में गांधीजी के तर्जी म उत्कर्ष का कारण यह था कि उनके सामाजिक राजनीतिक और दार्शनिक विचारों, जिन्होंने मुख्यतया तीसरे दशक के प्रारंभ म मूर्त रूप ग्रहण कर लिया था, और स्वतंत्रता संघर्ष म उनके कार्यक्रम और कार्यनीति को भारतीय समाज के अत्यंत विविध हिस्सो का समर्थन प्राप्त था।

गांधीजी की आधुनिक पूजीवादी सभ्यता, बड यत्रीकृत उद्योग तथा पूजीवादी शहरीकरण की आलोचना और शिल्प तथा कुटीर उद्योगो के पुनर्विकास और विस्तार तथा भविष्य म आर्थिक रूप स स्वावलबी ग्रामीण समुदायो के आधार पर देश की अर्थव्यवस्था के विकेंद्रीकरण के उनके कार्यक्रम न भारतीय किसानो दस्तकारो, लघु उद्योग म मजदूरो और छोटे व्यापारियो के निम्न पूजीवादी कल्पनावादी समाजवाद के आदर्श को अभिव्यक्त किया।

एस समय म जब कि सामाजिक चेतना पूर्णत विकसित नही हुई थी और भारत के आर्थिक सामाजिक और सास्कृतिक जीवन म सामती अवशेषो का प्रभुत्व बना हुआ था गांधीजी के सदेश का धार्मिक तथा नैतिक स्वरूप जनता म सीधे पैठ गया और उनके विचार देश की अशिक्षित जनता के लिए ग्राह्य हो गये। उनके दार्शनिक विचारो के हिन्दू धर्म पर आधारित होते हुए भी उनम इस्लाम, ईसाई धर्म और अन्य धर्मों के विचारो का समावेश होने के कारण यह काम और भी आसान हो गया।

गांधीजी की लोकप्रियता उनके व्यक्तिगत जीवन की तपस्विया जैसी सादगी जनता स व्यापक सपर्क (मसलन वह केवल तीसरे दर्जे म यात्रा करते थे और आम लोगो स अंग्रेजी नही हिन्दुस्तानी मे ही बात करते थे) मानव प्रकृति की उनकी गहरी समझ तथा आबादी के निर्धन और अशिक्षित हिस्सो की मन स्थिति को पहचानने की उनकी योग्यता के कारण और भी बढ गयी।

गांधीजी ने अपने समक्ष जो समग्र उद्देश्य रखा वह था स्वाधीनता की क्रमश और कई चरणो म प्राप्ति। इस उद्देश्य से उत्पन्न मुख्य राजनीतिक कार्यभार भारतीय समाज के भीतर सभी वर्गों और राजनीतिक शक्तियो को एक ही पूजीवादी-राष्ट्रीय नेतृत्व के अतर्गत सयुक्त करना था। यही कारण है कि गांधीजी भारतीय समाज के भीतर वर्ग सघर्ष के विरुद्ध थे और वर्ग शाति कायम करने के लिए नगरो और गावो मे सामाजिक और आर्थिक विवादो के समाधान के लिए समझौते की भावना का सतत समर्थन करते थ। गहरे धार्मिक और जातिगत मतभेदो से परिपूर्ण समाज मे गांधीजी ने अपने

विचारधारात्मक और राजनीतिक कार्य म हिन्दुओ और मुस्लिमा के बीच एकता तथा दश के विभिन्न नसली और जातिगत समूहा क बीच सहयोग पर विशेष जोर दिया।

इसके साथ ही गाधीजी इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि सभी भारतीय राष्ट्रवादिया को सयुक्त करना तथा अपन कार्यक्रम क कार्यान्वयन क लिए सफल सघष शुरू करना तभी सभव हो सकता है कि जब जनता व्यापक मोर्चे पर स्वाधीनता सघर्ष म भाग ले। गाधीजी के लिए सत्याग्रह अहिसा क *साथ औपनिवेशिक शासन क प्रति सक्रिय विरोध का सामजस्य था* जो आदोलन क नतृत्व क राष्ट्रीय पूजीवादी शक्तिया के हाथा म रहन को सुनिश्चित करन क साथ-साथ राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन म आबादी क व्यापक हिस्सा की भागीदारी का एक सार्विक साधन उपलब्ध करता था।

गाधीजी द्वारा जो भारतीय पूजीवादी उद्योग क विकास का सक्रिय समर्थन करत थे विकसित इस राजनीतिक कार्यक्रम और इस कार्यनीति का भारतीय राष्ट्रीय पूजीपति वग क मुख्य भाग तथा राष्ट्रवादी सहानुभूति रखन-वाल जमींदारा न व्यापक समथन किया। तीसर दशक क प्रारभ तक गाधीजी भारतीय राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग क राजनीतिक नेता बन चुके थे। उपनिवेशवाद विरोधी सघर्ष की इस नयी अवस्था म गाधीजी भारतीय पूजीवादी और निम्न-पूजीवादी राष्ट्रवाद के भीतर मुख्य प्रवृत्तिया की एकता क प्रतीक बन गय थ।

जन सघर्ष की शुरूआत। जलियानवाला बाग

अप्रैल १६१६ म अनेक भारतीय नगरो मे हडतालो के साथ क्रातिकारी घटनाक्रम के विकास म एक नयी अवस्था का समारभ हुआ – १६१८ की आर्थिक हडताला से शहरी आबादी क व्यापक वर्गों की जनव्यापी कार्रवाइया जो कभी कभी सघर्ष के सर्वोच्च रूप यी सशस्त्र विद्रोह तक भी पहुच जाती थी।

इस समय म सबसे ज्वलत सफलताए पजाब म हासिल की गयी। इसक अनेक कारण थे एक तो पजाब न सबसे ज्यादा ' रक्त-कर दिया था यानी सेना क लिए अधिकाश रगरूट प्रदान किये थे, भारत के अन्नागार पजाब के किसाना ने फौजी व्यय के मुख्य भार को झेला था तथा पजाब के शिल्पो द्योगो और लघु उद्योगा को बडे उद्योगा की प्रतियोगिता स विशेषकर हानि

उठानी पडी थी। दूसर ब्रिटिश भारत क अन्य प्रातो के मुकाबल पजाब सोवियत मध्य एशिया क अधिक निकट था, जिसकी वजह स क्रातिकारी घटनाओ की खबर वहा अधिक तजी स फैली खासकर सिख सैनिको क स्वदश लौटना शुरू करने के बाद। तीसर, गदर पार्टी का पजाब म उन निवासित क्रातिकारियो की तरह ही अब भी बडा प्रभाव था जिन्होन उसक साथ निकट सपर्क बनाये रखा था।

स्थानीय नताओ द्वारा सगठित ब्रिटिशविरोधी सभाए और प्रदर्शन पजाब क अनक नगरो म मार्च म ही आरभ हो गय थ। १० अप्रैल को ब्रिटिश अधिकारियो द्वारा अमृतसर क दो लोकप्रिय नताओ, डा० सैफुद्दीन किचलू और डा० सत्यपाल की गिरफ्तारी क परिणामस्वरूप विरोध की एक नयी लहर तजी स फैलन लगी। उसक बाद प्रात क अन्य बड केन्द्रो—लाहौर और गुजरानवाला—म हडताले और सभाए ब्रिटिश शासन क खिलाफ सशस्त्र झडपो म परिणत हो गयी, जिनम मजदूरो, विशष रूप स रलव मजदूरो, न सक्रिय भाग लिया।

पजाब म गवर्नर ओ'डायर और जनरल डायर क नतृत्व म औपनिवेशिक अधिकारियो न आदोलनकारियो क सख्ती स कुचलन का निर्णय किया। इस उद्देश्य से ६ अप्रैल को ही पजाब म फौजी कुमुक मगवा ली गयी थी। १३ अप्रैल को फौजो न किचलू और सत्यपाल की गिरफ्तारी के खिलाफ जलियानवाला बाग म आयोजित विरोध सभा म भाग लेनवालो पर गोलिया चलायी। अमृतसर क जलियानवाला बाग मे लगभग एक हजार निहत्थे स्त्री-पुरुष बेरहमी से मारे गये और कोई दो हजार घायल हुए। जनरल डायर द्वारा लगाये गये कर्फ्यू के परिणामस्वरूप बाग और उसस लगी सडको पर डाक्टरी सहायता के अभाव मे अनक लोगो की घावो से मृत्यु हो गयी। पजाब म मार्शल लॉ लागू कर दिया गया बडे पैमाने पर गिरफ्तारिया हुई और लोगो को सर राह टिकठियो से बाधकर कोडे लगाये गये।

लेकिन इस निर्मम दमन स भी अग्रेज अपना वाछित लक्ष्य नही प्राप्त कर सके। उसके विपरीत लाहौर और अमृतसर मे आत्म रक्षा दल कायम हो गये, जो अधिकाशतया डडो से ही लैस थे। इसी लिए इन्हे डडा फौज का नाम दिया गया। सपूर्ण प्रात मे जनव्यापी राजनीतिक कार्रवाई जारी रही। पुलिस चौकियो पर हमलो और बदियो की जबरदस्ती रिहाई की घटनाए अकसर होने लगी। स्थानीय किसानो की सहायता स रेलवे मजदूरो न अनक फौजी ट्रेनो को पटरी से उतार दिया।

हालाकि अग्रेजो ने पजाब म घटनाओ की रिपोर्टो पर ससर लगा दिया फिर भी अमृतसर म नृशस घटनाओ की खबर पूरे देश म फैल गयी और उससे देशव्यापी क्रोध का तूफान भडक उठा। देश के बडे औद्योगिक केन्द्रो – बम्बई, कलकत्ता मद्रास और कानपुर – म ब्रिटिशविरोधी सभाए और प्रदशन विशेष रूप से उग्र थे। अहमदाबाद म सूती मजदूरो ने बडे पैमाने पर राज नीतिक कार्रवाइया करना शुरू कर दी।

गाधीजी ने जिन्हे इसकी चिंता हो गयी थी कि कही आदोलन अपना अहिसात्मक स्वरूप न खो दे अहमदाबाद की जनता को शात रहने को कहा और पजाब जाने का प्रयास किया। लेकिन ब्रिटिश अधिकारियो ने उन्हे यह यात्रा नही करने दी।

लेनिन ने पजाब की घटनाओ पर गहरी नजर रखी थी। पूर्व के देशो म मुक्ति-आदोलन के सबध म भारत के राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन की नयी अवस्था का सार उन्होने निम्नलिखित शब्दो म व्यक्त किया था इन देशो मे सबसे पहला स्थान ब्रिटिश भारत का है और वहा क्राति उतनी ही तेजी के साथ बढ रही है जितने उल्लेखनीय रूप म एक तरफ औद्योगिक तथा रेलवे सर्वहारा वर्ग बढ रहा है और दूसरी तरफ अग्रेजो का पाशविक अत्याचार बढ रहा है, जो अधिकाधिक मौको पर कत्ले-आम (अमृतसर) सरेबाजार कोडे लगवाने आदि का सहारा ले रहे हैं। *

१६१६ की क्रातिकारी घटनाए अधिकाशतया राष्ट्रीय काग्रेस के किसी भी नियत्रण म नही थी। इसलिए काग्रेस के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह अपनी प्रतिष्ठा और प्रभाव बनाये रखने के लिए जन सगठनो मे अपने कार्य के प्रति अपना रुख बदले। ब्रिटिश नृशसता के विरोध मे १६१६ मे अमृतसर म आयोजित एक विशेष सम्मेलन मे प्रस्ताव स्वीकार करके काग्रेस सदस्यो से मजदूर ट्रेड यूनियन सगठित करने के लिए कहा गया।

उसी सम्मेलन म नये गवर्नमेट आफ इडिया ऐक्ट के अनुसार होनेवाले विधान सभाओ के चुनावो का बहिष्कार करने का निर्णय किया गया। बाद म केद्रीय और प्रातीय विधान सभाओ के चुनाव स्थगित कर दिये गये।

---

* व्ला० इ० लेनिन कम्युनिस्ट इटरनेशनल की तीसरी काग्रेस, २२ जून १२ जुलाई १६२१। रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की कार्यनीति के बारे म रिपोर्ट की थीसिस 'सकलित रचनाए', भाग ६, मास्को, १६७५, म पृ० २१३।

पहला सविनय अवज्ञा। खिलाफत आदोलन

१६१६ के जनव्यापी राजनीतिक आदोलन के अनुभव से गाधीजी इस निष्कर्ष पर पहुचे कि सत्याग्रह आदोलन चलाने के लिए एक विस्तृत क्रमबद्ध कार्यक्रम तैयार करना आवश्यक है। उनके विचारानुसार सघर्ष को कवल तभी अहिसात्मक रखना सभव होगा। गाधीजी के विचार मे औपनिवेशिक प्रशासन के विरुद्ध राष्ट्रव्यापी असहयोग आदोलन के लिए दो स्पष्टत भिन्न अवस्थाए आवश्यक थी। पहली अवस्था म औपनिवेशिक शासन के खिलाफ निर्दिष्ट बहिष्कार क निम्नलिखित रूप आते थे सम्मानार्थ पदो और उपाधिया का परित्याग सरकारी समारोहो, आदि का बहिष्कार, सरकारी स्कूलो, कालजो और अदालता का बहिष्कार, विधान सभाओ के चुनावो का बहिष्कार, आयातित वस्तुओ का बहिष्कार। दूसरी अवस्था सरकारी कर न अदा करने की थी।

आदोलन १ अगस्त १६२० को शुरू होनेवाला था। गाधीजी और उनके अनुयायियो न खिलाफत आदोलन के नेताओ के साथ निकट सहयोग म इसकी तैयारी और सगठन किया था। खिलाफत आदोलन मुस्लिम बुद्धिजीविया और धार्मिक नेताओ द्वारा तुर्की के सुल्तान – खलीफा – के अधिकारा की रक्षा करने क लिए छेडा गया था। खिलाफत आदोलन ने फौरन ही साम्राज्यवाद विरोधी स्वरूप ग्रहण कर लिया, क्योकि भारतीय मुसलमानो की दृष्टि म उस्मान साम्राज्य का पतन और खलीफा का तख्ता उलटा जाना पूर्व म पश्चिमी शक्तियो और विशेपकर ब्रिटेन की नीति से सीधे जुडा हुआ था। भारत म मुस्लिम आबादी के बहुताश क लिए इस आदोलन के धार्मिक पहलू की अपेक्षा उसका उपनिवेशवादविरोधी पहलू कही अधिक महत्वपूर्ण था। आदोलन के सामान्य कार्यकता तो अक्सर खिलाफत का एक ही मतलब निकालते थे – अग्रेजो की खिलाफत या विरोध – उनके विरुद्ध आदोलन। भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर अफगानिस्तान द्वारा लडे जानवाले स्वतत्रता-युद्ध के परिणाम स्वरूप यह प्रवृत्ति और स्पष्ट हो गयी। इस पडोसी मुस्लिम देश क इस सघर्ष का उत्तर-पश्चिमी सीमात प्रात के विद्रोही पठान कबीला न सक्रिय समर्थन किया।

आदोलन का नेतृत्व खिलाफत कमटी क हाथा म था, जो १६१८ म मुस्लिम लीग म अलग हुए वामपथी निम्न-पूजीवादी पक्ष का प्रतिनिधित्व

करती थी। खिलाफत आंदोलन तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन के साथ साथ विकास ने मुक्ति संघर्ष मे हिन्दुओ और मुस्लिमो के सहयोग और संयुक्त कार्रवाई के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न किया। गांधीजी ने अली बंधुओं – मुहम्मद अली और शौकत अली – के नेतृत्व में जो राष्ट्रीय काग्रेस के सदस्य थे, खिलाफत कमेटी से निकट संपर्क कायम किया। गाधीजी को खिलाफत आंदोलन के नेताओ मे एक माना जाना इस नवस्थापित सहयोग का प्रतीक था।

१ अगस्त को सभाओ जलूसो और विभिन्न हडतालो के रूप मे आरंभ सविनय अवज्ञा आंदोलन धीरे धीरे देश के अधिकाधिक भागो में फैल गया। आंदोलन को गाधीजी ने ही छेडा था और इसका सचालन काग्रेस नेताओ से कोई परामर्श लिये बिना किया जा रहा था। तो भी गाधीजी की राजनीतिक कार्यनीति की सफलता अब देश के प्रमुख राष्ट्रीय संगठन पर अधिकाधिक प्रभाव डालने लगी। यह तथ्य काग्रेस के १९२० मे हुए अधिवेशनो से पुष्ट हो जाता है। सितम्बर के आरंभ मे कलकत्ता मे हुए असाधारण अधिवेशन में लाला लाजपत राय और चित्तरंजन दास सहित अनेक मान्य नेताओ के विरोध के बावजूद गाधीजी के असहयोग कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया गया। काग्रेस ने माटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारो के आधार पर संगठित चुनावो मे भाग न लेने के अपने निश्चय की पुष्टि की।

उसी वर्ष दिसम्बर में नागपुर मे आयोजित काग्रेस के अगले अधिवेशन ने गाधीजी और उनके समर्थको की विजय को स्थायी बना दिया। अधिवेशन ने गाधीजी द्वारा निरूपित राजनीतिक कार्यक्रम और कार्यनीति को स्वीकार कर लिया। उनका दर्शन – गाधीवाद – अब काग्रेस की आधिकारिक विचार-धारा बन गया। सबसे पहले काग्रेस का संविधान बदला गया जो काग्रेस के जनव्यापी राजनीतिक संगठन मे रूपांतरण का द्योतक था। अधिवेशनो के बीच काग्रेस के कार्य का संचालन करने के लिए काग्रेस के निकाय (कार्य-समिति तथा अखिल भारतीय काग्रेस समिति) कायम किये गये। काग्रेस को जनता के निकट लाने और अलग-अलग जातियो की जातीय, भाषायी तथा सांस्कृतिक आत्मनिर्णय के अधिकार प्राप्त करने की ओर लक्षित सरगरमियो का नियंत्रित करने तथा उपनिवेशवादियो द्वारा थोपे गये देश के प्रशासकीय और क्षेत्रीय विभाजन का विरोध करने के लिए जातीय आधार पर, यानी काग्रेस के तथाकथित भाषायी प्रांतो के आधार पर काग्रेस की स्थानीय शाखाएं कायम की गयी।

काग्रेस के इस पुनर्गठन के परिणाम जल्दी ही प्रकट होने लगे अगले

वर्ष के अत तक काग्रेस की सदस्य सख्या लगभग एक करोड हो गयी। काग्रेस के युवा सदस्यो से गठित स्वयसेवक दल – काग्रेस सेवा दल – की सख्या १९२० के शरद तक डेढ लाख पर पहुच गयी। स्वयसेवक सविनय अवज्ञा आन्दोलन स सबद्ध सभाओ, जलूसो और धरनो को सगठित करते थे और व पार्टी सगठन का मुख्याधार थे।

ब्रिटिश उपनिवेशवादियो के खिलाफ निर्दिष्ट सविनय अवज्ञा आदोलन और खिलाफत आदोलन के अलावा मजदूरो और किसानो की वर्ग स्वरूप की कारवाइया भी व्यापक पैमाने पर विकसित होने लगी।

तीसरे दशक के प्रारभ मे मजदूर और किसान आदोलन

१९२० और १९२१ मे हडताल-आदोलन जोर पकडता गया (औसतन चार और छ लाख के वीच लोग हडताल पर रहे)। आदोलन की पूर्ववर्ती अवस्था (१९१८–१९१९) की तुलना मे सगठित मजदूर आदोलन अब सर्वथा नये लक्षण प्रदशित करने लगा था। मजदूरो की वर्ग एकता अब अधिक मजबूत हो गयी थी – अधिकाधिक हडताले एकजुटता हडताले ही होती थी। बम्बई, जमशेदपुर और अन्य औद्योगिक नगरो की आम हडताले इसका प्रमाण थी।

मजदूर वर्ग का आर्थिक सघर्ष अब समग्र राजनीतिक सघर्ष से, अर्थात असहयोग आदोलन स पहले से अधिक घनिष्ठतापूर्वक जुडता जा रहा था।

भारतीय मजदूर वर्ग के बागान मजदूरो जैसे सबसे पिछडे हिस्से भी अब सघर्ष म शामिल होने लगे थे। मई, १९२१ मे असम के चाय बागानो के एक विशाल हडताल न ठप कर दिया जिसम लगभग १२ हजार मजदूरो ने भाग लिया था।

हडताल-सघर्ष के बढने क साथ साथ, जिसम मजदूर सामान्यतया मजदूरी म वृद्धि और काम की बेहतर हालतो की अपनी मुख्य मागो को हासिल कर लेते थे, नयी ट्रेड-यूनियने कायम की जा रही थी। धीरे धीरे ऐसी परिस्थितिया उत्पन्न होने लगी थी, जो एक अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन केन्द्र के सगठन के अनुकूल थी। औपनिवेशिक अधिकारियो द्वारा जेनेवा म अतर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन क लिए भारतीय मजदूरो क प्रतिनिधि की नियुक्ति क खिलाफ आयोजित विराट विरोध सभा एस केंद्र की स्थापना म दिलचस्पी का सूचक था। मई, १९२० म बम्बई म आयोजित इस सभा म एक प्रस्ताव स्वीकार करके अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस (एटक) की स्थापना का आह्वान किया गया।

इस ट्रेड-यूनियन कांग्रेस का नेतृत्व पूंजीवादी सुधारवादियों के हाथों में था। राष्ट्रीय कांग्रेस के एक नेता लाला लाजपत राय इसके पहले अध्यक्ष चुने गये।

इस संगठन की स्थापना के परिणामस्वरूप हड़ताल आंदोलन का विस्तार हुआ, जहां १९१९ में १९ हड़तालें हुई थीं वहां १९२० में यह संख्या २०० और १९२१ में ४०० हो गयी। लेकिन पूर्ववर्ती वर्षों की भांति ही हड़तालें अक्सर अव्यवस्थित रूप में शुरू होनेवाली होती थीं और उन्हें ठीक से संगठित नहीं किया जाता था।

अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के कार्य में खामियों के बावजूद इसका गठन भारत में संगठित मजदूर और ट्रेड-यूनियन आंदोलन के विकास में निश्चित प्रगति का परिचायक था।

ट्रेड यूनियन आंदोलन के दृढ़ीकरण के परिणामस्वरूप कांग्रेस के वास्ते मजदूर वर्ग पर अपने प्रभाव को बनाये रखने तथा विस्तारित करने के लिए यूनियनों के भीतर प्रचार कार्य तेज करना आवश्यक हो गया। इस उद्देश्य से जनवरी १९२१ में कांग्रेस की एक विशेष समिति स्थापित की गयी।

१९२० के शरद में आंदोलन ग्रामीण क्षेत्रों में भी फैल गया। किसान हलचल ने सबसे बड़ा पैमाना संयुक्त प्रांत और विशेषकर उसके पूर्वी ज़िलों में १९२१–१९२२ के किसान-आंदोलन में प्राप्त किया जहां १८५७–१८५९ के जन विद्रोह की स्मृतियां अब भी ज़िंदा थीं। किसान असंतोष की शुरूआत फ़ैज़ाबाद और रायबरेली ज़िलों में हुई जहां काश्तकारों ने, जो सामान्यतया नीची जातियों के थे ज़मींदारों के खेतों में फसलें नष्ट कर दीं उनके घरों और छोटे कसबों में साहूकारों और व्यापारियों की कोठियों और दूकानों पर हमले किये। कृषक वर्ग की पांतों से उनके नेता भी सामने आने लगे। उनमें से कुछ ग्रामीण मेलों में दिखाये जानेवाले परंपरागत नाट्य रूपों (नौटंकी, स्वांग, आदि) तथा गांव गांव घूमते जन कवियों और संगीतज्ञों के गीतों का प्रचार के साधन के रूप में उपयोग करते थे।

इन स्वतःस्फूर्त कार्रवाइयों को जो १९२१ के पूर्वार्द्ध भर जारी रहीं, सेना और पुलिस के बल पर निर्ममतापूर्वक कुचल दिया गया। हजारों लोग गिरफ्तार कर लिये गये।

१९२१ के मध्य और उत्तरार्द्ध में संयुक्त प्रांत के सुल्तानपुर ज़िले में किसान आंदोलन ने ऐसी ही विशेषताएं प्रदर्शित कीं।

संयुक्त प्रांत के किसानों का संघर्ष अवध में बहुत ऊंचे स्तर पर पहुंच गया

था जहा १९२१–१९२२ म काश्तकारो के एका के नाम स विनात सगम्न दल मक्रिय थ। यहा विद्राही किसाना न ताल्लुकदारो की भूमि और सपत्ति पर कब्जा कर लिया और उन्ह कुचलन क लिए भजे ताजीरी दस्ता का बहुत ममय तक प्रतिराध किया। इन किमानो क मवम प्रसिद्ध नता पासी मदारी और महग्व थ जा नीची जातिया क थ। अपन म्वत स्फूर्त और स्थानिक स्वरूप और विभिन्न टुकडियो क वीच समन्वय क तथा किसी भी प्रकार क कार्यक्रम के अभाव आदि क बावजूद सयुक्त प्रात म किसान हलचल निश्चित रूप मे सामतो और साहूकारो के खिलाफ निर्दिष्ट थी।

किसान सघर्ष क दौरान कुछ क्षत्रा म किसान-सगठन क पहल बीज पहला किसान सभाआ क रूप म उत्पन्न हुए। युवा जवाहरलाल नहरू सहित, जिन्ह पहली बार किमान आदोलन म हिस्सा लन क सिलसिल म ही गिरफ्तार किया गया था, ग्रामीण क्षत्रा मे जाकर काम करनवाले काग्रेस सदस्या न इन किसान सभाओ के सगठन म भाग लिया था।

हालाकि काग्रस ओर खिलाफत आदोलन का गावा म प्रभाव सीमित था फिर भी सगठित राष्ट्रीय आदोलन और स्वत स्फूर्त किसान-आदालन के बीच सपर्क सूत्र कायम होन शुरू हो गये थ। सयुक्त प्रात के विद्रोही किसाना द्वारा गाधीजी को याचिकाए भजन और कुछ स्थानो म उनके काग्रस सवा दल की टुकडियो के साथ काम करन के कई उदाहरण है।

जहा सयुक्त प्रात म किसान आदोलन पर सुनिश्चित वर्ग स्वरूप का छाप थी, और वह नये ऐतिहासिक युग के समारभ का द्योतक था, वहा अन्य बडी किसान हलचलो (उदाहरणार्थ पजाव और मालावार म) पर अब भी उस काल की छाप विद्यमान थी, जो धीरे धीरे अतीत के गर्भ म समाता जा रहा था। यहा किसान सघर्ष का स्वरूप अव भी धार्मिक ही था।

१९२१–१९२२ म पजाब मे सिख किसानो का महतो के खिलाफ सघर्ष शुरू हुआ, जिन्होने गुरुद्वारो की सपत्ति तथा उनके ज़मीनो से प्राप्त आय को अपने नियत्रण मे ले लिया था। अपने निहितार्थो मे यह सामतो के विरुद्ध किसाना – छोटी जोतो के मालिको और काश्तकारो – का सघर्ष था जब कि अपने रूप मे यह सिख समुदाय के जीवन मे जनवादी परपराओ की पुनर्स्थापना का आदोलन था। इस सघर्ष के दौरान अकाली दल का उदय हुआ, जिसने शातिपूर्ण साधनो से गुरुद्वारो और अन्य पवित्र स्थाना का अपने नियत्रण मे लेन का प्रयास किया।

अकाली आदोलन के शातिपूर्ण स्वरूप के बावजूद १९२१ म ननकाना

साहब के निकट और फिर १९२२ म गुरु का बाग के निकट निहत्थे अकालियो को महता द्वारा बुलायी गयी पुलिस के निर्मम दमन का शिकार बनाया गया।

१९२३ म अकाली आदोलन के कुचले जान के बाद दल म फूट पड गयी और उसम बबर-अकाली नामक वाम पक्ष पैदा हो गया जो बाद म पजाब के भूमिगत आतकवादी सगठन म शामिल हा गया। अपन अहिसक स्वरूप की बदौलत अकालियो के सघर्ष के साथ गाधीजी न गहरी सहानुभूति प्रकट की और राष्ट्रीय काग्रेस ने उसका समर्थन किया।

लेकिन काग्रेस और गाधीजी द्वारा एका और तीसरे दशक के प्रारभ मे मद्रास प्रात के मालाबार ज़िले के एक अन्य बड किसान आदोलन के प्रति जो रुख अपनाया गया वह सर्वथा भिन्न था।

अगस्त १९२१ म मोपलाओ (मालाबारी मुसलमानो) का विद्रोह शुरू हुआ जिसम मोपला किसान और कुछ मुस्लिम धार्मिक नेता शामिल थे जब कि मोपला व्यापारी उससे अलग रह थे।

मोपलाओ का विद्रोह तिरुरगदी कसबे म एक मस्जिद पर नबूदिरी ज़मीदारो के हमले स भडका था। धीरे-धीरे यह मालाबार ज़िले के काफी बड़े भाग म फैल गया और हिन्दू ज़मीदारो के खिलाफ मोपला काश्तकारो के सघर्ष म परिणत हो गया। लेकिन सघर्ष के धार्मिक पहलुओ के बावजूद मोपला विद्रोह स्वरूप म सामतवादविरोधी और उपनिवेशवादविरोधी था। अनेक स्थानो मे हिन्दू काश्तकारो न मोपला किसानो के साथ कधे स कधा मिलाकर इसम भाग लिया था।

एर्नाद और वल्लभनाद ताल्लुको म औपनिवेशिक प्रशासन की सत्ता को समाप्त कर दिया गया और विद्रोहियो न खिलाफ़ती निज़ाम कायम कर दिया जो विद्रोही दस्तो की कार्रवाइयो को नियन्त्रित करता था तथा स्थानीय प्रशासन के कार्यो का निर्वाहता था। इसके प्रधान स्थानीय मुस्लिम नेता—पहले अली मुसलिआर और बाद मे कुनीअहमद हाजी—थे।

आखिर मोपलाओ के खिलाफ पुलिस और फौजी टुकडिया भेजी गयी। मोपलाओ न वीरतापूर्ण प्रतिरोध किया और पर्वतीय वन्य क्षेत्रो का जहा उनके अड्डे अवस्थित थे बहुत कुशल उपयोग किया लेकिन फिर भी विद्रोह अतत अगले साल के प्रारम्भ म कुचल दिया गया। तीन हज़ार से अधिक मोपलाओ को गिरफ्तार कर लिया गया।

अग्रेज़ो न विद्रोहियो स निर्ममतापूर्वक बदला लेना शुरू किया। बन्दियो

को रेल में इस तरह से ठूसकर ले जाया जाता था कि एक डिब्बे में ७० आदमियों की दम घुटने से मृत्यु हो गयी।

हालांकि राष्ट्रीय कांग्रेस ने पोदानूर रेलवे स्टेशन पर इस घटना की जांच करने के लिए एक विशेष समिति की नियुक्ति की, लेकिन उसने मोपला विद्रोह की कड़ी आलोचना की, जिसने सशस्त्र संघर्ष का रूप ले लिया था। खिलाफत कमेटी के नेताओं ने भी गांधीजी से मिलता-जुलता रुख अपनाया।

मालाबार तट पर, पंजाब और संयुक्त प्रांत में इन घटनाओं के अलावा बंगाल, बम्बई प्रेसिडेंसी और देश के अन्य भागों में भी किसानों के छिटपुट और स्वतःस्फूर्त बलवे फूटे। लेकिन किसानों का संघर्ष अब भी राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में स्वतंत्र अथवा किसी भी रूप में निर्णायक कारक नहीं बन पाया था।

आंदोलन में उतार

१९२१ के अंत में भारत में राजनीतिक स्थिति कहीं अधिक उग्र हो गयी। उस वर्ष के उत्तरार्द्ध में मजदूरों और किसानों के आंदोलन अपने चरम पर पहुंच गये थे और असहयोग आंदोलन भी अधिकाधिक जोर पकड़ता जा रहा था। कांग्रेस का प्रभाव सतत बढ़ता जा रहा था और अब इसके जनाधार को मजबूत बनाया जा रहा था। अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस के दूसरे सम्मेलन में कांग्रेस ने संगठित मजदूर आंदोलन पर अपने नियंत्रण का सुदृढ़ीकरण किया।

इस समय के राजनीतिक घटनाक्रम के चरमोत्कर्ष की द्योतक वह चार दिवसीय राजनीतिक हड़ताल थी, जिससे बम्बई के मजदूरों ने ब्रिटिश राज सिंहासन के उत्तराधिकारी, प्रिंस ऑफ वेल्स का स्वागत किया, जो १७ नवम्बर, १९२१ को भारत पहुंचा था। मद्रास और अन्य नगरों में भी हड़तालें और विरोध-प्रदर्शन हुए।

हालांकि गांधीजी ने बम्बई में घटनाओं की निन्दा की, लेकिन इस अवस्था तक उन्होंने पीछे हटने का अभी संकेत नहीं दिया था। कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन (दिसम्बर, १९२१) में असहयोग आंदोलन तब तक जारी रखने का निर्णय किया गया, जब तक स्वराज्य न मिल जाये और खलीफा का परमाधिकार बहाल न कर दिया जाये। गांधीजी को आंदोलन का संचालन करने के लिए पूर्ण अधिकारों से युक्त नेता (डिक्टेटर – अधिनायक) नियुक्त किया गया।

साथ ही औपनिवेशिक प्रशासन ने भी आदोलन म भाग लेनवालो के खिलाफ मुख्यतया काग्रेस स्वयसेवको के विरुद्ध व्यापक दमन शुरू कर दिया। १६२२ के प्रारभ तक मोतीलाल नहरू जवाहरलाल नहरू, अली बधुओ चित्तरजन दास, लाला लाजपत राय आदि अनक प्रमुख काग्रेस नेताओ सहित हज़ारो लोग गिरफ्तार कर लिय गये थे।

१ फरवरी को गाधीजी न वाइसराय रीडिंग का अतिम चेतावनी (*अल्टीमेटम*) भेजकर *दमन को तुरत बद करन की माग की और अन्यथा* अपने असहयोग आदोलन का दूसरा चरण शुरू करन की धमकी दी अर्थात जनता का कर देना वद करन का आह्वान।

लेकिन कुछ दिनो म ही गाधीजी ने अचानक अपनी नीति वदल दी। काग्रेस नीति म इस पलटाव का वहाना ४ फरवरी को सयुक्त प्रात के गोरखपुर जिले म (अब उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले म) चौरीचौरा गाव म होनवाली घटना थी जहा किसाना की एक भीड न अपन पर गाली चलानवाले पुलिस वाला का पीछा करते हुए थाने म घुसकर उसमे आग लगा दी।

गाधीजी ने सार्वजनिक रूप से इस किसान बलवे म भाग लनेवाला की तीव्र निन्दा करते हुए मृत पुलिसवालो क परिवारो के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की। यह घोपणा करने के बाद कि उनकी राय म देश अभी अहिंसक आदोलन के लिए तैयार नही है उन्होने सविनय असहयोग आदोलन को स्थगित करन का आदश द दिया।

गाधीजी क निर्णय को इस तथ्य ने प्रेरित किया था कि उनके विचार म एक ओर तो राष्ट्रीय आदोलन की शक्तिया अभी साम्राज्यवादी शासन की शक्ति का सामना करने की स्थिति मे नही थी और दूसरी ओर काग्रस जन आदोलन पर अपना नियत्रण खोती जा रही थी।

गुजरात के वारडोली नामक छोटे से कसबे म काग्रेस कार्यकारिणी समिति की आपाती बैठक मे स्वीकृत प्रस्ताव ने गाधीजी के दृष्टिकोण को औपचारिक समर्थन प्रदान कर दिया। प्रस्ताव म किसाना से अपन सघर्ष का परित्याग करन की अपील शामिल थी और उसने ज़मीदारो के प्रति सहानुभूति प्रकट की। यह सुझाया गया कि सेवा दल का कार्य राक दिया जाये। प्रस्ताव न काग्रेस जना की गाधीजी द्वारा प्रस्तुत रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करन की तत्परता को व्यक्त किया जिसका मुख्य मुद्दा हाथ स बुनाई-कताई क विकास को *सभी सभव तरीको से प्रोत्साहित करना था।*

गाधीजी और काग्रेस नताओ द्वारा चुना गया रास्ता स्वाधीनता आदोलन

के आम सदस्यों के लिए सर्वथा अप्रत्याशित था। उसके कारण कांग्रेस से संबद्ध जन संगठनों ने विरोध प्रकट किया, वामपंथी दल परस्पर अधिक निकट आये और उसने भूमिगत आतंकवादी कार्रवाइयों की एक नयी लहर को जन्म दिया।

इस तरह आंदोलन तो चलता रहा, पर नेतृत्व के अभाव और बर्बर दमन के वातावरण में उसमें शीघ्र कमज़ोरी आ गयी।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद का जवाबी आक्रमण

भारत में ब्रिटिश नीति
(१९२३–१९२७)

१९१८–१९२२ के पहले क्रांतिकारी प्रहार के बाद राष्ट्रीय मुक्ति शक्तियों का अस्थायी पश्चगमन तथा साम्राज्यवादियों का प्रत्याक्रमण हुआ, जो १९२७ तक जारी रहा। भारत में आंतरिक राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन पूंजीवादी और औपनिवेशिक देशों के भीतर क्रियाशील समग्र प्रक्रियाओं का अंग थे और वे पूंजीवाद के आंशिक स्थिरीकरण के दौर की शुरूआत के परिचायक थे।

ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग भारत में झेली आर्थिक और राजनीतिक क्षतियों को पूरा करने की कोशिश कर रहा था। औपनिवेशिक प्रशासन के साथ समर्थन पर निर्भर करते और अपने को प्राप्त आर्थिक उत्तोलकों का उपयोग करते हुए ब्रिटिश उद्योगपतियों ने भारत को सूती वस्त्रों सहित अन्य मालों के निर्यात को तेज़ कर दिया। अनुकूल प्रशुल्क नीति के कारण भारतीय बाज़ार में विदेशी मालों के लिए प्रतियोगिता कर पाना आसान हो गया था – १९२५ में भारतीय सूती उद्योग के उत्पादन के तथा इसी तरह १९२७ में स्थानीय लौह उत्पादन के संदर्भ में संरक्षण प्रशुल्क को रद्द कर दिया गया। इसके साथ ही रेल द्वारा माल भेजने पर उत्पादन शुल्क और प्रशुल्क में वृद्धि कर दी गयी। इन सभी कदमों ने भारतीय औद्योगिक मालों को कम प्रतियोगी बना दिया।

वित्तीय और आर्थिक सुधारों द्वारा रुपये की नयी विनिमय दर ने ब्रिटेन के मुकाबले में भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति को और भी हीन कर दिया।

राजनीतिक क्षेत्र में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने धीरे-धीरे मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के अंतर्गत भारतीय पूंजीपति वर्ग को दी गयी रिआयतों को समाप्त

कर दिया। सविनय असहयोग आंदोलन के कुचल जाने के बाद औपनिवेशिक प्रशासन ने विरोध की हर अभिव्यक्ति को दबाना शुरू कर दिया खासकर बंगाल में।

अगस्त १९२२ में लायड जार्ज के भारत पर एक नीति वक्तव्य ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश सरकार के पास भारत को स्वशासन देने की कोई भी योजना नहीं है। प्रांतों में ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों को पहले प्राप्त व्यापक अधिकारों को बहाल कर दिया गया और वे केंद्रीय तथा प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा पारित प्रस्तावों की खुलकर अवमानना करने लगे। उदाहरणार्थ १९२२ में वाइसराय ने केंद्रीय विधान सभा में बहुमत के विरोध की अवहेलना करते हुए उस कानून को मंजूरी दे दी जिसमें देशी राज्यों में राष्ट्रीय आंदोलन के दमन के लिए उठाये जानेवाले कदमों की व्यवस्था की गयी थी। बंगाल और मध्य प्रांत में द्वैधशासन प्रणाली १९२४–१९२५ में बाजाब्ता समाप्त कर दी गयी।

इसके साथ ही ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने विशेष निर्वाचक मंडल प्रणाली का व्यापक उपयोग करते हुए हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच वैमनस्य फिर भड़काना शुरू कर दिया। इसके परिणामस्वरूप धार्मिक साम्प्रदायिक दलों अर्थात मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा की गतिविधियों में तेजी आयी। हिन्दू अंधराष्ट्रवाद के प्रसार में एक महत्वपूर्ण घटना १९२५ में आयोजित हिन्दू महासभा का अधिवेशन था जिसमें भारतीय मुसलमानों को जबरदस्ती शुद्धि करके उन्हें हिंदू बनाने की ललकार दी गयी थी। मुस्लिम धार्मिक नेताओं और साम्प्रदायिक संगठनों ने इसका जवाब कट्टर हिन्दूविरोधी प्रचार से दिया। इन परिस्थितियों में अंग्रेजों के लिए इन दोनों धार्मिक समूहों के साम्प्रदायिक संगठनों की सहायता से १९२३ से १९२७ की अवधि में सिलसिलेवार हिन्दू मुस्लिम दंगे और कत्लआम भड़काना संभव हो गया। खिलाफत आंदोलन के जमाने में दोनों धार्मिक समूहों के बीच स्थापित सहयोग अब नष्ट हो गया।

इस अवधि में देश के विभिन्न प्रांतों में स्थापित सामंती जमींदारों की स्थानीय दक्षिणपंथी पार्टियों (उदाहरणार्थ पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी और मद्रास में जस्टिस पार्टी) ने भी औपनिवेशिक शासन को समर्थन प्रदान किया।

अंग्रेज राष्ट्रीय आंदोलन के मुकाबले में प्रतिक्रियावादी पार्टियों और संगठनों का मोर्चा खड़ा करने का प्रयास कर रहे थे।

देश के भीतर ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को प्राप्त स्थिति के इस दृढ़ीकरण

म राष्ट्रीय काग्रेस को समर्थन देनवाले पूजीवादी-जमीदार हलका का समझौता कारी रुख भी सहायक सिद्ध हुआ। अपनी बारी म इस प्रवृत्ति को तीसरे दशक के मध्य म पैदा हुई स्थिति न बढावा दिया था, जो बडे भारतीय उद्योग के और आगे विकास के लिए अपेक्षाकृत अनुकूल थी।

कांग्रेस के भीतर संघर्ष। स्वराजी

१९२२ म राष्ट्रीय शक्तियो के पश्चगमन के बाद जन आन्दोलन म उतार का यह दौर तीव्र क्रातिकारी हलचल के वर्षों म संघर्ष म हिस्सा लेनवालो द्वारा प्राप्त राजनीतिक अनुभव का विश्लेषण करने का समय था। काग्रेस के भीतर अब इस बात को लेकर तीव्र बहस चल रही थी कि नयी आतरिक राजनीतिक स्थिति म किस तरह की कार्यनीति अपनायी जानी चाहिए।

संगठन के रूप म राष्ट्रीय काग्रेस एक गभीर सकट से गुजर रही थी-१९२१-१९२३ म इसकी सदस्य संख्या एक करोड से गिरकर सिर्फ कुछ लाख रह गयी थी। जनसाधारण की अलहदगी का कारण स्वाधीनता आदोलन की अस्थायी पराजय को माना जा सकता था। नेतृत्व द्वारा बारडोली प्रस्ताव के स्वीकार किये जाने के बाद संघर्ष के नेता के नाते काग्रेस की प्रतिष्ठा म काफी गिरावट आयी थी।

स्वराज्य की प्राप्ति और जन आन्दोलन के नेतृत्व के लिए संघर्ष की विधियो म परिवर्तनो के सबध म राष्ट्रीय काग्रेस के भीतर मतभेदो के परिणाम स्वरूप पार्टी के अदर दो मुख्य गुट पैदा हो गये। इनमे से पहला गुट—तथाकथित यथास्थितिवादी अथवा अपरिवर्तनवादी समूह—गाधीजी के समर्थको का था। गाधीजी ने नयी परिस्थितियो मे जनव्यापी सत्याग्रह की सुपरीक्षित नीति को अस्थायी तौर पर त्यागकर उसके स्थान पर तथाकथित रचनात्मक कार्यक्रम सामने रखा।

इस अवस्था म गाधीजी और उनके समर्थको के कार्यकलाप के मुख्य रूप ये थे—हस्तशिल्पो, विशेष रूप से हाथ कताई को प्रोत्साहन देना अस्पृश्यता निवारण यानी हरिजनो के प्रति सामाजिक और दैनदिन भेदभाव के खिलाफ संघर्ष तथा हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रचार। 'रचनात्मक कार्यक्रम' की क्रियान्विती के अपने कार्य म गाधीजी के मन म निस्सदिग्ध रूप म दो उद्देश्य थे—उनका लक्ष्य राष्ट्रीय आदोलन म फूट डालने के अंग्रेजो के प्रयासो का

विफल करना तथा मुख्यतया शहरी आबादी के मध्यम सस्तरो दस्तकारो और छोटे व्यापारियो के समथन स काग्रस के जन आधार को बनाय रखना था।

१९२४ और १९२५ म गाधीजी ने दक्षिण भारत के त्रावणकार राज्य म वेकोम नामक कसब म दो बहुत सीमित सत्याग्रह सगठित किये। उनका उद्देश्य हरिजनो पर लग कुछ धार्मिक और सामाजिक प्रतिबधा का अत करवाना था। १९२५ मे उन्होन अखिल भारतीय चरखा सघ की स्थापना की जा केवल चरखे का प्रचार ही नही करता था बल्कि कातन और बुननेवालो को कच्ची सामग्री भी उपलब्ध करता था तथा उनके बनाय माल की बिक्री की व्यवस्था करता था।

राष्ट्रीय काग्रेस के भीतर दूसर गुट म तथाकथित परिवर्तनवादी शामिल थे, जिनम सयुक्त प्रात के मोतीलाल नहरू तथा बगाल के चित्तरजन दास प्रमुख थे। यह गुट राजनीतिक सघर्ष म आम जनता की भागीदारी का विरोधी था और मानता था कि स्वराज्य इस अर्थ म अदर स प्राप्त किया जाना चाहिए कि काग्रेस सदस्यो का केन्द्रीय और प्रातीय विधान सभाओ पर नियत्रण प्राप्त करना चाहिए। इस आधार पर उनका कहना था कि काग्रस सदस्यो को विधान सभाओ के आगामी चुनावा म भाग लना चाहिए। उनके कार्यक्रम पर कुछ हद तक भारत की श्रमजीवी जनता के सघर्ष के भय की छाप थी जो भारत के राजनीतिक विकास म एक स्वतत्र और मुख्य कारक बनता जा रहा था।

मार्च, १९२३ म इलाहाबाद म इस गुट के सदस्या की बैठक हुई जिसन राष्ट्रीय काग्रेस के भीतर स्वराज्य पार्टी की स्थापना करन का निश्चय किया। नयी पार्टी के सदस्यो न एक प्रस्ताव स्वीकार करके विधान सभाओ के चुनावा म भाग लेने की अपील की ताकि उनके भीतर काम करत हुए और ससदीय अवरोध की विधियो का उपयोग करते हुए औपनिवशिक प्रशासन का राष्ट्रीय आदोलन की मागे मनवान के लिए विवश किया जा सके।

हालाकि काग्रेस के १९२२ के अत म गया (बिहार) म चित्तरजन दास की अध्यक्षता म हुए अधिवशन न गाधीजी के समर्थका – अपरिवतनवादिया – की नीति का ही अनुमोदन किया था, फिर भी अगले वष सितम्बर म दिल्ली म हुए विशेष अधिवशन म स्थिति बदल गयी। इस अधिवशन म स्वीकृत प्रस्ताव न स्वराजियो को चुनावा म अपन उम्मीदवार खड़ करन की अनुमति प्रदान कर दी।

पार्टी के भीतर इस उग्र सघर्ष के परिणामस्वरूप गाधीजी ना स्वराजिया

को महत्वपूर्ण रिआयत दन क लिए बाध्य होना पडा और एक विशेष दस्तावज (गाधी – दास समझौता) के जरिये उन्हान असहयाग को काग्रेस क कायकलाप का मुख्य रूप मानना छोड दिया। १९२४ म काग्रेस क बलगाव (बम्बई प्रेसिडसी) अधिवेशन न इस समझौत की पुष्टि की। फिर अगल वष कानपुर अधिवेशन म स्वराजियो के कार्य को काग्रस कार्य का मुख्य रूप मान लिया गया। लकिन विधायी और परामशदात्री निकायो म काम करत हुए स्वराजी ब्रिटिश प्रशासन स एक भी रिआयत नही हासिल कर पाय। स्वराजियो की असफलताओ के परिणामस्वरूप शीघ्र ही पूजीवादी-जमीदार हलको म उनका प्रभाव घटने लगा और १९२६ के चुनावो म व हार गये।

राष्टीय काग्रेस म स्वराजी नताओ की निष्क्रिय कार्यनीति से राष्टीय पूजीवादी वग क व्यापक हलको (विशेष रूप म निम्न और मध्यम पूजीवादी वर्ग क बीच) तथा राष्ट्रीय काग्रेस के भीतर विभिन्न समूहो म असतोष फैल गया। स्वराजियो की तदजनित कमजोरी क परिणामस्वरूप इन परिस्थितियो म पार्टी के भीतर शक्तियो का पुनसमूहन हुआ तथा कुछ हद तक पार्टी नेतृत्व म भी समकन हुआ, जिसमे इस काल (१९२३–१९२७) के अत म चित्तरजन दास और मोतीलाल नेहरू की अगुआई म स्वराजी गुट तथा स्वय गाधीजी के नेतृत्व मे राजेद्रप्रसाद, पटेल बधुओ – विट्ठलभाई पटेल और वल्लभभाई पटेल – आदि सहित गाधीजी के अन्य समर्थक शामिल थे।

काग्रेस के भीतर वाम पक्ष का उदय

नेतृत्व द्वारा अनुसृत नीति पर काग्रेस के भीतर व्यापक असतोष के परिणामस्वरूप एक वाम पक्ष का उदय हुआ, जो सर्वोपरि काग्रेस का समर्थन करनवाले निम्न पूजीवादी हलको के हितो को अभिव्यक्त करता था। वस्तुत इन सामाजिक और वर्ग आधारित समूहो को ही साम्राज्यवादियो के आर्थिक और राजनीतिक प्रहार से सबसे ज्यादा क्षति हुई थी और इसलिए वे औपनिवेशिक शासन के खिलाफ एक अधिक सक्रिय सघर्ष की हिमायत करत थे।

काग्रेस मे इस प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व मुख्यतया नौजवान सदस्य करत थे, जिनके प्रमुख नेता और सिद्धातकार जवाहरलाल नेहरू (१८८९–१९६४) और सुभाषचद्र बोस (१८९७–१९४६) थे। य दोनो अत्यत सम्मानित और धनी परिवारो मे पैदा हुए थे और उन्होंने प्रसिद्ध ब्रिटिश विश्वविद्यालयो म शिक्षा प्राप्त की थी। तीसर दशक के प्रारभ मे नहरू और बोस न गाधीजी क कट्टर

अनुयायियो के रूप म राष्ट्रीय आदोलन म सक्रिय भाग लना शुरू किया।

काग्रेस म इस वाम पक्ष के उदय तथा पार्टी नेतृत्व म उसके प्रतिनिधियो के सम्मिलन न जनता पर काग्रेस प्रभाव को मजबूत बनाया जिसन निस्सदेह राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग की राष्ट्रीय आदोलन का कणधार बन रहन म सहायता की।

इसके साथ ही राष्ट्रीय काग्रेस के भीतर ये परिवर्तन भारत क राजनीतिक जीवन मे १६२२ और १६२७ के बीच आये परिवर्तनो को प्रतिबिम्बित करते थे और जिन्ह सक्षप म जन सघर्ष के अस्थायी उतार के बावजूद देश म वामपथी शक्तियो का दृढीकरण कहा जा सकता है।

वामपथी शक्तिया जो नये क्रातिकारी विचारो को ग्रहण करने को तैयार थी और स्वय भारत मे सामाजिक-राजनीतिक परिस्थिति म आये परिवर्तनो को ध्यान म रखती थी समय के साथ यह महसूस करने लगी कि काग्रेस कार्यक्रम को मूलगामी बनाना तथा जनसाधारण के बीच काग्रेस सदस्यो के काय को तेज करना आवश्यक हैं। लेनिन की शिक्षा और अक्तूबर क्राति तथा सोवियत सघ मे समाजवादी निमाण के अनुभव ने इन शक्तियो के विचारो को विकसित करन म सहायता की। १६२७ मे जवाहरलाल नेहरू की सोवियत सघ की यात्रा न उन पर गहरा प्रभाव डाला (युवा नेहरू वहा अपन पिता मोतीलाल नहरू के साथ गये थे)।

लेकिन इन दोना युवा नताओ के व्यावहारिक कार्यो म विशिष्ट मतभद पैदा हो गये थे। तीसरे दशक क अत और चौथे दशक के प्रारभ म बोस न अपन प्रयासो को युवा सगठनो सर्वोपरि छात्र सगठनो क निर्माण तथा बगाल काग्रस सगठन मे अपने प्रभाव के दढीकरण पर सकेद्रित किया। इस अवधि म जवाहरलाल नेहरू भारतीय राष्ट्रीय आदोलन तथा विदशा म प्रगतिशील सगठनो और क्रातिकारी आदोलनो क बीच सपर्क सूत्र कायम तथा विस्तारित करन मे लगे हुए थे। १६२७ मे उन्होने औपनिवेशिक जनगण की ब्रसल्स काग्रस मे भारत का प्रतिनिधित्व किया जिसम साम्राज्यवादविरोधी लीग की स्थापना की गयी। स्वदेश लौटने पर नहरू न स्वय भारत म बड पैमान पर लीग की शाखाए स्थापित करने का कार्य शुरू किया।

१६२७ के अत म राष्ट्रीय काग्रस के भीतर वाम पक्ष पहले की अपक्षा कही अधिक मजबूत हो गया था। काग्रस क मद्रास अधिवशन न जवाहरलाल नहरू द्वारा प्रस्तुत इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया कि भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन का मुख्य लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना है। अधिवशन न

साम्राज्यवादविरोधी लीग के साथ संबंध कायम करने के सुझावों का भी अनुमोदन किया। १९२८ में नेहरू और बोस कांग्रेस के महामंत्रिव निर्वाचित हुए।

भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन का उदय और मजदूर तथा किसान राजनीतिक संगठनों का गठन

प्रवासी क्रांतिकारियों के दल

प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों के विभिन्न केन्द्रों और १९१८ में स्थापित नवोदित सोवियत जनतंत्र के बीच संपर्कों ने इन क्रांतिकारियों में मार्क्सवादी विचारधारा के प्रसार का मार्ग प्रशस्त किया। १९१८ और १९२२ के बीच सोवियत रूस की यात्रा करनेवाले भारतीय लेनिन तथा अन्य सोवियत नेताओं के साथ अपनी मुलाकातों में और मास्को, पेत्रोग्राद, ताशकंद, बाकू तथा दूसरे नगरों में उन्होंने जो कुछ देखा, उससे अत्यंत प्रभावित हुए। हालांकि भारतीय निम्न पूंजीवादी क्रांतिकारियों की अक्तूबर क्रांति तथा वास्तविक कार्यक्रम और कार्यनीति के बारे में बहुत अस्पष्ट ही धारणा थी, तो भी उन्होंने सोवियत रूस को ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष में अपना मित्र माना। प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों और मास्को के बीच संपर्क पहले काबुल और बाद में बर्लिन केंद्रों के जरिये थे।

बरकतुल्लाह के नेतृत्व में काबुल स्थित भारतीय क्रांतिकारी संघ तथा 'भारत की अस्थायी सरकार" के प्रतिनिधिमंडल के सदस्य एम० पी० टी० आचार्य और अब्दुल रब जो १९१९ के वसंत में मास्को में रहे थे और लेनिन से मिले थे, सोवियत संघ में कई महीने रुके रहे। बरकतुल्लाह ने फारसी में 'बोल्शेविज्म और इस्लामी राष्ट्र' शीर्षक एक पुस्तिका प्रकाशित की (ताशकंद, १९१९), जो शीघ्र ही अन्य प्राच्य भाषाओं में भी अनूदित हुई। इस पुस्तिका ने सोवियत मध्य एशिया, भारत और मध्य पूर्व के देशों में सोवियत जातीय नीति के बारे में सच्चाई फैलाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

१९१९ के अंत में काबुल लौटने के बाद आचार्य और अब्दुल रब ने भारतीयों के अनेक जत्थों को अफगानिस्तान से सोवियत तुर्किस्तान जाने में काफी सहायता प्रदान की। १९२० के प्रारंभ में अखिल भारतीय खिलाफत

कमेटी के आह्वान पर खिलाफत आंदोलन में भाग लेनेवाले मुख्यतया राष्ट्रवादी मुस्लिम युवजनों के बड़े-बड़े जत्थों ने तुर्की जाने और साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ तथा सुल्तान (खलीफा) के परमाधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए सशस्त्र संघर्ष में हिस्सा लेने के लिए भारतीय-अफगान सीमा को पार करना शुरू किया। खिलाफत संगठनों द्वारा संगठित जुलूसों और सभाओं में अफगानिस्तान के अमीर का एक वक्तव्य सुनाया जाता था, जिसमें उसने इन मुहाजिरों (प्रवासियों) के प्रति समर्थन प्रकट किया था। भारत से अफगानिस्तान जानेवाले मुहाजिरों की कुल संख्या तीस से पचास हजार के बीच थी और इस प्रव्रजन ने अफगानिस्तान की सरकार के लिए बड़ी समस्याएं पैदा कर दी थीं। वर्ष के अंत तक अधिकांश मुहाजिरों को भारत लौट आना पड़ा और केवल कुछ लोग ही विभिन्न मार्गों से मध्य पूर्व पहुंचने में सफल हो पाये।

काबुल स्थित भूमिगत क्रांतिकारी संघ के सदस्यों, मुख्यतः आचार्य और अब्दुल रब के राजनीतिक रूप से सब से सचेत मुहाजिरों के बीच प्रचार कार्य के परिणामस्वरूप १९२० में लगभग २०० मुहाजिरों के तीन जत्थों ने सोवियत-अफगान सीमा पार की। उनमें से लगभग आधे शीघ्र बाद ही भारत लौट आये, कुछ को ट्रांसकाकेशिया से होकर तुर्की जाने में सहायता दी गयी और लगभग ३० लोग ताशकंद में रुक गये, जिसने आचार्य और अब्दुल रब को भारतीय क्रांतिकारी संघ की ताशकंद शाखा कायम करने का अवसर प्रदान किया। इस संघ के प्रतिनिधि की हैसियत से आचार्य ने १९२० की गर्मियों में कोमिंटर्न की दूसरी कांग्रेस में भाग लिया।

इसी समय भारतीयों का एक दूसरा जत्था, जिसमें मुख्यतया ईरान (फ़ारस) में तैनात ब्रिटिश भारतीय इकाइयों के भगोड़े सैनिक थे, बाकू में बस गया था, जहां 'आज़ाद हिन्दुस्तान अख़बार' नामक उर्दू अख़बार प्रकाशित होने लगा था। भारतीय प्रतिनिधियों ने सितम्बर, १९२० में बाकू में आयोजित पूर्व के उत्पीड़ित जनगण की कांग्रेस में भी भाग लिया।

मार्क्सवादी विचार धीरे-धीरे भारतीय क्रांतिकारियों के बीच फैलने लगे थे। इस कार्य में एम० एन० राय ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

एम० एन० राय, जिन्होंने भारत में भूमिगत क्रांतिकारी संगठनों के कार्य में भाग लिया था और बाद में जापान, अमरीका और मेक्सिको में निर्वासन में रहे थे, मेक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापकों में एक थे और उनके आदेश के अनुसार वह कोमिंटर्न की दूसरी कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में बर्लिन

साम्राज्यवादविरोधी लीग के साथ संबंध कायम करने के सुझावों का भी अनुमोदन किया। १६२८ में नेहरू और बोस कांग्रेस के महासचिव निर्वाचित हुए।

भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन का उदय और मजदूर तथा किसान राजनीतिक संगठनों का गठन

प्रवासी क्रांतिकारियों के दल

प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों के विभिन्न केन्द्रों और १६१८ में स्थापित नवोदित सोवियत जनतंत्र के बीच संपर्कों ने इन क्रांतिकारियों में मार्क्सवादी विचारधारा के प्रसार का मार्ग प्रशस्त किया। १६१८ और १६२२ के बीच सोवियत रूस की यात्रा करनेवाले भारतीय लेनिन तथा अन्य सोवियत नेताओं के साथ अपनी मुलाकातों में और मास्को, पेत्रोग्राद, ताशकंद, बाकू तथा दूसरे नगरों में उन्होंने जो कुछ देखा, उससे अत्यंत प्रभावित हुए। हालांकि भारतीय निम्न-पूंजीवादी क्रांतिकारियों को अक्तूबर क्रांति तथा बोल्शेविक कार्यक्रम और कार्यनीति के बारे में बहुत अस्पष्ट ही धारणा थी, तो भी उन्होंने सोवियत रूस को ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष में अपना मित्र माना। प्रवासी भारतीय क्रांतिकारियों और मास्को के बीच संपर्क पहले काबुल और बाद में बर्लिन केंद्रों के जरिये थे।

बरकतुल्लाह के नेतृत्व में काबुल स्थित भारतीय क्रांतिकारी संघ तथा 'भारत की अस्थायी सरकार' के प्रतिनिधिमंडल के सदस्य एम० पी० टी० आचार्य और अब्दुल रब, जो १६१६ के वसंत में मास्को में रहे थे और लेनिन से मिले थे, सोवियत संघ में कई महीने रुके रहे। बरकतुल्लाह ने फारसी में 'बोल्शेविज्म और इस्लामी राष्ट्र' शीर्षक एक पुस्तिका प्रकाशित की (ताशकंद, १६१६), जो शीघ्र ही अन्य प्राच्य भाषाओं में भी अनूदित हुई। इस पुस्तिका ने सोवियत मध्य एशिया, भारत और मध्य पूर्व के देशों में सोवियत जातीय नीति के बारे में सच्चाई फैलाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

१६१६ के अंत में काबुल लौटने के बाद आचार्य और अब्दुल रब ने भारतीयों के अनेक जत्थों को अफगानिस्तान से सोवियत तुर्किस्तान जाने में काफी सहायता प्रदान की। १६२० के प्रारंभ में अखिल भारतीय खिलाफत

आह्वान पर खिलाफत आदोलन म भाग लनवालो मुख्यतया राष्ट्र
स्लिम युवजनो के बडे वड जत्थो न तुर्की जान और साम्राज्यवादी
क खिलाफ तथा मुल्तान (खलीफा) क परमाधिकारो को सुरक्षित
लिए सशस्त्र सघर्ष म हिस्सा लेने क लिए भारतीय अफगान सीमा को पार
रू किया। खिलाफत सगठना द्वारा सगठित जुलूसा और सभाजा
निस्तान के अमीर का एक सदेश सुनाया जाता था जिसमे उसन
जिरो (प्रवासिया) क प्रति समर्थन प्रकट किया था। भारत से
तान जानवाल मुहाजिरा की कुल सख्या तीस स पचास हजार के
और इस प्रवसन न अफगानिस्तान की सरकार के लिए वडी समस्याए
दी थी। वर्ष के अत तक अधिकाश मुहाजिरो का भारत लौट आना
कवल कुछ लोग ही विभिन्न मार्गो स मध्य पूर्व पहुचन म सफल
।

ल स्थित भूमिगत क्रातिकारी सघ क सदस्या मुख्यत आचार्य और
व के राजनीतिक रूप से सब स सचेत मुहाजिरो के बीच प्रचार
परिणामस्वरूप १९२० म लगभग २०० मुहाजिरो के तीन जत्थो न
अफगान सीमा पार की। उनम स लगभग आधे शीघ्र वाद ही भारत
। कुछ को ट्रासकाकेशिया स होकर तुर्की जान म सहायता की गयी
भग ३० लोग ताशकद म रुक गय जिसने आचाय और अब्दुल रब
तीय क्रातिकारी सघ की ताशकद शाखा कायम करने का अवसर
या। इस सघ के प्रतिनिधि की हेसियत स आचार्य ने १९२० की
म कोमिटर्न की दूसरी काग्रेस म भाग लिया।

समय भारतीयो का एक दूसरा जत्था जिसम मुख्यतया खुरासान
) म तैनात ब्रिटिश भारतीय इकाइयो के भगोड सैनिक थे, बाकू मे
था, जहा 'आजाद हिन्दुस्तान अखबार' नामक उर्दू अखबार प्रकाशित
था। भारतीय प्रतिनिधियो न सितम्बर १९२० म बाकू म आयोजित
त्पीडित जनगण की काग्रस मे भी भाग लिया।

र्सवादी विचार धीरे-धीरे भारतीय क्रातिकारियो के बीच फैलन लग
कार्य म एम० एन० राय न महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

० एन० राय, जिन्होने भारत मे भूमिगत क्रातिकारी सगठनो के कार्य
लिया था और बाद म जापान अमरीका और मेक्सिको मे निर्वासन
मेक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी के सस्थापको म एक थ और उसके
अनुसार वह कोमिटर्न की दूसरी काग्रेस के प्रतिनिधि के रूप म बलिन

होत हुए १९२० म मास्का पहुच ये। काग्रेस म वह कोमिटर्न की कायका समिति म चुन गय जिसम उन्हान १९२० और १९२७ क बीच पूर्वी क एक प्रमुख सदस्य क रूप म काम किया।

काग्रेस का कार्य पूरा होन क बाद राय ताशकद गय, जहा वह प्रव भारतीय कम्युनिस्टा के पहले दल क गठन म सक्रिय भूमिका अदा करन ल जिमकी १७ अक्तूबर १९२० को विधिवत भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी क रूप स्थापना की गयी। शुरू म इसम दस स अधिक सदस्य नही थ लकिन १९२१ मुहाजिरो क आन स इसकी सख्या बढ गयी। १९२१ क वमत म इन ला न पूर्व के महनतकशो क कम्युनिस्ट विश्वविद्यालय म, जा उसी साल कामि क तत्वावधान म खाला गया था, एक भारतीय मडल कायम किया। कामि की दूसरी काग्रस क कार्य के दौरान राय न मास्का म प्रवासी क्रातिकारि की अखिल भारतीय अस्थायी क्रातिकारी समिति सगठित की, जिमक ना पर उन्होन भारत क भीतर तथा उसकी सीमाओ क पार क्रातिकारिया क साथ पत्र व्यवहार शुरू किया।

इस मडल के पहल सचिव मुहम्मद शफीक ये। इसक पूर्व उन्हाने मई १९२० म 'ज़मीदार (ज़मीन का मालिक, यानी किसान) नामक अखबार का एक अक निकाला था जिसका उद्देश्य भारतीय क्रातिकारी सघ क विचारा का प्रसार करना था।

ताशकद और मास्को मे अपना अध्ययन पूरा करन क बाद मुहम्मद शफीक, फीरोजुद्दीन मसूर, अब्दुल मजीद, रफीक अहमद और शौकत उस्मानी सहित अनेक भूतपूर्व मुहाजिर भारत लौट आये और वहा कम्युनिस्ट गुटा के काय म हिस्सा लेने लगे। अन्य लोग निर्वासन म रहते हुए कामिटर्न से सबद्ध विभिन्न सस्थाओ अथवा दूसर अतर्राष्ट्रीय क्रातिकारी सगठनो म काम करन लगे।

राय के अलावा निर्वासित भारतीयो के बीच कम्युनिस्ट गुटा के सगठन म महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनेवाले दूसरे व्यक्ति अवनी मुखर्जी थे जिन्हाने कोमिटर्न की दूसरी काग्रेस मे वर्लिन स्थित भारतीय स्वतत्रता समिति के प्रतिनिधि के रूप मे भाग लिया था।

राय और मुखर्जी न तीसरे दशक के दौरान भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन और भारत की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति से सबद्ध प्रश्ना पर पुस्तक पुस्तिकाए और लेख प्रकाशित किये जिन्हे फिर गैर कानूनी ढग से भारत लाया जाता था और जिन्होने निम्न पूजीवादी राष्ट्रवादियो का मार्क्सवाद स परिचित कराने तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के गठन की आधारशिला

रखन म बहुत महत्वपूण भूमिका अदा की। व १६२० की गरमियो म ब्रिटिश प्रेस मे प्रकाशित होनेवाले पहल भारतीय क्रातिकारियो के नाम घोषणापत्र' के हस्ताक्षरकर्ता थे। घोषणापत्र म सर्वहारा अतर्राष्ट्रीयतावाद की विचार-धारा के अगीकरण तथा भारत मे सामाजिक क्राति की तैयारी मे भारतीय क्रातिकारियो के समक्ष आनेवाले कायभारा का निरूपण किया गया था।

भारत म कम्युनिस्ट आदोलन की इस प्रारंभिक अवस्था म राय की भूमिका विरोधात्मक थी। पूव के देशो म क्राति क मूल्याकन मे उनके सकीर्णतावादी रुख न जो उदाहरणार्थ कोमिटर्न की दूसरी काग्रेस म राष्टीय और औपनिवेशिक प्रश्न पर लेनिन क साथ उनके मतभदो म अभिव्यक्त हुआ और उनके द्वारा स्वतत्रता आदोलन म राष्टीय पूजीवादी वर्ग की किसी भी भूमिका के अस्वीकरण ने तीसरे दशक म भारत म पैदा होनेवाल कम्युनिस्ट दलो को सही राजनीतिक दिशा प्राप्त करने से रोका तथा भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के भीतर वामपथी शक्तियो को सयुक्त मार्चे के गठन म बाधा डाली। राय की राजनीतिक भूला न अतत उन्ह कम्युनिस्ट पथ से विचलित कर दिया और १६२६ म उन्ह कोमिटन की कार्यकारिणी समिति से निकाल दिया गया।

फिर भी भारत म मार्क्सवादी विचारो के प्रचार मे राय के कार्य तथा भारतीय कम्युनिस्टो के सगठन मे उनक योगदान का बहुत महत्व था। राय और मुखर्जी, जो राष्टीय क्रातिकारियो की पाता से आये थे भारतीय भूमिगत क्रातिकारी सगठनो और उनके प्रवासी केद्रो तथा राष्ट्रीय काग्रेस के भीतर वाम पक्ष को भी भारत मे कम्युनिस्ट आदोलन का रिजर्व समझते थ। परिणाम स्वरूप उन्होने भारतीय निम्न पूजीवादी युवजनो को पूजीवादी विचारधारा के प्रभाव से शीघ्रातिशीघ्र मुक्त करन का अपना मुख्य कार्य माना था। इसी उद्देश्य से राय, मुखर्जी और उनके नतृत्व म कम्युनिस्ट प्रवासियो के दल ने भारत मे विभिन्न राजनीतिक आदालनो और सगठनो क साथ सपर्क स्थापित करन का प्रयास किया जिनमे स्वराजी नेताओ से लेकर उन भूमिगत क्रातिकारी सगठनो क नेतागण तक शामिल थे, जिन्होने १६२२ के वाद राजनीतिक कार्रवाई की नयी लहर शुरू की थी।

राय और मुखर्जी ने दिसम्बर १६२१ मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के अहमदाबाद म होनेवाले आगामी अधिवेशन के लिए एक विस्तृत घोषणापत्र तैयार किया जिसमे काग्रेस का आम मजदूरा और किसाना को सगठित करने क लिए आह्वान किया गया। उसमे इस पर भी जोर दिया गया था कि

जनसाधारण की मागा व काग्रेस कायक्रम म शामिल किय जान पर ही
आम जनता का कारगर नतृत्व धारण कर सकगी। घोषणापत्र की प्र
को नलिनी गुप्त गैर कानूनी ढग स भारत लाय थ।

भारतीय राष्ट्रीय आदोलन क क्रातिकारी पक्ष म शामिल सगठना
समूहो की नानारूपता निम्न-पूजीवादी विचारधारा क प्रभुत्व और राय
उनक अन्य भारतीय कम्युनिस्टो क विचारो म सकीर्णतावादी प्रवृत्तिया-
सबन सयुक्त राजनीतिक मच पर वामपथी शक्तियो क एकीकरण म ब
डाली। इसक कारण सभी निवासित क्रातिकारियो को एक्यबद्ध करन क
प्रयास असफल रहे। बर्लिन की भारतीय स्वतत्रता समिति क नता वीरेन्द्र
चट्टोपाध्याय की पहल पर १९२१ म मास्को म आयोजित एक विशेष बै
म इसका प्रयास किया गया था। प्रवासी क्रातिकारियो क विभिन्न समूहो
बीच मास्को वार्ता की असफलता क बाद चट्टोपाध्याय बर्लिन लौट आय अ
अतराष्ट्रीय साम्राज्यवादविरोधी लीग के आयोजन की तैयारियो म लग ग
जिसक वह एक सगठनकर्ता और नेता बन।

तीसरे दशक क प्रारभ म स्वय भारत म भी पहले कम्युनिस्ट दल काय
किय गय।

भारत मे कम्युनिस्ट दलो का उदय और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना

बारडोली प्रस्ताव क बाद, जो क्रातिकारी शक्तियो के पश्चगमन का
परिचायक था, असहयोग आदोलन मे पहले सक्रिय भाग लेनेवाले क्रातिकारियो
और काग्रेस क वामपथी सदस्यो का राजनीतिक नेता के रूप म गाधीजी पर
से विश्वास उठ गया। भूमिगत क्रातिकारी पुन सक्रिय होने लगे। उनका
सगठन हिंदु हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन था। भूमिगत क्रातिकारियो
का विशेषकर पजाबवालो का, प्रवासी क्रातिकारियो क उस केंद्र के साथ
निकट सपर्क था जिसे १९२१ म काबुल मे पुनस्थापित किया गया था और
जो राष्ट्रीय काग्रेस की एक शाखा की तरह काम करने लगा था। उसी वर्ष
औपनिवेशिक अधिकारियो ने एक नये षडयत्र की खोज की जो पजाब म
सशस्त्र विद्रोह की तैयारी के लिए सगठित किया गया था। इधर युवा क्राति
कारियो सहित अधिकाधिक लोग मार्क्सवाद को अपना रहे थे।

१९१७ स १९२१ की अवधि भारत म कम्युनिस्ट आदोलन क लिए

एक प्रकार की तैयारी अवस्था थी। अक्तूबर क्राति तथा नवोदित सावियत राज्य द्वारा उठाये गय पहले कदमो कोमिंटन और एम० एन० राय तथा अवनी मुखर्जी के नतृत्व मे प्रवासी भारतीय कम्युनिस्ट दल की गतिविधियो के वार मे सूचना क फैलने के परिणामस्वरूप अब पहल मार्क्सवादी मडलो क आविर्भाव की जमीन तैयार हो गयी थी।

उस अवधि मे भारत म प्रकाशित उन कृतियो म, जिनम विभिन्न रूपो और मात्रा म वैज्ञानिक कम्युनिज्म क सिद्धाता का प्रतिपादन किया गया था, बम्बई के छात्र श्रीपाद अमृत डाग की गाधी वसस लनिन (१६२१) नामक अग्रेज़ी पुस्तिका सवाधिक उल्लेखनीय है। इस पुस्तिका म डागे न जिन्होंने असहयोग आदोलन म सक्रिय भाग लिया था गाधीजी के कार्यक्रम और नीति की आलोचना करते हुए राजनीतिक सघर्ष की लेनिन और गाधीजी की अलग-अलग विधियो की तुलना की थी। मई १६२२ म डाग न अग्रजी भाषा म सोशलिस्ट नाम का साप्ताहिक अखबार निकालना शुरू किया जो भारत की पहली माक्सवादी पत्रिका थी। पत्रिका म मार्क्स और लेनिन की कृतियो का प्रचार किया जाता था रूस म अक्तूबर क्राति क बार म जानकारी होती थी और भारत म राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन के विभिन्न पहलुआ पर चर्चा चलती थी। डागे के कार्यकलाप बम्बई म क्रातिकारी युवजनो के विभिन्न समूहो क लिए मिलन बिंदु बन गये। सितम्बर १६२२ म सोशलिस्ट' ने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के भीतर भारतीय मजदूर समाजवादी पार्टी के गठन की सूचना प्रकाशित की। इस मार्क्सवादी दल के सदस्यो म एस० ए० डागे, एस० वी० घाटे के० एन० जोगलेकर और आर० एस० निम्बकर भी थे और इस दल का नाम ही जताता है कि उस अवधि म डागे और उनके सहयोगी काग्रेस के भीतर एक वामपथी गुट की स्थापना को राष्ट्रीय आदोलन के माक्सवादी पक्ष के उदय के लिए आवश्यक समझते थे। १६२३ मे बम्बई दल न 'सोशलिस्ट नामक मासिक पत्रिका निकालनी शुरू की।

अन्य बडे औद्योगिक केंद्रो म भी मार्क्सवादी दल पैदा हो गये। १६२२ मे शौकत उस्मानी न मास्को से लौटने के बाद बनारस म एक कम्युनिस्ट दल स्थापित किया। इसी समय लाहौर मे भी गुलाम हुसैन के नेतृत्व म एक कम्युनिस्ट सल न काम करना शुरू किया, जिनका मुहम्मद अली (सेपासी) के साथ निकट सपर्क था, जो ताशकद से काबुल आये थे। लाहौर दल का मुखपत्र गुलाम हुसैन द्वारा प्रकाशित उर्दू अखबार इन्कलाब' था। इसी समय मुज़फ्फर अहमद के नतृत्व मे कलकत्ता दल ने भी वैज्ञानिक कम्युनिस्ट दृष्टिकोण अपना

लिया। १६२३ मे मुजफ्फर अहमद ने 'गणवाणी' नामक बगला अखबार निकालना शुरू किया। मद्रास मे सिगारवलु चट्टियार के नतृत्व मे एक मार्क्सवादी दल कायम हुआ जिसने १६२३ मे मजदूर किसान गजट प्रकाशित करना शुरू किया।

पहली मार्क्सवादी पत्रिकाए सामूहिक प्रचार और सगठन का साधन थी। इस प्रसग मे भारत के भीतर 'वैनगार्ड आफ इडियन इडिपडेस' (१६२२-१६२४) और 'मासेज आफ इडिया' (१६२५-१६२७) पत्रिकाओ का भूमिगत वितरण भी महत्वपूर्ण था।

१६२३ और १६२५ के बीच विद्यमान मार्क्सवादी दल केवल आकार मे ही नही बढे बल्कि नये मार्क्सवादी मडल भी कायम किये गये, ममलन कानपुर और कराची के औद्योगिक केद्रो मे विभिन्न मार्क्सवादी केद्रो के बीच सपर्क स्थापित हुए और प्रवासी भारतीय कम्युनिस्ट दलो के साथ पत्र-व्यवहार होने लगा। भारत मे मार्क्सवादी दलो के समक्ष प्रस्तुत मुख्य कार्यभार अपने कार्यकलाप का सामजस्य करना और एक अखिल भारतीय सगठन का गठन करना था।

दमनकारी औपनिवेशिक शासन के कारण भारतीय कम्युनिस्टो के लिए कानूनी गतिविधियो का क्षेत्र बहुत सीमित था। १६२२-१६२३ मे अधिकारियो ने कुछ समय पहले भारत लौटे मुहाजिरो के खिलाफ, जिन्होने प्रवासी क्रातिकारी केद्रो के कार्य मे भाग लिया था तथाकथित पेशावर षड्यत्र के मुकदमे गढे थे। १६२४ मे कम्युनिस्टो के खिलाफ पहला मुकदमा कानपुर मे शुरू हुआ, जिसके परिणामस्वरूप श्रीपाद अमृत डागे, मुजफ्फर अहमद, शौकत उस्मानी आदि को कारावास की सजा दी गयी। भारतीय कम्युनिस्टो पर "बोल्शेविक एजट" होने का दोषारोपण किया गया था। लेकिन इन दमनकारी उपायो के बावजूद ब्रिटिश गुप्तचर सेवा भारत मे कम्युनिस्ट आदोलन को समाप्त करने मे असमर्थ रही उलटे १६२४-१६२५ मे मार्क्सवादी दलो ने अपनी गतिविधिया तेज ही कर दी।

सितम्बर, १६२४ मे कानपुर के एक पत्रकार सत्यभक्त ने एक कानूनी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की घोषणा की। चूकि यह पार्टी, जैसा कि इसके नेताओ ने अपने वक्तव्य मे कहा था, कोमिटर्न तथा विदेशो मे अन्य क्रातिकारी केद्रो से सबद्ध नही थी इसलिए अधिकारी इसकी स्थापना को बरदाश्त करने को तैयार थे। हालाकि सत्यभक्त द्वारा स्थापित पार्टी भारतीय कम्युनिस्टो के ऐक्यबद्ध होने का आधार नही प्रदान करती

थी फिर भी वह मार्क्सवादियो के विभिन्न दलो को एकसाथ लाने के लिए तैयारिया करते रहे। वामपथी काग्रेस सदस्य हसरत मोहानी के नेतृत्व मे आगामी एकता सम्मेलन की तैयारी के लिए एक सगठन समिति कायम की गयी। परिणामस्वरूप १६२५ (२८–३० दिसम्बर) मे कानपुर मे मद्रास के कम्युनिस्ट एम० सिगारवेलु चेट्टियार की अध्यक्षता मे भारतीय कम्युनिस्टो का पहला सम्मेलन हुआ जिसमे एक प्रस्ताव स्वीकार करके भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के गठन का फैसला किया गया। पार्टी का मुख्यालय बबई मे रखने का निश्चय किया गया। सम्मेलन मे केद्रीय कार्यकारिणी समिति चुनी गयी। जे० पी० बगरहट्टा और एस० वी० घाटे उसके सचिव निर्वाचित हुए। केद्रीय कार्यकारिणी समिति मे भारत मे सभी मुख्य कम्युनिस्ट दलो के प्रतिनिधि शामिल थे।

शीघ्र ही कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर कोमिटर्न के साथ सपर्कों के सबध मे मतभेद उत्पन्न हो गये। सत्यभक्त का आग्रह था कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को अपना 'राष्ट्रीय स्वरूप" बनाये रखना चाहिए और कोमिटर्न के साथ कोई सबध नही रखना चाहिए। १६२६ मे कलकत्ता मे आयोजित कम्यु-निस्ट पार्टी के दूसरे सम्मेलन मे अधिकाश प्रतिनिधियो ने इस दृष्टिकोण का समर्थन नही किया और सत्यभक्त ने पार्टी से अलग होकर भारतीय राष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की जो मूलतया क्रातिकारी जनवादियो का सगठन था।

हालाकि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी कानूनी ढग से काम करने के अवसरो को बनाये रखने के लिए कोमिटर्न की शाखा नही बनी फिर भी अतर्राष्ट्रीय क्रातिकारी आदोलन के साथ उसके सबध मजबूत होते जा रहे थे। ग्रेट ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ उसके सपर्कों के जरिये इन सबधो को घनिष्ठतर बनाया जाता था, जिसने कोमिटर्न की कार्यकारिणी समिति के प्रस्ताव के अनुसार भारतीय कम्युनिस्टो के साथ सहयोग करने का दायित्व ग्रहण किया था। १६२५ से १६२८ की अवधि मे ब्रिटिश कम्युनिस्टो के प्रतिनिधिमडल भारत आते रहे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने व्यापक क्रातिकारी सगठन तथा साम्राज्यवादविरोधी सहबध कायम करने को अपना लक्ष्य निर्धारित किया।

१६२४ मे एम० एन० राय के नेतृत्व मे प्रवासी भारतीय कम्युनिस्टो का एक दल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के विदेश ब्यूरो का कार्य करने लगा। इसका प्रावधान १६२७ मे बम्बई मे पार्टी के तीसरे सम्मेलन मे स्वीकृत पार्टी सविधान मे किया गया था।

लिया। १९२३ मे मुजफ्फर अहमद ने 'गणवाणी' नामक बंगला अखबार निकालना शुरू किया। मद्रास मे सिंगारवेलु चेट्टियार के नेतृत्व मे एक मार्क्सवादी दल कायम हुआ जिसने १९२३ मे 'मजदूर किसान गजट' प्रकाशित करना शुरू किया।

पहली मार्क्सवादी पत्रिकाएं सामूहिक प्रचार और संगठन का स्रोत थी। इस प्रसंग मे भारत के भीतर 'वैनगार्ड आफ इडियन इडिपेडस' (१९२२-१९२४) और 'मासेज आफ इडिया' (१९२५-१९२७) पत्रिकाओ का भूमिगत वितरण भी महत्वपूर्ण था।

१९२३ और १९२८ के बीच विद्यमान मार्क्सवादी दल केवल आकार मे ही नही बढे बल्कि नये मार्क्सवादी मंडल भी कायम किये गये, समस्त कानपुर और कराची के औद्योगिक केंद्रो मे विभिन्न मार्क्सवादी केंद्रो के बीच संपर्क स्थापित हुए और प्रवासी भारतीय कम्युनिस्ट दलो के साथ पत्र-व्यवहार होने लगा। भारत मे मार्क्सवादी दलो के समक्ष प्रस्तुत मुख्य कार्यभार अपने कार्यकलाप का सामंजस्य करना और एक अखिल भारतीय संगठन का गठन करना था।

दमनकारी औपनिवेशिक शासन के कारण भारतीय कम्युनिस्टो के लिए कानूनी गतिविधियो का क्षेत्र बहुत सीमित था। १९२२-१९२३ मे अधिकारियो ने कुछ समय पहले भारत लौटे मुहाजिरो के खिलाफ, जिन्होने प्रवासी क्रातिकारी केंद्रो के कार्य मे भाग लिया था, तथाकथित पेशावर षड्यंत्र के मुकदमे गढे थे। १९२४ मे कम्युनिस्टो के खिलाफ पहला मुकदमा कानपुर मे शुरू हुआ, जिसके परिणामस्वरूप श्रीपाद अमृत डागे, मुजफ्फर अहमद, शौकत उस्मानी आदि को कारावास की सजा दी गयी। भारतीय कम्युनिस्टों पर 'बोल्शेविक एजट' होने का दोषारोपण किया गया था। लेकिन इन दमनकारी उपायो के बावजूद ब्रिटिश गुप्तचर सेवा भारत मे कम्युनिस्ट आदोलन को समाप्त करने मे असमर्थ रही उलटे १९२४-१९२५ मे मार्क्सवादी दलो ने अपनी गतिविधिया तेज ही कर दी।

सितम्बर, १९२४ मे कानपुर के एक पत्रकार सत्यभक्त ने एक कानूनी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की घोषणा की। चूकि यह पार्टी, जैसा कि इसके नेताओ ने अपने वक्तव्य मे कहा था, कोमिंटर्न तथा विदेशो मे अन्य क्रातिकारी केंद्रो से संबद्ध नही थी इसलिए अधिकारी इसकी स्थापना को बरदाश्त करने को तैयार थे। हालांकि सत्यभक्त द्वारा स्थापित पार्टी भारतीय कम्युनिस्टो के एक्यबद्ध होने का आधार नही प्रदान करती

थी फिर भी वह मार्क्सवादियो के विभिन्न दलो को एकसाथ लान के लिए तैयारिया करते रहे। वामपथी काग्रेस सदस्य हसरत मोहानी क नतृत्व मे आगामी एकता सम्मेलन की तैयारी के लिए एक सगठन समिति कायम की गयी। परिणामस्वरूप १६२५ (२८–३० दिसम्बर) म कानपुर म मद्रास के कम्युनिस्ट एम० सिगारवेलु चेट्टियार की अध्यक्षता म भारतीय कम्युनिस्टो का पहला सम्मेलन हुआ जिसमे एक प्रस्ताव स्वीकार करके भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के गठन का फैसला किया गया। पार्टी का मुख्यालय बबई मे रखने का निश्चय किया गया। सम्मेलन म केद्रीय कार्यकारिणी समिति चुनी गयी। जे० पी० बगरहट्टा और एस० वी० घाटे उसके सचिव निर्वाचित हुए। केद्रीय कार्यकारिणी समिति मे भारत म सभी मुख्य कम्युनिस्ट दलो क प्रतिनिधि शामिल थे।

शीघ्र ही कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर कोमिटन क साथ सपर्को के सबध म मतभेद उत्पन्न हो गये। सत्यभक्त का आग्रह था कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को अपना "राष्ट्रीय स्वरूप' बनाये रखना चाहिए और कोमिटर्न के साथ कोई सबध नही रखना चाहिए। १६२६ मे कलकत्ता मे आयोजित कम्यु-निस्ट पार्टी के दूसरे सम्मेलन मे अधिकाश प्रतिनिधिया न इस दृष्टिकोण का समथन नही किया और सत्यभक्त ने पार्टी स अलग होकर भारतीय राष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की जो मूलतया क्रातिकारी जनवादियो का सगठन था।

हालाकि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी कानूनी ढग स काम करन क अवसरा को बनाये रखने के लिए कोमिटर्न की शाखा नही बनी, फिर भी अतर्राष्ट्रीय क्रातिकारी आदोलन के साथ उसके सबध मजबूत होते जा रहे थे। ग्रेट ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ उसके सपर्को क जरिये इन सबधो को घनिष्ठतर बनाया जाता था, जिसने कोमिटर्न की कार्यकारिणी समिति के प्रस्ताव क अनुसार भारतीय कम्युनिस्टो के साथ सहयोग करने का दायित्व ग्रहण किया था। १६२५ से १६२८ की अवधि म ब्रिटिश कम्युनिस्टो क प्रतिनिधिमडल भारत आते रहे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने व्यापक क्रातिकारी सगठन तथा साम्राज्यवादविरोधी सहबध कायम करन को अपना लक्ष्य निर्धारित किया।

१६२४ म एम० एन० राय क नतृत्व म प्रवासी भारतीय कम्युनिस्टा का एक दल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी क विदेश ब्यूरा का कार्य करन लगा। इसका प्रावधान १६२७ म बम्बई म पार्टी क तीसर सम्मेलन म स्वीकृत पार्टी सविधान म किया गया था।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का गठन भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन में एक नये चरण का द्योतक था, जिसके साथ साथ मजदूर वर्ग और ट्रेड-यूनियनों के अधिक संघर्षों की एक नयी लहर शुरू हुई।

१९२३ से १९२७ की अवधि में मजदूर आंदोलन। मजदूर किसान पार्टियां

जनव्यापी साम्राज्यवादविरोधी संघर्ष में १९२२ में जो उतार आया था, उसका असर मजदूर आन्दोलन पर भी पड़ा। इसके तत्काल बाद के वर्षों में हड़तालों तथा उनमें भाग लेनेवाले मजदूरों दोनों की संख्या में गिरावट आयी। लेकिन साथ ही ये हड़तालें बेहतर संगठित, अधिक समय तक चलनेवाली और अधिक दृढ़ भी सिद्ध हुईं। १९२४ और १९२५ में हड़ताल-आन्दोलन विशेष रूप में तेजी पर था, जब १९२२ में ३६ लाख, १९२६ में १० लाख और १९२७ में २० लाख कार्य दिवसों की तुलना में क्रमशः ८७ लाख और १२५ लाख कार्य दिवस बेकार गये। सामान्यतया हड़तालें रक्षात्मक स्वरूप की थीं और मजदूरी में कटौती और कार्य दिवस में वृद्धि, आदि के विरोध में की जाती थीं। १९२४ और १९२५ में मजदूर वर्ग की सबसे बड़ी कार्रवाइयां बम्बई के सूती मजदूरों की तथा १९२६ और १९२७ में रेलवे मजदूरों की हड़तालें थीं। इस समय बम्बई का सर्वहारा भारतीय मजदूर आन्दोलन के हरावल के रूप में सामने आ रहा था।

उद्यमकर्ताओं तथा उनका समर्थन करनेवाले औपनिवेशिक प्रशासन के प्रत्याक्रमण के दौर में, जब १९२६ में एक विशेष कारखाना अधिनियम के जरिये मजदूर-संगठनों की कार्रवाइयों पर सरकारी नियंत्रण लगा दिया गया था, अक्सर हड़तालों का अंत मजदूरों की पराजय में ही होता था। इसका एक कारण ट्रेड-यूनियनों का राष्ट्रीय स्तर [illegible] भी [illegible]

१९१८ से १९२२ की अवधि [illegible] हलचल [illegible] के बाद [illegible] से ट्रेड-यूनियन बढ़ रही थीं और [illegible] रहे थे। यह सही है कि ट्रेड-यूनियन [illegible] सफेदपोश और [illegible] मजदूरों में [illegible] १९२६ में भार[illegible] तीन लाख के क[illegible] संख्या १,२५,००० [illegible]

भारत में कम्यु[illegible]

म कुछ परिवर्तन आये – प्रारंभिक कम्युनिस्ट दलों के कम्युनिस्ट ट्रेडयूनियनों के गठन और औद्योगिक तथा सरकारी कर्मचारियों के स्थानीय संगठनों के नेतृत्व में सक्रिय भूमिका अदा करने लगे। इसमें यह तथ्य भी सहायक था कि कम्युनिस्ट दलों के अनेक नेता (उदाहरणार्थ मुजफ्फर अहमद, गुलाम हुसैन और बम्बई दल के नेता) ट्रेड-यूनियनों की गतिविधियों में घनिष्ठता जुड़े हुए थे। १९२५ में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के बाद से ट्रेड यूनियनों के भीतर कम्युनिस्टों का काम निरन्तर ज्यादा मजबूत होता गया।

कम्युनिस्टों तथा अन्य उग्रवादी तत्वों के प्रभाव में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अधिवेशनों में राजनीतिक स्वरूप के प्रस्ताव स्वीकार किये जाते थे जैसे १९२४ में मजदूरों की कार्रवाइयों को कुचलने के लिए पुलिस के इस्तेमाल पर विरोध का एक प्रस्ताव, १९२५ में मजदूरों को मताधिकार देने की मांग का प्रस्ताव, १९२६ में छुआछूत और नसली भेदभाव की निन्दा का प्रस्ताव।

इसी अवधि में एक ओर राष्ट्रीय सुधारवादियों और दूसरी ओर कम्युनिस्टों तथा क्रांतिकारी जनवादियों के बीच संगठित मजदूर आंदोलन के नेतृत्व के लिए संघर्ष शुरू हुआ। ब्रिटिश लेबर पार्टी (मजदूर दल) ने भी, जिसने १९२५ से १९२७ की अवधि में अनेक प्रतिनिधिमंडल भारत भेजे थे, भारतीय ट्रेड-यूनियनों पर अपना प्रभाव जमाने की कोशिश की।

१९२७ में कानपुर में आयोजित अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस के आठवें अधिवेशन में विभिन्न राजनीतिक शक्तियों के बीच खुला टकराव हुआ। अधिवेशन में ब्रिटिश ट्रेड-यूनियन कांग्रेस की जनरल कौंसिल द्वारा प्रस्तावित अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस को पीली ट्रेड-यूनियनों के अमस्टर्डम इंटरनेशनल से जोड़ने के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया गया। साथ ही अधिवेशन ने वाम पक्ष द्वारा प्रस्तुत प्राफिंटर्न (लाल ट्रेड-यूनियन इंटरनेशनल) और साम्राज्यवादविरोधी लीग में शामिल होने के प्रस्ताव को भी अस्वीकृत कर दिया। हालांकि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति के नेतृत्व में अब भी राष्ट्रीय सुधारवादियों का ही बहुमत था, लेकिन उसमें कुछ पदों पर कम्युनिस्ट भी थे बम्बई की मजदूर-किसान पार्टी के अध्यक्ष डी० आर० थगडी उपाध्यक्ष और डांगे सहायक महासचिव चुने गये थे।

कम्युनिस्टों द्वारा स्थापित मजदूर किसान पार्टियों की सरगरमियों के कारण मजदूर आंदोलन में उनकी ताकत बढ़ी।

कम्युनिस्ट नतृत्व म श्रमजीवी जनता का व्यापक कानूनी सगठन – म
किसान पार्टी – कायम करन का पहला असफल प्रयास मद्रास म सिग
चेट्टियार १९२३ मे ही कर चुके थे। १९२६ से १९२८ के वर्षो म म
किसान पार्टिया पहले बगाल और फिर बम्बई प्रात, पजाब और सयुक्त
म कायम की गयी। इन सगठनो का नेतृत्व क्रातिकारी जनवादिया और
निस्टो, दोना के हाथो मे था।

उस समय मजदूर किसान पार्टिया मजदूर वर्ग, कृपक समुदाय
शहरी मध्यम वर्गो पर कम्युनिस्ट प्रभाव स्थापित करन का अत्यत महत्व
साधन थी। उनके नेतृत्व म अनक मजदूर ट्रेड यूनियनो और किसान सभ
न जो चौथे दशक के प्रारभ म ही कायम होने लगी थी, और जड जमा

मजदूर किसान पार्टियो ने मजदूर वर्ग तथा कृपक समुदाय के हिता
रक्षा और जमीदारी के उन्मूलन तथा पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष कि
इन मजदूर किसान पार्टियो के कार्यक्रमो के प्रकाशन और राष्ट्रीय काग्रेस
उनक प्रभाव के परिणामस्वरूप काग्रेस के भीतर एक वाम पक्ष बन गय
इन पार्टियो द्वारा प्रकाशित विभिन्न अखबार – बगाल मे 'गणवाणी' बम्
म क्राति' पजाब मे 'कीर्ति' 'मेहनतकश', 'मजदूर किसान' – उन
प्रचार कार्य म महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे।

कम्युनिस्टो और मजदूर किसान पार्टियो के कार्य न मुक्ति क्राति म न
उभार क लिए आवश्यक पूर्वावस्थाओ को पैदा करने म सहायता की।

१९२७ के अत म आतरिक राजनीतिक स्थिति म ब्रिटिश सरकार की
इस घोपणा के साथ तनाव बढना शुरू हो गया कि भारत के नये शासन
विधान के बारे म सुझाव दन के लिए लार्ड साइमन की अध्यक्षता म एक
आयोग नियुक्त किया जायेगा। घोपणा पर इस कारण से व्यापक रोप उत्पन्न
हो गया कि आयोग म भारतीय जनता का कोई प्रतिनिधि नही शामिल किया
गया था। काग्रेस के मद्रास अधिवेशन न प्रस्ताव स्वीकार करके साइमन कमीशन
का बहिप्कार करन का फैसला किया। ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति के खिलाफ
विरोध आदोलन अब पूरे देश म फैलना शुरू हो गया।

साम्राज्यवादविरोधी आदोलन का उदय और सयुक्त मोरचे के लिए सघर्ष (१६२८–१६३६)

वे आर्थिक और सामाजिक राजनीतिक कारक अब भी विद्यमान थे जिन्होंने १६१८ से १६२२ की अवधि मे भारत मे क्रातिकारी उफान को जन्म दिया था। आनेवाले वर्षों मे साम्राज्यवादी प्रत्याक्रमण ने औपनिवेशिक सरकार तथा भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों के बीच अतर्विरोधो को और उग्र बनाया।

इन परिस्थितियो मे राष्ट्रीय पूजीवाद के और विकास के परिणामस्वरूप ब्रिटिश इजारेदारियो और भारतीय राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग के बीच अतर्विरोध और भी गहरे हुए।

राष्ट्रीय मुक्ति-सघर्ष मे नया दौर

भारत मे आर्थिक स्थिति पर विश्व आर्थिक सकट का प्रभाव

१६२६ के विश्व आर्थिक सकट ने भारत की अर्थव्यवस्था को भारी आघात पहुचाया। कृषि-सकट तो और भी पहले, १६२७–१६२८ मे ही शुरू हो गया था जिसने कृषि-उपज की बिक्री को प्रभावित किया था और कृषि मालो की कीमतो मे जबरदस्त गिरावट पैदा की थी – उदाहरणार्थ गहू के दाम मे ५० प्रतिशत की और जूट के ५० से ६५ प्रतिशत की गिरावट आयी। इसके साथ ही औपनिवेशिक अधिकारी लगान की दरो को भी दुहराकर उन्हे

राफी बढा रहे थे। परिणामस्वरूप कृपिजीवियो की वास्तविक आय काफी गिर गयी थी। प्रतिकूल बाजार से होनवाली क्षति को पूरा करने के लिए जमीदार जिस रूप में लगान की जगह नक्द लगान लेने लगे। अधिकाधिक असामी काश्तकार और छोटी काश्ता के मालिक कगाल होते जा रहे थे। किसानो की अधिकाधिक जमीन जमीदारो, साहूकारो और धनी किसानो के कब्जे में आती जा रही थी। कृपको पर ऋणभार की कुल रकम नौ अरब रुपये तक बढ गयी थी।

गावो पर इन आघातो के अलावा सकट नगरो को भी बुरी तरह प्रभावित कर रहा था। फैक्टरिया और छोटे औद्योगिक प्रतिष्ठान बद किये जा रहे थे। एक तरफ जब कीमत बढ रही थी, तब यौक्तिकीकरण के बहाने मजदूरो की व्यापक बर्खास्तगी के परिणामस्वरूप मजदूर वर्ग तथा नौकरीपेशा लोगो की स्थिति और बिगडती जा रही थी।

ब्रिटिश पूजीवादी वर्ग ने इस आर्थिक सकट से अपने उपनिवेशो, और सर्वप्रथम भारत की कीमत पर उबरने की कोशिश की। उस समय भारतीय निर्यात मालो और विदेशो, सर्वोपरि ब्रिटेन से आयातित मालो की कीमतो के बीच अतर काफी बढता जा रहा था।

निर्वाह-व्यय के लगातार बढने के कारण, जिससे बडी सख्या में लघु उत्पादक भी कगाल होते जा रहे थे, बहुत से भारतीय अपनी बचता (जो परपरा के अनुसार चादी और सोने के गहनो के रूप में होती थी) को बेचने के लिए मजबूर हो गये। सकट के वर्षों मे ब्रिटिश बैको ने अपने दलालो के जरिये भारत से लगभग तीन अरब रुपये की बहुमूल्य धातुओ को विदेश भेजा था।

सकट ने केवल श्रमजीवी जनता को ही प्रभावित नही किया। देश भर में छोटे और मध्यम आकार के औद्योगिक तथा व्यापारिक प्रतिष्ठानो की भी तबाही होने लगी। विदेशी इजारेदारियो के अलावा केवल बडे भारतीय पूजीपति ही अपनी आर्थिक स्थिति बनाये रख सके। लेकिन औपनिवेशिक शासन के अतर्गत बडे भारतीय उद्यमकर्ताओ की बढती शक्ति ने उनके तथा साम्राज्यवादियो के हितो के बीच अधिक गभीर सघर्षो को भी उत्पन्न किया।

इस तरह आर्थिक सकट ने भारत में वर्गीय और राष्ट्रीय विरोधो में सगीन तेजी लाने के साथ-साथ देश में वर्ग सघर्ष तथा राष्ट्रीय मुक्ति-सघर्ष को नया सवेग भी प्रदान किया।

देश मे क्रातिकारी हलचल की नयी लहर का आरभ मजदूर वग के सघर्षो के शुरू के साथ हुआ। हडताल आदोलन मे तेजी आयी १९२८ मे लगभग पाच लाख लोगो न हडतालो म भाग लिया। तीसर दशक के अत और चौथे दशक के प्रारभ की हडतालो म ऐसी कई नयी विशेषताए थी जो मज़दूर-आदोलन के आर्थिक सघर्ष मे पूर्ववर्ती दस वर्षो म नही मौजूद थी

धरना और हडताल समितिया दो ऐसे रूप थे जिनका अब अकसर इस्तेमाल किया जान लगा। सगठित मजदूर आदोलन के भीतर एक ओर कम्युनिस्टो तथा उनके साथ पक्तिवद्ध जनवादियो और दूसरी ओर राष्ट्रीय सुधारवादियो के बीच सघर्ष अधिकाधिक उग्र बनता जा रहा था क्योकि प्रत्येक पक्ष ट्रेड-यूनियनो और हडताल समितियो पर नतृत्व स्थापित करने का प्रयास कर रहा था।

इस सघर्ष के परिणामस्वरूप क्रातिकारी टड-यूनियन कायम हुई जो राजनीतिक और आर्थिक सघर्ष को साथ साथ चलाती थी और मजदूरो के वर्ग हितो के लिए डटकर लडती थी।

इस तरह की पहली टेड यूनियन सूती मजदूरो की आम हडताल के लिए तैयारियो के समय वम्बई म कायम की गयी। यह कपडा मजदूरो की लाल वावटा (लाल झडा) गिरनी कामगार यूनियन थी। डागे और भारत म काम करनेवाले ब्रिटिश कम्युनिस्ट वन ब्रैडले के नतृत्व म स्थापित यह ट्रेड यूनियन आगे चलकर देश मे वामपथी ट्रेड-यूनियन आदोलन का आधार वन गयी।

हडताल, जो वम्बई की कपडा मिलो म आम तालावदी के बाद जिसमे हजारो मज़दूरो को बर्खास्त कर दिया गया था शुरू हुई लवे समय तक चलती रही। बम्बई के सभी कपडा मजदूरो न इसम भाग लिया। छ महीन के दौरान (हडताल अप्रैल से अक्तूबर, १९२८ तक चली) दो करोड कार्य-दिवस नष्ट हुए। हडताली मजदूरा की दृढता न सपूर्ण भारतीय मजदूर-आन्दोलन पर काफी प्रभाव डाला। शोलापुर तथा अन्य औद्योगिक कद्रो के मजदूरो और रेलव कर्मचारियो न आगे वढकर अपन सहकर्मियो को समर्थन प्रदान किया। भारत तथा ब्रिटेन और सोवियत सघ म भी हडतालियो के लिए विशष चदे एकत्रित किये गय।

हडताल के सगठनकर्ताओ के खिलाफ दमनकारी कार्रवाइयो और हडताल-

तोडको की सहायता म हडतालियो के प्रतिरोध को दुर्बल बनाने क प्रयासा तथा अन्य ऐसी विधियो के वावजूद मालिको और औपनिवशिक अधिकारिया को अतत रिआयते देन के लिए विवश होना पडा। हडतालिया द्वारा रखी गयी आर्थिक मागो (मजदूरी मे कटौती और वखास्तगियो तथा हरिजना क खिलाफ भेदभाव की समाप्ति) पर विचार करने के लिए एक विशष समिति कायम की गयी गिरनी कामगार यूनियन को आधिकारिक रूप से बम्बई के कपडा मजदूरा की ट्रेड-यूनियन क रूप म मान्यता दी गयी और पुलिस न हडताल समिति क नताओ पर से मुकदमे उठा लिय।

बम्बई के कपडा मजदूरा की आम हडताल भारतीय मजदूर आन्दोलन के इतिहास का एक गौरवमय पृष्ठ है, जिसन भारतीय मजदूर वर्ग के सगठित आदोलन की अगली अवस्था को क्रातिकारी आवेश प्रदान किया।

गिरनी कामगार यूनियन की स्थापना और इसकी प्रारभिक सफलताओ के परिणामस्वरूप अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस मे एक वाम पक्ष के गठन म तेजी आयी, जिसम कम्युनिस्ट अधिकाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रह थे।

१६२८ म झरिया (विहार) म अखिल भारतीय टेड यूनियन काग्रस क सम्मेलन म स्वतन्त्र भारतीय समाजवादी जनतन्त्र स्थापित करने का प्रस्ताव स्वीकार किया गया, जिसम भूमि और उद्योग को राष्ट्रीयकृत हाना था। यह कदम इसका द्योतक था कि ट्रेड यूनियन आदोलन का राजनीतिक कार्यक्रम अव तक कितना मूलगामी हो चुका था।

इगलैड म चुनावो के वाद सत्ता म आनवाल मजदूर दल (लेवर पार्टी) की भारत म टेड यूनियन सगठनो म वामपथी शक्तियो के इस दृढीकरण के प्रति प्रतिक्रिया दोहरी थी। एक ओर तो उसने भारत के मजदूर वर्ग के साथ सहानुभूति के अनेक सकेत व्यक्त किये, जैसा कि ह्विटले के अधीन शाही श्रम आयोग की नियुक्ति, जब कि दूसरी ओर उसने सगठित मजदूर आदोलन के निर्मम दमन की नीति को जारी रखा। मजदूर वर्गीय राजनीतिक सगठना की स्थापना पर प्रतिवध लगानेवाले और ट्रेड यूनियनो की कार्रवाइया को केवल आथिक प्रश्नो तक सीमित करने के कानून जारी किये गय। साथ ही कम्युनिस्ट हलचला पर दमन तेज़ कर दिया गया।

वामपथी ट्रेड यूनियनो का समर्थन करनवाली फैक्टरी समितियो क सदस्या को खासकर तग किया जाने लगा। बम्बई के सूती मजदूरो ने माच, १६२६ म गिरनी कामगार यूनियन के समर्थन म फिर स आम हडताल कर दी। लकिन

इस बार हडताल असफलता म समाप्त हुई क्योकि ट्रड यूनियनो के वाम पक्ष के मुख्य नेताओ को गिरफ्तार कर लिया गया था।

ट्रड-यूनियन आदोलन म कम्युनिस्टो और वामपथी काग्रेसियो के बढते प्रभाव ने पूजीवादी राष्टवादिया को बहुत चिंतित कर दिया। दसवे सम्मलन (नागपुर नवम्बर १६२६) म दक्षिण पक्ष न अखिल भारतीय ट्रड यूनियन काग्रेस मे गिरनी कामगार यूनियन के सबद्ध सगठन के रूप म प्रवेश को रोकन का प्रयास किया। अपन को अल्पमत मे पाने पर दक्षिणपथी अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस से निकल गये और उसी वर्ष दिसम्बर मे उन्होने वी० वी० गिरि और एन० एम० जोशी क नेतृत्व म इडियन ट्रेड-यूनियन फेडरेशन नामक नये मजदूर-सगठन की स्थापना की। अब तक सयुक्त रहते आनवाले भारतीय मज़दूर आदोलन मे पहली फूट ऐसे ही हुई।

नागपुर सम्मेलन म एक प्रस्ताव द्वारा ह्विटल आयोग का बहिष्कार करने का आह्वान किया गया। सुभाषचद्र बोस अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। भारतीय मज़दूर आदोलन के घटनाक्रम ने प्रदर्शित कर दिया था कि अब ऐसी अनुकूल परिस्थितिया विद्यमान है जिनम कम्युनिस्ट तथा उनके साथ सहबद्ध क्रातिकारी जनवादी काग्रेस म वाम पक्ष से सहयोग कर सकते है। किंतु इन सभावनाओ का पूर्ण उपयोग नही किया गया, जिसका कारण अशत स्वय कम्युनिस्टो द्वारा अपनायी गयी स्थिति भी था।

कम्युनिस्ट आदोलन मे स्थिति

तीसरे दशक के अत और चौथे दशक के प्रारभ मे कम्युनिस्ट गतिविधियो का मुख्य क्षेत्र ट्रेड यूनियन थी, जिसम निश्चित सफलताए प्राप्त की गयी। दूसरा क्षेत्र जिसम कम्युनिस्ट पार्टी अपने आम प्रभाव का विस्तार कर सकती थी मज़दूर और किसान पार्टिया थी। मज़दूर आदोलन क विकास क साथ साथ इन पार्टियो की गतिविधियो मे भी तेज़ी आती गयी।

दिसम्बर, १६२८ म अखिल भारतीय मजदूर किसान पार्टी का पहला सम्मेलन हुआ जिसन देश के सभी प्रातो म इस नाम से ज्ञात सगठनो को एक किया।

इस सम्मेलन म पारित प्रस्ताव द्वारा भारत की पूर्ण स्वतत्रता के लिए सघर्ष का आह्वान किया गया जिसके लिए राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन मे मज़दूर

वर्ग का नेतृत्वकारी भूमिका ग्रहण करना आवश्यक था। सम्मेलन ने मजदूरों और किसानों के वर्ग संघर्ष को तेज करने के महत्व पर जोर दिया।

कम्युनिस्टों का सर्वाधिक प्रभाव बंगाल, पंजाब और बम्बई में मजदूरों और छात्रों के बीच प्राप्त था। नौजवान भारत सभा जैसे युवा संगठन कायम किये गये।

जन संगठनों में कम्युनिस्ट प्रभाव को रोकने के प्रयास में औपनिवेशिक प्रशासन ने मार्च १९२९ में वामपंथी शक्तियों के नेतृत्व पर भारी आघात किया। ३३ वामपंथी नेताओं को जिनमें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं सहित १६ कम्युनिस्ट और १८ ट्रेड यूनियन नेता भी थे, गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर ब्रिटिश सम्राट के खिलाफ षड्यंत्र करने का अभियोग लगाया गया। कम्युनिस्टों ने मेरठ षड्यंत्र केस के नाम से ज्ञात इस मुकदमे का जो चार साल तक चलता रहा बड़ी कुशलता से इस मंच के रूप में उपयोग किया जहां से उन्होंने भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति की निन्दा की और वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों का प्रचार किया। राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं सहित भारतीय जनता के व्यापक हिस्सों ने अभियुक्तों को समर्थन प्रदान किया। भारत और विदेशों में उनके बचाव के लिए विशेष समितियां कायम की गयीं।

लेकिन पार्टी के कुछ नेताओं द्वारा, जो गिरफ्तार नहीं हुए थे अपनायी गयी नीति के परिणामस्वरूप कम्युनिस्ट आंदोलन को जबरदस्त धक्का पहुंचा। दिसम्बर १९३० में कोमिटर्न के अंतर्राष्ट्रीय प्रेस संवाद में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की कारवाई का प्रारूपिक कार्यक्रम प्रकाशित हुआ था। उसमें सशस्त्र विद्रोह के जरिये समाजवादी क्रांति करने तथा सोवियत सत्ता की स्थापना करने का प्रतिपादन किया गया था, जो भारत की तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में वामपंथी संकीर्णतावादी नारा था। इन सुझावों के अनुसार भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में पूरे देश में चल रहे १९३१–१९३२ के जन आंदोलन में भाग नहीं लिया।

ट्रेड यूनियनों के क्रांतिकारी केन्द्रक के तितर-बितर होने, मजदूर आंदोलन में फूट और कम्युनिस्टों द्वारा अपनायी गयी वामपंथी संकीर्णतावादी नीति – इस सबने मजदूर वर्ग के संघर्ष को प्रभावित किया। क्रांतिकारी हलचल के बढ़ते ज्वार के बावजूद हड़ताल-आंदोलन १९२७–१९२९ जैसा जोर नहीं पकड़ पाया।

१९३० से १९३३ की अवधि मे सबसे बड़ी हड़ताल जी० आई० पी०

रेलवे* के मजदूरों और गरम्याण कर्मचारियों की थी जिसमें ८० हजार से अधिक लोगों ने भाग लिया। रेलवे मजदूरों का जो रगडा मजदूरों के साथ मजदूर वर्ग का जुझारू हरावल थे यह सघर्ष अपनी दृढता के लिहाज से असाधारण था। नेतृत्व द्वारा अपनायी गयी समझौतापरस्त नीति आम तालाबन्दी और फौजों के इस्तेमाल के बावजूद हडताल लगभग एक साल चली और उस अन्य रेलों के मजदूरों और कर्मचारियों ने समर्थन प्रदान किया।

लेकिन अखिल भारतीय ट्रेड में एक और फूट पडने के कारण सगठित मजदूर आन्दोलन फिर कमजोर हो गया। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस के कलकत्ता सम्मेलन (१९३१) में कम्युनिस्टों के नेतृत्व में वाम पक्ष ने सगठन से अलग होने की घोषणा कर दी। इसका कारण अधिकाश नेताओं और कम्युनिस्टों के बीच इस प्रश्न पर तीव्र मतभेद था कि कम्युनिस्ट रेल मजदूरों के प्रतिनिधियों को ट्रेड यूनियन काग्रेस के पूर्ण सदस्य माना जाये या नही। अब रेड ट्रेड-यूनियन सेंटर नामक एक नया राष्ट्रव्यापी ट्रेड यूनियन सगठन कायम किया गया जिसे प्राफिटन से सम्बद्ध किया गया।

भारतीय कम्युनिस्टों की गलतियों को कोमिंटर्न और बधु कम्युनिस्ट पार्टियों की सहायता से ठीक कर लिया गया। जून १९३२ में कोमिंटन प्रकाशना में जर्मनी ग्रेट ब्रिटेन और चीन की कम्युनिस्ट पार्टियों का भारत के कम्युनिस्टों के नाम खुला पत्र प्रकाशित किया गया जिसमें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के वामपक्षी सकीर्णतावादी सिद्धातों के भ्रातिपूर्ण रुझान का विवेचन करते हुए यह सुझाव दिया गया था कि कम्युनिस्टों को काग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रव्यापी आदोलन में भाग लेना चाहिए और उसके भीतर सयुक्त साम्राज्यवादविरोधी मोर्चे की स्थापना के लिए काम करना चाहिए।

इस दस्तावेज के प्रकाशन ने भारत में कम्युनिस्ट आदोलन के भीतर स्थिति पर निश्चित प्रभाव डाला जिसके कुछ नेताओ ने जो मेरठ केस के सिलसिले में अब भी जेल में थे वामपथी सकीणतावादी दृष्टिकोण नही अपनाया था।

दिसम्बर १९३३ में कलकत्ता में अखिल भारतीय पार्टी सम्मेलन हुआ जिसने महासचिव गगाधर अधिकारी की अध्यक्षता में नयी केद्रीय समिति

---

*भारतीय रेलो के तत्कालीन प्रशासनिक विभाजन के अतर्गत जी० आई० पी० (ग्रेट इडियन पनिनसूला) रेलवे में वर्तमान दक्षिण तथा मध्य रेलो का अधिकाश क्षेत्र आता था।

को चुना। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी अब कामिटर्न स सबद्ध हो गयी और उसन राष्ट्रव्यापी आदोलन म सक्रिय भाग लना शुरू कर दिया। लकिन तब तक क्रातिकारी हलचल की लहर उतरन लगी थी। १६२८ और १६२६ म मजदूर वर्ग की व्यापक कारवाइया न सपूण भारतीय राजनीतिक जीवन को प्रभावित किया था।

भारत के नये शासन विधान की तैयारी। राष्ट्रीय काग्रेस का रुख

३ फरवरी १६२८ को साइमन कमीशन के आगमन क साथ जनव्यापी साम्राज्यवादविरोधी प्रदर्शनो की एक नयी लहर फूट पडी। इस आयोग को भारत क प्रशासन क बार म सुझाव पेश करने के लिए नियुक्त किया गया था। राष्ट्रीय काग्रस और अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रस न इसके विरोध म हडतालो और प्रदर्शनो का आयोजन करक साइमन क भारत स वापस जान की माग की। नय शासन विधान की तैयारी म ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय जनमत की जानबूझकर उपेक्षा क खिलाफ कवल राष्ट्रीय काग्रस और जनवादी सगठनो – मज़दूर-किसान पार्टियो तथा ट्रेड-यूनियनो – न ही नही, बल्कि मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा न भी विरोध व्यक्त किया। कवल प्रतिक्रियावादी ज़मीदार पार्टियो ने ही साइमन कमीशन से सहयोग किया।

भारतीय राजनीतिक सगठनो द्वारा घोषित साइमन आयोग का बहिष्कार करने की माग को केंद्रीय विधान सभा ने बहुमत से समर्थन प्रदान किया।

१६२८ मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की पहल पर विभिन्न पार्टियो के सर्वदल सम्मेलन हुए थ, जिनमे औपनिवेशिक स्वराज्य के आधार पर भारत क भावी राजकीय और राजनीतिक सगठन के बारे मे विचार विमर्श किया गया था।

साइमन कमीशन के राष्ट्रव्यापी बहिष्कार का सगठन करन और भारत के सविधान का अपना प्रारूप तैयार करन के अलावा राष्ट्रीय काग्रस अपने जन आधार को भी व्यापक बना रही थी। ग्रामीण इलाको मे राष्ट्रीय काग्रस की शाखाए कायम की गयी, जिनमे मुख्यतया किसानो के सपन्न हिस्स शामिल थे।

काग्रेस की तथा स्वय गाधीजी की प्रतिष्ठा की पुनर्वृद्धि म एक महत्वपूर्ण सहायक कारक गुजरात मे बारडोली का सत्याग्रह था जिसमे गाधीजी और

वल्लभभाई पटल क नतृत्व म भूस्वामी किसानो न भाग लिया था। यह सत्याग्रह लगे म भारी वृद्धि क खिलाफ किया गया था। राष्ट्रीय काग्रेस न किसानो र जो पुलिस दमन और अपनी जमीनो क जब्त किय जान क बावजूद दृढतापूर्वक ग्रड रह समथन म १२ जून १६२८ को गष्ट्रव्यापी बारडोली दिवस सगठित किया जब पूर देश म जनम और जलूम आयोजित किये गय।

इस सत्याग्रह की आशिक मफलता और राष्ट्रीय प्रस द्वारा इसे प्रदत महत्व न गाधीजी और काग्रस नताओ क प्रभाव तथा प्रतिष्ठा को काफी मजबूत बनाया।

इसी बीच जुलाई १६२८ म मोतीलाल नहरू की अध्यक्षता म नियुक्त सविधान समिति की रिपार्ट प्रकाशित हुई। इसम भारत के सविधान का प्रारूप था जो नहरू सविधान क नाम स प्रसिद्ध हुआ। इसम कहा गया था कि भारत को औपनिवशिक स्वराज्य प्रदान किया जाना चाहिए और बजट पर निर्वाचित निकायो का नियत्रण होना चाहिए जब कि विदेश नीति और प्रतिरक्षा सबधी मामलो का सचालन ब्रिटेन करता रहगा। नहरू सविधान म सामती अधिकारो क समर्थन म प्रावधान थे लेकिन पूरे देश की श्रमजीवी जनता की महत्वपूर्ण मागो की उपेक्षा की गयी थी।

काग्रस की स्थानीय शाखाओ म नहरू सविधान पर बहस के समय समिति द्वारा तैयार कार्यक्रम की बहद नरमी की कडी आलोचना की गयी। राष्ट्रीय काग्रस के वाम पक्ष न नहरू समिति के प्रस्तावो के प्रति अपनी प्रतिक्रिया पूरे देश म इडिपडस लीग (स्वतत्रता सघ) सगठित करक व्यक्त की जिन्होने पूण स्वराज्य क लिए आदोलन करना शुरू किया। नवम्बर १६२८ म जवाहरलाल नहरू और सुभाषचद्र बोस के नतृत्व म ऑल इडिया इडिपडेस लीग का एक अधिवशन हुआ।

साइमन कमीशन ने नहरू सविधान की अवहेलना की और इस तरह राष्ट्रीय काग्रेस के नरमपथी नेताओ की सवैधानिक साधनो से अग्रेजो से कुछ रिआयत प्राप्त करन की आशाए धूल मे मिल गयी। इससे काग्रेस मे वाम पक्ष की स्थिति और मजबूत हुई, जो देश के विभिन्न भागो मे स्थानीय इडिपडस लीगो के माध्यम से पार्टी के भीतर और बाहर पूर्ण स्वराज्य के लिए आदोलन कर रहा था। लेकिन अब भी काग्रेस के भीतर गाधीजी सहित अधिकाश नेता ऐसे थे जो वाम पक्ष की मागो को स्वीकार करने के लिए तैयार नही थे। १६२८ के अत मे कलकत्ता म राष्ट्रीय काग्रेस के अधिवेशन

में नेहरू समिति की रिपोर्ट का अनुमोदन किया गया और यह निर्णय कि क्या असहयोग आन्दोलन छेड़ा जाये या नहीं, एक साल के लिए स्थगित कर दिया गया।

भूमिगत क्रांतिकारियों की हलचल। आतंकवादी संगठनों में संकट

समूचे देश में जनवादी आकांक्षाओं के फैल जाने और मजदूर वर्ग के उठ खड़े होने ने भूमिगत क्रांतिकारी संगठनों को अपनी गतिविधियां फिर से शुरू करने को प्रेरित किया। बीसवें दशक के अंत और तीसवें दशक के प्रारम्भ में कम्युनिस्टों और भारत सभा द्वारा गठन हुआ और छात्र संगठनों की स्थापना के बावजूद उग्रवादी युवजनों (मुख्यतः निम्न पूंजीपति वर्ग के) का एक हिस्सा इनमें से किसी की भी विधियों से संतुष्ट नहीं था। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि उस समय तक कम्युनिस्ट आन्दोलन जनता पर कोई बड़ा प्रभाव नहीं डाल पाये थे। अधिकांश भारतीय नौजवान राष्ट्रवाद के लिए लड़ रहे थे और भूमिगत ग्रुपों की आतंकवादी विधियों का अनुसरण कर रहे थे।

प्रवेश किया और बम फेंकने के बाद जानबूझकर अपने को गिरफ्तार करा लिया। ब्रिटिश पुलिस ने एसोसिएशन के मुख्य दफ्तर को नष्ट कर दिया और भूमिगत बम फैक्टरी का पता लगा लिया। भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त तथा कुछ अन्य लोगों पर "लाहौर षडयंत्र" के अभियोग में मुकदमा चलाया गया। भगत सिंह और उनके सहयोद्धाओं ने भारतीय राष्ट्रवादियों के बीच गहन सहानुभूति उत्पन्न की। बंदियों के समर्थन में, जिन्होंने जेल में भूख हड़ताल शुरू कर दी थी, पूरे देश में विरोध सभाएं और प्रदर्शन हुए।

लेकिन भूमिगत क्रांतिकारियों की आतंकवादी कार्रवाइयों ने वस्तुतः औपनिवेशिक शासन के खिलाफ किसी जनव्यापी आंदोलन को जन्म नहीं दिया। आतंकवादियों की असफलता ने संपूर्ण आंदोलन के भीतर भारी संकट पैदा कर दिया। जेल में भगत सिंह और भूमिगत संगठनों के अन्य नेताओं ने अपने बहुत से विचारों को बदल दिया। उनमें से अधिकांश ने मार्क्सवादी लेनिनवादी दृष्टिकोण अपना लिया और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गये। फांसी के पहले भगत सिंह ने जो अंतिम पुस्तक पढ़ी, वह लेनिन की जीवनी थी। भगत सिंह में इतना राजनीतिक साहस था कि उन्होंने यह स्वीकार किया कि व्यक्तिगत आतंकवाद के मूल में भ्रांत सिद्धांत है और जेल से भारतीय क्रांतिकारियों को लिखे अपने पत्र में उन्होंने उनसे अपनी नियति को मजदूर वर्ग के संघर्ष के साथ जोड़ने के लिए कहा।

बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक के प्रारंभ तक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के भीतर एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में आतंकवादी आंदोलन राजनीतिक मंच से तेजी से तिरोहित हो गया।

लेकिन साथ ही साम्राज्यवादविरोधी जन आंदोलन की पृष्ठभूमि में भूमिगत क्रांतिकारियों की वीरतापूर्ण कार्रवाइयों ने पूरे देश में क्रांतिकारी भावनाओं के प्रसार में सहायता की थी।

दूसरा असहयोग आंदोलन। आंदोलन का विद्रोह में परिणत हो जाना

देश में सामाजिक तनाव में वृद्धि ने जनव्यापी राजनीतिक अभियानों के संगठन के लिए अनुकूल परिस्थितियां पैदा कर दी थी। गांधीजी के विचार में अब स्थिति औपनिवेशिक सरकार पर दबाव डालने के लिए परिपक्व हो गयी थी। जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन (दिसम्बर,

१९२९) मे स्वीकृत प्रस्ताव ने नया असहयोग आदोलन शुरू करने का आह्वान किया। पहले की ही भाति गाधीजी को इस आदोलन का नेता बनाया गया।

देश म व्याप्त वातावरण के दृष्टिगत तथा राष्ट्रीय आदोलन के वाम पक्ष के दबाव म अधिवेशन न राष्ट्रीय सघर्ष के अतिम लक्ष्य की नयी परिभाषा पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति, स्वीकार की।

लाहौर अधिवेशन द्वारा स्वीकृत एक प्रस्ताव के अनुसार २६ जनवरी १९३० को पूरे देश म स्वतत्रता दिवस मनाया गया। उसके सगठनकर्ताओ को आशा थी कि काग्रेस द्वारा सगठित प्रदर्शनो म देशभक्त शक्तियो की भागीदारी से इसका पर्याप्त आभास मिल जायेगा कि नये सविनय असहयोग आदोलन के लिए देश कितना तैयार है।

उसी वर्ष मार्च मे गाधीजी ने अपने द्वारा सपादित अखबार 'यग इडिया' म अपने सुप्रसिद्ध ११ सूत्र प्रकाशित किये, जिनम ब्रिटिश अधिकारियो से भारतीय पूजीपति वर्ग के हित म अपनी आर्थिक नीति म परिवर्तन करने तथा उन राजनीतिक बदियो को रिहा करने की मागे आती थी, जिन पर हिसक कार्रवाइयो का अभियोग नही था (इसका मतलब था कि गाधीजी उस समय जेल म बद आतकवादियो की हिमायत करने के लिए तैयार नही थे)।

वाइसराय लार्ड अरविन द्वारा गाधीजी के प्रस्तावो को अस्वीकृत किये जाने के बाद उन्होने अप्रैल १९३० म नये असहयोग आदोलन की घोषणा की। इसका कार्यक्रम लगभग वही था, जो तीसरे दशक के प्रारभ म था। एक नयी माग नमक पर सरकारी इजारेदारी को समाप्त करना था। हालांकि अपने आप म यह कदम कोई मूलगामी परिवर्तन नही लानेवाला था फिर भी इसने भारतीय आबादी के व्यापक हिस्सो के बीच आदोलन तथा इसके सगठनकर्ताओ की लोकप्रियता को बढाया।

उस वर्ष मार्च म गाधीजी अपने ७८ अनुयायियो के साथ अहमदाबाद म अपने मुख्यालय – सत्याग्रह आश्रम – से चल पडे और गुजरात के गावो से होते हुए अरब सागर के तट पर दाडी नामक कसबे तक एक प्रचार यात्रा पर रवाना हुए, जहा उनका इरादा समुद्र के पानी से नमक बनाकर नमक की सरकारी इजारेदारी को तोडना था।

यह यात्रा, जिसका भारतीय प्रेस ने व्यापक प्रचार किया, दो सप्ताह म पूरी हुई और उसने सत्याग्रह के विचारो के प्रसार म बहुत योगदान किया। असहयोग आदोलन अब सपूर्ण भारत म फैलने लग गया था और इसलिए

उपनिवेशवादियो ने उस पर जवाबी आक्रमण शुरू करने का निर्णय किया।

ब्रिटिश अधिकारियो ने असहयोग आदोलन पर प्रतिबध लगा दिया राष्ट्रीय काग्रेस तथा अन्य राष्ट्रीय सगठनो का गैर कानूनी घोषित कर दिया और व्यापक गिरफ्तारिया शुरू कर थी। मई म स्वय गाधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया। १९३० के अत तक लगभग ६० हजार लोगो को जेल की सजा दी जा चुकी थी।

लेकिन ये दमनकारी कदम स्वाधीनता आदोलन को नही रोक सके वसत म वह चरमोत्कर्ष पर पहुच गया और उसने सशस्त्र विद्रोह का रूप ग्रहण कर लिया।

तीन नगरो – पेशावर चटगाव और शोलापुर – म सबसे बडी सशस्त्र कार्रवाइया हुइ। यह तथ्य कि सशस्त्र सघर्ष इन्ही स्थानो म शुरू हुए कोई सायोगिक घटना नही थी। ये नगर ऐसे तीन क्षेत्रो – उत्तर पश्चिमी भारत, बगाल और महाराष्ट्र – म अवस्थित थ जहा बीसवी शताब्दी के पहले तीन दशको म राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन अपने उच्चतम स्तर पर पहुच गया था।

अप्रैल म पेशावर म असहयोग आदोलन के नेताओ की गिरफ्तारी ने नगर म व्यापक असतोष भडका दिया जो शीघ्र ही सडक मोरचा के पीछे से झडपो मे परिणत हो गया। निकटवर्त्ती पठान गावो के किसान उत्तर पश्चिम सीमात प्रात के केंद्र पेशावर के निवासियो की सहायता के लिए आ गये। नगर म सारा कारबार ठप्प हो गया। अग्रेजो को छावनी मे जाकर शरण लेनी पडी।

स्थिति को इस बात ने और भी पेचीदा बना दिया कि गढवाल रेजिमेट के सैनिको ने विद्रोहियो पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। ब्रिटिश कमाडरो ने रेजिमेट को निरस्त्र करके तथा सभी सैनिको को दो हफ्ते के लिए नगर से बाहर हटाकर भारतीय सैनिको को नगर की जनता के पक्ष म जाने से रोका।

विद्रोही पठान कबायलियो (मोमद और अफरीदी कबीलो के लोगो) के सशस्त्र दल पेशावर के लोगो की सहायता करने को आ गये। लेकिन काग्रेस नेताओ के हस्तक्षेप के बाद, जिन्होने उनसे हिंसा से विरत रहने की अपील की, वे वापस चले गये। हालाकि ब्रिटिश फौजो ने ४ मई को पेशावर मे फिर से प्रवेश कर लिया वे महीने के मध्य म जाकर ही नगर पर पुन पूर्ण नियत्रण स्थापित कर पायी।

पेशावर विद्रोह पठान किसानो के जनव्यापी ब्रिटिशविरोधी प्रदर्शनो के प्रारभ का सूचक था। पेशावर मे ही पश्तो जिरगा का उदय हुआ। इस

मगठन न खुदाई खिदमतगार या लाल कुरती आदोलन का सचालन किया। इस आन्दोलन क नता गाधीजी क अनुयायी खान अब्दुल गफ्फार खा थ।

१९ क अत तक सपूर्ण सीमात प्रात जन आदोलन की जकड म आ चुका था। लाल कुर्तीवाला क अहिसात्मक आदोलन क ही साथ-साथ कबायली क्षत्रो म सशस्त्र सघर्ष भी शुरू हो गया। अफरीदी और मोमद कबायली इस क्षत्र म कुशलतापूर्वक छापामार लडाई चलान लग, जिसम आग्ल भारतीय सना को अधिकारी को उलझना पडा। झडप अगले वर्ष भी जारी रही और उधर अहिसात्मक आन्दोलन इतनी तजी से फैला कि एक साल क भीतर लाल कुर्तीवालो की सख्या अस्सी हजार से बढकर तीन लाख हो गयी।

इसी समय पूर्वी सीमा पर चटगाव म भी पशावर क विद्रोह क लगभग साथ ही विद्रोह भडक उठा, लकिन पशावर विद्रोह क विपरीत यह पूर्वनियोजित था।

चटगाव विद्रोह का नतृत्व अम्बिका चक्रवर्ती और सूर्य सन क निदेशन म स्थानीय भूमिगत सगठन रिपब्लिकन सना न किया था।

आयरिश क आतकवादी सगठन क दुखद अनुभव स प्राप्त सबका का ध्यान म रखन हुए चक्रवर्ती और सन न देशभक्त युवजनो की सशस्त्र टुकडिया खडी की। १८ अप्रल को शस्त्रागार फौजी बैरको और रेलव स्टेशन पर धावे क साथ विद्रोह का आरभ हुआ। दस दिन तक नगर विद्रोहियो क हाथो म रहा। लकिन अग्रजो न बदरगाह म मोरचा जमान क बाद कलकत्ता म मदद लिया और कुमक मगवा ली। अपनी कतारो का भग किय बिना विद्रोहियो न नगर को छोड दिया। उन्होन नगर के निकट एक ऊची पहाडी पर मोरचा बना लिया और कुछ समय तक वही से लडते रहे। लकिन शक्तिया समान नही थी और अतत विद्रोह कुचल दिया गया।

तीसरा विद्रोह शोलापुर म हुआ था, जहा ८ मई को सशस्त्र पुलिस का आगमन इसक भडकन के निमित्त बन गया और सडको पर मोरचो की आड म लडाई शुरू हो गयी, जो शीघ्र ही व्यापक विद्रोह म बदल गयी। विद्रोहियो न सरकारी इमारतो को जला दिया और रेलव स्टेशन को घर लिया जहा ब्रिटिश अधिकारी शरण लिये हुए थे। सडको पर कई दिनो तक झडपे चलती रही। शीघ्र ही नगर क्रातिकारी परिषदो के हाथो म आ गया। १६ मई को विद्रोह के नताओ को गिरफ्तार किये जान के बाद ही इसे कुचला जा सका।

पशावर और चटगाव क विपरीत जहा आदोलन म सबसे सक्रिय शक्ति

निम्न पूजीवादी युवजन थे शोलापुर म विद्राह की मुख्य शक्ति मजदूर थ।

अपने स्थानीकृत और अधिकाशतया स्वत स्फूर्त स्वरूप तथा औपनिवेशिक फौजो की सख्यात्मक श्रेष्ठता के परिणामस्वरूप इन सभी विद्रोहो की समाप्ति पराजय मे होने के वावजूद उन्होने जनता की क्रातिकारी आकाक्षाओ को उभारा और इस प्रकार आतरिक राजनीतिक स्थिति पर गहरा प्रभाव डाला।

१९३०–१९३१ के दौरान बम्बई कलकत्ता मद्रास और कराची जैसे अनेक बडे केन्द्रो म व्यापक राजनीतिक हडताले सगठित की गयी।

किसान आदोलन। देशी रियासतो मे विद्रोह

क्रातिकारी आदोलन अब गावो और रियासतो म भी फैलना शुरू हो गया। बारडोली सत्याग्रह एक तरह से काग्रेस के ग्रामीण क्षेत्रो म अगले कार्य का प्रस्थान बिंदु था। काग्रेस ने १९२९ से अनेक क्षेत्रो विशेष रूप से सयुक्त प्रात मे किसान सगठन कायम करना शुरू कर दिया था। उनका मुख्य उद्देश्य किसानो का सविनय अवज्ञा आदोलन म खीचना था। काग्रेस के किसान कार्य के सगठनकर्ता किसान सघर्ष को साम्राज्यवादविरोधी उद्देश्यो के ढाचे के भीतर सीमित करने का प्रयास करते थ और गावो म वर्ग सघर्ष तथा सामतो के विरोध को कम महत्व देते थे।

राष्ट्रीय काग्रेस ने अवध मे सबसे बडी सफलताए प्राप्त की जहा जवाहर लाल नेहरू न लगान और जमीदारो द्वारा खजाने मे जमा की जानेवाली मालगुजारी दोनो को कम कराने के लिए आदोलन सगठित किया था।

किंतु सयुक्त प्रात म काग्रेस सदस्यो की ही तरह कम्युनिस्टो और क्रातिकारी जनवादियो न भी किसानो के बीच काम करना शुरू कर दिया था।

१९३१ और १९३३ के दौरान सयुक्त प्रात पजाब विहार बगाल कर्णाटक और आध्र मे सगठित किसान आदोलन न मुख्यतया किसान सभा के नेतृत्व मे आबादी द्वारा कर देने से इन्कार करने के लिए प्रचार कार्य का रूप लिया। किसान आदोलन सयुक्त प्रात म सबसे प्रबल था जहा सविनय असहयोग आदोलन ग्रामीण क्षेत्रो विशेष रूप से इलाहाबाद जिले म किसान दलो की सशस्त्र कार्रवाई म परिणत हो गया।

१९२९ से १९३३ की अवधि म किसान आदोलन अधिक सगठित हो गया। अधिकाश प्रातो म किसान सभाए कायम की गयी जिनम मुख्यतया कृषक वर्ग के धनी और मध्यम सस्तर शामिल थे। अनेक जिलो म विशेष

रूप से संयुक्त प्रांत और बिहार में, किसान सभाओं पर कम्युनिस्टों और निम्न पूंजीवादी क्रांतिकारी जनवादियों का जबरदस्त प्रभाव था, जो अब किसान-आन्दोलन का नेतृत्व करने में कांग्रेस के प्रतिद्वंद्वी बनते जा रहे थे।

ब्रिटिश भारत में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के विकास ने देशी रियासतों में भी आंतरिक स्थिति को प्रभावित किया। १६३१ से १६३३ की अवधि में कुछ रियासतों में भी मुक्ति संघर्ष छिड़ गया, जो शीघ्र ही सशस्त्र विग्रह में परिणत हो गया।

कश्मीर में घटनाओं ने विशेषकर नाटकीय मोड़ लिया, जहां हालांकि अधिकांश आबादी मुस्लिम थी, वास्तविक सत्ता हिंदू और गैर-कश्मीरी – डोगरा राजपूत राजा और उसके अनुचरों – के हाथों में संकेंद्रित थी। कश्मीर में सामंती उत्पीड़न को धार्मिक, नस्ली और जातिगत उत्पीड़न ने और भी तेज कर दिया था। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का प्रतिनिधि – ब्रिटिश रेजीडेंट – महाराजा की निर्बाध सत्ता और डोगरा सामंतों के निरंकुश शासन को प्रोत्साहित करता था।

किसानों और दस्तकारों के व्यापक तबके तथा कश्मीरी पूंजीवादियों और पूंजीवादी बुद्धिजीवी शासक सामंती गुट के खिलाफ संघर्ष में उतर आये।

कश्मीर में सामंतवादविरोधी आंदोलन १६३१ की गरमियों में किसानों के स्वतःस्फूर्त संघर्ष के साथ शुरू हुआ, जिनके लड़ाकू दलों ने राज्य की राजधानी श्रीनगर को घेर लिया। स्वयं श्रीनगर में दस्तकारों और व्यापारियों ने सरकारविरोधी जलूस निकालना शुरू कर दिये।

व्यापारियों और छोटे उद्योगों के मालिकों के प्रतिनिधि स्थानीय राष्ट्रीय पूंजीवादी वर्ग ने आम जनता के प्रबोधन को प्रोत्साहित करने के लिए रीडर्स क्लब नामक संगठन कायम किया, जिसने उसी वर्ष अगस्त में एक घोषणापत्र प्रकाशित करके जातीय या धार्मिक भेदभाव को समाप्त करने तथा कुछ पूंजीवादी जनवादी सुधारों की मांग की।

अंग्रेज कश्मीर में फौज ले आये और उन्होंने हिन्दुओं तथा मुस्लिमों के बीच दंगे करवा दिये। कश्मीर में इन दोनों धार्मिक समुदायों के बीच विद्वेष ने शेष भारत में भी हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच संबंधों पर बुरा प्रभाव डाला।

लेकिन अंग्रेज़ किसान आंदोलन को पूरी तरह नहीं कुचल पाये। उन्हें स्थिति की जांच करने के लिए एक विशेष आयोग नियुक्त करना पड़ा, जिसने रियासत के प्रशासन को रीडर्स पार्टी की मुख्य मांगें मान लेने की सलाह दी।

लेकिन महाराजा आयोग की सिफारिश लागू करने के लिए तैयार नहीं था इसलिए १६३२ के प्रारंभ में घटनाएं फिर खतरनाक मोड लेने लगी। रीडस पार्टी के आधार पर जम्मू कश्मीर राजनीतिक सम्मेलन नामक संगठन कायम किया गया जो अपने पूर्वगामी की तुलना में अधिक जनवादी था। इसने अपना कार्यक्रम प्रकाशित किया जिसमें केवल पहले रखी माग ही नहीं बल्कि महाराजा के निरंकुश अधिकारों को कम करने लगान घटाने करो के बकाया को समाप्त करने की मागे सहित कुछ और मागे भी शामिल थी।

सम्मेलन ने अपनी गतिविधियो का आरंभ आबादी को लगान देना बद करने के लिए राजी करने का अभियान चलाकर किया। लेकिन १६३२ के अंत में विद्रोह को ब्रिटिश सेना की सहायता से कुचल दिया गया। फिर भी राजा को १६३४ में विधान सभा बुलाने तथा स्थानीय पूंजीवादी वर्ग को रिआयत देने के लिए विवश होना पडा।

१६३२ के मध्य में राजपूताना के अलवर राज्य में विद्रोह फूट पडा। कश्मीर की तरह वहा भी सामंतवादविरोधी संघर्ष ने धार्मिक और साप्रदायिक रूप ले लिया था। रियासत के शासक जमींदार और दक्षिणी भाग के किसान हिन्दू थे, जब कि उत्तर में अधिकाश किसान मुस्लिम थे। मुस्लिम किसानो ने केवल सामंती शोषण ही नहीं बल्कि धार्मिक भेदभाव भी समाप्त करने की माग उठायी। धार्मिक भेदभाव की समाप्ति की माग का मुस्लिम बुद्धिजीवियों और मुस्लिम छोटे सामंतो ने भी समर्थन किया, जिससे आदोलन ने धार्मिक स्वरूप ग्रहण कर लिया।

१६३२ के अंत तक विद्रोही किसानो ने ३० हज़ार आदमियो को हथियारबद कर लिया था। रियासत के उत्तर में कई शहरो गावो और कसबो पर कब्जा करने के बाद वे अलवर नगर के निकट पहुच गये। धीरे धीरे किसान आदोलन ने अधिक सुस्पष्ट वर्गीय स्वरूप ग्रहण कर लिया, क्योंकि विद्रोहियो ने अब मुस्लिम जमींदारो की हवेलियो पर भी आक्रमण करना शुरू कर दिया। इसी परिस्थिति में मुस्लिम लीग ने 'अलवर के मुस्लिमो की रक्षा के लिए रियासत में ब्रिटिश फौज भेजने की माग की। हिन्दू महासभा भी ब्रिटिश हस्तक्षेप के पक्ष में थी, लेकिन बेशक 'रियासत में हिन्दुओ के हितो की रक्षा के लिए । उसकी पहल पर पूरे देश में अलवर दिवस मनाया गया, जिसने दोनो मुख्य धार्मिक समुदायो के बीच विद्वेष भडकाने में सहायता की।

विद्रोहियो क वीरतापूर्ण प्रतिरोध के बावजूद विद्रोह को १६३३ म जन म कुचल दिया गया।

१९३२–१६३३ म उत्तर पश्चिमी सीमा प्रात म पुलरा और दीर नामक छोटी रियासतो म पठान किसानो न भी सामतवादविरोधी सघर्ष चलाया।

देशी रियासता म ये विद्रोह भारत के सभी भागो म स्वाधीनता आन्दोलन के प्रसार क प्रत्यक्ष परिणाम थे।

ब्रिटिश नीति और काग्रेस के रुख मे परिवर्तन

राष्टीय आदोलन के सीधे दमन के अलावा ब्रिटिश उपनिवशवादियो न शासन के विरोधियो के शिविर म फूट डालन क उद्देश्य स राजनातिक जाड तोड करना भी शुरू किया।

जून १६३० म भारत के भावी शासन विधान क बारे म साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित की गयी। रिपोर्ट म भारतीय राष्टीय आदालन की मूलभूत मागा का कोई स्थान नही दिया गया था। उलटे, वाइसराय की सत्ता को यथावत बनाय रखा जाना था। निर्वाचका के निर्वाचक मडलो म विभाजन को एक चरण और आगे ले जाया गया अगला चरण हरिजनो के लिए अलग निर्वाचक मडल कायम करना था। केन्द्रीय विधानमडल म राजाओ के प्रतिनिधियो क प्रभाव के दृढीकरण के भी प्रावधान थ। स्पष्टतया उपनिवेशवादी फिर धार्मिक और जातिगत कारणो स राष्ट्रवादी शक्तियो म और फूट पडन तथा रूढिवादी सामती सामाजिक समूहा के दृढीकरण पर आशाए कद्रित कर रहे थे।

इसक साथ साथ भारत क सपत्तिवान वर्गो को कुछ छोटी माटी रिआयते दी गयी मताधिकार को विस्तृत किया गया और मुस्लिम लीग द्वारा प्रस्तुत मागो के अनुसार सिन्ध को एक अलग प्रात बना दिया गया। साथ ही बर्मा को भारत से अलग करने की याजनाए बनायी जाने लगी, जहा किसान विद्रोह फूट पडा था। उपनिवशवादी बर्मी राष्ट्रीय आदोलन को भारत के आदालन स पृथक करने को व्यग्र थे।

१६२६ म ही ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन की रिपार्ट पर विचार विमश करने के लिए विभिन्न राजनीतिक पार्टिया क प्रतिनिधिया का गालमेज सम्मलन करन का सुझाव रखा था। राष्ट्रीय काग्रेस ने जा कमीशन की रिपार्ट का स्वीकारणीय नही समझती थी, इस प्रस्ताव का ठुकरा दिया।

पहला गोलमेज सम्मेलन लदन म १२ नवम्बर १६३० का आरभ हुआ जिसम भारत का प्रतिनिधित्व विभिन्न राजाओ मुस्लिम लीग हिन्दू महासभा लिबरल फेडरेशन (उदारवादी सघ) और भीमराव अम्बेडकर द्वारा कायम परिगणित जाति सघ न किया था।

अग्रेजो न जिन्होन विभिन्न धार्मिक समुदाया क प्रतिनिधिया क बीच चालाकी म विद्वेष भडकाय थ वस्तुत सम्मेलन म अपनी लगभग सभी बात मनवा ली।

लेकिन साथ ही ब्रिटिश प्रशासन न राष्ट्रीय पूजीवादी वग क प्रति सद्भाव प्रदर्शित करत हुए अपनी प्रत्युत्त नीति म अनक परिवर्तन किय। गाधीजी क *साथ बातचीत शुरू की गयी जो उस समय जल म ही थे,* लेकिन बाद म जनवरी, १६३१ म रिहा कर दिय गय।

५ माच १६३१ का राष्ट्रीय काग्रेस क नतृत्व और वाइसराय क प्रशासन के बीच एक समझौता (गाधी-अरविन समझौता) हुआ जिसक अनुसार अग्रेजो न दमनकारी कार्रवाइया बद करन और राजनीतिक बदिया का मुक्त करन की बात मान ली लकिन सिर्फ उन्ह ही जिन पर हिसक कार्रवाइयो क अभियोग नही लगाय गय थे। काग्रेस न सविनय अवहयाग आदोलन को स्थगित करन की घोषणा कर दी। गाधीजी दूसर गालमज सम्मेलन म भाग लेन क लिए भी सहमत हो गय।

गाधी-अरविन समझौत की कवल काग्रेस क भीतर वामपथी हलको म ही नही, बल्कि उसक बाहर भी तीव्र आलोचना हुई। कुछ प्रातीय काग्रेस सगठना (उदाहरणार्थ बगाल और पजाब) न उन्हे अपना समर्थन दन से इन्कार कर दिया।

लेकिन राष्ट्रीय काग्रेस न अपन अगल कराची अधिवेशन (माच १६३१) म गाधीजी क कदम का अनुमोदन किया। राष्ट्रीय आदोलन और औपनिवेशिक शासन क बीच अस्थायी सुलह हो गयी।

अपन मुख्य राजनीतिक विरोधी के साथ होनेवाली वार्ता की तैयारी म राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग ने कराची म एक आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम तैयार किया, जो नेहरू सविधान की प्रस्थापनाओ से और आग जाता था। इस बात पर बल दिया गया कि सघर्ष का मुख्य उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना है। इससे विभिन्न व्याख्याओ क लिए गुजाइश रह जाती थी और इसका अर्थ पूर्ण स्वतत्रता से औपनिवेशिक स्वशासन तक कुछ भी लगाया जा सकता था। गोलमेज सम्मेलन मे वार्ता के आधार सबधी प्रस्ताव म यह

माग की गयी कि काग्रेस को सुरक्षा और विदेशी सबधो के मामल पर
दिया जाना चाहिए।

इस अधिवेशन मे अनुमोदित 'मूलभूत अधिकार और आर्थिक क
शीर्षक दस्तावेज म भारत म पूजीवादी जनवादी स्वतत्रताओ, जाति
धर्म के मामला म समानता देश म प्रशासकीय विभागा का भाषायी
पर पुनगठन आदि का उल्लेख था। न्यूनतम मजदूरी के निर्धारित
जाने लगान की अधिकतम सीमा नियत किये जाने और करा का कम
की ग्रात उठायी गयी थी।

यह पहला अवसर था कि काग्रेस के कार्यक्रम की आधिकारिक दस
की तैयारी म श्रमजीवी जनता की कुछ महत्वपूर्ण मागो को ध्यान म
गया था। काग्रेस म वामपथी शक्तियो के प्रभाव ने दस्तावेज के अन्य
म भी असर प्रदर्शित किया जिनम देश की मुख्य औद्योगिक शाखाओ
राष्टीयकरण करन की आवश्यकता का उल्लेख किया गया। यह प्रस्ताव
सरक्षणवादी प्रशुल्क लागू किया जाना चाहिए, बहुत स भारतीय उद्यमक
के हिता के अनुरूप था।

लेकिन बहुत सी खामियो के बावजूद कराची मे स्वीकृत कार्यक्रम का
की गतिविधिया को मूलगामी बनान तथा उसके जन आधार का व्या
बनाने की दिशा म एक महत्वपूर्ण कदम का परिचायक था।

काग्रेस अधिवेशन के लगभग साथ ही अखिल भारतीय मजदूर किस
पार्टी का दूसरा सम्मेलन हुआ, जिसम काग्रेस कार्यक्रम के विकल्प के रू
मे सामाजिक आर्थिक परिवर्तनो का एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया था

इस सम्मेलन म स्वीकृत प्रस्तावो म आठ घटे के कार्य दिवस, वेतन
सहित छुट्टियो, मजदूरो के हडताल करने तथा वर्गाधारित मजदूर सघ बना
क अधिकारा को मानने की माग शामिल थी। किसानो की आकाक्षाए बडे
जमीदारियो का उन्मूलन करने, आय कर लागू करन बेगार प्रथा बन्द करन
लगान तथा करो का बोझ घटाने और बकायो की अदायगी का स्थगित करन
और जातिगत भेदभाव समाप्त करन की मागो म व्यक्त हाती थी। मुक्ति
सघष का अतिम लक्ष्य पूर्ण स्वतत्रता की प्राप्ति और दूरगामी सामाजिक
आर्थिक सुधारा का क्रियान्वयन निधारित किया गया था।

नौजवान भारत सभा नामक युवा सगठन का सम्मलन भी इसी समय
हुआ था जिसम स्वीकृत कायक्रम म मजदूरो और किसाना के हिता की
रक्षा करन और अन्य चीजा क अलावा जमीदारिया का उन्मूलन करन के

लिए सघर्ष की आवश्यकता पर जोर दिया गया था। सम्मलन ने कोमिटन को अभिनदन सदेश भेजा था।

दोनो सम्मेलन देश म वामपथी क्रातिकारी शक्तिया के बढत प्रभाव को अभिव्यक्त करते थे। इन दोनो सगठनो ने दिल्ली समझौते तथा राष्टीय काग्रेस द्वारा दूसरे गोलमेज सम्मेलन म भाग लेन की सहमति पर विरोध प्रकट किया।

लेकिन इस समय कम्युनिस्टो का वामपथी सकीर्णतावाद उन्ह जन सगठनो के गठन म प्राप्त सफलताओ को और विकसित करने म बाधक सिद्ध हुआ। १६३१ के बाद मजदूर-किसान पार्टी के काय म तीव्र ह्रास का मुख्य कारण भी बहुत हद तक यही था। लेकिन देश मे वग शक्तियो के और ध्रुवी करण तथा स्वतत्र राजनीतिक आधार पर मजदूर आदोलन के विकास न कम्यु-निस्ट पार्टी क नेताओ को इसके लिए विवश कर दिया कि वे अपने प्रयासो का जनता के बीच पार्टी के आधार को मजबूत बनाने पर सकेद्रित कर।

तीसरा असहयोग आदोलन।
हिन्दू सप्रदाय के भीतर एकता के लिए प्रयास

सितम्बर, १६३१ मे गाधीजी काग्रेस क एकमात्र प्रतिनिधि की हैसियत से दूसर गोलमेज सम्मलन के लिए लदन रवाना हुए। उनके अलावा उस वर्ष भी भाग लेनवाले वही थे, जिन्होने पहल सम्मेलन म भाग लिया था।

इन वार्ताओ मे हिन्दू और मुस्लिम सप्रदायो के बीच धार्मिक विद्वेष भडकाने के लिए अग्रेज अपनी पुरानी कार्यनीति पर ही चलते रह। गाधीजी, जिनका इस समस्या के प्रति रुख प्रगतिशील था इस पर जोर देते थ कि हिन्दुओ और मुस्लिमो क बीच सबधो के नियमन की सबसे महत्वपूर्ण शर्त स्वतत्रता प्रदान करना है।

सम्मलन म साप्रदायिक प्रश्न पर दो सर्वथा भिन्न दृष्टिकोण उभरन लगे। राष्ट्रीय काग्रेस का रवैया यह था कि दोनो सप्रदायो के बीच सबधो से जुडे प्रश्नो का समाधान स्वय भारतीयो द्वारा हल किया जानवाला आतरिक मामला है और इसका समाधान भारत को स्वराज्य (यह स्पष्ट नही किया गया था कि यह औपनिवेशिक स्वराज्य होगा या पूर्ण स्वराज्य) प्रदान करन स ही सभव हो पायगा। ब्रिटेन का रवैया, जिसका मुस्लिम लीग अधिकाधिक समर्थन कर रही थी, यह था कि चूकि भारतीय प्रतिनिधि किसी समझौते

पर नही पहुच पा रहे है इसलिए सरकार के लिए यही सबसे अच्छा होगा कि वह समस्या को वैधानिक साधनो से हल करे।

अग्रजो ने यह सुनिश्चित कर लिया था कि वार्ता असफल रहे और इसके लिए गाधीजी तथा राष्ट्रीय काग्रेस को जिम्मेदार दिखाने की कोशिश की।

लेकिन जब वह दिसम्बर, १९३१ म सम्मेलन का कार्य पूरा होने के बाद स्वदेश लौटे तो राष्ट्रीय काग्रेस अथवा सपूर्ण देश म गाधीजी की प्रतिष्ठा किसी भी तरह घटी हुई नही लगती थी। भारत म क्रातिकारी स्थिति की अधिकाधिक पूर्वापेक्षाए उत्पन्न होती जा रही थी – किसान कितने ही प्रातो म अब भी सक्रिय थे और कश्मीर तथा अलवर म विद्रोह शुरू हो गये थे। खुद अग्रेजो ने भी दिल्ली समझौते का उल्लघन करते हुए काग्रेस से सबद्ध जन सगठनो की सरगरमियो को दबाने के लिए दमनकारी कदम उठाना बद नही किये थे।

इसी परिस्थिति म गाधीजी ने दमन को रोकने के लिए वाइसराय के साथ असफल बातचीत के बाद जनवरी, १९३२ म एक नये लेकिन इस बार व्यक्तिगत सत्याग्रह के रूप मे, असहयोग आदोलन की घोषणा की। लगभग उसी के साथ साथ दिल्ली मे हो रहे काग्रेस अधिवेशन के नेताओ सहित सभी प्रतिनिधियो को गिरफ्तार कर लिया गया और इससे सत्याग्रह की कारगरता बहुत कमजोर हो गयी।

दमन की नयी लहर के दौरान अग्रेज साथ ही एक नये शासन विधान पर उपक्रमात्मक कार्य को भी तेज करने की कोशिश कर रहे थे। वे राष्ट्रीय आदोलन के भीतर विभिन्न प्रवृत्तियो के बीच अतरो को भी बढावा देने की कोशिश कर रहे थे। इसी समय गोलमेज सम्मेलन म स्थापित तथाकथित धार्मिक और अन्य अल्पसख्यको की समस्याओ से सबद्ध तीन उपसमितियो के प्रतिनिधि भारत पहुचे।

विभिन्न सप्रदायो का प्रतिनिधित्व करनेवाले दलो के साथ परामर्शों के बाद १९३२ म भारतीय विधानमडलो के भीतर अलग-अलग सप्रदायो के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करने के लिए साप्रदायिक अधिनिर्णय की घोषणा कर दी गयी।

यह देखकर कि मुस्लिम लीग के साथ कोई समझौता होना असभव है गाधीजी ने अब अपने प्रयासो को हरिजनो और सवर्ण हिन्दुओ को एक दूसरे के खिलाफ करने की ब्रिटिश चाल को विफल करने की तरफ निर्देशित किया। १९३२ के शरद म काग्रेस की मध्यस्थता और गाधीजी के सक्रिय प्रयासो

म परिगणित जाति सघ और हिन्दू महासभा क नताओ क बीच इस आशय का समझौता हो गया कि विधानमडलो म अछूतो क लिए निश्चित सख्या म स्थान सुरक्षित कर दिय जान चाहिए। इसन इस सभावना को खत्म कर दिया कि चुनाव अग्रजो द्वारा सुझाय गय आधार पर किय जा सकत है, जिसम अछूतो को अलग विशष निर्वाचक मडल मिलता।

अक्तूबर म हिन्दू और मुस्लिम सप्रदायो क सगठनो क बीच बातचीत शुरू हुई, जिसका कोई परिणाम नही निकला।

सवर्ण हिन्दुओ और अस्पृश्यो क सगठनो क बीच हुए समझौत क सुदृढीकरण क लिए गाधीजी न दिसम्बर १९३२ और १९३३ क प्रारभ म अछूतो क प्रति बरत जानवाल भदभाव क खिलाफ राष्ट्रव्यापी अभियान सगठित किया। उन्होन अछूतो को हरिजन कहना शुरू किया। गाधीजी न 'हरिजन' नाम स एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया, जो शीघ्र ही बहुत लोकप्रिय हो गयी।

१९३२ क शरद म लदन म तीसरा गोलमज सम्मलन हुआ (पहल सम्मलन की ही भाति काग्रस न इसम भी भाग नही लिया) जिसम प्रस्तावित नय भारतीय सविधान क सुझावो को अतिम रूप दिया गया।

इस समय म, जब ब्रिटिश अधिकारी जन-आदोलन को हर सभव तरीक स कुचल रह थ, दशी रियासतो म विद्रोह पस्त हो रह थ और सत्याग्रह आदोलन धीर धीर घटता जा रहा था, गाधीजी न मई १९३३ म सविनय अवज्ञा आदोलन स्थगित कर दिया।

इस तरह भारतीय राष्ट्रीय क्राति को दूसरी बार पीछ हटना पडा।

राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन मे वामपथी शक्तियो का अधिक मजबूत होना। नेतृत्व के लिए सघर्ष का तीव्रीकरण

चौथे दशक के मध्य मे भारत की आर्थिक स्थिति

१९२९–१९३३ क आर्थिक सकट क बाद आर्थिक मदी (तथाकथित विश्वव्यापी मदी) का लबा दौर आया, जिसक उपरात १९३७ म एक नया विश्व आर्थिक सकट शुरू हो गया। इस घटनाक्रम को द्वितीय विश्व युद्ध की शुरूआत न भग कर दिया।

उस समय शहरो और देहातो म मेहनतकशो की स्थिति अत्यधिक दरिद्र थी। सकट के वर्षो के दौरान किसानो और दस्तकारा क व्यापक निर्धनीकरण ने आरक्षित श्रम शक्ति मे काफी वृद्धि कर दी थी, जो मुख्यतया ग्रामीण जनसख्या आधिक्य के प्रच्छन्न रूपो मे लक्षित होती थी। बेरोजगारो का सख्या लाखो मे पहुच गयी थी।

कृषि-क्षेत्रो म बढते जनाधिक्य न भूमिहीन किसानो म लगान पर दिये जानेवाले खेतो के लिए प्रतियोगिता को बढा दिया, जिससे ज़मीदारा, उप पट्टेदारो और धनी किसाना द्वारा अत्यधिक लगान की माग करना सभव हो गया।

आर्थिक सकट के वर्षो तथा सकट के बाद की अवधि म अधिकाश किसानो के बेहद गरीबी मे पड जान के कारण किसानो की पातो के भीतर स्तरीकरण और वर्ग विभेदीकरण न पहले से अधिक मज़बूत जड पकड ली। एक ओर उन निर्धन किसानो, छोटे उत्पादको की सख्या बढती जा रही थी, जिनके पास अब या तो बहुत ही कम या बिलकुल ज़मीन नही रह गयी थी दूसरी ओर रैयतवारी क्षेत्रो मे खुदकाश्त किसाना मे तथा ज़मीदारी क्षेत्रा म सपन्न असामी काश्तकारो मे भी धनी किसानो का प्रभाव बढ रहा था।

माल मुद्रा सबधो तथा आतरिक बाजार क विस्तार न कृषि उत्पादन के क्षेत्र म नये पूजीवादी सबधो के दृढीकरण को तेज़ कर दिया। साथ ही उपनिवेशवादियो द्वारा समर्थित कृषि मे सामती प्रथाओ (बडी भूसपत्तियो और व्यापारी तथा सूदखोर पूजी का प्रचलन) के प्रभुत्व के कारण कृषि गतिहीनता और ह्रास की स्थिति आ गयी थी जैसा कि उदाहरणार्थ देश म लगातार बिगडते खाद्य सतुलन और भारत के निर्यात के घटन स प्रकट होता था। भारतीय ग्रामीण जीवन म पूजीवादी तत्वा क दृढीकरण से देश के सामाजिक विकास म अतर्निहित विरोध और भी उग्र तथा जटिल होते जा रहे थे।

गावो मे मुख्य वर्गो और वर्ग सस्तरो के बीच अतर्विरोध गहराते जा रह थे और सामाजिक तनाव निश्चित रूप स बढता जा रहा था।

सकट ने, जिसन नगरो म लघु जिस उत्पादका, विनिर्माणशालाओ और छोट कारखानो को तबाह किया था, साथ ही पूजी के सकेद्रण की प्रक्रिया को भी प्रोत्साहित किया। चौथे दशक म पहली भारतीय इजारेदारियां स्थापित हान लग गयी थी, जैस एसासिएटड सीमट—ए० सी० सी०—

(१६३६), डालमिया उद्योग समूह (१६३७) और शुगर सिडीकेट (१६३७) (१०८ चीनी मिलो का)।

भारतीय उद्योग, विशेषकर बडा उद्योग अब धीरे धीरे आतरिक बाजार मे अधिकाधिक बडी भूमिका ग्रहण करता जा रहा था वस्त्र उत्पादन म १६२७ मे इसका अश ४१ प्रतिशत और १६३७ मे ६२ प्रतिशत था और धातु उत्पादन (टाटा कपनी) मे भारतीय प्रतिष्ठानो का अश १६२७ और १६३४ के बीच ३० प्रतिशत से बढकर ७२ प्रतिशत हो गया था।

भारतीय औद्योगिक और व्यापारी पूजी का विस्तार आरभ होने के बाद पूजी के सकद्रण ने ऋण क्षेत्र को भी प्रभावित करना शुरू किया। १६१८ और १६३७ क बीच भारत मे कार्यशील बैको की शाखाआ की सख्या म चार गुनी वृद्धि हुई, जब कि १६१८ और १६४० के बीच अनुसूचित बैको की प्रदत्त-पूजी मे एक-तिहाई और उसी अवधि म जमाओ मे ६० प्रतिशत की वृद्धि हुई।

साथ ही व्यापार और साहूकारी से बैकिग और उद्योग क क्षेत्रा म पूजी का अतरण निरतर तेज़ होता जा रहा था।

टाटा, डालमिया वालचद बिडला सिघानिया जैसे भारतीय करोड पतियो के परिवारो ने जो शक्तिशाली भारतीय पूजीवादी वर्ग मे सामान्य स्थिति से उठकर प्रमुखता को पहुच गये थ भारतीय उद्यमकर्ताओ मे प्रभावी स्थिति बना ली थी।

पूजीवादी विकास का स्तर निम्न होन के कारण विशेपकर जब स्वामित्व क पूर्व-पूजीवादी और प्रारभिक पूजीवादी रूप प्रभावी थ भारतीय इजारेदारिया एक तरह से व्यापारी और सूदखोर पूजी क ऊपर निर्मित सरचना ही थी। यही कारण था कि व्यापार और साहूकारी स प्राप्त आय अब भी बड पूजीवादी वर्ग की आय का खासा बडा भाग थी।

भारतीय पूजीवादी वर्ग के ऊपरी सोपानो और कवल सामती वर्ग ही नहीं, वल्कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के सपूण सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक ढाचे क बीच भी कुछ मपर्कों के बावजूद बड भारतीय उद्यम म द्रष्टव्य इजारेदारी प्रवृत्तिया निस्सदिग्ध रूप म राष्ट्रीय पूजीवाद क विकास और साम्राज्यवादविरोधी प्रवृत्तियो क तीव्रीकरण को ही अभिव्यक्त करती थीं।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारतीय पूजीवादी वर्ग क कार्यकलाप पर नियत्रण कायम करने की कोशिश की। इस उद्देश्य से १६३५ म भारतीय रिज़र्व बैक कायम किया गया, जिसन केन्द्रीय सरकारी बैक—इपीरियल

बेक आफ इंडिया - र रामो रा सभाल लिया, जिस मुद्रा जारी करन रा अधिकार था। यह बैर राजरीय वित्त रा नियन्त्रित करता था, लेकिन साथ ही भारतीय बैकिंग पूजी और बड माहूकारी प्रतिष्ठानो पर भी नियत्रण रखता था। १९३६ म भारतीय अथव्यवस्था पर ब्रिटिश इजारदारियो क नियत्रण की स्थापना रा सुविधाजनक बनाने र लिए मैनेजिंग एजसी एक्ट (प्रबध अभिकरण अधिनियम) बनाया गया। इन रदमो न भारतीय और ब्रिटिश पूजीवादी वग र बीच विरोधो रा और भी उग्र बनाया।

चौथ दशर र दौरान भारत र आर्थिक और सामाजिक विकास (हालांकि समाज र अलग-अलग वर्गो र न्यूनाधिक भिन्न भिन्न आधारो पर और न्यूना धिक मात्राओ म) न राष्ट्रीय और वर्गीय विरोधो का और गहनीकरण किया।

फिर भी युद्ध-पूव काल म भारत म जिस राजनीतिक घटनाक्रम ने १९३६-१९३९ म राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन म एक नया उभार पैदा किया उसक मूल म क्वल आर्थिक कारक ही नही थ।

बढी हुई क्रातिकारी सरगरमी के बर्षो (१९२९-१९३३) क दौरान देश र राजनीतिक जीवन म अनक परिवतन आय थ जिनम स दो निर्णायक महत्व के थे। एक तो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मजदूर किसान पार्टियो तथा रेड ट्रेड-यूनियन सटर क प्रयासो क परिणामस्वरूप मजदूर वर्ग एक स्वतत्र राजनीतिक शक्ति बन गया। दूसर, अब किसानो क वर्ग सगठनो क गठन तथा किसानो द्वारा भारतीय राजनीतिक जीवन म स्वतन्त्र कारक बन जान की पूर्व-परिस्थितिया पैदा हो चुकी थी।

१९३४-१९३९ मे मजदूर-सघर्ष। ट्रेड यूनियन आदोलन मे एकता की पुनर्स्थापना

१९३४ से १९३९ के बीच मजदूर वर्ग के आर्थिक और राजनीतिक सघर्ष के विकास की मुख्य विशेषता सगठित मजदूर-आदोलन मे कम्युनिस्टो के प्रभाव का बढना था, जिन्होने ट्रेड-यूनियन आदोलन की एकता का पुनर्स्था पित करने क प्रयास शुरू किये।

इस प्रक्रिया के दो चरण थे। पहले म विभिन्न हडतालो क दौरान नीचे स एकता प्र गया (१९३४-१९३५) और राष्ट्रवादी सु फूटपरस्तो के प्रतिरोध पर पार पाने के प्र

मजदूर-आदोलन म एक महत्वपूण मजिल १९३८ म कपडा मजदूरा की तीन महीन की हडताल थी जब किसी हडताल म पहली बार उद्योग की एक सपूर्ण शाखा न भाग लिया। इस हडताल क दौरान तीन अलग टड यूनियन केन्द्रा की विभिन्न यूनियना की कार्रवाई की एकता हासिल की गयी।

इस हडताल म कम्युनिस्टा और उनक टड-यूनियन सगठन की निणायक भूमिका न प्रतिक्रियावादी शक्तिया को इतना डरा दिया कि औपनिवेशिक अधिकारिया न १९३८ म कम्युनिस्ट पार्टी और उसक प्रभाव म आनवाली अनक यूनियना पर प्रतिबध लगा दिया। इस कदम न वामपथी शक्तिया के हरावल के कार्य को बहुत पचीदा बना दिया।

१९३८ म अलग-अलग ट्रेड-यूनियन सगठना न मिलकर गोदी मजदूरा और रलव मजदूरो की विराट हडताल सगठित की।

रड ट्रेड-यूनियन सटर के नताओ क सुझाव पर अप्रैल १९३५ म यह सगठन निम्नलिखित मूलभूत सिद्धाता के आधार पर अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रस म पुन शामिल हो गया वर्ग सघर्ष क सिद्धात की मान्यता हरेक उद्योग म एक ही ट्रेड यूनियन का गठन अतर्राष्टीय सघो स सबद्ध होने से इन्कार, प्रचार काय का अधिकार बशर्ते कि एक दूसर पर काई आक्रमण न किये जाय, अल्पमत द्वारा बहुमत क निणय की अनिवार्य स्वीकृति (यह अतिम सिद्धात कम्युनिस्टा की ओर स एक बडी रिआयत थी क्योकि विलयन क पहले रड ट्रेड-यूनियन सटर की सदस्य सख्या दस हजार थी जब कि अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रस की ८० हजार थी)।

कुछ दक्षिणपथी ट्रेड-यूनियन नेताओ की ताड-फोड के बावजूद उद्योगा और पेशाओ के ढाचे के भीतर विभिन्न ट्रेड-यूनियनो का एक करन का कार्य १९३६ म सफलीभूत हुआ। इस नयी एकता से उत्पन्न पहला परिणाम पूर्ण या आशिक सफलता प्राप्त करनवाली हडताला की सख्या म वृद्धि थी (१९३६ म कुल हडतालो का ४७ प्रतिशत)। अब जो हडताले सगठित की गयी व अधिक लबे समय तक चली और अधिक दृढ थी।

ट्रेड यूनियन आदोलन को सयुक्त करन के सघर्ष के दूसरे चरण (१९३६-१९३९) के दौरान मजदूर वर्ग न चौथे दशक के प्रारभ के अपने रक्षात्मक रुख को धीरे धीरे त्यागा और उच्चतर मजदूरी तथा उद्यमकताओ और अधिकारियो द्वारा यूनियनो को मान्यता प्रदान करन की माग करने लगा। हडतालो और उनम भाग लेनेवाला की सख्या निरतर बढती गयी, जैसा कि अगले पृष्ठ पर दी गयी वार्षिक औसत दर्शानेवाली तालिका स प्रकट होता है

वर्ष	हडतालो की सख्या	हडतालिया की सख्या
१९३४-३५	१५०	२,००,०००
१९३६-३९	४००	५,००,०००

इन दाना ट्रेड-यूनियन सगठनो के एकीकरण और सयुक्त अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस क नतृत्व द्वारा कम्युनिस्टा क सुभाय कुछ मूलभत सिद्धातो की स्वीकृति से मजदूर वर्ग की राजनीतिक हलचलो म अधिक सक्रियता आयी जैस उदाहरणार्थ १९३५ और १९३६ म मई दिवस समाराहा से प्रकट हाता है। १९३६ म एक मजदूर सप्ताह मनाया गया था, जिसक दौरान साम्राज्यवादविरोधी नार लगाय गये। उसी वर्ष अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस के १५ व अधिवशन न साम्राज्यवादविरोधी आदालन मे मजदूर वर्ग की व्यापक सहभागिता की सभावना और मुक्ति-सघर्ष म प्रयुक्त विधियो पर विचार किया तथा राजनीतिक हडतालो का इस सघर्ष का मुख्य साधन घोषित किया।

इन दोनो ट्रेड यूनियन सगठनो के सयुक्त हो जान ने मज़दूर वर्ग की सगठनबद्धता के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला १९३६ से १९३९ का अवधि म ट्रेड यूनियनों की सख्या दुगुनी हो गयी। श्रमजीवी जनता पर अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस के प्रभाव मे काफी वृद्धि हुई, जिसन इडियन टेड यूनियन फेडरेशन के दक्षिणपथी-सुधारवादी नेताओ की स्थिति को कमज़ोर बनाया।

१९३७ की आम हडतालो न मजदूर वर्ग के आर्थिक सघर्ष के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की इनम कानपुर के क्पडा मजदूरा, बगाल नागपुर रेलवे के रेलकर्मियो और बगाल की जूट मिलो के मज़दूरो की हडताल शामिल थी, जिन्होन सर्वहारा के पिछडे हुए सस्तरो को सघर्ष के लिए प्रेरित किया।

मजदूर वर्ग की पातो म अपन प्रभाव को बनाये रखने के लिए इडियन ट्रेड-यूनियन फेडरेशन क नेता अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस म विलयन के लिए सहमत हो गये जो अतत अप्रैल, १९३८ मे नागपुर म एक सयुक्त

अधिवेशन म सपन्न हुआ। इस एकीकरण म फेडरशन को दी गयी काफी विचारधारात्मक रिआयत सन्निहित थी जो मजदूरो और उद्यमकर्ताओ के बीच वर्ग सहयोग की समर्थक थी। इस सयुक्त अखिल भारतीय टड यूनियन काग्रस म काग्रेसियो को मुख्य पद दिये गये। १६३८–१६३६ म भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस की राजनीतिक हलचल म कुछ कमी के बावजूद मजदूर सगठनो के एकीकरण ने मजदूर वर्ग के आथिक सघप पर सकारात्मक प्रभाव डाला अब हडताल-आदोलन दशी रियासतो सहित भारत के सबसे पिछड भागो म भी फैल गया था।

१६३६ म मुख्य श्रमिक समूहो – रेलवे मजदूरो नाविको गोदी मजदूरो और कपडा मज़दूरो – की यूनियनो का एकीकरण भी अधिकाशतया सपन्न हो गया। कुछ नव-विलयित यूनियनो (मिसाल क लिए रलवे मजदूरा और कपडा मजदूरो की यूनियनो) ने १६३८–१६३६ म उद्योग की अपनी अपनी शाखाओ के सभी मजदूरो के सयुक्त सम्मेलन आयोजित किये जिनका अलग अलग प्रतिष्ठाना म ट्रेड-यूनियनो पर सकारात्मक प्रभाव पडा।

मजदूर वर्ग ने, जिसने साम्राज्यवादियो और पूजीवादी वर्ग के खिलाफ अनवरत लडाइयो के बीच अपनी पार्टी और अपनी वर्गाधारित ट्रेड यूनियन कायम की थी, अब राष्ट्रीय आदोलन के नेतृत्व क लिए राष्टीय पूजीवादी वर्ग क खिलाफ सघर्ष शुरू किया। चौथे दशक के उत्तरार्ध म साम्राज्यवाद-विराधी शिविर के भीतर घटनाक्रम न जो मोड लिया था उसे बहुत सीमा तक इसी कारक ने निर्धारित किया था।

सघर्ष दो मुख्य क्षेत्रो – किसान-आदोलन के नतृत्व के लिए सघर्ष और सयुक्त साम्राज्यवादविरोधी मोर्चा कायम करन का सघर्ष – म केन्द्रित था।

किसान आदोलन। अखिल भारतीय किसान सगठन का गठन

१६३४–१६३५ क दौरान स्थापित किसान सभाओ न किसाना की कम लगान, कम मालगुजारी, आदि जैसी मुख्य मागो के लिए अपना सघप जारी रखा। इस आदोलन के मुख्य स्वरूप गाव तहसील और जिला स्तर पर सभाए, जुलूस और सम्मेलन थे। किसान सभाए बिहार तथा पजाब प्राता और मद्रास प्रसिडेसी के उत्तरी भाग (आध्र क्षत्र) म विशप रूप

म सक्रिय थी जहा किसान-सगठन केवल जिला स्तर पर ही नहा, वल्कि प्रातीय स्तर पर भी सक्रिय थे।

अधिकाश किसान सभाओ पर कम्युनिस्टो और जनवादी किमानो का प्रभाव था। सगठित किसान आदोलन पर नियत्रण प्राप्त करन के राष्ट्रीय काग्रेस के प्रयास असफल रहे। इसी परिस्थिति म एन० जी० रगा, वी० वी० गिरि और अन्य राष्ट्रवादी सुधारवादियो के एक समूह न काग्रेस के तत्वावधान मे एक अखिल भारतीय किसान-सगठन कायम करन के लिए तैयारी शुरू की। १९३५ म आयोजित तैयारी सम्मेलन म रगा गुट को नवाधिक राजनीतिक समर्थन प्राप्त था। लेकिन प्रातीय किसान सभाओ का नतृत्व जिसन एकीकरण के लिए सहमति दी थी वामपथी शक्तियो का प्रतिनिधित्व करता था। यह नये सगठन के पहले अधिवशन म ही स्पष्ट हो गया।

अप्रैल १९३६ म लखनऊ म काग्रेस के नियमित अधिवेशन के साथ साथ आयोजित अखिल भारतीय किसान सभा की सस्थापन सभा (जो दोनो सगठनो के उद्देश्यो की निकटता को व्यक्त करने के लिए आयेजित की गयी थी) म राष्टवादी सुधारवादी अखिल भारतीय किसान सभा के नतृत्वकारी निकाय कन्द्रीय किसान परिपद म बहुमत नही प्राप्त कर सके।

उम वर्ष अगस्त मे परिपद की बैठक मे किसानो के अधिकारो का घापणा पत्र स्वीकृत किया गया जो अखिल भारतीय किसान सभा की एक बुनियादी दस्तावेज बन गया। इसम जमीदारियो के उन्मूलन, रैयतवारी क्षेत्रो म नई राजस्व प्रणाली के सुधार, कम लगान आदि को शामिल किया गया था। इमका मतलब यह था कि घापणापत्र भारतीय किसानो के प्रयासो को राष्ट्रवादी शक्तियो के यथासभव व्यापक मार्चे के आधार पर साम्राज्यवादियो और सामतो के खिलाफ सघर्ष पर सकेंद्रित करता था, जिसम ग्रामीण पूजीवादी वग और रैयतवारी क्षेत्रो म भूस्वामी समूह तक भी शामिल होते।

घापणापत्र का महत्व इसम निहित था कि वह सामतो के खिलाफ किसानो के सघर्ष और राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन का एकाकार करता था। स्थानीय किसान सभा सगठनो द्वारा घापणापत्र के सिद्धातो के प्रचार न किसानो को अपन वग हितो का बोध प्राप्त करन और राष्ट्रीय तथा जनवादी प्रश्नो के प्रति अधिकाधिक सचेत होन म सहायता की।

दिसम्बर, १९३६ म आयोजित अगल अधिवशन म अखिल भारतीय किसान सभा के भीतर वामपथी शक्तियो की स्थिति और मजबूत हुई जो पहले अधिवशन की ही भाति राष्ट्रीय काग्रेस के अधिवशन के साथ-साथ

एक ही जगह (इस बार महाराष्ट्र म फैजपुर नामक कमवे म) हुआ था। अधिवशन न किसानो क अधिकारो के घोषणापत्र का अनुमोदन किया और रगा गुट के साथ भीपण सघर्ष क बाद काग्रेस के तिग्गे झडे को नही बल्कि कम्युनिस्ट पार्टी के झड – हथौडा और हसिया से युक्त लाल झड – को अपन चिन्ह क रूप मे अपनाया। किसान सभा के बिहार के एक नता और त्रातिकारी जनवादी स्वामी सहजोनद सरस्वती को महासचिव चुना गया।

अखिल भारतीय किसान सभा का गठन भारतीय किसान आदोलन के इतिहास मे एक महत्वपूण घटना थी। इसक साथ भारतीय समाज के भीतर सबसे बडे वर्ग ने राष्टीय मुक्ति आदोलन म स्वतत्र भूमिका अदा करना आरभ कर दिया।

मजदूर और किसान जन-सगठना म नतृत्व प्राप्त करन के सघप न विभिन्न रुप ग्रहण किये, जा अधिकाशतया आतरिक राजनीतिक स्थिति म परिवर्तन और स्वय राष्ट्रीय काग्रेस के आतरिक विकास पर भी निभर करत थे।

सयुक्त राष्ट्रीय मोरचे की दिशा मे प्रगति। काग्रेस के भीतर सघर्ष का तीव्रीकरण

काग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना

१९३४ के केन्द्रीय विधान सभा के चुनावो के कुछ समय पहले राष्ट्रीय काग्रेस के दक्षिणपथ ने चुनावो मे भाग लने के लिए स्वराज्य पार्टी को एक काग्रस निकाय के रूप मे फिर स खडा कर दिया। लेकिन इस समय तक काग्रस के भीतर रूढिवादी शक्तियो का प्रभाव काफी कम हो चुका था। हाल ही म वामपक्षी शक्तिया के दृढीकरण और श्रमजीवी जनता के जन-सगठना के नतृत्वकारी निकायो म कम्युनिस्टो और त्रातिकारी जनवादिया द्वारा प्राप्त की गयी मजबूत स्थिति न काग्रेस नतृत्व को पार्टी क जन-आधार को व्यापक बनान म सहायता देनवाले कई सरचनात्मक परिवतन करन क लिए विवश कर दिया।

काग्रेस राष्ट्रव्यापी सगठनो म सबस प्रभावशाली बनी रही थी और १९१८–१९२० म किय गये व्यापक पुनगठनो क बाद के वर्षो म वह धीर-

धीरे पूजीवादी-जमीदार पार्टी स पूजीवादी और निम्न पूजीवादी राष्ट्रवादिया की विभिन्न प्रवृत्तियो और समूहो के एक विराट सगठन म परिवर्तित हा गयी थी जिसम नाना सामाजिक वर्गो का काफी व्यापक प्रतिनिधित्व था, हालाकि अब भी उसम राष्टीय पूजीवादी वर्ग ही मुख्य भूमिका अदा करता था। काग्रेस के भीतर व्याप्त विभिन्न प्रवृत्तियो से अतत दो मुख्य प्रवृत्तिया का उदय हुआ – गाधीजी का समर्थक दक्षिणपथी-सुधारवादी पक्ष जिसका सगठन पर प्रभुत्व था और वाम पक्ष। वामपक्ष का प्रतिनिधित्व सुभाषचन्द्र बास और जवाहरलाल नहरू का समर्थन करनवाल युवा सदस्य ही नहा, बल्कि वे समूह भी करते थे, जो अपन को भारत म समाजवादी समाज के निर्माण का पक्षधर कहते थे। इन समूहा क बीच वैज्ञानिक समाजवाद तथा कम्युनिस्टो के साथ सहयोग का भुकाव बल पकडता जा रहा था।

जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्रदेव और अशोक महता के नेतृत्व मे समाजवादिया का समूह इस प्रवृत्ति का विरोधी था, जिन्हान १६३४ म काग्रेस समाजवादी पार्टी कायम की, जो काग्रेस के ढाच क भीतर काम करती थी। इसी वर्ष अक्तूबर म बम्बई मे पार्टी का उद्घाटन सम्मेलन हुआ। अपनी विचारधारा और राजनीति म इस पार्टी का यूरोप के सामाजिक जनवादियो से काफी साम्य था।

काग्रेस के भीतर अन्य वामपथी समूहो की तरह काग्रेस समाजवादी भी श्रमजीवी जनता के जन सघर्ष का सगठन करने तथा मजदूरा और किसाना के बीच काग्रेस के दृढ सामाजिक आधार का निर्माण करने को अपना सबसे महत्वपूर्ण कार्य मानते थे।

जनता के बीच कार्य की विधियो के प्रति वामपथी समूहो म शीघ्र ही दो मुख्य दष्टिकोणो ने रूप ले लिया। सुधारवादी पक्ष के अनुसार राजनीतिक आदोलन के सगठन पर काग्रेस के एकाधिकार के बने रहन के साथ साथ आर्थिक सघर्ष को बढावा देना ही काफी था। इसक विपरीत क्रातिकारी पक्ष व्यापक आर्थिक और राजनीतिक सघर्षो को सयुक्त करने क पक्ष म था। लेकिन काग्रेस के वाम पक्ष के दोनो ही हिस्सा का मत था कि जन आदोलन पर काग्रेस नतृत्व अविभाजित बना रहना चाहिए। इस सदर्भ म यह उल्लेखनीय है कि काग्रेस समाजवादी पार्टी के सविधान के अनुसार उसम केवल काग्रस सदस्य ही शामिल हो सकते थे।

काग्रेस क भीतर वामपथी शक्तिया के तजी स बढते प्रभाव न गाधीजी को यह सुनिश्चित करन के लिए काग्रेस के नेतृत्वकारी निकाया की सरचना

म कुछ परिवर्तनो का आधार तैयार करने को विवश कर दिया कि सगठन पर उनका और उनके समर्थको का नियत्रण बना रहे। अक्तूबर १९३४ म काग्रस के वम्बई अधिवशन म नियमावली म एक सशोधन किया गया काग्रस की कार्यसमिति अब अखिल भारतीय काग्रस समिति (अधिवेशनो क बीच काग्रस का सर्वोच्च निकाय) द्वारा निर्वाचित नही बल्कि हर वर्ष निर्वाचित काग्रस अध्यक्ष द्वारा मनोनीत होनी थी। वम्बई अधिवशन न असहयोग आदोलन स्थगित करने क गाधीजी क निर्णय की पुष्टि की और यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि काग्रस को केन्द्रीय विधान सभा क चुनावो म भाग लेना चाहिए।

इसी समय गाधीजी काग्रस से औपचारिक रूप म अलग हो गये। यह उन्हें जनता के बीच अपनी लोकप्रियता तथा पार्टी राजनीति स परे एक राष्ट्रीय नेता के रूप म अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने म सहायता हुआ, क्योकि अब काग्रेस के भीतर चलनेवाली तिकडमो तथा नीतिगत कारणो से पीछे हटने की अवधि म उपनिवशवादियो के साथ आशिक मेल मिलाप के लिए वह किसी भी तरह जिम्मेदार नही ठहराये जा सकते थे। अब वह फिर अपने रचनात्मक कार्यक्रम (हिन्दू-मुस्लिम एकता अस्पृश्यता निवारण खादी तथा लघु उद्योग का प्रोत्साहन) म निरत हो गये। इसने शहरी और ग्रामीण शिल्पकारो दस्तकारो छोटे पैमाने क उत्पादको और व्यापारियो तथा शहरी निर्धनो, अर्थात उन लोगो के बीच उनके प्रभाव को मजबूत बनाने म सहायता की, जो असहयोग आदोलन की मुख्य शक्ति थे।

१९३५ का शासन विधान
और विधानमडलो के नये चुनाव

काग्रेस ने भारत के सपन्न वर्गो के बीच अपना प्रभुत्वपूर्ण स्थान बनाये रखा और यही कारण था कि नवम्बर १९३४ के चुनावो म, जिनम ६ ५ लाख लोगो न भाग लिया था, उस केन्द्रीय विधान सभा मे आधे स अधिक मत और स्थान प्राप्त हुए।

नये केन्द्रीय विधानमडल मे एक भी पार्टी ने नये गवर्नमेट आफ इडिया बिल (भारत शासन विधेयक) का समर्थन नही किया जिसे साइमन कमीशन और गोलमेज सम्मेलन की सिफारिशो के आधार पर तैयार किया गया था। फिर भी अगस्त, १९३५ म ब्रिटिश ससद ने इस नये ऐक्ट या शासन विधान' का अनुमोदन कर दिया।

नये शासन विधान मे भारतीय पूजीपतिया और जमीदारा का रिआय शामिल थी। निर्वाचको की सख्या को विस्तारित किया गया, जिसने १० प्रतिशत वयस्क आबादी को मताधिकार मिल गया था। यह सापत्तिक तथा अन्य प्रतिबधो क घटाये जान को प्रतिबिम्बित करता था और इसका मतलब यह था कि अब सपत्तिवान वर्गो की निम्नतर श्रेणियो और श्रमजीवी जनता क कुछ समूहा (धनी किसानो और मजदूर निर्वाचक मडल के प्रतिनिधियो को चुननवाले मजदूरो क कुछ प्रवर्गो) को मताधिकार दे दिया गया था। विधान सभाओ के विशेषाधिकारो को भी कुछ बढा दिया गया था प्रातीय सरकार (गवनरा के अधीन काम करनेवाली पुनर्सगठित कायकारिणी परिषद) अब उनके प्रति उत्तरदायी हा गयी थी। लेकिन द्वैध शासन का सिद्धात बना रहा और वस्तुत सपूर्ण सत्ता औपनिवेशिक प्रशासन के हाथा म ही थी।

नय शासन विधान के जरिये चुनावो मे निर्वाचक मडल प्रणाली का व्यापक इस्तेमाल और इस तरह राष्ट्रीय आदोलन म फूट डालना तथा रुढि वादी शक्तियो की स्थिति मजबूत बनाना भी सभव हो गया। हिन्दू मुस्लिम सबधा का और भी पचीदा बनान और काग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बाव समझौता होने की सभावना को रोकने के लिए मुस्लिमो और अन्य अल्प सख्यको" को कुछ विशेषाधिकार प्रदान किये गये। सख्या की दृष्टि स हरिजनो सहित हिन्दुओ को ७० प्रतिशत मत प्राप्त थे, लेकिन उन्ह कवल ५५ प्रतिशत सीट दी गयी थी। राजाओ का प्रभाव भी बढ गया था और उनके प्रतिनिधियो को केद्रीय विधान सभा के सदस्यो म १/३ तथा राज्य परिषद क सदस्यो म २/५ स्थान प्राप्त थे।

एक्ट म दश की स्थिति के बार म कुछ भी नही कहा गया था हालांकि भविष्य म इसके सभावित विभाजन की व्यवस्था थी। यह तथाकथित सघीय याजना क जरिये किया जाना था जिसक अनुसार राजाओ का यह तय करन की छूट दी जानी थी कि व ब्रिटिश साम्राज्य म रहना चाहग अथवा इसक साथ स्वतत्र सबध बनाना चाहग। सघीय योजना ' न दश म आक्रोश का एसा तूफान पैदा कर दिया, कि उस कभी अमल म नही लाया गया।

इस नय शासन विधान क प्रकाशन न सपूर्ण दश म व्यापक विरोध उत्पन्न कर दिया। उस गुलामी क शासन विधान की सज्ञा दी गयी।

केन्द्रीय और प्रातीय विधानमडलो क चुनाव १९३७ म होनवाले थे। चुनावो क लिए उस समय व्यापक पैमान पर तैयारिया हो रही थीं ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति क खिलाफ आलोचना का ज्वार बढता जा रहा था।

इन तैयारियो के दौरान कम्युनिस्टो और उनके साथ अभी भी सहबद्ध क्रातिकारी जनवादियो ने एक सयुक्त साम्राज्यवादविरोधी मोर्चे के लिए सघर्ष शुरू किया। कामिटर्न की सातवी काग्रेस के निर्णयो ने भारतीय कम्युनिस्टो की नीति पर निर्णायक प्रभाव डाला था। ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओ रजनी पाम दत्त और बेन ब्रेडले ने एक खुले पत्र मे भारतीय कम्युनिस्टो को ठोस सुझाव दिये।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने एक प्रस्ताव स्वीकार करके कम्युनिस्टो के काग्रेस मे प्रवेश का अनुमोदन किया। मई १९३६ मे अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस ने सामूहिक रूप मे काग्रेस मे शामिल होने का प्रस्ताव स्वीकार किया और इसी तरह का प्रस्ताव अखिल भारतीय किसान सभा ने भी स्वीकृत किया। चूकि काग्रेस नेतृत्व ने इस आशका से इसके प्रति नकारात्मक रुख अपनाया कि कही सगठन के भीतर कम्युनिस्ट अपना अलग धडा न बना ले, इसलिए कम्युनिस्ट और क्रातिकारी जनवादी बडी सख्या मे यह सुनिश्चित करने के लिए काग्रेस मे वैयक्तिक रूप मे शामिल हुए कि वह सयुक्त साम्राज्यवादविरोधी मोर्चे के हरावल मे परिवर्तित हो जाय।

परिणामस्वरूप काग्रेस मे अधिक मजबूत वाम पक्ष का उदय हुआ, जैसा कि लखनऊ अधिवेशन (मई १९३६) मे प्रदर्शित हुआ, जिसमे जवाहरलाल नेहरू को अध्यक्ष चुना गया था। उन्होने जो कार्यसमिति नियुक्त की, उसके एक तिहाई सदस्य वाम पक्ष के प्रतिनिधि थे।

जवाहरलाल नेहरू द्वारा चौथे दशक मे अपनाया गया राजनीतिक दृष्टिकोण कुछ हद तक विरोधात्मक और असगत था। इस समय तक उनके सामाजिक राजनीतिक और दार्शनिक विचारो ने न्यूनाधिक निश्चित रूप ले लिया था, जिन पर किसी हद तक वैज्ञानिक समाजवाद का प्रभाव था। फिर भी उनके समाजवादी आदर्शो मे कुछ ऐसे दार्शनिक सिद्धातो का भी प्रचुर सयोग था, जिनमे वह गाधीजी से सहमत थे, खासकर राजनीतिक निर्णयो को व्यवहार मे परिणत करने के मामले मे।

सुभाषचद्र बोस सहित काग्रेस मे वाम पक्ष के अन्य अनेक नेताओ की तरह नेहरू भी सोवियत सघ मे समाजवादी निर्माण मे प्राप्त सफलताओ से बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होने सार्वजनिक रूप से सोवियत सघ के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की तथा वीर स्पेनी जनता और चीनी तथा अबीसिनियाई स्वाधीनता सग्रामियो का समर्थन किया।

काग्रेस के वाम पक्ष के इन दोनो मुख्य नेताओ के बीच तीसरे दशक के

अत और चौथ दशक के प्रारभ स ही जो मतभद मौजूद थ, व अब भी प्रत्यक्ष थे। वास बगाल प्रातीय सगठन की बुनियाद पर काग्रस क भीतर अपन आधार को बढाने पर काफी ध्यान लगात थ, ताकि अतत नतृत्व और पार्टी नाति मे परिवर्तन लान म समर्थ हो सक। नहरू मुख्यतया गाधीजी की नाति का अनुसरण करत थ, जो उनके लिए काग्रस क सर्वोच्च नता क दृढ समथन का सुनिश्चित करता था। चौथे दशक क मध्य और अत म नहरू क कार्य का एक मुख्य पहलू विशेष रूप से अपनी विदश यात्राओ क दौरान, काग्रस और विभिन्न प्रगतिशील आदालनो तथा सगठना क बीच अतर्राष्ट्रीय सबधा का विस्तार था। वह भारतीय राष्ट्रवादिया के विदशी सबधा का व्यापक बनान का मुक्ति सघर्ष की प्रगति म एक महत्वपूण तत्व समभत थ।

लखनऊ अधिवशन न निर्णय किया कि काग्रस को चुनावा म भाग लना चाहिए और चुनाव अभियान के जरिय 'गुलामी क शासन विधान' के खिलाफ आवाज उठाना चाहिए।

उसी वर्ष दिसम्बर म काग्रेस के फैजपुर अधिवशन म कृषिक समस्या पर कुछ प्रारभिक मागे किसानो के अधिकारो क घोषणापत्र के विकल्प क रूप म प्रस्तुत की गयी थी। उनमे काग्रेस क तत्वावधान म लगान, साहूकारो के ऋणो पर ब्याज तथा मालगुजारी को घटाने के लिए किसान आदालन का विस्तार करन की कल्पना की गयी थी। इस दस्तावेज का अनुमादन काग्रेस म किसान सभा के नेतृत्व के लिए कम्युनिस्टा के साथ मुकाबला करने के दृढ निश्चय का प्रमाण था।

इधर आम जनवादी आदोलन की परिधि म अधिकाधिक वर्ग और समह शामिल होते जा रहे थे। १६३६ म अखिल भारतीय छात्र फेडरेशन अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद और अखिल भारतीय प्रगतिशील लखक सघ की स्थापना हुई। इन सभी सगठनो म केवल काग्रेसी ही नही बल्कि कम्युनिस्ट और क्रातिकारी जनवादी भी सक्रिय भूमिका अदा करते थे। इससे राष्ट्रीय साम्राज्यवादविरोधी मोरचे का निर्माण पथ प्रशस्त हुआ। कम्युनिस्टो ने चुनावा म काग्रेस का समर्थन किया, और अपने उम्मीदवार सिर्फ मजदूर निर्वाचन क्षेत्र मे खडे किये जिसे मात्र तीन प्रतिशत सीटे प्रदान की गयी थी।

चौथे दशक के मध्य तक भारत का पार्टीगत राजनीतिक ढाचा पाच साल ही पहले के मुकाबले मे कही अधिक जटिल हो चुका था। काग्रस, मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा के अलावा कुछ प्रातो मे कुछ प्रातीय पूजीवादी और निम्न पूजीवादी पार्टिया मौजूद थी और काग्रस का विराध कर

रही थी, जैसे पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी, बंगाल में प्रजा कृषक समिति, संयुक्त प्रांत में नेशनल एजेंट पार्टी (राष्ट्रीय किसान पार्टी), बम्बई और मध्य प्रांतों में इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी (स्वतंत्र मज़दूर पार्टी), मद्रास में जस्टिस पार्टी और उड़ीसा में एडवांस (अग्रवर्ती) पार्टी।

ये पार्टियां केवल निम्न पूंजीवादी समूहों का ही नहीं, बल्कि अभिजातों और जमींदारों के घोर प्रतिक्रियावादी वर्गों का भी प्रतिनिधित्व करती थीं। उनमें से कुछ के कार्यकलाप घोर साम्प्रदायिक (उदाहरणार्थ यूनियनिस्ट पार्टी और प्रजा कृषक समिति) अथवा जाति पर आधारित (उदाहरणार्थ अम्बेडकर की स्वतंत्र मज़दूर पार्टी और जस्टिस पार्टी) थे। लेकिन उनका प्रभाव सीमित था और कांग्रेस की मुख्य विरोधी हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग ही थीं।

अब तक मुस्लिम लीग के भीतर मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में एक अधिक प्रगतिशील पक्ष जड़ जमा चुका था। लीग ने, जिसने पहले किसी भी साम्राज्यवादविरोधी जन-संघर्ष को प्रोत्साहित नहीं किया था, १९३७ में लखनऊ में अपने अधिवेशन में घोषणा की कि उसका मुख्य उद्देश्य भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करना है। लेकिन पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने के बाद लीग देश के स्वतंत्र जनवादी राज्यों के संघ में रूपांतरण का समर्थन करती थी। मुस्लिम लीग के नये कार्यक्रम ने उसके लिए कुछ ऐसे मुसलमानों को अपने पक्ष में लाना संभव बना दिया, जो पहले कांग्रेस के समर्थक रहे थे। स्वतंत्र भारत के संघीय ढांचे की हिमायत लीग के धार्मिक और साम्प्रदायिक कार्यकलाप के अनुरूप थी, जो अपने को भारतीय मुसलमानों के हितों का एकमात्र प्रवक्ता बतलाती थी और जिसमें – चाहे अभी बीज रूप में ही सही – स्वतंत्र पाकिस्तान राज्य के निर्माण की भावी मांग का संकेत भी निहित था।

प्रांतीय सरकारों में कांग्रेस और मुस्लिम लीग। राजनीतिक संघर्ष का और उभार

१९३७ में चुनावों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ११ में से ७ प्रांतों में विजयी हुई और उसकी सरकारें बनीं। पंजाब और बंगाल में गैर कांग्रेसी सरकारें बनीं। कुछ बाद, १९३८ में कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने असम और सिंध में संयुक्त सरकारें बनायीं।

कांग्रेस सरकारों ने विशेष सुविधाप्राप्त असामी काश्तकारों के समूह

का बढान लगान की सीमा को प्रतिबंधित करन और साहूकारा के :
की अदायगी को विलवित करने, आदि क लिए नय कृपिक कानून तै
करना शुरु किया, जा केवल मेहनतकश किसाना क ही नही, वल्कि ग्रा
क्षेत्रा मे पूजीवादी तत्वा के भी हितो के अनुरूप थ।

लेकिन साथ ही काग्रेस सरकारा ने ऐस श्रम-कानून, मिसाल क ।
बम्वई औद्योगिक विवाद अधिनियम भी बनाये, जो क्रातिकारी ट्रेड-यूनि
के अधिकारो का अतिक्रमण करते थे।

मजदूर वर्ग न काग्रेस की इस मजदूरविरोधी नीति का जवाव हडता
और विरोध सभाओ से दिया।

मजदूर वर्ग द्वारा सगठित कार्रवाइया अब अधिकाधिक राजनीतिक स्वरू
ग्रहण करन लगी। मार्च, १९३८ म मेरठ षड्यत्र केस की वर्षगाठ पर भारता
कम्युनिस्ट पार्टी दिवस का सफल आयोजन किया गया, जिसमे पार्टी पर :
पावदी उठान की माग की गयी। इसक वाद मई मे शोलापुर वदिया के समर्थ
म एक दिवस का आयोजन किया गया जिन्ह १९३० म शोलापुर विग्र
के वाद जेल की सजा दी गयी थी। मजदूर वर्ग की वढती राजनीतिक चेतना
का एक महत्वपूर्ण द्योतक सर्वहारा क्रातिकारी उत्सवो का आयोजन था।
१९३९ म मई दिवस क अवसर पर साम्राज्यवादविरोधी जलसो और जुलूसा
का आयोजन किया गया और सयुक्त राष्ट्रव्यापी मोरचा बनाने की अपील
की गयीं। मई दिवस सभाए और प्रदशन भारतीय मजदूरो के बीच वर्ग
एकता क विकास को अभिव्यक्त करते थे। य सपूर्ण ब्रिटिश भारत के औद्यो
गिक केन्द्रा और देशी रियासतो म कुछ नगरो म भी हुए थे।

१९३७ के चुनावो के वाद आतरिक राजनीतिक परिस्थिति म परि
वर्तनो का असर तत्कालीन किसान-आदोलन की गतिविधियो म भी व्यक्त
हुआ। किसान सभा की कार्रवाई का मुख्य रूप जन प्रचार था, जिसके दौरान
कार्यकता सभा की नीति समझाते थे, उसके आधार को व्यापक बनान का
प्रयास करत थे ओर भूमि सुधारो (काश्तकारी कानूनो म परिवर्तनो) के
लिए याचिकाओ पर हस्ताक्षर एकत्रित करते थे, जिन्हे फिर प्रातीय सरकारा
क काग्रस मत्रिया को दे दिया जाता था। १९३७-१९३८ म सयुक्त प्रात
विहार, आध्र और देश के कुछ अन्य भागा, वस्तुत उन सभी ज़िला म
किसानो के विशाल जुलूस और जलसे सगठित किये गये, जहा अखिल भारतीय
किसान सभा की शाखाए सक्रिय थी।

किसान सभा का प्रभाव तेजी से बढता जा रहा था १९३८ म

उसकी सदस्य-संख्या छ लाख और १९३९ म आठ लाख थी।

उपर्युक्त कृषि कानून सगठित किसान आदोलन द्वारा काग्रेस मत्रियो और विधायको पर डाल गय दबाव के परिणामस्वरूप बनाय गय थ।

मजदूर और किसान सगठनो के सफल विकास न मज़दूर और किसान एकता के सुदृढीकरण के लिए उर्वर भूमि प्रदान की। १९३७ और १९३८ म बगाल और मद्रास म किसान सगठनो न हडताली मजदूरो के समर्थन म सभाए और प्रदशन किय। बदल म ट्रेड-यूनियनो न प्रातीय केन्द्रो को जानेवाले किसान प्रतिनिधिमडलो का समथन किया।

मजदूर और किसान-सगठनो की कार्रवाइयो म राष्ट्रीय स्तर पर समन्वय मजबूत होन लगा। जनवरी १९३८ म अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस दिल्ली म हुई बैठक म कृषिक प्रश्न स सबधित बातो को भी मजदूरो की मागो के घोषणापत्र म शामिल किया गया। १९३८ के अत और १९३९ के प्रारभ म कम्युनिस्ट और ट्रेड-यूनियन नता एस० एस० मीराजकर न किसान नता स्वामी सहजानद सरस्वती के साथ महाराष्ट्र की सयुक्त यात्रा की जिसम उन्होंने मजदूरो और किसानो की सभाओ म भाषण दिय। जुलाई १९३९ म अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस और अखिल भारतीय किसान सभा के प्रतिनिधियो की समन्वय समिति कायम की गयी। भारत म मजदूर वग और कृषक वग के बीच सहबध एक राजनीतिक वास्तविकता बन गया था।

इन युद्ध-पूर्व वर्षो म भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति कही अधिक मजबूत हो गयी थी और वह निमम दमन के बावजूद कठिन भूमिगत सघर्ष चला रही थी। कम्युनिस्ट प्रेस वैज्ञानिक समाजवाद के विचारो तथा पार्टी की नीति को लोकप्रिय बनाने म महत्वपूण भूमिका अदा कर रहा था। कम्युनिस्ट पुस्तिकाए और परचे गैर कानूनी ढग से प्रकाशित किये जाते थे। इनके अलावा कम्युनिस्टो के कानूनी प्रकाशन भी थ जिनम १९३८–१९३९ मे प्रकाशित साप्ताहिक नशनल फ्रट (राष्ट्रीय मोरचा) को खासकर काफी महत्व प्राप्त था। ट्रेड-यूनियनो और किसान सगठनो के बीच कम्युनिस्ट पार्टी का प्रभाव निरतर बढता जा रहा था, जिनम वह क्रातिकारी जनवादियो के साथ सफलतापूर्वक सहयोग कर रही थी। इदुलाल याज्ञिक और स्वामी सहजानद सरस्वती के साथ कम्युनिस्टो का सहयोग इसका उदाहरण हैं। कम्युनिस्ट नतृत्व का केन्द्रक सामने आने लगा था इसमे अधिकारी घाटे मीराजकर डागे और मुजफ्फर अहमद जैसे कम्युनिस्ट थे। गाधीवाद के खिलाफ विचारधारात्मक सघर्ष काग्रेस समाजवादियो के दक्षिणपथी समाज

वादी सिद्धाता और एम० एन० राय क निम्न-पूजीवादी सकीर्णतावादी विचा क खिलाफ सघर्ष म भारत म कम्युनिस्ट आदालन और मजबूत बना।

इन सब बाता न राष्ट्रीय काग्रस क नताओ का बहद गक्ति कर दिया। कुछ स्थाना (उदाहरणाथ बिहार) म काग्रस राजनीतिना न किसान-सगठना म फूट डालन की कोशिश की, जब कि अन्य स्थाना (उदाहरणार्थ सयक्त प्रात) म उन्हान अपनी समातर किसान सभाए कायम करन का प्रयास किया। जनवरी १९३८ म काग्रस कार्यसमिति न बिहार पार्टी सगठन द्वारा प्रस्तुत काग्रेस सदस्यो क किसान सभा म कार्य को वर्जित करन के सुझाव का अनुमोदन किया। लेकिन जनमत क दबाव से काग्रेस क फरवरी अधिवेशन न इस निर्णय को रद्द कर दिया।

कम्युनिस्टो और क्रातिकारी जनवादिया क काग्रस का एक सयुक्त मार्चे म परिवर्तित करन के सभी प्रयासा का काग्रेस क नतृत्व के दृढ प्रतिराध का सामना करना पडा, जो स्वाधीनता आदोलन पर अपना एकाधिकार जमाये रखना चाहता था।*

एक ओर काग्रेस के बाहर वामपथी शक्तिया की बढती शक्ति, सगठित मजदूर और किसान आदोलन की अधिक कारगर कार्रवाई तथा दूसरी ओर प्रातीय सरकारो और विधानमडलो के जरिये औपनिवेशिक प्रशासन क कार्य म काग्रेस सदस्यो की भागीदारी न काग्रस के भीतर राजनीतिक विभाजन को तेज करन म सहायता की।

राष्ट्रीय काग्रेस के भीतर बढते मतभेद

मुक्ति मोरचे क कार्य के अधिकाधिक व्यापक और मजबूत हाते जाते के साथ साथ काग्रेस एक ऐसे मच जैसी बनती गयी थी, जो केवल सामाजिक और राजनीतिक अतर्य की दृष्टि से भिन्न भिन्न राजनीतिक शक्तिया ही नही, बल्कि अलग-अलग स्थानीय हितो के पोषक सगठना का भी प्रतिनिधित्व करता था। राष्ट्रीय आदोलनो द्वारा शक्ति प्राप्त करन के साथ चौथे दशक के अत मे काग्रेस की आतरिक राजनीति म स्थानीय और क्षेत्रीय

* जवाहरलाल नेहरू सिद्धात रूप म सयुक्त नेतृत्व क विचार का समर्थन तो करते थे, लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा काग्रेस क समक्ष पूर्ण विचारधारात्मक आत्म समर्पण की शर्त पर ही।

अधिवेशन म भाग लन क लिए प्रातीय सगठना द्वारा निर्वाचित कम स कम ८० प्रतिशत प्रतिनिधि वाम पक्ष क थ।

इस परिस्थिति म पट्टाभि सीतारमैया क नतृत्व म काग्रेस क दक्षिण पक्ष न गाधीजी क सक्रिय समर्थन स काग्रेस अध्यक्ष पर खुला आक्रमण शुरू किया। गाधीजी के दबाव स कार्यसमिति न, जिसम बोस क कइ विरोधी थ इस्तीफा द दिया। लकिन फिर भी बोस अखिल भारतीय काग्रेस समिति के जनवरी अधिवशन म अध्यक्ष पद पर पुन चुन गय।

मार्च १६३६ म काग्रेस का अधिवेशन त्रिपुरी म अत्यत तनावपूर्ण वातावरण म हुआ। पार्टी क भीतर तीव्र सघर्ष के बाद दक्षिणपथी मध्यमार्गी बहुमत के प्रतिनिधि और गाधीजी की नीति क समर्थक गोविन्दवल्लभ पत ने यह प्रस्ताव स्वीकार करवा लिया कि गाधीजी को अपनी मर्जी के अनुसार नयी कार्यसमिति नियुक्त करन का अधिकार दे दिया जाय।

अप्रैल १६३६ म बोस ने अध्यक्ष पद स इस्तीफा द दिया और बिहार काग्रेस सगठन क नता तथा गाधीजी क एक पुरान साथी राजद्रप्रसाद उनके स्थान पर अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

इसके शीघ्र बाद ही बोस अपन बहुत स समर्थको के साथ काग्रेस से अलग हो गये और उन्होन फारवर्ड ब्लॉक नाम की अलग पार्टी बना ली जिसका प्रभाव मुख्यतया बगाल म ही था।

काग्रेस म इस फूट न उसके वाम पक्ष के भीतर भी मतभेदो का सूत्र बना दिया। जहा नहरू गाधीजी की नीति और काग्रेस नेतृत्व क भीतर उनके गुट का समर्थन कर रहे थ वहा काग्रेस समाजवादियो के वामपथी समूहो (विशेषकर केरल आध्र और सयुक्त प्रात म) ने १६३६-१६४० म काग्रेस छोड दी और स्थानीय कम्युनिस्ट पार्टी सगठनो की बुनियाद डाली।

लेकिन इस समय देश म क्रातिकारी कार्रवाइयो की जो लहर दौडने लगी थी और इसके फलस्वरूप राजनीतिक शक्तियो का जो पुनर्समूहन होने वाला था उनम दूसर महायुद्ध की शुरूआत के कारण अब बाधा पड गयी।

घोषणा द्वारा युद्ध के प्रति अपने दृष्टिकोण को प्रकट किया। उसने कहा कि कांग्रेस निम्नलिखित शर्तों के अंतर्गत ही ब्रिटेन के युद्ध प्रयास का समर्थन कर सकती है : ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के आत्मनिर्णय के अधिकार की आधिकारिक स्वीकृति, संविधान सभा का समाह्वान, भविष्य में निर्धारित समय पर भारतीय राजनीतिक पार्टियों द्वारा भारत के राजनीतिक मामलों का संचालित करने के अधिकार की मान्यता, वाइसराय के अधीन केन्द्रीय विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी सरकार की तत्काल स्थापना।

मुस्लिम लीग ने भी ब्रिटेन के युद्ध प्रयास को अपने समर्थन की घोषणा की, बशर्ते कि मुस्लिमों का विधानमंडलों में अधिक प्रतिनिधित्व दिया जाय।

केवल प्रतिक्रियावादी शिविर – राजाओं, सामंतों और दलाल पूंजीवादी वर्ग – ने ही ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन को अपना पूर्ण और बिना शर्त समर्थन प्रदान किया।

इस प्रश्न पर विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के दृष्टिकोण युद्ध में भारत की भागीदारी के बारे में भारतीय राष्ट्रीय पूंजीवादी वर्ग के दोहरे रुख को अभिव्यक्त करते थे। एक ओर विभिन्न फौजी आर्डर उत्पादन को बढ़ाने और मुनाफों में भारी वृद्धि की संभावना प्रदान करते थे, जब कि दूसरी ओर ब्रिटेन जिस कठिन फौजी और राजनीतिक स्थिति में फंस गया था, उसने कुछ राजनीतिक रिआयतें प्राप्त करने की नयी संभावनाएं पैदा कर दी थीं।

एक तरफ भारतीय पूंजीपति औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा फौजी आर्डरों के आवंटन के लिए स्थापित निकायों – आर्थिक संसाधन परिषद, आपूर्ति विभाग आदि – के कार्य में सक्रिय भाग ले रहे थे और दूसरी तरफ भारतीय पूंजीवादी वर्ग के राजनीतिक प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार और भारत में उसके प्रतिनिधि वाइसराय के साथ अपने जटिल मोल-तोल में लगे हुए थे।

ब्रिटिश सरकार ने मानो युद्ध के प्रति अपने रुख के संबंध में राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रस्तावों में भारतीय पूंजीवादी राष्ट्रवादियों द्वारा उठाये गये प्रश्नों के उत्तर में १७ अक्तूबर, १९३९ को युद्ध उद्देश्यों की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए एक श्वेत पत्र प्रकाशित किया। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा उपर्युक्त घोषणा में रखी मांगों का सीधा उत्तर देने से बचते हुए ब्रिटिश सरकार ने युद्ध के उपरांत भारतीय राजनीतिक पार्टियों के प्रतिनिधियों के साथ परामर्श करने के बाद भारत का नया शासन विधान तैयार करने के अपने इरादे की घोषणा की। उसने आश्वासन दिया कि वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद में और भारतीय सदस्य सम्मिलित किये जायेंगे

तथा इस परिषद से सबद्ध राजनीतिक पार्टियों और राजाओ के प्रतिनिधियो से गठित एक सलाहकार समिति कायम करने का सुझाव दिया।

श्वेत पत्र मे व्यवहार मे विपक्ष के प्रस्तावो को अस्वीकार कर दिया गया था। ब्रिटिश प्रशासन की नीति पर विरोध के प्रतीकस्वरूप आठ प्रातो मे काग्रेस मन्त्रियो ने अपने पदो से इस्तीफा दे दिया। इस परिस्थिति मे गवर्नरो ने पहले ही प्रकाशित शासन विधान के प्रस्तावित सशोधन के अनुसार नयी कार्यकारिणी परिषद नियुक्त कर दी।

राष्ट्रीय काग्रेस के नेताओ ने २३ अक्तूबर को श्वेत पत्र मे उल्लिखित ब्रिटिश प्रस्तावो का अपना आधिकारिक उत्तर प्रकाशित किया, जो [illegible] मे इस प्रकार है १) भारत में उत्तरदायी शासन की [illegible] स्थापना की जानी चाहिए, २) सविधान सभा द्वारा नया सविधान तैयार किया जाना चाहिए ३) राष्ट्रीय काग्रेस की माग न मानी जाने पर [illegible] सविनय अवज्ञा आदोलन शुरू करने के अलावा और [illegible]।

इस नयी परिस्थिति मे मुस्लिम लीग के नेतृत्व [illegible] प्रतिद्वद्वी–काग्रेस–के मोल अपनी स्थिति मजबूत [illegible]। प्रातीय काग्रेस सरकारो के इस्तीफे के बाद [illegible], १९३९ [illegible] ने 'मुक्ति दिवस" मनाया, जो "काग्रेसी जुए से मुक्ति" [illegible] का आरभ था। लेकिन यह आदोलन व्यापक [illegible]। [illegible] के सदस्यो के नेतृत्व मे असम, सिन्ध और [illegible] प्रात मे प्रातीय सरकार औपनिवेशिक प्रशासन के साथ सहयोग [illegible]।

देश मे राजनीतिक सघर्ष के आगामी [illegible] मुस्लिम लीग के नेताओ के पृथकतावादी और साम्प्रदायिक [illegible] इसमे कोई शक नही कि मुस्लिम लीग [illegible] जो अर्से से अपनी आशाए हिंदुओ और मुसलमानो [illegible] पर टिकाये हुए थे। लेकिन औपनिवेशिक [illegible] नही कर सकता था कि मुस्लिम लीग [illegible] के मुकाबले मे बहुत कम था, जिसका [illegible] के कुछ हिस्सो पर भी कुछ असर था। [illegible] समय जोर पकडते साम्राज्यवादविरोधी [illegible] कर दी थी इसलिए ब्रिटिश सरकार [illegible] समक्ष नये प्रस्ताव लेकर आना पडा। [illegible] ने बम्बई मे एक क्लब मे भाषण [illegible]

भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान किया जायगा, जिस अन्य ब
क अलावा राजाओ और अल्पसख्यको के हितो को ध्यान म रखत हुए विक
किया जायगा, जब कि ब्रिटेन उसके बाद तीस साल तक भारत की मु
क लिए जिम्मेदार बना रहेगा।

लेकिन य नये ब्रिटिश प्रस्ताव भी राष्ट्रीय काग्रेस के लिए अस्वीक
सिद्ध हुए क्योकि वे राष्ट्रवादियो की मुख्य माग, वाइसराय के अधीन उत्त
दायी सरकार की तत्काल स्थापना का कोई ठोस उत्तर नही देते थे।

१९३९ और १९४० मे जन आदोलन। राष्ट्रीय आदोलन के भीतर बढते अतर्विरोध

भारत म कम्युनिस्टो और काग्रेस समाजवादियो द्वारा सगठित युद्ध
विरोधी प्रदर्शनो का सिलसिला सितबर १९३९ म ही शुरू हो गया था।
उनम स सबस बडा मद्रास मे हुआ था। उस वर्ष अक्तूबर और नवम्बर
म कानपुर पटना झरिया और कई अन्य औद्योगिक केद्रो म युद्धविरोधी
हडताल हुइ। १९३९ क अत मे कुल ११० हडताल हुई, जिनम १७ लाख
लोगो न भाग लिया। उसी वर्ष क अत म मजदूरो और श्रमजीवी जनता
के अन्य सस्तरो क एक व्यापक आदोलन का आरभ हुआ जो युद्ध के पहल
आर्थिक परिणामो – ऊची कीमतो और आवश्यक वस्तुओ की जमाखोरी
और चोरबाजारी – क खिलाफ लक्षित था।

अक्तूबर १९३९ म नागपुर म आयोजित मजदूर, किसान और छात्र
सगठनो क अखिल भारतीय साम्राज्यवादविरोधी सम्मेलन का राष्ट्रीय आदोलन
म वामपथी शक्तियो के कार्यकलाप क समन्वयन क लिए बहुत महत्व था।
उसम भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, काग्रेस समाजवादी पार्टी और फारवर्ड
ब्लाक न भाग लिया था। सम्मेलन द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव ब्रिटिश साम्राज्यवाद
क प्रति राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन क वाम पक्ष क अनम्य रवैय को व्यक्त करत
थ। भारतीय कम्युनिस्ट और वामपथी राष्ट्रवादी भी युद्ध को साम्राज्यवादी
युद्ध समझत थ और उसम भारत की किसी भी प्रकार की भागीदारी के
विरोधी थ।

सम्मेलन म भाग लेनवाल वामपथी सगठनो क आह्वान पर पजाब
सयुक्त प्रात आध्र और मलाबार म युद्धविरोधी प्रदर्शनो और जलसो का
सगठन किया गया। भारत म परिस्थितिया फिर सभी साम्राज्यवादविरोधी

शक्तियो के सयुक्त मोर्चे की स्थापना के लिए परिपक्व थी। लेकिन देश मे दोनो मुख्य राजनीतिक पार्टियो राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग का रुख इनमे बाधा डाल रहा था।

कांग्रेस नेतृत्व ने वामपथी शक्तियो के जन आदोलन के प्रति नकारात्मक रुख अपनाया और न तो मजदूर वर्ग के हडताल आदोलन का और न ही किसान आदोलन का समर्थन किया। यहा तक कि ब्रिटिशविरोधी जन आदोलन के सचालन मे भी वह सबके ऊपर राष्ट्रीय आदोलन पर अपने नेतृत्व की जकड को मजबूत बनाने की ही कोशिश करता था। इसका एक लाक्षणिक उदाहरण यह है कि १९४० के कांग्रेस अधिवेशन ने नया जनव्यापी सविनय अवज्ञा आदोलन छेडने का आह्वान किया लेकिन प्रस्ताव मे यह स्पष्ट कर दिया गया कि इस बार भी गाधीजी ही यह तय करेगे कि यह कब शुरू हो और कौनसा रूप ग्रहण करे। उन्हे फिर सत्याग्रह का अधिनायक बना दिया गया था।

त्रिपुरी अधिवेशन (१९३९) के बाद से पार्टी नेतृत्व के अनुमोदन से राष्ट्रीय कांग्रेस मे वाम पक्ष के खिलाफ चलाये जानेवाले संघर्ष ने सगठन की एकता को कमज़ोर किया। राष्ट्रीय कांग्रेस के मार्च १९४० मे रामगढ (बिहार) अधिवेशन मे सबसे बडे कांग्रेस प्रातीय सगठनो मे से एक – बगाल सगठन – के प्रतिनिधिमडल ने भाग नही लिया। उसमे सुभाषचद्र बोस के समर्थको का बहुमत था, जिन्होने कांग्रेस नेतृत्व द्वारा बोस के खिलाफ की गयी अनुशासनिक कार्रवाई के विरोध मे अधिवेशन का बहिष्कार किया (त्रिपुरी अधिवेशन के बाद उन्हे पार्टी मे कोई नेतृत्वकारी पद लेने के अधिकार से वचित कर दिया गया था, क्योकि उन्होने कांग्रेस कार्यसमिति की पूर्वानुमति के बिना एक सभा मे भाषण दिया था)।

बोस के समर्थको ने अपना "समझौताविरोधी सम्मेलन" आयोजित किया जिसमे कांग्रेस के नेताओ तथा गाधीजी की कडी आलोचना की गयी। तथापि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने, जो कांग्रेस के भीतर वामपथी शक्तियो के साथ सहयोग की आकांक्षी थी इस सम्मेलन मे भाग नही लिया, क्योकि उसके विचार मे यह सम्मेलन साम्राज्यवादविरोधी आदोलन की एकता को गभीर हानि पहुचानेवाला था।

कांग्रेस तथा बोस के समर्थको के इस अधिवेशन के समय ही मुस्लिम लीग का भी मार्च, १९४० मे लाहौर मे एक सम्मेलन हुआ। सम्मेलन ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया उसे भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के उत्तरवर्ती

इतिहास म निधारक भूमिका अदा करनी थी। प्रस्ताव न मुस्लिम ल
सघष का अतिम लक्ष्य भारतीय मुस्लिमा क अलग राज्य – पाकिस्तान
स्थापना घोषित किया।

गाधीजी और काग्रेस क नताओ न मुस्लिम लीग क इस प्रस्ता
आलोचना की। इस परिस्थिति म हिन्दू मुस्लिम एकता का बढावा द
प्रयासा का एक सबूत रामगढ अधिवेशन म प्रमुख मुस्लिम राष्ट्रवाद
मौलाना अबुल कलाम आजाद का काग्रेस अध्यक्ष चुना जाना था।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन क भीतर विभिन्न राजनीतिक प्रवृत्तिया
बीच बढत मतभदा न ब्रिटिश साम्राज्यवादिया क लिए राजनीतिक ज
तोड करना और आसान बना दिया तथा सयुक्त मुक्ति मारच की स्था
म बाधा डाली। फिर भी व इतन प्रबल न थ कि दश म वग सघर्ष की प्रग
को अवरुद्ध कर सक।

२६ जनवरी १६४० का स्वतन्त्रता दिवस का परपरागत समारोह ब्रिटि
विरोधी जन प्रदर्शनो और हडतालो म परिवर्तित हो गया। उसी साल माच
अप्रैल म क्रातिकारी गिरनी कामगार यूनियन क नतृत्व म बम्बई क कप
मजदूरा की आम हडताल हुई। बम्बई क कपडा मजदूरा क साथ एकजटत
व्यक्त करन के लिए बम्बई प्रात क अन्य औद्योगिक कन्द्रा म भी एक दिवसीय
हडताल हुइ।

१६३६–१६४० म हडताला म भाग लनवालो की सख्या (४,०६ ०००
स ४,५०,०००) और नष्ट श्रम दिवसा की कुल सख्या (५० ०० ००० से
७५ ०० ०००) म भी वृद्धि हुई।

१६४० म हडतालो की कुल सख्या म कुछ कमी (४०६ से घटकर ३२२)
आन के बावजूद उनम भाग लेनेवालो तथा नष्ट श्रम दिवसा की कुल सख्या
म वृद्धि यही प्रकट करती है कि इस समय तक हडताल अधिक सगठित और
मजदूर वर्ग का आर्थिक सघर्ष अधिक दढ हो गया था।

औपनिवशिक प्रशासन ने हमेशा की भाति जन सघर्ष का जवाब दमन
से दिया। कम्युनिस्टो के अब तक के वैध प्रकाशनो और ट्रेड यूनियन तथा
किसान सगठनो द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओ पर प्रतिबध लगा दिया गया
तथा मजदूर और किसान नताओ की गिरफ्तारिया भी शुरू हो गयी। लकिन
ये सभी कार्रवाइया सगठित मजदूर आदोलन के और अधिक विकास को
रोकने क लिए नाकाफी थी।

सितम्बर १६४० मे अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस का अगला

अधिवेशन हुआ, जिसमे देश के विभिन्न भागो म ट्रेड यूनियन केन्द्रो म एकता के लिए औपचारिक रूप म आह्वान किया गया। ट्रेड-यूनियन काग्रेस की परिधि म १९५ यूनियने थी, जिनक कुल मिलाकर ३ ७४ लाख मजदूर और नौकरी-पेशा लोग सदस्य थे। हालाकि अधिकाश उजरती मजदूर अब भी सगठित मजदूर आदोलन के बाहर ही थ, फिर भी उसम पहले की फूट की समाप्ति भारतीय मजदूर आदोलन क इतिहास म एक महत्वपूण घटना थी।

इस अवधि मे मजदूर-आदोलन की प्रगति के साथ साथ जनव्यापी जनवादी आदोलन न तथाकथित भाषायी प्रातो – महाराष्ट्र, कणाटक, आध्र और केरल – की स्थापना द्वारा (अथात विभिन्न प्राता तथा रियासतो म सम्मिलित भूभागो और उनम रहनेवाले अलग-अलग लागो – मराठा कन्नडो आध्रो और मलयालियो – को एकसाथ मिलाकर) भारत के क्षेत्रीय पुनर्विभाजन क प्रयासो को भी तज किया। बगाल म एक आदोलन शुरू हो गया जिसका लक्ष्य देश क उन बगलाभाषी क्षेत्रो को बगाल प्रात क साथ मिलाना था, जो उस समय असम और बिहार प्राता म थ।

ये आदोलन भारत के बडे भाषा समुदायो म राष्टीय चतना क विकास को अभिव्यक्त करत थे जो बीसवी शताब्दी की दूसरी चौथाई म उनके राष्ट्रीय सुदृढीकरण की त्वरित आर्थिक और सामाजिक सास्कृतिक प्रक्रियाओ का एक स्वाभाविक परिणाम था।

१९४० के वसत और गरमियो म पश्चिमी मोरचे पर जर्मनी की फौजी सफलताओ ने ब्रिटेन की फौजी और राजनीतिक स्थिति को कमजोर किया जिसन अपनी बारी मे भारत म विद्यमान परिस्थिति को भी प्रभावित किया।

जुलाइ, १९४० म अपने पूना अधिवेशन म अखिल भारतीय काग्रेस समिति ने एक विशेष प्रस्ताव द्वारा ब्रिटिश युद्ध प्रयास का समर्थन करन की अपनी तत्परता की इस शत पर पुष्टि की कि (क) ब्रिटिश सरकार यह घोषणा करे कि भारत को युद्ध के बाद स्वतत्रता प्रदान की जायेगी और (ख) उत्तरदायी सरकार कायम की जाये।

अगस्त म य प्रस्ताव वाइसराय को प्रेषित कर दिय गय। ब्रिटेन की गभीर फौजी विफलताओ का अधिक से अधिक उपयोग करते हुए राष्ट्रीय काग्रेस क नेतृत्व न कुछ रिआयत प्राप्त करने की आशा म अग्रेजो पर फिर स दबाव डालने का प्रयास किया। लकिन इधर औपनिवेशिक अधिकारी राष्ट्रीय आदोलन पर पूरी शक्ति स आक्रमण करने के लिए उपयुक्त अवसर की ताक मे बस टाल मटोल कर रहे थे।

इतिहास मे निर्णायक भूमिका अदा करनी थी। प्रस्ताव ने मुस्लिम लीग के संघर्ष का अंतिम लक्ष्य भारतीय मुस्लिमों के अलग राज्य – पाकिस्तान – की स्थापना घोषित किया।

गांधीजी और कांग्रेस के नेताओं ने मुस्लिम लीग के इस प्रस्ताव की आलोचना की। इस परिस्थिति मे हिन्दू मुस्लिम एकता को बढ़ावा देने के प्रयासों का एक संकेत रामगढ़ अधिवेशन मे प्रमुख मुस्लिम राष्ट्रवादी नेता मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का कांग्रेस अध्यक्ष चुना जाना था।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के भीतर विभिन्न राजनीतिक प्रवृत्तियों के बीच बढ़ते मतभेदों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के लिए राजनीतिक जोड़ तोड़ करना और आसान बना दिया तथा संयुक्त मुक्ति मोर्चे की स्थापना मे बाधा डाली। फिर भी वे इतने प्रबल न थे कि देश मे वर्ग-संघर्ष की प्रगति को अवरुद्ध कर सकें।

२६ जनवरी १९४० को स्वतंत्रता दिवस का परंपरागत समारोह ब्रिटिश विरोधी जन प्रदर्शनों और हड़तालों मे परिवर्तित हो गया। उसी साल मार्च अप्रैल मे क्रांतिकारी गिरनी कामगार यूनियन के नेतृत्व मे बम्बई के कपड़ा मज़दूरों की आम हड़ताल हुई। बम्बई के कपड़ा मज़दूरों के साथ एकजुटता व्यक्त करने के लिए बम्बई प्रांत के अन्य औद्योगिक केन्द्रों मे भी एक दिवसीय हड़ताल हुई।

१९३९–१९४० मे हड़तालों मे भाग लेनेवालों की संख्या (४,०९,००० से ४५०,०००) और नष्ट श्रम दिवसों की कुल संख्या (५०,००,००० से ७५,००,०००) मे भी वृद्धि हुई।

१९४० मे हड़तालों की कुल संख्या मे कुछ कमी (४०६ से घटकर ३२२) आने के बावजूद उनमे भाग लेनेवालों तथा नष्ट श्रम दिवसों की कुल संख्या मे वृद्धि यही प्रकट करती है कि इस समय तक हड़ताल अधिक संगठित और मज़दूर वर्ग का आर्थिक संघर्ष अधिक दृढ़ हो गया था।

औपनिवेशिक प्रशासन ने हमेशा की भांति जन-संघर्ष का जवाब दमन से दिया। कम्युनिस्टों के अब तक के वैध प्रकाशनों और ट्रेड यूनियन तथा किसान संगठनों द्वारा प्रकाशित पत्र पत्रिकाओं पर प्रतिबंध लगा दिया गया तथा मजदूर और किसान नेताओं की गिरफ्तारियां भी शुरू हो गयीं। लेकिन ये सभी कारवाइयां संगठित मज़दूर-आंदोलन के और अधिक विकास को रोकने के लिए नाकाफी थीं।

सितम्बर, १९४० मे अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस का अगला

अधिवेशन हुआ, जिसमे देश के विभिन्न भागो मे ट्रेड यूनियन केन्द्रो मे एकता के लिए औपचारिक रूप मे आह्वान किया गया। टेड-यूनियन काग्रेस की परिधि मे १६५ यूनियने थी, जिनके कुल मिलाकर ३ ७४ लाख मजदूर और नौकरी-पेशा लोग सदस्य थे। हालाकि अधिकाश उजरती मजदूर अब भी सगठित मजदूर आदोलन के बाहर ही थे फिर भी उसमे पहले की फूट की समाप्ति भारतीय मजदूर आदोलन के इतिहास मे एक महत्वपूर्ण घटना थी।

इस अवधि मे मजदूर-आदोलन की प्रगति के साथ साथ जनव्यापी जनवादी आदोलन ने तथाकथित भाषायी प्रातो – महाराष्ट्र कर्णाटक, आध्र और केरल – की स्थापना द्वारा (अर्थात विभिन्न प्राता तथा रियासता मे सम्मिलित भूभागो और उनमे रहनेवाले अलग अलग लोगो – मराठा कन्नडा, आध्रा और मलयालियो – को एकसाथ मिलाकर) भारत के क्षेत्रीय पुनर्विभाजन के प्रयासा को भी तेज किया। बगाल मे एक आदोलन शुरू हो गया जिसका लक्ष्य देश के उन बगलाभाषी क्षेत्रो का बगाल प्रात के साथ मिलाना था जो उस समय असम और बिहार प्रातो मे थे।

ये आदोलन भारत के बडे भाषा समुदायो मे राष्ट्रीय चेतना के विकास को अभिव्यक्त करते थे जो बीसवी शताब्दी की दूसरी चौथाई मे उनके राष्ट्रीय सुदृढीकरण की त्वरित आर्थिक और सामाजिक सास्कृतिक प्रक्रियाओ का एक स्वाभाविक परिणाम था।

१६४० के वसत और गरमियो मे पश्चिमी मोरचे पर जर्मनी की फौजी सफलताओ ने ब्रिटेन की फौजी और राजनीतिक स्थिति को कमजोर किया जिसने अपनी बारी मे भारत मे विद्यमान परिस्थिति को भी प्रभावित किया।

जुलाई, १६४० मे अपने पूना अधिवेशन मे अखिल भारतीय काग्रेस समिति ने एक विशेष प्रस्ताव द्वारा ब्रिटिश युद्ध प्रयास का समर्थन करने की अपनी तत्परता की इस शर्त पर पुष्टि की कि (क) ब्रिटिश सरकार यह घोषणा करे कि भारत को युद्ध के बाद स्वतत्रता प्रदान की जायेगी और (ख) उत्तरदायी सरकार कायम की जाये।

अगस्त मे ये प्रस्ताव वाइसराय को प्रेषित कर दिये गये। ब्रिटेन की गभीर फौजी विफलताओ का अधिक से अधिक उपयोग करते हुए राष्ट्रीय काग्रेस के नेतृत्व ने कुछ रिआयते प्राप्त करने की आशा मे अग्रेजो पर फिर से दबाव डालने का प्रयास किया। लेकिन इधर औपनिवेशिक अधिकारी राष्ट्रीय आदोलन पर पूरी शक्ति से आक्रमण करने के लिए उपयुक्त अवसर की ताक मे बस टाल मटोल कर रहे थे।

अक्तूवर १९४० म गाधीजी/न एक सविनय अवना आदोलन शुरू किया। यह 'व्यक्तिगत सत्याग्रह था, जिसम गाधीजी द्वारा विशेष रूप स नियुक्त काग्रेसियो को सावजनिक स्थानो म युद्धविरोधी भाषण देन और शातिवादी नार लगान थ। सत्याग्रह के लिए चुने गये सत्याग्रहिया की सूची पुलिस के हाथ म पड गयी, जिसन उन्ह एक एक करके पकड लिया। इस तरह लगभग २० हजार काग्रेस कार्यकर्ता जेलो म डाल दिय गय। इसके वाद काग्रेस १९४१ की समाप्ति तक कोई कारगर कारवाई करन की स्थिति म नही रही।

सुभाषचद्र बोस जिन्हाने कवल भारत के भीतर क्रातिकारी शक्तियो के बल पर ब्रिटिश शासन को समाप्त करन की सभावना को मानना बद कर दिया था और जिनके विचार म ब्रिटन की निणायक पराजय अब बिलकुल दूर नही थी अब अपनी आशाए नात्सी जमनी ओर उसके मित्र देशो पर टिकाय हुए थे। औपनिवेशिक अधिकारियो न उन्ह अपने घर म ही नजरबद कर दिया था जहा से फरार हाकर वह १९४१ म भारत अफगान सीमात को गैर कानूनी तरीके से पार करक वर्लिन जा पहुचे, जहा स उन्ह जापान भेज दिया गया। वह भोलेपन स यह मान वेठे थ कि ब्रिटन के फौजी विरोधी भारत का विदशी उत्पीडन से मुक्ति दिलायग भले ही यह सगीन की नोक पर क्या न हो।

१९४२ की "अगस्त क्राति" और ओपनिवेशिक शासन की नीति

१९४२ की गरमियो मे देश मे स्थिति। क्रिप्स मिशन

जून १९४१ म सोवियत सघ पर नात्सी जर्मनी के आक्रमण और सोवियत सघ के युद्ध म प्रवेश न युद्ध के स्वरूप को आमूलतया परिवर्तित कर दिया। इन घटनाओ न भारतीय कम्युनिस्टो के रुख को भी प्रभावित किया। स्वतत्रता क लिए सघर्ष जारी रखने के साथ साथ अब भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी न धुरी राष्ट्रो क खिलाफ युद्ध को एक जन युद्ध म वदलन का आन्दोलन भी आरभ कर दिया। इस वजह से उसन शस्त्र उत्पादन म किसी भी तरह की

बाधा डालने का विरोध किया। इन प्रश्नो के बारे मे कम्युनिस्टो और काग्रेस सदस्यो के बीच तथा कम्युनिस्टो और अन्य विभिन्न वामपथी समूहो मुख्यतया त्रोत्स्कीपथी समूहो के बीच भीषण विचारधारात्मक सघर्ष शुरू हो गया।

कानपुर मे *अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस* के १९ वे सम्मेलन (फरवरी १९४२) मे युद्ध के निहितार्थो के मूल्याकन तथा ब्रिटेन के युद्ध प्रयास के प्रति रुखो मे मतभेदो के परिणामस्वरूप वामपथी-रेडिकल पक्ष, जिसमे मुख्यतया एम० एन० राय और वी० वी० कार्णिक आदि के नेतृत्व मे बगालवाले थे, अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस से निकल आया। अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस से अलग होनेवाले इन नेताओ ने भारतीय मजदूर सघ (*इडियन लेबर फेडरेशन*) के नाम से अपना सगठन कायम किया, जिसका अर्थ देश के मजदूर आदोलन मे एक नयी फूट थी।

राष्ट्रीय आदोलन मे बढते विचारधारात्मक और राजनीतिक मतभेदो, ट्रेड-यूनियन आदोलन मे फूट और राष्ट्रीय सगठनो के कार्यकर्ताओ की बडी सख्या मे गिरफ्तारी – इन सबका मजदूर वर्ग के सघर्ष पर नकारात्मक प्रभाव पडा। पूर्ववर्ती वर्ष के मुकाबले मे हडताल-आदोलन मे उल्लेखनीय ह्रास आया।

१९४१ के अत मे युद्ध मे सैन्यवादी जापान के प्रवेश ने एशिया मे ब्रिटेन के उपनिवेशो पर तत्काल आक्रमण का खतरा उत्पन्न कर दिया। एशिया मे सामरिक स्थिति मे इस परिवर्तन और विदेशो मे ब्रिटिश सरकार पर डाले गये प्रत्यक्ष दबाव ने उसे भारत मे नयी राजनीतिक चाले शुरू करने के लिए बाध्य कर दिया।

दिसम्बर १९४१ मे सत्याग्रह आदोलन मे भाग लेने के लिए गिरफ्तार किये गये अधिकाश लोगो को रिहा कर दिया गया और मार्च १९४२ मे सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को काग्रेस नेताओ के समक्ष नये ब्रिटिश प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए एक विशेष मिशन के साथ भारत भेजा गया। ये प्रस्ताव सक्षेप मे निम्नलिखित थे १) युद्ध के दौरान भारत मे यथास्थिति बनी रहेगी, लेकिन युद्ध के बाद उसे डोमीनियन पद – औपनिवेशिक स्वशासन – दे दिया जायेगा, २) युद्ध के तत्काल बाद चुनाव होगे, जिनमे निर्वाचित विधानमडलो द्वारा सविधान सभा के प्रतिनिधि चुने जायेगे, जिसमे अपने शासको द्वारा नियुक्त देशी रियासतो के प्रतिनिधि भी होगे। सविधान सभा देश का नया सविधान तैयार करेगी, ३) कुछ प्रात और देशी राज्य ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर स्वतत्र औपनिवेशिक राज्य रह सकेगे।

इस प्रस्ताव म भारतीय उपमहाद्वीप के छोटे छोट परस्परविरोधी राज्या म विभाजन क ब्रिटिश शासक हलको द्वारा समर्थित सिद्धातो को पहली बार स्पष्टत सूत्रित किया गया था।

क्रिप्स द्वारा काग्रेस नेताओ पर अन्य राजनीतिक सगठनो, विशप रूप स साम्प्रदायिक पार्टियो क नताओ के ज़रिये डलवाये गये दबाव के बावजूद इन प्रस्तावा को अस्वीकार कर दिया गया। क्रिप्स मिशन पूणत विफल रहा।

१६४२ के वसत ओर ग्रीष्म मे बढता ब्रिटिशविरोधी सघर्ष

मार्च १६४२ म बर्मा पर जापानी आक्रमण तथा तेजी से जीते जान क परिणामस्वरूप युद्ध का खतरा शीघ्र ही भारत के दरवाज पर आ पहुचा। बर्मा म ब्रिटिश सना की पराजय कुछ आग्ल भारतीय टुकडिया के बदी बना लिय जान तथा अग्रजो के आतक मे भारत तक पीछ हट आन – इस सबन यही प्रदर्शित किया कि औपनिवशिक तत्र जापानी आक्रमण से द‍ेश की रक्षा क लिए अच्छी तरह तैयार नही था और साथ ही विद्यमान राजनीतिक तनाव को भी और सगीन बनाया।

इस स्थिति म राष्ट्रीय काग्रेस की नीति म भी परिवर्तन लक्षित हान लगा और सघर्ष क अधिक सक्रिय रूपो को अपनाया जान लगा। अप्रैल, १६४२ म साप्ताहिक हरिजन म प्रकाशित एक लेख म गाधीजी न पहली बार भारत छोडो! का नारा दिया, जो इस माग का सूचक था कि भारत को तत्काल स्वतत्रता प्रदान की जानी चाहिए। काग्रस कार्यसमिति न ६ जुलाई का वर्धा (बम्बई प्रात) म अपनी बैठक म स्वीकृत प्रस्ताव म ब्रिटिश सशस्त्र फौजा द्वारा भारत की रक्षा किये जान क लिए सहमति प्रकट की लकिन साथ ही 'भारत छोडो!' नार का भी अनुमादन किया।

इस प्रस्ताव क सिलसिले म गाधीजी न घोषणा की कि उस क्रियान्वित करन का सघर्ष, जा व्यापक सविनय अवज्ञा आदोलन का रूप लगा, वह अहिसा की सीमाओ स बाहर जा सकता है। यह अग्रजो को सबोधित सीधी धमकी थी।

७ अगस्त का बम्बई म अखिल भारतीय काग्रस समिति क अधिवशन न नया असहयाग आदोलन शुरू करन का निणय किया। लकिन अगल दो दिना क भीतर गाधीजी सहित काग्रस नताओ तथा प्रातीय सगठना के नताओ का औपनिवशिक शासन का तख्ता उलटन का षड्यत्र रचन क आराप म

गिरफ्तार कर लिया गया। यह आरोप पुलिस द्वारा गढे गय झूठे प्रमाणो पर आधारित था। इसके बाद काग्रेस को अवैध घोषित कर दिया गया और उसके कार्यकलाप पर प्रतिवध लगा दिया गया।

देश पर मडराते जापानी आक्रमण की घडी मे काग्रेस नेताओ की गिरफ्तारी से व्यापक पैमाने पर स्वत स्फूर्त ब्रिटिशविरोधी प्रदर्शनो का सिलसिला शुरू हो गया। अगस्त तथा सितम्बर क प्रारभ म देश के अनेक भागो म स्वत स्फूर्त विरोध प्रदर्शन और हडताले शुरू हो गयी। युवको के दलो ने – ज्यादातर वामपथी काग्रेसियो के नेतृत्व मे – सैकडो रेलव स्टेशनो, डाकखानो और पुलिस चौकियो पर हमले किये, सचार-साधनो को नष्ट किया और सडक तथा रेल पुलो को उडा दिया। विहार सयुक्त प्रात क पूर्वी भाग और बम्बई के सतारा जिले म इन बलवो का पैमाना खासकर वहुत व्यापक था। बलिया और आजमगढ जिले (सयुक्त प्रात) मे औपनिवशिक प्रशासन के ताजीरी दस्तो के खिलाफ बाकायदा छापामार युद्ध शुरू हो गया।

लेकिन यह सारी हलचल स्वत स्फूर्त थी और कोई सयुक्तकारी केन्द्र न होने क कारण समन्वित नही थी। साधारण हथियारो स लैस विद्रोही औपनिवशिक शासन के सैनिको और पुलिसवालो क आक्रमण को न झेल सके। अधिकारियो ने ब्रिटिशविरोधी प्रदर्शनो मे भाग लेनेवालो से निर्मम प्रतिशोध लेना शुरू किया। दो हजार स अधिक लाग मारे गये और लगभग ६० हजार गिरफ्तार कर लिये गये। अनक स्थानो म वदी शिविर कायम किये गय जिनम स्वतत्रता सेनानियो को बद कर दिया गया।

१६४२ की "अगस्त क्राति (यह आदोलन इसी नाम से प्रसिद्ध हुआ) पराजय मे समाप्त हुई। लेकिन यह राष्ट्रीय आदोलन म आय महत्वपूर्ण मोड को गाधीजी के अहिसा सिद्धात की भावना म पतन क बावजूद उसके सदस्यो की स्वाधीनता के लिए सघर्ष मे हथियार उठाने की तत्परता को प्रतिबिंवित करती थी।

इस समय मजदूर वर्ग के आर्थिक सघर्ष म भी कुछ तजी आयी – १६४२ मे हडतालो की सख्या पूर्ववर्ती वर्ष म ३५६ स बढकर ६६४ तथा उनम भाग लेनेवालो की सख्या २ ६१ ००० स वढकर ७,७२ ००० हो गयी, जब कि नष्ट श्रम दिवसो की कुल सख्या ३० ००,००० म बढकर ५७ ००,००० हो गयी।

सयुक्त प्रात, विहार उत्तर-पश्चिम सीमात प्रात बगाल और उडीसा म जमीदारो के खिलाफ किसान प्रदर्शनो म भी वृद्धि आयी।

इधर श्रमजीवी जनता के जन-सघर्ष में चढाव आ रहा था और उधर देश की आर्थिक स्थिति लगातार बिगडती जा रही थी।

युद्ध के अतिम वर्षो (१९४३–१९४५) मे आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति

पूर्वी भारत मे अकाल। किसान सघर्ष

१९४३ और १९४४ म भारत के अनेक क्षेत्रो मे खराब फसल के परिणामस्वरूप खाद्य-भडारो मे भारी गिरावट आयी और व्यापक अकाल फैल गया जो बगाल और बिहार तथा ओडिसा के कुछ भागो म विशेष रूप स गभीर था। १९४३–१९४४ का अकाल इतना स्थानीय पैदावार की कमी के कारण नही था जितना ब्रिटिश प्रशासन की खराब वितरण व्यवस्था तथा खराब फसल के बावजूद अनाज के निर्यात के कारण – स्वय भारत मे ४० लाख टन अनाज की कमी होने पर भी १० लाख टन अनाज का निर्यात कर दिया गया।

खाद्य पदार्थो की कीमत तेजी से बढने लगी और १९४३ के मध्य तक वे युद्ध पूर्व स्तर से दसगुनी अधिक हो गयी। इस मूल्य वृद्धि के पहले शिकार ग्रामीण क्षत्रो सहित भारतीय समाज के निर्धन सस्तर थे, जहा किसाना क व्यापक निर्धनीकरण का अर्थ यह था कि साहूकारा से ज्यादा कर्ज लिय जा रहे थ और बडी सख्या मे जोते जमीदारा और साहूकारो के हाथो म जा रही थी।

अकाल म ५० लाख लोगो की जान गयी। सयुक्त प्रात और पूर्वी भारत क बड भाग पर फैल व्यापक अकाल के दिनो म इन क्षेत्रो मे किसान-आदोलन म अवनति आयी। किसान आदोलन का केन्द्र अब दक्षिण – तमिलनाडु और करल – हो गया था। वहा और बाद म पुन बगाल म किसान सघर्ष नय रूप लेन लगा – किसाना ने जमीदारो की परती जमीना का जोतना और उनके अनाज भडारो पर कब्जा करना शुरू कर दिया। इस जन आदोलन के विकास पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी क वैधीकरण स सबद्ध घटनाओ का प्रभाव पडा था।

जुलाई १९४२ मे ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारिया ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पर से पाबदी उठा ली। इस कदम का कारण बडी सीमा तक १९४१ के शरद के बाद युद्ध के प्रति भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी क रुख म परिवर्तन था। भारतीय कम्युनिस्टो द्वारा नयी स्थिति म "जन युद्ध" का नारा दिये जाने और देश म शस्त्र-उत्पादन को बढान म सहायता करने के निश्चय क दृष्टिगत उनके कार्यकलाप को वैध बनान का कदम युद्ध काल के सबस भीषण वर्ष – १९४२— म मित्र-राष्ट्रो के लिए एशियाई पृष्ठभाग के सुदृढीकरण म निस्सदिग्ध रूप म सहायक हुआ। ब्रिटेन के शासक हलको के इस कदम का अतर्राष्ट्रीय पहलू भी था – यह सोवियत सघ के प्रति सदभावना का परिचायक था।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकलाप पर से पाबन्दी उठाते समय औपनिवशिक अधिकारियो न यह भी सोचा था कि इससे राष्टीय आदोलन मे फूट पैदा होगी और कानूनी भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी प्रतिबधित राष्टीय काग्रस का विरोध करेगी। बेशक भारतीय कम्युनिस्टो के सामन इस समय बहुत ही कठिन स्थिति थी जो उनसे ऐसी कारगर कार्यनीति निकालने की अपक्षा करती थी कि फासिस्ट गुट के खिलाफ सघप मे एक्यबद्ध राष्टो के साथ-साथ ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ सघर्ष म भारत की जनता के हितो का भी साधन करे।

काग्रेस के विपरीत भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी न ब्रिटिश युद्ध प्रयास के समर्थन को उत्तरदायी शासन की स्थापना तथा अन्य बडी राजनीतिक रिआयतो की शर्त से प्रतिबधित नही किया था। लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी राष्ट की मुख्य मागो, विशेष रूप से इस माग का समर्थन करती रही कि राष्ट्रीय सरकार की अविलब स्थापना की जानी चाहिए। उसन बिलकुल स्पष्टत कहा कि सिर्फ ऐसी सरकार ही फासिज्म तथा जापानी सैन्यवाद के खिलाफ सघर्ष मे भारत के सभाव्य ससाधनो का पूरा उपयोग कर सकेगी।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी न राष्टीय आदोलन के भीतर विभिन्न शक्तिया की सयुक्त कार्रवाई को साम्राज्यवाद क खिलाफ सघर्ष की सफलता की सबसे महत्वपूर्ण पूर्वावश्यकता बतलाया। भारतीय कम्युनिस्टो न काग्रेस और मुस्लिम लीग क बीच समझौते को इसी दृष्टिकोण से आवश्यक माना था।

लेकिन जैसा कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी न बाद म स्वीकार भी

किया, इस विशेष अवस्था म पार्टी के राजनीतिक कार्यक्रम तथा कार्यनीति क अमल म कुछ ऐसी गलतिया की गयी, जिन्होने साम्राज्यवादविरोधी शक्तियो की एकता को बढावा देन के बजाय कमजोर बनाया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति न "अगस्त क्राति" के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया और आबादी के मुस्लिम बहुल क्षेत्रो मे सप्रभु राज्य की स्थापना के बारे मे मुस्लिम लीग के लाहौर प्रस्ताव का समर्थन किया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति द्वारा सितबर, १९४२ म स्वीकृत एक प्रस्ताव के बावजूद, जिसम गाधीजी तथा अन्य नताओ की रिहाई दमनकारी कारवाइया की समाप्ति, राष्ट्रीय काग्रेस के वैधीकरण और अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की माग की गयी थी, भारतीय कम्युनिस्टो और काग्रेसी नताओ के बीच सबध लगातार बिगडते गये। अशत इसका कारण १९४२-१९४५ मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा सार्वजनिक सगठनो के भीतर अपना प्रभाव विस्तारित और मजबूत करने मे प्राप्त भारी सफलताए था।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकलाप पर से पाबदी उठायी जाने के बाद के प्रारभिक महीनो मे इसके सदस्यो को बहुत कठिन परिस्थितियो म काम करना पडा था। केन्द्रीय समिति के बहुत से नेता अब भी जेल म थे। लेकिन औपनिवेशिक सरकार के खिलाफ सशस्त्र सघर्ष पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की आधिकारिक नीति के बावजूद १९४२ की गरमियो म दश के कई भागो म बडी सख्या मे उसके कार्यकर्ताओ को गिरफ्तार किया गया जो न्यूनाधिक रूप म ऐसी कार्रवाइयो म शामिल थे। फिर भी पार्टी के वैधीकरण के परिणामस्वरूप पार्टी के कार्यकलाप की परिस्थितियो म मूलभूत परिवर्तन आ गया। सर्वोपरि इसका अर्थ यह था कि अब पार्टी पत्र पत्रिकाओ का नियमित प्रकाशन सभव हो गया था।

जुलाई १९४२ म पार्टी ने पहले अग्रेजी मे और बाद मे ग्यारह भारतीय भाषाओ म 'पीपुल्स वार' (जन-युद्ध) नामक साप्ताहिक निकालना शुरू किया, जो व्यवहार म पार्टी का सामूहिक समन्वयकर्ता था। बम्बई म, जहा पार्टी का मुख्यालय था पार्टी के प्रकाशनगृह द्वारा विभिन्न प्रचार पुस्तिकाओ और पाठय सामग्री का प्रकाशन होने लगा। औपनिवेशिक अधिकारियो की लगायी पाबदियो के बावजूद समाचारपत्र के पृष्ठो म मजदूर, किसान और जनवादी आदोलनो के बारे मे सूचनाओ को विस्तृत स्थान दिया जाता था। वह पाठको को द्वितीय विश्व युद्ध के विभिन्न मोर्चो पर स्थिति तथा लाल सेना द्वारा फासिस्ट आक्रमणकारियो के खिलाफ चलाय जा रह वीरतापूर्ण

सघर्ष क बारे म सूचना देता था। इस अखवार का प्रकाशन शुरू होने क कुछ ही वाद से औपनिवशिक अधिकारियो क दमन – जुमाने, प्रतियो की जब्ती मुद्रणालय और सपादकीय कार्यालय की तलाशी पार्टी प्रकाशनो क वितरण म लगे लोगो की गिरफ्तारी आदि – का शिकार बनाया जाने लगा। प्रतिक्रियावादी गिरोहा न प्रेस पर हमले किये और उस जला देने की कोशिश की। इन बाधाओ के बावजूद पीपुल्स वार' आम श्रमजीवी जनता क बीच वैज्ञानिक कम्युनिज्म के विचारो का प्रचार करता रहा।

२३ मई १९४३ को वम्वई म भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का पहला सम्मेलन हुआ। इसन पार्टी के राजनीतिक कार्यक्रम का सूत्रीकरण किया और पी० सी० जोशी के नतृत्व म नयी केद्रीय समिति को चुना। अपने वैध कार्यकलाप क पहल वर्ष म ही भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्य सख्या म वृद्धि (१९४२ म ४००० स मई १९४३ म १६ ०००) हुई। अगले वर्षो म पार्टी की सदस्य-सख्या तथा उसका जन आधार निरतर बढता गया जनवरी, १९४४ म पार्टी की सदस्य-सख्या ३०,००० हो गयी थी और १९४६ क मध्य मे वह बढकर ५३ ००० तक पहुच गयी थी।

१९४३–१९४५ मे जन आदोलन

कम्युनिस्ट अपने जन आधार क विस्तार और सुदढीकरण को अपना मुख्य कार्यभार मानते थे। टेड-यूनियन किसान और अन्य जन सगठनो मे उनके प्रभाव म केवल काग्रेसिया और सबसे पहले काग्रेस समाजवादिया ही नही, बल्कि अन्य राजनीतिक समूहो के साथ सघष की पृष्ठभूमि मे वृद्धि हो रही थी।

मई, १९४३ मे नागपुर मे अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस के २०वे अधिवशन म न तो राष्ट्रीय काग्रस के समर्थको द्वारा प्रस्तावित राजनीतिक प्रस्ताव और न ही कम्युनिस्टो द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को घाषणापत्र मे निधारित बहुमत प्राप्त हो सका। यह तथ्य आम जनता पर प्रभाव के लिए सगठन म प्रमुख प्रतिद्वद्वियो के बीच शक्ति सतुलन का सूचक था। कम्युनिस्टो की स्थिति के सुदृढीकरण का एक सकेत एस० ए० डागे का अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस के अध्यक्ष पद पर तथा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी क एक जनवादी समर्थक एन० एम० जोशी का महासचिव के पद पर चुना जाना था।

ट्रेड यूनियन कांग्रेस के भीतर आंतरिक संघर्ष तथा १९४१ में स्थापित इंडियन लेबर फेडरेशन (भारतीय मजदूर संघ) के विरोधी रवैये का भी मजदूर वर्ग के आर्थिक संघर्ष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। १९४१-४२ की तुलना में १९४३ में नष्ट श्रम दिवसों की कुल संख्या घटकर २३,००,००० और अगले वर्ष ३४,००,००० हो गयी। इन दो वर्षों में मात्र पांच लाख से कुछ अधिक नौकरीपेशा कर्मचारियों और मजदूरों ने ही संगठित हड़तालों में भाग लिया।

युद्ध के अंतिम वर्षों में संगठित हड़तालों की दूसरी मुख्य विशेषता उनकी अपेक्षाकृत अल्प अवधि थी। इसका कारण अंशतः मजदूरों की १९४३-१९४४ के अकाल वर्षों में कठिन अवस्था और अंशतः औपनिवेशिक अधिकारियों की मजदूरविरोधी नीति भी थी। १९४२ और १९४३ में भारत रक्षा अधिनियम (डिफेंस आफ इंडिया ऐक्ट) में विशेष संशोधनों द्वारा हड़तालों को व्यवहार में वर्जित कर दिया गया। अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन द्वारा की गयी सिफारिशों के अनुसार श्रमिक विवादों के विभिन्न पहलुओं, विशेष रूप से श्रम कानून पर विचार विमर्श के लिए विशेष व्यवस्थाएं की गयी थीं : त्रिपक्षीय श्रम-सम्मेलन, जिनमें २० लोगों – अधिकारियों द्वारा मनोनीत दस तथा नमश: नियोक्ता संगठनों और ट्रेड यूनियनों द्वारा मनोनीत पांच पांच – को भाग लेना था।

लेकिन सरकार द्वारा लगाये पूर्ण प्रतिबंध के बावजूद हड़ताल जारी रही और युद्ध के अंत तक हड़ताल आंदोलन और भी व्यापक होने लग गया था। अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस के नेतृत्व में मजदूर वर्ग का आर्थिक संघर्ष नागपुर सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव पर आधारित था, जिसमें जमाखोरों की कारगुजारियों को रोकने तथा बढ़ती कीमतों के दृष्टिगत मजदूरों के लिए बोनस की मांग की गयी थी। इस अवधि में अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस की स्थिति में काफी सुधार आया था – मई १९४३ और मार्च १९४५ के बीच इससे संबद्ध ट्रेड यूनियनों की संख्या २९६ से बढ़कर ४७५ और उनकी सदस्य संख्या ३,३२,००० से बढ़कर ५,०९,००० हो गयी थी।

इसके साथ ही कम्युनिस्ट अखिल भारतीय किसान सभा से संबद्ध किसान संघों में भी अपना कार्य तेज कर रहे थे। १९४१-१९४२ में पहले कांग्रेस समाजवादियों ने और फिर फारवर्ड ब्लाक के सदस्यों ने किसान सभा छोड़ दी और इनके बाद एन० जी० रंगा के नेतृत्व में एक दक्षिणपंथी गुट भी उससे अलग हो गया। किसान संघों में इस फूट के परिणामस्वरूप किसान सभा की सदस्य संख्या में जबरदस्त गिरावट – युद्ध के ठीक पहले ८,००,०००

क मुकाबले १९४२ म २ २५ ०००– आयी। फिर भी कम्युनिस्टो और किसान आदोलन क इन्दुलाल यानिक, स्वामी सहजानद सरस्वती और कार्यानन्द शर्मा जैस पुराने नेताओ के नतृत्व म जनवादी विचारो के गैर पार्टी कायकर्ताओ क, जो कम्युनिस्टो क साथ सहयोग के लिए तैयार थे किये गय सगठनात्मक कार्य के परिणामस्वरूप किसान सघो के प्रभाव म स्पष्ट वृद्धि आयी। यह अशत किसान सभा द्वारा व्यापक कृषक वर्ग, विशेष रूप से छोटी जातोवाले या असामी काश्तकारो के आर्थिक हितो के सक्रिय समथन के कारण भी था। शीघ्र ही किसान सभा की सदस्य सख्या म पुन तजी से वृद्धि आने लगी मार्च १९४५ म इसके ८,२५ ००० सदस्य थे। मार्च १९४५ मे बगाल क मैमनसिह जिले के नत्रकोना गाव म इस सगठन क अधिवशन म कम्युनिस्ट आदोलन के एक पुराने नेता मुजफ्फर अहमद को इसका अध्यक्ष चुना गया।

१९४३–१९४४ म किसान सघष जिन क्षेत्रो म विशेषकर सक्रिय था उनमे मुख्य बगाल बिहार और पजाब के अलावा दक्षिण म मद्रास प्रात मे तजौर उसक तेलुगु भाषी उत्तरी जिले और मलयाली बहुल मलाबार थे। इन सघर्षो म सबसे सक्रिय असामी किसान थे जिन्होने कवल पट्टे की अलाभकारी शर्ता म परिवर्तनो की माग ही नही की बल्कि खेतीयोग्य जमीनो पर खुल्लमखुल्ला कब्जा करना भी आरभ कर दिया।

मजदूर वर्ग और किसानो के जन सघर्ष अखिल भारतीय टेड यूनियन काग्रेस और किसान सभा के सक्रिय कार्यकलाप तथा कम्युनिस्टो के नतृत्व म युवा (छात्र) और महिला सगठनो के लगातार बढत कार्य के दौरान काग्रेस समाजवादियो के वाम पक्ष क अनेक प्रतिनिधि धीरे धीरे वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धातो को स्वीकार करने लगे और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी म शामिल हो गये। युद्धकालीन वर्षो के दौरान यह प्रक्रिया सयुक्त प्रात और देश के दक्षिणी क्षत्रो – आध्र तथा केरल – मे विशेषकर सुस्पष्ट थी।

युद्ध की समाप्ति के समय देश मे राजनीतिक स्थिति

इस तथ्य क दृष्टिगत कि दमनकारी उपायो क बावजूद जन आदोलन का जोर बधा हुआ था और वामपथी शक्तिया जन सगठनो म अपनी स्थिति मजबूत कर रही थी ब्रिटिश साम्राज्यवादियो को युद्ध की समाप्ति पर नयी राजनीतिक जोड-तोड शुरू करनी पडी। अक्तूबर, १९४३ म अत्यत अलोकप्रिय

वाइसराय लिनलिथगो की जगह ववल आया। ६ मई, १९४४ का गाधीजी तथा अन्य काग्रेसी नताओ को रिहा कर दिया गया।

राजनीतिक पहलकदमी अपन हाथो म लन क लिए ब्रिटिश अधिकारिया न वेवेल की मध्यस्थता से भारत की युद्धात्तरकालीन राजनीतिक व्यवस्था पर गाधीजी और जिन्ना के बीच अनक वाताआ का आयाजन किया। इन वार्ताआ के दौरान अग्रजा के लिए काग्रस और मुस्लिम लीग क बीच मतभदा को और भी उग्र बनाना सभव हा गया।

जनमत काग्रस और मुस्लिम लीग क बीच समझौत करन का तकाजा कर रहा था। इसलिए जनमत क दबाव स सितम्बर १९४४ म दोना सगठना क नताओ के बीच वाताआ का दूसरा दौर चला। इस बार मध्यस्थता का काम तथाकथित 'सप्रू समिति' कर रही थी (जिस यह नाम अपन अध्यक्ष और लिबरल फडरेशन क नता मर तजबहादुर सप्रू से मिला था)।

राष्ट्रीय काग्रेस क एक नता चक्रवर्ती राजगोपालाचारी न जिन्ना क पास प्रस्ताव भेज जो सक्षप म य थ १) राष्ट्रीय काग्रस को पाकिस्तान क निर्माण के लिए सहमत हो जाना चाहिए, लेकिन स्वतत्रता प्राप्ति क बाद ही २) पाकिस्तान का प्रश्न जनमत-सग्रह द्वारा तय किया जाना चाहिए ३) दश म अतिम राजनीतिक व्यवस्था स्थापित होने तक एक अस्थायी सरकार कायम की जानी चाहिए जिसम मुस्लिम लीग की भागीदारी अनिवार्य होनी चाहिए।

अगस्त, १९४४ म कराची म मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी परिषद की बैठक ने प्रस्ताव स्वीकार करक मुहम्मद अली जिन्ना को गाधीजी के साथ वार्ता करने का अधिकार प्रदान किया। दोनो नताओ के बीच बातचीत पत्रव्यवहार द्वारा (२१ सितबर से २७ सितबर तक) हुई। इसका कोई परिणाम नही निकला क्योकि जिन्ना न काग्रेस द्वारा स्वतत्रता प्राप्ति के पहले ही पाकिस्तान के सिद्धात को राजनीतिक समाधान की शर्त के रूप मे स्वीकार किये जान पर जोर दिया।

लेकिन काग्रस और लीग क निम्नस्थ सगठनो क दबाव से, जिनम एकता की आकाक्षा धीरे धीरे बलवती होती जा रही थी मुस्लिम लीग के महासचिव लियाकतअली खा और केन्द्रीय विधान सभा मे काग्रेस पार्टी के नता भूलाभाई देसाई क बीच भारत म भावी अस्थायी सरकार के गठन के निम्नलिखित सिद्धातो के सबध म एक समझौता हुआ १) दोनो राजनीतिक सगठना को इसक भीतर ४० प्रतिशत स्थान मिलने चाहिए २) बाकी स्थान धार्मिक

स्वतत्रता-सघर्ष की आखिरी मजिल
(१९४५–१९४७)

१९४५–१९४६ मे जन-आदोलन और ब्रिटिश साम्राज्यवादियो की राजनीतिक जोडतोड

युद्ध क अत म अतराष्ट्रीय क्षेत्र म अनक कारक – नात्सी जर्मनी और इसक मित्र-राष्ट्रा की पराजय, सावियत मघ, जिसन फासिस्ट आक्रमण कारिया की पराजय म सबस महत्वपूण योगदान किया था की अतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा तथा प्रभाव म अपार वृद्धि सोवियत सना द्वारा मुक्त मध्य और दक्षिण पूर्वी यूरोप के देशा म शुरू हानवाल क्रातिकारी परिवर्तन और पश्चिमी यूरोप क देशा म जनवादी शक्तियो का सुदृढीकरण – भारत क मामला पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालन लग। अफ्रीका और एशिया म औपनिवशिक शक्तियों की क्षीण हुई स्थिति जा युद्ध के दौरान महसूस की जान लगी थी अब समग्र साम्राज्यवादी औपनिवशिक प्रणाली क निरतर बढत सकट को प्रतिबिंबित करन लगी।

जापानी आक्रमणकारिया को खदेड बाहर करन तथा ब्रिटिश फ्रासीसी और डच पूजीवादी वर्ग द्वारा दक्षिण पूर्वी एशिया के देशो म पुरानी औपनिवेशिक व्यवस्था पुन स्थापित करन के प्रयासो का प्रतिरोध करन क सघर्ष न स्वय भारत क भीतर भी राजनीतिक स्थिति को क्रातिकृत कर दिया।

देश म बढत वर्गीय और राष्ट्रीय अतर्विरोध युद्धकालीन वर्षो म आये आर्थिक परिवर्तना स भी सबद्ध थ।

रिक गतिविधिया वढती गयी और भारतीय पूजीवादी वर्ग की स्थिति अधिका धिक दृढतर होती गयी। युद्ध के दौरान ब्रिटिश पूजी-प्रत्यावर्तन तेज हो गया था और व्यापार तथा उद्योग के कई क्षेत्रो मे उसकी इजारेदारी अब विलकुल खत्म हो चुकी थी।

भारत और ब्रिटेन के बीच वित्तीय निपटान म भी महत्वपूर्ण परिवर्तन आ गये थे। १६३६ म भारतीय सैनिक पूर्ति के भुगतान के सबध म एक विशेष आग्ल-भारतीय करार हुआ था जिसके अनुसार ब्रिटिश सरकार उन्हे उधार लेती थी और यह रकम बैक आफ इगलैड म विशेष उधार खातो म डाल दी जाती थी। इस प्रकार ब्रिटिश पूजीवादी वर्ग के लिए युद्ध के दौरान ब्रिटेन क बजट पर बिना कोई अतिरिक्त भार डाले भारत के भौतिक और मानव-शक्ति ससाधनो का अधिकतम उपयोग करना सभव हो गया था। साथ ही ब्रिटेन के भारतीय लोक 'ऋण" को, जो १६वी शताब्दी से मौजूद था भारतीय पाड पावन के भाग के नाते बट्टे खाते म डाल दिया गया था। इस ऋण म औपनिवेशिक युद्धो, आदि पर होनेवाला व्यय शामिल था जिसे ब्रिटिश सरकार भारत द्वारा किये गये खर्चों के रूप मे दिखाती थी। निरुद्ध स्टर्लिंग पावने द्वारा, जो १६४५ म १०० करोड पौड से अधिक हो चुका था ब्रिटेन भारत क युद्धोत्तर आर्थिक विकास की दिशा पर प्रभाव डाल सकता था। फिर भी विदेशी मुद्रा की विशाल निधि के होने तथा भारतीय ऋण' क परिसमापन ने निस्सदिग्ध रूप मे राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग की आर्थिक स्थिति के सुदढीकरण म सहायता की।

द्वितीय विश्व युद्ध क दौरान अमरीकी पूजीपतियो ने ब्रिटेन के समक्ष प्रस्तुत आर्थिक, सैनिक तथा राजनीतिक समस्याओ और जापानी प्रतियोगिता की अनुपस्थिति से लाभ उठाते हुए भारतीय बाजार मे पूरी शक्ति से प्रवेश करने का प्रयास शुरू किया। युद्ध के दौरान भेजे गये अमरीकी आर्थिक और तकनीकी प्रतिनिधिमडलो, उधार पट्टा हस्तातरणो (लैड लीज डिलीवरी) तथा अन्य साधनो के जरिये अमरीकी पूजीवादी वर्ग न देश की अर्थव्यवस्था का व्यापक अध्ययन किया और भारतीय उद्योगपतियो तथा व्यापारियो के साथ सपर्क स्थापित किया। युद्ध की समाप्ति तक भारतीय निर्यात म अमरीका का हिस्सा ८ प्रतिशत से बढकर २१ प्रतिशत तथा आयात म ६ प्रतिशत स बढकर २५ प्रतिशत हो गया था। भारतीय मडी म ब्रिटेन और अमरीका के बीच वढती प्रतियोगिता ब्रिटिश इजारेदारियो के मुकाबले मे राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग की स्थिति को मजबूत बनाने मे सहायक हुई।

फौजी आर्डरो की बदौलत मालामाल होनेवाला भारतीय राष्ट्रीय पूजी वादी वर्ग (यह बात इसके ऊपरी सोपानो के बार मे विशेषकर सही थी) औपनिवेशिक शासन मे अतर्निहित दमनात्मक प्रतिबधो को अच्छी तरह स समझता था जो उसकी सचित पूजी के उत्पादक विनियोग मे बाधक थ और भारतीय पूजीवादी उद्यम के स्वतत्र विकास म आडे आते थे। १९४४ म शुरू होनेवाले औद्योगिक उत्पादन के ह्रास न इन अतर्विरोधा को और उग्र बनाया।

बढते वर्ग अतर्विरोध

फौजी आर्डरो के बद होन क परिणामस्वरूप उत्पादन गिरा कारखान बद हुए और व्यापक पैमान पर बरखास्तगिया हुइ। मालिको न बोनस और महगाई भत्ता देने से इन्कार करके अपने घाट का मजदूर वर्ग के कधा पर डालने की कोशिश की। छोटे कारखाना के दस्तकारो और मजदूरो की हालत और भी खराब थी क्योकि छोट पैमाने के उत्पादन पर बाजार म आयी मदी का विशेषकर प्रतिकूल प्रभाव पडा था। १९४३–१९४४ म किसानो के अकालपीडित गावो से सामूहिक पलायन की वजह से बेरोजगारो की सख्या म काफी वृद्धि हुई, जिसका उजरती श्रम की अवस्थाओ पर तत्काल बुरा असर पडा।

१९४४-४५ म खाद्य तथा नकदी फसला की खराब पैदावार से खाद्य तथा कई प्रकार के कच्चे मालो का अभाव उत्पन्न हो गया। अधिकारियो को भी लगभग दस करोड लोगो की आबादी के इलाके म अकाल के खतर को स्वीकार करना पडा। खाद्य तथा अन्य आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओ क अभाव के कारण कीमता और जमाखोरी म और वृद्धि हुई जिन्होने शहरा और देहात म मजदूरो नौकरीपेशा लोगो और श्रमजीवी जनता के अन्य सस्तरो की आर्थिक कठिनाइया को और बढाया।

अधिकाश आबादी की आर्थिक स्थिति के ह्रास न वर्ग अतर्विरोधा को और तेज किया। व्यापक असतोष के वातावरण म जन सगठना की हलचल बढने के परिणामस्वरूप देश मे वर्ग सघर्ष म अनिवार्यत और तेजी आयी।

भारतीय समाज के सभी सस्तरो म औपनिवेशिक शासन को समाप्त करने की आवश्यकता की चेतना तेजी से बढती जा रही थी। यही कारण था कि देश म वर्ग सघर्ष निश्चित रूप से साम्राज्यवादविरोधी स्वरूप ग्रहण करता जा रहा था। भारत म ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को अब सिर्फ जमीदारा राजाओ और पूजीवादी वर्ग के देशी दलाल तत्वो का ही समर्थन प्राप्त था।

भारत म अपना औपनिवेशिक शासन बनाये रखने क प्रयास म ब्रिटिश शासक हलके अपनी आशाए मुख्य राजनीतिक पार्टियां – काग्रेस और मुस्लिम लीग – के बीच मतभेदा को बढाने पर केंद्रित किये हुए थ। मई, १९४५ म वेवेल ने लदन की यात्रा क बाद वाइसराय क अधीन भारतीय राजनीतिक पार्टियां क प्रतिनिधियो से गठित कार्यकारिणी परिषद स्थापित करन की योजना की घोषणा की। जून म उसन भारत की तत्कालीन ग्रीष्मकालीन राजधानी शिमला म काग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियां के साथ बातचीत की। सम्मेलन क पहले काग्रेस नेताओ – जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल मौलाना आजाद – को रिहा कर दिया गया था, जिसम गाधीजी ने और उन्होन भाग लिया।

वेवल न कार्यकारिणी परिषद के गठन की अपनी योजना प्रस्तुत की, जो लियाकतअली खा और भूलाभाई देसाई द्वारा प्रस्तावित समाधान से भिन्न नही प्रतीत होती थी। लेकिन वेवेल क प्रस्तावो मे यह व्यवस्था थी कि परिषद म स्थान राजनीतिक पार्टियो के लिए नही, बल्कि धार्मिक समुदायो के लिए सुरक्षित होग। यह दोनो पार्टियो के लिए अस्वीकार्य था। राष्ट्रीय काग्रेस अपने को कोई हिन्दू सगठन नही बल्कि वस्तुत राष्ट्रव्यापी धर्म निरपेक्ष सगठन मानती थी। दूसरी तरफ मुस्लिम लीग भारतीय मुसलमाना का एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा करती थी और इसलिए वह इसके लिए सहमत नही हुई कि काग्रेस के मुस्लिम सदस्यो को परिषद मे शामिल किया जाय। इसके अलावा यह सुझाव था कि प्रस्तावित कार्यकारिणी परिषद केवल ब्रिटिश ताज और ससद क प्रति जिम्मेदार होगी।

शिमला वार्ता असफल रही। लेकिन औपनिवेशिक प्रशासन न इस असफलता का दोष वार्ता म भाग लेनेवाली भारतीय राजनीतिक पार्टियां के मत्थे लगाया। ब्रिटिश साम्राज्यवादी यह आशा करते थे कि काग्रेस और लीग के बीच मतभेद और तीव्र हो जायगे और देश म समग्र रूप म हिन्दू मुस्लिम सबधो क खराब होन स भारत म औपनिवेशिक शासन को कायम रखना सभव हो जायगा।

१९४५ मे ब्रिटेन म पहले युद्धोत्तर चुनाव म मजदूर दल (लेबर पार्टी) की विजय ने प्रारभ म भारत म ब्रिटिश नीति मे कोई बडे परिवर्तन नही उत्पन्न किये। जुलाई म वेवल को ब्रिटेन बुला लिया गया और उसके लौटन के बाद १९

सितम्बर १९४५ का भारतीय नीति के सबध मे एटली सरकार की पहली घोषणा लदन और दिल्ली म एकसाथ की गयी। उसम कहा गया था कि मजदूर दली सरकार १९४२ क क्रिप्स प्रस्तावो को क्रियान्वित करगी। यह भी कहा गया कि १९४५ ४६ की सरदियो म केन्द्रीय और प्रातीय विधानमडलो क चुनाव होगे। लेकिन जनव्यापी उपनिवशवादविरोधी आदोलन न शीघ्र ही ब्रिटिश सरकार की योजनाओ म भारी सशोधनो का अनिवार्य बना दिया।

१९४५ के शरद और १९४६ के प्रारभ मे जन आदोलन

१९४५ क मध्य म हडताल-आदोलन का एक नया सवेग प्राप्त हुआ। तत्कालीन मजदूर-आदोलन म एक नया लक्षण अधिकाधिक हडतालो द्वारा लिया जानवाला राजनीतिक स्वरूप था। मजदूर वर्ग का आर्थिक सघर्ष अब छात्रो तथा श्रमजीवी जनता के अन्य समूहो के राजनीतिक सघर्ष और प्रदर्शनो के साथ एकाकार होता जा रहा था। मजदूर आदोलन म आनवाली इस प्रक्रिया को जनवरी १९४५ म मद्रास म अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस क २१वे अधिवेशन द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव प्रतिबिबित करत ह। इस अधिवेशन म ट्रेड यूनियन आदोलन क एक प्रमुख नता और काग्रेस सदस्य वी० वी० गिरि के रख राजनीतिक स्थिति सबधी प्रस्ताव का सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया जिसम भारत को स्वतत्रता प्रदान करन की माग की गयी थी। राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन म तजी आन क साथ अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस न केवल पूर देश म मजदूर वर्ग क आर्थिक सघर्ष का नेतृत्व ही कर रही थी बल्कि इस सघर्ष को औपनिवेशिक शासन क खिलाफ व्यापक जनवादी आदोलन के मार्ग पर भी आग ल जा रही थी। इस सघर्ष क दौरान परिस्थितिया धीरे-धीरे ट्रेड यूनियन सगठनो क भीतर विभिन्न राजनीतिक गुटो के बीच सहयोग क सुदृढीकरण के अनुकूल होने लगी। एकता के लिए इस सघर्ष म कम्युनिस्ट अगली पक्ति म थे और इससे सगठित मजदूर-आदोलन क भीतर उनका प्रभाव और बढा।

१९४५ के उत्तरार्ध म हडताले और प्रदर्शन फौजो और पुलिस क साथ सशस्त्र टक्करो और दगो म परिवर्तित होन लग। पुलिस के साथ इस तरह की पहली बडी टक्कर अगस्त म वाराणसी म हुई थी। इसके बाद बम्बई म दगा हुआ, जिसे औपनिवेशिक प्रशासन के दलालो ने कई दिन चलनवाले हिन्दू मुस्लिम दगो क रास्ते पर मोड दिया। यह युद्ध के बाद इन दोनो सप्रदायो क

बीच पहला गभीर दगा था। इस भडकान म सफल हान क बाद ब्रिटिश उपनिवेशवादियो ने साम्राज्यवादविरोधी सघर्ष म हाल म सुदृढ होती हिन्दू मुस्लिम एकता को क्षीण करन की अपनी कोशिश जारी रखी।

१६४५ क शरद म दो घटनाओ न आतरिक राजनीतिक तनाव को बढाया तथा उपनिवशवादविरोधी जन आदोलन क और भी ज़ोर पकडन म योग दिया। राष्ट्रीय काग्रेस मुस्लिम लीग कम्युनिस्ट पार्टी और अन्य जन सगठनो के नेताओ की अपील पर दक्षिण पूर्वी एशिया के देशा म राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन का कुचलन क अपन प्रयासा म फ्रास और हालैड की सहायता क लिए आग्ल-भारत सना का प्रयोग करन क ब्रिटिश सरकार क निणय क विरोध म देश भर म जलसे, जलूस और प्रदर्शन आयोजित किय गय। २५ अक्तूबर को पूर देश म ' इडोनेशिया दिवस " मनाया गया। जलसो और जलूसो क अलावा भारतीय गादी मजदूरा न इडानशिया को फौजी सामान ले जानवाले जहाजा पर माल लादन स इन्कार कर दिया।

नवम्बर म दिल्ली में युद्ध क दौरान सुभापचद्र बोस द्वारा मलाया, बर्मा, आदि म आग्ल भारतीय सेना क वदी सैनिको से गठित आज़ाद हिन्द फौज के अफसरो क एक दल (शाहनवाज खा, गुरवख्शसिह ढिल्लो तथा प्रमकुमार सहगल) पर फौजी अदालत म मुकदमा शुरू हुआ। बास स्वय १६४५ म बर्मा से बचकर चल गये थे और हवाई जहाज से जापान जाते समय विमान दुर्घटना म मारे गये थे। भारतीय जनता बास और उनके सहयोगिया को राष्ट्रीय स्वतत्रता के याद्धा मानती थी, जिन्होन औपनिवेशिक शासन के खिलाफ हथियार उठाय थे। बोस अपन जन्म प्रात बगाल म विशेष रूप से लोकप्रिय थे, जहा उनके द्वारा सगठित फारवर्ड ब्लाक अब भी सक्रिय था। सुभापचद्र बोस को अब सारे देश मे "नेताजी" कहा जाने लगा था, जो आजाद हिद सरकार और आज़ाद हिद सेना मे उनकी उपाधि थी।

उक्त फौजी अदालत द्वारा आज़ाद हिन्द फौज के तीनो अफसरो को लबी कैद की सज़ा के फैसले ने देश भर म ज़बरदस्त रोष उत्पन्न किया और विरोध प्रदर्शनो को जन्म दिया। कलकत्ता मे जन प्रदर्शन आम राजनीतिक हडताल म परिणत हो गये जिसमे मजदूरो, छात्रो, व्यापारियो, नौकरीपेशा लोगो और कारीगरो – सभी ने भाग लिया। सडको पर बैरीकेड – अवरोध और मोरचे – खडे कर दिये गये। परिवहन और नगरपालिका कर्मचारियो की हडताल क परिणामस्वरूप नगर पानी और रोशनी से भी वचित हो गया। २२ से २५ नवम्बर तक पुलिस और फौजा के साथ मुठभेडे होती रही, दर्जनो

प्रदर्शनकारी मारे गये और सैकडो घायल हुए। नेताजी के भाई शरतचद्र वोस सहित काग्रेस नताओ के हस्तक्षेप से ही हडताल समाप्त हो पायी। कलकत्ता से विरोध आदोलन का यह रूप बम्बई और अन्य नगरो म भी फैल गया।

लेकिन औपनिवेशिक अधिकारियो ने आजाद हिन्द फौज के अफसरो पर मुकदमे चलाना जारी रखा। फरवरी, १९४६ म एक मुस्लिम अफसर को सजा दी गयी। नवम्बर, १९४५ की घटनाओ की कलकत्ता म दुगने ज़ोर से पुनरावृत्ति हुई। ११ फरवरी को छात्र सगठनो द्वारा घोषित हडताल ने एक नयी आम हडताल को शुरू कर दिया जो १५ फरवरी तक चलती रही और जिसके दौरान पुलिस के साथ मुठभेडे हुई। सडके बैरीकेडो से भर गयी। आदोलन कलकत्ता से बम्बई तथा उत्तर पश्चिम के अनक बडे नगरो मे फैल गया। अग्रेजो मे घबराहट और दहशत फैल गयी और सरकारविरोधी प्रदर्शनो और जलसे-जलूसो को कुचलने के लिए बडी-बडी फौजी टुकडिया भेजी गयी।

इस बार आजाद हिन्द फौज क सैनिको के बचाव आदोलन का समर्थन सिर्फ काग्रेस ही नही, बल्कि मुस्लिम लीग ने भी किया। सारी कोशिशो क बावजूद अग्रेज़ इस बार कोई हिन्दू मुस्लिम टकराव नही भडका पाये।

बिगडती आर्थिक स्थिति न १९४६ के प्रारभ मे हडतालो की एक नयी लहर पैदा कर दी। इस अवस्था मे देशी रियासतो के मजदूर भी हडताल आदोलन मे खिच आने लग थे। उदाहरणार्थ मैसूर की कोलार स्वर्ण खानो तथा ग्वालियर की कपडा मिलो म।

निम्नलिखित तालिका हडताल-आदोलन का विकास प्रदर्शित करती है

वर्ष	हडतालो की सख्या	हडतालियो की सख्या (लाखो मे)	नष्ट श्रम दिवसो की सख्या (लाखा म)
१९४५	८५०	८	३८
१९४६ (पहली चौथाई)	४२६	५ ८	३०

राजनीतिक अशांति गांवों में भी फैल गयी थी। १९४५ के शरद में औपनिवेशिक शासन के खिलाफ कुछ जगहों पर जन-कार्रवाई अपने उच्चतम रूप – सशस्त्र संघर्ष – में पहुंच गयी थी। इस राजनीतिक उफान का चरम फरवरी १९४६ में सशस्त्र सेनाओं के सदस्यों का आंदोलन में शामिल होना शुरू करना था।

नौसेना में विद्रोह। भारत में क्रांतिकारी स्थिति का उदय

१९४६ में नौसैनिक प्रशिक्षण पोत 'तलवार' पर नाविकों के बीच एक स्वतःस्फूर्त विद्रोह भड़क उठा। इसके पहले उन्होंने अपने को दिये जानेवाले खराब भोजन (नौसैनिकों को बालू मिला और सड़ा हुआ चावल दिया जाता था) की शिकायत करते हुए एक याचिका पेश की थी। कमान अफसरों द्वारा शिकायत करनेवालों के खिलाफ अनुशासनिक और प्रतिशोधात्मक कार्रवाई शुरू करने के प्रयास के परिणामस्वरूप जहाज के सभी नाविकों की हड़ताल फूट पड़ी, जो १८ फरवरी को शुरू हुई। अगले दिन उस क्षेत्र में लंगर डाले सभी २० जलपोतों के नौसैनिक हड़ताल में शामिल हो गये। हड़ताली नौसैनिकों की मांग थी कि नौसेना में नसली भेदभाव समाप्त किया जाय, भारतीय नाविकों के लिए सेवा शर्तें ब्रिटिश नाविकों की समान की जाय और जहाजों पर रहन-सहन की परिस्थितियां, विशेष रूप से भोजन के संबंध में, को सुधारा जाये। उन्होंने ब्रिटिश अफसरों द्वारा भारतीय नाविकों के निरंतर अपमानित किये जाने के खिलाफ भी विरोध प्रकट किया।

१९ फरवरी को हड़तालियों ने एक हड़ताल समिति चुनने के बाद बम्बई में जलूस निकाला। भारतीय नाविकों का संघर्ष अब राजनीतिक स्वरूप ग्रहण करता जा रहा था – सेवा की अवस्थाओं में सुधार की उपर्युक्त मांगों के अलावा हड़तालियों ने सभी राजनीतिक बंदियों के रिहा किये जाने और आंग्ल-भारतीय फौजों के इंडोनेशिया से वापस बुलाये जाने की दो अन्य मांगें भी पेश कीं।

कांग्रेस, मुस्लिम लीग और कम्युनिस्ट पार्टी के झंडों के नीचे संगठित यह उपनिवेशवादविरोधी प्रदर्शन मुख्य साम्राज्यवादविरोधी शक्तियों को एकसाथ लाने के प्रयास का प्रतीक था।

२० फरवरी को विद्रोह को कुचलने के लिए सैनिक टुकड़ियां बम्बई लायी गयीं। विद्रोही जलपोतों व नाविकों ने अपनी कार्रवाइयों में सामंजस्य

गायम किया और पाच सदस्यो की एक कार्यकारिणी समिति चुनी गयी।

अगले दिन ब्रिटिश फौजो ने हमला शुरू कर दिया। दोनो पक्षो के बीच गोलिया चली और तोपो ने गोले बरसाये। लडाई मे किसी भी पक्ष का पलडा भारी नही रहा और चार बजे अपराह्न मे युद्ध विराम घोषित कर दिया गया।

विद्रोह की खबर पूरे देश मे तेजी से फैल गयी। कराची कलकत्ता मद्रास और विशाखापत्तनम मे भारतीय नौसैनिक तथा दिल्ली थाणे और पुणे मे कोस्ट गार्ड भी हडतालिया के समर्थन मे निकल आये। ऐसा लगता था कि विद्रोह सपूर्ण शाही भारतीय नौसेना मे फैल जायेगा।

स्थिति इस कारण और भी पचीदा हो गयी थी कि फरवरी के प्रारभ से ही बम्बई मे शाही भारतीय वायु सेना के पायलट और हवाई अड्डे के कर्मचारी भी नसली भेदभाव के विरोध तथा सेवा निवृत्त किये जाने मे तेजी लाने के लिए हडताल पर थे। कलकत्ता तथा अनेक दूसरे हवाई अड्डो के पायलटो ने भी उनके समर्थन मे हडताल कर दी थी।

आगे भारतीय सेना और नौसेना मे इस आदोलन को जनवादी शक्तिया का पूरा-पूरा समर्थन प्राप्त हुआ। कम्युनिस्ट पार्टी के आह्वान पर बम्बई मे २२ फरवरी को आम हडताल हुई जलूस निकाले गये और विराट सभा हुई। बम्बई के श्रमजीवी लोगो की इस कार्रवाई के शातिपूर्ण स्वरूप के बावजूद प्रदर्शनकारियो के खिलाफ सेना और पुलिस की बडी टुकडिया भेजी गयी और उन्हे निर्मम दमन का शिकार बनाया गया। लगभग तीन सौ लोग मारे गये और १,७०० घायल हुए।

सेना के सशस्त्र आदोलन और उसमे कम्युनिस्टो की सक्रिय भूमिका ने केवल औपनिवेशिक प्रशासन को ही नही बल्कि राष्ट्रीय सगठनो मे पूजीवादी सामती तत्वो के नेताओ को भी आतकित कर दिया। काग्रेस और लीग के नेताओ ने, जिन्होने विद्रोही नाविको को उनकी मुख्य मागो के लिए अपनी सहानुभूति और समर्थन का आश्वासन दिया था उनसे हडताल तथा अधिकारियो के खिलाफ प्रतिरोध समाप्त करने को कहा। काग्रेस के नेताओ के प्रतिनिधि के रूप मे सरदार पटेल विद्रोही नाविको की कार्यकारिणी समिति से बातचीत करने के लिए बम्बई पहुचे।

काग्रेस और लीग के नेताओ के दबाव से हडताल समिति ने २३ फरवरी को आत्म समर्पण कर दिया। लेकिन देश के कुछ भागो मे सैनिको और नौसैनिको की हडताले कुछ और दिन चलती रही।

भारतीय सशस्त्र सेनाओ के भीतर इस कार्रवाई ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत म एक क्रातिकारी स्थिति उत्पन्न हो रही है।

भारत के बारे मे लेबर पार्टी की नीति। देश के विभाजन की चाले

भारत म इन घटनाओ के दबाव म लेबर (मजदूर दली) सरकार को भारत के राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन को रिआयत देने के लिए विवश होना पडा। फरवरी म एक कैबिनेट मिशन भारत के लिए रवाना हुआ। इसम इसके नेता भारत मत्री सर पेथिक-लारेस के अलावा दो और मत्री लार्ड अलेक्जेडर और सर स्टैफोर्ड क्रिप्प्स शामिल थे। १५ मार्च, १९४६ को एटली ने भारत के सबध म मजदूर दल की नीति की दूसरी घोषणा की, जिसके अनुसार भारत को औपनिवेशिक पद (डामीनियन स्टेटस) या स्वराज्य प्रदान किया जानेवाला था। इस घोषणा म एटली ने स्वीकार किया कि स्वतत्रता-आदोलन राष्ट्रव्यापी है और कि उसम सेना भी शामिल है।

मार्च के अत म कैबिनेट मिशन भारत पहुचा, जहा काग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओ के साथ उसका लबा विचार विनिमय शुरू हुआ, जो अप्रैल भर चलता रहा। दोनो पार्टियो के रुख को अप्रैल, १९४६ के प्रारभ म हुए प्रातीय विधानमडलो के चुनाव-परिणामो ने प्रभावित किया था।

ये चुनाव जिनम १३ प्रतिशत से भी कम आबादी ने भाग लिया था और जो पृथक निर्वाचक मडल के आधार पर हुए थे धार्मिक समुदायो के बीच सबधो को सार्वजनिक ध्यान के केद्र मे ले आये। राष्ट्रीय काग्रेस ने सभी प्राती म आम (हिन्दू) निर्वाचक मडल मे पूर्ण बहुमत तथा मुस्लिम निर्वाचक मडल मे केवल उत्तर पश्चिमी सीमात प्रात म बहुमत प्राप्त किया। मुस्लिम लीग ने उन सभी प्रातो म, जहा अधिकाश आबादी हिन्दू थी, मुस्लिम निर्वाचक मडल मे और बगाल म भी, जहा आबादी म बहुलाश मुसलमानो का था बहुमत प्राप्त किया। दो अन्य प्रातो – पजाब और सिध – मे जहा अधिकाश आबादी मुस्लिम थी, मुस्लिम निर्वाचक-मडल म मत मुस्लिम लीग और उसके विरोधी स्थानीय दलो मे विभाजित थे।

चुनाव ने सर्वप्रथम यह प्रदर्शित किया कि अधिकाश मतदाता सयुक्त भारत बनाये रखने के पक्ष म थे, दूसरे, मुस्लिम लीग द्वारा प्रस्तावित पाकिस्तान के निर्माण ने केवल उन प्रातो के अधिकाश मुस्लिम मतदाताओ का

आकर्षित किया था, जहा अधिकाश आबादी गैर-मुस्लिम थी, तीसरे मुस्लिम लीग को अब सपूर्ण देश म मुस्लिम समुदाय के भीतर दृढ समर्थन प्राप्त था।

राष्ट्रीय काग्रस न प्रातीय विधानमडलो म ६३० स्थान प्राप्त किये थे जब कि मुस्लिम लीग न ४६७ जीत थ। फिर भी लीग सिर्फ बगाल मे ही प्रातीय सरकार बनान की स्थिति म थी।

हालाकि जैसे कि पहले बताया जा चुका है भारत की आबादी क बहुत थोडे भाग को ही मत देन का अधिकार प्राप्त था फिर भी य मतदाता सामान्यतया आबादी का राजनीतिक रूप से सबस सचेत हिस्सा थे और जनमत के निर्माण पर सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव डालते थे।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने चुनाव म पहली बार भाग लिया। उसन १०८ उम्मीदवार खडे किये जिनम स नौ चुन गय। कुल मिलाकर कम्युनिस्ट पार्टी को लगभग सात लाख मत प्राप्त हुए। अपन चुनाव घोषणापत्र म पार्टी न सामाजिक परिवर्तन का व्यापक कायक्रम प्रस्तुत किया था – जमीदारियो का जब्त किया जाना उद्योग की प्रमुख शाखाओ का राष्ट्रीयकरण बडी फैक्टरियो पर मजदूर नियत्रण प्रणाली की स्थापना, आदि। कार्यक्रम मे यह भी कहा गया था कि राष्ट्रीय प्रश्न को प्रत्येक जाति के आत्मनिणय क आधार पर हल किया जाना चाहिए और जनवादी आधार पर सविधान सभा चुनी जानी चाहिए। सघष का अतिम लक्ष्य भारत की पूण स्वतत्रता था। इसके बावजूद कि कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति अब भी कमज़ोर थी चुनावो म उसकी भागीदारी भारतीय जनता के व्यापक हिस्सो को कम्युनिस्ट नीति और सिद्धातो से परिचित कराने म सहायक हुई।

चुनाव के नतीजो ने राष्ट्रीय काग्रस के नेताओ के भारत की एकता की रक्षा करने के सकल्प को पहले स भी अधिक दृढ बनाया और साथ ही मुस्लिम लीग के नताओ को यह विश्वास दिलाया कि उन्हे पाकिस्तान के निर्माण के लिए दृढतापूर्वक बढते जाना चाहिए।

वार्ता का अत घोर विफलता म हुआ जिसम ब्रिटिश मिशन ने काग्रेस और लीग के बीच विराधो का चालाकी से पूरा लाभ उठाया था। १६ मई १९४६ को ब्रिटिश सरकार न एक घोषणा प्रकाशित की जिसम भारत क विभाजन के विचार को औपचारिक रूप मे अस्वीकार करन क बावजूद सयुक्त औपनिवेशिक राज्य म हिन्दू बहुसख्या द्वारा मुस्लिम अल्पसख्या को आत्मसात कर लेने के खतर की तरफ इशारा किया गया था। इसके दृष्टिगत ब्रिटिश सरकार न निम्नलिखित ‘ समझौता योजना प्रस्तुत की

१) भारत का औपनिवेशिक राज्य (डोमीनियन) प्राता और देशी राज्यो का सघ होगा, जिस व्यापकतम स्वायत्तता प्राप्त होगी। केन्द्रीय सरकार मात्र सुरक्षा, विदेश नीति और सचार के लिए जिम्मेदार होगी,

२) ब्रिटिश भारत के प्रातो को तीन क्षेत्रो मे सयुक्त किया जायगा – पहला क्षेत्र, जिसम हिन्दुओ का बाहुल्य होगा, देश के उत्तरी, मध्यवर्ती और दक्षिणी प्रातो स गठित होगा दूसर – पश्चिमी क्षेत्र – म मुस्लिम-बहुल प्रात – पजाब, सिध और उत्तर-पश्चिमी सीमात प्रात – शामिल होग, तीसरा – पूर्वी क्षेत्र – बगाल और असम क प्रातो स गठित होगा, जहा भी मुस्लिमो का बाहुल्य है। प्रत्यक क्षेत्र मे एक क्षेत्रीय सरकार कायम की जायगी,

३) एक सविधान सभा गठित की जायेगी, जिसमे प्रातीय विधानमडलो द्वारा निर्वाचित तथा राजाओ द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि होगे, जो सपूर्ण भारत के लिए सविधान तैयार करगी। सविधान सभा मे तीन विभाग होग जिनम सबद्ध प्रातो क प्रतिनिधियो द्वारा तीनो क्षेत्रो के सविधान तैयार किये जायगे,

४) सविधान सभा का चुनाव तीन निर्वाचक-मडलो – हिन्दू, मुस्लिम और सिख – के आधार पर होगा (दस लाख की आबादी पर एक प्रतिनिधि)। सविधान के प्रारूप के हर अनुच्छेद के अनुमोदन क लिए कवल सविधान सभा क पूर्णाधिवेशन म पूर्ण बहुमत ही नही, बल्कि हिन्दू और मुस्लिम निर्वाचक मडलो के प्रतिनिधियो का बहुमत भी आवश्यक होगा।

ब्रिटिश प्रस्ताव सविधान सभा के कामकाज की ऐसी परिस्थितिया उपलब्ध करत थे जिन्होन काग्रेस और लीग के बीच समझौते को रोका तथा अतत असभव बना दिया होता। प्रस्तावो के सारे प्रतिबधो के बावजूद यह स्पष्ट था कि ब्रिटिश शासक हलके पाकिस्तान का पृथक राज्य कायम करके भारत को विघटित करने के प्रयासो मे मुस्लिम लीग का समर्थन करन को तैयार थे। मुस्लिम लीग का कार्यक्रम ब्रिटिश साम्राज्यवादियो क हितो से टकराता नही था जो भारत को दासता म और अधिक रखन की स्थिति म न रहने के कारण एस राजनीतिक "समाधान" की योजनाए गढ रह थ, जिसस भारत आर्थिक और सैनिक दृष्टि स बहुत कमजोर हो जाता और इस तरह उसकी अपन भूतपूर्व शासको पर निर्भरता को बढाना आसान हो जाता।

इसी बीच औपनिवेशिक प्रशासन भारत की भावी स्थिति क प्रश्न के किसी भी अन्य साधन म हल को टालन तथा 'सत्ता हस्तातरण' अधिक स अधिक विलम्बित करन क लिए कदम उठा रहा था।

स्वाधीनता के मार्ग पर

अतरिम सरकार का गठन। आतरिक स्थिति मे बढता तनाव

कैबिनट मिशन के प्रस्तावा पर काग्रस और लीग की प्रतिक्रिया बिलकुल अलग-अलग थी। मुस्लिम लीग क नताआ न ब्रिटिश योजना का अनुमादन ही नही किया, वल्कि अतरिम सरकार म भाग लेन की बात भी मान ली, जिसक गठन की भी घोपणा वेवेल न १६ मई का की थी। मुस्लिम लीग क लिए यह तथ्य आकर्पक था कि अतरिम सरकार की स्थापना निर्वाचक मडलो के आधार पर होगी—मुस्लिम निर्वाचक मडल के उम्मीदवार केवल मुस्लिम लीग द्वारा तथा इसी तरह हिन्दू निवाचक मडल के उम्मीदवार काग्रेस द्वारा खडे किये जायगे।

काग्रेस न अपन सगठन के धर्म निरपेक्ष होन के आधार पर इस अतिम मुद्दे को अस्वीकार कर दिया। काग्रेस के नेताओ ने ब्रिटिश प्रस्तावा म कुछ सशोधन करवान के प्रयास म कैबिनट मिशन और वाइसराय के साथ वाता का एक दौर और चलाया। लेकिन यह स्पष्ट कर दिये जान पर कि मिशन की योजना ज्यो की त्यो स्वीकार या अस्वीकार करनी हागी काग्रस नेताआ का ब्रिटिश प्रस्तावो को सविधान तैयार करन के आधार के रूप म मानन के लिए विवश होना पडा।

जहा काग्रस ने अतरिम सरकार म जो सविधान सभा के प्रति जिम्मेदारी के बिना वायसराय के अधीन कार्यकारिणी समिति के रूप म कायम की जानवाली थी, शामिल होने स इकार कर दिया वहा लीग ने ऐसी सरकार बनाने क प्रस्ताव को स्वीकार करन की घोपणा कर दी। लेकिन वाइसराय न लीग के इस प्रस्ताव का मजूर नही किया और प्रशासनिक अधिकारियो को लेकर कार्यकारिणी समिति बना ली।

इस परिस्थिति मे मुस्लिम लीग की परिपद न केवल अतरिम सरकार ही नही, बल्कि सविधान सभा के कार्य म भी भाग लेन से इन्कार कर दिया। लीग न घोषणा की कि अब वह पाकिस्तान के निमाण के लिए खुला सघर्ष शुरू करेगी।

हालाकि सविधान सभा के चुनाव जून म ही हो गये थे लेकिन उसके उद्घाटन म इस कारण बाधा पड गयी थी कि काग्रेस के अलावा उसक दो

बड़ गुट – लीग और सिख – इसके कार्य का बहिष्कार कर रहे थे। अंग्रेजों ने इसका पूरा पूरा लाभ उठाया। चूकि उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांत और असम के अधिकांश प्रतिनिधि साम्प्रदायिक आधार पर देश के विभाजन के विरोधी थे, इसलिए इसमें पूर्व और पश्चिम में "मुस्लिम" क्षेत्र बनाने की योजना के क्रियान्वयन में उलझाव आ गया।

जून में अबुल कलाम आज़ाद के स्थान पर जवाहरलाल नेहरू को कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। वाइसराय ने उनके सामने ऐसी अंतरिम सरकार बनाने का सुझाव रखा जो उसकी कार्यकारिणी परिषद का रूप ले लेती, जिसमें नेहरू उपप्रधान होते जब कि वाइसराय सरकार का प्रधान बना रहता। यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया और २४ अगस्त को नयी कार्यकारिणी परिषद के गठन की घोषणा की गयी। नेहरू उसके उपप्रधान थे जब कि उसके सदस्यों (मंत्रियों) में आज़ाद वल्लभभाई पटेल और राजेंद्रप्रसाद जैसे प्रमुख कांग्रेस नेता तथा ईसाई, सिख, पारसी समुदायों के प्रतिनिधि भी शामिल थे।

अंतरिम सरकार के सीमित अधिकारों के बावजूद उसने जो पहले कदम, विशेष रूप से विदेश नीति के क्षेत्र में, उठाये उन्होंने यह प्रदर्शित कर दिया कि उसकी नीतियां औपनिवेशिक प्रशासन की नीतियों से स्पष्टतया भिन्न थीं।

इस सरकार के गठन के प्रति लीग की प्रतिक्रिया अत्यंत उग्र थी। जिन्ना ने इसे मुसलमानों के साथ अंग्रेजों का विश्वासघात माना और १६ अगस्त पाकिस्तान के निर्माण के लिए संघर्ष की शुरूआत के रूप में 'प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस' मनाने की घोषणा की। इस दिन कलकत्ता में व्यापक हिन्दू मुस्लिम दंगे कराये गये जो फिर पड़ोसी बिहार और शेष बंगाल में फैल गये। बम्बई में भी दंगे भड़क उठे।

गांधीजी ने दंगों की सख्त भर्त्सना की और दंगाग्रस्त स्थलों का दौरा किया। उन्होंने आत्म रक्षा टुकड़ियां बनाये जाने के विचार को प्रोत्साहित किया, जिनके संगठनकर्ता सामान्यतया कम्युनिस्ट और दूसरे जनवादी ही थे।

सितम्बर में लीग भी अंतरिम सरकार में शामिल हो गयी लेकिन उसने संविधान सभा का बहिष्कार जारी रखा। इसका अधिकतम लाभ उठाते हुए ब्रिटिश सरकार ने भावी संविधान में अनुच्छेदों पर मतदान के क्रम में एक परिवर्तन का सुझाव दिया – जिन प्रांतों के अधिकांश प्रतिनिधि संविधान सभा में भाग न ले रहे हों संविधान उन पर लागू नहीं होगा। इसने मुस्लिम लीग को संविधान सभा द्वारा संयुक्त भारत बनाये रखने जिस सिद्धांत पर नेहरू

जोर देते थे, का निर्णय स्वीकार करने से रोकने का अवसर प्रदान कर दिया।

अक्तूबर, १९४६ मे मेरठ म कांग्रेस का पहला युद्धोत्तर अधिवेशन हुआ जिसम आचाय जे० बी० कृपालानी को अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। अधिवेशन ने कांग्रेस द्वारा अंगीकृत राजनीतिक दिशा का अनुमोदन किया और भारत क सावभौम गणराज्य बनने का समर्थन किया।

दिसम्बर १९४६ मे संविधान सभा की बैठक म नेहरू ने इसी प्रस्ताव की घोषणा की, लेकिन इस शर्त के साथ कि देशी राज्यों मे जो भारतीय सघ क सदस्य होंगे राजतन्त्र बना रहना चाहिए।

१९४६–१९४७ मे जन सघर्ष का विकास

लेकिन औपनिवेशिक सरकार को पीछे हटने के अंतिम कदम उठाने के लिए राष्ट्रीय पार्टियों की राजनीतिक जोडतोड ने नहीं बल्कि श्रमजीवी जनता की जनव्यापी कार्रवाइयों ने ही विवश किया। १९४६ और १९४७ के दौरान भारत मे आर्थिक स्थिति लगातार खराब होती गयी जिसके परिणाम स्वरूप नगरो और देहातो म जनव्यापी संघर्ष छिड।

१९४६ के ग्रीष्म और शरद म साउथ इंडियन रेलवे और नार्थ वेस्टर्न रेलवे तथा कलकत्ता मद्रास नागपुर कोयम्बटूर और अन्य औद्योगिक केन्द्रों की फैक्टरियो और मिलो म अनेक बडी बडी हडताले हुई। सितम्बर और नवम्बर के बीच त्रावणकोर कोचीन मे नारियल उद्योग के मजदूरो की आम हडताल हुई जिसके दौरान पुन्नप्रा और वयलार म पुलिस क साथ सशस्त्र टक्कर हुइ। हडताल आंदोलन दूसरे देशी राज्यो मे भी फैल गया, मसूर और हैदराबाद म हडतालो को व्यापकतम समर्थन प्राप्त हुआ।

१९४६ म दो हजार से अधिक संगठित हडताले हुई जिनमे लगभग २० लाख मजदूरो ने भाग लिया था। इनम नष्ट श्रम दिवसो की संख्या लगभग १३० लाख थी।

१९४७ के पूर्वार्द्ध म हडताल आंदोलन लगातार बढता ही गया। इन हडतालो ने सबसे रोमांचक मोड कानपुर और कलकत्ता म लिया जहा पुलिस ने हडताली मजदूरो के विराट जलूसो पर गोलिया चलायी।

१९४६ म ग्रामीण आबादी भी सघर्ष म उतर आयी। सभी प्रांतो म किसानो के स्वतःस्फूर्त प्रदर्शन शुरू हो गये। कुछ जिलो मे वे जमीदारो और पुलिस के साथ सशस्त्र टक्करो म परिणत हो गये। संयुक्त प्रांत म सबसे

प्रचड सघर्ष बस्ती और बलिया म चला, जहा असामी काश्तकार जमीदारो द्वारा कृषि सुधार की पाबदी क लिए शुरू की गयी व्यापक बदखलिया क खिलाफ मैदान म आ गय थ। जमीदारी उन्मूलन क इस सुधार पर प्रारभिक काय उसी वर्ष शुरू हुआ।

बगाल म तिभागा आदोलन आग की तरह सारे देहातो म फैल गया था। यह असामी काश्तकारो और बटाईदारो (बरगदारो और अधियारो) का लगान को घटाकर उपज का एक तिहाई करन का सघर्ष था। यह बगाल के ११ जिलो म फैल गया और पुलिस की ताज़ीरी टुकडियो और जमीदारो क भाड क गुडो के गिरोहो क खिलाफ बाकायदा छापामार लडाई म बदल गया। आदोलन म भाग लेनवालो की सख्या ५० लाख तक पहुच गयी। सघर्ष १६४६ म बगाल विधानमडल द्वारा बटाईदारो के अधिकारो की रक्षा करन का कानून बनाय जान क बाद ही समाप्त हो पाया।

पजाब म कृषिक आदोलन का केन्द्र लायलपुर जिला था, जहा किसान सभा क नेतृत्व म असामी काश्तकारो न लगान घटान तथा किसानो के ऋणो क स्थगन क लिए सघर्ष किया। बम्बई प्रात म वारली आदिवासियो का सघर्ष साहूकारविरोधी था जिसक परिणामस्वरूप एक हज़ार स अधिक वारली स्थानीय साहूकारो क ऋणो स मुक्त हुए।

सबस अनम्य किसान सघर्ष हैदराबाद रियासत क तेलुगु भाषी तेलगाना प्रदेश म चला जहा सामती उत्पीडन क साथ साथ धार्मिक और नसली अन्याय भी होनवाला था।

तेलगाना म किसान विद्रोह, जो सूर्यपट गाव म स्वत स्फूर्त ढग से शुरू हुआ था शीघ्र ही एक विशाल क्षेत्र म फैल गया, जिसम हैदराबाद के शासक — निजाम — क अधिकारियो को खदेड भगान के बाद जन-सत्ता के निकायो — पचायतो — की स्थापना की गयी। विद्रोह का तात्कालिक कारण एक किसान नेता की अर्थात् क समय किसान प्रदर्शन पर गोली चलाया जाना था। विद्रोह क दौरान किसानो क आत्मरक्षा दल कायम हो गये।

हैदराबाद क अलावा सामती शासकों की सत्ता के खिलाफ बडा किसान सघर्ष १९४६ म कश्मीर म चला। कश्मीर के नगरो म जम्मू कश्मीर नेशनल कान्फ्रेस न राजा क स्वेच्छाचार का अत करने के लिए जन प्रदर्शन सगठित किय। "कश्मीर छोडो!" का नारा शीघ्र ही गाव गाव म फैल गया जहा किसानो द्वारा लगान और ऋण की अदायगी न करने का जन आदोलन छिड गया।

अधिकारियो ने किसानो के खिलाफ निर्मम कदम उठाये। नेशनल काग्रेस छिपकर काम करने के लिए मजबूर हो गयी और उसके नेता शेख अब्दुल्ला को गिरफ्तार कर लिया गया।

कश्मीर के राजा और उसके मुख्य अधिकारियो के हिंदू और उसके विरोधी प्रजाजनो के अधिकाश के मुसलमान होने के कारण कश्मीर मे स्थिति और सगीन होने से शेष भारत मे हिन्दू मुस्लिम सबधो पर बुरा असर पडने का खतरा था। इसके दृष्टिगत जवाहरलाल नेहरू जून १९४६ मे कश्मीर गये लेकिन राजा की पुलिस ने उन्हे कश्मीर मे घुसते ही गिरफ्तार कर लिया। इसके विरोध मे पूरी रियासत मे आम हडताल शुरू हो गयी। उनकी रिहाई तथा कुछ व्यवस्था बहाल करने के लिए वाइसराय को हस्तक्षेप करना पडा।

कश्मीर और हैदराबाद के अलावा राजपूताना और मध्य भारत की कई रियासतो मे भी सामतवादविरोधी सघर्ष (लेकिन छोटे पैमाने पर) चले।

इन्ही घटनाओ की पृष्ठभूमि मे काग्रेस ने जनवरी १९४७ मे सविधान सभा मे देशी रियासतो के प्रतिनिधित्व के बारे मे राजाओ के साथ वार्ता के लिए एक विशेष समिति स्थापित की। यह समझौता हो गया कि उनके आधे प्रतिनिधि निर्वाचित होगे और शेष आधे राजाओ द्वारा नियुक्त होगे। अप्रैल १९४७ मे ग्वालियर मे अखिल भारतीय प्रजा परिषद का सम्मेलन हुआ, जिसने यह प्रमाणित किया कि देशी राज्यो के लोग स्वाधीनता के सामान्य जनवादी सघर्ष मे सक्रिय सहभागी थे।

माउटबेटन योजना और भारत का विभाजन। दो डोमीनियनो का उदय

इस समय तक देश मे क्रातिकारी परिस्थिति पैदा हो चुकी थी। यह स्पष्ट था कि भारतीय पूजीवादी वर्ग और जमीदारो के प्रतिनिधियो को सत्ता-हस्तातरण मे और विलब से ऐसी स्थिति पैदा हो जायेगी कि भारत मे ब्रिटिश साम्राज्यवादियो द्वारा स्थापित राजनीतिक प्रणाली जनता के सशस्त्र सघर्ष के परिणामस्वरूप पूर्णतया ध्वस्त हो जायेगी।

२० फरवरी १९४७ को एटली ने भारत सबधी नीति के बारे मे मजदूर दली सरकार की तीसरी घोषणा प्रकाशित की, जिसमे कहा गया था कि अग्रेज जुलाई १९४८ तक भारत छोड देगे और कि यदि उस समय तक कोई केन्द्रीय सरकार कायम नही हुई तो सत्ता विभिन्न प्रातो की सरकारो को

सौप दी जायगी। माउटबटन रा नया वाइसराय नियुक्त किया गया, जिस इस योजना का कार्यान्वित करना था।

काग्रेस और मुस्लिम लीग दोनो ही न इस घोषणा का स्वागत किया। लेकिन दोनो पार्टियो के बीच सबधो को उलझान क लिए अग्रजो न हिन्दुओ और मुस्लिमो क बीच दगे करवाय, जिन्होन पजाब म खासकर गभीर रूप लिया जहा मुस्लिम लीग न भारतीय एकता की समर्थक स्थानीय सरकार क खिलाफ प्रदर्शन किय थे।

देश पर अपनी पकड बनाय रखन क अतिम प्रयास म ब्रिटिश साम्राज्य वादियो न यह देखकर कि उन्ह भारत छोडना ही होगा, उसके विभाजन पर हो सभी कुछ दाव पर लगा दिया। अप्रैल म माउटबटन भारत पहुचा और ३ जुलाई को माउटबेटन योजना की घोषणा की गयी। इसम भारत क दो डोमीनियनो (औपनिवेशिक राज्यो) म विभाजन की व्यवस्था थी, सक्षप म उस इस तरह रखा जा सकता है

१) उपमहाद्वीप म दो डोमीनियन – भारतीय सघ और पाकिस्तान – स्थापित किय जायग

२) पजाब और बगाल के साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन का प्रश्न सबद्ध प्रातो क हिंदू या मुस्लिम बहुल भागो क प्रतिनिधियों क पृथक मतो द्वारा तय किया जायगा,

३) उत्तर-पश्चिमी सीमात प्रात तथा असम के सिलहट ज़िले म (जहा की आबादी मुस्लिम-बहुल थी) जनमत-सग्रह किया जायेगा,

४) सिध का भविष्य प्रातीय विधानमडल म मतदान द्वारा तय किया जायेगा

५) देशी राज्यो के दोनो औपनिवेशिक राज्यो म से किसी एक म शामिल होन का प्रश्न उनके शासको द्वारा तय किया जायेगा,

६) सविधान सभा दोनो राज्यो की अलग अलग सविधान सभाओ म बट जायेगी जो दोनो राज्यो की भावी स्थिति निर्धारित करेगी।

राष्ट्रीय काग्रेस न समझ लिया कि चाहे कुछ भी हो जाये अग्रज मुस्लिम लीग के समर्थन से देश के टुकडे करने पर तुले हुए है और इसलिए और रक्तपात बचाने क लिए वह "माउटबेटन योजना" स्वीकार करने के लिए सहमत हो गयी।

जून १९४७ म अखिल भारतीय काग्रेस समिति के अधिवेशन ने ब्रिटिश प्रस्तावो को ६१ के मुकाबले १५७ मतो से स्वीकार कर लिया।

इसके साथ ही मुस्लिम लीग की परिषद न सपूण बगाल ओर पजाव को पाकिस्तान म शामिल किय जान की अतिरिक्त माग प्रस्तुत की।

पजाव और वगाल म मतदान क दौरान हिन्दू जिला क प्रतिनिधिया न काग्रस निणय का पालन किया और इन प्राता क विभाजन क लिए मत दिया जब कि "मुस्लिम' ज़िला क प्रतिनिधिया न बगाल और पजाव क विभाजन के खिलाफ मत दिया।

सिध म मतदान और सिलहट तथा उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रात म जनमत-सग्रह क नतीजो न प्रदर्शित किया कि उन्ह पाकिस्तान म शामिल किया जाना चाहिए। साथ ही वाइसराय न खुदाई खिदमतगार नता खान अब्दुल गफ्फार खा की स्वतन्त्र पख्तूनिस्तान की स्थापना क लिए जनमत सग्रह की माग को भी अस्वीकार कर दिया। इस प्रात की आबादी के जिस १५ प्रतिशत का मत दने का अधिकार प्राप्त था उसका भारी बहुमत ऐस जनमत सग्रह क पक्ष म था।

अगस्त, १९४७ म ब्रिटिश ससद न माउटबेटन योजना का इडीपडेस आफ इडिया एक्ट (भारतीय स्वाधीनता अधिनियम) क रूप म अनुमोदन किया जो उसी वर्ष १५ अगस्त का लागू हो गया।

१५ अगस्त का जवाहरलाल नहरू ने पहली बार दिल्ली क ऐतिहासिक लाल किले पर भारत का राष्ट्रीय झडा फहराया। भारत के स्वतन्त्रता सनानियो की अनक पीढियो का वीरतापूर्ण सघर्ष अतत सफलीभूत हुआ। राष्ट्रीय क्राति की इस विजय न भारत क इतिहास म स्वतन्त्र विकास के एक नय युग का समारभ किया।

भारतीय डोमीनियन

स्वतत्रता के पथ पर पहले कदम

भारत क डोमीनियन घोषित किय जाने से दश की राजकीय वैधिक स्थिति म आमूल परिवर्तन आ गय। भारतीय सघ क सपूर्ण प्रदेश म, जिसम ब्रिटिश भारत क भूतपूर्व प्रात और दशी राज्य सघीय आधार पर सयुक्त थे ब्रिटिश ससद द्वारा जारी कानूनो को धीर धीर समाप्त कर दिया गया। सविधान सभा न काग्रेस के प्रमुख नता तथा गाधीजी के सहयोगी राजद्रप्रसाद की अध्यक्षता म अपना कार्य शुरू कर दिया।

स्वतत्र भारत की पहली सरकार के प्रधान जवाहरलाल नेहरू थे, जो साथ ही विदेश मत्री भी थे। अधिकाश मत्री काग्रेसी थे। इसके अलावा अनुसूचित जाति सघ के नता भीमराव अम्बेडकर को विधि मत्री और हिन्दू महासभा के नेता श्यामाप्रसाद मुखर्जी को उद्योग तथा आपूर्ति मत्री नियुक्त किया गया था।

राष्टीय सकेन्द्रण" की सरकार का गठन देश के भीतर पहल स्वातत्र्योत्तर वर्षो मे विद्यमान शक्तियो के सामाजिक-राजनीतिक सतुलन को अभिव्यक्त करता था। इसके बावजूद कि नेहरू प्रधानमत्री थे और उह काग्रस मे वामपथी तत्वो का समर्थन अब भी प्राप्त था, सरकार म नरमपथी रूढिवादी शक्तियो का ही प्रभाव मुख्य था। इस समय गहमत्री और उपप्रधानमत्री वल्लभभाई पटेल थे, जो काग्रस नतृत्व के भीतर दक्षिणपथी गुट के स्वीकृत नेता बन चुके थे, जब कि वित्त और व्यापार जैसे महत्वपूर्ण मत्रालय अत तोगत्वा चितामणि देशमुख और टी० टी० कृष्णमाचारी के हाथो म पडे, जिनके बडे भारतीय पूजीपतियो के साथ सबध थे।

१६४६ मे निर्वाचित प्रातीय विधान सभाए तथा उनके प्रति उत्तरदायी प्रातीय सरकारे भी पूजीवादी वर्ग और जमीदारा के हिता को ही

व्यक्त करती थी, जिनके हाथ मे अब देश का सचालन सूत्र था।

नये राजकीय तत्र का एक तात्कालिक कार्यभार प्रशासनतत्र तथा सशस्त्र सेनाओ का "भारतीयकरण" करना था जिसने स्वतत्र भारत की गृह और विदेश नीति पर ब्रिटिश प्रभाव को काफी घटाया। भारतीय सरकार ने फरवरी १६४८ मे देश से ब्रिटिश फौजो की अतिम टुकडियो की वापसी को सपन्न कर लिया, लेकिन १६४६ मे भी केन्द्रीय प्रशासनतत्र मे लगभग एक हजार ब्रिटिश अधिकारी थे, विशेष रूप से राजनयिक सेवा मे।

भारत मे अपनी स्थिति को यथासभव बनाये रखने के आकाक्षी ब्रिटिश साम्राज्यवादी न केवल प्रशासनतत्र के भीतर अपने प्रत्यक्ष एजटो का उपयोग करने की ही सोच रहे थे, बल्कि अपने प्रयासो को देशी राज्यो के भीतर भी सकेद्रित कर रहे थे जिनमे स्वतत्रता की घोषणा के बाद भी प्रशासन राजाओ के हाथो मे बना रहा था। इसका अर्थ यह था कि नयी सरकार के समक्ष प्रस्तुत एक नया और तात्कालिक कार्यभार देशी राज्यो के देश के साथ एकीकरण को तीव्र करना था।

देशी राज्यो का एकीकरण।
पहले प्रशासनिक और क्षेत्रीय सुधार

१६४७ मे रियासतो के लिए एक विशेष मत्रालय कायम किया गया जो गृह मत्रालय के साथ वल्लभभाई पटेल के मातहत कर दिया गया। उनके तथा राजाओ के बीच अनेक वार्ताओ के बाद रियासतो को भारतीय सघ मे शामिल करने का सूत्र विकसित किया गया। प्रत्येक सबद्ध राजा ने भारतीय सघ मे अधिमिलन प्रपत्र पर हस्ताक्षर किये जिसे फिर राजकीय अभिलेखागार मे जमा कर दिया गया।

इन सधियो के अनुसार राजाओ का अपनी सभी चल तथा अचल सपत्तियो पर अधिकार बना रहा। उन्हे अपने राज्य के भारतीय सघ मे विलयन के पहले की किसी भी कार्रवाई के लिए जवाबदेह नही ठहराया जा सकता था। राजाओ को मुआवजे के तौर पर कुल ५.६ करोड रुपये की राजकीय पेशने दी गयी। देशी रियासतो के प्रशासनिक अधिकारियो को भी सुनिश्चित रोजगार, पेशन आदि की कुछ प्रत्याभूतिया प्रदान की गयी।

साथ ही राजाओ को राजनीतिक अधिकारो से वचित कर दिया गया और रियासती सेनाओ को या तो विघटित कर दिया गया या भारत की

भूतपूर्व देशी राज्यो के भारत के साथ सयुक्त किये जाने के साथ साथ देश मे पहला व्यापक क्षेत्रीय तथा प्रशासनिक सुधार भी किया जा रहा था। एकीकरण के साथ-साथ कृषि क्षेत्र की पैमाइश और बदोबस्त को भी सपन्न किया गया तथा रैयतवारी जैसी भूराजस्व प्रणाली लागू की गयी। साथ ही कई भूतपूर्व रियासतो म लगान की दर भी घटायी गयी।

भारतीय सघ मे देशी राज्यो के विलयन और उपर्युक्त प्रशासकीय तथा राजस्व सुधारो ने राजकीय प्रणाली को मजबूत बनाया और सामतवाद की शक्तियो को गहरा आघात पहुचाया। लेकिन अधूरे समाधानो राजाओ को दी जानेवाली मोटी पेशनो (उदाहरणार्थ हैदराबाद के निजाम की पेंशन ५० लाख रुपया सालाना और मैसूर के महाराजा की २६ लाख रुपया सालाना थी) और अन्य विशेष सुविधाओ उनका अपनी जायदादो महलो तथा अन्य सपदाओ के काफी बडे भाग पर कब्जा बने रहने कई राजाओ की राजप्रमुखो के पद पर नियुक्ति, आदि के कारण भूतपूर्व रियासतो के आर्थिक राजनीतिक और सास्कृतिक विकास के कुछ क्षेत्रो म राजाओ का प्रभाव बने रहने का मार्ग खुला रहा।

१९४७–१९४९ की अवधि म भारतीय सघ म एकीकरण की यह प्रक्रिया केवल तीन मामलो – जूनागढ (काठियावाड प्रायद्वीप म) हैदराबाद और कश्मीर – को छोडकर, जहा जन-आदोलन चल रहे थे शातिपूर्वक चलती रही।

जूनागढ के नवाब ने आधी से अधिक प्रजा के हिंदू होने के बावजूद रियासत को पाकिस्तान का अग बनाने की अपनी इच्छा घोषित की। नवाब के इस निर्णय ने जूनागढ म इतना गभीर असतोष उत्पन्न कर दिया कि फरवरी १९४८ म भारत सरकार को वहा फौज भेजने तथा जनमत सग्रह कराने के लिए विवश होना पडा। अधिकाश मतदाताओ ने भारत म एकीकरण के पक्ष म मत दिया और नवाब पाकिस्तान भाग गया।

सबसे बडे देशी राज्य हैदराबाद म जो स्थिति उत्पन्न हुई वह अधिक गभीर थी। निजाम ने अग्रेजो के राजनीतिक समर्थन के बल पर जिन्होने हैदराबाद की विशेष स्थिति तथा लदन के साथ उसके सीधे सबधो को बनाये रखने के लिए व्यापक प्रेस अभियान शुरू कर दिया था अपनी रियासत के भारतीय सघ म एकीकरण को भरसक विलबित करने का प्रयास किया। इस परिस्थिति म भारत सरकार ने अक्तूबर १९४७ म निजाम के साथ एक

विशप समझौता किया जिसक अनुसार यथास्थिति बनी रहनी थी, किंतु निज़ाम न तो अपनी सशस्त्र सनाआ का बढा सकता था और न ही कोई बाहरी सैनिक सहायता ल सकता था।

लकिन कुछ ही बाद निज़ाम इस समझौत क अतगत अपन दायित्वा की अवहलना करन लगा। १९४८ म वहा पाकिस्तान स बडी मात्रा म हथियार भज गय। शीघ्र ही यह भली भाति स्पष्ट हो गया कि स्वतत्र भारत क बीचा बीच ब्रिटिश साम्राज्यवादियो का फौजी और राजनीतिक गढ खडा करन क मसूब बनाय जा रह है। इसक साथ ही खुद हैदराबाद क भीतर तनाव भी बढता जा रहा था। १९४६ म निज़ामशाही क खिलाफ जा बलवे शुरू हुए थे व अब एक किसान विद्रोह म परिणत हो गय, जो उसक सपूर्ण पूर्वी भाग (तेलगाना) म फैल गया था। विद्रोह का कुचलन क लिए प्रशासन और सामता न रज़ाकारो क सशस्त्र गिरोह खडे किये, जो हैदराबाद की गैर मुस्लिम आबादी को सतात और आतकित करत थे।

तेलगाना म किसान-आदोलन का प्रभाव मद्रास प्रात क पडासी उत्तरी ज़िलो म भी फैल गया जिनम तेलुगुभाषियो (आध्रा) का बाहुल्य था। इस परिस्थिति म भारत सरकार न जिसे हैदराबाद क भारत से अलग हो जान की आशका तथा आध्र प्रदेश म किसान-आदोलन क प्रसार को भी रोकन की चिता थी सितम्बर १९४८ म निज़ाम को अल्टीमटम दकर अन्य बातो के अलावा रज़ाकार दस्तो क भग किय जान की माग की। १३ सितम्बर को भारतीय सनाओ न हैदराबाद म प्रवश किया और पाच दिनो क भीतर पूरी रियासत को अपन नियत्रण म ले लिया। भारतीय सेनाओ न कवल रज़ाकार गिरोहो को ही नही समाप्त किया, बल्कि तेलगाना म विद्रोही किसान दलो क खिलाफ भी कार्रवाई शुरू कर दी। १९४९ के प्रारभ म निज़ाम न एक समझौत को हस्ताक्षरित किया, जिसके अनुसार हैदराबाद भारतीय सघ म मिल गया और उसे अपने भूतपूर्व राज्य का राजप्रमुख बना दिया गया।

भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर पर विवाद की शुरूआत

इस अवधि म सबसे सगीन तनाव जम्मू कश्मीर रियासत मे पैदा हुआ, जहा नेशनल कान्फ्रेस के नेतृत्व म महाराजा के खिलाफ आदोलन जारी रहा।

१६४७ की गरमी म रियासत की यात्रा के दौरान माउटबटन न इस आशा म महाराजा को जनमत-सग्रह के लिए राजी करन का प्रयास किया था कि कश्मीर की मुस्लिम-बहुल आबादी पाकिस्तान म शामिल होन के पक्ष म मत देगी।

हैदराबाद की तरह कश्मीर म भी ब्रिटिश नीति का उद्देश्य भारत और पाकिस्तान के बीच गभीर दीर्घकालीन विवाद पैदा करना था।

लेकिन सितम्बर १६४७ म गाधीजी के कश्मीर पहुचन स ब्रिटिश योजनाए विफल हो गयी, जो शख अब्दुल्ला को जेल स छुडान तथा महाराजा और नेशनल काफ्रेस के नतृत्व के बीच समझौता कराने म कामयाब हो गय। अब साम्राज्यवादियो का अगला कदम भारत और पाकिस्तान के बीच सीधा सशस्त्र टकराव करवाना था। २२ अक्तूबर १६४७ को पठान कबायलियो क गिरोहो न कश्मीर पर उत्तर-पश्चिमी सीमात प्रात स आक्रमण कर दिया और २६ अक्तूबर तक वे राजधानी श्रीनगर के निकट पहुच चुके थ।

महाराजा का प्रशासन ढह गया स्वय महाराजा राजधानी छाडकर भाग गया। लेकिन नेशनल काफ्रेस और कम्युनिस्टो क नतृत्व म आम जनता की शक्तियो न नगर की प्रतिरक्षा सगठित की।

लकिन श्रीनगर से भागन क पहल महाराजा न शख अब्दुल्ला की सलाह मानकर अनिच्छापूर्वक भारत के साथ अधिमिलन प्रपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये थे, जिससे कानूनी दृष्टि म कश्मीर भारत का अग बन गया था और उसकी प्रतिरक्षा का दायित्व भारत पर आ गया था।

माउटबेटन के विरोध के बावजूद २७ अक्तूबर को वायु माग स भारतीय सैनिक श्रीनगर भेज गये और अगल दिन भारतीय सैनिक टुकडिया की पाकिस्तान की नियमित सना की टुकडियो क साथ बाकायदा लडाइ शुरू हो गयी, जो पठान कबायलियो के पीछ-पीछ कश्मीर म घुस आयी थी। अब एक लबा सशस्त्र सघर्ष शुरू हो गया जिसम दोना पक्षो की सैनिक कार्रवाइयो का सचालन ब्रिटिश जनरलो – दोनो औपनिवेशिक राज्यो की सनाओ के प्रधान सेनापतियो – द्वारा (और अक्तूबर क अत तक तो एक ही व्यक्ति – जनरल आकिनलक – दोनो सनाओ का सर्वोच्च सनापति था !) किया जा रहा था।

पाकिस्तानी फौजो द्वारा अधिकृत इलाके म तथाकथित आजाद कश्मीर सरकार कायम कर दी गयी।

३१ दिसम्बर १६४७ को भारत न कश्मीर प्रश्न को सयुक्त राष्ट्र

सुरक्षा परिषद म विचारार्थ प्रस्तुत किया। सुरक्षा परिषद क निर्णयानुसार सयुक्त राष्ट्र कश्मीर आयाग की स्थापना की गयी, जिसम विचार विमर्श के दौरान ब्रिटेन और अमरीका के प्रतिनिधिया ने भारत और पाकिस्तान क बीच मतभेदो को और उग्र बनान की काशिश की। १६४८ क बमत म सशस्त्र मुठभेड बद हा गयी और १ जनवरी, १६४६ को युद्ध-विराम समझौता लागू हो गया।

१६४७ क शरद म कश्मीर के महाराजा न औपचारिक रूप म गद्दी त्याग दी। उसके उत्तराधिकारी न जा रियासत का प्रतिशासक (रीजट) बना दिया गया था एक नये समझौते पर हस्ताक्षर किये, जिसके अनुसार जम्मू कश्मीर के भारत म विलयन का अनुमादन किया गया, उस सदर रियासत (राजप्रमुख) नियुक्त किया गया, राज्य का विशेष स्वायत्तता प्रदान की गयी तथा उसकी भावी स्थिति के अतिम निणय के प्रश्न को खुला छोड दिया गया।

हैदराबाद और कश्मीर की घटनाओ न उपमहाद्वीप के दोना मुख्य धार्मिक सम्प्रदायो क बीच सबधो मे तनाव को और बढाया।

हिन्दू मुस्लिम दगे। गाधीजी की मृत्यु

भारत के दो औपनिवेशिक राज्यो म बिभाजन तथा नये राज्या की सीमाआ की स्थापना के परिणामस्वरूप पाकिस्तान से हिन्दुओ और सिखो क भारत का तथा भारत से मुसलमाना के पाकिस्तान को व्यापक प्रव्रजन का ज्वार सा आ गया, जिसने दोनो राज्यो के सीमावर्ती क्षेत्रा को विशेषकर प्रभावित किया। भारत के आतरिक क्षेत्रा से पाकिस्तान उत्प्रवास करनवाले मुख्यतया व्यापारी और औद्योगिक पूजीवादी वर्ग के सपत्तिवान सस्तरो के प्रतिनिधि ही थे। हिन्दुआ और मुसलमानो के इस विराट पैमान के देशातरण न नय राज्यो म दोनो सप्रदायो के बीच सबधो को बेहद बिगाड दिया। अल्पसख्यका के घरो की लूट-पाट और विनाश तथा व्यापक कत्लेआम दैनदिन घटनाए बन गये। पश्चिम पाकिस्तान मे हिन्दू और सिख शरणार्थियो के खिलाफ मुस्लिम धर्मोन्मादिया की नृशस कार्रवाइयो के जवाब म पूर्वी पजाब, राजस्थान और दिल्ली म मुस्लिमा क खिलाफ वैसी ही कार्रवाइया शुरू हो गयी जो फिर बिहार और भारत के अन्य भागो म भी फैल गयी।

१९४७–१९४८ के सशस्त्र टकराव ने, जिसके बाद १९४९–१९५० में भारत और पाकिस्तान के बीच एक व्यापार-युद्ध शुरू हो गया, औपनिवेशिक काल में स्थापित अंतरक्षेत्रीय आर्थिक संबंधों को भारी आघात पहुंचाया। भारत के समक्ष अब अपने कपास तथा जूट उत्पादन-क्षेत्र विकसित करने का कार्यभार प्रस्तुत हो गया, जब कि पाकिस्तान को अपने वस्त्र उद्योग का निर्माण करना था। भारत और पाकिस्तान के बीच व्यापार संबंधों के सामान्यीकरण में शरणार्थियों के सांपत्तिक अधिकारों के विनियमन, पारस्परिक वित्तीय दावों, मुद्रा कोष के विभाजन सहित अन्य आर्थिक समस्याओं को हल कर पाने की विफलता भी बाधक थी।

संयुक्त सिंचाई प्रणाली और परिवहन व्यवस्था भी अब अस्त-व्यस्त हो गयी थी। एक लंबी अवधि तक असम के साथ संपर्क का एकमात्र साधन वायुयान ही था।

वस्त्र उद्योग के लिए कच्चे माल की पूर्ति के घट जाने और बाजार के सिकुड़ जाने के कारण कपड़ा मिलों को या तो काम बंद करना पड़ा या कार्य सप्ताह छोटा करना पड़ा। छोटे उत्पादकों, कातनेवालों और बुनकरों को कच्चे माल के अभाव और बाजार के अचानक सिकुड़न से सबसे अधिक क्षति पहुंची।

१९४९ के शरद में उद्योग की मुख्य शाखाओं में उत्पादन की मात्रा द्वितीय विश्व युद्ध में प्राप्त स्तर की मात्र ६० या ७० प्रतिशत थी। औद्योगिक उत्पादन में इस मंदी का कारण केवल कच्चे माल और तैयार सामानों के बाज़ारों का सिकुड़ना ही नहीं, बल्कि पूंजीगत उपस्कर – मशीनों – का घिसना और पुराना पड़ना भी था। परिवहन में भी ऐसी ही स्थिति थी, जिसमें ६० प्रतिशत रेल इंजनों और डिब्बों का बदला जाना आवश्यक था।

उत्पादन में गिरावट के कारण अनिवार्यतः रोजगार की संगीन समस्याएं उत्पन्न हो गयीं। कुछ ज़िलों में औद्योगिक मजदूरों और दस्तकारों में बेरोज़गारी ने भीषण रूप ले लिया। मिसाल के लिए पूर्वी पंजाब में १९४६-४७ और १९४७-४८ में औद्योगिक मजदूरों की संख्या में एक तिहाई की गिरावट आयी। श्रम बाजार में स्थिति शरणार्थियों की बाढ से और पेचीदा हो गयी, जिनकी संख्या ७० लाख तक पहुंच गयी थी।

औद्योगिक उपभोक्ता वस्तुओं के अभाव के साथ साथ खाद्याभाव भी पैदा हुआ। स्वतंत्रता के बाद के पहले वर्षों में कृषि उत्पादन युद्ध-पूर्व उत्पादन का मात्र ९० प्रतिशत था।

देश के विभाजन ने भारतीय आर्थिक विकास में अंतर्निहित अर्थव्यवस्था की औपनिवेशिक सरचना से उत्पन्न विरोधों को और बढ़ा दिया। स्वतन्त्रता के बाद के प्रारंभिक वर्षों में भारत एक पिछड़ा कृषिप्रधान देश ही बना रहा जिसकी आर्थिक सरचना में पूर्व-पूंजीवादी स्वरूपों का प्राधान्य था। १९४८ ४९ के राष्ट्रीय आय सबधी आकड़ो के अनुसार ४८ १ प्रतिशत आय कृषि में ११ ५ प्रतिशत कुटीर और शिल्प उद्योगों में और ८ ३ प्रतिशत बड़े औद्योगिक उत्पादन से प्राप्त हुई थी। भूमि के स्वामित्व और उपयाजन की प्रणाली में सामंती स्वरूपों के प्राधान्य, कृषि में तकनीकी उपकरणों के मध्यकालीन स्तर से यह प्रकट होता था कि श्रम-उत्पादिता के स्तर में भारत ससार में सबसे नीचे से दशा में था। प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के मामले में भी भारत उस समय दुनिया में न्यूनतम स्तरवाले देशों में एक था जो १९४८ में मात्र २४६ रुपये थी। यह ब्रिटेन में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय का १० प्रतिशत और अमरीका में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय का ५ प्रतिशत थी।

अर्थव्यवस्था की मुख्य शाखाओं में विदेशी मुख्यतया ब्रिटिश पूजी द्वारा प्राप्त प्रभावी स्थिति के कारण भारतीय पूंजीवादी वर्ग के लिए आर्थिक मोर्चे पर कुछ कर पाने का क्षेत्र नितांत सीमित था। जून १९४८ के आकड़ों के आधार पर भारत में विदेशी निवेश के प्रथम सर्वेक्षण से यह प्रमाणित होता है कि इन निवेशों की कुल राशि ३२० करोड थी जिसमें से ७२ प्रतिशत ब्रिटिश थी। तेल दोहन और शोधन उद्योगों में कुल निवेश का ९७ प्रतिशत रबड़ उद्योग में ९३ प्रतिशत छोटी लाइन रेलवे और दियासलाई उत्पादन में ९० प्रतिशत, जूट उद्योग में ८९ प्रतिशत चाय-बागानों में ८६ प्रतिशत और खनन में ७३ प्रतिशत निवेश विदेशी हाथों में था।

विदेशी इजारेदारियों का निवेशित पूजी से सालाना मुनाफा औसतन १२० करोड से १५० करोड डालर था।

भारतीय अर्थव्यवस्था की औपनिवेशिक सरचना तथा विदेशी पूजी का प्रभुत्व श्रम के अन्तराष्ट्रीय विभाजन की प्रणाली के भीतर भारत के स्थान को भी निर्धारित करते थे। पहले की ही तरह भारत अब भी औद्योगिक पूजीवादी देशों विशेष रूप से ब्रिटेन, के लिए कच्चे माल की पूर्ति का एक पुछल्ला मात्र था—१९४६-४७ में भारत के कुल आयात का ६० प्रतिशत खाद्य पदार्थ और तैयार माल थे जब कि उसके निर्यात का ५२ प्रतिशत कच्चा माल और खाद्य थे।

अब नवस्वाधीन भारतीय राज्य के समक्ष सदियों पुराने पिछड़ेपन को

दूर करन तथा एक वहुविध आधुनिक अर्थव्यवस्था का निर्माण करन का विकट काय प्रस्तुत था।

आर्थिक नीति।
"मिश्रित अर्थव्यवस्था" का मार्ग

स्वतत्रता क बाद के प्रारभिक वर्षो म आर्थिक क्षेत्र म सरकार के प्रयास मुख्यतया विभाजन स उत्पन्न कठिनाइयो को दूर करन पर सकेंद्रित थे।

धीरे-धीरे जूट और कपास की खेती के क्षेत्र म काफी विस्तार (क्रमश ६०-७० प्रतिशत और २० २५ प्रतिशत) किया गया। नयी सिचाई प्रणालिया का निमाण शुरू किया गया। १६४७ मे परती जमीनो को कृषियोग्य बनाने के लिए एक राजकीय ट्रैक्टर सगठन कायम किया गया।

लेकिन खाद्य उत्पादन बढाने का समवर्ती अभियान कही कम सफल रहा। खाद्याभाव बना रहा तथा १६४७ और १६५० के बीच भारत न एक कराड टन अनाज का आयात किया।

विभिन्न कदमा के अपनाये जाने क बावजूद मुख्य खाद्य पदार्था का प्रति व्यक्ति उपभोग लगातार गिरता गया। १६४८ म नगरो म आवश्यक खाद्य पदार्थो की राशनिग लागू की गयी। खाद्य पदार्थो और आवश्यक वस्तुआ की जमाखोरी और चोर-बाजारी ने मजदूरो, दस्तकारा, सफेदपोश कर्मचारिया क निम्न और मध्यम सस्तरो तथा छोटे उद्यमकर्ताआ के पारिवारिक बजटा को भारी धक्का पहुचाया था। इसक साथ ही सट्टे के जरिये विराट सपत्ति बना ली गयी थी – पूजी के आद्य सचय की प्रक्रिया तज हा गयी थी।

१६४६ तक आर्थिक स्थिति मे कुछ स्थिरता आ गयी थी, जिसन सपत्ति वान वर्गा को अपना सचित धन औद्योगिक उद्यमा मे स्थानातरित करन के लिए प्रोत्साहित किया।

वस्त्र उत्पादन के पमान के घटे रहन के बावजूद इस अवधि म भारी उद्योग क कुछ क्षेत्रो (सीमट रासायनिक और इस्पात उद्योगा) म उत्पादन म वृद्धि आयी, जो नागरिक और औद्योगिक निर्माण म नवजीवन क सचार की परिचायक थी।

पूजीगत उपस्कर के आयात म काफी वृद्धि क परिणामस्वरूप रेलव का नय इजन और डिब्ब और फैक्टरिया को मशीन तथा औजार भी प्राप्त होन लग।

स्वतन्त्रता के बाद के प्रारंभिक वर्षों में मशीनरी के आयात की अदायगी मुख्यतया भारत के युद्धकाल में इंगलैंड में संचित पौंड-पावने में की गयी थी जिसकी १९६७ तक कुल राशि १,८०० करोड रुपये हो गयी थी। जुलाई १९४८ में हस्ताक्षरित आंग्ल-भारतीय समझौते की शर्तों के अनुसार इसमें से ५०० करोड रुपये सैनिक साज-सामान, भूतपूर्व ब्रिटिश अधिकारियों की पेंशन, आदि के हिसाब में डाल दिये गये, जब कि शेष १,००० करोड रुपये का उपयोग ब्रिटेन से भारत की औद्योगिक क्षमता के आधुनिकीकरण और विस्तार में प्रयुक्त पूंजीगत उपस्कर प्राप्त करने के लिए किया गया।

दोनों देशों के बीच यह समझौता कुछ समय तक ब्रिटिश इजारेदारियों के भारत के औद्योगिक विकास के क्रम पर डाले जानेवाले प्रभाव को जमाये रखने में सहायक हुआ। लेकिन यह न तो प्रतिद्वंद्वी अमरीकी, जापानी और पश्चिमी जर्मन इजारेदारियों की भारत में घुसपैठ में और न ही भारतीय पूंजीवादी वर्ग द्वारा अपनी स्थिति के सुदृढ़ीकरण में बाधक हुआ।

भारतीय पूंजीवादी वर्ग ने, जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर और तकनीकी उपस्कर तथा विशेषज्ञता के लिहाज से पिछड़ा हुआ था, सामान्यतया विदेशी पूंजीपतियों के साथ मिश्रित कंपनियों की स्थापना के समझौतों के आधार पर उद्योग की नयी शाखाएं कायम कीं। स्वाधीनता के तीन वर्षों के दौरान मोटर कार और ट्रैक्टर संयोजन, साइकिल उद्योग तथा उत्पादन के अन्य विभिन्न क्षेत्रों में ८८ मिश्रित कंपनियां कायम की गयीं।

सरकार ने संरक्षी सीमाशुल्क लागू करके तथा निजी विदेशी पूंजी के कार्यकलाप पर कुछ प्रतिबंध लगाकर निजी उद्यम को प्रोत्साहित किया। १९४८ में औद्योगिक निर्माण के लिए वित्त उपलब्ध करने के उद्देश्य से १० करोड रुपये की परिसंपत्ति के साथ राजकीय औद्योगिक वित्त आयोग कायम किया गया।

भारतीय संघ की आर्थिक नीति के सिद्धांत अप्रैल, १९४८ में संविधान सभा में जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत औद्योगिक नीति संबंधी प्रस्ताव में विस्तार के साथ निरूपित किये गये थे। इस महत्वपूर्ण दस्तावेज ने तथाकथित मिश्रित अर्थव्यवस्था का पथ निर्धारित किया, और उद्योग के विशिष्ट क्षेत्रों को राजकीय एकाधिकार के लिए अलग कर दिया। शस्त्रास्त्र उत्पादन, परमाणु ऊर्जा तथा रेलवे को राजकीय एकाधिकार बना दिया गया। लौह धातुकर्म, कोयला और तेल उद्योग, विमान उत्पादन और कुछ प्रकार की यांत्रिक इंजीनियरी सहित भारी उद्योग के कुछ क्षेत्रों में नये प्रतिष्ठान कायम

करने का एकमात्र अधिकार राज्य के लिए सुरक्षित कर दिया गया। भारी और हल्के उद्योग की १७ अन्य महत्वपूर्ण शाखाओ को भी राजकीय नियोजन और नियत्रण के अधीन ले आया गया।

राजकीय पूजीवाद की ओर उन्मुख इस नयी नीति ने अपने को १ जुलाई १९४८ का भारतीय रिजर्व बैक का राष्ट्रीयकरण किये जाने म और १९४९ म बैकिंग कपनी अधिनियम के पास किये जाने म भी व्यक्त किया, जिसने निजी सयुक्त पूजी बैको के कार्यकलाप पर राजकीय नियत्रण को बढाया।

देश के कुल औद्योगिक उत्पादन म पुराने औपनिवेशिक शासन की परिसपत्ति (मुख्यतया सैन्य सामग्री उद्यम, रलवे और बिजलीघर) के आधार पर निर्मित राजकीय क्षेत्र का अश १९४८ मे मात्र छ प्रतिशत था।

राजकीय पूजीवाद के क्रियान्वयन के नेहरू सरकार के ये प्रयास चाहे कितने भी सीमित प्रतीत होते हो फिर भी यह ध्यान म रखने की बात है कि उसकी आर्थिक नीति औपनिवशिक नीति से आमूलतया भिन्न थी।

डोमीनियन सरकार की विदेश नीति

राष्टीय प्रभुसत्ता के सिद्धात नयी सरकार की विदेश नीति म और भी खुलकर सामने आये। ७ सितम्बर, १९४६ को ही औपनिवशिक भारत की अतरिम सरकार ने भारत की तटस्थता तथा किसी भी फौजी गुट म न शामिल होने के सिद्धात की घोषणा कर दी थी। स्वतत्रता के बाद शाति और सकारात्मक तटस्थता के सिद्धातो का और विवर्धन हुआ तथा उन्हे विकसित करने की पूरी सभावना प्राप्त हुई। भारत सक्रिय विदेश नीति का अनुसरण करने के लिए अच्छी स्थिति म था क्योकि उसे राजनयिक अलगाव की अवस्था का कभी अनुभव नही करना पडा था—१९५० के प्रारभ तक भारत ३९ देशो के साथ राजनयिक सबध कायम कर चुका था।

१९४८ म जयपुर मे शासक दल, राष्टीय काग्रेस के अधिवेशन म स्वीकृत एक विशेष प्रस्ताव द्वारा भारत की विदेश नीति के सिद्धातो को परिभाषित किया गया। ये थे उपनिवेशवादविरोध शाति और तटस्थता तथा गुट निरपेक्षता।

सयुक्त राष्ट्र सघ म भारत के प्रतिनिधियो ने अधिदेशाधीन प्रदेशो के सयुक्त राष्ट्र सघ की न्यासिता म रखे जाने की माग की। भारत की विदेश नीति का उपनिवेशवादविरोधी स्वरूप भारत के प्रतिनिधियो द्वारा सयुक्त राष्ट्र

क आतरिक मामलो म हस्तक्षेप का एक साधन कायम करना सभव बना दिया। इस प्रश्न पर कश्मीर म जनमत-सग्रह करने के 'मध्यस्थ" प्रस्तावो की बार बार अस्वीकृति मे अभिव्यक्त भारत के दृढ रुख ने कश्मीर के ससार के एक ऐसे महत्वपूर्ण क्षेत्र मे नाटो के सभाव्य अड्डे मे रूपातरण को रोक दिया, जहा सोवियत सघ, चीन भारत, पाकिस्तान और अफगानिस्तान की सीमाए मिलती है।

वर्ग-सघर्ष का तेज होना

भारत द्वारा राजनीतिक स्वतत्रता की प्राप्ति उसकी आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति की एक महत्वपूर्ण पूर्वापेक्षा थी। लेकिन स्वतत्रता के बाद के प्रारभिक वर्षो म भारतीय समाज के केवल सपत्तिवान सस्तर ही इस प्रगति के सुफलो का उपयोग करन की स्थिति मे थे। १६४७–१६४६ के वर्षो म भारतीय जनता के व्यापक हिस्सो की निर्वाह अवस्थाओ मे लगातार गिरावट आयी, जिसक कारण देश मे सामाजिक तनाव बढा तथा वर्ग-सघर्ष मे तेजी आयी।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की दूसरी काग्रेस। कम्युनिस्ट आदोलन मे वामपथी भटकाव

१६४८ मे फरवरी के अत और मार्च के प्रारभ मे कलकत्ता मे आयोजित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की दूसरी काग्रेस के प्रस्तावो ने १६४८ और १६४६ म सगठित मजदूर और किसान-आदोलन पर जबरदस्त प्रभाव डाला। काग्रेस म ८६ हजार सदस्यो का प्रतिनिधित्व था और यह सख्या पार्टी की शक्ति म उल्लेखनीय वृद्धि की सूचक थी। काग्रेस म केन्द्रीय समिति के महासचिव पी० सी० जोशी द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट की तीव्र आलोचना की गयी। जोशी सहित पार्टी के नतृत्व पर दक्षिणपथी तथा राष्ट्रवादी विचलनो का आरोप लगाया गया।

काग्रेस म इगित किया गया कि क्रातिकारी शक्तियो का मुख्य कार्यभार जनवादी मोरचा कायम करना है जिसके कार्यक्रम म बिना मुआवजे क बडी जमीदारिया का उन्मूलन ब्रिटिश औद्योगिक प्रतिष्ठाना, उद्योग की मुख्य शाखाओ और बैको का राष्ट्रीयकरण, न्यूनतम मजदूरी तथा आठ घटे के

कार्य-दिवस का शुरू किया जाना, फैक्टरियो म मजदूर नियत्रण की स्थापना देशी राज्यो का उन्मूलन और भाषायी आधार पर उनका प्रशासकीय पुनर्गठन, भारत मे सभी जातियो के आत्मनिर्णय के अधिकार की घोषणा, जातिगत और भेदभाव के अन्य रूपो का निषेध, आदि सहित दूरगामी सामाजिक परिवर्तनो का कार्यान्वयन शामिल होना चाहिए। काग्रेस ने भारत के विभाजन की साम्राज्यवादी चाल के रूप मे निन्दा की और ब्रिटिश साम्राज्य के साथ पूर्ण सबध विच्छेद की माग की।

लेकिन जनवादी मोरचे की कार्यनीति की इस घोषणा के बावजूद अधिकाश सदस्यो ने राष्ट्रीय शक्तियो के सबध म वामपथी सकीर्णतावादी रवैया अपनाया। नेहरू सरकार की आलोचना करते हुए उस पर साम्राज्यवादियो के शिविर मे चले जाने का आरोप लगाया गया। काग्रस मे निर्वाचित बी० टी० रणदिवे की अध्यक्षता मे नये नेतृत्व ने जो नीति स्वीकार की वह वास्तव मे सशस्त्र विद्रोह के ज़रिये काग्रेस सरकार का तख्ता उलटने के आह्वान की थी।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओ के काय मे वामपथी-सकीर्णतावादी विचलन ने पूरे देश मे कम्युनिस्ट आदोलन को दुर्बल बनाया। इससे कइ क्षेत्रो मे उसका जन-आधार कमजोर हुआ और आबादी के राजनीतिक रूप से सचेत कुछ समूहो ने उसे समर्थन प्रदान करना छोड दिया।

देश मे दक्षिणपथी शक्तिया हाथ धोकर कम्युनिस्टो के पीछे पड गयी। कम्युनिस्ट पार्टी और इसके नेतृत्व मे जन सगठनो को व्यवहार म भूमिगत हो जाना पडा। कुछ राज्यो (मद्रास पश्चिम बगाल त्रावणकार-कोचीन) मे उनके कार्यकलाप कानून द्वारा निषिद्ध कर दिय गये। कम्युनिस्टो और उनके नेतृत्व मे जन-सगठनो के कार्यकर्ताओ के खिलाफ दमनचक्र चल पडा। पोलिटब्यूरो के अनेक सदस्यो अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस आर किसान सभा के कितने ही नेताओ को जेलो म डाल दिया गया। भूमिगत सघर्ष की कठिन परिस्थितियो ने पार्टी के नाभिक को इस्पाती तो बनाया लेकिन साथ ही जन-सगठनो की हलचलो के विकास म बाधा भी डाली।

मज़दूर और किसान आदोलन

भारत के मज़दूर वर्ग न कम्युनिस्ट पार्टी और ट्रेड यूनियनो के खिलाफ इन दमनकारी कदमो का जवाब जलसे जलूसो और विरोध हडतालो स दिया। लेकिन अब तक हडताल आदोलन के स्तर मे समग्र रूप म गिरावट लक्षित

होन लगी थी – १६४८ म १०,५० ००० मजदूरो ने हडताला म भाग लिया था और ७८ ००,००० कार्य-दिवस नष्ट हुए थे, जब कि १६४६ म तत्सबधी आकडे क्रमश ६,८५,००० और ६७ ००,००० थे। मजदूर वर्ग क आर्थिक सघष म इस ह्रास का कारण केवल मजदूर वर्ग की क्लाति, अधिकारिया का निर्मम दमन और कम्युनिस्ट आदोलन की आतरिक स्थिति ही नही, बल्कि स्वय मजदूर आदालन मे फूट भी थी।

मई १६४७ म भारतीय राष्ट्रीय काग्रस क तत्वावधान म इडियन नेशनल टेड यूनियन काग्रेस (इटक) नामक अखिल भारतीय मजदूर सगठन की स्थापना की गयी जिसके नतृत्व न जनवरी, १६४८ म काग्रेस कार्यकारिणी समिति की मजदूरो से औद्योगिक विरामसधि करने की अपील का समर्थन किया। १६४८ मे दो जन्य ट्रेड-यूनियन केन्द्र – हिन्दू मजदूर सभा और युनाइटेड (सयुक्त) ट्रड यूनियन काग्रस – कायम किये गये, जो समाजवादिया क विभिन्न समूहा के प्रभाव म थे। इनमे से दूसरे ट्रेड-यूनियन केन्द्र का प्रभाव मुख्यतया पश्चिम बगाल के कुछ ट्रेड यूनियन सगठनो तक ही सीमित था।

तीन नय ट्रेड यूनियन सगठन स्थापित होने के बाद भी अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस (ऐटक) ही भारतीय श्रमजीवी जनता का सबसे बडा सगठन बनी रही जैसा कि १६४६ म बम्बई मे आयोजित उसके अधिवेशन से पुष्ट हुआ। उस अवधि मे मजदूर सघर्ष की सबसे बडी अभिव्यक्तिया कोयम्बटूर (मद्रास प्रात) की कपडा मिलो की कई महीनो की हडताल और कलकत्ता बम्बई तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रो मे सफेदपोश कर्मचारियो की हडताल थी। कठिन परिस्थितियो के बावजूद कुछ हडताले विजय मे समाप्त हुइ – बारहो मास काम करनवाले उद्यमो मे कार्य दिवस घटाये गये, कुछ उद्यमो म मजदूरी बढायी गयी और बढती कीमतो की क्षतिपूर्ति करन के लिए महगाइ भत्ता दिया जाने लगा।

मजदूर वर्ग के सघर्ष का सबस महत्वपूण परिणाम १६४८–१६४६ म औद्योगिक विवाद अधिनियम (१६४७), भारतीय ट्रेड-यूनियन अधिनियम (१६४७), कारखाना अधिनियम (१६४८), कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम (१६४८), न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (१६४८), आदि जैसे अनक कानूना का बनाया जाना था जिन्ह स्वातत्र्योत्तर भारत मे श्रम विधान का कद्र बिंदु माना जा सकता है।

ट्रेड-यूनियन सगठना ने आधिकारिक रूप स स्वीकृत श्रम विधान के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए सघर्ष शुरू किया।

१९४७–१९४९ मे मज़दूर वर्ग के सघर्ष के अलावा देश के कुछ भागो म भारतीय कृषक समुदाय के विभिन्न सस्तरो के व्यापक आदोलन भी कुछ फूट पडने लगे। इनम निर्धन असामी काश्तकारो के विभिन्न समूहो के सघर्ष सबसे बडे थे जो लगान के घटाये जाने जिस रूप म लगान की जगह नकदी लगान तथा मौरूसी काश्तकारी के अधिक सुनिश्चित अधिकारो के लिए लड रहे थे। पश्चिम बगाल बिहार, बम्बई पजाब तथा अन्य प्राता के बटाईदारो ने भी इन्ही मागो को लेकर सघर्ष शुरू किया। असामी काश्तकारो को सघर्ष के लिए प्रेरित करनेवाला एक महत्वपूर्ण कारक बडे ज़मीदारो और धनी किसानो द्वारा असामी काश्तकारो का अक्सर बेदखल किया जाना था।

अपेक्षाकृत समृद्ध असामी काश्तकारो सहित अधिकाधिक किसान राज्य सरकारो द्वारा १९४६–१९४९ म विधानमडला म रखे गये जमीदारी उन्मूलन विधेयको के जनवादीकरण तथा तीव्र कार्यान्वयन पर जोर देने के लिए जन-आदोलनो म भाग लेने लगे। सयुक्त प्रात के कुछ ज़िलो (उदाहरणार्थ बलिया) पेप्सू तथा दक्षिण म किसानो ने जमीदारो की जमीनो पर कब्ज़ा करना शुरू कर दिया।

किसान सघर्ष के इस स्वरूप ने तेलगाना मे विशेषकर व्यापक रूप लिया, जहा १९४६ मे शुरू हुआ किसान विद्रोह अब भी चल रहा था। जिन हिस्सो म विद्रोह सफल हो गया था, वहा किसानो ने पचायते स्थापित कर दी थी जिन्होंने बडे ज़मीदारो की काश्त पर हदबदी लगाकर और इस तरह ली गयी ज़मीन को छोटी जोतोवाले किसानो मे वितरित करके भूमि सुधारो को कार्यान्वित करना शुरू कर दिया था। १९४८ के अत तक इस तरह से १२,००,००० एकड से अधिक ज़मीन वितरित की जा चुकी थी।

१९४९ मे भारतीय सेना की उन इकाइयो ने इस विद्रोह को कुचलने की कार्रवाई शुरू कर दी जिन्हे निज़ाम के साथ विवाद के समय १९४९ म हैदराबाद भेजा गया था। उसके बाद विद्रोह एक छापामार युद्ध मे परिणत हो गया, जो १९५१ तक चलता रहा। सघर्ष की इस दूसरी अवस्था के दौरान विद्रोहियो म फूट पड गयी। अधिक धनी किसानो ने जिनकी मागे १९४९–१९५० मे कार्यान्वित भूमि सुधारो से पूरी हो गयी थी, और जो निर्धन किसानो द्वारा आदोलन का नेतृत्व ग्रहण किये जाने के बाद पचायतो म इनके बढते प्रभाव से भयभीत थे आदोलन से किनारा कर लिया।

कृषक वर्ग के इस सघर्ष ने पूजीवादी जमीदार वर्गो के प्रतिनिधियो से बनी सरकार को भूमि सुधारो के निरूपण तथा कार्यान्वयन के लिए अधिक

तेज़ कदम उठाने को विवश कर दिया और जनवरी, १९५० में भारत के सार्वभौम गणतंत्र घोषित किये जाने के बाद वास्तव में यह किया भी गया।

नये संविधान के प्रारूप की तैयारी और अंगीकरण

इस ऐतिहासिक कार्य के पहले नये संविधान की तैयारी के सिलसिले में काफी काम किया गया था, जिसने राष्ट्रीय पूंजीवादी वर्ग को सत्ता के हस्तांतरण को पूरा किया। स्वतंत्र भारत के संविधान पर कार्य के दौरान दो प्रश्नों – भारत और ब्रिटेन के बीच संवैधानिक संबंध का स्वरूप तथा भाषायी राष्ट्रीय प्रश्न – पर तीव्र मतभेद सतह पर आये।

भारतीय अर्थव्यवस्था में ब्रिटिश पूंजी की प्राप्त स्थिति, ब्रिटिश मंडी पर भारतीय उद्योग की निर्भरता का अर्थ यह था कि भारतीय पूंजीवादी वर्ग भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल (द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्य इसी नाम से जाना जाने लगा था) के भीतर रखने के लिए उत्सुक था। साथ ही भारत के राजनीतिक नेता भारत को राष्ट्रमंडल के भीतर ऐसी शर्तों पर रखने के किसी रास्ते की खोज में थे कि जो भारत की प्रभुसत्ता के लिए हानिकर न हो।

इन प्रश्नों पर अक्तूबर, १९४८ में लंदन में आयोजित राष्ट्रमंडलीय प्रधानमंत्री सम्मेलन में विचार विमर्श किया गया। यह तय हुआ कि नये डोमीनियन – भारत पाकिस्तान और श्रीलंका – ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के सदस्य बने रहने के साथ साथ ब्रिटिश ताज से अपनी राजनीतिक स्वाधीनता बनाये रख सकते है।

दिसम्बर १९४८ में राष्ट्रीय कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन में कई प्रतिनिधियों द्वारा ब्रिटेन के साथ पूर्ण राजनीतिक संबंध विच्छेद की मांग के बावजूद सरकार को १९४८ के लंदन राष्ट्रमंडल सम्मेलन में लिये गये निर्णयों के आधार पर वार्ता करने की अनुमति प्रदान कर दी गयी। लंदन में अगले राष्ट्रमंडल सम्मेलन (अप्रैल, १९४९) में एक सूत्र तैयार किया गया, जिसके अनुसार भारत ने सार्वभौम गणतंत्र के नाते ब्रिटिश ताज को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का प्रतीक स्वीकार कर लिया। मई, १९४९ में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति और संविधान सभा ने इस निर्णय का अनुमोदन कर दिया। (यह उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान में ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के साथ भारत के संबंध का कोई उल्लेख नहीं है।)

काग्रेस के जयपुर अधिवेशन म भापा के आधार पर प्रातो का गठन करने के प्रश्न पर उतनी ही गरमागरम बहस हुई जितनी १६२८ म 'मोतीलाल नेहरू सविधान' म उसके सुझाये जाने के समय हुई थी। अब तक भापायी राज्यो – आध्र, कर्णाटक केरल और महाराष्ट्र – के गठन के समर्थको के दबाव से सविधान सभा की मसौदा समिति भापायी प्रातो के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक विशेप समिति (तथाकथित धर आयोग) की नियुक्ति कर चुकी थी। १६४८ के अत मे प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट म आयोग न केवल भाषायी, अर्थात राष्ट्रीय आधार पर राज्यो के गठन का ही विरोध नही किया, वल्कि भारत मे दीर्घकाल से अस्तित्वमान प्रशासकीय तथा क्षेत्रीय विभाजनो मे किसी भी प्रकार के परिवर्तनो के भी खिलाफ राय दी।

काग्रेस के जयपुर अधिवेशन ने धर आयोग की रिपोर्ट की जाच करने तथा अतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए जवाहरलाल नेहरू वल्लभभाई पटेल और पट्टाभि सीतारमैया से गठित एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने भी इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट हुए भाषायी राज्यो के सिद्धात को अस्वीकार कर दिया कि देश के हाल के विभाजन के वाद भाषायी समुदायो का दृढीकरण नयी पृथकतावादी प्रवृत्तिया उत्पन्न करेगा। अपनी रिपोर्ट मे समिति ने इस पर जोर दिया कि भारत के प्रशासकीय और क्षेत्रीय विभाजनो को वदलना अवाछनीय होगा क्याकि भूतपूर्व रियासतो की सीमाओ मे परिवर्तन राज्य के नाते भारत की एकता को क्षति पहुचा सकते है।

इस प्रकार भापायी राज्य कायम करने के आदोलन का पहला दौर विफलता म समाप्त हुआ। लेकिन भाषायी राज्यो (कर्णाटक, केरल आध्र महाराष्ट्र और महागुजरात) को स्थापित करान का आदोलन दिनोदिन जोर ही पकडता गया।

२६ नवम्बर, १६४६ को सविधान सभा द्वारा अगीकृत भारत का सविधान भारतीय राज्यत्व को सुदढ करने तथा नयी सत्ता को केन्द्रीभूत करन के प्रयासो से परिव्याप्त है।

भारत को एक सार्वभौम गणतत्र घोपित किया गया जिसके राष्ट्रपति को काफी अधिकार प्रदान किये गये वह देश की सशस्त्र सेनाओ का सर्वोच्च सेनापति है, वह प्रधानमत्री तथा उसकी सिफारिश पर केन्द्रीय सरकार के मत्रियो और राज्यपालो की भी नियुक्ति करता है, जा केन्द्रीय कार्यपालक सत्ता के स्थानीय प्रतिनिधि होते है वह ससद के मध्यावकाश मे अध्यादेश जारी कर सकता है और आपात स्थिति मे सविधान को निलवित भी कर सक्ता है।

वह केन्द्रीय ससद और राज्य विधानमडलो द्वारा पारित विधेयको का स्वीकृति प्रदान करता हे। राष्ट्रपति किसी अधिनियम को पुनर्विचार अथवा सशाधन के लिए विधानमडलो के पास वापस भी भेज सकता है।

सर्वोच्च विधायी निकाय ससद है, जिसके दो सदन–लोक सभा और राज्य सभा–है। राज्या म विधानसभाए हे, जो लोक सभा की तरह हर पाच वर्ष के बाद चुनी जाती हैं। इन चुनावो के लिए मताधिकार सार्विक, मतदान प्रत्यक्ष और गुप्त है। भारत के २१ वर्ष से अधिक आयु के सभी नागरिका को मत देने का अधिकार प्राप्त है, जब कि २५ वर्ष से अधिक क (राज्य सभा क लिए ३० वर्ष से अधिक के) नागरिको को निर्वाचित होने का अधिकार प्राप्त है।

राज्य सभा के सदस्य राज्य विधानमडलो के सदस्यो से निमित निर्वाचक मडलो द्वारा चुन जाते हैं (राज्य सभा के १२ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा सस्कृति, विज्ञान और सार्वजनिक कार्य के क्षेत्रो मे अपनी विशिष्ट सेवाओ क लिए नियुक्त किये जात है)।

राष्ट्रपति का चुनाव ससद तथा विधानमडलो के सदस्यो से गठित एक विशेष निर्वाचक-मडल द्वारा किया जाता है।

सविधान मे विधायी कार्यकारी और न्यायिक शक्तियो का सुस्पष्ट विभाजन है। भारत सरकार (प्रधानमत्री के नेतृत्व मे) और राज्य सरकार (मुख्य मत्रियो के नेतृत्व मे) क्रमश केन्द्रीय ससद तथा विधानमडला के प्रति उत्तरदायी है।

भारत के उच्चतम न्यायालय और राज्यो के उच्च न्यायालयो को कानूनो की व्याख्या करन तथा सवैधानिक रूप मे अमान्य' होने पर उन्हे निरस्त करन का अधिकार है।

सविधान मे केन्द्रीय और राज्य सरकारो के आर्थिक और राजनीतिक कार्यो के बीच सुस्पष्ट विभेद है और इस तरह सपूर्ण प्रशासनिक प्रणाली एकात्मक राज्य के लाक्षणिक अतिकेन्द्रीयकरण का सघवाद के तत्वो के साथ समन्वय करती है।

इस प्रकार सविधान राष्ट्रीय क्राति की विजय के बाद आम जनवादी स्वरूप की मुख्य उपलब्धिया–पूजीवादी-जनवादी नागरिक स्वतत्रताए नसली, जातिगत और धार्मिक आधारो पर भेदभाव के सभी रूपा क निषध–का सुदृढ करता है।

सविधान का अनुच्छेद ३१ निजी सपत्ति की अनुल्लघनीयता विहित

भारत गणतत्र
स्वतत्रता की आधारशिला का निर्माण
(१९५०–१९६४)

छठे दशक के प्रारभ मे आतरिक राजनीतिक स्थिति

अपन स्वतत्र विकास क पहल वर्षो म भारत गणतत्र को गभीर आर्थिक और राजनीतिक कठिनाइया का सामना करना पडा। विभाजन के गभीर परिणामो को अभी दूर भी नही किया गया था और उद्योग अभी युद्धोत्तरकालीन मदी से उबरा भी नही था कि दश क कितन ही भागो म खराब फसलो ने विद्यमान अन्न सकट को पहले स कही अधिक उग्र बना दिया। पूरे दश पर व्यापक अकाल का खतरा मडरान लगा।

भारत सरकार ने अमरीका से खाद्य सकट म सहायता के लिए अनुरोध किया। ऋणो की शर्तो पर लबी वार्ताए शुरू हुई, जिनके दौरान अमरीकी साम्राज्य वादियो ने भारतीय नीतियो पर अपना प्रभाव डालने की कोशिश की। सोवियत सघ और चीनी गणराज्य से अनाज के भेजे जान के परिणामस्वरूप ही अतत भारत और अमरीका के बीच वार्ताओ मे तेजी आयी, जिनका अत जून, १९५१ म अमरीका से गेहू की खरीद के लिए पहले बडे ऋण (१९ करोड डालर) की व्यवस्था के साथ हुआ।

इन खाद्य अभावो ने देश मे सामाजिक तनाव को तेज किया विशेष रूप से दक्षिणी राज्यो मे। इसके बावजूद कि मजदूर और किसान जन-सगठना के कार्यकलाप को दबाने के लिए कदम पहले ही उठा लिये गये थे और ट्रेड यूनियन आदोलन जब विभाजित था नगरो और देहाता मे वर्ग सघर्ष की तीव्रता ज्यो की त्या बनी रही।

काग्रेस के भीतर सघर्ष। नयी वामपथी विपक्षी पार्टियो का गठन

एक ओर जन-आदोलन की लहर और जटिल आतरिक राजनीतिक स्थिति तथा दूसरी ओर ब्रिटिश तथा अमरीकी पूजीवादी वर्ग के बाहरी दबाव ने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के भीतर स्थिति को प्रभावित किया।

राजनीतिक स्वतत्रता प्राप्त करने के बाद अब भारत के सामने दूरगामी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सास्कृतिक परिवर्तन कार्यान्वित करने का विकट कार्यभार था, ताकि देश की सामती-औपनिवेशिक आर्थिक तथा सामाजिक सरचना का पुनर्गठन करना, आर्थिक और सास्कृतिक पिछडेपन को दूर करना तथा उसके स्वतत्र विकास के आधार के रूप मे आधुनिक बहुविध अर्थव्यवस्था का निर्माण करना सभव हो सके।

इन समस्याओ के समाधान के बारे मे राष्ट्रीय काग्रेस के नेताओ के दो नजरिये थे। एक दृष्टिकोण सपूर्ण अर्थव्यवस्था मे निजी उद्यम के अप्रतिबधित विकास को चुनना, सामती शासक तथा जमीदार वर्ग के साथ समझौता करना, श्रमजीवी जनता के सघर्ष को कुचलना तथा विदेश नीति के मामलो मे पश्चिमी देशो का अनुकरण करना था जिसे उपप्रधानमत्री और गृहमत्री वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व मे दक्षिण पक्ष प्रतिपादित करता था। दूसरा दृष्टिकोण सर्वोपरि राजकीय क्षेत्र के विकास पर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास पर राजकीय नियत्रण की प्रणाली मे नियोजन सिद्धात के समारभ पर सामतवाद-विरोधी भूमि और अन्य सुधारो के क्रमिक कार्यान्वयन पर जोर देना श्रमजीवी जनता के जीवन-स्तर को ऊचा करने हेतु कदम उठाना और विदेशी मामलो मे तटस्थतावादी, मूलतया उपनिवेशवादविरोधी नीति का अनुसरण करना था, जो जवाहरलाल नेहरू द्वारा अनुसृत नीति के आधारभूत सिद्धातो मे अभिव्यक्त हुआ। शासक पार्टी के नेतृत्व के भीतर तथा केन्द्रीय विधायी और कार्यकारिणी निकायो मे मध्यममार्गी और वामपथी गुटो ने इस नीति का सक्रिय समर्थन किया।

राष्ट्रीय काग्रेस के भीतर परिस्थिति का निर्धारण भारत के विकास के इन दोनो मार्गो के समर्थको के बीच इस सघर्ष ने ही किया। रूढिवादी शक्तियो के विरोध के बावजूद जवाहरलाल नेहरू प्रारभिक युद्धोत्तर वर्षों मे मुख्यतया अपने द्वारा निर्धारित राजनीतिक मार्ग का अनुसरण करते रहे। लेकिन पटेल का, जो अब तक शासक पार्टी तथा सरकार मे दूसरे सबसे महत्वपूर्ण नेता बन

हुए थे राजनीतिक महत्व और प्रभाव भी निरन्तर बढ़ता जा रहा था जिसमें प्रशासन के समक्ष देश की एकता के संरक्षण तथा नवार्जित राष्ट्र के गठन के दृष्टिकोण में उसकी अपनी व्यक्तिगत भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। पटेल पूंजीपतियों और ज़मींदारों वर्गों के इष्ट थे, जो उन्हें भारतीय सरकार में एक लौह पुरुष समझते थे। आखिर, १९५० में प्रवर्तित नये संविधान द्वारा नागरिक अधिकारों का कुछ [illegible] होने के बावजूद इसी वर्ष फरवरी के अंत में संसद (पुरानी संविधान सभा) ने पटेल के प्रभाव में निवारक नजरबंदी अधिनियम पास किया। इस कानून ने पुलिस को लोगों को राजनीतिक कारणों से गिरफ्तार करने और मुकदमा अथवा तहकीकात के बिना एक साल की अवधि तक जेल में बंद करने का अधिकार प्रदान किया।

पटेल और उनके गुट के बढ़ते प्रभाव को १९५० के शरद में कांग्रेस के नासिक (महाराष्ट्र) में आयोजित अधिवेशन में उनके समर्थक पुरुषोत्तमदास टंडन के कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित होने ने प्रकट कर दिया। शासक दल के नेताओं तथा उसके स्थानीय संगठनों के भीतर स्थिति अधिकाधिक तनावपूर्ण होती जा रही थी। परिणामस्वरूप अनेक वामपंथी समूहों ने कांग्रेस छोड़ दी, जिन्होंने बाद में किसान मजदूर पार्टी (जिसे पश्चिम बंगाल में व्यापक समर्थन प्राप्त था) और जन-कांग्रेस (जिसे विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में जन-समर्थन प्राप्त था) का गठन किया। कांग्रेस के भीतर वामपंथी विपक्ष लोकतांत्रिक मोर्चे में एकजुट हो गया। जून १९५१ में निम्न-पूंजीवादी वर्गों की एक नयी राष्ट्रव्यापी पार्टी किसान मजदूर प्रजा पार्टी ने पटना में अपना उद्घाटन सम्मेलन किया। यह आचार्य कृपालानी और रफ़ीअहमद किदवई के नेतृत्व में लोकतांत्रिक मोर्चे (जो इस बीच कांग्रेस से अलग हो गया था) और किसान मजदूर पार्टी तथा जन-कांग्रेस के सम्मिलन से बनी थी।

एक ओर, कुछ वामपंथी समूहों के राष्ट्रीय कांग्रेस से इस पलायन और दूसरी ओर दिसम्बर १९५० में पटेल की मृत्यु ने कांग्रेस नेतृत्व में घोर दक्षिणपंथी तथा घोर वामपंथी – दोनों पक्षों को कमजोर किया और साथ ही जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में मध्यममार्गियों की स्थिति को भी मजबूत बनाया। लेकिन पार्टी के केन्द्रीय निकायों में दक्षिणपंथियों का, जो अब कांग्रेस अध्यक्ष पुरुषोत्तमदास टंडन के इर्दगिर्द समूहबद्ध हो गये थे, प्रभाव काफी बना रहा। सितम्बर १९५१ में जाकर ही कांग्रेस कार्यसमिति ने देश के विधायी निकायों के पहले आम चुनाव और देश में नेहरू की जबरदस्त लोकप्रियता, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था, के दृष्टिगत जवाहरलाल नेहरू को पार्टी का अध्यक्ष चुना।

अजय घोष के नतृत्व म, जिनका नाम पार्टी म वामपथी विचलन की पराजय के साथ जुडा हुआ है, नयी केन्द्रीय समिति और पालिट ब्यूरो का निर्वाचन किया गया।

पार्टी कार्यक्रम के मूलभूत सिद्धाता और भारतीय कम्युनिस्टो द्वारा अनुसृत कार्यनीति म इन सकारात्मक परिवर्तनो न देश म जन-आदालन की और आग प्रगति का सभव बनाया। १६५० के मध्य म नेहरू सरकार के आतरिक नीति म सार्वजनिक जीवन के अधिक जनवादीकरण की दिशा म मोड न कम्युनिस्टा तथा श्रमजीवी जनता के जन सगठना म उनक साथ सहयोग करनेवाल जनवादिया के कार्य को कुछ और आसान बना दिया। १६५० की गरमिया म कम्युनिस्टा का जेला स रिहा किया जान लगा और उसी वर्ष शरद म मद्रास राज्य म कम्युनिस्ट पार्टी और कुछ अन्य जन-सगठना की कार्रवाइया पर स पाबदी उठा ली गयी। अगले साल क आरभ म पश्चिम बगाल म भी कम्युनिस्ट पार्टी की कार्रवाइया पर स प्रतिबध उठा लिया गया।

इस अवधि म विशेष रूप से अगस्त, १६५१ म अखिल भारतीय किसान सभा के कार्य पर स पाबदी उठाये जान के बाद कम्युनिस्टो के नेतृत्व म किसान सघो की गतिविधिया म भी तेजी आयी। अत्यल्प अवधि म ही उसकी सदस्य-सख्या पुन आठ लाख स अधिक हो गयी।

पाचव दशक के अत और छठे दशक के प्रारभ म कम्युनिस्ट पार्टी के नतृत्व म अखिल भारतीय किसान सभा की स्थानीय शाखाओ के अलावा अन्य किसान सगठन भी सक्रिय थे। छ राज्या म समाजवादियो के नेतृत्व म किसान सगठन कायम किये गय थे, लेकिन उन्ह केवल दो राज्या – उत्तर प्रदेश और बिहार – म ही व्यापक समर्थन प्राप्त था। मार्च, १६४६ मे ये प्रातीय किसान सगठन एक नय राष्ट्रव्यापी सगठन, हिन्द किसान पचायत म एकजुट हो गय। इसके कुछ ही बाद हिन्द किसान पचायत न स्वामी सहजानद सरस्वती, योगीद्र शर्मा और अन्य जनवादियो के नतृत्व म किसान सगठनो के साथ मिलकर सयुक्त किसान सभा की स्थापना की। इस सभा का मुख्यतया बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बगाल तथा कुछ अन्य राज्यो के कुछ जिलो म प्रभाव था।

राष्ट्रीय काग्रेस का गावो म कार्य स्थानीय काग्रेस सगठनो पर और राष्ट्रीय किसान काग्रेस (१६५० म इसे भारतीय किसान सम्मेलन का नाम दे दिया गया था) पर भी आधारित था जो युद्ध-काल मे ही एन० जी० रगा द्वारा स्थापित की जा चुकी थी। इसका प्रभाव खुशहाल किसानो मे खासकर व्यापक

था और वह भी विशेष रूप से दक्षिण म। भारतीय किसान सम्मेलन राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा अनुसृत कृषि-नीति का समर्थन करता था।

सगठित किसान-आदोलन की मुख्य दिशा जमीदारी उन्मूलन कानूनो को अधिक मूलगामी बनाने और उनके शीघ्र कार्यान्वयन के लिए सघष था जिन पर उस समय विधानमडलो म बहस चल रही थी। इस सिलसिले म सभी राज्यो म जन-सभाए और प्रदर्शन किये जाते थे और विधायी तथा कार्यपालक निकायो को याचिकाए देकर किसानो की मागा को पेश किया जाता था। किसानो की जन-सभाए अकमर पुलिस क साथ मुठभेडो म समाप्त होती थी।

भूमि के लिए सघर्ष के अलावा मगठित तथा स्वत स्फूर्त – दोनो तरह के किसान-आदोलनो का सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा पट्टेदारी की शर्तों म सुधार के लिए आदोलन था। भूमि सुधारो की पेशबदी करन के लिए जमीदारो ने मौरूसी असामी काश्तकारो को सामूहिक रूप मे बेदखल करना शुरू कर दिया था, ताकि बटाईदारो को दी जानवाली जमीनो (तथाकथित सीर या खुदकाश्त जमीनो) के क्षेत्र को बढाया जा सक। भूमि सुधार विधेयक जमीदारो को खुदकाश्त जमीने रखन का अधिकार देते थ। किसान प्रतिरोध ने शीघ्र ही जमीदारो के साथ सशस्त्र मुठभेडो का रूप ग्रहण कर लिया और इस वजह से अनेक राज्यो (मिसाल के लिए उत्तर प्रदेश और मद्रास) की सरकारो ने जमीदारो द्वारा असामी काश्तकारा को जमीन से बेदखल किये जान को रोकने के लिए विशेष अध्यादेश जारी किये।

बटाईदारो – वस्तुत सभी अधिकारो से वचित तथा भीषणतम शोषण के शिकार असामी काश्तकारो – के दबाव से पाचवे दशक के अत और छठे दशक के प्रारभ मे अधिकाश राज्यो म जमीदार-काश्तकार सबधो को विनियमित करने के लिए कानून बनाये गये। उन्होने लगान की अधिकतम दरे निधारित की, काश्तकारो को बेदखल करने के जमीदारो के अधिकारो को प्रतिबधित किया, आदि। लेकिन जमीदारो के प्रतिरोध के कारण, जिनकी स्थानीय प्रशासनिक तथा राजस्व अधिकारियो के साथ साठगाठ थी, तथा आम बटाईदारो के दुर्बल राजनीतिक सगठन और वर्ग चेतना के निम्न स्तर के परिणाम स्वरूप इन नये कानूनो का उचित ढग से नही कार्यान्वित किया जा सका। इसलिए कम्युनिस्टो के नेतृत्व म किसान सभा ने असामी काश्तकारो को काश्तकारी कानूनो की जानकारी देन तथा सामती शोषण को सीमित करने के लिए सघर्ष म एकजुट करने के लिए व्यापक प्रचारात्मक तथा सगठनात्मक कार्य किया।

देश के कुछ क्षेत्रों (उत्तर प्रदेश, मद्रास, ओडिसा, पंजाब, आदि) में विशेषकर निर्मित संघों में ऐक्यबद्ध खेतिहर मजदूरों का संगठित संघर्ष शुरू हो गया, जिसकी मुख्य मांग दैनिक मजदूरी बढ़ाना और काम की हालतों को सुधारना थी। लेकिन ग्रामीण सर्वहारा का यह संघर्ष स्थानीकृत और बहुत सीमित पैमाने का था, जिसने किसान आंदोलन की समग्र गतिविधियों में नगण्य भूमिका ही अदा की।

पूंजीवादी यौक्तिकीकरण (दीर्घतर कार्य दिवस, उच्चतर उत्पादन मानक आदि) का विरोध और ज्यादा ऊंची मजदूरी की मांग जैसे आर्थिक अधिकारों के लिए हड़तालों के अलावा छठे दशक के प्रारंभ में मजदूर-आंदोलन की गतिविधियों में मालिकों द्वारा १९४८ के श्रम-कानूनों के पालन के लिए ट्रेड यूनियनों का संघर्ष महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने लग गया था। ट्रेड-यूनियन उद्यमकर्ताओं और नये श्रम-क़ानूनों के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार सरकारी निकायों के साथ संबंधों पर अधिकाधिक ध्यान देने लग गयी थीं। १९५० में एक ऐसे कानून का प्रारूप प्रकाशित किया गया, जो व्यवहार में ट्रेड-यूनियनों की गतिविधियों को सरकारी नियंत्रण में ले आता था, लेकिन संगठित मजदूर वर्ग के रोषपूर्ण विरोध ने इस कानून के बनने को रोक दिया।

१९५१–१९५३ के दौरान उत्पन्न कठिन खाद्य स्थिति तथा बढ़ती कीमतों ने हड़ताल-आंदोलन के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डाला था। पहले से ही कठोर भौतिक अभावों से ग्रस्त मजदूरों के लिए लंबी हड़तालों को जारी रख पाना बहुत कठिन था। यही कारण है कि नष्ट श्रम दिवसों की संख्या १९५० में १३० लाख से गिरकर १९५१–१९५४ में ३०-४० लाख रह गयी थी।

ट्रेड यूनियन आंदोलन में फूट तथा कम्युनिस्टों के नेतृत्व में ट्रेड-यूनियनों के कार्य को प्रभावित करनेवाले वामपंथी संकीर्णतावादी विचलन ने भी किसी हद तक मजदूर वर्ग के संघर्ष को कमजोर बनाया।

१९५१–१९५२ का पहला आम चुनाव

गंभीर वस्तुगत और आत्मगत समस्याओं के बावजूद मजदूरों, किसानों और शहरी निम्न पूंजीवादी वर्ग के व्यापक संघर्ष ने पहले आम चुनाव के परिणामों को प्रभावित किया था, जो गणतंत्र की घोषणा के बाद भारत के आंतरिक राजनीतिक जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ था।

भारत जैसे विशाल देश मे जिसके पास और बातो के अलावा इस कार्य के लिए प्रशासकीय कर्मचारियो की पर्याप्त सख्या प्राप्त नही थी और जिसे पूजीवादी ससद-पद्धति का कोई अनुभव नही था ससद और राज्य विधान मडलो का पहला आम चुनाव पूरे देश मे एकसाथ नही कराया जा सकता था। वह २५ अक्तूबर, १९५१ से २४ फरवरी १९५२ तक चला।

१९५१ के चुनाव अभियान ने देश के विभिन्न राजनीतिक सगठनो को सक्रिय किया और देश मे सामाजिक-राजनीतिक शक्तियो के सतुलन को प्रकट किया।

चुनाव की पूर्ववेला मे ही यह स्पष्ट हो चुका था कि ऐसे मतदाताओ (उनमे से अधिकाश किसान और शहरी आबादी के विभिन्न निम्न पूजीवादी सस्तरो से थे) मे, जो पहली बार चुनाव मे भाग ले रहे थे, लोकप्रियता के मामलो मे काग्रेस अन्य सभी राजनीतिक सगठनो से बहुत आगे थी। इसका कारण केवल काग्रेस को जो राष्ट्रीय क्राति को विजयातक परिणति तक ले गयी थी प्रदत्त ऐतिहासिक भूमिका तथा शासक दल के नाते उसकी स्थिति ही नही, बल्कि एक जनव्यापी राजनीतिक सगठन के नाते उसका विशिष्ट स्वरूप भी था। काग्रेस, जो राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग की सबसे बडी और प्रभाव शाली पार्टी थी, अब भी बहुत सीमा तक शहरी निम्न पूजीवादी वर्ग और कृषक समुदाय के व्यापक सस्तरो द्वारा समर्थित एक राष्ट्व्यापी सगठन थी। उसकी नीति विषयक दस्तावेजो और कार्यनीति मे सर्वोपरि इन वर्गो के हितो को ही ध्यान मे रखा जाता था। काग्रेस सगठनो के नेतृत्व मे विभिन्न निम्न-पूजीवादी सस्तर भी प्रतिनिधित होते थे। एक पार्टी के रूप मे काग्रेस की सगठनात्मक और राजनीतिक सरचना की विशेषताए उसे अपने जन समर्थन को बनाये रखने मे बडी सीमा तक सहायता करती थी।

राष्ट्रीय काग्रेस जैसे भारतीय राजनीतिक वर्णपट के केन्द्र मे थी। विभिन्न सामती और सप्रदायवादी प्रतिक्रियावादी दल उसके दक्षिण पक्ष मे थे। इनमे सबसे प्रभावशाली थे भूतपूर्व राजाओ द्वारा पोषित रामराज्य परिषद सबसे पुराना हिंदू साप्रदायिक सगठन – हिन्दू महासभा तथा किसी हद तक जन सघ, जो चुनावो के ठीक पहले अस्तित्व मे आया था और हिंदू व्यापारी पूजीवादी वर्ग तथा हिंदू अधराष्ट्रवादी मध्यमवर्गीय नगरवासियो के समर्थन पर निर्भर करता था।

दक्षिणपथी विपक्ष के ये और अन्य सगठन अधिकाशतया सामती शासको और जमीदारो तथा व्यापारियो और महाजनो के हितो का प्रतिनिधित्व करते थे।

की असली प्रतिद्वद्वी कम्युनिस्ट पार्टी ही थी जो कुछ क्रातिकारी जनवादी पार्टियो के साथ मिलकर काम कर रही थी। कम्युनिस्ट कुछ राज्यो – पश्चिम बगाल बिहार ओडिसा मद्रास और त्रावणकोर कोचीन – मे एक सयुक्त मोरचा कायम करने म सफल हो गये थे।

दक्षिणपथी समाजवादी पार्टियो और प्रतिक्रियावादी सम्प्रदायवादी पार्टियो की चुनावो म भारी पराजय हुई।

ससदीय चुनावो मे काग्रेस ने ४४ ५ प्रतिशत मत और ७४ ३ प्रतिशत सीट (बहुमत प्रणाली के अतगत) प्राप्त की तथा कम्युनिस्ट पार्टी और उसकी सहयोगी पार्टियो न ६ ७ प्रतिशत मत और लगभग १० प्रतिशत सीटे प्राप्त की। दक्षिणपथी समाजवादियो को १२ ६ प्रतिशत मत लेकिन ५ प्रतिशत से भी कम सीटे मिली थी। दक्षिण पक्ष की तीन पार्टियो – हिन्दू महासभा, रामराज्य परिषद और जन सघ – को ४ ८ प्रतिशत मत और कुल ४८० सीटो म से १० सीट प्राप्त हुई थी।

राज्यो की विधान सभाओ के चुनावो मे काग्रेस ने ४२ प्रतिशत मत और ६५ ७ प्रतिशत सीटे (२ २४८ सीट) और कम्युनिस्ट पार्टी व सयुक्त मोरचे म उसकी सहयोगी पार्टियो को २३४ सीटे मिली, जब कि दक्षिणपथी समाजवादी २०४ सीटे और तीन प्रतिक्रियावादी पार्टिया केवल ८७ सीटे जीत पायी।

इस तरह काग्रेस केन्द्र और राज्यो मे एक-पार्टी सरकारे बना सकती थी। अधिकाश मतदाताओ न यह विश्वास करते हुए गाधी और नेहरू की पार्टी को अपना समर्थन दिया था कि वह अपने घोषणापत्र म निर्दिष्ट सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के कार्यक्रम को पूरा करेगी। चुनावो ने दिखाया कि कुल मिलाकर भारतीय जनमत वाम पक्ष की तरफ झुक रहा है। कम्युनिस्ट पार्टी को, जिसकी सदस्य-सख्या करीब ३० हजार थी लगभग ६० लाख मत प्राप्त हुए थे। पश्चिम बगाल और दक्षिणी राज्यो – मद्रास हैदराबाद त्रावणकोर-कोचीन – मे उसकी स्थिति विशेष रूप से मजबूत थी जहा उसके समर्थन का मुख्याधार जन-किसान सगठन था।

चुनावो ने शासक पार्टी को औपनिवेशिक और सामती सरचनाए पूर्णत बदलने के उद्देश्य से आर्थिक और सामाजिक सुधारो के कार्यक्रम लागू करने का समादेश दिया था।

आर्थिक ओर मामाजिक नीति

भूमि मुधार

औपनिवेशिक काल म विरासत म प्राप्त आर्थिक प्रणाली को पूजीवादी ढग से रूपातरित करने क उद्देश्य स आर्थिक नीति के क्षेत्र म लिया गया पहला महत्वपूर्ण कदम पाचवे दशक क अत और छठे दशक क प्रारभ म भूमि सुधारा का कार्यान्वयन था।

कांग्रेस न अपन १९४६ के चुनाव घोषणापत्र में ही राज्य और भूमि जोतनवाला क बीच मौजूद 'बिचौलियो" का उन्मूलन करन क अपन इरादे की घोषणा कर दी थी। लेकिन "बिचौलिया" मे मबद्ध प्रणाली का अर्थ भूस्वामित्व का आम मामती ढाचा नहीं बल्कि जमींदारो क स्वामित्व म स्थित भूमपत्तिया लगाया गया। जमीदार जो मामती भूस्वामी वर्ग का केन्द्रक थ और जो भारत म ब्रिटिश शासन क समर्थन का मुख्याधार थ, भूस्वामी वर्ग क घोर प्रतिक्रियावादी हिस्से का प्रतिनिधित्व करते थे। उनका भारतीय राष्ट्रीय पूजीपति वर्ग क माथ दूसरे भूस्वामी ममूहो के मुकाबले अपेक्षया कम सपर्क थ। इम वजह से जब पूववर्ती भूस्वामित्व प्रणाली को परिवर्तित करन क उद्देश्य स भूमि कानून बनाये जान लगे, तो मबसे पहले उनकी भूसपत्तिया पर ही प्रतिबध लगाया गया। १९४७ और १९५४ के बीच सभी राज्यो म विधानमडलो द्वारा भूमि सुधार विधेयक (वस्तुत जमीदारी उन्मूलन कानून) पास किये गये और भारत क राष्ट्रपति न उनकी पुष्टि की। लेकिन इन भूमि सुधार कानूनो न उन क्षेत्रो म भूस्वामित्व को बिलकुल प्रभावित नही किया जहा रैयतवारी प्रणाली विद्यमान थी (उनम देश की ५७ प्रतिशत काश्तयोग्य जमीन स्थित थी)।

जमीदारी प्रणालीवाले क्षेत्रो म भी जमीदारो की जमीन का एक अल्प अश ही हस्तातरित किया गया। जमीदारी उन्मूलन कानूनो क अनुसार सीर जमीने उनकी सपत्ति बनी रही। इसके अलावा जमीदारो को अपने गृह फार्मों से युक्त आवासीय मकानो कृषि उपकरणो मवेशियो और अन्य ऐसी सपत्तिया को जिन्हे उन्होन किसानो का अर्ध सामती शोषण करके सचित किया था अपन पास बनाये रखने दिया गया।

जमीदारी प्रथा के उन्मूलन के लिए लागू इन कानूनो की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि जमीदारो को कुल ७०० करोड रुपये का मुआवजा प्रदान

किया गया। ये मुआवजे जमीदारो से ली हुई जमीं पर खेती करनेवाले काश्तकारो द्वारा राज्य को प्रदत्त लगान से अदा किय जात थे। अधिकाश राज्यो मे काश्तकार पहले जितना ही लगान दते रहे किंतु अब सीधे राज्य को अदा किया जाता था। इसक साथ ही जमींदारो को प्रनिवर्ष मुआवजा भुगतानो से मिलनेवाली कुल रकम उस रकम से कम थी जो उह पहने लगान से मिला करती थी। इसका अर्थ यह था कि अब भारतीय समाज मे विभिन्न प्रभावी वर्गो क बीच किमान काश्तकारो से प्राप्त अधिशेष उत्पाद के मूल्य का पुनर्वितरण राष्टीय पूजीवादी वग क हित मे होने लगा था राज्य को प्राप्त नये राजस्व का उपयोग देश की पूजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास को तीव्र करने के लिए किया जाता था। जमीदारो की अधिकाश जमीनो – उत्तर प्रदश मे ८७ प्रतिशत बिहार म ८४ प्रतिशत, आदि – को हस्तातरित कर लिया गया। समग्र रूप म भूस्वामी वर्ग को अपने अधिकार मे स्थित लगभग ६० प्रतिशत जमीन से हाथ धोना पडा।

परिणामस्वरूप अधिकाश जमीदार आर्थिक रूप से सुधारो क कार्यान्वयन के पहले के मुकाबले काफी दुर्बल हो गये। लेकिन अपनी आथिक ओर फलत राजनीतिक स्थिति की दुर्बलता के बावजूद व अब भी बडे भूस्वामी वर्ग का अग बने रहे।

भूमि सुधार का असामी काश्तकारा की स्थिति पर क्या प्रभाव पडा? दखील काश्तकारो ने जिन्ह सीध जमीदारो अथवा उप-पट्टेदारो से अपनी जमीनें प्राप्त हुई थी रैयतवारी क्षेत्रो मे भूस्वामियो मे मिलती-जुलती स्थिति प्राप्त कर ली। अधिकाश राज्यो (असम पश्चिम बगाल ओडिसा, बिहार भोपाल, राजस्थान अजमेर मध्य प्रदेश आध्र मद्रास, आदि) मे नयी भूपैमाइश और बदोबस्त के बाद इन असामी काश्तकारो को यह स्थिति स्वत ही प्राप्त हो गयी थी। लकिन कुछ अन्य राज्यो (उत्तर प्रदेश बम्बई मैसूर, आदि) म उन्होंने ये अधिकार विमोचन भुगतान के बदले म प्राप्त किये, जिसकी रकम उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश मे उनकी काश्तो के लगान का दस गुना और सौराष्ट्र मे भूराजस्व का छ गुना थी।

अधिकाश राज्या म असामी काश्तकारो की स्थिति म, जो जमीदारो स हस्तातरित जमीनो पर खेती कर रहे थे, भूमि सुधारो के कार्यान्वयन के बाद कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। इनमे से अधिकाश असामी काश्तकार पहले जितना ही लगान दते रहे। उन राज्यो मे भी, जहा भूमि करो को पहले के लगान स्तरो मे कम कर दिया गया था उनकी स्थिति (सौराष्ट्र के असामी काश्तकारो को छोडकर) विशेष न बदली।

लेकिन इसमे कोई सदेह नही कि सभी पहले के असामी काश्तकारो को इस बात से लाभ हुआ कि भूमि सुधार लागू किये जाने के बाद अववाव (जमीदार द्वारा लगान के अलावा लिये जानवाले विभिन्न कर) अब बद हो गये थे। दूसरी ओर चूकि ग्रामीण आबादी पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर बढा दिय गये थे इसलिए उपर्युक्त लाभ नही के बराबर ही था।

भूमि सुधार भीषण राजनीतिक सघर्ष की पृष्ठभूमि मे कार्यान्वित किये गये। किसान भूमि प्रश्न के मूलगामी हल की तथा न्यूनतम कार्यक्रम के रूप म पास किये गये भूमि कानून के तत्काल और पूर्ण कार्यान्वयन की माग कर रहे थे। इसके साथ ही सुधारो को जमीदारो तथा राज्य सरकारो और विधायी निकायो मे उनके समर्थको के प्रतिरोध का मुकाबला करना पड रहा था।

अपने सीमित स्वरूप के बावजूद भूमि सुधारो का निर्विवाद रूप से ऐतिहासिक और प्रगतिशील महत्व था, क्योकि उनसे सामती और अर्ध सामती शोषण का दायरा सकुचित हो जाता था। दूसरी ओर जमीदारी उन्मूलन अधिनियम अपने आप मे इसके लिए काफी न थे कि जमीदारो को अपनी जमीनो पर पूजीवादी ढग से खेती करने हेतु प्रोत्साहित कर सके।

लेकिन भूमि सुधारो के प्रणेता उनके कार्यान्वियन के दौरान भूसपत्तियो को आशिकत अछूता छोडने का आर्थिक औचित्य इस बात मे देखते थे कि भूतपूर्व शक्तिशाली जमीदारो के हाथो में बची जमीन पर बडे पूजीवादी फार्म कायम किये जायेगे।

इस उद्देश्य से जमीदारी उन्मूलन के साथ-साथ ऐसे कदम भी उठाये जाने थे जो जमीदारो और सभी अर्ध सामती भूस्वामियो को यथाशीघ्र पूजीवादी ढग से खेती करने को प्रेरित करते। इस तरह का एक कदम निजी जोतो का अधिकतम आकार निर्धारित करनेवाले कानून बनाना था। लेकिन स्वतत्रता प्राप्ति के बाद छ वर्ष तक जब जमीदारी भूसपत्तियो का उन्मूलन किया जा रहा था, इस प्रश्न पर कोई ध्यान न दिया गया। १९५३ मे जाकर ही जोतो के अधिकतम आकार (भूमि-हदबदी) के प्रश्न पर पुन विचार विमर्श किया जान लगा। जोतो के अधिकतम आकार का निर्धारण पहली और दूसरी पचवर्षीय योजना अवधियो के दौरान भारत की कृषि नीति का एक सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य था।

भूमि हदबदी के प्रश्न ने राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग के विभिन्न हिस्सो क बीच और शासक पार्टी मे गभीर मतभेद उत्पन्न कर दिये। इसका कारण सबसे पहले यह था कि "हदबदी' का प्रश्न जमीदारो ही नही, बल्कि सपूर्ण भूस्वामी

वर्ग को प्रभावित करता था दूसरे यह प्रश्न केवल सामती और अर्ध सामती भूस्वामियो ही नही, बल्कि पूजीवादी ढग से खेती करनेवाले भूस्वामियो सहित सभी बडे भूस्वामियो से सबध रखता था तीसरे, सपन्नतर किसानो को, जो अधिकाश गावो मे जमीन के मालिक थे, आशका थी कि हदबदी से कही उनके हितो पर भी आच न आ जाये।

सातवे दशक के मध्य तक अधिकाश राज्यो मे भूमि हदबदी कानून पास किये जा चुके थे, जब कि बाकी राज्यो मे उन्हे अब भी विधानमडलो मे विभिन्न वाचनो से होकर गुजरना था। ऐसी स्थिति मे कि जब देश मे ६० प्रतिशत से अधिक जोते पाच एकड से कम की थी विभिन्न राज्यो मे ऐसी हदबदिया निर्धारित की जा रही थी, जो इस स्तर से कई गुना अधिक थी (मिसाल के लिए मैसूर मे असिचित जमीना के लिए ४० गुना मे अधिक और आध्र प्रदेश मे ६० गुना से अधिक)।

इसके अलावा अनेक राज्यो मे पाच से अधिक सदस्योवाले परिवारो को निर्धारित हदबदी मे अधिक जमीन रखने की अनुमति दी गयी। कानूना मे ऐसे अनुच्छेद भी शामिल किये गये, जो यह निर्धारित करते थे कि ये नये नियम "कार्यरत फार्मो" 'सहकारी फार्मो" तथा कुछ अन्य प्रकार की जोतो पर नही लागू होगे।

यह प्रकट हुआ कि नये कानूनो के समग्र रूप मे लागू किये जाने के बाद भी लघु और मध्यम आकार की अधिकाश जोत प्रभावित नही होगी। नवनिर्धारित हदबदिया जो औसतन सिचित जमीन के लिए १५-३० एकड और असिचित जमीन के लिए ८० १०० एकड थी, अधिकाश (६० ७० प्रतिशत) किसान जोतो के आकार–औसतन सिचित जमीन के लिए ५ एकड और असिचित जमीन के लिए १० एकड–से बहुत अधिक थी। जैसा कि हैदराबाद और बगाल मे हदबदी अधिनियम लागू किये जाने के अनुभव ने दिखाया, मुश्किल से ही कोई फाजिल जमीन निकली। अधिनियमो म छूटी त्रुटियो से भरपूर लाभ उठाकर भूस्वामी आसानी स उनसे बच निकले थे। हालाकि बडे भूस्वामियो के पास १० करोड एकड से अधिक जमीन थी, १९६७ तक मात्र २३ लाख एकड जमीन ही फाजिल पायी जा सकी।

भूस्वामियो को मुआवजा देने के बाद उनसे 'फाजिल जमीने" ले ली गयी। जमीदारी उन्मूलन के बाद किये गये भुगतानो की तरह खजाने द्वारा किश्तो मे–नकद अथवा विशेष बाडो के रूप मे–चुकता किये जानेवाले इन मुआवजो की राशि जमीदारो को किये गये भुगतानो से बहुत अधिक थी।

हदबन्दी कानून एक आर्थिकेतर दबाव की कार्रवाई थी, जिसकी सहायता से राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग भारतीय कृषि को यथाशीघ्र पूजीवादी ढर्रे म ढालना चाहता था।

दूसरी ओर, य कदम किसानो को सक्रिय वर्ग सघर्ष स रोकते थे। अत जब भारतीय कृषि पूजीवादी विकास क मार्ग पर चलना प्रारभ कर रही थी और किसान आदोलन अस्थायी ह्रास के दौर से गुजर रहा था, हदबदी के प्रश्न को एक बार पुन स्थगित कर दिया गया।

भूदान और ग्रामदान आदोलन

भूमि पुनर्वितरण के सघर्ष ने तथाकथित भूदान आदोलन को भी जन्म दिया।

इस आदोलन का मार्ग था भूमि का स्वेच्छया दान, ताकि उसे उन किसानो के बीच वितरित कर दिया जाये, जिनके पास बहुत कम अथवा बिलकुल जमीन नही थी। इस आदोलन क प्रेरक गाधीजी के एक प्रमुख अनुयायी आचार्य विनोबा भाव थे। भूदान आदोलन तेलगाना के विद्रोही किसानो द्वारा जमीदारो की सपत्ति के बलात अधिग्रहण और वितरण का मुकाबला करने के लिए शुरू किया गया था। १५ अप्रैल, १९५१ को तेलगाना मे ही विनोबा भावे ने वह पहला सार्वजनिक उपदेश दिया था, जिससे भूदान आदोलन का सूत्रपात हुआ।

आदोलन ने उस समय अपेक्षया काफी सफलता प्राप्त की जब जमीदारी उन्मूलन कानून बनाये और कार्यान्वित किये जा रहे थे। १९५५ तक बिहार और उत्तर प्रदेश के जमीदार स्वेच्छा से ४३ लाख एकड से अधिक जमीन दान कर चुके थे। किंतु जब जमीदारी प्रथावाले इलाको मे भूमि सुधार के कार्यान्वयन के परिणामस्वरूप किसानो के जुझारूपन मे एक अस्थायी ह्रास आया तो यह नया आदोलन भी धीरे-धीरे शात पड गया। इसके अलावा यह भी पाया गया कि जमीदारो द्वारा स्वेच्छा से दी गयी अधिकाश जमीन खेती के लिए अनुपयुक्त थी।

१९५५ के अत मे भूदान आदोलन ने अपनी अतिम अवस्था ग्रामदान अवस्था मे प्रवेश करना शुरू किया। आदोलन की इस अवस्था मे गाव की सारी जमीन "भगवान की' अथवा एक समुदाय के रूप मे गाव की "अस्वामिक भूमि" बन जाती थी। लेकिन इसका यह मतलब नही था कि

एसे गावो के भीतर वास्तविक वग सरचना म कोई बडे परिवर्तन आ गये थे। यह आन्दोलन भूदान आदोलन स भी कम सफल सिद्ध हुआ।

काग्रेस पार्टी और सरकार न भूदान और ग्रामदान आदोलनो को अपना पूर्ण समर्थन प्रदान किया। कई राज्यो म कानून बनाकर ऐसी जमीनो के सग्रह और वितरण पर प्रशासन का नियत्रण कायम किया गया तथा राजकीय वजट से इस आदोलन को आर्थिक इमदाद दी गयी।

अखिल भारतीय किसान सभा और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी न प्रारभ से ही इस आदोलन क प्रति जो रवैया अपनाया वह उसक विरुद्ध तो नही था, पर साथ ही अध समर्थन का भी नही था। किसानो को यह समझान के साथ-साथ कि भूदान आन्दोलन भूमि प्रश्न का जड स हल नही कर सकता किसान सभा के स्थानीय कार्यकर्ताओ न यह माग करत हुए इस भूमि वितरण का समर्थन किया कि इस तरह से प्राप्त जमीन व्यवहार मे भूमिहीन व अल्पभूमि किसानो और खेतिहर मजदूरा क बीच वितरित की जानी चाहिए।

भूमि सबधो क क्षेत्र म किय गय रूपातरणो क परिणामस्वरूप भारतीय कृषि मे सामती प्रथाओ का बोलबाला नही रह गया। १९६१ म कुल जोतो की सख्या म काश्तकारो की जोता का हिस्सा ७ ७ प्रतिशत और कुल कृषि क्षेत्र मे ४ २० प्रतिशत था जब कि कुल जोतो की सख्या म अर्ध काश्तकारो की जोता का हिस्सा १५ ४६ प्रतिशत और कुल कृषि-क्षेत्र म १८ १९ प्रतिशत था। कृषि म छोट पैमान क माल उत्पादन और पूजीवादी उत्पादन का विकास तेज हो गया था। इन सभी कारको न एसी परिस्थितिया उत्पन्न की, जो पूजीवादी औद्योगीकरण की नीति के अनुकूल थी।

राजकीय पूजीवाद का त्वरित विकास

आर्थिक नीति सबधी प्रथम महत्वपूर्ण दस्तावेजो (१९४८ का औद्योगिक नीति प्रस्ताव, काग्रेस के १९५० के नासिक अधिवेशन का आर्थिक नीति सबधी प्रस्ताव, आदि) और सविधान म भी राष्टीय अर्थव्यवस्था के निर्माण म राज्य की निर्णायक भूमिका पर जोर दिया गया था। १९५० मे सरकार न जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे योजना आयोग कायम किया। इस आयोग ने १ अप्रैल, १९५१ से ३१ मार्च १९५६ तक की अवधि, अर्थात १९५१-५२ के वित्तीय वर्ष से १९५५-५६ के वित्तीय वर्ष तक की अवधि के लिए पहली पचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार किया। पहली योजना की तरह

बाद की पचवर्षीय आर्थिक योजनाओ मे भी उद्योग और आधारिक सरचना मे सार्वजनिक क्षेत्र को विकसित करने पर अधिक जोर दिया गया, औद्योगिक और कृषि उत्पादन की मुख्य शाखाओ के विकास लक्ष्य निर्धारित किये गये, सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के लिए पूजी-विनियोग की मात्रा और मुख्य दिशाओ तथा सार्वजनिक क्षेत्र मे बचत के स्रोत और मात्रा का पूर्वनिर्धारण किया गया।

जब कि पहली पचवर्षीय योजना का लक्ष्य मुख्यत औद्योगिक ढाचे को बदलने का मार्ग प्रशस्त करना था, दूसरी (१९५६ ५७–१९६० ६१) और तीसरी (१९६१-६२–१९६५-६६) पचवर्षीय योजनाओ मे देश के औद्योगीकरण के विस्तृत कार्यक्रम निर्धारित किये गये।

आर्थिक विकास की पचवर्षीय योजनाए भारत मे राजकीय पूजीवाद की नीति की सबसे सघन अभिव्यक्ति हैं।

इस नीति का कार्यान्वयन और सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण देश के आर्थिक विकास को तीव्र करने का एक महत्वपूर्ण साधन थे। लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माण ने भारतीय समाज के सामाजिक-आर्थिक स्वरूप को बदलने के बजाय, उल्टे निजी पूजीवादी उद्यम के विस्तार को प्रोत्साहित ही किया। योजनाबद्ध आर्थिक विकास के पहले दस वर्षों (१९५०-५१–१९६० ६१) म निजी ज्वाइंट-स्टाक कपनियो की प्रदत्त पूजी मे ५७ ४ प्रतिशत की वृद्धि हुई। १९६०-६१ मे बडे उद्योग और उत्खनन क्षेत्र के कुल वार्षिक उत्पादन म सार्वजनिक प्रतिष्ठानो का अशदान मात्र दस प्रतिशत था।

तो भी सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माण और विकास ने देश के आर्थिक और राजनीतिक वातावरण मे कुछ ठोस परिवर्तन शुरू किये। पहले, भारतीय भारी उद्योग के मुख्य प्रतिष्ठान, अर्थात वे उद्योग, जो औद्योगीकरण अभियान की सफलता के लिए अत्यत महत्वपूर्ण थे, सार्वजनिक क्षेत्र मे सकेद्रित थे, दूसरे सार्वजनिक क्षेत्र निजी क्षेत्र के मुकाबले अधिक तेजी से विकसित हो रहा था। वस्तुत १९५१ और १९६१ के बीच राजकीय प्रतिष्ठानो की प्रदत्त पूजी २६ ३ करोड से बढकर ५४५ २ करोड रुपये (अर्थात २० गुनी से अधिक) हो गयी, जब कि निजी क्षेत्र मे वह ७४९ १ करोड से बढकर १,१८९ ४ करोड रुपये (५० प्रतिशत से कुछ अधिक) तक ही पहुची। १९५१ मे सार्वजनिक प्रतिष्ठानो की प्रदत्त पूजी निजी कपनियो की प्रदत्त पूजी की लगभग ३ ५ प्रतिशत थी, जब कि १९६१ मे वह बढकर ४६ प्रतिशत तक हो गयी।

देश के विभिन्न राजनीतिक समूह निर्विवाद रूप से साम्राज्यवादविरोधी स्वरूप के सार्वजनिक क्षेत्र को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखते थे। जनवादी

शक्तिया इसे देश को जनवादी सुधारो के कार्यान्वयन और विशेष रूप से निजी पूजीवादी उद्यम को सीमित करने मे समर्थ बनानेवाला एक सबसे महत्वपूर्ण कारक मानती थी जब कि प्रतिक्रियावादी समूह इसके और आगे विकास को रोकने और इसे भारतीय बडे पूजीपति वर्ग के हितो के मातहत बनाने की माग कर रहे थे।

औद्योगीकरण की शुरुआत और इसकी विशेषताए

भारत की औपनिवेशिक और सामती आर्थिक सरचना के पुनर्गठन के साथ-साथ राज्य की भूमिका निरतर अधिकाधिक महत्वपूर्ण बनती जा रही थी। उत्पादन और वितरण के क्षेत्र मे सार्वजनिक उद्यम के अलावा राजकीय पूजीवाद का एक दूसरा महत्वपूर्ण पहलू राष्ट्रीय उत्पादन के सुदृढीकरण, निजी क्षेत्र के कार्यकलापो पर नियत्रण, निजी और सार्वजनिक क्षेत्रो म इस या उस शाखा के विकास के प्रोत्साहन या नियत्रण के उद्देश्य से अर्थव्यवस्था के राजकीय विनियमन के विभिन्न रूपो मे निहित था।

राजकीय आर्थिक और वित्तीय सस्थाओ द्वारा नियत्रण और विनियमन निम्नलिखित विशेष कानूनो पर आधारित था १९४७ का पूजी निर्गम (नियत्रण) अधिनियम १९४७ का विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम १९४७ का आयात और निर्यात (नियत्रण) अधिनियम, १९४९ का बैक अधिनियम १९५१ का उद्योग (विकास और विनियमन) अधिनियम जिसम और बातो के अलावा उद्यमो के लिए उत्पादन क्षमताओ की स्थापना व विस्तारण के लाइसेसिग नियम भी निर्धारित किये गये थे, १९५५ का आवश्यक वस्तु अधिनियम, जिसने सरकार को कीमते निर्धारित करने का अधिकार प्रदान किया था, १९५६ का कपनी अधिनियम (१९६० मे सशोधित), जिसके द्वारा मैनेजिग एजेसियो के कार्यो को प्रतिबधित किया गया था आदि।

निजी क्षेत्र के विनियमन और नियत्रण के अलावा राज्य ने निजी पूजीवादी उद्यम को प्रत्यक्ष प्रोत्साहन भी प्रदान किया। इस उद्देश्य से मूल्य नीति के सबध मे विशेष कदम उठाये गये और सरक्षणात्मक प्रशुल्क तथा कर छूट आदि लागू की गयी। इस सबध मे औद्योगिक विकास के लिए ऋण प्रदान करनेवाले विभिन्न राजकीय और अर्ध-राजकीय विनियोग निकाया — भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (१९४८ मे स्थापित) १९५१ के बाद कायम अनेक

राज्यो के वित्त निगमो राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (१९५४ म स्थापित), भारतीय औद्योगिक ऋण और विनियोग आयोग (१९५५ म स्थापित), आदि–ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। १९५५ मे देश के सबस बडे निजी व्यापारिक बैक इपीरियल बैक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और इसका नाम स्टेट बैक ऑफ इडिया रखा गया तथा १९६४ मे भारतीय औद्योगिक विकास बैक खोला गया। कुल मिलाकर १९५६ और १९६६ के बीच निजी उद्यमकर्ताओ को राज्य से कुल ९०० करोड रुपये वित्तीय सहायता के रूप म प्रदान किये गये।

लघु उद्योगो के वास्त पूजी की व्यवस्था करने के लिए भी एक विशेष राष्ट्रीय निगम कायम किया गया। वित्तीय सहायता प्रदान करने के अलावा राज्य न लघु यत्रीकृत इकाइयो और हस्तशिल्प इकाइयो को उपकरणो, कच्चे मालो की सप्लाई और तैयार वस्तुओ की बिक्री मे सहायता, आदि के जरिये काफी समर्थन दिया।

राजकीय सहायता ने पूजीवादी सरचना के उच्चतर और निम्नतर, सभी सोपानो मे पूजी सचय को आसान बनाया।

राष्ट्रीय उत्पादन को विनियमित और प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से की गयी सरकारी कारवाइयो ने भारतीय अर्थव्यवस्था मे पूजी विनियोग के पैमाने और दिशाओ मे बडे परिवर्तन उत्पन्न किये। १९४८ और १९६२ के बीच औद्योगिक प्रतिष्ठानो की मूल परिसपत्तियो मे पूजी विनियोग ९१० करोड रुपय से बढकर ३ ६०० करोड रुपये (१९४८ की कीमतो मे) हो गया। अधिकाश नये विनियोग भारी उद्योग–लौह और अलौह धातुकर्म यात्रिक इजीनियरी, तेलशोधन, रसायन उद्योग विद्युत इजीनियरी और निर्माण सामग्री उत्पादन–मे किये गये थे।

भारी उद्योग मे बढे हुए पूजी विनियोग के परिणामस्वरूप विभाग १ और विभाग २ के बीच सहसबध म महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। मिसाल के लिए १९५१ मे विनिर्माण (मैन्यूफेक्चरिंग) उद्योग मे लगी कुल पूजी मे विभाग १ की मुख्य शाखाओ (यात्रिक इजीनियरी लौह धातुकर्म, रसायन और सीमेट उद्योगो) का हिस्सा मात्र २४ ३ प्रतिशत था, जब कि १९५५ मे वह बढकर ३१ ५ प्रतिशत और १९६० मे ४८ ९ प्रतिशत हो गया। सातवे दशक के मध्य मे मूल्य की दृष्टि से कुल उत्पादन मे उद्योग के दोना विभागो का समान अश था।

पूजी विनियोग मे इस वृद्धि ने देश के औद्योगिक विकास को तेज करना

मभव बना दिया। १९२३ और १९६३ के बीच औद्योगिक उत्पादन प्रतिवर्ष ०६ प्रतिशत की दर से बढा था जब कि १९५१-१९५५ में ६ ५ प्रतिशत १९५६-१९६० मे ७ ० प्रतिशत और १९६१-१९६३ मे ७ ७ प्रतिशत की दर से। सबसे ऊची वृद्धि दर भारी उद्योग की अग्रतम शाखाओ ने दिखायी थी।

१९४८ और १९६४ के बीच भारत के कुल औद्योगिक उत्पादन मे १५० प्रतिशत की वृद्धि हुई।

देश के औद्योगीकरण की इन प्रारंभिक अवस्थाओ मे राज्य ने मुख्य सांगठनिक की भूमिका अदा की। बड़े उद्योग मे राज्य की भागीदारी के परिणामस्वरूप भारत मे नयी उद्योग-शाखाओ का निर्माण हुआ जिन्होने स्वतत्र राष्ट्रीय बुनियाद पर पुनरुत्पादन के लिए आधार तैयार किया। भारत के आर्थिक मच पर विशेष रूप से नियोजन के क्षेत्र मे राजकीय पूजीवाद के आविर्भाव ने सार्वजनिक क्षेत्र के लिए उच्च विकास दर प्राप्त करना सभव बना दिया। १९७६ मे देश के कुल औद्योगिक उत्पादन मे सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा लगभग १८ प्रतिशत था।

औद्योगीकरण ने देश के आर्थिक विकास के भीतर कुछ विरोधात्मक प्रवृत्तिया भी उत्पन्न की। पहली पचवर्षीय योजना की पूर्ति के बाद जिसके दौरान अर्थव्यवस्था को प्रभावित करनेवाले देश के विभाजन के मुख्य नकारात्मक परिणामो को दूर कर दिया गया था यह तय किया गया कि औद्योगीकरण मुख्यतया सार्वजनिक क्षेत्र के विकास के जरिये पूरा किया जाना चाहिए। सरकार के नये औद्योगिक नीति सबधी प्रस्ताव (३० अप्रैल, १९५६) मे १९४८ के प्रस्ताव मे शामिल उद्योग-शाखाओ की सूची मे ऐसे अनेक नये नाम जोडे गये जिनमे केवल राज्य ही उद्यम स्थापित कर सकता था या उसे प्राथमिकता प्राप्त होनी थी। लेकिन छठे दशक के अत और सातवे दशक के आरम्भ मे बड़े राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग के दबाव मे आकर सरकार निजी क्षेत्र को इस सूची के सबध मे काफी छूटें देने के लिए बाध्य हो गयी।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की कुछ शाखाओ मे निजी पूजी पर लगाये गये प्रतिबधो के बावजूद भारत मे राजकीय पूजीवाद ने कुल मिलाकर निजी पूजीवादी उद्यम का उल्लेखनीय विस्तार सभव बनाया और खास तौर से ऊपरी सस्तरो मे पूजी के सकेंद्रण और केंद्रीयकरण को तेज कर दिया। बडे पूजीपति वर्ग के शीर्षस्थ इजारेदार तबके की स्थिति मजबूत बनी। यह उल्लेखनीय है कि दूसरी और तीसरी पचवर्षीय योजनाओ (१९५६-१९६६) मे

निजी क्षेत्र के लिए निर्धारित कुल राजकीय वित्तीय सहायता मे से आधे स अधिक ७३ सबसे वडे निगमो ने ही हथियायी थी।

भारतीय वड पूजीपति वर्ग के दिनोदिन व्यापक बनते कार्यक्षेत्र न छोटे और वडे उद्योग के विकास के बीच मौजूद असतुलन को और वढा दिया। भारत की आर्थिक सरचना की खास विशेषता बहुविध आर्थिक पद्धतियो की मौजूदगी थी। अर्थव्यवस्था के कृपि उद्योग व अन्य क्षेत्रो मे कार्यरत अधिकाश आबादी निम्नतर आर्थिक पद्धतियो (अर्ध विनिमय, लघु पण्य-उत्पादन और लघु पूजीवादी उत्पादन पद्धतियो) के दायरे मे ही काम करती थी। चूकि सातवे दशक के अत तक औद्योगीकरण ने केवल आधुनिक फैक्टरी उत्पादन को प्रभावित किया था, अत निम्नतर और उच्चतर पद्धतियो के बीच खाई निरतर बढती जा रही थी। जब सातवे दशक के मध्य मे भारी उद्योग ने विकास दरो मे काफी उग्रता प्राप्त कर ली, तो भारी और हलके उद्योग के विकास के बीच की खाई भी बढ गयी। इस सबने तैयार वस्तुओ की मडी मे वडी समस्याए उत्पन्न कर दी, और उत्पादन क्षमताओ का पूरा उपयोग न होने लगा। अतत इसका परिणाम यह निकला कि औद्योगीकरण लबा खिच गया तथा योजना लक्ष्यो की पूर्ति न हो पायी। भारत की आर्थिक सरचना के रूपातरण की इस सपूर्ण प्रक्रिया को रोके रखनेवाला एक अत्यत महत्वपूर्ण कारक देश की कृपि का पिछडापन भी था।

कृषि मे परिवर्तन

औद्योगीकरण और नगरो मे पूजीवाद के विकास ने भारत के ग्रामो पर अधिकाधिक प्रभाव डालना शुरू कर दिया था। भूमि सुधारो के कार्यान्वयन ने भी ऐसी परिस्थितिया उत्पन्न कर दी थी, जो भारतीय कृपि प्रणाली के पूजीवादी रूपातरण मे सहायक होती।

चूकि भूमि सुधार देश के आधे भाग मे (उन क्षेत्रो मे, जहा रैयतवारी प्रणाली विद्यमान थी) नही लागू किये गये थे और चूकि उन क्षेत्रो मे, जहा पहले जमीदारी प्रणाली प्रचलित थी, अधिकाश भूमि सुधार के पहले भी सपन्न और दखील काश्तकारो के हाथो मे सकेद्रित थी, अत सुधार के बाद भी भूमि सबधो के स्वरूपो मे कोई खास परिवर्तन नही आया कृपि भूमि के वितरण की दृष्टि से पट्टेदारो के विभिन्न समूहो के बीच असमानता ज्यो की त्यो ही बनी रही। खेती करने के तरीको मे कुछ सुधार और कृपि-क्षेत्र

के विस्तार के परिणामस्वरूप १९५१–१९६५ की अवधि मे कुल कृषि-उत्पादन मे ६५ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

फिर भी प्रति व्यक्ति कृषि-उत्पादन की दृष्टि से यह वृद्धि बहुत कम थी क्योकि इसी अवधि मे कुल आबादी मे लगभग २५ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। सातवे दशक के मध्य मे कृषि न खाद्य सामग्रियो और कुछ प्रकार के कृषि कच्चे मालो की देश की आवश्यकता की पूरी तरह पूर्ति नही की। भारतीय अर्थव्यवस्था की इस सबसे महत्वपूर्ण शाखा के पिछडेपन का कारण सर्वप्रथम यह था कि अधिकाश (६० प्रतिशत) जोते अलाभकर अर्ध गुजारा या गुजारा किसान जोते थी।

काग्रेस सरकार की कृषि-नीति निस्सदेह कृषि मे पूजीवाद के विकास को बढावा देने की नीति थी। कृषि क्षेत्र के विस्तार (१९५१ और १९६६ के बीच ७५ लाख एकड परती और बजर भूमि राजकीय सगठनो द्वारा खेती योग्य बनायी गयी थी), बडी और लघु सिचाई परियोजनाओ के निर्माण (१९५१ और १९६६ के बीच सिचित भूमि का कुल क्षेत्र दुगुना हो गया था), सडको के निर्माण, पशुपालन और बीज विकास फार्मो के जाल की स्थापना १९५१ मे कायम ग्रामीण विकास (तथाकथित सामुदायिक विकास) योजनाओ के जरिये कृषि के उन्नत तरीको के प्रचार और कई अन्य सामाजिक-सास्कृतिक कार्रवाइयो ने कृषि के क्षेत्र मे एक आधुनिक आधारिक सरचना के निर्माण मे सहायता देना शुरू कर दिया था।

सरकारी वित्तीय और सगठनात्मक समर्थन से सेवा सहकारी समितियो (ऋण, विपणन और उपभोक्ता) का विकास कुछ हद तक देहात से सूदखोर और व्यापारी पूजी को बहिष्कृत करने मे सहायक हो रहा था। १९५१ और १९६१ के बीच कृषि ऋण मे सहकारी सस्थाओ का अशदान पाचगुना से अधिक बढा। अब उदीयमान ग्रामीण पूजीपति वर्ग भारत मे पूजीपति वर्ग की निम्नतम श्रेणी के सबसे बहुसख्यक समूह मे परिवर्तित हो रहा था।

राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग के विभिन्न तबको की स्थिति मे परिवर्तन

शहरी व्यापारिक और औद्योगिक पूजीवादी वर्ग के विभिन्न तबको की स्थिति मे भी बडे परिवर्तन आ गये थे। भारतीय स्वामित्व मे सार्वजनिक और निजी उद्योग के विकास तथा आर्थिक सरक्षणवाद की नीति के परिणामस्वरूप

के अलावा अनेक गैर-सगठित उद्यमो (दस कर्मियो तक को काम मे लगानेवाले यन्त्रीकृत उद्यमो और २० कर्मियो तक को काम मे लगानेवाला विनिमाणशालाओ) का भी विकास होता देखा जा सकता था। इनमे से अधिकाश उद्यम मुख्यतया पारिवारिक श्रम पर ही आधारित थे। १९५२ और १९६१ के बीच इस क्षेत्र मे लगे कर्मियो की कुल सख्या ९९ लाख से बढकर एक करोड ४३ लाख हो गयी। १९६० मे भारत मे कुल औद्योगिक प्रतिष्ठानो मे लघु प्रतिष्ठानो तथा लघु फैक्टरियो का हिस्सा ९३ प्रतिशत था।

लघु उद्योग जिसे काफी हद तक कृत्रिम रूप से ही बढाया गया था, के सरक्षण और यहा तक कि "विस्तारित पुनरुत्पादन" के दो परिणाम निकले इसने एक ओर तो घरेलू बाजार के विस्तार को प्रोत्साहित किया, क्योकि उत्पादन मे अनेक कर्मियो और काफी नयी पूजी को लगाया गया था और दूसरी ओर उत्पादन के सकेद्रण और विशेषीकरण को रोका तथा ऊची कीमतो और उत्पादन लागतो को एक लबे अर्से के लिए आम बात बना दिया।

इस बीच औद्योगिक पूजीपति वर्ग का मध्यम तबका, जिसका पूजी विनियोग अब भी हलके उद्योग मे सकेद्रित था, सबसे ऊपरी और निचले उद्यमकर्ताओ के समूहो की तुलना मे कही धीरे बढ रहा था। यह सबसे पहले उन बडे प्रतिबधो का परिणाम था, जिन्हे सरकार ने छोटे उद्योग और भारी उद्योग को प्रोत्साहित करने के लिए हलके उद्योग (विभाग २) पर लागू किया था। १९५०-१९६३ मे ज्वाइट स्टाक कपनियो की कुल सख्या का २७ ६०० से गिरकर २५ ५०० हो जाना (उनकी पूजी मे उल्लेखनीय वृद्धि के बावजूद) पूजीवादी सकेद्रण की बढती प्रक्रिया को ही नही बल्कि पूजीवादी वर्ग के मध्यम तबके की गिरती स्थिति को भी प्रदर्शित करता है। इन सभी आर्थिक प्रक्रियाओ ने भारतीय पूजीवादी वर्ग के भीतर अधिक तीव्र विरोधो को उत्पन्न किया।

विदेशी आर्थिक सबध। सोवियत सघ के साथ सहयोग

औद्योगिक पिछडेपन को दूर करने का प्रयास करते हुए भारत ने अपने को जिस मुख्य बाधा का सामना करते हुए पाया था, वह उत्पादक पूजी अर्थात उपकरणो, पुर्जों औद्योगिक सामग्रिया इधन आदि की भारी कमी थी। भारत के सामने दोहरी समस्या मुह बाये खडी थी उत्पादन के साधनो का इतनी मात्रा मे आयात करने की आवश्यकता और इस आवश्यकता की

पूर्ति के लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा की सख्त किल्लत। अत उसे अपना औद्योगीकरण कार्यक्रम पूरा करने के लिए बड़ी मात्रा में विदेशों से सामान्यत विदेशी सरकारों से सहायता लेनी पड़ी। इस विदेशी सहायता का उपयोग पूजीगत उपकरणो व सामग्रियो का आयात तथा विदेशी विक्रेताओ की सेवाओ का भुगतान करने के लिए किया गया था।

रिज़र्व बैंक द्वारा प्रकाशित आकड़ो के अनुसार १९६० के अंत में भारत में विनियोजित कुल विदेशी निजी पूजी १९४८ के २५५८ करोड रुपये से बढ़कर ८६६४ करोड रुपये हो गयी थी। १९५९ और १९६० के बीच विदेशी निजी विनियोग का कुल वास्तविक अतर्वाह ३४६ २ करोड रुपये था (जिसमे से ६० प्रतिशत पुनर्विनियोग था) जब कि विनियोग का औसत वार्षिक शुद्ध अतर्वाह २१ ९ करोड रुपये था। इस निजी पूजी का मुख्य स्रोत ब्रिटेन बना रहा (१९६० में कुल विदेशी विनियोग में ब्रिटिश पूजी का हिस्सा ७८ ६ प्रतिशत था) विदेशी विनियोजको में दूसरे स्थान पर अमरीका था जिसका हिस्सा १४ प्रतिशत के बराबर आता था।

विदेशी सरकारी ऋणो और अनुदानो के रूप में आर्थिक सहायता भारत के विदेशी आर्थिक सबधो में और भी महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। १९६५ के अन्त तक पूजीवादी देशो से सहायता लगभग ३ ५०० करोड रुपये तक पहुच गयी (जिसमे से १ ८०० करोड रुपये अमरीका से प्राप्त हुए थे)। विदेशी ऋण और अनुदान अधिकाशतया ऊर्जा उद्योग की विभिन्न शाखाओ परिवहन और विनिर्माण तथा निष्कर्षण उद्योग की कुछ शाखाओ के विकास करने और खाद्य सामग्रियो का (मुख्यतया अमरीकी गेहू) आयात करने के लिए उपयोग किये गये।

विदेशी निजी और राजकीय पूजी के प्रवाह ने निर्विवाद रूप से भारत के औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया लेकिन साथ ही इसने विदेशी इजारेदारियो को सुस्थापित करने और विश्व पूजीवादी अर्थव्यवस्था में भारत के एकीकरण की प्रक्रिया को तेज भी बनाया।

सोवियत सघ और अन्य समाजवादी देशो के साथ सबधो का भारत के विदेशी आर्थिक सबधो में एक विशेष स्थान प्राप्त है। पूर्व के जनगण के राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन के प्रति समर्थन की अपनी नीति तथा मैत्री और पारस्परिक सहायता के सिद्धातो का पालन करते हुए सोवियत सघ ने भारत को आर्थिक स्वतत्रता प्राप्त करने के प्रयासो मे बडा सहारा प्रदान किया। सोवियत सघ समेत सपूर्ण समाजवादी समुदाय ने भारतीय आर्थिक नीति के प्रगतिशील

पहलुओं – उदाहरणार्थ कुछ मात्रा मे राजकीय आयोजना का समारभ, शक्तिशाली राजकीय क्षेत्र का निर्माण औद्योगीकरण कार्यक्रम – का स्वागत किया।

१९५५ और १९६५ के बीच हुए अनेक समझौतो के आधार पर सोवियत सघ ने भारत को ६० करोड रूबल से अधिक के दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध किये। *भारत को सोवियत सहायता का मुख्य क्षेत्र लौह धातुकर्म था।* सोवियत ऋणो का एक बडा भाग उद्योग की इस शाखा मे ही लगाया गया। सोवियत सहायता से निर्मित भिलाई लोहा तथा इस्पात कारखाना, जो सोवियत भारतीय मैत्री का प्रतीक बन गया, १९६६ के प्रारभ मे ही भारत मे उत्पादित कुल इस्पात का लगभग एक-तिहाई भाग तैयार करन लग गया था। १९६७ मे इसकी क्षमता को विस्तारित करने का कार्य पूरा हुआ और शुरू म निर्धारित लक्ष्यो को तिगुना करने के उद्देश्य से इसका विस्तार करने का काम आरभ हो गया। उमी वर्ष बोकारो मे एक नये विराट लोहा तथा इस्पात कारखाने के निर्माण का काम शुरू हुआ।

सोवियत सघ न भारत क औद्योगिक विकास के जिन क्षेत्रो म सहारा दिया, उनमे तेल उद्योग दूसरे स्थान पर था। सोवियत सघ ने तरल ईंधन की आपूर्ति जैसे अत्यत महत्वपूण क्षेत्र मे अतर्राष्ट्रीय साम्राज्यवादी इजारेदारियो से स्वतत्रता पान मे भारत की सहायता की।

सोवियत सघ और भारत के बीच आर्थिक सहयोग लौह तथा इस्पात और खनन उद्योगो मे सपूर्ण औद्योगिक समुच्चय कायम करने की ओर लक्षित था। सोवियत सघ न राची और दुर्गापुर म भारी इजीनियरी कारखानो के निर्माण म भारत की सहायता की, जो इन शाखाओ मे और आगे विकास को सुनिश्चित करते है।

भारत को सोवियत आर्थिक सहायता के कार्यक्रम मे विद्युत का भी एक बडा महत्वपूर्ण स्थान है। सोवियत सघ ने भारत मे पूर्ण या आंशिक रूप म ११ बिजलीघरो का निर्माण किया, जो देश मे जनित कुल विद्युत का २० प्रतिशत पैदा करते है।

सोवियत भारतीय आर्थिक सहयोग के इन तीन मुख्य क्षेत्रो क अलावा औज़ार निर्माण औषध और कोयला उद्योगो मत्स्य, कृषि तथा विशेषज्ञो के प्रशिक्षण, आदि मे सहायता के बारे म भी अनेक समझौते किये गये। सातवे दशक के अत तक ऐसी ६० परियोजनाए या तो निर्माणाधीन थी या पूरी हो चुकी थी। आठवे दशक के प्रारभ मे भारत के कुल उत्पादन म सोवियत सघ की सहायता से निर्मित प्रतिष्ठानो का अश इस्पात उत्पादन म ३० प्रतिशत,

भारी उपस्कर निर्माण म ८५ प्रतिशत विद्युत उद्योग के लिए उपस्कर मे ६० प्रतिशत ऐल्यूमिनियम मे २५ प्रतिशत और तल म ८० प्रतिशत था। भारत को सोवियत ऋणो की अदायगी भारतीय मालो के रूप मे की जाती है, जिसका मतलब है कि सोवियत आर्थिक सहायता न भारत क औद्योगीकरण पर गहन और दूरगामी प्रभाव डाला है तथा उसके निर्यात उद्योगो को बढावा दिया है।

दोनो देशो के बीच बढत आर्थिक सबधो का एक महत्वपूर्ण सूचक उनके बीच कुल व्यापार का तीव्र विकास है। स्वतत्रता के बाद भारत और सोवियत सघ के बीच व्यापार मे ३० गुनी स अधिक वृद्धि हुई है। सोवियत सघ को अब भारत के व्यापार भागीदारो में दूसरा स्थान प्राप्त है।

भारत की गृह और विदेश नीति मे "नेहरू नीति" का उदय

स्वतत्र भारत की अर्थव्यवस्था का राजकीय पूजीवादी मार्ग पर विकास और विदेशी पूजी को निरुद्ध करने तथा कृषि मे पूर्व-पूजीवादी सबधो को धीरे-धीरे बदलने के उद्देश्य म अनक आर्थिक कदमो का कार्यान्वयन – इस सबने देश की आर्थिक स्वतत्रता का सुदढीकरण किया।

पहली तीन पचवर्षीय योजनाओ का मुख्य लक्षण जवाहरलाल नहरू द्वारा सूनित "मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा क अनुसार राजकीय और निजी क्षेत्रो का समातर विकास था। छठ दशक और सातवे दशक के मध्य तक काग्रेस की आर्थिक नीति नेहरू की गृह और विदश नीति का अभिन्न अग थी।

१९५१-५२ के आम चुनाव ने भारतीय राजनीतिक क्षेत्र म वामवर्ती परिवर्तन को सुदृढ किया तथा शासक दल क भीतर वामपथी और मध्यम मार्गी शक्तियो को मजबूत किया। काग्रेस के भीतर जनवादी पक्ष और इसी तरह वामपथी पार्टियो के प्रभाव मे श्रमजीवी जनता के जन-सगठनो के अधिक सक्रिय होते जाने से उत्पन्न परिस्थिति मे नेहरू के लिए गृह नीति के क्षेत्र मे भारत मे पूजीवादी जनवाद क आधारो को और दृढ करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाना सभव हो गया।

भारत मे आधुनिक पूजीवादी समाज का आविर्भाव समग्र रूप मे दुनिया के समाजवाद की दिशा मे आगे बढन और राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन म साम्राज्य

वादविरोधी और पूजीवादविरोधी परपराओ के प्रबल बने रहने के साथ साथ हो रहा था इसलिए इन प्रवृत्तियो का "समाजवादी स्वरूप के समाज" के निर्माण के कार्यक्रम मे अभिव्यक्त होना स्वाभाविक ही था। जवाहरलाल नेहरू के सुझाव पर इस सूत्र को १९५५ मे काग्रेस के आवडी अधिवेशन मे आधिकारिक काग्रेस कार्यक्रम म शामिल किया गया। व्यवहार मे "काग्रेस समाजवाद" का मतलब निजी स्वामित्व अथवा निजी स्वामित्व मे बद्धमूल शोपण की प्रणाली का उन्मूलन नही था। लेकिन साथ ही काग्रेस नीति मे राजकीय क्षेत्र के तरजीही विकास, निजी क्षेत्र पर राजकीय नियत्रण और विनियमन के विभिन्न रूपो के विस्तार अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो म छोट उद्यमकर्ताओ को समर्थन तथा सामतवाद विरोधी और साम्राज्यवादविरोधी सामाजिक आर्थिक परिवर्तनो के कार्यान्वयन पर जोर भी दिया गया था।

१९५६ मे राज्यो का पुनर्गठन

काग्रस द्वारा "समाजवादी स्वरूप के समाज" के निमाण पर प्रस्ताव स्वीकृत किये जान के बाद गह नीति के क्षेत्र मे लागू किये गये मुख्य नय परिवर्तनो म विभिन्न भाषायी समूहो के बीच मतभेदो से उत्पन्न तनाव को कम करने के उद्देश्य से भारत के प्रशासकीय और क्षेत्रीय विभाजन का सुधार भी था। भारत के सविधान के अनुसार २८ राज्यो का गठन किया गया था, जो तीन बडे समूहो – क, ख और ग – मे रखे गय थे। नये प्रशासकीय और राजनीतिक विभाजन देशी राज्यो के समाप्त किये जान को तो प्रकट करत थे, लेकिन भारत के भाषायी विभाजन को नही प्रतिबिबित करते थे। वे सजातीय क्षेत्रो को नही बल्कि भारत मे ब्रिटिश शासन काल मे विकसित हुए प्रशासकीय और क्षेत्रीय विभाजन को दर्शात थे। राष्ट्रीय प्रश्न को हल करने का सघर्ष जन-आदोलन से, विशेष रूप किसान सघर्ष से अधिकाधिक जुडता गया। यह प्रक्रिया तेलगाना और आध्र मे विशेष रूप से सुस्पष्ट थी, जहा केद्रीय सरकार ने राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग और जनवादी आदोलन के व्यापक मोरचे के क्षेत्रीय हितो को अनेक रिआयते दी और सजातीय आधार पर प्रशासकीय विभाजन किये।

आध्र राज्य की स्थापना के पीछे मुख्य शक्ति तेलुगुभाषी जनता (आध्र जन) के निम्न पूजीवादी सस्तरो की थी। सितम्बर १९५२ मे मद्रास मे काग्रेस के निम्न पूजीवादी पक्ष के एक नेता श्रीरामुलु पोत्ति ने अखबारो मे काग्रेस नेताओ

और मद्रास सरकार के नाम एक विशेष अपील प्रकाशित की, जिसमे उन्होने नय आध्र राज्य की स्थापना पर तत्काल निर्णय लेने की माग की थी। अक्तूबर के अत तक कोई सुनिश्चित उत्तर न प्राप्त होन पर उन्होने भूख हडताल शुरू कर दी। १५ दिसम्बर १९५२ को श्रीरामुलु की ५८ दिना क अनशन क बाद मृत्यु हो गयी।

श्रीरामुलु की मृत्यु क बाद पूरे आध्र क्षेत्र म केन्द्रीय सरकार और मद्रास सरकार के खिलाफ जन प्रदर्शन शुरू हो गय। यह भारत म युद्ध क बाद सबस सशक्त जन-आदोलन था। बडी फैक्टरियो मे भी हडताल शुरू हो गयी। इन सभी घटनाओ के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार को १९ दिसम्बर १९५२ को आध्र राज्य की स्थापना करन का निर्णय लेना पडा। फिर भी राज्य वास्तव मे एक साल बाद जाकर ही अस्तित्व म आया।

हालाकि आध्र राज्य का निमाण तेलुगु जनता के राष्ट्रीय प्रश्न के समाधान की दिशा म एक सुनिश्चित कदम था फिर भी इसका यह अर्थ नही कि समस्या को हमेशा के लिए सुलझा दिया गया था क्योकि हैदराबाद का तेलगाना जिला अब भी उसके बाहर था जिसम तेलुगुभाषिया का ही बाहुल्य था।

राष्ट्रीय समस्या क समाधान म अगला चरण १९५३ से १९५६ तक की अवधि है जब भारत के प्रशासकीय और क्षत्रीय विभाजन पर पुनर्विचार किया गया। मई १९५३ काग्रेस कार्यसमिति न एक प्रस्ताव स्वीकार करके आबादी की भाषायी सरचना क लिहाज स राज्यो के पुनर्गठन के बारे मे सुझाव दन क लिए एक विशेष सरकारी आयोग स्थापित करन की सलाह दी। उसी वर्ष दिसम्बर म राज्य पुनर्गठन आयोग कायम किया गया और १९५५ मे उसने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। ३१ अगस्त, १९५६ को ससद न आयोग की रिपोर्ट पर आधारित विधेयक पास किया और सितम्बर म सविधान म आवश्यक सशोधन किय गये। १ नवम्बर १९५६ को भारत के प्रशासकीय और क्षत्रीय विभाजन क बारे मे नया कानून लागू हो गया जिसके अतर्गत नये १४ राज्य और केन्द्रीय सरकार द्वारा शासित छ प्रदेश कायम किय गये।

भारत के राजनीतिक मानचित्र के इस तरह पुनराकन और नय राज्यो के कायम किये जाने क बाद केन्द्रीय सरकार और काग्रेस नेतृत्व मे यह आशका पैदा हुई कि राष्ट्रीय विभाजना और विचारो के आधार पर राज्यो की स्थापना स सबधित सभी प्रश्न अनिवार्यत विशिष्टतावाद को जन्म देग तथा विभिन्न भाषायी समूहो के बीच अधिक गभीर विरोध और सघर्ष पैदा करेगे। केद्रोन्मुखी प्रवत्तियो को प्रोत्साहित करने के लिए पाच क्षेत्र कायम करन का निर्णय किया

गया। प्रत्येक क्षेत्र म केन्द्रीय सरकार तथा सबद्ध राज्यो की सरकारो के प्रतिनिधियो से निर्मित एक क्षेत्रीय परिषद कायम की जानी थी। क्षेत्रीय परिषदो का कार्य समन्वय और आयोजन, विभिन्न राज्यो के आर्थिक विकास के कार्यक्रमो तथा नये राज्यो मे भाषायी अल्पसंख्यको की समस्याओ की तरफ ध्यान देना तथा सीमा विवादो बहुराज्यीय पनबिजली योजनाओ, परिवहन प्रणालियो के सयुक्त उपयोग, आदि सबधी प्रश्नो को तय करना था।

राज्यो के पुनर्गठन के बाद राष्ट्रीय प्रश्न

१९५६ म प्रशासकीय और क्षेत्रीय सुधार के कार्यान्वयन ने भारत म राष्ट्रीय प्रश्न को पूरी तरह स हल नही किया। भाषायी आधार पर नये राज्यो की स्थापना का सघर्ष विशेष रूप मे उन क्षेत्रो (बबई, असम, पजाब) म जारी रहा जहा पुराने प्रशासकीय विभाजन बरकरार रखे गये थे।

बम्बई राज्य म महाराष्ट्र और गुजरात अलग करने की माग को लेकर आदोलन शुरू हो गया। कम्युनिस्ट पार्टी वहा एक व्यापक सयुक्त मोरचा बनाने मे सफल हो गयी, जिसके परिणामस्वरूप १९५७ मे दूसरे आम चुनाव म काग्रेस को पराजित होना पडा। परिणामस्वरूप १९६० के वसत मे महाराष्ट्र (राजधानी – बबई) और गुजरात (राजधानी – अहमदाबाद) के दो अलग राज्य बनाने का निर्णय किया गया।

पजाब मे राष्ट्रीय प्रश्न धार्मिक समस्या से प्रत्यक्षत जुडा हुआ था, क्योकि वहा पजाबी सूबा स्थापित करने (जिसमे व्यवहार मे सिख बहुसख्यक होते) की माग को लेकर सघर्ष किया गया।

पजाब की आबादी दो मुख्य समूहो, पजाबी और हिन्दीभाषी लोगो से बनी थी। धार्मिक दृष्टि से भी आबादी एकरूप नही थी – उसमे ३० प्रतिशत सिख थे। न ही धार्मिक और राष्ट्रीय विभाजनो मे कोई मेल था क्योकि कुछ हिंदू पजाबी बोलते थे और कुछ सिख हिन्दी बोलते थे।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अकाली दल न पजाबियो के सास्कृतिक जीवन मे पजाबी भाषा की भूमिका और स्थान के प्रश्न को उठाया। तब से भाषा का प्रश्न इस पार्टी के कार्यक्रम तथा राजनीतिक सघर्ष मे भी एक मुख्य प्रश्न बन गया था।

अकाली दल के नेताओ के दबाव के आगे १९४९ मे सरकार ने पजाब को द्विभाषी राज्य घोषित कर दिया, जिसम दो राजभाषाए थी। मुख्यतया

हिन्दीभाषी क्षेत्रों में प्रारंभिक शिक्षा हिन्दी में होती थी और जहां पंजाबीभाषियों की प्रधानता थी वहां शिक्षा पंजाबी भाषा में। फिर भी औपनिवेशिक काल की भांति ही अब भी अखबारों पत्रिकाओं और पुस्तकों का प्रकाशन मुख्यतः हिन्दी और उर्दू में होता था अंग्रेजी के अलावा उर्दू ही वह भाषा थी जिसका सरकारी पत्र व्यवहार में इस्तेमाल होना रहा। इस वजह से १९५१ ५२ के आम चुनाव के दौरान पहले अकाली दल ने पृथक राज्य की स्थापना करने की मांग को सारी पंजाबीभाषी आबादी को एकसाथ लाने के आधिकारिक नारे के रूप में प्रस्तुत किया।

लेकिन अकाली दल के पास कोई सामाजिक कार्यक्रम नहीं था। परिणाम स्वरूप अधिकांश निम्न पूंजीवादी वर्ग और आम मेहनतकश कृषक समुदाय ने भी कांग्रेस का ही समर्थन किया। १९५२ के चुनावों में अकाली दल की भारी पराजय हुई और उसे राज्य विधानमंडल में १२२ में से मात्र २२ स्थान मिले। इसके बाद पंजाबी-सूबा के नारे को कुछ परिवर्तित कर दिया गया – जहां पहले आन्दोलन भाषा के आधार पर राज्य के पुनर्गठन के लिए था वहां १९५२ के चुनाव के बाद पंजाब की सिख आबादी में अपनी प्रतिष्ठा पुन कायम करने के प्रयास में अकाली दल ने उसे मुख्यतया सिख आबादी बहुमत के पंजाबी-सूबे की मांग में बदल दिया।

जब १९५६ में पंजाब और पेप्सू को मिलाकर पंजाब का एक नया राज्य बनाया गया तो कांग्रेस ने पंजाबीभाषियों की इच्छाओं तथा आबादी के अनेक विभिन्न सस्तरों में पंजाबी सूबा के नारे की लोकप्रियता को ध्यान में रखते हुए तथाकथित क्षेत्रीय सूत्र प्रस्तुत किया जिसे फिर पंजाब में स्वीकृत और कार्यान्वित किया गया। पंजाब सरकार और विधानमंडल से संबद्ध तथाकथित क्षेत्रीय परिषद – पंजाब क्षेत्रीय परिषद और हरियाणा क्षेत्रीय (मुख्यतया हिन्दीभाषी क्षेत्र की) परिषद – कायम की गयी। इन परिषदों में संबद्ध जिलों या मंत्रालयों से लिये सिख और हिंदू सदस्य थे।

परिषद सलाहकार अभिकरण थीं जो अपने संबद्ध क्षेत्र में विकास के आर्थिक प्रश्नों मुख्यतया सरकारी ऋणों के वितरण तथा शिक्षा और संस्कृति के भी प्रश्नों में दखल रखती थीं।

पंजाबी को राज्य की राजभाषा के रूप में मान्यता प्रदान की गयी जब कि हिन्दी उसकी दूसरी – सहायक – राजभाषा बनी रही। जिला स्तर पर सरकारी पत्र व्यवहार और कारबार पंजाब के जिलों में पंजाबी में और हरियाणा में हिन्दी में किया जाता था।

इस क्षेत्रीय सूत्र की स्वीकृति पंजाब में राष्ट्रीय प्रश्न के सामाधान की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम थी।

इस सूत्र के आधार पर कांग्रेस और अकाली दल के बीच स्वतंत्रता के बाद पहली बार एक समझौता हुआ। दोनों पार्टियों ने, जो पंजाब में सबसे प्रभावशाली थी, १९५७ में दूसरे आम चुनाव में मिलकर चुनाव लड़ा। लेकिन छठे दशक के अंत में अकाली दल के नेतृत्व में धार्मिक-अंधराष्ट्रवादी तत्व हावी हो गये और उन्होंने शीघ्र ही पंजाब को धार्मिक आधार पर विभाजित करने की मांग लेकर आंदोलन छेड़ दिया। लंबे संघर्ष के बाद १९६४ में पंजाब को दो राज्यों में विभाजित कर दिया गया। मुख्यतया हिन्दीभाषी हरियाणा को एक पृथक राज्य बना दिया गया।

उत्तर पूर्वी भारत में असम राज्य में राष्ट्रीय स्वायत्तता की समस्या कोई कम उग्र नहीं थी जहां छठे दशक के प्रारंभ में नागा, मिजो और लुशाई जैसी जनजातियां के पृथक्तावादी आंदोलन तेज हो गये। नागा आंदोलन सरकारी फौजों और पुलिस टुकड़ियों के खिलाफ एक छापामार युद्ध में परिवर्तित हो गया। अंतत १९६० के प्रारंभ में नागालैंड नामक राज्य कायम किया गया। इसकी स्थापना ने असम के अन्य जनजातीय क्षेत्रों में स्वायत्तताकामी आंदोलनों को नया संवेग प्रदान किया।

मजातीय आधार पर नये राज्यों की स्थापना के आंदोलन के अलावा भारत में राष्ट्रीय प्रश्न संबंधी संघर्ष का एक दूसरा महत्वपूर्ण पहलू राजभाषा – सरकारी भाषा – की समस्या था। १९४९ में ही संविधान सभा ने लगभग सर्वसम्मति से यह तय किया कि देवनागरी लिपि में हिन्दी राजभाषा होगी, जब कि आगामी पंद्रह वर्ष की अवधि के दौरान दूसरी सरकारी भाषा के रूप में अंग्रेजी का भी प्रयोग किया जायेगा।

जून, १९५५ में भारत के राष्ट्रपति ने बी० जी० खेर की अध्यक्षता में राजभाषा आयोग कायम किया। आयोग को भारत गणतंत्र में सरकारी कार्यों के लिए हिन्दी के अधिक व्यापक प्रयोग के बारे में राष्ट्रपति के सामने सुझाव प्रस्तुत करने थे। सुझाव देते समय आयोग को भारत के आर्थिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक विकास तथा गैर-हिन्दीभाषी क्षेत्रों की आबादी के हितों को भी ध्यान में रखना था। आयोग को अपना कार्य पूरा करने में एक साल से अधिक समय लगा। अगस्त, १९५६ में उसने अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को पेश की, और अगले वर्ष अगस्त में उसे संसद के समक्ष रखा गया। आयोग ने भाषा के विषय पर संविधान में निर्धारित सिद्धांतों का अनुमोदन किया

और कहा कि आम भारतीय जनता के लिए शिक्षा माध्यम क रूप मे अग्रेजी का प्रयोग असभव है। अनिवार्य प्रारभिक शिक्षा कार्यक्रम कवल तभी कार्यान्वित किया जा सकता है कि जब स्थानीय भाषाओ का प्रयोग किया जाये। इस तथ्य के दृष्टिगत हिन्दी को राजभाषा के रूप मे उपयुक्त समझा गया कि यह गणतत्र की अधिकाश आबादी द्वारा बोली जानेवाली भाषा है।

आयोग की रिपोट क प्रकाशन ने भाषा सबधी मतभेदा का किसी भी प्रकार अत नही किया। इसक अलावा १९५६ म भाषायी आधार पर प्रशासकीय और क्षेत्रीय विभाजन के पुनर्गठन के परिणामस्वरूप सरकारी भाषा का प्रश्न एक और भी विवादास्पद समस्या बन गया था। अनक प्रमुख राजनीतिज्ञो और जन नताओ ने विशेष रूप स तमिलनाडु और बगाल मे आयोग की सिफारिशो का विरोध किया।

सितम्बर, १९५७ म सरकारी भाषा क प्रश्न की समीक्षा करन के लिए गृहमत्री गोविदवल्लभ पत की अध्यक्षता मे एक ससदीय समिति गठित की गयी। समिति स राजभाषा आयोग की रिपार्ट पर अपने विचार राष्ट्रपति क सामन रखने को कहा गया। अप्रैल १९५९ मे समिति की रिपोर्ट राष्ट्रपति को पेश की गयी। समिति न सुझाव दिया कि १९६५ क बाद जब हिन्दी मुख्य राजभाषा बन जायेगी अग्रजी को ससद द्वारा निर्दिष्ट उद्देश्यो क लिए तथा चाह जितनी भी अवधि के लिए आवश्यक हो सहायक राजभाषा बन रहना चाहिए। अपन पूववर्ती आयोग की ही भाति समिति न भी केंद्रीय सरकार द्वारा अग्रेजी मे हिन्दी म सक्रमण के लिए एक योजना तैयार किय जाने की राय दी।

लकिन शीघ्र यह स्पष्ट हो गया कि १५ वष की अवधि, जा १९६५ म समाप्त होनवाली थी अग्रजी की हिदी द्वारा प्रतिस्थापना करने के लिए काफी नही थी। १९६२ म ससद क एक अधिवेशन मे घोषणा की गयी कि सरकार ने अग्रेजी की हिन्दी से प्रतिस्थापना को अनिश्चित काल क लिए स्थगित कर दिया हे। हिन्दी मे विशष पारिभाषिक शब्दावली तैयार करने तथा हिन्दी को विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का माध्यम बनान क प्रयास को तज करन का भी निर्णय लिया गया।

इन निर्णयो न स्थानिक पूजीवादी राष्ट्वादी हलको म काफी विरोध पैदा किया विशेषकर दक्षिण भारत म। स्कूलो मे हिन्दी क अनिवार्य भाषा के रूप म समारभ क विरुद्ध देश के अनक भागो म प्रदर्शन सगठित किय

गय। स्कूलो और कामकाज म प्रयुक्त की जानवाली भाषा का प्रश्न छठे दशक की समाप्ति क बाद से घरेलू राजनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू बना रहा है।

भूमि सुधारो के कार्यान्वयन के दौरान किसान आदोलन

राष्ट्रीय प्रश्न को हल करन का आदोलन धीरे-धीरे आम जनवादी आदोलन म विलीन हो गया। आम चुनाव के बाद पैदा हुआ राजनीतिक वातावरण सगठित किसान आदोलन म एकता क लिए सघर्ष क अनुकूल था। अखिल भारतीय किसान सभा और सयुक्त किसान सभा के बीच बातचीत क परिणाम स्वरूप दोनो सगठनो की अनक स्थानीय शाखाए एक म मिल गयी और १९५३ म सयुक्त किसान सभा क अध्यक्ष क्रातिकारी जनवादी इदुलाल यानिक को किसान सभा का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। अप्रैल, १९५३ म किसान सभा का कन्ननौर (केरल) मे ११वा अधिवेशन हुआ और उसके बाद उसके अधिवेशन नियमित रूप से प्रतिवर्ष होन लगे। अधिवेशन न सगठन को पुन सक्रिय करन क लिए किय गये कार्य की समीक्षा की और किसान-सघर्ष के भावी रणनीतिक और कार्यनीतिक कार्यभार निर्धारित किये। किसान सभा का नया कार्यक्रम हाल ही म क्रियान्वित भूमि सुधारो को ध्यान म रखते हुए तैयार किया गया था और वह अधिवशन द्वारा स्वीकृत 'नीति वक्तव्य' का अग था। कार्यक्रम न किसान सगठनो का राज्य और जिला स्तर पर व्यापक सामतवादविरोधी मोरचा कायम करने क लिए आह्वान किया।

भूमि सुधारो के कार्यान्वयन के दौरान किसान-आदोलन का स्वरूप बदलन लगा। इस अवस्था मे मुख्य कार्यभार जमीदारी उन्मूलन कानूनो के क्रियान्वयन म यथासभव तेजी लान और उसे बडी भूसपत्तियों के अन्य प्रकारो पर विस्तारित किये जाने की माग करना तथा बडे भूस्वामियो द्वारा असामी काश्तकारो की बेदखली का विरोध करना था।

छठे दशक के उत्तरार्ध म जमीदारो और धनी किसानो न नये काश्तकारी कानून से उत्पन्न स्थिति का अधिकतम लाभ उठाने का निर्णय किया, जो उन्हे भूमि पर "स्वय खेती करने' के लिए काश्तकारो को बेदखल करन का अधिकार देता था और उन्होने बडे पैमाने पर जमीन को खाली करवाना शुरू कर दिया। लाखो असामी काश्तकार पुश्तैनी पट्टेदारी के अपने अधिकारो

म वचित हो गय। वदगनी क खिनाफ किसानो का प्रतिरोध उस अवधि मे निर्धन किसानो के सघर्ष की मुख्य दिशा थी।

जन-सघर्ष (जलसो प्रदर्शनो आदि) का ससद म कम्युनिस्टो और जनवादियो न समर्थन किया।

देश क अनक भागो (उत्तर प्रदेश पश्चिम वगाल पजाव, विहार असम) म किसानो और जमीदारो क बीच खुले सघर्ष आम हो गये थ। इस व्यापक किसान आदोलन क दबाव के आगे १९५४ म अधिकाश राज्यो म सरकारो न कानून जारी करके असामी काश्तकारो की वेदखली को निषिद्ध किया।

भूमि क लिए सघर्ष न जो एक दूसरा रूप ग्रहण किया वह त्रावणकोर कोचीन मद्रास आध्र प्रदेश उत्तर प्रदेश और पश्चिम वगाल म उन किसानो द्वारा, जिनके पास कम या विलकुल जमीन नही थी राजकीय स्वामित्व की परती जमीन पर कब्जा करना और धनी किसानो की जमीनो के समेकन के लिए की जानवाली जवरन चकवदी क खिलाफ निधन किसानो का प्रतिरोध था।

इसके साथ ही किसान काश्तकारी की अनुकूल शर्तो के लिए भी आदोलन कर रहे थे विशेषकर रैयतवारी क्षेत्रो म जहा जमीदारियो पर अभी भी कोई प्रतिवध नही लगाये गय थ।

छोटी जातोवाले किसानो न ग्रामीण आवादी पर प्रत्यक्ष करो म वृद्धि का सक्रिय विरोध किया और ग्रामीण उत्पादको क लिए कृषि उपज के लाभप्रद मूल्य निर्धारण की माग की।

पहले की भाति कृषक वर्ग क सभी सस्तर और यहा तक कि छोट जमीदार भी आर्थिक सघर्ष म खिच आय। लेकिन जब भूमि सुधार क्रियान्वित किये जान लगे और कृषक वर्ग क आर्थिक और सामाजिक स्तरीकरण मे तेजी आन लगी तो अधिक सपन्न किसान धीरे धीर आदोलन से अलग होने लग गये।

दूसरी ओर खेतिहर मजदूरो का सघर्ष लगातार तेज होता जा रहा था। अप्रैल, १९५४ मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति क पूर्णाधिवेशन न कृषिक समस्या पर एक प्रस्ताव स्वीकार किया। प्रस्ताव मे किसान एकता को वनाये रखन की आवश्यकता पर जोर दिया गया था और उसन किसान सगठनो की एक ऐसे समय मे परिस्थिति का सही विश्लेषण करने मे सहायता की जब ग्रामीण क्षेत्रो मे वर्ग शक्तियो का सतुलन वदल रहा था। इस प्रस्ताव म खेतिहर मजदूरो के स्वतत्र सगठन विकसित करने की आवश्यकता पर विशेष ध्यान दिया गया था।

जमीदारी उन्मूलन कानूनों के कार्यान्वयन जो मुख्यतया १९५७–१९५८ तक सपन्न हो गया था जमीदार काश्तकार सबधो के नियामक कानूनो के अमल और ग्रामीण क्षेत्रो मे सहयोग के विभिन्न पूजीवादी रूपो के विकास ने भारतीय देहातो मे महत्वपूर्ण परिवतन पैदा किये। कृषक समुदाय के भीतर सामाजिक अतर्विरोध बढने लगे और सयुक्त किसान मोरचे मे फूट पडने लगी। अनेक राज्यों मे किसान सभा के सामान्य सगठनो की वर्ग सरचना मे परिवर्तन आने लगा जिससे वे मुख्यतया निधन किसानो के अधिकारों की रक्षा करनेवाले सगठनो मे परिवर्तित होने लगे। धनी किसानो के अलग हो जाने से अनेक राज्यो मे किसान सभा सगठन काफी कमजोर हो गये और परिणामस्वरूप १९५५ के बाद सदस्य सख्या मे गिरावट आयी, जब वह दस लाख से अधिक थी।

जनता के बीच अपना प्रभाव बढाने के लिए काग्रेस नेतृत्व ने १९५८ मे मडल समितिया कायम करके तथा प्रातीय और जिला स्तर पर काग्रेस समितियो मे किसान मडल स्थापित करके अपने बुनियादी सगठनो को मजबूत करने का निर्णय किया।

किसान आदोलन मे इस मोड को रोकने के उद्देश्य से जनवादी क्रातिकारी तत्वो और खासकर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तथा किसान सभा ने गावो मे व्यापक प्रचार अभियान चलाने का निर्णय किया। लेकिन कम्युनिस्टो के प्रयासो के बावजूद किसान सगठनो को अपनी हलचल को और आगे बढाने मे सफलता नही मिली। किसान सभा की सदस्य सख्या १९५५ मे १० ८७ ००० से गिरकर १९५९–१९६० मे ५ ७२,००० रह गयी।

१९५५–१९६० की अवधि मे कुछ प्रातो, विशेषकर आध्र और बगाल के कुछ भागो मे जो तब तक किसान-आदोलन के गढ रह थे, किसान सभा के प्रभाव मे काफी ह्रास आया। यह तथ्य १९५८ के वसत मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की पाचवी असाधारण काग्रेस मे स्वीकार किया गया। अक्तूबर १९५८ मे मद्रास मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय परिषद के पूर्णाधिवेशन ने कृषिक प्रश्न पर एक प्रस्ताव स्वीकार करके किसान सभा के सुदृढीकरण मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इस प्रस्ताव मे एक ओर, सपूर्ण कृषक समुदाय का सहबध स्थापित करने और दूसरी ओर कृषक समुदाय के अधिक सपन्न सस्तरो का तटस्थीकरण करने का सुझाव दिया गया था।

इस तथ्य के बावजूद कि व्यापक किसान आदोलन मे और विशेष रूप से उसके अधिक सगठित दस्तो के कार्यो मे भूमि सुधारो के लागू होने के बाद कुछ कमजोरी आयी और १९५२–१९५५ के वर्षो मे प्राप्त उपलब्धिया की

तुलना म उसम उतार आया फिर भी कृषि प्रश्न सबधी विचारधारात्मक और राजनीतिक सघर्ष तथा राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग की भूमि नीति पर इसन काफी प्रभाव डाला।

मजदूर आदोलन। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (१९५२–१९६२)

किसान-आन्दोलन क अलावा स्वतत्र भारत की श्रमजीवी जनता की व्यापक राजनीतिक कारवाई का एक दूसरा महत्वपूर्ण रूप मजदूर वग का आर्थिक और राजनीतिक सघर्ष था। सर्वहारा क आर्थिक सघर्ष न स्वतन्त्रता क बाद क वर्षो म काफी प्रगति की थी चौथ दशक की तुलना म छठ दशक म हडताला की औसत वार्षिक सख्या पाचगुनी अधिक हो गयी थी जब कि हडतालो म भाग लनवाल श्रमजीवियो की सख्या म ३० प्रतिशत की वद्धि हुई थी।

नौकरीपेशा लोग – सफेदपोश कर्मचारी – भी हडताल सघर्ष म सक्रिय भाग लेन लग गय थ। छठ दशक क अत की विशाल हडताले राष्ट्रव्यापी थी। इनम टाटा इस्पात कारखान (जमशेदपुर) म आम हडताल (१९५८) बागान मजदूरो की आम हडताल (१९५८) और कलकत्ता की ट्राम हडताल (१९५८) प्रमुख थी। १९५९ म हडताला क कारण जूट उद्योग ठप्प हो गया पश्चिम बगाल म सभी शिक्षक हडताल पर निकल आये और १९६० का वष कपडा मजदूरो कोइर (नारियल जटा) उद्योग म मजदूरा की बडी हडतालो तथा राजकीय प्रतिष्ठानो के सामान्य और सफेदपोश कर्मचारियो की पाच दिवसीय आम हडताल के लिए उल्लेखनीय था।

इन आर्थिक हडतालो क अलावा मजदूर जनव्यापी राजनीतिक आदोलनो म अधिकाधिक सक्रिय भूमिका अदा करने लग गये थे। १९५९ म काग्रेस सरकार की खाद्य नीति क खिलाफ और उसी वष केरल के कम्युनिस्ट मत्रिमडल के समर्थन मे कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा सगठित प्रदर्शन और जलसे इसके मात्र दो उदाहरण है।

हडताल-आदोलन का बढना टेड यूनियन हलचल मे उल्लेखनीय वृद्धि का परिचायक था। स्वातन्त्र्योत्तर बारह वर्षो के भीतर टेड यूनियनो की सदस्य सख्या दुगुनी से अधिक हो गयी थी। १९५६-५७ और १९५८-५९ के बीच

सदस्य सख्या मे ३५ प्रतिशत की
बागान मजदूरो सहित खेतिहर म
और फैक्टरी मजदूरो के शामिल
आदोलन सख्यात्मक दृष्टि म भी औ

सरकारी आकडो के अनुसार
लगभग ३० लाख मजदूर — अथवा
मे एकयबद्ध थे।

१९४७–१९४९ म अखिल भा
फूट के कारण टेड-यूनियन आदोलन
१९४९–१९५१ मे मजदूर आदोलन
को प्राप्त रहा था। इसकी सुधारवादी
सभा (हिमस) को भारतीय रा
तुलना म जो उस समय हडताल
अधिक स्वतत्र सगठन समझते थे।

१९५१ के अत तक देश की आर्
अनुकूल हो गयी थी और अनेक ट
काबू पान लग गय थे। अब ऐटक
तेज करना शुरू किया। १९५३ के
काग्रेस ने अपने जन आधार को फिर

१९५४ तक भारतीय ट्रेड यूनियन
सतुलन स्थापित हो चुका था।

हिन्द मजदूर सभा को अब पहले
भारतीय समाजवादी पार्टी उस समय
एक परिणाम था। इस समय दो ट्रेड
यूनियन काग्रेस (ऐटक) और भारतीय
प्रभाव बढता जा रहा था। इस मम
भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस और हिन्
(हिमस की सदस्य सख्या ऐटक मे कम

१९५६ के मध्य तक हिमस के

मजबूत हुआ।
९५८-५९ मे बडे पैमाने के उद्योगो के
ल सख्या के ४० प्रतिशत — टेड-यूनियनो

तीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस (ऐटक) मे
के विकास को भारी धक्का पहुचा था।
सबसे अधिक प्रभाव हिन्द मजदूर सभा
नीतियो के बावजूद मजदूर हिद मजदूर
ीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस (इटक) की
ोलन को सर्वथा अस्वीकार करती थी,

रिक स्थिति जनवादी शक्तियो के अधिक
-यूनियन नेता अपने सकीर्णतावाद पर
नियनो ने अपनी गतिविधियो को फिर
मध्य तक अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन
ाफी मजबूत बना लिया था।
आदोलन के भीतर शक्तियो का नया

से बहुत कम समर्थन प्राप्त था, जो
जिस सकट से गुजर रही थी, उसका
यूनियन केन्द्रो — अखिल भारतीय टेड
राष्ट्रीय ट्रेड-यूनियन काग्रेस (इटक) का
तक इटक की सदस्य-सख्या अखिल
मजदूर सभा दोनो से अधिक थी
थी और उसका प्रभाव भी कम था)।
ता टेड-यूनियन एकता और पूरे देश
की आवाज उठाने लग गये थे। अखिल
ट्रेड यूनियन काग्रेस (यूटक) तथा
ाखाओ के अखिल भारतीय फेडरेशनो

न भी हिमस की इस पहलकदमी का स्वागत किया। इटक के नेताओ न इस प्रश्न पर कोई आधिकारिक घोषणा तो नही की लेकिन अखबारो मे नेताओ के अलग अलग वक्तव्य इटक के नतृत्व की हिमस क साथ मेल के बारे म बात करने की तत्परता को जताते थे। फिर भी वे अखिल भारतीय टेड यूनियन काग्रेस के साथ एकता करन क खिलाफ थे यद्यपि व अखिल भारतीय फडरेशनो मे ऐटक मे सबद्ध टेड यूनियनो क सहयाग का विराध नही करते थे।

यह उल्लेखनीय है कि १९५४ ५५ और १९५६ ५७ के बीच इटक का अपनी नीति को किमी हद तक बदलना पडा था। यह इसी समय था कि इटक के कार्यकर्ताओ ने कभी कभी तात्कालिक आर्थिक मागो का समर्थन किया और उनक समर्थन मे मजदूर सघर्षो का नेतृत्व तक भी किया।

मजदूर वग की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि जुलाई १९५७ म १५ व त्रिपक्षीय अखिल भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव थी। टेड-यूनियन प्रतिनिधियो न दूसरी पचवर्षीय योजना म मजदूरी नीति पर एक विशेष प्रस्ताव पेश किया जिसम दिये गय सुझाव नयी पचवर्षीय योजना के प्रारूप म निर्दिष्ट सिफारिशो से कही अधिक मूलगामी थे।

१९५७ के बाद १५ वे श्रम सम्मेलन क प्रस्ताव को कार्यान्वित करने की माग भारतीय टेड यूनियनो का मुख्य नारा बन गयी। इसक लिए ससद के भीतर और त्रिपक्षीय वार्ता सगठनो क भीतर सघर्ष चलाया गया। मजदूरी नीति के नये सिद्वात को क्रियान्वित करवाने क लिए हडताले प्रदर्शन और अन्य जन कार्रवाइया सगठित की गयी।

१९५७ तक ऐटक और इटक भारत के टेड यूनियन आदोलन म दो सबसे मुख्य केन्द्रीय सगठनो का रूप ले चुकी थी।

एटक द्वारा मजदूरो की मुख्य मागो का समर्थन श्रमजीवी जनता क राजनीतिक आदोलनो मे उसकी अगुआ भूमिका उसकी मजदूर वग की एकता प्राप्त करने की सुसगत नीति तथा स्वतन अखिल भारतीय फडरेशनो क भीतर उसके सदस्यो का कार्य – इन सभी की बदौलत ऐटक न इस समय तक अपनी स्थिति को सुदृढ कर लिया था और उसका जनाधार व्यापक होता जा रहा था।

१९५७ क अत म एटक ने एर्णाकुलम (केरल) म आयोजित अपने २५ व जयती अधिवशन मे देश क औद्योगीकरण का समर्थन किया।

उस समय प्रतिक्रियावादी हलक दूसरी पचवर्षीय योजना म राजकीय क्षेत्र और भारी उद्योग मे विकास पर प्रयास सकेद्रित करने की सिफारिशो

का कडी आलोचना का लक्ष्य बना रहे थे। अपने सर्वेक्षण मे भारी उद्योग के लक्ष्य को देश की राष्ट्रीय प्रभुसत्ता के सुदृढीकरण की एक अनिवार्य पूर्वापेक्षा मानते हुए ऐटक ने इस विकास नीति को तब तक समर्थन देते रहने की तत्परता की घोषणा की जब तक कि यह श्रमजीवी जनता के मोल पर न हो।

मजदूरो से अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने तथा अपने टेड यूनियन अधिकारो के विस्तार के लिए सघर्ष जारी रखने की अपील करते हुए ऐटक ने सघर्ष के रूपो को विस्तारित करने और ससदीय मच, बातचीत, परामर्श प्रेस तथा विरोध प्रदशनो के अधिक व्यापक उपयोग और हडतालो का केवल अतिम साधन के रूप मे इस्तेमाल करने का सुझाव दिया।

१९५७ तक काग्रेस समर्थित और विशेष रूप से दक्षिणपथी समाजवादी टेड-यूनियनो के क्षीण होते प्रभाव के मुकाबले मे मजदूर आदोलन के भीतर कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति स्पष्टत कही अधिक मजबूत हो चुकी थी।

इधर उद्योगपति मजदूर-आदोलन की सफलताओ से अधिकाधिक आशकित होते जा रहे थे। दक्षिणपथी शक्तियो के दबाव से १९५८ मे एक अनुशासन सहिता जारी की गयी जिसने यूनियनो के हडताल करने के अधिकारो को प्रतिबधित किया और सरकार की समर्थक भारतीय राष्ट्रीय टेड यूनियन काग्रेस को कुछ सुविधाए भी प्रदान की। अगले तीन वर्षो मे इटक के लिए सरकारी श्रम विभागो से प्राप्त समथन की बदौलत ऐटक हिमस और यूटक की कीमत पर काफी प्रगति करना सभव हो गया।

इटक को अपनी स्थिति को मजबूत करने के प्रयास मे मजदूर आदोलन मे वामपथी शक्तियो के प्रभाव को क्षीण करने के लिए काग्रेस सरकारो द्वारा उठाये कदमो से भी सहायता मिली।

सितम्बर १९६० मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस और इटक नेताओ की एक विशेष बैठक हुई, जिसके लिए इटक एक साल से पश्चिम बगाल, उत्तर प्रदेश, बिहार और अन्य राज्यो के श्रममत्रियो के सहयोग से जमीन तैयार करती आयी थी।

इस बैठक ने भविष्य मे श्रम नीति के क्षेत्र मे शासक दल के सारे कार्य सिर्फ इटक के जरिये ही कार्यान्वित करने का निर्णय लिया।

इस बैठक ने राष्ट्रीय काग्रेस के सदस्यो को इटक की स्थानीय शाखाओ के साथ परामर्श के बिना कोई ट्रेड यूनियन कायम न करने और काग्रेस के सदस्यो द्वारा अपने को केवल इटक यूनियनो मे ही सनद्ध किये जाने को सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाने की सलाह दी।

१९५८ के बाद से इटक के नेता सयुक्त टेड यूनियन आदोलन के लिए सभी सुझावो को अस्वीकार करने लग गये। १९५८–१९५९ म इटक नेतृत्व ने फूट डालने के उद्देश्य से मजदूरो के बीच विशेष रूप से उग्र कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार किया।

इटक नेतृत्व की कम्युनिस्टविरोधी फूटपरस्त नीति के परिणामस्वरूप सगठित मजदूर आदोलन के समक्ष प्रस्तुत समस्याए समाजवादियो के प्रभावाधीन टेड यूनियन सगठनो मे आतरिक सकट से और भी सगीन हो गयी। १९५९ म सयुक्त ट्रेड-यूनियन काग्रेस (यूटक) के भीतर तथा १९६१ म हिमस म भी विभाजन हो गया।

अन्य अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन सगठनो के दक्षिणपथी अवसरवादी नेताओ के विरोध के बावजूद एटक टेड यूनियन एकता को बढावा देन का दृढ सघर्ष चलाती रही।

व्यापक मजदूर और किसान आदोलनो की व्याप्ति काफी हद तक भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के बढते प्रभाव के कारण ही बढ रही थी। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की तीसरी काग्रेस (दिसबर १९५३–जनवरी १९५४) म केवल वामपथी विचलन को दूर करने के प्रयासो का ही मूल्याकन नही किया गया बल्कि एक व्यापक जनवादी मोर्चे के गठन का व्यापक कार्यक्रम भी तैयार किया गया। फिर भी पार्टी ने इस समय यह मानते हुए कि आर्थिक और राजनीतिक सकट दिनोदिन बढता जा रहा है देश मे वर्ग शक्तियो के सह सबध को कम करके आका और नेहरू सरकार के स्थान पर मजदूर वर्ग के नेतृत्व म सयुक्त जनवादी सरकार कायम करने का आह्वान किया। इस रवैये ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के लिए जनता के साथ दृढ सपर्क कायम करना और कठिन बना दिया जिस पर काग्रेस का बहुत गहरा प्रभाव था।

जून १९५५ मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की केद्रीय समिति के पूर्णाधिवेशन म और बाद मे १९५६ मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की चौथी काग्रेस मे इस दृष्टिकोण पर पुनर्विचार किया गया। पार्टी काग्रेस ने तात्कालिक मागो का एक कार्यक्रम तैयार किया जिसका आधार कारगर जनवादी मोर्चा कायम करने के लिए जनता के बीच काम था। सघर्ष के तात्कालिक लक्ष्य के रूप मे सरकार को बदलने की माग को त्याग दिया गया। इससे कम्युनिस्टो के लिए अपने जन-आधार का विस्तार करना सभव हो गया जो १९५७ के वसत मे आम चुनाव के ठीक पहले की अवधि म तथा चुनाव के दौरान सुस्पष्टतया प्रकट हुआ था।

एकाधिकारी व्यवहार के मामला पर विचार करना और जन हितविरोधी काय जानवाल मामनों को प्रतिबंधित करना था।

फरवरी, १९७० म सरकार न राज्य नियंत्रित प्रतिष्ठानों बडी निजी कपनिया, छोटे पैमान के उद्योगा और अन्य निजी उद्यमो के क्षेत्रा को परिभाषित करन के उद्देश्य म अपनी नयी नीति की घोषणा की। इन वर्षो म देश म हुए परिवतनो को ध्यान म रखत हुए राजकीय क्षेत्र को मुख्यतया उसी रूप म परिभाषित किया गया जिसम वह १९५६ के औद्योगिक नीति प्रस्ताव म किया गया था।

फरवरी, १९७० म चौथी पचवर्षीय योजना (१९६९ ७०–१९७३ ७४) की पुनसमीक्षा की घोषणा की गयी। पुनसमीक्षित परियोजना के अनुसार राजकीय क्षेत्र मे निवेश १२ २४० करोड रुपय से बढाकर १३ ६६० करोड रुपय कर दिया गया और इस तरह उसका अश ५५ प्रतिशत के स्थान पर ६० प्रतिशत कर लिया गया। इसी के अनुरूप निजी क्षत्र के लिए निर्धारित निवेश को १०,००० करोड रुपय म घटाकर ८ ९८० करोड रुपये करके उसके अश के ४५ प्रतिशत म ४० प्रतिशत कर दिया गया। उसी महीने म बिडला प्रतिष्ठान और अन्य इजारेदार समूहो के खिलाफ आरोपो की जाच करने के लिए एक आयोग की स्थापना की गयी।

उसी वष मार्च म सरकार न आयात नीति म पहले निर्दिष्ट २२ प्रकार के सामानो के मुकाबले ३८ प्रकार के सामानो के आयात को राजकीय नियंत्रण म लेन का निर्णय किया। अगस्त १९७० म राज्य न रुई के आयात को भी अपन अधिकार म ले लिया।

अप्रैल म सरकार ने १७ अत्यावश्यक औषधियो की कीमता को १० से ७० प्रतिशत तक कम किया। उसी महीन म यह घोषणा की गयी कि राजकीय उद्यमो के प्रबंध म कर्मचारियो की सहभागिता को बढाया जायगा और इसके लिए उनके निदेशक मडलों म उनके एक प्रतिनिधि को एक निदेशक नियुक्त किया जाया करेगा।

१९७० मे कुछ निर्णय लेकर चीनी और इजीनियरी उद्योगो विद्युत तथा बदरगाह और परिवहन मजदूरो की मजदूरी बढाने की मागो को आशिक रूप म पूरा किया गया। लौह और इस्पात बैंक और बीमा कर्मचारियो के साथ भी समझौते किये गये।

जनवरी, १९७१ म केंद्रीय सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रो म रोजगार बढान के व्यापक कार्यक्रम की घोषणा की। अप्रैल १९७१ मे अमल मे आया यह

कार्यक्रम चौथी पचवर्षीय योजना के शेष तीन वर्षो के लिए था। इसके अतगत ऐसी परियोजनाए शुरू की जानी थी, जिनके लिए भारी मानवशक्ति साधन आवश्यक थे और जिसके मुख्य लक्ष्य थे १) प्रत्येक जिले मे १०० लोगो के लिए १०० रुपये माहवार की औसत मजदूरी पर साल के दस महीने काम पैदा करना (इसमे उन परिवारो को तरजीह दी जानी थी, जिनमे उस विशेष समय मे कोई भी वयस्क रोजी कमानेवाला नही था), २) सडक निर्माण, छोटी सिंचाई और भूमि सुधार योजनाओ, आदि जैसी दीर्घकालीन परियोजनाओ को शुरू करके आर्थिक विकास के स्थानीय कार्यक्रमो के कार्यान्वयन को प्रोत्साहित करना। इस कार्यक्रम के सारे व्यय का जो ५० करोड रुपये था, केन्द्रीय सरकार द्वारा वहन किया जाना था।

वामपथी शक्तियो का दृढीकरण

बढता वर्ग सघर्ष

१९६९ और १९७० के दौरान इदिरा गाधी की सरकार द्वारा उठाये गये महत्वपूर्ण प्रगतिशील सामाजिक-आर्थिक कदम भारत म उस समय राज नीतिक शक्तियो के सतुलन मे वामोन्मुखी परिवर्तन के परिचायक थे। ये परिवर्तन सर्वोपरि आम जनवादी परिवर्तनो के लिए सघर्षशील श्रमजीवी जनता के जन सघर्षो के कारण आये थे।

कम्युनिस्ट आदोलन मे फूट का जन-आदोलन पर नकारात्मक प्रभाव पडा था, फिर भी सातवे दशक के उत्तरार्ध मे मजदूर वर्ग का सघर्ष बढता रहा। मजदूर आदोलन मे एकता बढाने के सामान्य प्रयास की पृष्ठभूमि म मुख्य ट्रेड यूनियन केन्द्रो के प्रतिनिधियो ने सयुक्त सघर्ष का नया कार्यक्रम तैयार किया। इस कार्यक्रम का मेहनतकश जनसाधारण ने व्यापक समर्थन किया। उस पर ५० लाख हस्ताक्षर एकत्र किये गये और १ मई १९६९ को याचिका के रूप मे ससद को पेश किया गया। लेकिन एटक के भीतर फूट और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) द्वारा समर्थित एक दूसरे ट्रेड यूनियन केन्द्र – सेटर आफ इडियन ट्रेड-यूनियन्स (सीटू) – की स्थापना ने मजदूर-आदोलन मे एकता को धक्का पहुचाया।

कम्युनिस्ट आदोलन मे फूट ने किसान सगठनो के कार्य को भी प्रभावित

किया। हालांकि किसान सभा चार पांच साल के अंतराल के बाद १९६५–१९६६ में फिर से सक्रिय हो गयी पर इस बीच में अनेक राज्यों में समांतर संगठन कायम हो गये थे। १९६८ के प्रारंभ में फूट ने औपचारिक रूप ले लिया, जब कि मूल संगठन का स्थान नये अखिल भारतीय किसान संगठन ने ले लिया। हाल के वर्षों में किसान संघर्ष में सबसे सक्रिय भूमिका निर्धन किसानों की रही है विशेषकर पश्चिम बंगाल बिहार उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु में तंटाईनाग की। पश्चिम बंगाल में किसानों ने उग्रवादियों – नक्सलवादियों अथवा नक्सलपंथियों – के नेतृत्व में सशस्त्र संघर्ष का रास्ता पकड़ा। यह आंदोलन देश के अन्य भागों विशेष रूप से आंध्र प्रदेश और पंजाब में फैलना शुरू हो गया। वामपंथी उग्रवादी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से अलग हो गये और मई १९६९ में उन्होंने तीसरी कम्युनिस्ट पार्टी ("मार्क्सवादी लेनिनवादी") कायम की।

खेतिहर मजदूरों ने भी अपने अधिकारों के लिए आंदोलन शुरू किया। १९६८ में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थन से अखिल भारतीय खेत मजदूर संघ की स्थापना की गयी। १९६९–१९७० में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, किसान सभा और खेत मजदूर संघ ने भूमिहीन किसानों द्वारा भूमि पर जबरन कब्जा करने का जन अभियान चलाया।

राजनीतिक संघर्ष में व्यक्तिगत आतंक की कार्रवाइयां अधिकाधिक व्यापक बनती जा रही थीं। इसकी पृष्ठभूमि में समाज के व्यापक हलकों में राजनीतिक स्थायित्व की मांग उठने लगी। जनमत में आये इस परिवर्तन तथा शासक कांग्रेस दल के प्रति बढ़ते समर्थन को देखते हुए कांग्रेस के नेताओं ने निर्धारित समय से पहले चुनाव कराने का निर्णय किया।

शासक कांग्रेस पार्टी ने अपने व्यापक प्रचार अभियान में पहले ही कार्यान्वित और भविष्य के लिए निर्धारित सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों पर जोर दिया। पूरे देश में जन सभाओं में शासक दल और सरकार के नेताओं के भाषणों के अलावा अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने शासक दल की सामाजिक आर्थिक नीति, विशेष रूप से आर्थिक नीति संबंधी बम्बई प्रस्ताव और बाद में उठाये कदमों के बारे में (जुलाई, १९७० में) तथा बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद उठाये कदमों के बारे में (सितम्बर १९७० में) विशेष प्रचार पुस्तिकाएं प्रकाशित कीं। व्यवहार में शासक दल ने चुनाव की घोषणा के बहुत पहले ही व्यापक चुनाव अभियान शुरू कर दिया था। चुनाव घोषणापत्र में मुख्यतया उपरोक्त दस्तावेजों और प्रकाशनों में प्रस्तुत आश्वासनों को ही दुहराया गया

प्रयासो को विफल कर दिया। साल के अत म ससद न भूतपूर्व शासको को पशन दना वद करने का निर्णय किया, जिसने पाच करोड रुपये सालाना की वचत की तथा सामती और प्रतिक्रियावादी तत्वो के देश के राजनीतिक जीवन म हस्तक्षेप करने के प्रयास को भी विफल किया।

एक महत्वपूर्ण प्रगतिशील कदम सरकार को निजी प्रतिष्ठानो पर नियत्रण स्थापित करन का अधिकार देन के कानून का बनाया जाना था। इदिरा गाधी की सरकार ने ६४ भारतीय और ४२ विदेशी बीमा कपनियो, २१४ कोयला खानो और अन्य प्रतिष्ठानो पर नियत्रण ग्रहण किया। कुछ राज्यो मे अनक हलके और खाद्य उद्योग प्रतिष्ठानो को भी राजकीय नियत्रण म ले आया गया।

भूमि सुधारो के एक नये दौर की शुरूआत की भी घोषणा की गयी। इनमे निजी जोतो की निम्नतर हदवदी निर्धारित की जानी थी। इसके अलावा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो पर राजकीय नियत्रण के विस्तार की नीति जारी रखने का भी वादा किया गया। इन घोषणाओ से शासक काग्रेस की लोकप्रियता मे और वद्धि आयी।

१९७२ मे राज्य विधानमडलो के चुनावो मे शासक काग्रेस ने पूर्ववर्ती वर्ष म ससद के मध्यावधि चुनाव मे प्राप्त ४३ ६ प्रतिशत मतो की तुलना मे ४८ प्रतिशत मत प्राप्त किये। १९६७ मे फूट पडने के पहले सयुक्त काग्रेस ने राज्य विधानमडलो मे ४२ ७ प्रतिशत मत प्राप्त किये थे। मतलब यह कि इदिरा गाधी के नेतृत्व मे शासक काग्रेस की प्रतिष्ठा मे वृद्धि असदिग्ध थी। परिणामस्वरूप काग्रेस राज्य विधानमडलो मे अपनी स्थिति काफी मजबूत
,जिनमे उसने लगभग ७६ प्रतिशत सीटे जीती। पुरानी" काग्रेस
चुनाव मे राज्य विधानमडलो मे ५० प्रतिशत से कम स्थान

ने २१ राज्यो मे से १८ मे सरकारे बनायी (पाच राज्यो

राज्य विधानमडलो मे से ११ म काग्रेस ने
। मतलब यह था कि वह अप्रैल, १९७२ के
न करने की ओर भी बेहतर स्थिति मे थी।
स द्वारा १९७२ मे प्राप्त मत १९७१ के
बले मे कम थे। इसका कारण यह था
अभियान मे अनेक स्थानीय 'मसले
सगठनो के कायकलापो के सबध

था। चुनाव कराने का वास्तविक कारण प्रतिश्रुत सामाजिक आर्थिक कदमा के कार्यान्वयन के लिए सुनिश्चित ससदीय बहुमत प्राप्त करने की आवश्यकता बताया गया।

१९७१ और १९७२ के आम चुनाव

शासक दल और सरकार की सामाजिक-आर्थिक नीति मे आये प्रगतिशील परिवर्तन और इन परिवर्तनो के व्यापक प्रचार तथा देश के भावी विकास के बारे म वादो ने १९७१ के मध्यावधि चुनाव मे शासक काग्रेस की सफलता म बहुत बडी भूमिका अदा की थी। सरकारी नीति में इस परिवर्तन का कारण वडी सीमा तक १९६७ और १९६९ के चुनावो मे वामपथी पार्टिया द्वारा प्राप्त सफलताए थी।

वामपथी पार्टियो द्वारा प्रस्तुत नारो से बहुत मिलते-जुलते नारो को अपनाकर शासक काग्रेस ने व्यापक सामाजिक परिवर्तनो के वादो और उनके कार्यान्वयन के लिए उठाये कदमो के जरिये पहले वामपथी पार्टियो को मत देनेवाले मतदाताओ के काफी बडे भाग का समर्थन प्राप्त कर लिया। दूसरी ओर, दक्षिणपथी नताओ की काग्रेस (ओ०) पर सामाजिक आर्थिक क्षेत्र म इन प्रगतिशील परिवर्तनो के मार्ग मे खडी मुख्य शक्ति का दोष लगाकर शासक दल पहले सयुक्त राष्टीय काग्रेस का समर्थन करनेवाले मतदाताओ के अधिकाश को भी अपने पक्ष मे लाने मे सफल हो गया।

मार्च १९७१ मे हुए ससद के इन चुनावो मे शासक दल को पुन दो तिहाई बहुमत प्राप्त हो गया जो सविधान मे सशोधन करने क लिए आवश्यक था।

१९७१ में काग्रेस सरकार ने, जिसे अब एक सुनिश्चित ससदीय बहुमत और वामपथी शक्तियो का समर्थन प्राप्त था, प्रगतिशील आर्थिक परिवर्तना के अपने कार्यक्रम को कार्यान्वित करना जारी रखा। सविधान म दो सशोधन किये गये जिन्होंने ससद को बिना मुआवजा दिये निजी सपत्ति के अधिकार को सीमित करने के लिए कानून बनान का अधिकार प्रदान किया और आर्थिक और सामाजिक विधान के क्षेत्र म ससद की सर्वोच्चता का स्थापित किया और इसके जरिये उच्चतम न्यायालय म प्रतिक्रियावादी बहुमत द्वारा बैको का राष्ट्रीयकरण करने तथा देशी राज्यो के भूतपूर्व शासको के विशेषाधिकारो को समाप्त करने के सरकारी निर्णय क कार्यान्वयन को अवरुद्ध करने के

प्रयासो को विफल कर दिया। साल क अत म ससद न भूतपूर्व शासको को पेन्शन देना बद करन का निणय किया जिसन पाच करोड रुपय सालाना की बचत की तथा सामती और प्रतिक्रियावादी तत्वो के देश के राजनीतिक जीवन म हस्तक्षेप करन क प्रयास को भी विफल किया।

एक महत्वपूर्ण प्रगतिशील कदम सरकार को निजी प्रतिष्ठानो पर नियत्रण स्थापित करन का अधिकार देन क कानून का बनाया जाना था। इदिरा गाधी की सरकार न ६४ भारतीय और ४२ विदेशी बीमा कपनियो २१४ कोयला खानो और अन्य प्रतिष्ठानो पर नियत्रण ग्रहण किया। कुछ राज्यो म अनक हलक और खाद्य उद्योग प्रतिष्ठानो को भी राजकीय नियत्रण म ले आया गया।

भूमि सुधारो क एक नय दौर की शुरुआत की भी घोषणा की गयी। इनम निजी जोतो की निम्नतर हदबदी निर्धारित की जानी थी। इसके अलावा अर्थव्यवस्था क विभिन्न क्षेत्रो पर राजकीय नियत्रण के विस्तार की नीति जारी रखन का भी वादा किया गया। इन घोषणाओ स शासक काग्रस की लोकप्रियता म और वृद्धि आयी।

१९७२ म राज्य विधानमडलो क चुनावो म शासक काग्रस न पूर्ववर्ती वष मे ससद क मध्यावधि चुनाव म प्राप्त ४३ ६ प्रतिशत मतो की तुलना म ४८ प्रतिशत मत प्राप्त किय। १९६७ म फूट पडने क पहल सयुक्त काग्रेस ने राज्य विधानमडलो म ४२ ७ प्रतिशत मत प्राप्त किये थ। मतलब यह कि इदिरा गाधी क नतृत्व म शासक काग्रेस की प्रतिष्ठा म वृद्धि असदिग्ध थी। परिणामस्वरूप काग्रस राज्य विधानमडलो म अपनी स्थिति काफी मजबूत कर सकी जिनम उसन लगभग ७६ प्रतिशत सीट जीती। पुरानी" काग्रेस न १९६७ के चुनाव म राज्य विधानमडलो म ५० प्रतिशत स कम स्थान प्राप्त किय थे।

शासक काग्रस न २१ राज्यो म स १५ म सरकार बनायी (पाच राज्यो म चुनाव नही हुए थे)।

यह उल्लेखनीय है कि १६ राज्य विधानमडलो मे से ११ मे काग्रेस न दो तिहाई स्थान प्राप्त किये। इसका मतलब यह था कि वह अप्रैल १९७२ के चुनाव मे राज्य सभा म बहुमत प्राप्त करने की ओर भी बेहतर स्थिति मे थी।

फिर भी अधिकाश राज्यो मे काग्रेस द्वारा १९७२ मे प्राप्त मत १९७१ के ससदीय चुनाव मे प्राप्त मतो के मुकाबले मे कम थे। इसका कारण यह था कि १९७२ के विधानमडलीय चुनाव अभियान मे अनेक स्थानीय मसले उठाये गये थे और राज्य स्तर पर काग्रेस सगठनो के कार्यकलापो के सबध

था। चुनाव कराने का वास्तविक कारण प्रतिश्रुत सामाजिक आर्थिक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए सुनिश्चित ससदीय बहुमत प्राप्त करने की आवश्यकता बताया गया।

१९७१ और १९७२ के आम चुनाव

शासक दल और सरकार की सामाजिक-आर्थिक नीति मे आय प्रगतिशील परिवर्तन और इन परिवर्तनो के व्यापक प्रचार तथा देश के भावी विकास के बारे मे वादा ने १९७१ के मध्यावधि चुनाव मे शासक काग्रेस की सफलता में बहुत बडी भूमिका अदा की थी। सरकारी नीति मे इस परिवर्तन का कारण बडी सीमा तक १९६७ और १९६९ के चुनावो मे वामपथी पार्टियो द्वारा प्राप्त सफलताए थी।

वामपथी पार्टियो द्वारा प्रस्तुत नारो से बहुत मिलते-जुलते नारो को अपनाकर शासक काग्रेस ने व्यापक सामाजिक परिवर्तनो के वादो और उनके कार्यान्वयन के लिए उठाये कदमो के जरिये पहले वामपथी पार्टियो को मत देनेवाले मतदाताओ के काफी बडे भाग का समर्थन प्राप्त कर लिया। दूसरी ओर दक्षिणपथी नेताओ की काग्रेस (ओ०) पर सामाजिक आर्थिक क्षेत्र मे इन प्रगतिशील परिवर्तनो के मार्ग मे खडी मुख्य शक्ति का दोष लगाकर शासक दल पहले सयुक्त राष्ट्रीय काग्रेस का समर्थन करनेवाले मतदाताओ के अधिकाश को भी अपने पक्ष मे लाने मे सफल हो गया।

मार्च १९७१ मे हुए ससद के इन चुनावो मे शासक दल को पुन दो तिहाई बहुमत प्राप्त हो गया, जो सविधान मे सशोधन करने के लिए आवश्यक था।

१९७१ मे काग्रेस सरकार ने, जिसे अब एक सुनिश्चित ससदीय बहुमत और वामपथी शक्तियो का समर्थन प्राप्त था, प्रगतिशील आर्थिक परिवर्तनो के अपने कार्यक्रम को कार्यान्वित करना जारी रखा। सविधान मे दो सशोधन किये गये, जिन्होने ससद को बिना मुआवजा दिये निजी सपत्ति के अधिकार को सीमित करने के लिए कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया और आर्थिक और सामाजिक विधान के क्षेत्र मे ससद की सर्वोच्चता को स्थापित किया और इसके ज़रिये उच्चतम न्यायालय मे प्रतिक्रियावादी बहुमत द्वारा बैंको का राष्ट्रीयकरण करने तथा देशी राज्यो के भूतपूर्व शासको के विशेषाधिकारो को समाप्त करने के सरकारी निर्णय के कार्यान्वयन को अवरुद्ध करने के

वामपथी विपक्ष विशेष रूप से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति काग्रेस तथा उसके नेतृत्वाधीन जन सगठनो के रुख को भी प्रभावित किया। इटक नतृत्व के भीतर भी परिवर्तन आये जिसने एटक तथा अन्य टेड यूनियन केन्द्रो के साथ पहले स अधिक दढतापूर्वक सहयोग करना शुरू किया। मई १९७१ मे दिल्ली मे एक अखिल भारतीय टेड-यूनियन सम्मेलन हुआ जिसमे सभी बडे राष्टीय ट्रेड-यूनियन केन्द्रो और स्वतत्र अखिल भारतीय टेड-यूनियन फेडरेशनो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। सम्मेलन न एक विस्तृत सयुक्त सघर्ष का घोषणापत्र' स्वीकार किया जो श्रमजीवी जनता के आर्थिक अधिकारो की रक्षा के लिए सघर्ष का व्यापक कार्यक्रम था।

अक्तूबर, १९७१ म कोचीन मे आयोजित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की नौवी कांग्रेस मे सभी वामपथी और जनवादी शक्तियो की एकता के प्रयासो पर एक बार पुन जोर दिया गया। उसने राष्ट्रीय काग्रेस के अदर और बाहर वामपथी शक्तियो के साथ सहयोग को श्रमजीवी जनता के हितो की रक्षा मे जन-आदोलन को तेज करने के साथ सयोग करने की एक लचकदार कार्यनीति निरूपित की।

चुनाव के बाद अधिकाश राज्यो म काग्रेस न ही सरकार बनायी। लेकिन अनेक दक्षिणपथी तत्वो की वापसी के कारण उसके भीतर स्थिति पेचीदा बन गयी। काग्रेस मे दक्षिण पक्ष के दृढीकरण न उसके आतरिक सघर्ष को तेज किया और कुछ राज्यो मे काग्रेस सरकारो की स्थिरता को धक्का पहुचाया जिससे अक्तूबर, १९७२ म अखिल भारतीय काग्रेस समिति द्वारा प्रस्तावित प्रगतिशील आर्थिक कदमो के और आगे कार्यान्वयन म बाधा आयी। यह सब ऐसे समय हो रहा था जब देश की आथिक स्थिति बिगड रही थी (राष्टीय आय की वृद्धि दर का १९६९ और १९७२ के बीच गिरना जारी रहा था) और सामाजिक तनाव बढता जा रहा था। भारतीय राजनीति म वाम पक्ष की ओर हाल मे आये झुकाव को पुख्ता करने के लिए आवश्यक कार्यभारो की निष्पत्ति अधिकाधिक कठिन होती जा रही थी।

१९७०-१९७२ मे इदिरा गाधी सरकार की विदेश नीति। १९७१ मे भारत पाकिस्तान युद्ध

१९६९ मे भारतीय राष्टीय काग्रेस म विभाजन के बाद शासक दल के भीतर उन शक्तियो का प्रभाव बहुत कम हो गया जो भारतीय सरकार

म वही अधिक 'मदिग्ध" मामनो की पोन खोली जा मक्ती थी।

चुनाव न मुख्य दक्षिणपथी पार्टियो की ममदीय स्थिति म सुस्पष्ट गिरावट (राज्य विधानमडला मे प्राप्त स्थानो की मख्या म कमी) प्रदर्शित की। लेकिन उनक जन समर्थन म आयी गिरावट इतनी भारी नही थी।

१६७२ मे राज्य विधानमडला क चुनाव म वामपथी पार्टिया न कुल मिलाकर अपनी स्थिति को बनाय रखा। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी न १९६७ म ४१ प्रतिशत और १६७१ मे ४६ प्रतिशत की तुलना मे ४२ प्रतिशत मत प्राप्त किय। यहा पश्चिम बगाल म भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी क प्रभाव म आयी काफी वृद्धि (१६६७ म ७४ प्रतिशत और १६७२ म १३ प्रतिशत मत) का अवश्य उल्लेख किया जाना चाहिए। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी न १६ राज्या म स दिल्ली महित छ राज्यो—पश्चिम बगाल, विहार पजाब, राजस्थान मध्य प्रदेश और मैसूर—म मीटो क बटवार पर काग्रस क साथ समझौता किया जिसस वह इन राज्या के विधानमडलो म अपनी स्थिति को काफी मजबूत बना सकी।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी न १६६७ म ४ प्रतिशत और १६७१ म ४९ प्रतिशत की तुलना मे कुल ४६ प्रतिशत मत प्राप्त किय। लेकिन उमक नताओ की फूटपरस्त नीति क परिणामस्वरूप पश्चिम बगाल म पार्टी की जबरदस्त पराजय हुई और राज्य विधान सभा मे उसकी स्थिति म उल्लेखनीय गिरावट आयी। चुनाव के पहले १२८ के मुकाबले म अब उसके ३४ सदस्य ही थे। इस प्रकार उसके प्रभाव मे काफी कमजोरी आयी थी।

जहा तक जनता के बीच समाजवादियो के प्रभाव का सबध है, उनकी स्थिति पहले स कुछ कमजोर हो गयी थी (उन्होने १६६७ मे ५१ प्रतिशत की तुलना मे अब ४६ प्रतिशत मत प्राप्त किय थे) और राज्य विधानमडला मे विजित स्थानो की सख्या मे भारी गिरावट आयी थी (पहले ११७ के मुकाबले मे अब ५८ स्थान)। सिर्फ बिहार ही एक ऐसा राज्य था, जिसम समाजवादी मुख्य विरोधी पार्टी की स्थिति को बनाय रख सके थे (उन्होने वहा १६ प्रतिशत मत प्राप्त किये थे)।

इदिरा गाधी सरकार द्वारा प्रगतिशील सामाजिक आर्थिक सुधारो का कार्यान्वयन भारत म उस समय राजनीतिक शक्तियो के सतुलन मे वाम पक्ष की ओर आते सुनिश्चित झुकाव को अभिव्यक्त करता था। आतरिक राजनीतिक स्थिति म ये परिवर्तन श्रमजीवी लोगो के जन सघर्ष के दबाव से आये थे।

काग्रेस नतृत्व के भीतर वामपथी मध्यममार्गी समूह के बढत प्रभाव ने

वामपथी विपक्ष, विशेष रूप से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति काग्रेस तथा उसके नेतृत्वाधीन जन सगठनो के रुख को भी प्रभावित किया। इटक नतृत्व के भीतर भी परिवर्तन आय, जिसने एटक तथा अन्य ट्रेड-यूनियन केन्द्रो क साथ पहले से अधिक दढतापूर्वक सहयोग करना शुरू किया। मई १९७१ म दिल्ली मे एक अखिल भारतीय ट्रड-यूनियन सम्मेनन हुआ जिसम सभी बडे राष्टीय ट्रेड-यूनियन केन्द्रो और स्वतत्र अखिल भारतीय टड यूनियन फेडरेशनो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। सम्मेलन न एक विस्तृत सयुक्त सघष का घोष णापत्र' स्वीकार किया, जो श्रमजीवी जनता क आर्थिक अधिकारो की रक्षा के लिए सघर्ष का व्यापक कार्यक्रम था।

अक्तूबर, १९७१ मे कोचीन म आयोजित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की नौवी काग्रेस मे सभी वामपथी और जनवादी शक्तियो की एकता के प्रयासो पर एक बार पुन जोर दिया गया। उसने राष्टीय काग्रस के अदर और बाहर वामपथी शक्तिया के साथ सहयोग का श्रमजीवी जनता क हिता की रक्षा म जन-आदोलन को तज करने के साथ सयोग करने की एक लचकदार कार्यनीति निरूपित की।

चुनाव के बाद अधिकाश राज्यो मे काग्रेस न ही सरकारे बनायी। लेकिन अनेक दक्षिणपथी तत्वो की वापसी क कारण उसक भीतर स्थिति पेचीदा बन गयी। काग्रेस मे दक्षिण पक्ष के दृढीकरण न उसके आतरिक सघर्ष को तेज किया और कुछ राज्यो मे काग्रेस सरकारो की स्थिरता को धक्का पहुचाया जिससे अक्तूबर, १९७२ मे अखिल भारतीय काग्रस समिति द्वारा प्रस्तावित प्रगतिशील आर्थिक कदमो के और आगे कार्यान्वियन मे बाधा आयी। यह सब एसे समय हो रहा था, जब देश की आर्थिक स्थिति बिगड रही थी (राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर का १९६९ और १९७२ के बीच गिरना जारी रहा था) और सामाजिक तनाव बढता जा रहा था। भारतीय राजनीति मे वाम पक्ष की ओर हाल मे आये झुकाव को पुख्ता करने के लिए आवश्यक कार्यभारो की क्रियान्विती अधिकाधिक कठिन होती जा रही थी।

१९७०–१९७२ मे इदिरा गाधी सरकार की विदेश नीति। १९७१ मे भारत पाकिस्तान युद्ध

१९६९ मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रस म विभाजन क बाद शासक दल क भीतर उन शक्तियो का प्रभाव बहुत कम हो गया जो भारतीय सरकार

मे कही अधिक सदिग्ध" मामलो की पोल खोली जा सकती था।

चुनाव न मुख्य दक्षिणपथी पार्टियो की ससदीय स्थिति म सुस्पष्ट गिरावट (राज्य विधानमडलो म प्राप्त स्थाना की सख्या मे कमी) प्रदर्शित की। लेकिन उनके जन समर्थन म आयी गिरावट इतनी भारी नही थी।

१९७२ म राज्य विधानमडलो के चुनाव म वामपथी पार्टिया न कुल मिलाकर अपनी स्थिति को बनाये रखा। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी न १९६७ म ८१ प्रतिशत और १९७१ मे ४९ प्रतिशत की तुलना म ४२ प्रतिशत मत प्राप्त किय। यहा पश्चिम बगाल म भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभाव म आयी काफी वद्धि (१९६७ म ७४ प्रतिशत और १९७२ मे १३ प्रतिशत मत) का अवश्य उल्लेख किया जाना चाहिए। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने १६ राज्यो म मे दिल्ली सहित ८ राज्यो–पश्चिम बगाल, बिहार, पजाब, राजस्थान, मध्य प्रदेश और मैसूर–म सीटो के बटवार पर काग्रेस के साथ समझौता किया जिसस वह इन राज्या क विधानमडलो म अपनी स्थिति को काफी मजबूत बना सकी।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी न १९६७ मे ४ प्रतिशत और १९७१ म ४९ प्रतिशत की तुलना म कुल ४६ प्रतिशत मत प्राप्त किय। लेकिन उसक नताओ की फूटपरस्त नीति क परिणामस्वरूप पश्चिम बगाल मे पार्टी की जबरदस्त पराजय हुई और राज्य विधान सभा मे उसकी स्थिति मे उल्लेखनीय गिरावट आयी। चुनाव के पहले १२८ के मुकाबले मे अब उसक ३४ सदस्य ही थे। इस प्रकार उसके प्रभाव मे काफी कमजोरी आयी थी।

जहा तक जनता के बीच समाजवादियो क प्रभाव का सबध है, उनकी स्थिति पहले से कुछ कमजोर हो गयी थी (उन्होंने १९६७ मे ५१ प्रतिशत की तुलना मे अब ४६ प्रतिशत मत प्राप्त किये थे) और राज्य विधानमडलो मे विजित स्थानो की सख्या मे भारी गिरावट आयी थी (पहले ११७ के मुकाबल मे अब ५८ स्थान)। सिर्फ बिहार ही एक ऐसा राज्य था जिसम समाजवादी मुख्य विरोधी पार्टी की स्थिति को बनाये रख सके थे (उन्होने वहा १६ प्रतिशत मत प्राप्त किये थे)।

इदिरा गाधी सरकार द्वारा प्रगतिशील सामाजिक-आर्थिक सुधारो का कार्यान्वयन भारत मे उस समय राजनीतिक शक्तियो के सतुलन मे वाम पथ की ओर आते सुनिश्चित झुकाव को अभिव्यक्त करता था। आतरिक राजनीतिक स्थिति म ये परिवर्तन श्रमजीवी लोगो के जन सघर्ष के दबाव से आये थे।

काग्रेस नेतृत्व के भीतर वामपथी मध्यममार्गी समूह के बढते प्रभाव ने

वामपथी विपक्ष विशेष रूप से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति कांग्रेस तथा उसके नेतृत्वाधीन जन-सगठनो के रुख को भी प्रभावित किया। इंटक नतृत्व के भीतर भी परिवर्तन आये जिसने ऐटक तथा अन्य ट्रेड यूनियन केन्द्रो के साथ पहले से अधिक दृढतापूर्वक सहयोग करना शुरू किया। मई, १९७१ म दिल्ली मे एक अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन सम्मेलन हुआ जिसम सभी बडे राष्ट्रीय ट्रेड-यूनियन केन्द्रो और स्वतत्र अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन फेडरेशनो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। सम्मेलन ने एक विस्तृत सयुक्त सघर्ष का घोषणापत्र' स्वीकार किया जो श्रमजीवी जनता के आर्थिक अधिकारो की रक्षा के लिए सघर्ष का व्यापक कार्यक्रम था।

अक्तूबर, १९७१ मे कोचीन म आयोजित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की नौवी कांग्रेस मे सभी वामपथी और जनवादी शक्तियो की एकता के प्रयासो पर एक बार पुन जोर दिया गया। उसने राष्ट्रीय कांग्रेस के अदर और बाहर वामपथी शक्तियो के साथ सहयोग का श्रमजीवी जनता के हितो की रक्षा मे जन-आदोलन को तेज करने के साथ सयोग करने की एक लचकदार कार्यनीति निरूपित की।

चुनाव के बाद अधिकाश राज्यो म कांग्रेस न ही सरकार बनायी। लेकिन अनेक दक्षिणपथी तत्वो की वापसी के कारण उसके भीतर स्थिति पचीदा बन गयी। कांग्रेस मे दक्षिण पक्ष के दृढीकरण ने उसके आतरिक सघर्ष को तेज किया और कुछ राज्यो मे कांग्रेस सरकारो की स्थिरता को धक्का पहुचाया जिससे अक्तूबर १९७२ म अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा प्रस्तावित प्रगतिशील आर्थिक कदमो के और आगे कार्यान्वयन मे बाधा आयी। यह सब उस समय हो रहा था जब देश की आर्थिक स्थिति बिगड रही थी (राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर का १९६९ और १९७२ के बीच गिरना जारी रहा था) और सामाजिक तनाव बढता जा रहा था। भारतीय राजनीति म वाम पक्ष की ओर हाल म आये झुकाव को पुख्ता करने के लिए आवश्यक कार्यभारो की क्रियान्विती अधिकाधिक कठिन होती जा रही थी।

१९७०–१९७२ मे इंदिरा गाधी सरकार की विदेश नीति। १९७१ मे भारत पाकिस्तान युद्ध

१९६९ म भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस मे विभाजन के बाद शासक दल के भीतर उन शक्तियो का प्रभाव बहुत कम हो गया जो भारतीय सरकार

पर तटस्थतावादी विदेश नीति को पश्चिम समर्थक, विशेष रूप से अमरीका समर्थक नीति की ओर मोडने के लिए दबाव डाल रही थी। मतलब यह कि इदिरा गाधी सरकार विदेश नीति के जवाहरलाल नेहरू द्वारा निरूपित मूलभूत सिद्धातो पर जमे रहने और सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो के साथ निकटतर राजनीतिक, आर्थिक और सास्कृतिक सहयोग को बढावा देने की ओर लक्षित कदमो को कार्यान्वित करने की स्थिति में थी।

१९६७–१९६९ के वर्षो की ही भाति, इदिरा गाधी की राजनीतिक पहलो का उद्देश्य तीसरी दुनिया मे भारत की स्थिति मजबूत बनाने के लिए एशिया और अफ्रीका के देशो के साथ द्विपक्षीय सबधो को सुदृढ करना था। भारतीय विदेश नीति का एक दूसरा महत्वपूर्ण लक्ष्य विकसित पूजीवादी देशो के साथ सबधो को मजबूत बनाना और विकसित करना था, जो सर्वोपरि देश के आर्थिक और सामाजिक-सास्कृतिक विकास की जरूरतो के दृष्टिगत आवश्यक था।

पहले की भाति विदेश नीति के क्षेत्र मे भारत की मुख्य समस्याए पाकिस्तान और चीनी लोक गणराज्य के साथ सबधो से सबद्ध थी। एक ओर, भारत और पाकिस्तान के बीच और दूसरी ओर, भारत और चीन के बीच लबा विवाद भारत और अन्य राष्ट्रो, विशेष रूप से महाशक्तियो के बीच सबधो को प्रभावित करता रहा।

पाकिस्तान के साथ सबधो मे तनाव, जो १९७० की गरमियो मे रबात मे आयोजित मुस्लिम देशो के सम्मेलन मे एकदम प्रत्यक्ष था पाकिस्तान की आतरिक स्थिति मे अतर्विरोधो के बढने के साथ १९७० के अत से निरतर बढता जा रहा था।

पूर्वी पाकिस्तान मे राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन बल पकडने लगा था। पाकिस्तान के इतिहास मे पहले आम चुनावो (दिसम्बर १९७०) मे पूर्वी पाकिस्तान मे राष्ट्रवादी पार्टी अवामी लीग की तथा पश्चिमी पाकिस्तान मे याह्या खा की फौजी हुकूमत की विरोधी शक्तियो की विजय हुई लेकिन पश्चिमी पाकिस्तान मे शासक हलको ने चुनावो के परिणामो को एकदम अस्वीकृत कर दिया। इसके बाद पूर्वी पाकिस्तान के राष्ट्रवादी सगठनो का बलपूर्वक दमन किया गया पूर्वी पाकिस्तान मे विधायी निकायो को भग कर दिया गया और २६ मार्च, १९७१ को बगाली राष्ट्रीय नेता शेख मुजीबुर्रहमान को गिरफ्तार कर लिया गया। इस घटनाक्रम की परिणति छापामार दलो और उनके बगाली नागरिक समर्थको के खिलाफ पश्चिमी पाकिस्तानी सेना की व्यापक सशस्त्र

कार्रवाई मे हुई। अगले आठ महीनो म सरकारी फौजो द्वारा किये गये जन सहार और सामूहिक विनाश न बगाली शरणार्थियो को लाखो की तादाद म भारत भागन के लिए विवश कर दिया। १९७१ के अत तक इन शरणार्थियो की सख्या एक करोड हो चुकी थी।

शरणार्थियो की इस बाढ के लिए आश्रय और भरण पोषण के बदोबस्त न भारतीय अर्थव्यवस्था पर भारी बोझ डाल दिया। भारत द्वारा बगाली राष्ट्रीय आदोलन के प्रति प्रदर्शित नैतिक समर्थन मे पाकिस्तान म भयकर भारतविरोधी प्रचार अभियान शुरू हो गया जिसे फौजी शासन न प्रोत्साहित किया। इससे भारत और पाकिस्तान के बीच सबध पहले से भी ज्यादा खराब हो गय। स्थिति उस समय और भी बिगड गयी जब चीनी सरकार न खुल्लम खुल्ला पाकिस्तानी शासक गुट के प्रति अपन समर्थन की घोषणा की और अमरीका ने भी पाकिस्तान की नीति की अपनी आम स्वीकृति को जाहिर किया।

इस परिस्थिति मे सोवियत सघ के दृढ और सुसगत रवैये न बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की – सोवियत सघ न सुस्पष्ट रूप से सारे रक्तपात को बद करने तथा सभी मतभेदो का शातिपूर्ण समाधान करन की माग की। भारतीय विदेश नीति और आतरिक स्थिति न देश को स्वाभाविकतया सोवियत सघ के साथ निकटतर सहयोग के लिए प्रेरित किया। ९ अगस्त १९७१ को भारत और सोवियत सघ के बीच शाति मैत्री और सहयोग सधि के हस्ताक्षरण ने दोनो देशो के बीच सबधो को केवल एक नये उच्चतर चरण पर ही नही पहुचाया, बल्कि भारत की अतर्राष्ट्रीय स्थिति को भी मजबूत बनाया।

भारतीय उपमहाद्वीप म तनाव मे कोई और वृद्धि को रोकने के प्रयासो के बावजूद ३ दिसम्बर, १९७१ को भारत और पाकिस्तान के बीच सशस्त्र लडाई शुरू हो गयी। व्यापक मोरचे पर १४ दिनो की फौजी कार्रवाई पाकिस्तानी फौजो के आत्मसमर्पण और १७ दिसम्बर को भारत की पहल पर युद्धविराम के साथ समाप्त हुई।

पाकिस्तान की पराजय और उसके फौजी शासन के पतन गण प्रजातत्रीय बागलादेश की स्थापना तथा भारत की विजय ने दक्षिण एशिया मे शक्ति सतुलन और स्वय भारत म स्थिति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किये। इन कारको ने इदिरा गाधी तथा काग्रेस की प्रतिष्ठा बढाने मे बहुत योग दिया जिसे १९७२ के विधानमडलीय चुनावो मे भारी विजय प्राप्त हुई।

भारत-पाकिस्तान सघर्ष के परिणामो से उत्पन्न समस्याओ का समाधान

१९७२ भर भारतीय विदेश नीति पर हावी रहा। फरवरी, १९७२ मे भारत ने बागलादेश के साथ, जिसे उसने ६ दिसम्बर, १९७१ को आधिकारिक रूप से मान्यता प्रदान कर दी थी, एक मैत्री तथा सहयोग सधि सपन्न की और आर्थिक सहायता उपलब्ध की। मार्च, १९७२ मे भारतीय सनाएं बागलादेश मे वापस बुला ली गयी।

३ जुलाई १९७२ को शिमला मे इदिरा गाधी और पाकिस्तान के नये राष्ट्रपति भुट्टो के बीच विवादास्पद समस्याओ के भविष्य मे शातिपूर्ण साधना से समाधान के बारे मे एक समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार सशस्त्र सघर्ष से उत्पन्न अनेक समस्याएं (उदाहरणार्थ कश्मीर मे नियत्रण क्षेत्र का सीमाकन अधिकृत प्रदेशो से फौजो की वापसी और युद्धबदियो का आदान प्रदान आदि) मुख्यतया १९७२ के अत तक हल कर ली गयी।

युद्ध के दौरान अमरीकी सरकार के पाकिस्तान-समर्थक रवैये और अमरीकी सहायता के स्थगन के परिणामस्वरूप भारत और अमरीका के बीच सबधो मे बहुद बिगाड आया। साथ ही भारत भी विश्व राजनीति मे प्रगतिशील शक्तियो का प्रतिनिधित्व करनेवाले राज्यो के साथ सबध विकसित करने पर ध्यान केन्द्रित करने लगा। इसकी अभिव्यक्ति वियतनामी जनवादी जनतत्र और जर्मन जनवादी जनतत्र को राजनयिक मान्यता दिये जाने तथा दक्षिण वियतनामी जनतत्र की अस्थायी क्रातिकारी सरकार द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावो के प्रति भारत सरकार के आधिकारिक समर्थन मे हुई। भारत ने वियतनाम मे अमरीकी नीति साइगोन सरकार के रवैये तथा अरब देशो के विरुद्ध इसरायली आक्रमण की तीव्र आलोचना की।

१९७१ की सोवियत भारत सधि ने दोनो देशो के बीच राजनीतिक, आर्थिक और सास्कृतिक सहयोग की सफल प्रगति का सवर्द्धन किया। १९७२ मे सोवियत सघ और भारत के बीच वैज्ञानिक और तकनीकी सहयोग के बारे मे व्यापक समझौते सपन्न हुए।

१९७२ मे अतर्राष्ट्रीय तनाव मे कमी की दिशा मे आये मोड का भारतीय विदेश नीति पर भी प्रभाव पडा।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के महासचिव लेओनीद इल्यीच ब्रेज्नेव ने सोवियत भारत मैत्री के महत्व और अतर्राष्ट्रीय सबधो मे भारत की स्थिति का मूल्याकन निम्नलिखित शब्दो मे किया है

"एशिया की नियति के निर्धारण मे भारत निस्सदेह प्रमुख भूमिका अदा करता है। हमारी उसके साथ शाति मैत्री और सहयोग की सधि है। हम

इस सधि को स्थायी, अच्छ और मैत्रीपूर्ण सबधा का एक विश्वसनीय आधार मानते हैं। भारत ने विश्व राजनीति मे विशाल और महत्वपूर्ण योगदान किया है और हमे विश्वास है कि उसकी भूमिका सतत बढती जायेगी। सोवियत-भारत मैत्री वर्ष प्रति वर्ष मजबूत होती जा रही है और इसमे कोई सदेह नही कि हमार दोनो देशो तथा विश्व शाति क ध्यय क हित मे भविष्य में इस दिशा मे नये कदम उठाय जायग। *

आठवे दशक मे भारत
(१९७३–१९७९)

१९७१ और १९७२ के चुनावो म अधिकाश मतदाताओ द्वारा सामाजिक और आर्थिक रूपातरणो के कार्यक्रम के लिए राष्ट्रीय काग्रेस को प्रदत्त समर्थन, चुनावो के दौरान काग्रेस और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के बीच हुए समझौते, कम्युनिस्टो और शासक दल के वामपथी मध्यममार्गी पक्ष का विभिन्न क्षेत्रो म सहयोग – इन सभी ने देश के राजनीतिक जीवन म वाम पक्ष की दिशा म और मोड आने की आशाप्रद सभावनाए उत्पन्न की। लेकिन चुनाव अभियान क दौरान इदिरा गाधी द्वारा प्रस्तुत वामपथी-मध्यममार्गी कार्यक्रम के कार्यान्वयन मे भारत के पूजीवादी विकास मे गहराते अतर्विरोधा ने पेचीदगिया पैदा कर दी। १९७१ और १९७२ के चुनावों म काग्रेस की विजय न देश म बढते सामाजिक और आर्थिक सकट को हल नही किया और साथ ही नहरू नीति के सकारात्मक पहलुओ को बनाये रखने क सघर्ष म एक नये दौर को शुरू कर दिया।

आठवे दशक के मध्य मे आर्थिक स्थिति

भारत के पूजीवादी मार्ग पर विकास मे अतर्निहित विरोध मुख्यतया देश द्वारा अनुभूत आर्थिक कठिनाइयो मे प्रकट हुए।

स्वतत्रता प्राप्त करने के बाद भारत ने अपने आर्थिक विकास म निश्चित सफलताए प्राप्त की थी। आठवे दशक के मध्य तक औद्योगिक उत्पादन के

---

* 'प्राव्दा' २५ सितम्बर, १९७२।

कुल परिमाण म चौगुनी से अधिक वृद्धि हुई थी। राजकीय और निजी क्षेत्रा म धातुकर्म और भारी इजीनियरी सहित खनन और समाधन उद्योगो की नयी शाखाए कायम हो गयी थी। देश का ऊर्जा आधार मजबूत हो गया था– कोयला उत्पादन २ ३ गुना, तेल-उत्पादन २५ गुना से अधिक, पेटो रासायनिक उत्पादो का उत्पादन ८५ गुना और विद्युत ऊर्जा का उत्पादन १० गुना ज्यादा हो गया था। कृषि के पूजीवादी क्षेत्र मे यत्रीकरण और रासायनीकरण का प्रारभ भारत में औद्योगिक क्राति के एक नये चरण मे प्रवेश करने का द्योतक था।

लेकिन उपनिवेशवाद से विरासत मे प्राप्त आर्थिक प्रणाली के पुनर्निर्माण मे इन महत्वपूण सकारात्मक परिवर्तनो के बावजूद सातवे दशक के मध्य म पूजीवादी मार्ग पर विकास मे कठिनाइया अधिकाधिक खुलकर प्रकट होन लगी थी। आथिक विकास की न्यूनीकृत दरे इसे विशेषकर व्यक्त करती थी। जहा पहली पचवर्षीय योजनावधि मे औद्योगिक उत्पादन मे औसत वार्षिक वृद्धि ६ ५ प्रतिशत दूसरी याजनावधि मे ७ ३ प्रतिशत और तीसरी योजनावधि मे ७ ८ प्रतिशत थी, वहा चौथी पचवर्षीय योजनावधि (१९६९-७०–१९७३ ७४) मे वह मात्र ३ ८ प्रतिशत थी (१९३७ से १९४६ की अवधि मे यह ० ६ प्रति शत थी), हालाकि योजना के अनुसार वार्षिक विकास दर ८ से १० प्रतिशत होनी चाहिए थी। आठवे दशक के पूर्वार्द्ध मे औद्योगिक उत्पादन की विकास दर लगातार गिरकर १९७१ मे ३ ६ प्रतिशत, १९७२ मे २ ९ प्रतिशत और १९७३ मे २ ५ प्रतिशत तक आ गयी। १९७४ और १९७५ मे औद्योगिक विकास दर वस्तुत शून्य तक आ गयी थी।

देश के आर्थिक विकास मे मथरता आने का सबसे महत्वपूर्ण कारण कृषि का पिछडापन था। स्वतत्रता के बाद कृषि मे सुनिश्चित विकास (व्यापकता और गहनता दोनो दृष्टियो से) हुआ था कुल उत्पादन और सिचित क्षेत्र भी दुगुन से अधिक हो गया, जब कि कुल कृषि क्षेत्र मे ३० प्रतिशत और औसत फसल उपज मे ४० प्रतिशत की वृद्धि आयी थी। लेकिन सातव दशक के मध्य म शुरू होनेवाली "हरित क्राति" के दौरान कृषि उत्पादन के विकास का आधार अत्यत सकुचित बना रहा जिसने सपूर्ण कृषि भूमि की मात्र २० प्रतिशत भूमि, मुख्यतया धनी किसानो और जमीदारो की जमीनो को ही अपनी परिधि मे लिया था जिनका आठव दशक के प्रारभ म देश म कुल कृषि भूमि के आधे पर स्वामित्व था। धनी किसानो और जमीदारा की अधिकाश जमीनो पर खेती परपरागत विधियो मे ही की जाती थी। आठव दशक के मध्य तक हरित क्राति' ने केवल उत्तर पश्चिम भारत म अधिक

विकसित क्षेत्रो (पजाब, हरियाणा और पश्चिम उत्तर प्रदेश) तथा पश्चिमी और दक्षिणी राज्यो मे अलग-अलग जिलो को ही प्रभावित किया था।

किसानी खेती मे अधिकाश (लगभग ७० प्रतिशत) अर्ध-सर्वहाराओ की छोटी और मझोली जोतो का ही था। कुल कृषि-क्षेत्र के लगभग आधे भाग पर कृषि-उत्पादन स्थिर बना हुआ था और इन अलाभकर जोतो के मालिक दरिद्रीकरण और सवहाराकरण की विभिन्न अवस्थाओ मे थे।

भारत द्वारा कृषि और औद्योगिक उत्पादन म प्राप्त दरे मुश्किल से ही आबादी मे वृद्धि (औसतन २ ५ प्रतिशत सालाना) की बराबरी कर पाती थी। यही कारण है कि १६५० से १६७१ की अवधि म औसत प्रति व्यक्ति आय मे मात्र १ ५ प्रतिशत की वृद्धि हुई जब कि १६७२ से १६७५ के दौरान यह लगातार गिरती गयी और १६७६–१६७७ म जाकर ही इसमे पुन बढोत्तरी शुरू हुई।

सरकारी आकडो के अनुसार आठवे दशक के प्रारभ म ४० प्रतिशत ग्रामीण और ५० प्रतिशत शहरी आबादी "निर्धनता सीमा के नीचे रह रही थी, यानी वह व्यक्तिगत आवश्यकताओ पर (१६६१ की कीमतो के आधार पर) प्रति माह २० रुपये से अधिक खर्च करने की स्थिति म नही थी। इस कारण निर्धनता के सातत्य के साथ साथ असमानता मे और अधिक तथा भारतीय प्रेस के शब्दो मे, "लज्जाजनक" वृद्धि और सपत्तिवान वर्गो के उच्चतम सस्तरो के निजी उपभोग मे वृद्धि भी आती जा रही थी। पूजीवादी विकास की ये विषमताए सभवत और कही भी उतनी स्पष्ट नही थी, जितनी कि वे भारतीय महानगरो, विशेष रूप से बम्बई म थी जहा नवधनिको के विलासमय होटलो और गगनचुबी आलीशान महलो का निर्माण गदी बस्तियो के प्रसार के साथ-साथ चलता रहा है।

अधिकाश भारतीय आबादी की अत्यधिक निम्न क्रयशक्ति भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य शाखाओ के आधुनिकीकरण की सीमित सभावनाए और इसके क्रियान्वयन की धीमी गति, निस्सारक तथा ससाधन उद्योगो मे फैक्टरी अवस्था मे अपूर्ण रूपातरण और विश्व बाजार मे अधिकाश भारतीय औद्योगिक मालो के प्रतियोगी मूल्य का कम होना – इन सबने भारतीय उद्योग क बाजार को बहुत सीमित कर दिया है। औद्योगिक क्षमताओ का काफी अल्पोपयोग देश के उद्योग की प्रमुख शाखाओ का एक चारित्रिक लक्षण बन गया है।

सकट ने भारतीय अर्थव्यवस्था के असगत और असबद्ध विकास को उग्र

कुल परिमाण म चौगुनी स अधिक वृद्धि हुई थी। राजकीय और निजी क्षत्रा म धातुकर्म और भारी इजीनियरी सहित खनन और ससाधन उद्योगो की नयी शाखाए कायम हो गयी थी। देश का ऊर्जा आधार मजबूत हो गया था- कोयला-उत्पादन २ ३ गुना, तेल-उत्पादन २५ गुना से अधिक, पेट्रो रासायनिक उत्पादो का उत्पादन ८५ गुना और विद्युत ऊर्जा का उत्पादन १० गुना ज्यादा हो गया था। कृषि के पूजीवादी क्षेत्र मे यत्रीकरण और रासायनीकरण का प्रारभ भारत म औद्योगिक क्राति के एक नये चरण मे प्रवेश करने का द्योतक था।

लेकिन उपनिवेशवाद मे विरासत मे प्राप्त आर्थिक प्रणाली के पुनर्निर्माण म इन महत्वपूण सकारात्मक परिवर्तनो के बावजूद सातवे दशक के मध्य म पूजीवादी माग पर विकास मे कठिनाइया अधिकाधिक खुलकर प्रकट होने लगी थी। आथिक विकास की न्यूनीकृत दरे इसे विशेषकर व्यक्त करती थी। जहा पहली पचवर्षीय योजनावधि मे औद्योगिक उत्पादन म औसत वार्षिक वृद्धि ६ ५ प्रतिशत दूसरी योजनावधि मे ७ ३ प्रतिशत और तीसरी योजनावधि म ७ ८ प्रतिशत थी वहा चौथी पचवर्षीय योजनावधि (१९६९ ७०–१९७३ ७४) म वह मात्र ३ ८ प्रतिशत थी (१९३७ से १९४६ की अवधि म यह ० ६ प्रतिशत थी) हालाकि योजना के अनुसार वार्षिक विकास दर ८ से १० प्रतिशत होनी चाहिए थी। आठव दशक के पूर्वार्द्ध मे औद्योगिक उत्पादन की विकास दर लगातार गिरकर १९७१ मे ३ ६ प्रतिशत, १९७२ मे २ ६ प्रतिशत और १९७३ म २ ५ प्रतिशत तक आ गयी। १९७४ और १९७५ म औद्योगिक विकास दर वस्तुत शून्य तक आ गयी थी।

देश क आर्थिक विकास म मथरता आने का सबसे महत्वपूण कारण कृषि का पिछडापन था। स्वतत्रता के बाद कृषि म सुनिश्चित विकास (व्यापकता और गहनता दोनो दृष्टियो स) हुआ था कुल उत्पादन और सिंचित क्षेत्र भी दुगुन म अधिक हो गया, जब कि कुल कृषि-क्षेत्र म ३० प्रतिशत और औसत फसल उपज म ८० प्रतिशत की वृद्धि आयी थी। लेकिन सातवे दशक के मध्य मे शुरू होनेवाली "हरित क्राति" के दौरान कृषि उत्पादन के विकास का आधार अत्यत सकुचित बना रहा जिसने सपूर्ण कृषि भूमि की मात्र २० प्रतिशत भूमि मुख्यतया धनी किसानो और जमीदारो की जमीनो को ही अपनी परिधि म लिया था जिनका आठवे दशक के प्रारभ म देश म कुल कृषि भूमि के आधे पर स्वामित्व था। धनी किसानो और जमीदारो की अधिकाश जमीनो पर खेती परपरागत विधियो स ही की जाती थी। आठवे दशक के मध्य तक 'हरित क्राति' न केवल उत्तर-पश्चिम भारत के अधिक

विकसित क्षेत्रो (पजाब, हरियाणा और पश्चिम उत्तर प्रदेश) तथा पश्चिमी और दक्षिणी राज्यो मे अलग अलग जिलो को ही प्रभावित किया था।

किसानी खेती मे अधिकाश (लगभग ७० प्रतिशत) अर्ध सर्वहाराओ की छोटी और मझोली जोतो का ही था। कुल कृषि-क्षेत्र के लगभग आध भाग पर कृषि-उत्पादन स्थिर बना हुआ था और इन अलाभकर जोतो क मालिक दरिद्रीकरण और सर्वहाराकरण की विभिन्न अवस्थाओ म थे।

भारत द्वारा कृषि और ओद्योगिक उत्पादन म प्राप्त दर मुश्किल मे ही आबादी मे वृद्धि (औसतन २ ५ प्रतिशत सालाना) की बराबरी कर पाती थी। यही कारण है कि १६५० स १६७१ की अवधि म औसत प्रति व्यक्ति आय मे मात्र १ ५ प्रतिशत की वृद्धि हुई, जब कि १६७२ म १६७५ के दौरान यह लगातार गिरती गयी और १६७६-१६७७ मे जाकर ही इसमे पुन बढोत्तरी शुरू हुई।

सरकारी आकडो के अनुसार आठवे दशक के प्रारभ मे ४० प्रतिशत ग्रामीण और ५० प्रतिशत शहरी आबादी "निर्धनता सीमा के नीचे रह रही थी यानी वह व्यक्तिगत आवश्यकताओ पर (१६६१ की कीमता के आधार पर) प्रति माह २० रुपये से अधिक खर्च करने की स्थिति म नही थी। इस दारण निर्धनता के सातत्य के साथ साथ असमानता मे और अधिक तथा भारतीय प्रस के शब्दो मे, 'लज्जाजनक वृद्धि और सपत्तिवान वर्गो क उच्चतम सस्तरो के निजी उपभोग मे वृद्धि भी आती जा रही थी। पूजीवादी विकास की ये विषमताए सभवत और कही भी उतनी स्पष्ट नही थी, जितनी कि व भारतीय महानगरो, विशेष रूप से बम्बई मे थी जहा नवधनिको क विलासमय होटलो और गगनचुबी आलीशान महलो का निर्माण गदी बस्तिया के प्रसार के साथ-साथ चलता रहा है।

अधिकाश भारतीय आबादी की अत्यधिक निम्न क्रयशक्ति भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्य शाखाओ के आधुनिकीकरण की सीमित सभावनाए और इसके क्रियान्वयन की धीमी गति निस्मारक तथा समाधन उद्योगा म फैक्टरी अवस्था म अपूर्ण रूपातरण और विश्व बाजार मे अधिकाश भारतीय औद्योगिक माला के प्रतियोगी मूल्य का कम होना – इन सबने भारतीय उद्योग के बाजार को बहुत सीमित कर दिया है। औद्योगिक क्षमताओ का काफी अल्पोपयोग देश के उद्योग की प्रमुख शाखाओ का एक चारित्रिक लक्षण बन गया है।

सकट ने भारतीय अर्थव्यवस्था के असगत और असबद्ध विकास को उग्र

वना दिया है। भारतीय पूजीवादी वग के विभिन्न मस्तरो और समूहो क वीच अतर्विरोध भी तीव्र हो गये है।

आठवे दशक के मध्य तक भारत के औद्योगीकरण मे राजकीय क्षेत्र की अगुआ भूमिका पूर्णत निश्चित हो चुकी थी। आर्थिक विकास म सरकारी निवेशो का अश १९५० ५१ में ३ प्रतिशत स वढकर १९७१-७२ मे ४८ प्रतिशत हो गया था। राजकीय क्षेत्र म पूजी निवेश की वृद्धि निजी क्षेत्र म उसकी वृद्धि मे तेज थी। आठव दशक के प्रारभ मे राजकीय क्षेत्र क प्रतिष्ठाना म कुल पूजी निवश (आधारिक सरचना सहित) अनुमानत २२,००० करोड रुपये था जब कि निजी क्षेत्र मे वह लगभग १३,००० करोड रुपये था।

उत्पादन की कुछ शाखाओ म राजकीय क्षेत्र निर्णायक भूमिका अदा करन लगा था। ८५ प्रतिशत ढलवा लोहा, ४८ प्रतिशत इस्पात, ६५ प्रतिशत तेल और तल उत्पाद ८० प्रतिशत विद्युत ऊजा, ५० प्रतिशत रासायनिक उर्वरक राजकीय प्रतिष्ठान प्रदान कर रहे थे।

आधारिक ढाचे म भी राज्य की भूमिका महत्वपूर्ण है – उसका देश की रेलो और राजमार्गो समुद्री वदरगाहो वायु परिवहन, सचार और प्रमुख सिचाई तथा विद्युत पूर्ति साधनो पर स्वामित्व है।

सचलन के क्षेत्र मे भी राजकीय क्षेत्र को कोई कम भूमिका प्राप्त नही है वैको म जमा धनराशि मे उसका अश ८७ प्रतिशत, आयात व्यापार म ७० प्रतिशत और निर्यात व्यापार मे ३० प्रतिशत है।

लेकिन राजकीय क्षेत्र ने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे अव भी प्रमुख भूमिका नही ग्रहण की है। समाधन उद्योग के उत्पादन मे उसका अश लगभग ३० प्रतिशत हो गया है, लेकिन कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे मात्र १६ प्रतिशत ही है। आठव दशक के प्रारभ म राजकीय क्षेत्र औद्योगिक उत्पादन का मात्र ८ प्रतिशत और कृषि उत्पादन का ० २ प्रतिशत प्रदान कर रहा था।

देश के आथिक विकास म राजकीय क्षेत्र तथा राजकीय नियमन क विभिन्न रूपो की निरतर वढती भूमिका न निजी उद्यमकर्ताओ द्वारा राजकीय पूजीवाद की आलाचनाआ की एक चढती लहर ही पैदा कर दी। इसके मूल म केवल आर्थिक उतार-चढाव तथा कच्ची सामग्री, पूजी और तैयार माला क वाजार म प्रतियोगिता क कारण पैदा होनवाले तात्कालिक परिणाम ही नही वल्कि राजकीय क्षत्र के भविष्य म गैर पूजीवादी विकास की दिशा म मोड का आर्थिक आधार वन जान की आशकाए भी थी। इसक साथ राजकीय क्षत्र क प्रति राष्ट्रीय पूजीवादी वर्ग का रवैया सामान्यत दुतरफा था। राजकीय

क्षत्र क महार और मरकार क आर्थिक नियामक तत्र तथा मरक्षणवादी नीतियो का उपयोग करते हुए राष्टीय पूजीवादी वग स्वतत्रता के बाद ३० वर्षो के दौरान अपने कार्यकलापो के क्षेत्र म उल्लेखनीय वद्धि करन म समथ हो गया था। राजकीय क्षेत्र न भारत म पूजी क मकेद्रण और कद्रीयकरण की प्रक्रिया म बाधा नही डाली। सातवे दशक तथा आठवे दशक के प्रारभ मे इजारेदारियो क कार्यकलाप को मीमित करने क लिए उठाय गय कदम निष्फल मिद्ध हुए— आठव दशक के प्रारभ म १३३ मबस बड भारतीय और विदेशी समूहो का निजी मयुक्त पूजी कपनिया की कुल परिमपत्तियो क ७५ प्रतिशत पर स्वामित्व था। आठ सबमे बडे इजारेदार ममूहो की परिसपत्तिया १०० करोड रुपये मे अधिक थी। इनमे बिडला समह की परिमपत्तिया १०६० करोड रुपये टाटा ममूह की ६७० करोड रुपय और मफतलाल ममूह की ६६० करोड रुपये की थी।

बड पूजीवादी वर्ग और उसक ऊपरी इजारेदार स्तर द्वारा अपनी स्थिति मजबूत बनाये जान के माथ छोटे पैमाने के पूजीवादी उद्यम का विकास भी जारी रहा। पूजीवाद क दायरे का विस्तार लाखो छोटी फैक्टरियो तथा अर्ध यत्रीकृत औद्योगिक प्रतिष्ठानो की स्थापना म देखा जा सकता था। इसके माथ ही छोटे पैमान क उद्यमो की जिनम पहले की ही भाति फैक्टरियो और बडे कारखानो के मुकाबले कही अधिक मजदूर काम करत थ जगह धीरे धीरे आधुनिक पूजीवादी उद्यम लेते जा रह थ। औद्योगिक क्षेत्र द्वारा जनित राष्ट्रीय आय मे छोटे उद्योगो का अश १९५०-५१ म ६२ प्रतिशत म घटकर १९७२ ७३ मे ३४ ६ प्रतिशत हो गया था। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो मे बडे उद्योग पर छोट उद्योग की निर्भरता और उनक बीच अतविरोधो म भी वद्धि आयी थी।

भारतीय अर्थव्यवस्था मे इन जटिल और विरोधी प्रक्रियाओ न देश की आतरिक राजनीतिक स्थिति पर भी प्रभाव डाला।

१९७३–१९७५ मे आतरिक राजनीतिक स्थिति

देश मे बढती मुद्रास्फीति प्रक्रियाओ ने अपने को आठव दशक क मपूर्ण प्रथमार्ध मे थोक और खुदरा कीमतो की लगातार वृद्धि मे अभिव्यक्त किया। अकेले १९७४ मे ही खुदरा दामो म ३० प्रतिशत की वृद्धि आयी। मेहनतकश जनसाधारण पर यह एक भारी आघात था जिन्होने लगातार बढती हडतालो

के जरिये महगाई के खिलाफ सघर्ष किया। हडतालो के परिणामस्वरूप नष्ट श्रम-दिवसो की सख्या १६७१ मे १ ८ करोड से बढकर १६७४ मे ३ १ करोड हो गयी। १६७३–१६७४ मे मजदूर वर्ग की सबसे बडी हडताले निम्नलिखित थी रलवे इजन ड्राइवरो की राष्ट्रव्यापी हडताल, बम्बई क कपडा मजदूरो की ४० दिवसीय हडताल पश्चिम बगाल मे जूट मजदूरो की ३३ दिवसीय हडताल कानपुर और तमिलनाडु म कपडा मजदूरो की हडताले। सघष क दौरान अलग अलग ट्रेड-यूनियन केन्द्रो के एकता प्रयासो न जोर पकडा। मई, १६७२ म देश क तीन सबसे बडे ट्रेड-यूनियन केन्द्रो, अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस इडियन नेशनल ट्रेड-यूनियन काग्रेस और हिन्द मजदूर सभा द्वारा राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन परिषद के गठन से इस प्रयास को और बढावा प्राप्त हुआ। लेकिन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभावाधीन ट्रेड-यूनियनो के बीच चलता सघष ट्रेड-यूनियन आदोलन मे एकता के सुदृढीकरण म गभीर बाधा था।

मजदूर वर्ग के सघर्ष के साथ साथ श्रमजीवी किसानो और खेतिहर मजदूरो क सगठन भी अधिक सक्रिय हो गये। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्वाधीन दोनो अखिल भारतीय किसान सभाओ न भूमि स्वामित्व पर "हदबदी' कानूनो के लागू किये जाने काश्तकारो के हितो की रक्षा, किसानो की जरूरत के औद्योगिक मालो की कीमतो को घटान और कृषि-उपज की कीमतो को बढाने के लिए अनेक स्थानीय और राष्ट्रव्यापी अभियान चलाये। किसान सगठनो की गभीर कमजोरी उनकी साधनहीनता और उनके सघर्षो की अनियतता तथा बिखराव थी।

सितम्बर १६७३ मे भटिडा (पजाब) मे किसान सभा के २१ वे राष्ट्रीय सम्मेलन मे किसान सघर्ष का कार्यक्रम तैयार किया गया।

इन वर्षो क दौरान अखिल भारतीय खेत मजदूर सघ की हलचलो का भी प्रसार हुआ, जिसमे मुख्यत हरिजन जातियो के खेतिहर मजदूर शामिल है। खेत मजदूर सघ के सघर्ष की मुख्य दिशा ज्यादा मजदूरी, भूमिहीनो को जमीन दिये जाने और कृषिक सुधार के लिए आदोलन और हरिजनो के खिलाफ जातिगत भेदभाव के विरुद्ध सघर्ष थी। अखिल भारतीय खेत मजदूर सघ ने १६७४ मे तेनाली (आध्र प्रदेश) मे अपना तीसरा राष्ट्रीय सम्मेलन किया था।

भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने १६७२–१६७४ मे ट्रेड यूनियन, युवजन और अन्य जन सगठनो के साथ मिलकर मजदूरो के आर्थिक और राजनीतिक हितो की रक्षा करने के उद्देश्य से अनेक राष्ट्रीय आदोलन सगठित किये।

अक्तूबर १९७२ म प्रगतिशील आर्थिक नीति के कार्यान्वयन की माग लेकर राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह किया गया जिसम तहसील स्तर तक के प्रशासकीय कार्यालयो के सामने धरना दिया गया। २७ मार्च १९७३ को ससद तक "महान प्रयाण का आयोजन किया गया जिसम पाच लाख से अधिक लोगो ने भाग लिया था। ससद को एक याचिका दी गयी जिस पर डेढ करोड हस्ताक्षर एकत्रित किये गय थ और जिसम काग्रेस द्वारा अपने चुनाव अभियान के दौरान प्रतिश्रुत प्रगतिशील सामाजिक और आर्थिक रूपातरणो के *कार्यान्वयन की माग की गयी थी।*

१९७३ और १९७४ मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने खाद्य सामग्रियो की जमाखोरी करनवाले मुनाफाखोरो के खिलाफ जन आदोलनो का नेतृत्व किया।

ससद और विधान सभाओ म काग्रेस का समर्थन करने तथा चुनावो मे उसके साथ सीमित सहयोग करन के अलावा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने काग्रेस की नीति म १९६७–१९७२ मे आये वामपथी मध्यममार्गी झुकाव को मजबूत करने के लिए काग्रेस पर दबाव डालने के साधन के रूप म जन-आदोलनो का उपयोग किया।

जन सघर्ष के दौरान वामपथी पार्टियो म एकता स्थापित करन का प्रयास किया गया। अप्रैल १९७४ मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी समाजवादी पार्टी और कुछ स्थानीय वामपथी पार्टियो के प्रतिनिधियो के सम्मेलन म एक सयुक्त न्यूनतम कार्यक्रम स्वीकार किया गया। वामपथी शक्तियो की बढती एकता मई १९७४ मे राष्ट्रीय रलवे मजदूरो की हडताल की सफलता म सहायक हुई जिसम १५ लाख से अधिक रेल कर्मचारियो न भाग लिया था।

विजयवाडा (आध्र प्रदेश) मे २७ जनवरी से २ फरवरी १९७५ तक हुई भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की १०वी काग्रेस ने १९७१ म नौवी काग्रेस के बाद की अवधि म पार्टी के सघर्ष का सिहावलोकन किया और वामपथी तथा जनवादी शक्तियो का सयुक्त मोरचा बनाने के कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की।

लेकिन देश की आतरिक राजनीतिक स्थिति के आगामी विकास ने वामपथी और जनवादी शक्तियो के सुदृढीकरण मे बाधा डाली।

बिगडती आर्थिक स्थिति तथा काग्रेस द्वारा आर्थिक और सामाजिक रूपातरणो के अपने घोषित कार्यक्रम के पूरा न किये जाने से जनता के व्यापक

असतोष के आधार पर विभिन्न राष्ट्रवादी निम्न पूजीवादी और पूजीवादी विपक्षी पार्टियो की सरगरमिया तज हो गयी।

उदाहरण क लिए आध्र प्रदेश म स्थानीय राष्ट्रवादी और पार्थक्यवादी प्रवृत्तिया की बढती ने अपने को १६७२–१६७३ में मुल्की आदोलन म प्रकट किया जिसका लक्ष्य वस्तुत राज्य को विभाजित करना और एक नयी प्रशासकीय इकाई कायम करना था।

१६७४ के प्रारभ म हुए उत्तर प्रदश, ओडिसा और तीन अन्य राज्या तथा केन्द्र शासित प्रदेशो की विधान सभाओ के चुनावो मे काग्रस और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को परस्पर समर्थन सबधी समझौते के फलस्वरूप पुन सफलता प्राप्त हुई थी। लेकिन विपक्षी पार्टियो ने भी काफी सफलताए प्राप्त की थी।

शासक दल की राजकीय क्षेत्र को और मजबूत बनान की नीति और १६७३–१६७४ मे अनाज के व्यापार म राजकीय इजारदारी शुरू करन के उसके असफल प्रयास से असतुष्ट शहरी और ग्रामीण पूजीवादी वर्ग के एक बडे भाग न विपक्ष का समर्थन करना शुरू किया। सरकार द्वारा सैकडो अलाभकर कोयला खानो और कपडा मिलो के राजकीय नियत्रण म लिये जान ने कुछ हलको मे आशकाए उत्पन्न कर दी।

इस परिस्थिति म १६७४ मे प्रसिद्ध जन नेता गाधीजी क अनुयायी और शिष्य और पहले एक प्रमुख समाजवादी जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व म गुजरात और बिहार मे शुरू हुए जन आदोलन ने काग्रेस के लिए गभीर खतरा पैदा कर दिया। इस आदोलन ने केन्द्र और राज्यो मे काग्रस की सत्ता का तख्ता उलट देने के लिए सपूर्ण क्राति' की आवाज उठायी। गुजरात म व्यापक उत्पात के परिणामस्वरूप विधान सभा भग कर दी गयी और राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। बिहार मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रादेशिक सगठन तथा बाद में काग्रेस के सक्रिय कदमो ने सरकार को खतर से बचा लिया।

जयप्रकाश नारायण और उनका समर्थन करनेवाली विपक्षी पार्टिया के नेतृत्व मे सरकारविरोधी आदोलन की इस पृष्ठभूमि मे दक्षिणपथी (राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ, आनद मार्ग) और वामपथी (नक्सलवादी) उग्रवादी सगठनो और समूहो की गतिविधिया तेज हो गयी। जनवरी १६७५ म बिहार म आतकवादियो ने तत्कालीन रेल मत्री ललितनारायण मिश्र की हत्या कर दी और दिल्ली म उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ए० एन० राय की हत्या करने का प्रयास किया गया।

गुजरात म मोरारजी देसाई की भूख हडताल और जन आदोलन के परिणामस्वरूप काग्रेस सरकार भग कर दी गयी और राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। १९७५ म गुजरात विधान सभा के मध्यावधि चुनावो म जयप्रकाश नारायण की पहल पर गठित जन मोर्चा जिसम मुख्य विरोधी पार्टिया सयुक्त थी, विजयी हुआ। गुजरात क चुनावो न दिखा दिया कि विपक्ष की सयुक्त शक्तिया काग्रेस की सत्ता क लिए एक गभीर खतरा थी।

स्वय शासक दल म जयप्रकाश नारायण स साथ समझौते के समर्थको की सख्या बढती गयी। युवा तुर्को —चद्रशेखर मोहन धारिया और अन्य वामपथियो क एक गुट—न इस नीति का विशेष रूप से समर्थन किया। १९७५ म उन्होन काग्रेस छोड दी।

जून १९७५ म इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा १९७१ क चुनाव म रायबरेली म इदिरा गाधी क प्रतिद्वद्वी की चुनाव याचिका की सुनवायी क बाद, जिसन उन पर चुनाव म भ्रष्टाचार का आरोप लगाया था निर्णय सुनाय जान क बाद देश की काग्रेसविरोधी शक्तियो न प्रधानमत्री इदिरा गाधी पर खुला आक्रमण शुरू कर दिया। उच्च न्यायालय न अपन निर्णय म इदिरा गाधी के चुनाव को रद्द कर दिया (जिसन उन्ह प्रधानमत्री पद से भी वचित कर दिया) तथा उन्ह छ साल क लिए कोई भी निर्वाच्य पद ग्रहण करन क लिए अनर्ह कर दिया। इदिरा गाधी न इस निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय मे अपील की, जिसन पहले एक अस्पष्ट निर्णय दिया और इलाहाबाद उच्च न्यायालय क निर्णय क कार्यान्वयन को केवल स्थगित कर दिया।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी सहित मुख्य विरोधी पार्टियो न इदिरा गाधी क इस्तीफे की माग की। पूरे देश म सविनय अवज्ञा आदोलन करन का निर्णय किया गया और जयप्रकाश नारायण न सैनिक और पुलिस कर्मचारियो का सरकारी आदेशो को न मानन का आह्वान किया।

भारत के आतरिक राजनीतिक विकास मे एक युगात आपात काल और १९७७ के चुनाव

विपक्ष की कार्रवाइयो क जवाब म २६ जून को भारत के राष्ट्रपति फखरुद्दीनअली अहमद न, जो वी० वी० गिरि के कार्यकाल की समाप्ति पर अगस्त १९७४ मे राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित हुए थ सपूर्ण देश म आपात स्थिति की घोषणा कर दी। ६०० से अधिक विपक्षी नताओ को गिरफ्तार

कर लिया गया। १९७५ में विपक्षी दलों और जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन के ३० हजार से अधिक कार्यकर्ताओं को जेलों में बंद कर दिया गया। ४ जुलाई को २६ उग्रवादी संगठनों (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, आनंद मार्ग, नक्सलवादी आदि) पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

१ जुलाई १९७५ को अपने रेडियो भाषण में इंदिरा गांधी ने प्रगतिशील सामाजिक और आर्थिक रूपांतरणों के २०-सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की जो मूलतया भूमि सुधार को तेज करने, खेतिहर मजदूरों की स्थिति में सुधार करने, ऋणदासता आदि का उन्मूलन करने की ओर निर्देशित था।

इंदिरा गांधी के विपक्ष पर प्रहार के समय ही आर्थिक स्थिति में सुधार आने लगा था। १९७४–१९७५ की अभूतपूर्व उपज (१२ करोड़ टन अनाज) के बाद सरकार १९७४ के शरद से १९७६ के वसंत तक मुद्रास्फीति और थोक तथा खुदरा कीमतों में वृद्धि को रोके रख सकी।

शासक दल के नेताओं ने आपात स्थिति को दक्षिणपंथियों के खतरे के विरुद्ध निर्देशित कार्रवाई कहा। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने सरकार के कदमों के समर्थन की घोषणा की और २०-सूत्री कार्यक्रम के क्रियान्वयन में कांग्रेस के साथ सक्रिय सहयोग करने लगी।

सरकारी आंकड़ों के अनुसार १९७६ के शरद तक दस लाख हेक्टर से अधिक फाजिल जमीन का अधिग्रहण कर लिया गया और छ लाख हेक्टर जमीन का भूमिहीन अथवा कम जमीनवाले किसानों में वितरण किया गया था। लगभग ७० लाख खेतिहर मजदूरों को मकान बनाने के लिए जमीन दी गयी। राष्ट्रपति के अध्यादेश द्वारा ग्रामीण निर्धनों से ऋणों की वसूली पर रोक लगा दी गयी और बंधुआ मजदूरी गैर-कानूनी घोषित कर दी गयी।

किसान सभा और खेत मजदूर संघ ने १९७५–१९७६ में २०-सूत्री कार्यक्रम के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए सत्याग्रह की। किन्तु [illegible] से पता चला कि अधिकांश ग्रामीण निर्धनों की स्थिति घोषित कार्यवाइयों से प्रभावित नहीं हुई है।

धीरे धीरे आपात स्थिति के नकारात्मक परिणाम प्रकट होने लगे। सरकार ने औद्योगिक विराम-संधि संबंधी निर्णय को लागू नहीं किया और तनख्वाहों तथा मजदूरी में कटौती आम हो गयी। इसके साथ ही हड़तालों पर प्रतिबंध लगा दिया गया। वेतन में से अनिवार्य जमा योजना के लिए कटौतियों ने फैक्टरी मजदूरों और सरकारी कर्मचारियों में बहुत असंतोष उत्पन्न कर दिया।

सेमर लगाकर प्रेस की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित कर दिया गया। विधायी निकायों की तुलना में कार्यकारिणी निकायों की भूमिका बढ़ गयी।

भारत के उच्चतम न्यायालय ने इंदिरा गांधी केस में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय को अवैध घोषित कर दिया और १९७५ तथा १९७६ में संसद ने दो बार बहुमत से आम चुनाव को एक साल के लिए स्थगित करने का निर्णय लिया। संसद में विपक्ष द्वारा इन निर्णयों की कड़ी आलोचना की गयी।

धीरे धीरे केन्द्र तथा राज्यों में भी दक्षिणपंथी रूढ़िवादी शक्तियां मजबूत होती गयीं। साम्राज्यवादी शक्तियां व समर्थकों ने देश में विद्यमान आर्थिक तथा सामाजिक जटिलताओं का अपने हित में उपयोग करने का प्रयास किया।

शासक दल के अंदर वामपंथी मध्यममार्गी शक्तियों का प्रभाव कमजोर हो गया, विशेषकर कांग्रेस समाजवादी मंच के भंग होने के बाद।

कुछ अप्रत्याशित रूप से जनवरी १९७७ में संसदीय चुनावों की घोषणा की गयी। यह निर्णय आंतरिक और बाह्य कारकों को देखते हुए लिया गया था। कांग्रेस के नेता स्पष्टतया २० सूत्री कार्यक्रम के सकारात्मक परिणामों १९७६ में अर्थव्यवस्था की अनुकूल स्थिति तथा उन बड़े व्यापारियों के समर्थन को अपने लाभ के लिए इस्तेमाल करने की कोशिश कर रहे थे जिनके हित में १९७३ के बाद आर्थिक गतिविधियों पर सरकारी नियंत्रण को उदार बनाने की सुसंगत नीति का पालन किया जा रहा था।

तथापि आपात स्थिति के नकारात्मक पहलुओं ने मतदाताओं के एक बड़े भाग के कांग्रेस से विरत होने का पथ प्रशस्त कर दिया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को प्राप्त स्थानों की संख्या भी कम हुई क्योंकि कांग्रेसविरोधियों ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के विरुद्ध व्यापक प्रचार अभियान चलाकर पार्टी की नीतियों को शासक दल की नीतियों से अभिन्न दिखलाने की कोशिश की।

मुख्य विरोधी पार्टियां (कांग्रेस ओ०, भारतीय लोक दल, जन संघ, समाजवादी पार्टी और चंद्रशेखर के नेतृत्व में एक समाजवादी गुट) एक संयुक्त चुनाव मोरचा (जनता पार्टी) बनाने में सफल हो गयी थीं। चुनाव के ठीक पहले एक प्रभावशील केन्द्रीय मंत्री जगजीवन राम के नेतृत्व में एक समूह ने कांग्रेस छोड़ दी और एक नयी पार्टी – जनतांत्रिक कांग्रेस (सी० एफ० डी०) बना ली और इस पार्टी तथा मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने भी चुनावों में जनता पार्टी के साथ समझौता कर लिया।

मार्च, १९७७ के संसदीय चुनावों में जनता पार्टी के मोरचे की विजय

हुई जिसे लोक सभा म पूण बहुमत प्राप्त हो गया। इदिरा गाधी ने इस्तीफा दे दिया आर मोरारजी देसाई प्रधानमत्री बने।

मई के प्रारभ म जनता मोरचे की सघटक पार्टिया तथा जनतात्रिक काग्रेस आधिकारिक रूप मे जनता पार्टी मे विलीन हो गयी। चद्रशेखर इसके अध्यक्ष बने।

उसी वष गरमियो म नौ राज्यो की विधान सभाओ क चुनावो मे जनता पार्टी तथा उसके साथ मोरचा बनानेवाले अन्य दलो – पश्चिम बगाल मे मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी पजाब मे अकाली दल और तमिलनाडु मे द्रविड मुन्नेत्र कडगम – की – हालाकि अपक्षाकृत कम बहुमत से – विजय हुई। फखरुद्दीनअली अहमद के स्थान पर जुलाई, १९७७ मे जनता पार्टी के उम्मीदवार नीलम सजीव रेड्डी भारत के नये राष्ट्रपति चुने गये।

राजनीतिक शक्तियो के नये समीकरण

देश ने अब राजनीतिक जोड तोड के एक जटिल दौर मे प्रवेश किया। काग्रेस के भीतर इदिरा गाधी के समर्थको और विरोधियो के मतभेद बढकर इस हद तक पहुच गय कि जनवरी, १९७८ मे पार्टी बाकायदा दो दलो मे बट गयी जिनमे से एक की अध्यक्ष इदिरा गाधी थी और दूसर के अध्यक्ष ब्रह्मानद रड्डी (और बाद मे स्वर्णसिह) थे। नयी शासक पार्टी म भी विघटन की प्रवृत्तिया पैदा हो गयी। राजनीतिक दष्टि से बिखरी हुई वामपथी शक्तिया – भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और काग्रेस जनता तथा अन्य पार्टियो मे विद्यमान वामपथी तत्व – परस्पर समझ और सहयोग के उपाय ढूढने लगी।

अगस्त १९७७ मे जनता पार्टी की कायकारिणी ने अपनी बैठक म भारत मे समाजवादी समाज ' के निर्माण के लिए काम करन के अपन मतव्य की पुष्टि की। आपात्काल म जो प्रतिबध लगाय गये थे उन्हे हटा दिया गया बहुत से नक्सलवादियो को राजक्षमा प्रदान कर कारावासा से मुक्त कर दिया गया। कितु इसके साथ ही प्रतिक्रियावादी हिंदू और मुस्लिम साप्रदायिक शक्तिया भी पुन सक्रिय हो गयी। भारतीय समाज के सबसे निम्न दरिद्र वर्ग – हरिजनो – पर जमीदारो व कुलको (सपन्न किसानो) के अत्याचारो मे वृद्धि होन लगी।

औद्योगिक और खेतिहर मजदूरो के प्रदर्शनो हडतालो, आदि का दमन के लिए पुलिस ने कई बार बलप्रयोग किया।

निरन्तर बढते सामाजिक और वर्गीय विरोधो के वातावरण मे १६७८ के आरभ मे छ राज्यो की विधान सभाओ के चुनाव हुए जिनके फलस्वरूप एक और राज्य – असम – मे भी जनता पार्टी की सरकार बनी। कुल मिलाकर चुनावो ने भारत के सघात्मक ढाचे के भीतर विद्यमान बहुकेंद्रिक सत्ता प्रणाली की पुष्टि की २२ राज्यो मे से १० (मुख्यतया उत्तर के हिन्दीभाषी राज्यो) मे जनता पार्टी ३ राज्यो (महाराष्ट्र, आध्र प्रदेश तथा कर्णाटक) मे काग्रेस (दोनो धडो), ३ राज्यो मे वामपथी सयुक्त मोर्चो (पश्चिम बगाल तथा त्रिपुरा मे मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व और केरल मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी व काग्रेस के नेतृत्व मे) और शेष राज्यो मे स्थानीय (प्रादेशिक) पार्टियो की सरकार थी। अखिल भारतीय स्तर पर दो पार्टी प्रणाली (जनता व काग्रेस) को बनाये रखने की प्रवृत्ति नजर आती थी। ऐसी स्थिति मे दोनो मुख्य बूर्जुआ पार्टियो के आपसी सघर्ष मे अनेक नाटकीय मोड आये।

कम्युनिस्ट आदोलन मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के बीच कई वैचारिक व राजनीतिक प्रश्नो पर वाद विवाद जारी रहा। किंतु इसके साथ ही अप्रैल १६७८ मे हुई भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की ग्यारहवी और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की दसवी काग्रेसो के बाद दोनो पार्टियो मे मेहनतकशो के जन सगठनो मे मिल जुलकर काम करने के बारे मे सहमति हो गयी। इसका ट्रेड यूनियनो और किसान सभा के काम पर अच्छा असर पडा। नवबर, १६७८ मे दिल्ली मे लाखो मजदूरो के विराट जलूस ने ससद के सामने प्रदर्शन किया जिसका आयोजन सभी प्रमुख ट्रेड यूनियन सगठनो ने किया था।

जनता पार्टी का पचमेल वर्गीय स्वरूप – काग्रेस की भाति जनता पार्टी भी विभिन्न और प्राय एक दूसरे से सर्वथा विरोधी हितो (बड़े बूर्जुआजी छोटे व्यापारियो तथा उद्यमपतियो देहाती उच्च वर्गो और कतिपय जनवादी तबको) का प्रतिनिधित्व करनेवाले लोगो की पार्टी थी – उसके भीतर सघर्ष के बढने मे सहायक हो रहा था। उसकी आतरिक स्थिति इसलिए भी जटिलतर बनती जा रही थी कि १६७७ के आरभ मे जिन विभिन्न घटको के एकजुट होने के परिणामस्वरूप इस पार्टी का जन्म हुआ था उनके बीच सरकार और पार्टी सगठन मे प्रभाव के प्रश्न को लेकर रस्साकशी शुरू हो गयी थी। मुख्य प्रतिद्वद्वी घटक भूतपूर्व भारतीय लोक दल जिसके नेता चरणसिंह और भूतपूर्व दक्षिणपथी समाजवादी राजनारायण थे और जन सघ थे जिसका नेतृत्व अटलबिहारी वाजपेयी और लालकृष्ण अडवाणी कर रहे थे। जनता पार्टी के अन्य

घटकों (सगठन काग्रेस, समाजवादी जगजीवन राम के नेतृत्व मे व
फार डेमोक्रेसी आदि) की जोड-तोड न शासक पार्टी के भीतरी सघर्
घटाने के बजाय उलटे और उग्र ही बनाया।

जनता पार्टी के घटकों के पारस्परिक झगडा की सबसे आम और
अभिव्यक्तिया राज्यो मे देखने मे आयी। जनता पार्टी द्वारा शासित र
(विशेषत उत्तर प्रदेश, बिहार और हरियाणा) के मन्त्रिमडलीय सकट मु
पार्टी के भीतरी सघर्ष के ही परिणाम थे। इस सबसे जहा प्रशासन के सा
रूप से कार्य करने मे गभीर अवरोध उत्पन्न हुए, वहा भारतीय जनमत
आखो म जनता पार्टी की साख भी गिरी। समन्वित आर्थिक नीति पर
किया जाना कठिनतर बनता गया।

जनता पार्टी द्वारा घोषित आर्थिक कार्यक्रम मे मुख्य जोर कृषि और
उद्योगो के विकास पर दिया गया था। सारे देश मे उस पर व्यापक व
चली। आर्थिक प्रश्नो पर जनता पार्टी के भीतर छिडा सघर्ष देश की जनसु
आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक समस्याओ की समस्त पचीदगी
प्रतिबिंबित करता था। किंतु सवा दो वर्ष के शासनकाल म जनता पार्टी अ
भिन्न कार्यक्रम के बावजूद अधिकाश मामलो मे पहले से चली आ रही आर्
नीति पर ही अमल करती रही। इसके साथ साथ विभिन्न सामाजिक अ
राजनीतिक हितो का प्रतिनिधित्व करनेवाले मन्त्रियो के वक्तव्य भी और व
भी स्पष्ट विसगतिया प्रकट करत थे।

जनता पार्टी के भीतर और उसकी केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारो
अपकेंद्री प्रवृत्तियो के बढने के कई कारण थे। सबसे पहला कारण ता प
का पचमेल वर्गीय स्वरूप था। इस दृष्टि से वह काग्रेस, विशेषत छठ
सातवे दशको की काग्रेस स मिलती जुलती थी। किंतु काग्रेस के विपर
उसमे विभिन्न सामाजिक और वर्गीय हितो का प्रतिनिधित्व करने के
सगठनात्मक रूप से सुगठित घटक सक्रिय थ। दूसरे, जिन पार्टिया न मिल
जनता पार्टी बनायी थी वे वैचारिक और राजनीतिक दृष्टि से आपस
बहुत भिन्न थी और उनम से हर किसी की अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक प
परपरा थी। तीसरे वे अधिकाशत सार्वदेशिक नहीं, अपितु प्रांतीय अ
कुछ मामलो मे तो किन्ही खास जातियो तथा तबको की ही पार्टिया थी
चौथे, इन सब कारणो से वैयक्तिक सबधो की भूमिका, पार्टी के नेतृत्वमड
म विद्यमान विभिन्न गुटो के बीच केंद्रीय तथा प्रादेशिक स्तर पर पार्टी त
सरकारी तत्र म सत्ता के लिए चल रहे सघर्ष की भूमिका बढ गयी थी

जुलाई १९७९ मे ममद क अधिवशन T उदघाटन के ठीक पहले राज नारायण क नतृत्व मे कुछ ममद-मदस्यो न जनता पार्टी स त्यागपत्र देकर 'जनता (सेक्यूलर) नाम म एक नयी पार्टी बना ली। यह जनता पार्टी क पूर्ण विभाजन व विघटन का सकेत था। चरणसिह ममत कई मत्रियो न देसाई मत्रिमडल त्याग दिया और जनता (स०) म शामिल हो गये। चरणसिह को नयी पार्टी का नेता बनाया गया। तब तक कर्णाटक के मुख्यमत्री देवराज अर्स क नतृत्व मे इदिरा काग्रेस का एक प्रभावशाली गुट भी अपनी पार्टी से निकलकर स्वर्णसिह के नतृत्ववाली काग्रेस – काग्रेस (स्व०) – म शामिल हो गया था। ससद मे बहुमत खो देन क कारण मोरारजी देसाइ सरकार को त्यागपत्र दे देना पडा। केंद्रीय ससद म शक्तियो के नये पुनसमूहन के परिणाम स्वरूप स्वतत्र भारत के इतिहास म केंद्र म पहली बार एक सयुक्त सरकार स्थापित हुई, जिसमे जनता (स०) और काग्रस (स्व०) शामिल थी। चरणसिह प्रधानमत्री और काग्रेस (स्व०) के ससदीय दल के नेता यशवतराव चह्वाण उपप्रधानमत्री बने। जनता पार्टी का जो अब विपक्ष म आ गयी थी, नतृत्व मोरारजी देसाई के स्थान पर जगजीवन राम न थाम लिया।

ससदीय चुनाव और काग्रेस (इ०) का पुन सत्ता मे आना (जनवरी, १९८०)

भारत क इतिहास मे जनता पार्टी के सत्तारूढ होन और दो वर्ष से कुछ अधिक तक केंद्र तथा कतिपय राज्यो म शासन की बागडोर उसके हाथो मे रहन का महत्व यह है कि ये घटनाए एक ओर तो सत्ता के राजनीतिक ढाचे क जटिलीकरण की प्रक्रिया को व्यक्त करती थी और दूसरी ओर विभिन्न दलीय व राजनीतिक शक्तियो के उस जटिल तथा दीर्घ पुनर्विभाजन मे एक नये चरण का उद्घाटन करती थी, जो मुख्यत इसलिए अपरिहार्य हो गया था कि छठे और सातवे दशको मे विकसित बूर्जुआ पार्टी प्रणाली भारत के सामाजिक और वर्गीय ढाचे मे आये परिवर्तनो के बोझ से चरमराने लगी थी।

सयुक्त सरकार को ससद मे जनता पार्टी के सिवा अन्य मुख्य राजनीतिक दलो से समर्थन का आश्वासन मिला था। किंतु उसी वर्ष अगस्त म जब ससद मे नयी सरकार मे विश्वास का प्रस्ताव पेश होना था तो इदिरा गाधी ने घोषणा की कि काग्रेस (इ०) उसका समर्थन नही करेगी। ससद मे अल्पमत मे रह जाने के बावजूद सयुक्त सरकार राष्ट्रपति द्वारा घोषित और जनवरी,

१६८० के लिए नियत मध्यावधि ससदीय चुनावो तक कार्य करती रही। ससद भग कर दी गयी।

१६७६ के अतिम चार मास चुनावी सरगर्मियो के महीने थे। सितबर मे ही स्पष्ट हो गया कि असली सघर्ष तीन मुख्य शक्तियो मे होगा सत्तारूढ गठबधन जनता पार्टी और इदिरा काग्रेस।

जनता (से०) का नाम बदलकर लोक दल हो गया। उसके महासचिव, भूतपूर्व समाजवादी नेता मधु लिमये ने सत्तारूढ गठबधन को सभी वामपथी तथा जनवादी शक्तियो का गुरुत्वाकर्षण केद्र बनाने की कोशिशे की। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और कतिपय अन्य वामपथी दल चुनावो म लोक दल – काग्रेस (अ०) – देवराज अर्स के अध्यक्ष चुने जाने के बाद से काग्रेस (स्व०) इसी नाम से जानी जाने लगी थी – गठबधन का कुछ हद तक साथ देने को सहमत हो गये। किंतु इस बीच अपने भीतरी सघर्ष के कारण सत्तारूढ गठबधन की हालत दिनोदिन बदतर होती जा रही थी।

काग्रेस (अ०) और लोक दल के असमाधित मतभेदो के कारण गठबधन सयुक्त चुनाव घोषणापत्र न जारी कर सका। काग्रेस (अ०) के कुछ मत्रियो ने जिनमे उसके भूतपूर्व अध्यक्ष (१६७८) ब्रह्मानद रेड्डी भी शामिल थे, सरकार से त्यागपत्र दे दिया।

उधर जनता पार्टी के भीतर भी विभिन्न घटको का आपसी सघर्ष बढता जा रहा था।

चुनाव अभियान के दौरान ही स्पष्ट हो गया कि भावी सरकार सभवत काग्रेस (इ०) ही बनायेगी। फलस्वरूप बहुत बडी सख्या मे लोग (विशेषत दक्षिणी राज्यो म) काग्रेस (अ०) छोडकर काग्रेस (इ०) म शामिल होन लगे।

इदिरा गाधी की पार्टी न राजनीतिक स्थायित्व और केद्र तथा राज्यो मे कार्यसक्षम प्रशासन की पुनर्स्थापना को अपने चुनाव प्रचार का मुख्य मुद्दा बनाया। वास्तव मे मार्च १६७६ मे देश की आर्थिक व राजनीतिक हालत लगातार बिगडती गयी थी। १६७८–१६७६ के कृषि वर्ष म अनाज व दालो की अभूतपूर्व पैदावार (१३,०५ ०० ००० टन) होने के बावजूद अधिकाश आबादी की प्रति व्यक्ति खाद्यान्न खपत घट रही थी। देश का बहुत बडा भाग सूखे की चपेट म आया हुआ था। मुख्यत बिजली तथा ईंधन की कमी और रेल परिवहन के असतोषजनक कार्य के कारण औद्योगिक उत्पादन घट गया था। अधिकाश शहरी और देहाती आबादी के लिए खुदरा दामो म भारी वृद्धि के बोझ को झेल पाना दूभर हो गया था। आर्थिक कठिनाइयो की इस

पृष्ठभूमि मे बड़े पूंजीपति व्यापारी तथा सरकारी सूत्र फूल फल रहे थे।

देश मे सामाजिक तनाव की बढ़ती अभिव्यक्ति हड़ताल आंदोलन और देहात के विभिन्न तबको के आपसी संघर्षो की वृद्धि मे ही नही धार्मिक जातीय और साम्प्रदायिक आधार पर होनेवाली तरह-तरह की टक्करो की प्रायिकता मे भी देखी जा सकती थी। औद्योगिक नगर जमशेदपुर और दिल्ली मे बहुत बड़े हिंदू मुस्लिम दंगे हुए जिन्हे साम्प्रदायिक तत्वो ने भड़काया था। इस प्रकार के दंगे उन इलाको मे भी होने लगे जहा नाना सम्प्रदायो के लोग अब तक पूर्ण सौहार्द के वातावरण मे रहते आये थे। साम्प्रदायिक कलह की आग कई विश्वविद्यालय केंद्रो–विशेषत अलीगढ़ और जम्मू–मे भी फैल गयी थी। असम और अन्य उत्तर पूर्वी राज्यो मे विदेश समर्थित खास तौर से चीन-समर्थित, राष्ट्रवादी और पृथकतावादी तत्वो की सरगर्मिया काफी बढ़ गयी थी।

इस काल मे भारत के घरेलू राजनीतिक विकास की एक महत्वपूर्ण सकारात्मक घटना यह थी कि मजदूर तथा किसान-आंदोलनो मे दोनो कम्युनिस्ट पार्टिया अधिकाधिक मिल-जुलकर काम करने लगी थी। १९७९ की गरमियो मे अखिल भारतीय किसान सभा का बाईसवा अधिवेशन हुआ जिसमे किसान मोरचे ने भारतीय देहात के बदलते हुए सामाजिक व आर्थिक वातावरण का लेखा जोखा किया। अखिल भारतीय खेत मजदूर संघ ने अपने माग पत्र के समर्थन मे एक जबरदस्त अभियान छेड़ा और बाद मे यह माग पत्र संसद के सामने पेश किया गया।

सितंबर १९७९ मे केरल के पचायती चुनावो ने वामपंथी शक्तियो के बढ़ हुए प्रभाव का प्रदर्शन किया। उनमे सर्वाधिक सफलता मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को प्राप्त हुई थी। जनवरी, १९८० मे केरल मे विधान सभा चुनाव भी हुए जिसके फलस्वरूप वहा सयुक्त वामपथी मोरचे की सरकार बनी। इस सरकार मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी दोनो ही शामिल है। केरल की घटनाओ ने इस प्रदेश की राजनीति मे वामपथियो की प्रमुखता की परपरा को और आगे बढाया है।

जनवरी, १९८० मे भारत मे हुए आम चुनावो मे इदिरा गाधी और उनकी पार्टी ने भारी बहुमत से विजय प्राप्त की। लोक सभा के ५२४ स्थानो मे से (वैसे कुल स्थान ५४४ थे किंतु कुछ निर्वाचन क्षेत्रो मे, विशेषत असम मे, तनावपूर्ण राजनीतिक स्थिति के कारण चुनाव नही हुए थे) काग्रेस (इ०) ने ३५१ स्थान पाये। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को ३५ भारतीय

कम्युनिस्ट पार्टी को ११ लोक दल को ४१ जनता पार्टी को ३१ और काग्रेस (अ०) को १३ स्थान मिले। शेष ४२ स्थान प्रादेशिक पार्टियो और निर्दलियो न जीते। इस प्रसग म यह उल्लेखनीय है कि केरल, बगाल और त्रिपुरा म इन चुनावो म वामपथी दलो ने भारी विजय प्राप्त की। वामपथी दल जिनम दोनो कम्युनिस्ट पार्टिया भी शामिल है, सयुक्त ससदीय विपक्ष तो न बना सके किंतु ससद म समन्वित ढग से कार्य करने पर अवश्य सहमत हो गय हैं।

इदिरा गाधी पुन भारत की प्रधानमत्री बनी। लोक सभा चुनावो म काग्रेस (इ०) की विजय के कई कारण थ, जैसे अधिकाश निर्वाचको का जनता पार्टी और चरणसिह की सरकार की नीति को देश की बिगडती आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति के लिए उत्तरदायी मानना, जनता तथा लोक दल काग्रेस (अ०) सरकारो के अदरूनी सघर्ष के कुप्रभाव से प्रशासन की कार्य कुशलता घटना इदिरा गाधी की भूमिका, जो एक राजनीतिक नता के रूप मे अपन प्रतिद्वद्वियो स कही अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई थी, सामान्य बहुमत द्वारा निर्वाचन की प्रणाली।

सत्ता मे आने के पहले तीन महीनो तक इदिरा गाधी देश मे अपनी राज नीतिक स्थिति को सुदृढ बनाने मे व्यस्त रही। मार्च मे राष्ट्रपति सजीव रेड्डी ने प्रधानमत्री के परामर्श स ९ राज्यो मे, जहा ससद मे पराजित विपक्षी दलो की सरकार थी विधान सभाओ को भग करके राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। गरमियो मे इन सभी राज्यो – पजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश विहार, ओडिसा, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडू म विधान सभा चुनाव हुए। तमिलनाडू को छोडकर, जहा अन्ना द्रविड मुन्नेत्र कडगम तथा दोनो कम्युनिस्ट पार्टियो ने चुनाव मिलकर लडा और जीता, काग्रेस (इ०) को इन चुनावो मे असाधारण विजय प्राप्त हुई।

जनवरी चुनावो मे काग्रेस (इ०) की सफलता के बाद स विपक्ष की बूर्जुआ पार्टिया मे और भी बिखराव आया। १९७७ म जिन राजनीतिक सगठनो ने मिलकर जनता पार्टी बनायी थी, उनम शनै शनै फिर स्वतत्र आधार पर काम करने की प्रवृत्ति बढने लगी। लोक दल और जनता पार्टी दोनो ही अब दो-दो पार्टियो मे बट गयी है। राजनारायण गुट न लोक दल म अलग होकर जनता (स०) को पुनर्जीवित किया है और जनता पार्टी म भी एक गुट अलग होकर भारतीय जनता पार्टी क नाम से काम करन लगा है, जो वास्तव मे भूतपूर्व जन सघ ही है।

पहले की ही भाति आठवे दशक के मध्य मे गण प्रजातत्रीय बागलादेश और पाकिस्तान के साथ सबध भारत की विदेश नीति का केन्द्र बने रहे। भारत ने बागलादेश को औद्योगिक और कृषि उत्पादन की बहाली तथा भारत से स्वदेश लौटनेवाले लाखो शरणार्थियो के बसाने मे सहायता के लिए विभिन्न प्रकार के मालो साधनो खाद्य सामग्रियो आदि का प्रदाय करके भारी भौतिक सहायता प्रदान की। अधिकाश सहायता निशुल्क थी इसके अलावा भारत ने उसे ऋण प्रदान किये, जिनमे से कुछ दुर्लभ विदेशी मुद्रा मे थे। १६७२ मे हस्ताक्षरित मैत्री सधि और व्यापार समझौते पर चलते हुए दोनो पक्ष अपने आर्थिक और राजनीतिक सबधो को सफलतापूर्वक विकसित करते रहे।

भारत से पाकिस्तानी युद्धबदियो और नजरबद नागरिको की पाकिस्तान को तथा पाकिस्तान मे बागलादेशी नागरिको और बागलादेश मे पाकिस्तानी नागरिको की स्वदेश वापसी के सबध मे भारत पाकिस्तान और बागलादेश के बीच सबधो मे कुछ कठिनाइया पैदा हो गयी। अप्रैल १६७३ मे तीनो श्रेणिया के नागरिको और सैनिको की एकसाथ वापसी के बारे मे भारत-बागलादेश घोषणा जारी की गयी। यह दस्तावेज उसी वर्ष अगस्त मे हुए भारत पाकिस्तान समझौते का आधार बनी। ३० अप्रैल १६७४ को भारत ने ६३ हजार पाकिस्तानी सैनिको और नागरिको की वापसी पूरी कर दी।

फरवरी, १६७४ मे पाकिस्तान द्वारा बागलादेश को मान्यता प्रदान किये जाने से भारत और पाकिस्तान के बीच सबधो के और सामान्यीकरण को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। अप्रैल १६७४ मे दिल्ली मे भारत की पहल पर तीनो देशो के विदेशमत्रियो का सम्मेलन हुआ। इसके परिणामस्वरूप एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए, जिसमे तीनो देशो के बीच सबधो के सामान्यीकरण और उपमहाद्वीप पर स्थायी शाति कायम करने के तरीको को निरूपित किया गया था। सितम्बर, १६७४ मे इस्लामाबाद मे भारत और पाकिस्तान के बीच हुई वार्ता के परिणामस्वरूप उसी वर्ष १५ अक्तूबर मे दोनो देशो के बीच डाक-तार और टेलीफोन सपर्क पुनःस्थापित हो गये। भारत और पाकिस्तान के नागरिको की पारस्परिक यात्राए भी फिर से शुरू हो गयी। दिसम्बर १६७४ मे भारत पाकिस्तान सघर्ष के दौरान १६६५ मे दोनो देशो के बीच लगाये गये व्यापार प्रतिबध को समाप्त कर दिया गया और अनन्तर मई १६७६ मे भारत और पाकिस्तान के बीच राजनयिक सबधो की पुनःस्थापना

पर समझौता हो गया। साथ ही उनके बीच सामान्य वायु, रेल और स्थल सचारो को फिर से शुरू करने पर भी समझौता हो गया। जुलाई, १९७६ म दोनो देशो न राजदूतो का आदान-प्रदान किया।

लेकिन १९७५ मे बागलादेश मे और १९७७ मे पाकिस्तान मे सैनिक सत्ता पर्युत्क्षेपणो ने भारत और पश्चिम तथा पूर्व मे उसके मुख्य पडोसिया क बीच सबधो के और आगे विकास को उलझा दिया।

पाकिस्तान और बागलादेश के अलावा भारत न अन्य पडोसी एशियाई राज्यो के साथ भी सबधो को मजबूत और विकसित करन का प्रयास किया। १९७३ मे नेपाल और श्रीलका के साथ शिखरस्तरीय यात्राओ का आदान प्रदान हुआ। जनवरी, १९७४ मे श्रीलका मे रहनेवाले भारतीय मूल के १ ५ लाख राज्यहीन व्यक्तियो की नागरिकता पर श्रीलका के साथ समझौता हुआ जिसके अनुसार उनमे स आधे को भारतीय नागरिकता और बाकी आधे को श्रीलका की नागरिकता प्राप्त हुई। उसी वर्ष बागलादेश और बर्मा क साथ स्थल सीमाए तथा इडोनेशिया और श्रीलका के साथ समुद्री सीमाए निर्धारित की गयी।

चीन के साथ अपने सबधो का न्यूनाधिक उल्लेखनीय सुधार करने मे भारत असफल रहा जो १९६२ मे भारत चीन सीमा सघर्ष के बाद से बिगडे हुए थे। भारतीय राजनय के इस दिशा मे किये गये प्रयासो की पेकिंग म उचित अनुक्रिया नही हुई। भारतीय सीमा के निकट चीनी प्रदेश पर चीनी फौजी अड्डो का अस्तित्व, जिनमे नागालैड और उत्तर पूर्वी भारत के दूसर क्षेत्रो के सक्रिय विद्रोहियो को प्रशिक्षित और हथियारबद किया जाता था, दोनो देशो के बीच सबधो के सामान्यीकरण मे बाधक था। फिर भी अप्रैल १९७६ म उनके बीच राजदूत स्तर पर राजनयिक सबधो की पुनर्स्थापना पर समझौता हो गया। लेकिन इससे समग्र रूप मे भारत चीन सबधो म कोई खास सुधार नही आया।

पहले की ही भाति आठव दशक मे भी अतर्राष्ट्रीय सबधो क क्षत्र मे भारत को गुट-निरपक्ष देशो के समूह म एक प्रमुख स्थान प्राप्त था। भारतीय राजनय उपनिवेशवाद, नव उपनिवेशवाद, नसलवाद, वर्ण भेद और साम्राज्य वाद क खिलाफ सक्रिय दृष्टिकोण अपनाते हुए और वियतनाम दक्षिण अफ्रीका तथा इस्राइली आक्रमण के शिकार अरब देशो के जनगण को समर्थन देते हुए नेहरू नीति पर चलता रहा।

सकारात्मक तटस्थता की अपनी परपरागत नीति का अनुसरण करत हुए भारत तनाव शैथिल्य, स्थिर और टिकाऊ शाति की स्थापना और आम

निरस्त्रीकरण का समर्थन करता रहा। अतर्राष्ट्रीय मचो विशेष रूप से सयुक्त राष्ट्र सघ और उसके विशेषीकृत अभिकरणो मे जब कभी भी तीसरी दुनिया के देशो के आर्थिक और सामाजिक विकास विकसित और विकासमान देशो के बीच व्यापारिक और आर्थिक सबधो तथा नयी विश्व आर्थिक व्यवस्था की स्थापना स सबद्ध प्रश्नो पर विचार किया गया, भारत न अपनी आवाज उठायी। उसने अफ्रीका और एशिया के देशो के बीच आर्थिक और व्यापारिक सबधो के विकास का समर्थन किया। इस नीति के अनुसार १६७३–१६७४ मे भारत और ईरान के बीच व्यापार मे काफी वद्धि हुई जब ईरान ने भारत को एक विशेष ऋण उपलब्ध करके उसे भेजे जानेवाले कच्चे तेल की मात्रा मे काफी बडी वृद्धि की। दोनो देशो के बीच शिखर स्तर पर राजकीय यात्राओ का आदान प्रदान भी हुआ।

सकारात्मक तटस्थता की नीति का पालन करते हुए भारत गुट निरपेक्ष देशो के आदोलन मे सक्रिय भाग लेता रहा। प्रधानमत्री इदिरा गाधी ने अल्जीयर्स (१६७३) और कोलम्बो (१६७६) मे गुट निरपेक्ष देशो के सम्मेलनो मे भाग लिया। १६७६ मे दिल्ली मे आयोजित विकासमान देशो के मत्रियो के सम्मेलन का मुख्य विषय विकासमान देशो मे जन सपर्क साधनो पर पश्चिम के प्रभाव को कमजोर करन के लिए समाचार एजेसी पूल की स्थापना था।

सरकार और भारतीय जनता के व्यापक हिस्सो ने हिन्द महासागर मे दिएगो गार्सिया द्वीप पर अमरीकी फौजी अड्डे के निर्माण और विस्तार का तीव्र विरोध करना जारी रखा। भारत हिन्द महासागर को विदेशी फौजी मौजूदगी से मुक्त शाति क्षेत्र मे परिवर्तित करना चाहता था।

दिएगो गार्सिया समस्या ने निस्सदिग्ध रूप मे भारत अमरीकी सबधो को पेचीदा बनाया जो १६७१ मे भारत पाकिस्तान सघर्ष के दौरान काफी बिगड गये थे। लेकिन १६७ मे विशेषकर भारत को आर्थिक सहायता पर अमरीकी अवरोधन की समाप्ति के बाद, दोनो पक्षो न अपन सबधो को सुधारने की कोशिश की। भारत को भेजी गयी अमरीकी खाद्य सामग्रियो के बदले दिल्ली स्थित अमरीकी दूतावास के हिसाब मे सचित अपरिमित भारतीय मुद्रा की समस्या का समाधान आठवे दशक मे भारत अमरीकी सबधो मे एक महत्वपूर्ण मजिल था। कुल २,२५० करोड रुपय की इस राशि के एक बड भाग (दो तिहाई) को खर्च करने का अधिकार भारत को द दिया गया जब कि ५०० करोड रुपये अमरीकी पक्ष के पास रहने थे और शेष रकम की भारत द्वारा विदेशी मुद्रा में अदायगी की जानी थी। अक्तूबर १६७४ म अमरीकी विदेश

मत्री हेनरी किसिजर ने अपनी भारत यात्रा के समय एक सयुक्त आर्थिक तथा वैज्ञानिक सहयोग आयोग की स्थापना के बारे मे समझौते पर हस्ताक्षर किये। लेकिन १९७३ और १९७७ के बीच भारत-अमरीकी सबधो मे इन सकारात्मक परिवर्तनो के बावजूद वे उस स्तर पर नही पहुच पाये, जिन पर वे छठे दशक और सातवे दशक के पूर्वार्द्ध मे थे।

अन्य विकसित पूजीवादी देशो की तरह अमरीका के साथ भी भारत के सबध मुख्यतया पश्चिमी देशो के साथ व्यापारिक और आर्थिक सबध विकसित करने तथा उनसे आर्थिक और वित्तीय सहायता प्राप्त करने मे उसकी दिलचस्पी द्वारा निर्धारित होते है। १९७४ मे भारत को भारत सहायता कसोर्टियम (सहायता सघ) से नये दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध किये गये। आठवे दशक के मध्य मे पूजीवादी दुनिया पर आ पडनेवाले ऊर्जा और वित्तीय सकट ने भारत और विकसित पूजीवादी देशो के बीच अतर्विरोधो को और तेज किया। भारतीय अर्थव्यवस्था मे पश्चिमी देशो के बहुराष्ट्रीय निगमो और जापान जिसने अपने पश्चिमी यूरोपीय और अमरीकी प्रतिद्वद्वियो के साथ भारतीय बाज़ार के लिए सघर्ष तेज़ कर दिया था, की घुसपैठ ने भी यही परिणाम उत्पन्न किया।

१९७४ के अत मे भारत और पुर्तगाल के बीच राजनयिक सबधो की पुन र्स्थापना पश्चिमी यूरोपीय देशो के साथ उसके सबधो मे एक महत्वपूर्ण कदम था। इसके बाद जून १९७५ मे दिल्ली मे एक सधि पर हस्ताक्षर हुए, जिसके अनुसार पुर्तगाल ने गोवा तथा भारत मे अन्य भूतपूर्व पुर्तगाली प्रदेशो पर भारत की प्रभुसत्ता को मान्यता दी।

भारत और पश्चिमी देशो के बीच आर्थिक तथा राजनीतिक सबधो मे जटिलताए बढने के साथ साथ आठवे दशक के पूर्वार्द्ध मे समाजवादी देशो के साथ उसका मैत्रीपूर्ण सहयोग बढता गया। इस अवधि मे समाजवादी शिविर के देशो के साथ भारत के कुल व्यापार तथा आर्थिक वैज्ञानिक, तकनीकी और सास्कृतिक सहयोग तथा उनके राजनीतिक सपर्को का भी विस्तार हुआ। इस अवधि मे भारत और सभी समाजवादी देशो के राज्याध्यक्षो और शासनाध्यक्षो तथा विदेशमत्रियो के बीच राजकीय यात्राओ का आदान प्रदान हुआ।

१९७१ की शाति, मैत्री तथा सहयोग सधि पर आधारित सोवियत भारत सहयोग ने इन वर्षो के दौरान पश्चिमी देशो से भारत की राजनीतिक आर्थिक और सैनिक स्वतत्रता को मजबूत बनाने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

नवम्बर १९७३ मे सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केद्रीय समिति के महासचिव लेओनीद ब्रेज्नेव की भारत यात्रा भारत और सोवियत सघ के

बीच मैत्रीपूर्ण सबधो के विकास म महान ऐतिहासिक महत्व की घटना थी। लेओनीद ब्रेज्नेव की यात्रा के दौरान हस्ताक्षरित सयुक्त भारत सोवियत विज्ञप्ति और दिल्ली मे शिखर-वार्ताओ मे सोवियत सघ और भारत न तनाव शैथिल्य और अतर्राष्ट्रीय वातावरण मे सुधार को जारी रखने क अपने दृढ सकल्प की पुष्टि की और हथियारबदी की दौड समाप्त करने आम निरस्त्रीकरण करन तथा निरस्त्रीकरण पर एक विश्व सम्मेलन आयोजित करन और उपनिवेशवाद तथा नसलवाद के शीघ्र और पूर्ण उन्मूलन का समर्थन किया। अपन एक भाषण मे लेओनीद ब्रेज्नेव ने भारत की विदेश नीति की सराहना करते हुए कहा 'भारत गुट निरपेक्ष आदोलन के प्रवर्तको म एक था और उसन उसक प्रगतिशील सिद्धातो के निरूपण मे योग दिया है। उपनिवेशवाद और नसलवाद क खिलाफ सघर्ष, साम्राज्यवादी फौजी गुटो के विरोध राष्ट्रीय मुक्ति के लिए सघर्षरत जनगण को समर्थन शाति और शातिपूर्ण सहअस्तित्व क सिद्धातो के पालन – इन सबन भारत की विदेश नीति को उचित ही उच्च प्रतिष्ठा प्रदान की है।' *

सयुक्त विज्ञप्ति के अलावा यात्रा क परिणामस्वरूप अन्य महत्वपूर्ण दस्तावेजो – १५ वर्षीय आर्थिक और व्यापार सहयोग पर समझौता गोस्प्लान (सोवियत राजकीय योजना समिति) – योजना आयोग सहयोग पर समझौता और एक कासुली अभिसमय – पर हस्ताक्षर हुए।

लेओनीद ब्रेज्नेव की यात्रा और उसके परिणामो न सोवियत भारत सबधो क उच्च स्तर को प्रतिबिबित किया जो दोना देशो के बीच परपरागत मैत्री पर आधारित ह।

भिलाई और बोकारो मे सोवियत सघ की सहायता स निर्मित लोहा तथा इस्पात कारखाना समूहो के विस्तार और सोवियत सहायता म नय तल शोधन, अलौह धातुकर्म कोयला खनन गैस निष्कर्षण विद्युत ऊर्जा पोत निर्माण और अन्य उद्यमो के निर्माण तथा इलेक्ट्रानिक्स अतरिक्ष अन्वेषण और शातिपूर्ण उद्देश्यो के लिए परमाणविक ऊर्जा क विकास के क्षत्रो म सहयोग की व्यवस्था की गयी।

भारत की बढती वैज्ञानिक क्षमता न सोवियत सघ और भारत क बीच वैज्ञानिक सहयोग के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियो का सुनिश्चित

---

* लेओनीद ब्रेज्नेव 'लेनिन क पथ पर (भाषण तथा लेख १९७२ १९७५) (रूसी म) मास्को, १९७३ पृ० ८७।

किया। १६७४ म भारत न शातिपूर्ण उद्देश्यो क लिए एक भूमिगत नाभिकीय विस्फोट किया। अप्रैल १६७५ म सोवियत राकेट की मदद म पहला भारतीय उपग्रह आर्यभट छोडा गया। सोवियत विज्ञान अकादमी न भारतीय वैज्ञानिको को सोवियत अनुसधान यानो द्वारा चद्रमा मे एकत्रित चाद्र मिट्टी क नमून प्रदान किये। १६७४ और १६७५ म प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानो म सोवियत भारत सहयोग पर दीर्घकालीन समझौते हुए।

सोवियत भारत सहयोग १६७४ और १६७७ क बीच निरतर विकसित होता रहा। १६७५ म सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २५वी काग्रेस म अपन भाषण म लेओनीद ब्रेज्नेव न भारत क सबध मे सोवियत नीति क सिलसिले मे कहा था हम उस महान देश क साथ मैत्री को विशेष महत्व देत है।"*

आठवे दशक क मध्य तक सोवियत सघ भारत का सबसे महत्वपूर्ण व्यापार भागीदार बन गया था।

१६५३ और १६७६ क बीच दोनो देशो क बीच पण्यावर्त २०० गुना स अधिक बढकर ६ अरब रुपये से अधिक हो गया। भारत मे भिलाई और बोकारो म विशालतम लोहा तथा इस्पात कारखानो, तापीय और जलविद्युत घरो तेल बरामदई तथा शोधन प्रतिष्ठानो, कोयला खानो भारी इजीनियरी कारखानो और औषधि निमाण फैक्टरियो सहित ८० से अधिक औद्योगिक उद्यमो का सोवियत सहायता म निमाण हुआ।

सोवियत सहायता स निर्मित प्रतिष्ठान लोहा तथा इस्पात कारखाना का ८० प्रतिशत उपस्कर भारी विद्युत उपस्कर का ६० प्रतिशत, ३० प्रतिशत इस्पात २० प्रतिशत विद्युत ऊजा, ५० प्रतिशत से अधिक तेल और ३५ प्रतिशत पेटारासायनिक उत्पाद प्रदान कर रह थे।

सोवियत सघ और भारत क बीच आर्थिक सहयोग भारत म राजकीय क्षेत्र के विकास पर आधारित उद्योग समूह के निर्माण म एक अत्यधिक महत्वपूर्ण कारक था।

मार्च, १६७७ मे आम चुनाव क परिणामस्वरूप सत्ता म आनवाली जनता पार्टी की सरकार न परपरागत विदेश नीति के मार्ग पर चलते रहने के अपन निश्चय की घोषणा की और नये विदेशमत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने स्वतत्रता क ३० वर्षो के दौरान देश की विदेश नीति की निरतरता को प्रदर्शित किया।

---

* सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २५वी काग्रेस (दस्तावेज और प्रस्ताव) (रूसी मे) मास्को पृष्ठ २५।

१९७७ क उत्तरार्द्ध म मोरारजी देसाई सरकार क विदेशनीतिक कदमो न सकारात्मक तटस्थता की नीति क पालन तथा निकट और दूर क सभी देशो क साथ सबधो को सुधारने और विकसित करने की उसकी आकाक्षा की पुष्टि की।

१९७७–१९७९ म प्रधानमत्री मोरारजी देसाई न दो बार सोवियत सघ की यात्रा की। मार्च १९७९ म सोवियत मत्रिपरिषद के अध्यक्ष अलेक्सेई कोसीगिन न भारत की आधिकारिक यात्रा की जिसके दौरान १० १५ वर्षो की अवधि क लिए आर्थिक व्यापारिक और वैज्ञानिक-तकनीकी सहयोग क एक दीर्घकालीन कार्यक्रम तथा अंतरिक्ष अध्ययन विज्ञान और संस्कृति क विभिन्न क्षेत्रो म सहयोग के अन्य समझौतो पर हस्ताक्षर किये गये। प्रधानमत्री देसाई की मास्को यात्रा क समय जून १९७८ म ब्रजनेव तथा मोरारजी देसाई द्वारा हस्ताक्षरित विज्ञप्ति म दोनो देशो क जनगण की परपरागत मैत्री के उच्च स्तर '* की पुष्टि की गयी।

सोवियत भारत सबध भारत म आतरिक राजनीतिक स्थिति म परिवर्तनो स निरपेक्ष विकसित होत रहे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है जनता पार्टी क भीतर मतभेदो और आतरिक सघर्ष की परिणति १९७९ की गरमियो मे उसम फूट और देसाई सरकार क त्यागपत्र म हुई। जनता पार्टी म अलग हुए भाग जनता (से०) (बाद म लोक दल) और काग्रेस (स्वर्णसिंह और बाद म स्वराज अर्स क नतृत्व म) क सहयोग से निर्मित चरणसिंह सरकार ससद म बहुमत प्राप्त नही कर सकी। वह जनवरी १९८० म होनेवाले ससदीय चुनाव तक एक अतरिम प्रशासन के रूप म देश का सचालन करती रही। देश की बिगडती आर्थिक स्थिति राजनीतिक अस्थिरता तथा अन्य कारणो स लोक दल (चरणसिंह के नतृत्व म) जनता पार्टी (जगजीवन राम के नतृत्व म) और काग्रेस (अर्स) की पराजय हुई। इदिरा गाधी के नतृत्व म काग्रेस को ससद म पूर्ण बहुमत मिल गया जिसने उनके नेतृत्व मे नयी सरकार बनायी। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्स वादी कम्युनिस्ट पार्टी न चुनाव म आपस म सहयोग किया था और उन्हे विशेषकर केरल तथा पश्चिम बगाल म भारी सफलता मिली।

जनवरी १९८० म इदिरा गाधी के नेतृत्व म काग्रेस पार्टी क पुनसत्तारूढ होन स सकारात्मक तटस्थता की भारत की पारपरिक विदेश नीति को नया बढावा मिला। १९८० क पहले चार महीनो म इदिरा गाधी सरकार ने

---

* प्राव्दा' १५ जून १९७९।

विदेश नीति के क्षेत्र म जो उल्लेखनीय सक्रियता दिखायी, वह विश्व राजनीति और गुट निरपेक्ष आन्दोलन म भारत की भूमिका तथा प्रभाव की वृद्धि की परिचायक थी।

राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनो क समर्थन की नीति को और मुखर बनाते हुए भारत ने ऐसे कई कदम उठाये, जिनम फिलिस्तीनी मुक्ति सगठन को पूर्ण राजनयिक मान्यता दिया जाना भी शामिल था। इस सगठन क नेता यासेर अराफात न भारत सरकार के निमत्रण पर भारत की यात्रा की। भारत न जिबाब्वे क राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलन की विजय का भी सोत्साह स्वागत किया।

पश्चिमी एशिया क सकट के प्रश्न पर भारत पहले की तरह ही अरब जनता के समर्थन की नीति पर चलता रहा और इस क्षेत्र तथा दक्षिण-पश्चिमी एशिया म छिड विवादो को शातिमय तरीको स हल करन क लिए आवाज उठाता रहा।

भारत न चीनी लोक गणतत्र के साथ सबध सामान्य बनाने की अपनी तत्परता को पुन प्रदर्शन किया। किंतु दक्षिणी तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया म पीकिंग की विस्तारवादी नीति उत्तर-पूर्वी भारत क पृथकतावादियो को उसका समर्थन और भारत क क्षेत्र पर उसक दावे भारत चीन सबधो के सामान्यीकरण म पहले की भाति ही बाधक बन हुए हैं।

भारत न हिंद महासागर क्षेत्र म शस्त्रास्त्रो के जखीरे बढ़ान का विरोध किया और सयुक्त राज्य अमरीका व चीन द्वारा पाकिस्तान को हथियारबद किये जान के मसूबो पर अपनी गहन चिता प्रकट की। अमरीकी चीनी सैन्य राजनयिक गठबधन म पाकिस्तान की भूमिका भारत-पाक सबधो को और पचीदा बना देती है और सामान्यीकरण क लिए भारत द्वारा किये जा रहे उपायो मे रोडे अटकाती है। इदिरा गाधी सरकार ने द्विपक्षीय आधार पर पडोसी देशो क साथ सबध बढ़ाने व बेहतर बनाने क पहले स चले आ रहे प्रयत्नो को जारी रखा।

इस काल की एक अन्य महत्वपूर्ण घटना वियतनाम समाजवादी जनतत्र के प्रधानमत्री फाम वान दोंग की भारत यात्रा थी। अत्यत मैत्रीपूर्ण वातावरण मे सपन्न हुई इस यात्रा क दौरान भारत न वियतनाम के पुनर्निर्माण तथा विकास मे सहायता देने का आश्वासन दिया।

इदिरा गाधी सरकार न भारत तथा सोवियत सघ के मैत्री सबधो को सभी प्रकार से बढाते रहने की नीति की पुष्टि की। फरवरी, १९८० म सोवियत विदेशमत्री अद्रेई ग्रोमीको भारत की यात्रा पर गये और जून १९८०

मे भारतीय विदेशमत्री पी० नरसिहराव ने सोवियत सघ की यात्रा की। दोनो देशो मे सोवियत भारतीय आर्थिक सहयोग की पचीसवी वर्षगाठ बडे धूमधाम से मनायी गयी। इस अवसर पर एक सोवियत सरकारी प्रतिनिधिमडल भारत की यात्रा पर गया। मास्को और दिल्ली मे कई नये व्यापारिक, आर्थिक वैनानिक और तकनीकी सहयोग समझौतो पर हस्ताक्षर किये गये।

पिछले दशको मे अतर्राष्टीय सबधो मे भारत की भूमिका का उत्तरोत्तर बढना फासिज्म की पराजय, साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक प्रणाली क विध्वस और विश्व समाजवादी प्रणाली के अभ्युदय के परिणामस्वरूप ससार म आये विराट परिवर्तनो और स्वाधीनता के बाद स्वय भारत मे शुरु हुई राष्टीय पुनरुत्थान की प्रक्रिया को प्रतिबिबित करता ह।

भौतिक और बौद्धिक क्षेत्रो मे भारतीय सभ्यता की जिसन मानवजाति के विकास मे इतना उल्लेखनीय योगदान किया है सभी सर्वमान्य उपलब्धिया बहुसख्य नृजातीय व सास्कृतिक सपर्को की दीर्घकाल से और अनवरत चली आ रही अन्योन्यक्रिया की उपज है। भारत उपमहाद्वीप के क्षेत्र म घटित मानव नृजाति उद्भव सबधी प्रक्रियाओ की जटिलता वहा विश्व के सबसे बडे धर्मो – हिदु, बौद्ध, इस्लाम तथा ईसाई धर्मो – के समागम इस समागम के फलस्वरूप कई स्थानीय धर्मो और पथो के उदय बाह्य सस्कृतियो के साथ भारतीय सभ्यता के पुरातन व व्यापक सपर्को आदि अनेकानेक कारको ने ही भारत की प्राचीन व आधुनिक सस्कृति को इतना विशिष्ट समृद्ध और नानारूप बनाया है।

भारत की सास्कृतिक एकता उसकी आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक एकता का प्रतिबिब है। भारत के बहुसख्य सजाति-समूहो म वर्गीय समाज का जन्म और विकास उन आम नियमो के अनुसार ही हुआ जो समस्त विश्व इतिहास की प्रक्रिया क अभिन्न अग है। किंतु इसके साथ ही भारतीय सभ्यता ने सस्कृति और सामाजिक आर्थिक विकास के क्षेत्र मे – खास तौर से सामतवाद के युग मे – कुछ ऐसी विशिष्टताओ का प्रदर्शन भी किया कि जो अन्य सभ्यताओ मे नही पायी जाती।

औपनिवेशिक विजय ने भारत के इतिहास के सहज प्रवाह को अवरुद्ध व विकृत कर दिया था किंतु भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति सग्राम जिसने विश्व को महात्मा गाधी और जवाहरलाल नेहरू सरीखी विभूतिया प्रदान की उसे पुन उसके सहज मार्ग – स्वतत्र विकास के मार्ग – पर लौटा लाया।

ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यल्प काल – केवल एक तिहाई शताब्दी – म ही

भारत ने आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक विकास के कई क्षेत्रो म प्रभावोत्पादक सफलताए प्राप्त कर ली है। आज भारत की गणना विश्व के प्रथम दस औद्योगिक राष्ट्रो म होती है। सघीय ढाचे के दायरे मे बहुजातिक भारतीय समाज की एकता का सुदृढीकरण स्वतत्र भारत के सफल विकास की एक बुनियादी शर्त है। किंतु प्राप्त सफलताओ के बावजूद भारत की अधिकाश आबादी विशेषत गावो मे रहनेवाले करोडो अल्पभूमि तथा भूमिहीन अर्धसर्वहारा किसानो के रहन सहन का स्तर आज भी बहुत नीचा है।

निकट भविष्य मे भारत की ऐतिहासिक नियति काफी कुछ इस पर निर्भर करेगी कि अगले एक-दो दशको मे इन तथा इनके जैसी अन्य आर्थिक व सामाजिक समस्याओ को किस प्रकार और किन तरीको से हल किया जाता है।

कालानुक्रम

ई० पू० चौथे सहस्राब्द का अत	भारत की पहली खेतिहर सस्कृतिया
चौबीमवी सत्तरहवी शती ई० पू०	मिधु घाटी सभ्यता
चौदहवी बारहवी शती ई० पू०	भारत म आर्यो का आगमन
बारहवी ग्यारहवी – पाचवी शती ई० पू०	चित्रित धूमर मृदभाड सस्कृति
ई० पू० दूसर महस्राब्द का अत – पहले का प्रारभ	ऋग्वेद की रचना
सातवी चौथी शती ई० पू०	उपनिषदो की रचना
छठी दूमरी शती ई० पू०	ओपयुक्त कृष्ण मृदभाड मस्कृति
५६३–४८६ (४८३) ई० पू०	गौतम बुद्ध
५४५–४१३ ई० पू०	हयक वश
४१३–३४५ ई० पू०	शैशुनाग वश
३४५–३१७/१४ ई० पू०	नद वश
३२७–३२५ ई० पू०	सिकदर महान का आक्रमण
३१७–१८० ई० पू०	मौय वश
३१७–२९३ ई० पू०	चद्रगुप्त मौय का राज्यकाल
२९३–२६८ ई० पू०	बिदुसार का राज्यकाल
२६८–२३२ ई० पू०	अशोक का राज्यकाल
१८०–६८ ई० पू०	शुग वश
६८–२२ ई० पू०	कण्व वश
पहली शती ई० पू०	भारत पर शको के आक्रमण
ई० पू० पहले सहस्राब्द का अत – तीसरी शती ई०	सातवाहन साम्राज्य

पहली शती – तीसरी शती ई०	कुषाण साम्राज्य
पहली शती – चौथी शती ई० का अंत	पश्चिमी क्षत्रप साम्राज्य
२५५ ई० – छठी शती का प्रथम चतुर्थक	वाकाटक साम्राज्य
तीसरी शती ई० – ८९८ ई०	पल्लव साम्राज्य
३२० ई०	गुप्त वंश का आरम्भ
३८०–४१३/१५	चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य
४५४ ४६५	भारत पर हूणों और हेफ्तालों के आ
पांचवीं शती –७५७	वातापी के चालुक्यों का राज्य
५९०–९२०	पांड्य राज्य
६०६–६४७	हर्ष का राज्यकाल
६२४–१०७०	पूर्वी चालुक्य राज्य
७११	सिंध पर अरबों का आक्रमण
७५७–९७३	राष्ट्रकूट राज्य
मध्य आठवीं शती – ११४२	पहला पाल राज्य
मध्य नवीं शती – १३२७	चोल राज्य
९७३–११८९	कल्याणी के चालुक्यों का राज्य
१००१–१०२६	उत्तर भारत पर तुर्कों का आक्रमण
१०७०	चोल वंश तथा पूर्वी चालुक्य वंश का सम्मिल
११९१–११९२	तराइन की लड़ाइयां
१२०६–१५२६	दिल्ली सल्तनत
१२०६–१२११	कुतुबुद्दीन ऐबक का राज्यकाल
१२११–१२८९	गुलाम वंश
१२११–१२३५	इल्तुतमिश का राज्यकाल
१२१६–१३२७	दूसरा पांड्य राज्य
१२२१	भारत पर मंगोलों का आक्रमण
१२४१	मंगोलों द्वारा लाहौर का घेरा जाना
१२६५–१२८७	गयासुद्दीन बलबन का राज्यकाल

१२९०–१३२० खिलजी वंश
१२९०–१२९६ जलालुद्दीन खिलजी का राज्यकाल
१२९६–१३१६ अलाउद्दीन खिलजी का राज्यकाल
१३०६ मंगोलों से रावी के तट पर लड़ाई
१३०७ मलिक काफूर का देवगिरि और वारंगल को जीतना
१३११ द्वारसमुद्र तथा मदुरा का जीता जाना
१३१६–१३२० कुतुबुद्दीन मुबारक शाह का राज्यकाल
१३२०–१३२५ गयासुद्दीन तुगलक का राज्यकाल
१३२५–१३५१ मुहम्मद तुगलक का राज्यकाल
१३३०–१५६५ विजयनगर साम्राज्य
१३४७–१५२७ बहमनी साम्राज्य
१३४७–१३५८ अबुल मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमनशाह का राज्यकाल
१३५१–१३८८ फीरोजशाह तुगलक का राज्यकाल
१३९८ तैमूर का आक्रमण
१४११–१४४२ अहमदशाह प्रथम का शासन
१४१४–१४५१ सैयद वंश
१४१६ सारंग खाँ का विद्रोह
१४२१–१४३४ मुबारकशाह का राज्यकाल
१४२२–१४३५ अहमदशाह बहमन का राज्यकाल
१४८१ बहमनी राज्य के वजीर महमूद गवाँ का वध
१४५१–१५२५ लोदी वंश
१४५१–१४८९ बहलोल लोदी का राज्यकाल
१४५८–१५११ महमूद प्रथम बेगढ़
१४८९–१५१५ सिकंदर लोदी का राज्यकाल
१४९८ पुर्तगालियों का भारत में आगमन
१५०९–१५२९ कृष्णदेव राय का शासन
१५१० पुर्तगालियों द्वारा गोवा पर अधिकार
१५२६–१५३७ बहादुरशाह का राज्यकाल
१५३५ दीव में पुर्तगाली दुर्ग का निर्माण
१४६९–१५३९ गुरु नानक

१७८०–१७८४	दूसरा आग्ल-मैसूर युद्ध
१७८४	पिट का अधिनियम
१७८६	लार्ड कार्नवालिस का भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त होना
१७९०–१७९२	तीसरा आग्ल मैसूर युद्ध
१७९३	इस्तमरारी (स्थायी) बदोबस्त का लागू किया जाना
१७९८	लार्ड वलेजली का गवर्नर जनरल नियुक्त किया जाना
१७९९	चौथा आग्ल मैसूर युद्ध
१७९९–१८३९	पजाब म रणजीतसिह क अधीन सिख राज्य
१८०३–१८०५	दूसरा आग्ल मराठा युद्ध
१८०७	दिल्ली क्षत्र म किसान विद्रोह
१८१३	भारत के शासन क बारे म अधिनियम
१८१५	आर्य समाज की स्थापना
१८१७–१८९८	सर सयद अहमद खा
१८१७–१८१९	तीसरा आग्ल मराठा युद्ध
१८२५–१९१७	दादाभाई नौरोजी
१८२८	ब्राह्म समाज की स्थापना लार्ड विलियम बेंटिक का गवर्नर जनरल नियुक्त होना
१८३३	भारत के शासन के बारे मे अधिनियम
१८३८–१८९४	बकिमचद्र चट्टोपाध्याय
१८४३	अग्रेजो की सिध विजय
१८४५–१८४६	पहला आग्ल सिख युद्ध
१८४८–१८४९	दूसरा आग्ल सिख युद्ध सारे भारत का अग्रेजो की अधीनता मे आना
१८५३	नागपुर और बरार का अधिग्रहन
१८५४	बबई म भारत मे पहली कपडा मिल की स्थापना
१८५६	अवध का अधिग्रहन
१८५६–१९२०	बाल गगाधर तिलक
१८५७–१८५९	महान विद्रोह (गदर)
१८५७	कलकत्ता बबई तथा मद्रास विश्वविद्यालयो

	की स्थापना
११ मई १८५७	दिल्ली पर विद्रोहियों का अधिकार
१४ सितंबर १८५७	अंग्रेजों द्वारा दिल्ली को मुक्त किया जाना
२ अगस्त १८५८	भारत के सुशासन के बारे में कानून
१ नवंबर १८५८	भारतीय शासनविधान के बारे में शाही घोषणा और ईस्ट इंडिया कंपनी की परिसमाप्ति
१८५९	भारत में पहला काश्तकारी कानून (बंगाल मालगुजारी कानून)
१८५९–१८६२	नील विद्रोह
१८६१	अहमदाबाद में कपड़ा मिलों का निर्माण, इंडियन काउंसिल्स एक्ट
१८६१–१९४१	रवींद्रनाथ ठाकुर
१८६२–१९०२	स्वामी विवेकानंद
१८६९–१९४८	मोहनदास करमचंद गांधी
१८७०	पूना सार्वजनिक सभा की स्थापना
१८७२	पंजाब में नामधारी सिखों का विद्रोह
१८७२–१८७३	पावना तथा बोगरा (बंगाल) में किसान विद्रोह
१८७२–१८७५	महाराष्ट्र में महाजनों के विरुद्ध किसान-आंदोलन
१८७६	इंडियन एसोसिएशन की स्थापना
१ जनवरी १८७७	महारानी विक्टोरिया का भारत की साम्राज्ञी घोषित किया जाना
१८७७	नागपुर की कपड़ा मिल में पहली हड़ताल, कलकत्ता में नेशनल मुस्लिम एसोसिएशन की स्थापना
१८७९	वसुदेव बलवंत फड़के (१८४५–१८८३) के नेतृत्व में ब्रिटिशविरोधी विद्रोह
१८७९–१८८०	रंपा में कृषक विद्रोह
१८८१	पहला भारतीय कारखाना अधिनियम
१८८४	बंबई के कपड़ा मजदूरों की पहली जन-सभा एन० एम० लोखंडे द्वारा पहले भारतीय मजदूर संघ की स्थापना
१८८५	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (इंडियन नेशनल

	काग्रेस) की स्थापना
१८८९–१९६४	जवाहरलाल नेहरू
१८९१	मणिपुर म विद्रोह
१८९१–१९५६	भीमराव अम्बेडकर
१८९७–१९४६	सुभापचद्र बोस
१६ अक्तूबर, १९०५	बग-भग
१९०५	श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा विदेश म सर्वप्रथम भारतीय राजनीतिक सगठन – इडियन होमरूल सोसाइटी (भारतीय स्वशासन समाज) – की स्थापना
१९०६ की गरमिया	ईस्ट इडियन रेलवे और गवर्नमेट आफ इडिया प्रेस म हडताले
दिसबर, १९०६	मुस्लिम लीग की स्थापना
१९०७	काग्रेस का सूरत अधिवेशन और काग्रेस म फूट पडना
१३ स २२ जुलाई १९०८	तिलक के मुकदमे की सुनवाई
२३ जुलाई, १९०८	बबई मे राजनीतिक आम हडताल
१९०८	भूमिगत क्रातिकारियो की आतकवादी कार्रवाइयो का आरभ
१९०९–१९१०	मार्ले मिटो सुधार
१९११	जमशेदपुर मे पहले भारतीय लोहा तथा इस्पात कारखाने का निर्माण
१९१३	सयुक्त राज्य अमरीका मे इडियन एसोसिएशन की स्थापना जो आगे चलकर गदर पार्टी मे परिणत हो गया
१९१५	बर्लिन मे इडियन इडीपेडस कमिटी (भारतीय स्वतत्रता समिति) की स्थापना काबुल मे भारत की निर्वासित अस्थायी सरकार की स्थापना, गाधीजी द्वारा सत्याग्रह आश्रम की स्थापना और पहला सत्याग्रह आदोलन छेडा जाना
नवबर, १९१५	सिगापुर मे भारतीय सिपाहियो का विद्रोह
१९१६	होमरूल लीग की स्थापना, काग्रेस तथा मुस्लिम

	लीग में स्वतंत्रता के सामान्य लक्ष्य के बारे में सम्मति
१९१८	मद्रास में पहले ट्रेड यूनियन संगठन की स्थापना
अगस्त १९१८	कांग्रेस में फूट पड़ना और लिबरल फेडरेशन की स्थापना
१९१९	माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार, जलियांवाला बाग का हत्याकांड, हड़तालें
मई १९२०	अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना
अगस्त १९२०	पहले सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आरम्भ
सितंबर १९२०	कांग्रेस द्वारा असहयोग कार्यक्रम का स्वीकार किया जाना
दिसंबर १९२०	कांग्रेस द्वारा अपने नये संविधान का अंगीकरण
मई १९२१	असम के चाय बागान मजदूरों की हड़ताल
अगस्त १९२१	मोपला विद्रोह का आरम्भ
नवंबर १९२१	बंबई में चार दिवसीय राजनीतिक हड़ताल
१९२१–१९२२	संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) में किसानों का एका आंदोलन, पंजाब में अकाली आन्दोलन
फरवरी १९२२	कांग्रेस कार्य समिति का बारडोली प्रस्ताव
१९२२–१९२३	पेशावर षड्यंत्र के मुकदमे
१९२४	कानपुर में कम्युनिस्टों पर मुकदमा
१९२४–१९२५	बंबई के कपड़ा मजदूरों की हड़ताल
२८–३० दिसंबर १९२५	कानपुर में भारतीय कम्युनिस्टों का पहला औपचारिक सम्मेलन, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना
१९२६–१९२७	किसान मजदूर पार्टियों की स्थापना
जुलाई १९२८	भारत के भावी शासन विधान के बारे में नेहरू समिति की रिपोर्ट (नेहरू संविधान) का प्रकाशन
दिसंबर १९२८	आल इंडिया इंडीपेंडेंस लीग (अखिल भारतीय स्वाधीनता संघ) का अधिवेशन
१९२८	भूमिगत इंडियन रिपब्लिकन सोशलिस्ट एसोसिएशन की स्थापना

८ अप्रैल १९२९	भगत सिंह और बटकेश्वर दत्त द्वारा केंद्रीय असेंबली में बम फेंका जाना
अप्रैल, १९२९	मेरठ षडयंत्र केस (१९२९ ३३) का आरंभ
२६ जनवरी, १९३०	पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य की घोषणा स्वाधीनता दिवस का पहली बार मनाया जाना
मार्च १९३०	गांधीजी द्वारा अपनी ग्यारह शर्तों का प्रकाशित किया जाना
अप्रैल, १९३०	दूसरे असहयोग आंदोलन का आरंभ
१९३०	पेशावर चटगांव और शोलापुर में सशस्त्र बलवे
१९३०–१९३२	लंदन में गोलमेज सम्मेलन
१९३१–१९३२	कश्मीर में जागीरदारविरोधी आंदोलन
५ मार्च १९३१	गांधी अरविन समझौता
मार्च १९३१	कांग्रेस का कराची अधिवेशन आर्थिक तथा सामाजिक कार्यक्रम स्वीकार किया जाना
जनवरी १९३२–मई १९३४	तीसरा असहयोग आंदोलन
१९३४	कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना
१९३५	१९३५ का शासन विधान
अप्रैल १९३६	अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना
१९३६	आल इंडिया स्टूडेंट्स फेडरेशन (अखिल भारतीय छात्र संघ) आल इंडिया प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन (अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ) तथा अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद (आल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कांफ्रेंस) की स्थापना
मई १९३६	जवाहरलाल नेहरू का दूसरी बार कांग्रेस अध्यक्ष चुना जाना
१९३७	मुस्लिम लीग का लखनऊ अधिवेशन नये कार्यक्रम का स्वीकार किया जाना प्रांतीय विधानमंडलों के चुनाव
१९३८	१९२९ तथा १९३१ में फूट पड़ने के बाद अखिल

	भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का फिर से एक होना, सुभाषचंद्र बोस कांग्रेस अध्यक्ष निर्वाचित
१४ सितंबर १६३६	युद्ध के प्रति कांग्रेस के रवैये की घोषणा
१६३६	सुभाषचंद्र बोस द्वारा कांग्रेस से इस्तीफा और फारवर्ड ब्लॉक की स्थापना
मार्च १६४०	मुस्लिम लीग का लाहौर अधिवेशन, पाकिस्तान विषयक प्रस्ताव का स्वीकार किया जाना
अक्तूबर १६४०	व्यक्तिगत सत्याग्रह, सत्याग्रहियों की व्यापक गिरफ्तारियां
अप्रैल १६४२	गांधीजी द्वारा "भारत छोड़ो!" के नारे का दिया जाना
जुलाई १६४२	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पर से पाबंदी का उठाया जाना
अगस्त १६४२	गांधीजी तथा कांग्रेस नेताओं को गिरफ्तार किया जाना अगस्त क्रांति
२३ मई १६४३	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की पहली कांग्रेस का उद्घाटन
वसंत १६४५	कांग्रेस और मुस्लिम लीग में भारत के भावी शासन विधान के बारे में सहमति
१६४६	बंगाल में किसानों के तिभागा आंदोलन का आरंभ
१८–२३ फरवरी १६४६	नौसैनिक पोत 'तलवार' पर विद्रोह, बंबई में आम हड़ताल
अप्रैल १६४६	प्रांतीय विधानमंडलों के चुनाव
जून १६४६	जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस अध्यक्ष निर्वाचित
२४ अगस्त १६४६	अंतरिम सरकार द्वारा शपथ ग्रहण
१६४६	तेलंगाना में किसान विद्रोह का आरंभ, "कश्मीर छोड़ो!" आंदोलन
अप्रैल, १६४७	अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद का ग्वालियर में अधिवेशन
मई, १६४७	भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस (इंटक)

	की स्थापना
३ जुलाई, १९४७	भारत के दो डोमीनियनो मे विभाजन की माउटबटन योजना का प्रकाशन
१५ अगस्त, १९४७	*भारत की स्वाधीनता की उदघोषणा भारतीय* सघ तथा पाकिस्तान की स्थापना
१९४७–१९४९	देशी राज्यो का *भारतीय* सघ मे *विलयन*
अक्तूबर, १९४७	कश्मीर सबधी भारत पाकिस्तान विवाद का आरभ
३० जनवरी १९४८	गाधीजी की *हत्या*
फरवरी मार्च, १९४८	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की दूसरी काग्रस
१९४८	रिजव बैंक *का* राष्टीयकरण हिंद मजदूर सभा तथा युनाइटेड ट्रड-यूनियन काग्रस (सयुक्त टड यूनियन *काग्रेस*) *की स्थापना* औद्योगिक नीति पर पहला मरकारी प्रस्ताव
२६ नवबर, १९४९	भारत क मविधान का अगीकरण
१९४९	द्रविड मुनत्र कडगम की स्थापना
२६ जनवरी, १९५०	भारत का गणतत्र घोपित किया जाना
१९५०	योजना आयोग की स्थापना
अक्तूवर, १९५१	भारतीय कम्युनिम्ट पार्टी का अखिल भारतीय सम्मेलन अजय घोप का महासचिव चुना जाना, पहले भारत अमरीकी आर्थिक सहयोग समभौत पर हस्ताक्षर
१९५१	भारतीय जन सघ की स्थापना किसान-मजदूर प्रजा पार्टी की स्थापना
१९५१/५२–१९५५/५६	पहली पचवर्षीय योजना
२५ अक्तूवर १९५१–२४ फरवरी १९५२	पहला देशव्यापी आम चुनाव
१९५४	तिब्बत क वारे म भारत तथा चीन म समभौता भारत मे फ्रासीसी अधिकृत प्रदेशो का देश मे विलयन
१९५५	जवाहरलाल नहरू की सोवियत सघ की पहली राजकीय यात्रा, इपीरियल बैंक का राष्टीयकरण काग्रस का आवाडी अधिवेशन

	समाजवादी स्वरूप के समाज के बारे में प्रस्ताव का स्वीकार किया जाना, पहला भारत सोवियत आर्थिक सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर
१९५६	आर्थिक नीति पर दूसरा सरकारी प्रस्ताव,
१९५६/५७–१९६०/६१	दूसरी पचवर्षीय योजना
वसंत १९५७	दूसरे आम चुनाव
अप्रैल १९५७	केरल में पहले कम्युनिस्ट मंत्रिमंडल द्वारा शपथग्रहण
अप्रैल १९५८	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की पांचवी कांग्रेस, शांति के शांतिमय विकास के पथ के बारे में प्रस्ताव का स्वीकार किया जाना
अगस्त १९५९	स्वतंत्र पार्टी की स्थापना
१९५९	कांग्रेस का नागपुर अधिवेशन, मूलगामी कृषि नीति पर प्रस्ताव स्वीकार किया जाना, भारत चीन सीमा विवाद
१९६०	महाराष्ट्र तथा गुजरात राज्यों का निर्माण
दिसंबर १९६१	गोवा की मुक्ति
१९६१/६२–१९६५/६६	तीसरी पचवर्षीय योजना
फरवरी १९६२	तीसरे आम चुनाव
जून १९६२	कांग्रेस में फोरम फॉर सोशलिस्ट एक्शन (सोशलिस्ट फोरम) की स्थापना
शरद १९६२	भारत चीन सीमा संघर्ष
१९६३	नागालैंड राज्य की स्थापना
१३ सितंबर १९६३	महान प्रयाण के बाद संसद के सामने विराट प्रदर्शन
२७ मई १९६४	जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु
अक्तूबर १९६४	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में विभाजन, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना
१९६४–१९६६	लालबहादुर शास्त्री का प्रधानमंत्रित्व
अप्रैल सितंबर १९६५	भारत पाकिस्तान संघर्ष
३-११ जनवरी, १९६६	ताशकंद सम्मेलन तथा ताशकंद घोषणा पर हस्ताक्षर

११ जनवरी १९६६	लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु
१९६६	इंदिरा गांधी का प्रधान मंत्री बनना, हरियाणा राज्य की स्थापना
१९६७	संसद द्वारा राजभाषा अधिनियम पारित किया जाना, इन्दिरा गांधी द्वारा प्रगतिशील सामाजिक आर्थिक रूपान्तरणा व दस-सूत्री कार्यक्रम को पेश किया जाना, चौथे आम चुनाव, अनेक राज्यों में संयुक्त सरकारों की स्थापना (१९६७–१९७०)
मई १९६८	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की आठवीं कांग्रेस, वामपंथी तथा जनवादी शक्तियों की एकता की नीति का अंगीकरण
१९६८	नक्सलवादी आन्दोलन का आरम्भ, भारतीय खेत मजदूर संघ की स्थापना
१९६९	बंगाल में वामपक्षी संयुक्त सरकार की स्थापना
ग्रीष्म, १९६९	चौदह बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण
शरद १९६९	कांग्रेस में फूट, कांग्रेस–आर० (कांग्रेस–शा०) तथा कांग्रेस–एस० (कांग्रेस–सं०) का उदय
दिसम्बर, १९६९	संसद द्वारा एकाधिकार तथा प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम का पारित किया जाना
मई १९७०	भारतीय ट्रेड यूनियन केन्द्र (सीटू) की स्थापना
१९७१	संसद द्वारा देशी राज्यों के भूतपूर्व शासकों को राजभत्ता देना बंद करने का निर्णय
मार्च १९७१	संसद के लिए आम चुनाव
६ अगस्त १९७१	*सोवियत भारत शांति मैत्री तथा सहयोग संधि* का हस्ताक्षरित किया जाना
३–१७ दिसम्बर १९७१	भारत तथा पाकिस्तान में सैनिक संघर्ष, बांगलादेश की स्थापना
फरवरी, १९७२	भारत तथा बांगलादेश में मैत्री तथा सहयोग की संधि का संपन्न होना
मार्च, १९७२	बांगलादेश से भारतीय सेना की वापसी

अप्रैल १६७२	विधान सभाओ के चुनाव
मई, १६७२	भारतीय ट्रेड-यूनियनो की राष्ट्रीय समन्वय परिषद की स्थापना
३ जुलाई, १६७२	भारत तथा पाकिस्तान के बीच शिमला समझौता
अक्तूबर, १६७२	देशव्यापी सत्याग्रह
२७ मार्च १६७३	ससद पर महान प्रयाण और प्रदर्शन
नववर १६७३	ले० इ० ब्रेजनेव की भारत यात्रा
अप्रैल १६७४	वामपक्षी दलो की अखिल भारतीय बैठक
मई, १६७४	भारतव्यापी रेल-हडताल
सितवर १६७४	इस्लामाबाद मे भारत-पाक वार्ता
१६७४	जयप्रकाश नारायण द्वारा सपूर्ण क्राति आदोलन छेडा जाना
२७ जनवरी–२ फरवरी, १६७५	भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की दसवी काग्रेस
अप्रैल १६७५	पहले भारतीय भू-उपग्रह 'आर्यभट' का छोडा जाना
जून, १६७५	पुर्तगाल द्वारा गोवा पर भारत की प्रभुता को स्वीकार किया जाना
२६ जून १६७५	देश मे आपात स्थिति का घोषित किया जाना
मई १६७६	भारत तथा पाकिस्तान के बीच राजनयिक सबधो की बहाली
१६७७ का प्रारभ	अनेक विपक्षी पार्टियो द्वारा जनता पार्टी का गठन
मार्च,१६७७	छठा ससदीय चुनाव, जनता पार्टी का विजयी होना, आपात स्थिति की समाप्ति, इंदिरा गाधी सरकार का इस्तीफा, मोरारजी देसाई का प्रधानमत्री बनना
मई, १६७७	जनता पार्टी की औपचारिक रूप मे स्थापना
जून, १६७७	पश्चिम बगाल तथा त्रिपुरा मे मार्क्सवादी कम्यु निस्ट पार्टी के नेतृत्व मे वामपक्षी मोर्चे की सरकारो की स्थापना
अक्तूबर, १६७७	मोरारजी देसाई की सोवियत सघ की यात्रा
जनवरी, १६७८	काग्रेस मे फिर विभाजन, दो अखिल भारतीय

	काग्रेस सगठन की स्थापना
मार्च, १९७९	अ० नि० कोसीगिन की भारत यात्रा दीर्घकालिक आर्थिक व्यापारिक तथा वैज्ञानिक प्राविधिक सहयोग कार्यक्रम पर हस्ताक्षर
जुलाई, १९७९	जनता पार्टी मे फूट मोरारजी देसाई सरकार का इस्तीफा चरणसिंह का प्रधानमत्री बनना
अगस्त १९७९– जनवरी १९८०	चरणसिंह के प्रधानमत्रित्व मे अतरिम सयुक्त सरकार
जनवरी, १९८०	सातवा ससदीय चुनाव इदिरा गाधी के नेतृत्व मे काग्रेस का पुन सत्ता मे आना

नाम-निर्देशिका

अतिओकस – ८७।
अतिओकस द्वितीय थिओस – ८९।
अतिओकस महान – १०७।
अतीआलकीदस – १०८।
अतीगोनस गोनातस – ८६।
अतोनोवा, को० आ० – १३, ३५१।
असारी, बेयजीद, देखिये बेयजीद असारी – ३१९, ३२३।
अकबर, देखिये मुगल वश – ३००, ३०१, ३०३ ३१०, ३१३-३२०, ३२१, ३२२, ३३२, ३३३, ३३६, ३४४, ३४७, ३५४।
अकबर (औरगजेब का पुत्र), देखिये मुगल वश – ३४२।
अखमनी – ७६, ८०, ११४, १३५, २२९।
अग्निदेव – ४६, ६२, ६२, ६४।
अग्रवाल, धर्मपाल – ४५।
अग्रामीस – ८१, ८२, ८३, ८४।
अच्युत, देखिये तुलुव वश – २९१।
अज (शक राजा) – १५३।
अजातशत्रु, देखिय हर्यक वश – ७८, ७९।
अजीत सिह – ३४१, ५११।
अजीमुल्लाह खा – ४३८, ४४१।
अडवाणी, लालकृष्ण – ७६७।
अथेनेइओस – ८७।
अधिकारी, गगाधर – ५८५, ६१७।
अनत फदो – ८४६।
अपोलो, बेल्वेदेर का – २२६।
अफजल खा – ३३७।
अबुल फजल – ३१६, ३१७, ३४५, ३४६।
अबुल मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमन शाह, देखिय बहमनी वश – २८०।
अब्दुर्रहीम – ३११।
अबदुर्रहमान – ४३०।
अब्दुर्रहमान (अफगान अमीर) – ४८४।
अब्दुल गफ्फार खा – ५९२, ६५६।
अब्दुल रब – ५६८ ५६९।
अब्दुल हमीद लाहौरी, देखिये लाहौरी, अब्दुल हमीद – ३४७।
अब्दुल्ला, शेख – ६५७, ६६५।
अमरसिह – १६६, १७०।
अमित्रखतीस (अमित्रघातक), देखिये बिदुसार, मौर्य वश – ८६।
अमीचद – ३७०।
अमीर खा रुहेला – ४०५, ४०६।
अमीर खुसरो, देखिये खुसरो, अमीर – २९६।
अम्बाजी इगले – ४०४।
अम्बेडकर, भीमराव – ५९७, ६६०।
अयूब खा – ७३६, ७४०।
अय्यर, एस० – ५२२।
अय्यर, वी० वी० – ५२६ ५२७।
अरविद घोष, देखिय घोष, अरविद – १९७।

अरविन, लार्ड – ५६०, ५६७।
अरस्तू (एरिस्टोटल) – १३८, २१४।
अराफात, यासेर – ७८०।
अराविदु वश – २६२।
राम द्वितीय – २६२।
वेकट द्वितीय – २६२।
श्रीरगम द्वितीय – २६२।
अर्जुन – १६४।
अर्जुन (गुरु) – ३१८, ३२०-३२१।
अर्दिस्तानी, मुहम्मद सईद, देखिय मीर जुमला, मुहम्मद सईद अर्दिस्तानी – ३३१।
अर्रिअन – ८१।
अर्स, देवराज – ७६६, ७७०, ७७६।
अलबेरूनी, अबूरेहान – २६६।
अलाउद्दीन, देखिये खिलजी वश – २६५, २६६-२६८, २७५, २७७, २७६, २६७।
अलाउद्दौला सिमनानी, देखिये सिमनानी, अलाउद्दौला – २६४।
अली बधु – ५३२, ५५५, ५६१।
अली गौहर, देखिये आलम द्वितीय, मुगल वश – ३७३।
अली मुसलिआर – ५५६।
अली, मुहम्मद – ५३१ ५३२, ५५५।
अली, मुहम्मद, देखिये सेपास्सी – ५७३।
अली, शौकत – ५३२, ५५५।
अलीमुहम्मद खा – ४४३।
अलीवर्दी खा – ३६२।
अलेक्सादर, इपिरस का राजा – ८६।
अलेक्जेडर, लार्ड – ६५०।
अलेरिक – १७६।
अल्बूकर्क, अफ्फोसू – २८६।
अल्मेइदा, फ्रासिस्क – २८४, २८५।
अल्लाह – २६३, २६५, ५०८।
अशोक, देखिय पियादसी, मौर्य वश – ७६, ७७, ८७, ८८, ८६, ६०, ६१, ६२, ६३, ६५, ६८, ६६, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०८, १०६, ११३, १३३, १३४, १३५, १६८, २२५।
अश्वघोष – २१६, २२१।
असग – १८३, १८७।
अहदाद – ३२३।
अहमद, फखरुद्दीनअली – ७६३, ७६६।
अहमद, मुजफ्फर – ५७३ ५७४, ५७७, ६१७, ६३७।
अहमद, रफीक – ५७०।
अहमदउल्लाह शाह – ४३६, ४४०।
अहमदशाह, देखिये बहमनी वश – २८०।
अहमदशाह अबदाली (दुर्रानी) – ३५७, ३५८, ४४५।
अहमदशाह प्रथम, देखिये टाक वश – २८३, २८४।
अहमदशाही वश, देखिय टाक वश – २८३।
अहुरमज्दा – १५८।

आध्र वश, देखिये सातवाहन वश, शालिवाहन वश – ११०, १६५।
आकिनलेक, सर – ६६५।
आगस्टस – ८४, १७६।

आचार्य, एम० पी० बी० टी०– ५६८-५६६।
आजाद, एम० एच० – ५२२।
आजाद, मौलाना अबुल क़लाम – ५३१ ५३२, ६२६, ६४४, ६५४।
आदिलशाही वंश – २८१।
आप्टे, हरिनारायण – ५२२।
आरुमुग नावलार – ४४८।
आर्दोक्षो – १५८।
आर्यदेव – १८६।
आर्यभट – २२२ २२३।
आलम द्वितीय, देखिये अली गौहर, मुग़ल वंश।
आलम शाह, देखिये सैयद वंश – २७२।
आवाज – ३८२।
आसफ खा – ३०४
आसफअली, अरुणा – ६८५।
आसफजाह – ३५५, ३५६, ३६६, ४४३।
आसुरि – २०४।

इंद्र – ६१, ६६, ६८।
इशाअल्लाखा – ४४५।
इओस – ६१।
इकबाल, मुहम्मद – ५२२।
इक्ष्वाकु – १६८।
इत्सिग – १५६, १८३, २२०।
इब्न बतूता – २६८।
इब्राहीमशाह लोदी, देखिये लोदी वंश – २७२-२७३, ३००।
इमेनो, एम० – ३७।
इम्पी, सर – ३७६।
इल्तुतमिश, देखिये शम्सुद्दीन इल्तुतमिश, गुलाम वंश – २६३, २६४, २६७।
इल्बर्ट – ४८६।
इल्यीन, ग० फ० – १२०।
इसीन – २६।
इस्लामशाह – ३१८।

ईश्वर – २११, २१२, २५७, २५८, ३१८।
ईश्वरकृष्ण – २०४, २०७, २०८।

उकील, एस० सी० – ५२०।
उग्रसेन – ८३।
उदय (उदायी), देखिये हर्यक वंश – ७६।
उद्दालक – ७५।
उमा, देखिये काली, पार्वती, शक्ति – १६३, २५६।
उर्वशी – ६८।
उषस (उषा) – ६१।
उस्मान खा – ३२२।
उस्मानी, शौकत – ५७०, ५७३ ५७४।

ऊपवदत्त – १७२।

एंगेल्स, फ्रेडरिक – ४६८।
एपीदोक्लीज – २१५।
एकनाथ – ३४५।
एटली – ६४४, ६४६, ६५६।
एलफिन्स्टन – ४३७।

ओ' डायर – ५५२।
ओनेक्रीतस – १०६।
ओल्देनबुर्ग, स० फ० – १२।
ओसिपोव, अ० म० – १२।

औरगजेब, देखिये मुगल वश – ३२६
३३३, ३३६-३३८, ३४०-३४५,
३४७, ३५३, ३५५, ३६०, ३६४।

कगलिया – ४७८।
कदुकूरि वीरेशलिगम – ५२३।
कबू, मुहम्मद सलीह, देखिय
मुहम्मद सलीह कबू – ३४७।
कजाल, जे० एम० – २१-२२, ३३।
कणाद – २१२-२१३, २१५।
कण्व वश – ७६, १०८।
कदफिसस प्रथम, देखिय कुजुल
कदफिसस, क्योत्स्यूक्यू – १५४।
कदफिसस द्वितीय, देखिये वीमा
कदफिसस – १५४।
कनिधम, सर अलैक्जैडर – २१।
कनिष्क – १५५, १५६, १५८, २१६।
कपिल – २०४।
कबीर – २६५, २६६।
कब्राल, पेद्रो – २८६।
करामृत्नोन, न० म० – २२०।
करीम खा – ४०५, ४०७।
कर्जन, लार्ड – ५०२ ५०४, ५१६।
कर्दमक – १६५।
कल्हण – २६६।
कवर्क द्वितीय – २४४।
काकतीय – २४५, २६७, २६८।
कात्यायन – १०६, १३५, १७४।
कामराज, के० – ७३०, ७३४।
कामरान – ३०१।
कामा, मैडम – ५२७।
कार्णिक, वी० वी० – ६२६।
कार्तिकेय – १६३।
कार्दी, वी० दि० – २१।
कार्नवालिस, लार्ड – ३६४ ३६५,
३६८, ४०८ ४०६, ४११।
कालिदास – ६८ १७१ २२० २२१।
काली, देखिय उमा, पार्वती,
शक्ति – २५६, ५०८।
कासिम बरीद – २८१।
कासिमोव, मुहम्मद युसुफ – ३६४।
किचनर, लार्ड – ५०३।
किचलू, सैफुद्दीन – ५५२।
किदवई, रफीअहमद – ६८४।
किरमानी, मीर हुसैन अली खा –
४४३।
किलाचद – ७०५।
किसिजर, हेनरी – ७७५।
कीर्तिवर्मा (कीर्तिवर्मन) द्वितीय
देखिय कदफिसस प्रथम – १५४।
कुतुबशाही वश – २८१, २८२।
कुतुबुद्दीन ऐबक – २६३, २६४।
कुतुबुद्दीन मुबारकशाह (मुबारक
शाह), देखिय खिलजी वश –
२६७।
कुनीअहमद हाजी – ५५६।
कुमारगुप्त, देखिय गुप्त वश – १६२
१६३।
कुमारदेवी लिच्छविकन्या – १५६।

कुमारस्वामी, आनद के० – ५२०।
कुर्तिअस रूफस – ८३।
कुषाण – १५३ १५८, १६०, १६३, १६६, १७१, १७६, १७८, १८०, १६२, २२६, २३०।
कुषाण हेराउस, देखिये हेराउस – १५४।
कूट, आयर – ३६०।
कृपालानी, आचार्य जे० बी० – ६५५, ६८४।
कृष्ण – ६६, १८६, १६०, १६४, १६६ १६७, २५६, २६६, ४५१, ५०८।
कृष्ण वर्मा, श्यामजी – ५२६ ५२७।
कृष्णदेव राय, देखिये तुलुव वश – २८८, २६१।
कृष्णमाचारी, टी० टी० – ६६०।
कृष्णराव, जी० वी० – ५४३।
कैथरीन, राजकुमारी – ३६०।
कैनिग, लार्ड – ४३६, ४३८, ४४०, ४४१ ४५६।
कैम्पबेल, सर कौलिन – ४३६-४४०
कोतोव्स्की, ग्रि० ग्रि० – १३, ३५१, ५३७।
कोलबेअर – ३६२।
कोशाबी, डी० डी० – ३०।
कोसीगिन, अ० न० – ७३६, ७७८।
कौटिल्य, देखिये चाणक्य – ७६, ८४, १२२, १३६ १३८, १६७, १६६, २०४।
कौरव – ५८ ५६, ६६, १६४।
क्यूइशुआग (ग्यूइशुआन) – १५३।
क्योत्स्यूक्यू, देखिये कुजुल कदफिसस, कदफिसस प्रथम – १५४।
क्रॉमवेल, आलिवर – ३६०।
क्रिप्स, सर स्टैफोर्ड – ६२८ ६३०, ६४५, ६५०।
क्लाइव, राबर्ट – ३७०-३७१, ३७३ ३७४, ३७५, ३७८।
क्लाडियस – १७६।
क्लैवरिग, चार्ल्स – ३७६।
क्षत्रप वश, देखिय पश्चिमी क्षत्रप – १५८, १६०, १६१, १६५, १६६, १७१।
नहपान – १६५
रुद्रदामन – १६५, १७१।
क्षहरात वश – १६५।

खफी खा – ३४७।
खा बहादुर खा – ४३७, ४४०, ४४१।
खा, लियाक्तअली, देखिय लियाकत अली खा – ६३८, ६४४।
खाजहा – ३२८।
खारवेल – ११०, १७१।
खिज्र खा, देखिये सैयद वश – २७१, २७६।
खिलजी वश – २६५-२६८।
अलाउद्दीन – २६५, २६६ २६७, २६८, २७५, २७७, २७६, २६७।
कुतुबुद्दीन मुबारकशाह – २६७।
जलालुद्दीन फीरोज – २६५, २६६।
खुशहाल खा – ३४०।
खुसरो – ३२०।
खुसरो, अमीर, देखिय अमीर

ख़ुसरो – २६६।
ख़ुसरो खा – २६७।
खेर, बी० जी० – ७१४।

गणेश – १६२, ४६१।
गयासुद्दीन, देखिये तुग़लक वश,
मलिक गाज़ी – २६८।
गयासुद्दीन बलबन, देखिये बलबन,
गयासुद्दीन, गुलाम वश – २६४
२६५।
गरिबाल्दी जे० – ५०७।
गरुड – १६२, २६३, २८६।
गव्वासी – ३४६।
गाधी, इदिरा – ७४१, ७४४, ७४६,
७४६ ७५५, ७६३ ७६६, ७६६
७७१, ७७५, ७७६, ७८०।
गाधी, मोहनदास करमचद (महा
त्मा) – ११, ७०, १६७, ५३२
५३४, ५४१, ५४८ ५५१, ५५३
५५५, ५५८-५६१, ५६४ ५६६,
५७२, ५७३, ५८६ ५८७, ५८६
५६२, ५६७, ५६६ ६०१, ६१०,
६११, ६१३, ६१४, ६१६, ६२०,
६२५, ६२६, ६२८, ६३०, ६३१,
६३४, ६३८, ६४४, ६५४, ६६०,
६६५ ६६७, ६८१, ६६१, ७६२।
गायकवाड राजवश – ३५६।
गिरि, वी० वी० – ५८३, ६०८,
६४५, ७४४, ७६३।
गिलगामेश – ३६।
गुगूनुम – २६।
गुप्त, देखिये गुप्त वश – १५८।
गुप्त वश – १३२, १५७ १६४, १६६-
१६८, १६६, १७०, १७१, १७६,
१७७, १७८, १८१, १८७, १८८,
१८६, २११, २२१, २२२, २२४,
२२५, २२७, २२८, २२६, २४०,
२४२।
कुमारगुप्त – १६२ १६३।
गुप्त – १५८।
घटोत्कच – १५८।
चद्रगुप्त (प्रथम) – १५६।
चद्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य –
१६१, १६२, १६७।
नरसिहगुप्त (बालादित्य) –
१६४।
बुद्धगुप्त – १६३।
समुद्रगुप्त – १५६ १६१, १६७।
स्कदगुप्त – १६३।
गुप्त, चद्रभानु – ७३०, ७३१, ७३५।
गुप्त, नलिनी – ५७२।
गुप्त समरेन्द्रनाथ – ५२०।
गुरजाडा अप्पाराव – ५२३।
गुलाबसिह – ४२७।
गुलाम वश – २६३-२६५।
इल्तुतमिश (शम्सुद्दीन इल्तु-
तमिश) – २६३, २६४।
गयासुद्दीन बलबन – २६४-२६५,
२७४।
नासिरुद्दीन महमूद – २६४ २६५।
रज़िया – २६४।
गुलाम हुसैन खा तबातबाई – ४४३।
गोदोफरीज़ – १५३।
गोकुला – ३४०।

गोखले गोपालकृष्ण – ५०६, ५१२, ५३१।
गोदे – ३६७।
गोपाल हरि देशमुख, देखिये देशमुख, गोपाल हरि, लोकहितवादी – ४३३।
गोरे, एन० जी० – ७३६।
गोर्डन, डी० एच० – ३३।
गोलवल्कर – ७२८।
गोल्दबेर्ग, न० म० – १२।
गोविंदसिंह, गुरु – ३४१, ३५३।
गोशाला – १४८-१५०।
गोस्वामी, किशोरीलाल – ५२२।
गौड, आर० एस० – ४४।
गौडपाद – २१८।
गौतम – २१४।
गौतम, देखिये गौतम शाक्यमुनि – १४८, १८५।
गौतम शाक्यमुनि, देखिये गौतम – १४८, १८४।
गौतमीपुत सतकनी, देखिये गौतमी पुत्र श्री शातकर्णी (सातकर्णी), शातवाहन वंश – १६५, १६६।
गौतमीपुत्र श्री शातकर्णी (सातकर्णी), देखिये गौतमीपुत सतकनी, शातवाहन वंश – १६५, १६६, १७३।
ग्रोमीको, अ० अ० – ७८०।
घटोत्कच, देखिये गुप्त वंश – १५८।
घोट, एस० वी० – ५७३, ५७५, ६१७।
घोष बंधु (अरविंद तथा वारींद्र) – ४८८।
घोष, अजयकुमार (घोष, अजय) – ६८३, ७२६।
घोष, अतुल्य – २२, ३५, ४५, ५०।
घोष, अरविंद, देखिये अरविंद घोष – १६७, ५०४, ५१६, ५२६, ५३०।
घोष, बारींद्र – ५२४।

चंगेज खां – २६४, ५१४।
चंदबरदाई – २६०।
चंदा साहब – ३६६, ३६७।
चंद्र – १६२।
चंद्रगुप्त प्रथम, देखिये गुप्त वंश – १५६।
चंद्रगुप्त द्वितीय, देखिये चंद्रगुप्त विक्रमादित्य, विक्रमादित्य, गुप्त वंश – १६१, १६२।
चंद्रगुप्त, देखिये मौर्य वंश – ७६, ८३, ८४, ८५, ८६, ६१, ६२, ६३, ६४, ६६, ६६, ११२।
चंद्रगुप्त विक्रमादित्य, देखिये चंद्र गुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य, गुप्त वंश – १६१, १६२, १६७।
चंद्रशेखर – ७६३, ७६५, ७६६।
चंद्रैया, धाराकोट – ४८१।
चक्रवर्ती, अम्बिका – ५६२।
चक्रवर्ती, मुकुंदराम, देखिये मुकुंदराम चक्रवर्ती – ३४६।
चटर्जी, बंकिमचंद्र – ४८८।
चट्टोपाध्याय, वीरेन्द्रनाथ – ५२६ ५२७, ५३६, ५७२।
चट्टोपाध्याय, शरतचंद्र – ५२२।
चरक – २०८, २२४।

चरणसिंह – ७६७, ७६६, ७७६।
चह्वाण, यशवतराव – ७६६।
चाणक्य, देखिये कौटिल्य – ८३।
चापेकर बधु – ४६२।
चार्ल्स द्वितीय – ३६०।
चालुक्य, देखिये पश्चिमी चालुक्य वश – १६७।
चित्तू – ४०५, ४०७।
चिश्ती, सलीम, देखिये सलीम चिश्ती – ३१४, ३४७।
चूडामन – ३४०।
चेट्टियार, एम० – ७०५।
चेट्टियार, सिंगारवेलु – ५७४, ५७५, ५७८।
चेतसिंह – ३८०।
चेम्सफोर्ड, लार्ड – ५४२, ५४६ ५४८, ५५५, ५६२।
चैतन्य – २६६।
चोल वश – २४४, २४५।
राजराज प्रथम – २४४।
राजेंद्र प्रथम – २४४।

जगत सेठ – ३७०, ३७७।
जफर अली खा – ५३२।
जफरशाह (हसन गगू) – २८०।
जब्बार खैरी – ५४३-५४४।
जमान शाह – ३८१, ३६६, ४२५।
जयतभट्ट – १६६।
जयदेव – २५६।
जयपाल – २६२।
जयसिंह (औरगजेब का सेनापति) – ३३८।
जयसिंह (जयपुर का राजा) – ४४४, ४४६।
जलालुद्दीन (ख्वारज्म का शाह) – २६४।
जलालुद्दीन फीरोज, देखिये खिलजी वश – २६५, २६६।
जवाहर बाई – २८४।
जसवतसिंह – ३४१।
जस्टीनस (जूनिआनस) – ८४, ८५।
जहागीर, देखिये सलीम, मुगल वश – ३१४, ३२० ३२३, ३२६-३२७, ३२८, ३६०।
जहादारशाह, देखिय मुगल वश – ३५४।
जाम्बेकर, बालशास्त्री – ४३३, ४४६।
जार्ज पचम – ५१८।
जिन – १४१ १४३।
जिन्ना, मुहम्मद अली – ५३२, ६१५, ६३८, ६५४।
जियाउद्दीन बरनी, देखिये बरनी, जियाउद्दीन – २६७।
जुपीटर – ६१।
जूनियस, देखिये फ्रासिस, फिलिप – ३७६।
जेम्स प्रथम – ३२१।
जैन – ६०३, ६४१, ७०५।
जैमिनी – २१६, २१७।
जोगलेकर, के० एन० – ५७३।
जोशी, जे० पी० – ३८।
जोशी, एन० एम० – ५८३, ६३५।
जोशी, पी० सी० – ६३५, ६७४।
जोशी, एस० एम० – ७३६।

जौना खा (जूना खा), देखिये मुहम्मद शाह, तुगलक वश – २६८।
ज्यूस – ६१।

टडन, पुरुषोत्तमदास – ६८४।
टाक वश, देखिय अहमदशाही वश – २८३।
अहमदशाह प्रथम – २८३, २८४।
बहादुरशाह – २८४-२८५, ३०५।
महमूद प्रथम बेगढ – २८३, २८४।
टाटा, जमशेदजी – ४६७, ५०६, ६०३, ६४१, ७०५, ७१६, ७५६।
टिकेंद्रजीत सिंह – ४८३-४८४।
टीपू (टीपू सुल्तान, टीपू साहब) – ३८६ ३८७, ३६०-३६८, ४००, ४०२, ४४३।

ठाकुर, अवनीन्द्रनाथ – ५२०।
ठाकुर (टैगोर) परिवार – ५२०।
ठाकुर, द्वारकानाथ – ४३२।
ठाकुर, प्रथम – ४४८।
ठाकुर, रवींद्रनाथ – ११, ७०, ५२०, ५२१ ५२२।
डफरिन, लार्ड – ४६०।
डलहौजी, लार्ड – ४२३, ४३७, ४४०, ४५६।
डालमिया – ६०३, ६४१, ७०५।
डागे, श्रीपाद अमृत (एस० ए०) – ५७३, ५७४, ५७७, ५८१, ६१७, ६३५।
डायनीसियस – १६२।
डायर (जनरल) – ५५२।
डूप्ले, जोजेफ फ्रासुआ – ३६५ ३६७।
डेरोजियो, हेनरी – ४३२।
डयूरेड – ४८४।

तात्या टोपे – ४३८, ४३६, ४४० ४४१।
तायुमानवर – ४४७।
ताराबाई – ३५६।
तिरुमल – २६२।
तिरवल्लुवर – २२२, २५६।
तिलक, बाल गगाधर – ११, १६७, ४८८ ४८६, ४६१ ४६२, ५०३ ५०६, ५०६, ५१३ ५१६, ५२२, ५३० ५३१, ५४३, ५४५, ५४८।
तिष्यरक्षिता, देखिय मौर्य वश – १०६।
तिस्सा – ८६।
तुगलक वश – २६८-२७१, २६७।
गयासुद्दीन (मलिक गाजी) – २६८।
फीरोज (फीरोजशाह) – २७०, २७४, २७७, २६७।
मुहम्मद शाह (जौना खा, जूना खा) – २६८, २६६, २७०, २७५, २७७, २७६, २८०, २८७, २६७।

तुलसीदास – ३१८, ३४५।
तुलुव वश – २८८।
अच्युत – २६१।
कृष्णदेव राय – २८८, २६१।
सदाशिव – २६१।
तेगबहादुर, गुरु – ३४१।

तैमूर – २७०-२७१, २८३।
तेलप (तैल) द्वितीय – २४४।
तोरमाण – १६४, २४०।
तोलस्तोय, लेव निकोलायेविच – ५२७, ५३३।
तोलेमी द्वितीय फिलादेल्फस – ८६।
त्राजन – १५५, १७६।

थापड, वी० के० – ४४।
थेंगडी, डी० आर० – ५७७।
दडीण – २५६।
दत्त, बटुकेश्वर – ५८८-५८६।
दत्त, यू० – ५२५।
दत्त, रजनी पाम – ६१३।
दमयती – ६६।
दलीपसिह (राजा) – ४२६, ४२७।
दशरथ, देखिये मौर्य वश – १०६।
दादू – ३१८।
दादोवा पाडुरग – ४४६।
दारा (दारयवहु, डेरियस) –७६, ८०।
दारा शिकोह – ३३२, ३३६।
दास, चित्तरजन – ५५५, ५६१, ५६५-५६६
दास, तारकनाथ – ५२७ ५२८।
दास, पी० बी० – ५२५।
दास, श्रीनिवास – ५२२।
दास, हेमचन्द्र – ५२४-५२५।
दिओदोरस – ८३, ११६।
दिङ्नाग – २१५।
दीनबधु मित्र – ४८७।
दुर्गा – २५६, ५०८।
दुर्गावती – ३०४।
देइमाखोस – ८७।
देमोक्रीतस – २१५।
देरेवेन्स्की, इवान – ३६४।
देवीसिह – ३७८।
देशमुख, गोपाल हरि, देखिये गोपाल हरि देशमुख, लोकहित वादी – ४३३।
देशमुख, चितामणि – ६६०।
देसाइ, मूलाभाई – ६३८, ६४४।
देसाई, मोरारजी – ७३१, ७३५, ७४४, ७६३, ७६६, ७६६, ७७६।
दोरा, तम्मन – ४८१।
दौलतराव, देखिये सिधिया (शिदे) वश – ४०२।
द्याकोव, अ० म० – १२।
द्यौ – ६१।
द्विवेदी, महावीरप्रसाद – ५२२।
द्विवेदी, एस० एन० – ७३५।

धर – ६७६।
धर्मकीर्ति – २१५।
धारिया, मोहन – ७६३।

नद – ७६, ८२ ८५, ८८।
नदकुमार – ३७६।
नदी – १५४।
नम्बूदिरिपाद, ई० एम० एस० – ७२४।
नज़ीर अक्बराबादी – ४४४।
नरसिह सालुव – २८८।
नरसिहगुप्त (बालादित्य), देखिये गुप्त वश – १६४।
नरसिहराव, पी० – ७८१।

नरेन्द्रदेव, आचार्य – ६११।
नल – ६९।
नहपान, देखिये क्षत्रप वश, पश्चिमी क्षत्रप – १६५, १७२।
नाग – १५६, १६०, १६२, १६६।
नाग, बी० मी० – ५२५।
नागसेन – १५२।
नागार्जुन – १६६, १८६, २२३।
नादिरशाह – ३५७, ४३८, ४४४।
नानक, गुरु – २९५-२९६, ३१८।
नाना फडनवीस – ३८८।
नानासाहब – ४३७, ४३८, ४४०, ४४१।
नामदेव – २९५, २९६।
नारायण – १८९, १९१-१९३।
नारायण, जयप्रकाश – ६१०, ६८४, ७६१, ७६२, ७६३।
नासिरजग – ३५९, ३६६, ४४३।
नासिरुद्दीन महमूद, देखिये गुलाम वश – २६४-२६५, २६७।
निबार्क – २१८।
निम्बकर, आर० एस० – ५७३।
निकीतिन, अफनासी – २८१, ४०७।
निजामशाही वश – २८१।
निजामुद्दीन औलिया – २९४।
नियार्कस – १३३।
नील, सर जेम्स – ४३८।
नूनिश – २९१।
नूरजहा – ३२६।
नेपोलियन बोनापार्त – ३९७, ४२६।
नेहरू, जवाहरलाल – ११, १९७, ४५२, ५५८, ५६१, ५६६-५६८, ५८७, ५८९, ५९३, ५९७, ६१०, ६१३, ६१४, ६१८, ६२०, ६४४, ६५४, ६५५, ६५७, ६५९, ६६७, ६७१ ६७३, ६७५, ६७९, ६८१, ६८३, ६८४, ६८६, ६९१, ६९७, ७०९, ७१०, ७२३, ७२४, ७२७, ७२८, ७३० ७३५, ७४१, ७४४, ७५२, ७५५, ७७४।
नेहरू, मोतीलाल – ५६१, ५६५ ५६७, ५८७-५८८, ६७९।
नौरोजी, दादाभाई – ४८६, ४९१, ५०९।
न्यूटन – २२३।

पचशिख – २०४।
पत, गोविन्दवल्लभ – ६२०, ७१५।
पटनायक, बीजू – ७३५।
पटेल बधु – ५६६।
पटेल, वल्लभभाई – ५६६, ५८७, ६४४, ६४९, ६५४, ६६०, ६६१, ६७९, ६८३, ६८४।
पटेल, विट्ठलभाई – ५६६।
पतजलि – ९६, ९७, १०७, १०९, १११, १३५, १६०, १६२, १९९, २०९-२११।
परमभागवत, देखिये चद्रगुप्त द्वितीय – १६२।
पल्लव वश – २६८, २४३, २४४।
पश्चिमी क्षत्रप (देखिये क्षत्रप वश) – १५५, १६०, १६१, १६२, १६४, १६७, १६८, १७२।
पश्चिमी चालुक्य वश, दक्षिण चालुक्य – २४१, २४३, २४४।

कीर्तिवर्मा (कीर्तिवर्मन) द्वितीय – २४३।
पुलकेशी द्वितीय – २४१, २४३।
पसेनदी, देखिये प्रसेनजित – ७८।
पांडव वंश – ५६, ६६, ६६, १६४।
पांडियन – १७६।
पांडय वंश – २४३, २४४, २४५, २६७।
पाइयागोरस – २२३, २३१।
पाटिल, एस० के० – ७३५।
पाणिनि – १११, १२६, १३३, २३४, १३५, १६०, १६२।
पार्वती, देखिये उमा, काली, शक्ति– १६३, २५६, २६०।
पाल वंश – २४३, २४४, २५५।
पाल, विपिनचंद्र – ५०४, ५१६, ५३०, ५४३।
पासी मदारी – ५५८।
पिगट, जार्ज – ३६६।
पिट, विलियम–४००, ४०६, ४१७।
पियदसी, देखिये अशोक – ८७ ८८।
पीरअली – ४३७।
पुरु (पोरस) – ८१, ८५।
पुरूरवा – ६८।
पुलकेशी द्वितीय, देखिये पश्चिमी चालुक्य वंश – २४१, २४३।
पुलुमावी, देखिये शातवाहन वंश – १६६।
पुश्किोव, रोदिओन – ३६४।
पुष्यमित्र, देखिये शुंग वंश – १०६, १०७, १०८।
पृथ्वीराज चौहान –२६०, २६३।
पृथ्वीसेन – १६७।
पेथिक लारेंस, लार्ड –६५०।
पेरो, पियेर –४०४।
पेशवा वंश–३५६, ३८७ ३८८, ४०३, ४०५ ४०६।
बाजीराव प्रथम –३५६।
बाजीराव द्वितीय–४०२, ४२८, ४३७।
बालाजी बाजीराव – ३५७, ३५८।
बालाजी विश्वनाथ – ३५६।
माधवराव प्रथम – ३८८।
माधवराव द्वितीय – ३८८।
रघुनाथराव (राघोबा) – ३८८।
पोंपिअस, ग्नीअस त्रोगस–८४, ८५।
पोलीबियस – १०७।
प्रजापति – ६३, ६४, १८६, १६३।
प्रताप, राणा – ३०४।
प्रभावतीगुप्ती, देखिये वाकाटक वंश – १६७।
प्रवरसेन प्रथम, देखिये वाकाटक वंश – १६६, १६७।
प्रसेनजित, देखिये पसेनदी – ७८।
प्लूतार्ख – ८४

फड़के, वसुदेव बलवंत– ४७७-४८१।
फतह खां – ३२६।
फरीदुद्दीन गंजे शकर (बाबा फरीद शकरगंज) – २६४।
फर्रुख़सियर, देखिये मुग़ल वंश – ३५४, ३५५, ३६१।
फाक्स, यू० जे० – ४१७।
फाम वान दोंग – ७८०।
फा स्यान (फा ह्यान)–११३, १७६।

फीरोज (फीरोजशाह), देखिये तुग़लक़ वंश–२७०, २७४, २७७, २६७।
फीरोजुद्दीन – ५७०।
फेयरसर्विस, डब्ल्यू० ए० – २१।
फैजी – ३४५, ३४६।
फ्रांसिस, फिलिप (जूनियस) – ३७६, ३७८, ४०६, ४१७।
बंदा बैरागी – ३५४।
बख्त खां – ४३७।
बगरहट्टा, जे० पी० – ५७५।
बदायूनी – ३४६।
बनर्जी, जे० – ५२५।
बनर्जी, यू० एन० – ५२५।
बनर्जी, राखालदास – २१।
बनर्जी, सुरेंद्रनाथ – ४८६, ५०५, ५१२, ५४६।
बरकतुल्लाह – ५३६, ५४४, ५६८।
बरनी, जियाउद्दीन, देखिये जिया-उद्दीन बरनी –२७०, २६७।
बरेलवी, सैयद अहमद, देखिये सैयद अहमद बरेलवी – ४३०।
बरो, टी० – ३७।
बर्क, एडमंड – ४१७।
बलबन, ग़यासुद्दीन, देखिये गयासुद्दीन बलबन, गुलाम वंश – २६४-२६५, २७४।
बहमनी वंश – २८० २८१, २८७, २८८।
अबुल मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमन शाह – २८०।
अहमदशाह – २८०।
बहमनी, अहमदशाह – २७९।
बहलोल खां, देखिये लोदी वंश – २७१-२७२।
बहशतिमित (बहपति मितम) – ११०।
बहादुरशाह प्रथम (मुअज्जम), देखिय मुग़ल वंश – ३४४, ३५३ ३५४।
बहादुरशाह, देखिय टाक वंश – २८४-२८५, ३०५।
बहादुरशाह प्रथम, देखिये मुगल वंश, मुअज्जम – ३४४, ३५३ ३५४।
बहादुरशाह द्वितीय, देखिय मुगल वंश – ४३५, ४३८।
बाजबहादुर – ३०४।
बाजीराव प्रथम, देखिये पेशवा वंश – ३५६।
बाजीराव द्वितीय, देखिये पेशवा वंश – ४०२, ४२८, ४३७।
बाढ का सैयद – ३५४।
बाण, देखिये भट्ट, बाण – १९६, २४२, २४२, २५६।
बादरायण – २०४, २०५ २१८।
बाबर, जहीरुद्दीन मुहम्मद, देखिये मुगल वंश – २७३, २९९ ३००, ३१४, ३४६।
बारवेल, रिचर्ड – ३७६।
बार्लो, जार्ज – ४०५।
बालशास्त्री जाम्बेकर, देखिये जाम्बेकर, बालशास्त्री – ४३३, ४४६।
बालाजी बाजीराव, देखिये पेशवा वंश – ३५६, ३५७, ३५८।
बालाजी विश्वनाथ, देखिये पेशवा

वश – ३५६।
बालादित्य, देखिये नरसिहगुप्त – १६४।
बालाबुशेविच, व० व०–१२।
बासव – २५५।
बिदुसार, देखिये अमित्रघतीस (अमित्रघातक), मौर्य वश–८३, ८६, ८७, ८८, ९०, ९८।
बिबिसार, देखिय हुर्यक वश–७८, ७९, ९१।
बिडला – ६०३, ६४१, ७०५, ७४५, ७५९।
बुक्क – २८६।
बुद्ध–९०, १०१, १०४, १०५, १३४, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १५५, १८२, १८३, १८४ १८६, १८८, २२०, २२१, २२४, २२४, २२६, २२७, २२८।
बुद्ध रेड्डी – २५९।
बुद्धगुप्त, देखिये गुप्त वश – १६३।
बुद्धघोष – १४९।
बुर्के – ४०४।
बुसी, शार्ल जोजेफ – ३६६, ३६७, ३६८, ३९१-३९२।
बृहद्रथ, देखिये मौर्य वश – १०६।
बृहस्पति – २००।
बेतोवेन, लुडविग फॉन – ७०।
बेदिल – ३४६।
बेनफील्ड, पाल – ३९९।
बेयजीद असारी, देखिये असारी, बेयजीद – ३१९, ३२३।
बेली, विलियम – ३९०।
बेलीन्स्की, व० ग० – ७०।
बेसेट, ऐनी – ५३१, ५४६।
बेस्ची, कोस्तांजियो, देखिये वीरम मुनि – ४४७।
बैरम खा – ३०३, ३१९।
बोगर्द लेविन, ग्रि० म० – १३।
बोस, नन्दलाल – ५२०।
बोस, रासबिहारी – ५२५।
बोस, शरतचद्र – ६४६।
बोस, सुभाषचद्र–५६६-५६८, ५८३, ५८७, ६१०, ६१३, ६१४, ६१९, ६२०, ६२५, ६२८, ६४६।
ब्रह्मगुप्त – २२२ २२३।
ब्रह्मा – ५३, ५६, ६३, ६४, ६६, १९१, १९३।
ब्रेज्नेव, ले० इ० – ७५४, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९।
ब्रेथवेट – ३९०।
ब्रैडले, बेन – ५८१, ६१३।

भकना, सोहनसिह – ५३४।
भगत सिह – ५८८ ५८९।
भट्ट, बाण, देखिय बाण – १९९।
भरत (ऋगवद मे राजा) –५८।
भरत (नाट्यशास्त्र का रचयिता) – २२१।
भरतचद्र राय – ४४६।
भागभद्र, देखिये शुग वश – १०८।
भानुगुप्त (बालादित्य) – २४०।
भारद्वाज – २००, २०२।
भावनागा – १६६।
भावे, आचार्य विनोवा – ६९६।
भास – २२०।

भुट्टो, ज़० अ० – ७५४।
भोसला राजवंश – ३५६।

मंसूर, फिरोजुद्दीन – ५७०।
मजीद, अब्दुल – ५७०।
मनरो, हेक्टर – ३६०।
मनु – ११५, १६०।
मनेरी, शरफुद्दीन अहमद, देखिये शरफुद्दीन अहमद मनेरी – २६४।
मफतलाल – ७६६।
मलिक अंबर – ३२४, ३२६।
मलिक काफूर – २६७।
मलिक गाज़ी, देखिये ग़यासुद्दीन, तुग़लक़ – २६८।
मसानी – ७२७।
मस्सोन, व० म० – ३४।
महमूद (ग़ज़नवी) – २६२-२६३, २६७।
महमूद गवां – २८०-२८१।
महमूद प्रथम बेगढ़, देखिये टाक वंश – २८३, २८४।
महादजी, देखिये सिंधिया (शिंदे) वंश – ३८८, ३९०, ३९२।
महादेव – ५०८।
महाबत खां – ३२६-३२७।
महावीर – १४१, १४३।
महासेन – १५८।
महिंद, देखिये महेंद्र – ८६।
महेंद्र, देखिये महिंद – ८६।
महेंद्र – १६०।
महेंद्रप्रताप – ५३६, ५४४ ५५५।
माटेग्यू – ५४२, ५४६-५४८, ५५५, ५६२।
माउंटबेटन, लार्ड – ६५७-६५९, ६६२, ६६५।
माओ – १५८।
मागस – ८६।
मात्सीनी, ज० – ५०७।
माधवराव प्रथम, देखिये पेशवा वंश – ३८८।
माधवराव द्वितीय, देखिये पेशवा वंश – ३८८।
माधवाचार्य – १९९, २०६, २१८।
मानसिंह – ३०४।
मॉयरा, लार्ड, मार्क्विस ऑफ हेस्टिंग्स – ४०६।
मार्क्स, कार्ल – ५५, ३९९, ४००, ४०९, ४१०-४११, ४१६, ४३६, ४५२, ४६३, ४६८, ५७३।
मार्तिन, क्लॉद – ४५०।
मार्ले, जॉन – ५१४, ५१६, ५१७, ५४७।
मार्शल, सर जॉन – २६, ३५।
मालवीय, के० डी० (केशवदेव) – ७३१।
मालेन्स्की, सेम्योन – ३६४।
माविस – १५३।
मिंटो, लार्ड – ५०८, ५१२, ५१६, ५१७, ५४७।
मिगर – १४६।
मित्र (मियर) – १५८।
मिनहाजुद्दीन जुरजानी – २६७।
मिनायेव, इ० प० – १२, ४५७।
मिर्ज़ा असदुल्लाह खां ग़ालिब – ४४५।
मिर्ज़ा नत्थन – ३४७।

मिर्जा मुहम्मद रफी, देखिये 'सौदा' – ४४५।
मिलिंद, देखिये मेनादर (मेनेंद्र) – १५२।
मिश्र, ललितनारायण – ७६२।
मिहिरगुल (मिहिरकुल) – १६४, २४०।
मीर कासिम – ३७१, ३७२-३७३, ४४३।
मीर जाफर – ३७१, ३७३।
मीर जुमला, देखिये अर्दिस्तानी, मुहम्मद सईद, मुहम्मद अर्दिस्तानी – ३३१, ३३२।
मीर तक़ी मीर – ४४४।
मीर मुशर्रफ हुसैन – ४८७।
मीर जुमला, देखिये अर्दिस्तानी, मुहम्मद सईद, मुहम्मद सईद अर्दिस्तानी – ३३१, ३३२।
मीर सादिक़ – ३६५।
मीर सैयद मुहम्मद – ३१७।
मीराजकर, एस० एस० – ६१८।
मीराबाई – ३४५।
मुअज्ज़म, देखिये बहादुरशाह प्रथम, मुग़ल वंश – ३५३।
मुइनुद्दीन चिश्ती – २६४।
मुकुंदराम चक्रवर्ती, देखिये चक्रवर्ती, मुकुंदराम – ३४६।
मुखर्जी – ७०५।
मुखर्जी, अवनी – ५७०-५७१, ५७३।
मुखर्जी, श्यामप्रसाद – ६६०।
मुखर्जी, हरिश्चंद्र – ४८८।
मुग़ल वंश – २३७, २७३, २८५, ३०३, ३०५ ३१०, ३१२, ३१४, ३१६, ३२०-३३३, ३३६-३४४, ३४६-३४६, ३५३-३५७, ३६० ३६१, ३६६, ३७०, ३७२-३७३, ३७५, ४०८, ४२४, ४४३, ४४४, ४४८, ४५१, ५१८, ५१६।
अकबर – ३००, ३०१, ३०३-३०५, ३०६-३१०, ३१३-३२०, ३२१, ३२२, ३३२, ३३३, ३३६, ३४४, ३४७, ३५४।
अक्बर (औरंगज़ेब का पुत्र) – ३४२।
आलम द्वितीय (अली गौहर) – ३७३, ३७५, ४०४।
औरंगज़ेब – ३२६-३३३, ३३६ ३३८, ३४० ३४५, ३४७, ३५३, ३५५, ३६०, ३६४।
जहांगीर (सलीम) – ३१४, ३२०-३२३, ३२६-३२७, ३२८, ३६०।
जहांदारशाह – ३५४।
फर्रुख़सियर – ३५४, ३६१।
बहादुरशाह द्वितीय – ४३५, ४३८। ३४४, ३५३-३५४।
बहादुरशाह प्रथम (मुअज्ज़म) – बाबर, ज़हीरुद्दीन मुहम्मद – २७३, २६६-३००, ३१४।
मुहम्मद शाह – ३४४, ३५४, ३५७।
शाहजहां – ३२६, ३३२, —३४७, ३४८, ३६४।
मुजीबुरहमान, शेख – ७५२।
मुज़फ्फरजंग – ३५६, ३६६।
मुबारक – ३१६, ३१७, ३२८।

मुबारकशाह, देखिये सैयद वंश—२७१।
मुबारकशाह कुतुबुद्दीन, देखिये कुतुबुद्दीन मुबारकशाह, खिलजी वंश—२६७।
मुराद—३३२।
मुर्शिद कुली खां—३३०, ३५५, ३६६-३७०।
मुहम्मद गोरी (शहाबुद्दीन)—२६३।
मुहम्मद शाह, देखिये जौना खां (जूना खां), तुगलक़ वंश—२६८, २६६, २७०, २७५, २७७, २७६, २८०, २८७, २६७।
मुहम्मद शाह, देखिये मुग़ल वंश—३४४, ३५४, ३५७।
मुहम्मद शाह, देखिये सैयद वंश—२७१-२७२।
मुहम्मद सईद अर्दिस्तानी, देखिये अर्दिस्तानी, मुहम्मद सईद, मीर जुमला—३३१।
मुहम्मद सलीह क्बू, देखिये कबू, मुहम्मद सलीह—३४७।
मुहम्मदअली—३६६, ३६७, ३६८ ४००।
मूसा खां—३२२।
मेगस्थनीज़—७६, ८६, ६३, ६४, ६६, १००, १०६, ११२, ११३, ११४, ११६, ११७, १२३, १२५, १२६, १३०, १५०, १५१, १६०, १६२।
मेघवर्ण—१६१।
मेनादर् (मेनेंद्र), देखिये मिलिंद—१०७, १५२, १७७।
मेहता, अशोक—६१०, ७३६।
मेहता, फीरोज़शाह—५३१।
मैकाले, लार्ड टॉमस बैबिंग्टन—४१८।
मैय्यूज़, रिचार्ड—३६१।
मोनसन, ह०—३७६।
मोन्सेरर्ति—३१६।
मोहानी, हसरत, देखिये हसरत मोहानी—५७५।
मौखरि—१६४।
मौर्य वंश—७६, ८३, ८४, ८६, ८७, ८८, ८६, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६६, १००, १०१, १०५, १०६, १०७, १०८, १०६, ११०, १११, ११२, ११४, ११८, १२०, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३८, १५०, १५२, १५८, १६८, १७१, १८२, १८६, १६०, १६२, २०४, २२६, २२६, २३०, २४२।
अशोक—७६, ७७, ८७, ८८, ८६, ६०, ६१, ६२, ६३, ६५, ६८, ६६, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०८, १०६, ११३, १३३, १३४, १३५, १६८।
चंद्रगुप्त—७६, ८३, ८४, ८५, ८६, ६१, ६२, ६३, ६४, ६६, ६६, ११२, १३६।
तिष्यरक्षिता—१०६।
दशरथ—१०६।
बिंदुसार (अमित्रखतीस, अमित्रघातक)—८३, ८६, ८७, ८८, ६०।
बृहद्रथ—१०६।

गपदी (गम्प्रति)-१०५, १०६।
गुनगमेन (मोरगमेनग)-१०७।
मोतयी लियारत गां-४२७।
म्यूनर, मवग-६३।

यगायतराय होल्कर-४०२।
यगोधर्मा (यगोधर्मन)-१६४।
यादव-२४५, २६५।
याह्या गां-७५१।
याज्ञवल्क्य-७५, १७४।
यामिर, हुसान-६१७ ६२७
७१६।
यूरेनस-६११।
यूडीमोम-८५।

रगा, एन० जी०-६०८ ६०६,
६८६, ७२७।
रघुजी भोंसले-४०३।
रघुनाथराव, देखिये राघोबा, पेशवा
यग-३८८।
रजिया, देखिये गुलाम यग-२६४।
रणजीतसिंह (राजा)-४२५ ४२६,
४२७।
रणदिवे, बी० टी०-६७५।
रहीम-२६३।
राघोबा, देखिये रघुनाथराव, पेशवा
यग-३८८।
राजगोपालाचारी, चक्रवर्ती-६३८,
७२७।
राजनारायण-७६७, ७६६।
राजराज प्रथम, देखिये चोल वंश-
२४४।
राजगिर-३४२।
राजाराम-३४३ ३५६।
राजेंद्र प्रथम देखिये चोल यग-
२४४।
राजेंद्रप्रसाद-५६६, ६२०, ६५४,
६६० ६८१।
राज्यवर्धन-२४१।
राधा-२५६, २६६, ४५१।
रानाडे, महादेव गोविंद-४८६।
राम-५८, ६६, ६६, १६०, २५६,
२६३, २६५, ३१८।
राम, जगजीवन-७६५, ७६८,
७७६।
राम द्वितीय, देखिये अरावितु यग-
२६२।
राम राय-२६१, २६२।
रामकृष्ण विश्वनाथ-४३३, ४४६।
रामगुप्त-१६१।
रामचंद्र-२६५।
रामजोगी-४४६।
रामदास (१५८४-१५८१)-३१८।
रामदास (१६०८-१६८१)-३३७।
रामपाल-२५८ २५६।
रामप्रसाद सेन-४४६।
राममोहन राय, देखिये राय, राम
मोहन-४३२, ४४७।
रामलिंग स्वामी-४४७।
रामसिंह-४७६-४७७।
रामानुज-२१८ २१६, २५८।
राय, ए० एन०-७६२।
राय, एम० एन० (मानवेंद्रनाथ)
-५६६ ५७३, ५७५, ६१८, ६२८।

राय, राममोहन, देखिये राममोहन राय – ४३२, ४८७।
राय, लाला लाजपत – ५०४, ५११, ५४५, ५५५, ५५७, ५६१।
राव, श्रीनिवास – ५२२।
राव, एस० आर० – २५।
रावण – ६६, १६०।
रावभाई राणा, एस० – ५२६-५२७।
राष्ट्रकूट – २४३, २४४, २५०।
रिपन, लार्ड – ४८६ ४६०।
रीडिंग, लार्ड – ५६१।
रुद्र – ६१, ६२, १६२।
रुद्रदामन, देखिये क्षत्रप वंश – १६५, १७१।
रुद्रदेव, देखिये रुद्रसेन प्रथम, वाकाटक वंश – १६७।
रुद्रसेन प्रथम (रुद्रदेव), देखिये वाकाटक वंश – १६७, १६६।
रुद्रसेन द्वितीय, देखिये वाकाटक वंश – १६७, १६६।
रुद्रसेन तृतीय – १६०।
रुबेन, डब्ल्यू० – ३२।
रेइसनेर, ई० म० – १२।
रेड्डी, अम्मल – ४८१।
रेड्डी नीलम, संजीव – ७६६।
रेड्डी, ब्रह्मानंद – ७६६, ७७०।
रो, सर टॉमस – ३२१।
रोज, सर ह्यू – ४४०।
रोदिन – ७०।
रौलट, एस० – ५४८, ५४६।

लक्ष्मी – १७६, १६३।
लक्ष्मीबाई (रानी) – ४४० ४४१।
ला-बूर्दोने, बेर्टराड फ्रांसुआ – ३६६, ३६७।
लायड जार्ज – ५६३।
लार्सा – २६।
लाल, बी० बी० – ३२, ४४, ५६।
लाली-तोल्लेन्दाल, टॉमस आर्थर – ३६८।
लाहौरी, अब्दुल हमीद, देखिये अब्दुल हमीद लाहौरी – ३४७।
लिड्से, जॉन – ३६६।
लिच्छवि – ७८, १३०, १५६।
लिटन, लार्ड – ४८६।
लिनलियगो, लार्ड – ६२१, ६३८।
लिमये, मधु – ७३६, ७७०।
लियाक़तअली खां, देखिये खां, लियाकतअली – ६३८, ६४४।
लुई पंद्रहवां – ३६३।
लूनाचार्स्की, अ० व० – ५४४।
लेक, जेरार्ड – ४०४।
लेनिन, व्ला० इ० – ४६८, ५१४, ५१५, ५४२-५४५, ५५३, ५६७ ५६८, ५७१, ५७३, ५८६।
लेबेदेव, गेरासिम स्तेपानोविच (लेबेदेफ हेरासिम) – ४४६, ४४८।
लोकनाथन, पी० – ४६५।
लोकहितवादी, देखिये गोपाल हरि देशमुख, देशमुख, गोपाल हरि – ४४६।
लोखंडे, एन० एम० – ४८२-४८३।
लोदी वंश – २७१, २७२ २७३, २७६, २६८।

इब्राहीमहाश–२७२-२७३, ३००।
बहलोल खा – २७१-२७२।
सिकंदर शाह – २७२।
लोहिया, राममनोहर – ७३६, ७४२।

वजीर अली – ३८१-३८२।
वराहमिहिर – २२२-२२३।
वरुण – ६१, ६२, ६४, ६६, ७१।
वर्धमान – १४०-१४१, १४३।
वल्लभ – २१८।
वसील मुहम्मद – ४०५, ४०७।
वसुदेव – १०८, १८६, १९० १९१।
वसुदेव (शासक) – १५६।
वसुबधु – १८७।
वसुमित्र, देखिये शुग वंश – १०७, १०८।
वाकाटक वंश – १६२, १६६ १६६, १७५।
प्रभावतीगुप्ता – १६७।
प्रवरसेन प्रथम – १६६।
रुद्रसेन द्वितीय – १६७, १६६।
रुद्रसेन प्रथम (रुद्रदेव) – १६७, १६६।
विध्यशक्ति – १६६।
वाच – ६३।
वाचस्पति – २०६।
वाजपेयी, अटलबिहारी–७६७, ७७८।
वाट्सन – ३७०।
वाडिया, बी० पी० – ५४१।
वायु – ६१।
वालचद –६०३, ६४०।
वाल्मीकि –६६, १६०।
वासुदेव (वैष्णव देवता) – १८६ १६१।
वास्को द गामा – २८५, २८६।
विडहम, सर चार्ल्स – ४३६।
विध्यशक्ति, देखिये वाकाटक वश – १६६।
विक्टोरिया, महारानी – ४४१, ४५५, ४५६, ४५७, ५१६।
विक्रमाजीत (विक्रमादित्य), देखिये हेमू – ३०३।
विक्रमादित्य, देखिय चद्रगुप्त द्वितीय, चद्रगुप्त विक्रमादित्य, गुप्त वश – १६२, १६७।
विदेघ मायव (विदेह माधव) – ४६।
विशाखदत्त – १६१।
विष्णु – ६२, ६४, ६६, १०८, १८७, १८८ १६३, २४२, २५६, २६३, ३४६, ३६४।
विष्णुगोप – १६०।
विलियम तृतीय – ३६०।
वीमा कदफिसस, देखिये कदफिसस द्वितीय – १५४।
वीर नरसिंह – २८८।
वीरजी वोरा (बोहरा) – ३२५।
वीरम मुनि, देखिये बेस्ची, कोस्तान्जियो – ४४७।
वुड, सर चार्ल्स – ४५४।
वूडयार वश –३८३, ३६८।
वत्रासुर – ६१।
वेकट द्वितीय, देखिये अराविदु वश – २६२।
वेरेश्नागना – १५८।

वेरेश्चागिन, व० व० – ४७७।
वेलू तम्पी – ४०१-४०२।
वेलेजली, आर्थर (ड्यूक ऑफ वेलिंग्टन) – ४०१, ४०३।
वेलेजली, रॉबर्ट, लार्ड – ३९७-३९८, ४०३।
वेवेल – ६३८, ६४४, ६५३।
वैसीटार्ट, हेनरी – ३७१।
व्यास – ६६, २०६।

शकर – १६६, २०५, २१८ २१६, २५७ २५८।
शकरदेव – ३४५।
शभूजी (समाजी) – ३३८, ३३६, ३४३, ३५६।
शक्ति, देखिये उमा, काली, पार्वती – १६१, २५६।
शफीक, मुहम्मद – ५७०।
शम्सुद्दीन इल्तुतमिश, दखिये इल्तुतमिश, गुलाम वश – २६३।
शम्से सिराज अफीफ – २९७।
शरफुद्दीन अहमद मनेरी, देखिये मनेरी, शरफुद्दीन अह्मद – २९४।
शर्मा, आर० एस० – ४५।
शर्मा, कार्यानन्द – ६३७।
शर्मा, योगींद्र – ६८६।
शशाक – २४१, २४२।
शहरयार – ३२६।
शाडिल्य – ७५।
शाइस्ता खा – ३३७-३३८।
शाकुतल – २२०।
शाक्य – १३२, १४८।
शातकर्णी, देखिये सतकनी – ११०, १६५।
शातवाहन वश – ११०, १६५, १६६।
गौतमीपुत सतकनी (गौतमीपुत्र श्री शातकर्णी/सातकर्णी) – १६५।
पुलुभावी – १६६।
सातकणी (श्री यज्ञ शातकर्णी) – १६६।
शापुर प्रथम – १५७।
शालिवाहन वश, देखिये सातवाहन, आध्र वश – १६५।
शास्त्री, लालबहादुर – ७३६, ७४०, ७४१।
शास्त्री, वी० बी० – ५२२।
शाहजहा, देखिये मुगल वश – ३२६ ३३२, ३४७, ३४८, ३६४।
शाहजी – ३३७।
शाहनवाज खा – ४४३।
शाहबाज खा – ३०६।
शाह शुजा – ३३२।
शाहूजी, देखिये साहूजी – ३४३, ३५६।
शिदे वश, देखिये सिधिया वश – ३५६, ३८८।
शिबली, नोमानी – ५३१।
शिव – ३५, ६२, ६४, ६६, १५४, १५८, १८७, १६१ १६३, २२७, २४२, २५६, २६०, ४४७।
शिवाजी – ३३७ ३३६, ३४३, ३५६, ४०६, ४४५, ४८८, ४६१, ५०३।
शिशुक (सिधुक), देखिय सिमुक – ११०।

शिशुनाग, दखिये शैशुनाग वश – ७६।
शुग वश – ७६, १०६, १०७, १०८, १०६, १५२, १६२।
पुष्यमित्र – १०६, १०७, १०८।
भागभद्र – १०८।
वसुमित्र – १०७, १०८।
शूद्रक – २२०।
शेख अयाज – ३६१।
शेर खा सूर, देखिये शेर शाह – ३०१।
शेर शाह, देखिये शेर खा सूर – ३०१-३०२, ३१८।
शेरिडन, रिचर्ड ब्रिस्ले – ४१७।
शैशुनाग वश – ७६।
शिशुनाग – ७६।
श्चेरबात्स्कोय, फ० इ० – १२, १४६, २१४।
श्रद्धा – ६३।
श्री यज्ञ शातकर्णी, देखिये सातकणी, शातवाहन वश – १६६।
श्रीरगम द्वितीय, देखिये अराविदु वश – २६२।
श्रीरामुलु पोति – ७१० ७११।

सकर्षण – १८६, १६१।
सगम वश – २८७ २८८।
सध्याकर नद – २५८।
सप्रति, देखिये सपदी, मौर्य वश – १०५, १०६।
सपदी, दखिय सप्रति, मौर्य वश – १०५, १०६।
सतक्नी, देखिय शातकर्णी – ११०, १६५।
सत्तार खैरी – ५४३।
सत्यपाल – ५५२।
सत्यभक्त – ५७४-५७५।
सदाशिव, देखिय तुलुव वश – २६१।
सदासुखलाल – ४४५।
सनातन – ३२२।
सप्रू – ६३८।
सफदरजग – ४५०।
समुद्रगुप्त, देखिय गुप्त वश – १५६ १६२, १६७।
सरगोन प्रथम – २६।
सरस्वती, स्वामी सहजोनद – ६०६, ६१७, ६३७, ६८६।
सलीम चिश्ती, दखिय चिश्ती, सलीम – ३१४, ३४७।
सलीम, देखिये जहागीर, मुगल वश – ३२०।
सहदेव – ५५८।
सागा, राणा – ३००, ३१४।
साइमन, लार्ड – ५७८, ५८६, ५८७, ५६६, ६११।
सातकणी, देखिये श्री यज्ञ शातकर्णी, शातवाहन वश – १६६।
सातवहन वश दखिये शालिवाहन वश, आध्र वश – १६४-१६६, १६८ १६६, १७३, १७८।
सारग खा – २७६।
सावरकर बधु – ५२४ ५२५।
सावरकर, गणेश – ५२४।
सावरकर, विनायक – ५२४, ५२६।
सासानी वश – १५६, १५७, १६३।
साहनी दयाराम – २१।

साहूजी, देखिये शाहूजी – ३४३, ३५६।
सिघन – २४५।
सिघानिया – ६०३।
सिंधिया (ग्वालियर का राजा) – ४५६, ४५८।
सिंधिया वंश, देखिये शिंदे वंश – ३८८, ४०३-४०५।
दौलतराव – ४०२-४०६।
महादजी – ३८८, ३६०, ३६२।
सिंधी, उबेदुल्लाह – ५३५, ५३६।
सिंहसेन – १६०।
सिकंदर महान–७६ ८६, ६१, १०६, १३०, १३३, २३०।
सिकंदर शाह, देखिये लोदी वंश – २०२।
सिद्दी राजवंश – ३४३।
सिद्धार्थ – १४८।
सिमनानी, अलाउद्दौला, देखिये अलाउद्दौला सिमनानी – २६४।
सिमूक (सिंधुक), देखिये शिशुक – ११०।
सिराजुद्दौला – ३७०।
सीता – ६६, १६०।
सीतारमैया, पट्टाभि – ६२०, ६७६।
सीरोयेजिन, निकीता – ३६४।
सुंदरैया, पी० – ७३६।
सुदास – ५८, ६८।
सुन्दरम पिल्लै – ४४७।
सुमगसेन, देखिये सोफागसेनस, मौर्य वंश – १०७।
सुश्रुत – २२४।
सूफ्रा, पियेर आद्रे – ३६०।
सूर (सूरी) वंश – ३०३।
सूरदास – ३४५।
सूर्य – ६१, २४२।
सेन, सूर्य – ५६२।
सेनापति, फकीरमोहन – ५२२।
सेपासी, देखिये अली, मुहम्मद – ५७३।
सेलीनी – १५८।
सेल्यूक्स – ७६, १०७।
सेल्यूकस नीकातोर – ८६, ८६, ६२, ६२, ६६, १०७।
सैयद अहमद खां – ४६१ ४६२।
सैयद अहमद बरेलवी, देखिय बरेलवी, सैयद अहमद – ४३०।
सैयद वंश – २७१ २७२।
आलम शाह – २७२।
खिज्र खां – २७१, २७६।
मुबारक शाह – २७१।
मुहम्मद शाह – २७१ २७२।
सोफागसेनस (देखिये) सुभगसेन, मौर्य वंश) – १०७।
सोम – ६१, ६२ ६३, ६४, ७१।
सौदा, देखिये मिर्जा मुहम्मद रफी – ४४५।
स्कंद – ६६, १५८, १६२, १६३।
स्कंदकुमार – १५८।
स्कंदगुप्त, देखिये गुप्त वंश – १६३।
स्कीलाक – ८०।
स्त्राबो – ८६, १५०, १५१, १५३।
स्त्रूवे, व० व० – ३२।
स्मिथ, विन्सेंट – १६१।

स्वर्णसिंह – ७६६, ७६६, ७७६।
स्वेर्दलोव, या० मि० – ५४४।

हडसन – ४३८।
हबीबुल्लाह – ५३५।
हरगोविंद, गुरु – ३२३।
हरदयाल, लाला – ५२७, ५२८, ५३६।
हरमिया – १५४।
हरि नायक – ४७८।
हरिभद्र – १६६, २५६।
हरिषेण – १५६, १६१।
हरिहर – २८७।
हर्यक वंश – ७८, ७६।
अजातशत्रु – ७८, ७६।
उदय (उदायी) – ७६।
बिंबिसार – ७८, ७६, ६१।
हर्ष, देखिये हर्षवर्धन – २४१-२४३, २५५।
हर्षवर्धन, देखिये हर्ष – २४०।
हसन, महमूद – ५३५।
हसरत मोहानी, देखिये मोहानी, हसरत – ५७५।
हाइने – ७०।
हाइने गेल्दनर, आर० – २१, ४२।
हाजी शरियतुल्लाह – ४३१।
हाफिज रहमत खां रुहेला – ४३७।
हार्डिंग, लार्ड – ५१८, ५२५।
हाल्दार, ए० के० – ५२०।
हिप्पालस – १७८।
हिरादतस – ८०।
हीराचंद – ७०४।
हुएनत्सांग (ट्वानचांग) – १६६, १८१, १८३, २२८, २४२।
हुमायूं – ३०० ३०१, ३०२, ४३८।
हुविष्क – १५६, १५८।
हुसैन (इमाम) – ४४६।
हुसैन, गुलाम – ५७३, ५७७।
हुसैन, जाकिर – ७४४।
हेफीस्तस – १५८।
हेमू, देखिये विक्रमाजीत (विक्रमादित्य) – ३०३।
हेराउस, देखिये कुषाण हेराउस – १५४।
हेराक्लीज – १५८, १६०।
हेलिओस – ६१, १५८।
हेलियोडोरस – १६१।
हेस्टिंग्स, वारेन, लार्ड – ३७५ ३८१, ३८८, ४१७-४१८।
हैदरअली – ३८३-३८७, ३८६-३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ४४३।
हैवलाक – ४३८ ४३६।
हैवेल, ई० बी० – ५२०।
हो ची मिन्ह – ६७२।
होयसल वंश – २४५, २६७, २८७।
होल्कर वंश – ३५६, ३८८, ४०३, ४०४-४०५, ४०६, ४३०।
ह्यूज, सर एडवर्ड – ३६०।
ह्यूम, ऐलन – ४६०।
ह्योर्न्ली, बेदरिख – ३७।
ह्विटले – ५८२ ५८३।
ह्वीलर, मोर्टीमर – २६।

ग्रथ-सूची *

भारतीय इतिहास पर मार्क्स, एगेल्स और लेनिन की रचनाए

मार्क्स, कार्ल। 'भारत म ब्रिटिश राज', का० मार्क्स और फ्रे० एगेल्स, सकलित रचनाए, तीन खण्डो मे, खण्ड १, भाग २ हिन्दी अनुवाद प्रगति प्रकाशन, मास्को १९७८।

मार्क्स कार्ल। भारत म ब्रिटिश राज के भावी परिणाम , का० मार्क्स और फ्रे० एगल्स, सकलित रचनाए, तीन खण्डो म, खण्ड १, भाग २ हिन्दी अनुवाद प्रगति प्रकाशन मास्को, १९७८।

Marx Karl and Engels Frederick *The First Indian War of Independence 1857 1859* Progress Publishers Moscow, 1978

मार्क्स काल। ईस्ट इण्डिया कम्पनी, उसका इतिहास तथा उसक कार्य क्लाप क परिणाम', कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एगल्स उपनिवेशवाद के बारे म' लेख और पत्र, हिन्दी अनुवाद, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७६।

Lenin V I *Inflammable Material in World Politics* Collected Works vol 15, Progress Publishers Moscow 1963

लेनिन ब्ला० ई०। 'एशिया का जागरण' एशिया का जागरण', लेख सग्रह हिन्दी अनुवाद, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७४।

लेनिन ब्ला० इ०। 'मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद ', लेख सग्रह, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७२।

लेनिन ब्ला० इ०। 'पूर्व की जातियो के कम्युनिस्ट सगठनो की दूसरी अखिल रूसी काग्रस मे दी गयी रिपोर्ट', हिन्दी अनुवाद, प्रगति प्रकाशन मास्को १९८०।

लेनिन, ब्ला० इ०। भारतीय क्रान्तिकारी सघ को', 'एशिया का जागरण', लेख सग्रह, हिन्दी अनुवाद, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९७४।

लेनिन, ब्ला० इ०। 'चाहे कम हो, पर बेहतर हो', 'राज्य के प्रशासन

* सूची मे भारतीय इतिहास से सबद्ध हमारे कुछ मुख्य सदर्भ ग्रथो के नाम ही दिये गये है।

म जनता की गिरक्त , लेख मग्रह हिन्दी अनुवाद प्रगति प्रकाशन मास्को, १९७८।

प्राचीन भारत

Age of the Nandas and Maurvas Banaras 1952

Agrawal D P *Copper Bronze Age in India* New Delhi 1971

Agrawal D P Kusumgar S *Prehistoric chronology and Radiocarbon Dating in India* New Delhi 1974

Agrawala V S *India as known to Panini* Lucknow 1953

Allchin B R, *The Birth of Indian Civilisation* Harmondsworth 1968

Allchin F R *Piklihal Excavations* Hyderabad 1960

Allchin F R *Utnur Excavations* Hyderabad 1961

Altekar A S *A History of Village Communities in Western India* Oxford, 1927

Aryan and Non Aryan in India ed by Deshpande Madhav M Hook, P E Ann Arbor 1979

Basham, A L *History and Doctrines of the Ajivikas* L 1951

Bhandarkar D R *Asoka* 3rd ed Calcutta 1955

Bhandarkar D R *The Early History of the Deccan* 3rd ed Calcutta 1928

Bhandarkar R G *Vaishnavism Sivaism and Minor Religions Systems* Varanasi 1965

Bhargava P L *India in the Vedic Aga* Lucknow 1956

Bongard Levin G M *Studies in Ancient India and Central Asia* Calcutta 1971

Bongard-Levin G M *Maurvan India* (in Russian) M 1973

Bongard-Levin, G M Ilyin G F *Ancient India* (in Russian) Moscow 1969

Bhattacharji S *The Indian Theogony* Cambridge 1970

Bose A, *Social and Rural Economy of Northern India (600 B C — 200 A D)* vol I II Calcutta 1942-45

Chattopadhyaya Debiprasad *Indian Atheism A Marxist Analysis* Calcutta 1969

Chattopadhyaya Debiprasad *Lokayata A Study in Ancient Indian Materialism* New Delhi 1959

Chattopadhyaya, Debiprasad *What is Living and What is Dead in Indian Philosophy* New Delhi 1976

Childe V G *New Light on the Most Ancient East* 4th ed New York 1957

Comprehensive History of India vol II, The Mauryas and Satavahanas, Calcutta, 1957
Conze, E , *Buddhism Its Essence and Development* L , 1960
Conze E , *Buddhist Thought in India* L , 1962
The Cultural Heritage of India Calcutta, vol I (1958), vol II (1962), vol III (1953) vol IV (1956)
A Cultural History of India ed by Basham A L , Oxford, 1975
Dani, A H *Prehistory and Protohistory of Eastern India* Calcutta, 1960
Das Dipakranjan *Economic History of the Deccan (from the fifth to the sixth century A D)* Delhi, 1969
Dutt S , *Early Monastic Buddhism* 2 vls , Calcutta 1941-45
Essays in Indian Protohistory ed by Agrawal D P , Chakrabarti, Dilip K Delhi 1979
Fairservis W A , *The Roots of Ancient India* New York, 1971
Ghosh A *The City in Early Historical India* Simla 1973
Ghoshal U N , *The Agrarian System in Ancient India* Calcutta 1930
Ghoshal U N , *A History of Indian Political Ideas* Bombay, 1959
Ghoshal, U N *Studies in Indian History and Culture* Calcutta, 1957
Gonda, J , *Vedic Literature* Wiesbaden 1975
Gordon, D H *The Prehistoric Background of Indian Culture* Bombay, 1958
Indian Society Historical Probings In Memory of D D Kosambi ed by R S Sharma and Vivekanand Jha New Delhi 1974
Jayaswal K P *Hindu Polity* 3rd ed , Bangalore 1955
Jaiswal S *The Origin and Development of Vaisnavism* Delhi 1967
Joshi J P *Excavations at Surkotada* Bombay 1973
Kane P V , *History of Dharmasastra* vls I-V, Poona 1930 1962
Kher N N , *Agrarian and Fiscal Economy in the Mauryan and Post-Mauryan Age* Delhi, 1973
Kosambi, D D , *An Introduction to the Study of Indian History* Bombay, 1956
Lamotte E , *Histoire du bouddhisme indien* Louvain, 1958
Macdonell A A , Keith, A B , *Vedic Index* vol I II Delhi 1958
Mackay E J H *Further Excavations at Mohenjo Daro* New Delhi 1938
Mahabharata Myth and Reality editors Gupta S P Ramachandran K S New Delhi 1976
Majumdar, R Ch *Corporate Life in Ancient India* Calcutta 1922
Majumdar R C , *Readings in Political History of India* Delhi 1976
Marshall J , *Mohenjo Daro and the Indus Civilization* vls vI III L 1931
Masson U M *Central Asia and Ancient East* (in Russian) Moskow
Leningrad 1964

Mookerji R R *Local Government in Ancient India* Delhi, 1958
Narain, A K, *The Indo Greeks* Oxford 1957
Piggott S, *Prehistoric India* Harmonsworth 1950
Radiocarbon and Indian Archaeology ed by Agrawal D P, Ghosh A Bombay, 1973
Rao, M S, Nagaraja, Halahotra K C, *The Stone Age Hill Dwellers of Tekkalakota* Poona 1965
Rao, S R, *Lothal and the Indus Civilization* Bombay, 1973
Raychaudhuri, H C, *Political History of Ancient India* 6th ed, Calcutta 1953
Renou L, *The Destiny of the Veda in India* Delhi, 1965
Rosenberg O O *The Problems of Buddhist philosophy* (in Russian), vol II, Petrograd, 1918
Rosenfield, J M *The Dynastic Arts of the Kushans* Los Angeles, 1967
Ruben W, *Die Lage der Sklaven in der altindischen Gesellschaft* Berlin, 1957
Sankalia, H D, *Prehistory and Protohistory of India and Pakistan* 2nd ed, Poona, 1974
Sankalia H D, Deo S B, *Report on the Excavations at Nasik and Jorwe* Poona 1955
Sankalia H D, Subbarao, B Deo, S B, *Excavations at Maheshwar and Nandatoli 1952 1953* Poona Baroda, 1958
Sastri K A N, *History of South India from Prehistoric Times to the Fall of Vijayanagar* 2nd ed Oxford 1958
Sastri Nilakanta K A, *Aspects of India s History and Culture* Delhi 1974
Sharma R S, *Sudras in Ancient India* Delhi 1958
Shchetenko A Ya *Prehistoric Hindustan* (in Russian) Leningrad, 1979
Singh M N *Life in North Eastern India in Pre Mauryan Times* Delhi 1967
Singhal, D P *India and World Civilisation* vol I II L 1972
Sircar D C, *Indian Epigraphy* Delhi 1965
Sircar, D C, *Political and Administrative Systems of Ancient and Medieval India* Delhi, 1974
Sircar, D C, *Studies in the Geography of Ancient and Medieval India* Varanasi 1960
Sircar, D C *Studies in Yugapurana and other Texts* Delhi 1974
Stavisky, B Ya, *Kushan Bactria* (in Russian) M 1977
Stcherbatsky, Th *Buddhist Logic* vol I II, Leningrad 1930 1932
Stcherbatsky, Th *The Central Conception of Buddhism and the Meaning of the Word dharma* L, 1923
Stcherbatsky, Th *The Conception of Buddhist Nirvana* Leningrad 1927

Subbarao B The Personality of India 2nd ed Poona 1958
Suzuki B L Mahayana Buddhism L 1959
Tarn W W, The Greeks in Bactria and India Cambridge 1951
Thapar Romila, Ancient Indian Social History New Delhi 1978
Thapar Romila Asoka and the Decline of the Mauryas Oxford 1961
The Vakatana Gupta Age ed by Majumdar, R Ch Altekar A S, Banaras 1954
Wagle N Society at the Time of the Buddha Bombay 1967
Warder A K Outline of Indian Philosophy Delhi 1971
Wheeler M Early India and Pakistan New York 1959
Wheeler M The Indus Civilisation 3rd ed Cambridge University Press 1968

मध्यकालीन भारत

Алаев Л Б Южная Индия Социально экономическая история XIV-XVIII вв Москва 1964 (अलायेव, ल० ब०। दक्षिण भारत। मामाजिक-आर्थिक इतिहास, १४वी – १८वी शताब्दी', मास्को १९६४।)
Антонова К А Очерки Могольской Индии времен Акбара, Москва, 1952 (अन्तोनोवा, क० अ०। 'अकबरकालीन मुगल भारत', मास्को, १९५२।)
Ашрафян К З, Аграрный строй Северной Индии (XIII-середина XVIII в), Москва 1965 (अश्रफ्यान, क० ज०। उत्तरी भारत का कृषिक ढाचा, १३वी – मध्य १८वी सदी', मास्को, १९६५।)
Ашрафян К З, Делийский султанат, Москва, 1960 (अश्रफ्यान, क० ज०। दिल्ली सल्तनत', मास्को, १९६०।)
Ашрафян К З, Феодализм в Индии, Москва, 1977 (अश्रफ्यान, क० ज०। भारत मे सामतवाद', मास्को, १९७७।)
История Индии в средние века, Москва, 1968 ('मध्यकालीन भारत का इतिहास', मास्को, १९६८।)
Рейснер И М Народные движения в Индии в XVII-XVIIIвв Москва, 1961 (रैस्नेर, इ० म०। भारत मे १७–१८ सदियो मे जन आन्दोलन', मास्को, १९६१।)
Русско индийские отношения в XVII в, Сборник документов, Москва, 1958 (१७वी सदी मे रूस भारत सबध' दस्तावेज मास्को, १९५८।)

Русско индийские отношения в XVIII в , Сборник документов, Москва, 1965 (१८वीं सदी में रूस भारत संबंध दस्तावेज मास्को, १९६५।)
Семенов Л С Путешествие Афанасия Никитина, Москва, 1980 (सम्योनोव ल० स०। अफनासी निकीतिन की यात्रा मास्को, १९८०।)

Appadorai, A *Economic Conditions in Southern India 1000 1500 A D)* 2 vls Madras 1936
Athar Ali M *The Mughal Nobility Under Aurangzeb* New York 1966
Chandra Satish *Parties and Politics and the Mughal Court 1707 1740* Reprint, New Delhi 1972
Chicherov A I *India Economic Development in the 16th 18th Centuries* Moscow 1971
Chopra, P N *Society and Culture During the Mughal Age 1526 1707* Agra 1955
Choudhury R *Some Historical Aspects of Feudalism in Ancient India (Down to the 14th Century A D)* Trivandrum 1959
Danvers F , *The Portuguese in India* 2 vls London 1891
Das Gupta I N *Bengal in the Sixteenth Century A D* Calcutta 1914
Datta K K *Survey of India s Social Life and Economic Conditions in the Eighteenth Century (1707 1813)* Calcutta 1961
Day U N *The Mughal Government A D 1556 1707* New Delhi 1970
Dikshitar, V R *Hindu Administrative Institutions* Madras 1929
Gopal S *Commerce and Crafts in Gujarat 16th and 17th Centuries* New Delhi, 1975
Gupta H T *Studies in later Mughal History of the Punjab 1707 1793* Lahore, 1944
Gupta K M *The Land System in South India Between c 800 A D and 1200 A D* Lahore 1933
Habib I *The Agrarian System of Mughal India* Bombay 1963
Ibn Hasan *The Central Structure of the Mughal Empire* Reprint New Delhi 1970
Irvine W *The Army of the Indian Moghuls* London 1903
Khan A R *Chieftains in the Mughal Empire during the Reign of Akbar* New Delhi 1977
Kulshreshtha S S *The Development of Trade and Industry under the Mughals (1526 1707 A D)* Allahabad 1964

McLeod W H , *Guru Nanak and the Sikh Religion* Oxford, 1968
Mahalingam, T V , *Economic Life in the Vijayanagar Empire* Madras 1951
Menon P S , *A History of Travancore from the Earliest Times* Madras 1878
Mohibul, Hasan, *Historians of Medieval India* Meerut, 1968
Mohibul, Hasan, *History of Tipu Sultan* 2nd ed , Calcutta, 1971
Moreland, W H *From Akbar to Aurangzib* London, 1923
Moreland W H , *India at the Death of Akbar* Reprint, Delhi, 1962
Moreland, W H , *The Agrarian System of Moslem India* Cambridge, 1929
The Mughal Empire Bharatiya Vidya Bhavan vol VII Bombay, 1974
Naqvi H K *Urbanisation and Urban Centres under the Great Mughals* Simla, 1971
Nehru Jawaharlal *The Discovery of India* 3rd ed , London, 1951
Nijar B S , *Panjab under the Great Moghuls* Bombay, 1968
Nizami, K A *Some Aspects of Religion and Politics in India During the 13 th Century* Aligarh 1961
Nurul Hasan S , *The Thoughts on Agrarian Relations in Mughal India* New Delhi, 1973
Prasad, I , *A Short History of Muslim Rule in India* Allahabad, 1930
Qureshi, I H *The Administration of the Sultanate of Delhi* Lahore, 1944
Qureshi, I H *The Administration of the Mughal Empire* Karachi 1966
Rao, S M , *Eighteenth Century Deccan* Bombay, 1963
Rao, C H , *History of Mysore* 3 vls Bangalore, 1943 1948
Raychaudhuri, T , *Jan Company in Coromandel 1605 1690* S Gravenhage 1962
Reading in Indian Economic History ed by B N Ganguli, Bombay, 1964
Rizvi S A A *Muslim Revivalist Movements in Northern India in the Sixteenth and Seventeenth Centuries* Agra 1965
Saletore, B A , *Social and Political Life in the Vijayanagara Empire A D 1346 1646)* 2vls Madras 1934
Saran, P , *The Provincial Government of the Mughals* Allahabad, 1941
Sardesai G S *New History of the Marathas* 3 vls 2nd imp Bombay, 1957
Sarkar Jadunath *Fall of the Mughal Empire* 4 vls , 2nd ed Calcutta 1949 1950
Sarkar Jadunath, *History of Aurangzib* 5 vls Calcutta 1919 24
Sarkar Jagadish N *Studies in Economic Life in Mughal India* Delhi 1975

Sastri, K A N , *A History of South India from Phehistoric Times to the Fall of Vijayanagar* 2nd ed Oxford Madras 1958
Sen S N , *Administrative System of the Marathas* 2nd ed Calcutta, 1925
Sharma R S , *Indian Feudalism (c 300 1200 A D)* Calcutta 1965
Sharma, S R *Maratha History Re examined (1295 1707)* Bombay 1944
Sharma, S R , *Mughal Empire in India* 2nd ed Agra, 1966
Sharma, S R *Religious Policy of the Mughal Emperors* Oxford 1940
Sherwani H K , *History of Medieval Deccan* 2 vls Hyderabad 1973-1974
Siddiqi, N A *Land Revenue Administration under the Mughals 1700 1750* Bombay 1970
Siddiqui, A M , *History of Golcunda* Hyderabad 1956
Spear, P *Twilight of the Mughuls* Oxford Karachi 1973
Srinivasachari C S , *The Vijayanagar Empire* Bombay 1950
Titus, M N , *Islam in India and Pakistan* Calcutta 1959
Tod J *Annals and Antiquities of Rajasthan* 2 vls London 1829 1932
Tripathi R P , *Rise and Fall of the Mughal Empire* Allahabad 1956
Vaidya C V *History of Medieval Hindu India* 3 vls , Poona 1921 26
Yasin *A Social History of Islamic India 1605-1748* Lucknow 1958

आधुनिक भारत और समकालीन भारत

Агеев В Ф , Английское завоевание Синда Москва, 1979
(अगेयेव, व० फ०। अंग्रेजो द्वारा सिंध का अधिनहन मास्को, १६७६।)
Алаев Л Б , Социальная структура индийскои деревни (Территория Уттар Прадеша, XIX век), Москва, 1976
(अलायेव, ल० व०। '१६वी सदी मे उत्तरप्रदेश मे भारतीय ग्रामो की सामाजिक सरचना', मास्को, १६७६।)
Антонова К А , Английское завоевание в XVIII веке, Москва, 1958 (अन्तोनोवा क० अ०। १८वी सदी मे आग्ल अधिनहन', मास्को, १६५८।)
Бенедиктов А А , Индийское крестьянство в 70 х годах XIX века, Сталинабад, 1953 (बेनेदीक्तोव, अ० अ०। '१६वी सदी

के आठवे दशक मे भारतीय कृषक समुदाय', स्तालीनाबाद, १९५३
Гольдберı Н М , Очерки по истории Индии, Москва, 19
(गोल्दबेर्ग न० म०। भारतीय इतिहास की रूपरेखा' मास्को, १९६५
Гордон Полонская Л Р , Мусульманские течения в общес
венной мысли Индии и Пакистана, Москва, 1963 (
र्दोन पोलोन्स्काया, ल० र०। भारत तथा पाकिस्तान के सामाि
चिंतन म इस्लामी धाराए , मास्को, १९६३।)
Грулев М В , Очерк восстании пограничных племен Инд
за последние 10 лет, Санкт Петербург, 1909 (ग्रुलेव, म० व
पहले दस वर्षो मे सीमाप्रांतीय कबायली विद्रोह', सक्ट-पीटर्सब
१९०९।)
Девяткина Т Ф ,Егорова М Н , Мельников А М , Зарож
дение коммунистического движения в Индии, Москв
1978 (देव्यात्किना त० फ० येगोरोवा म० न० मेल्निकोव अ० म०
भारत मे कम्युनिस्ट आदोलन का उदय' मास्को, १९७८।)
Касымов А М , Борьба Маисура за свою независимость
конце XVIII века, Ташкент, 1964 (कसीमोव, अ० म०। १
सदी के अत म मैसूर का अपनी स्वाधीनता के लिए सघष', ताशकद
१९६४।)
Кольхаева Г П , Индия и Англия Проблемы экономиче
ких и политических отношений после 1947 г , Москв
1966 (कोलीखायेवा, ग० प०। 'भारत तथा इगलैड – १९४७ के बा
आर्थिक तथा राजनीतिक सबधो की समस्याए , मास्को, १९६६।
Комаров Э Н , Литман А Д Мировоззрение Мохандас
Карамчанда Ганди, Москва, 1969 (कोमारोव ए० न०, लित
ज० द०। 'मोहनदास कर्मचद गाधी का विश्व दृष्टिकोण', मास्का
१९६९।)
Кочнев В И , Государство сикхов и Англия, Москва 1968
(कोच्नेव व० इ०। सिख राज्य और इगलैड', मास्को, १९६८।)
Кузьмин С А Аграрные отношения в Синде (вторая пол
вина XIX века), Москва 1959 (कुज्मीन, स० अ०। सिध
मे कृषि सबध। १९वी सदी का उत्तरार्ध , मास्को, १९५९।)
Мартышин О В , Политические взгляды Мохандаса Карам
чанда Ганди, Москва, 1970 (मर्तीशीन, ओ० व०। 'मोहनदास
कर्मचद गाधी का राजनीतिक दृष्टिकोण मास्को १९७०।)

Народное восстание в Индии 1857-1859 Сборник статеи к столетию восстания, Москва, 1957 (भारत मे १८५७ १८५६ का जन विद्रोह । विद्रोह की शताब्दी पर प्रकाशित लेख सग्रह मास्को, १६५७ ।)

Осипов А М, Великое восстание в Индии, 1857-1859 Москва 1957 (ओसिपोव अ० म० । भारत म १८५७-१८५६ का महान विद्रोह', मास्को १६५७ ।)

Персиц М А, *Революционеры Индии в Стране Советов* У историков индииского коммунистического движения, 1918-1921, Москва, 1973 (पर्सित्स म० अ० । 'सोवियतो के देश मे भारतीय क्रान्तिकारी – भारतीय कम्युनिस्ट आदोलन का आरभ । १६१८-१६२१ मास्को १६७३ ।)

Райков А В, Национально революционные организации Индии в борьбе за свободу 1905-1930 гг, Москва 1979 (राइकोव, अ० व० । स्वाधीनता सग्राम मे भारतीय राष्ट्रीय क्रान्तिकारी सगठन । १६०५-१६३०', मास्को १६७६ ।)

Реиснер И М, Очерки классовои борьбы в Индии, Москва, 1932 (रैस्नेर इ० म० । 'भारत मे वर्ग सघर्ष की रूपरेखा' मास्को १६३२ ।)

Рустамов У А, Пригиндукушские княжества Севернои Индии в конце XIX - начале XX в, Ташкент 1956 (रुस्तामोव उ० अ० । '१६वी सदी के अत – २०वी सदी के प्रारभ मे उत्तर भारत मे हिंदुकुशक्षेत्रीय रियासते', ताशक्द १६५६ ।)

Семенова Н И, Государство сикхов Очерки социальнои и политическои истории Пенджаба с середины XVIII до середины XIX в, Москва 1958 (सम्योनोवा न० इ० । 'सिख राज्य – मध्य १८वी से मध्य १८वी सदी तक पजाव का सामाजिक राजनीतिक इतिहास मास्को, १६५८ ।)

Семенова Н И История сикхского движения в Индии, Москва, 1963 (सेम्योनोवा, न० इ० । भारत म सिख आदोलन का इतिहास' मास्को, १६६३ ।)

Ahluvalia, M M, *Freedom Struggle in India (1858-1909)* Delhi 1965
Argov D *Moderates and Extremists in the Indian Nationalist Movement* Bombay, 1967
Baden Powell, B H, *The Land Systems of British India* 3 vls, Oxford 1892
Baden Powell, B H, *The Indian Village Community* London 1896
Bagal J Ch, *History of the Indian Association 1876 1951* Calcutta, 1951
Bagohi A K *Private Investment in India 1900 1939* Cambridge, 1972
Balaram, N E, *A Short History of the Communist Party of India,* Trivandrum, 1967
Ballhatchet, K, *Social Policy and Social Change in Western India 1817-1830* London, 1957
Burns M *The Indian Press* London 1940
Basu P *Oudh and the East India Company 1785 1801* London, 1943
Bettelheim Charles, *India Independent* London 1969
Bhatia B M *Famines in India 1860-1965* Bombay 1967
Bhattacharya S *The East India Company and the Economy of Bengal from 1704 to 1740* Calcutta 1954
Blyn George *Agricultural Trends in India 1891 1947 Output Availability and Productivity* Philadelphia 1966
Bose P N *A History of Hindu Civilization During British Rule* 2 vls Calcutta 1894
Bround E C, Har Dayal *Hindu Revolutionary and Rationalist* Tucson 1978
Brown, J M *Gandhiji s Rise to Power Indian Politics 1915 1922* Cambridge 1972
Buchanan, D H, *The Development of Capitalistic Enterprise in India* New York 1934
Catanach I J, *Rural Credit in Western India 1875 1930* Berkeley 1970
Chandra, A N, *The Sannyasi Rebellion* Calcutta, 1977
Chandra, Bipan *The Rise and Growth of Economic Nationalism in India* New Delhi 1966
Chatterjee J C *Indian Revolutionaries in Conference* Calcutta 1961
Chattopadhyay Gautam, *Abani Mukherji A Dauntless Revolutionary and Pioneering Communist* New Delhi 1976
Chattopadhyay Gautam *Communism and Bengal s Freedom Movement* vol I New Delhi 1970
Chaudhuri S Bh *Civil Disturbances During the British Rule in India (1765-1857)* Calcutta 1955

Chaudhuri S Bh *Civil Rebellion in the Indian Mutinies (1857 1859)* Calcutta, 1957
Choksay, R D, *Economic History of the Bombay Deccan and Karnatak (1818 1865)* Poona 1945
Choudhary Sukhbir *Moplah Uprising (1921 23)* Delhi 1977
Choudhary, Sukhbir *Peasants and Workers Movement in India 1905 1929* New Delhi 1971
Chowdhury, B, *Growth of Commercial Agriculture in Bengal (1757 1900)* vol I Calcutta, 1964
A Contemporary History of India ed by Balabushevich V V and Dyakov, A M New Delhi, 1964
Contributions to Indian Economic History 2 vls Delhi, 1961 1963
Cunningham, J D, *A History of the Sikhs* Calcutta, 1903
Datta, K *The Santhal Insurrection of 1855 57* Calcutta 1940
Datta, K K *History of the Freedom Movement in Bihar* 3 vls Patna, 1957
Deol, G S, *The Role of the Gadar Party in the National Movement* Delhi 1969
Desai A R, *Social Background of Indian Nationalism* Bombay 1977
Dutt R C, *The Economic History of India* Reprint 2 vls Delhi, 1963
Dutt R P, *India Today and Tomorrow* London 1955
Economic History of India 1857 1956 ed by V B Singh Bombay 1965
Economic Problems of Modern India ed by R Mukherjee, 2 vls, London 1939 1941
Economy and Society Essays in Indian Economic and Social History ed by K N Choudhuri, Clive J Dewey Delhi 1979
Farquhar J N, *Modern Religious Movements in India* London 1829
Firminger W K, *Historical Introduction to the Bengal Portion of the Fifth Report* Reprint Calcutta, 1962
Frankel Francina R, *India s Political Economy 1947 1977 The Gradual Revolution* Princeton 1978
Frykenberg, R E, *Guntur District 1788 1848 A History of Local Influence and Central Authority in South India* Oxford 1965
Furber, H *John Company at Work* Cambridge 1948
Gadgil, D R, *The Industrial Evolution of India in Recent Times* London, 1954
Gadgil, D R, *Origins of Modern Indian Business Class An Interism Report* New York 1959
Ganguli, B N *Dadabhai Naoroji and the Drain Theory* Bombay 1965

Ghosal H R, *Economic Transition in the Bengal Presidency (1793 1833* Calcutta 1966
Glasenapp H von *Religiose Reformsbewegung im Heutigen Indien* Leipzig 1928
Gopal S, *British Policy in India 1858 1905* Cambridge 1965
Gopalakrishnan P K *Development of Economic Ideas in India (1880 1950)* New Delhi, 1959
Gordon L A *Bengal the Nationalist Movement 1876 1970* Delhi 1974
Guha, A *Planter Raj to Swaraj Freedom Struggle and Electoral Politics in Assam 1826 1947 New Delhi* 1977
Gupta, H R *History of the Sikhs* 3 vls Lahore 1944
Gupta, M *History of the Indian Revolutionary Movement* Bombay 1972
Gupta M, *They Lived Dangerously* Delhi 1969
Guha R *A Rule of Property for Bengal* La Haye, 1963
Gupta S C *Agrarian Relations and Early British Rule in India A Case Study of Ceded and Conquered Provinces (Uttar Pradesh) (1801 1833)* Bombay 1963
Hanson A H *The Process of Planning A Study of Indias Five Year Plans 1950 1964* London 1966
Hardass Balshastri *Armed Struggle for Freedom (Ninety Years of War of Indian Independence 1857 to Subhas)* Poona 1958
Hardy P, *The Muslims of British India* Cambridge 1972
Heimsath C H *Indian Nationalism and Hindu Social Reform* Princeton 1964
Hunter W W *The Indian Musulmans* 3rd ed London 1876
Immortal Heroes Lives of the Communist Leaders New Delhi 1975
India and Lenin A Collection Delhi 1960
India and the Soviet Union A Symposium Delhi 1969
Indian Freedom Struggle Centenary Souvenir 1857 1957 ed by S L Sharma and M R Kumar Delhi 1957
Jain L C *Indigenous Banking in India* London 1929
Jha M, *Role of Central Legislature in Freedom Struggle* New Delhi 1972
Sohan Singh Josh *The Great Attack Meerut Conspiracy Case* New Delhi 1979
Sohan Singh Josh *Baba Uohan Sohan Bhakna Life of the Founder of the Ghadar Party* New Delhi 1970
Joshi Nirmala *Foundations of Indo Soviet Relations A Study of Non Official Attitudes and Contacts 1917-1947* New Delhi 1975
Joshi V S *Vasudeo Balvant Phadke First Indian Rebel Against British Rule* Bombay 1959

Karmarkar D P *Bal Gandadhar Tilak* A Study Bombay 1956
Kaushik D Mitrokhin L *Lenin His Image in India* Delhi 1970
Kaviraj N *A Peasant Uprising in Bengal 1783 The First Formid able Peasant Uprising against the Rule of East India Company* New Delhi 1972
Kemp P M *Bharat Rus An Introduction to Indo Russian Contacts and Travels from Mediaeval Times to the October Revolution* Delhi 1958
Kidron M *Foreign Investments in India* London 1965
King Blair B *Blue Mutiny* Philadelphia 1966
Kotovsky G G *Land Reforms in India* New Delhi, 1964
Kumar Dh *Land and Caste in South India Agricultural Labour in the Madras Presidency during the Nineteenth Century* Cambridge 1965
Kumar R *Western India in the Nineteenth Century* London, 1968
Land Control and Social Structure in Indian History ed by E Frykenberg Madison 1969
Leadership and Political Institutions in India ed by R L Park and I Tinkers Princeton 1959
Levkovsky A I *Capitalism in India Basic Trends in Its Development* New Delhi 1964
Majumdar B *History of Political Thought from Rammohan to Dayanada (1821 84)* Calcutta 1934
Majumdar B B *Militant Nationalism in India* Calcutta 1966
Majumdar R C *History of the Freedom Movement in India* 3 vls Calcutta 1962 1963
Mazumdar A C *Indian National Evolution A Brief Survey of the Origin and Progress of the Indian National Congress and the Growth of Indian Nationalism* 2nd ed Madras 1917
Mazumdar B B *Indian Political Associations and Reforms of Legislature 1818 1917* Calcutta 1965
McCully B T *English Education and the Origin of Indian Nationalism* New York 1940
Mehrotra, S R *The Emergence of the Indian National Congress* New York 1971
Menon V P *The Story of the Integration of the Indian States* London 1956
Menon V P *The Transfer of the Power in India* London 1957
Metcalf T R *The Aftermath of Revolt India 1857 1870* Princeton 1964
Mishra G, *Agrarian Problems of Permanent Settlement A Case Study of Champaran* New Delhi, 1978
Misra, B B *The Indian Middle Class* London 1961 Mitrokhin, L V, *Friends of the Soviet Union Indian s Solidarity with the*

USSR during the Second World War in 1941-1945 New Delhi 1977
Morris M D, *The Emergence of an Industrial Labour Force in India A Study of the Bombay Cotton Mills 1854 1947* Berkeley Los Angeles 1965
Mukerjee, H *India s Struggle for Freedom* Calcutta 1962
Mukherjee H and Mukherjee U *Bande Mataram and Indian Nationalism (1900 1908)* Calcutta 1957
Mukherjee, H and Mukherjee, U, *Bipin Chandra Pal and India s Struggle for Swaraj* Calcutta, 1958
Mukherjee H and Mukherjee, U, *Sri Aurobindo s Political Thought (1893 1908)* Calcutta 1958
Mukherjee, N *The Ryotwari System in Madras (1742 1827)* Calcutta, 1962
Mukherjee R *The Rise and Fall of the East India Company A Sociological Appraisal* Berlin, 1955
Natarajan J *History of Indian Journalism* Delhi 1955
Natarajan L *Peasant Uprisings in India 1850 1900* Bombay, 1953
Neale, W C *Economic Change in Rural India Land Tenure and Reform in Uttar Pradesh 1800-1955* New Haven 1962
Pal Bipinchandra, *Swadeshi and Swaraj The Rise of New Patriotism* Calcutta 1954
Pal, Dharm, *Tatya Tope* New Delhi, 1958
Parulekar S V, *Revolt of the Varlis* Bombay, 1947
Pavlov, V I, *Historical Premises for India s Transition to Capitalism (Late 18th to Mid 19th Century* Moscow, 1978
Pavlov V I *The Indian Capitalist Class* New Delhi, 1964
Peasant Struggles in India ed by A R Desai Bombay, 1978
Philips, C H *The East India Company 1784 1834* Manchester 1940
Prasad B *The Foundations of India s Foreign Policy* Calcutta 1955
Raghuwanshi V P S, *Indian Nationalist Movement and Thought* Agra 1959
Rai Lajpat *Young India (An Interpretation and a History of the Nationalist Movement from Within)* London 1917
Rai Lajpat *England s Debt to India A Historical Narrative of Britain s Fiscal Policy in India* New York 1917
Raju A Sarada *Economic Conditions in the Madras Presidency 1800-1850* Madras 1941
Ranga N G, *History of Kisan Movement in India* Madras, 1939
Ranga N G *Revolutionary Peasants* New Delhi 1949
Rao, C Rajeswara *The Historic Telengana Struggle Some Useful Lessons from Its Rich Experience* New Delhi, 1972
Rebellion 1857 A Symposium Delhi 1957

Rothermund D, *The Phases of Indian Nationalism and Other Essays* Bombay 1976
Sadasivan D, *The Growth of Public Opinion in the Madras Presidency (1858 1909)* Madras, 1974
Saha Panchanan *History of the Working Class Movement in Bengal* New Delhi, 1978
Sardesai, G S *New History of the Marathas* 3 vls Bombay 1946
Sarkar S, *The Swadeshi Movement in Bengal 1903 1908* New Delhi 1973
Savarkar, V, *The Indian War of Independence (National Rising of 1857)* Bombay 1946
Seal A *The Emergence of Indian Nationalism—Competition and Collaboration in the Later Nineteenth Century* Cambridge 1968
Sechanavis Ch, *Lenin and India* Calcutta 1969
Sen, N, *Bengal's Forgotten Warriors* Bombay, 1945
Sen, Sunil *Agrarian Struggle in Bengal 1946 47* New Delhi 1972
Sen, S, *Agrarian Relations in India (1793 1947)* New Delhi, 1979
Sen, S, *Administrative System of the Marathas* Calcutta, 1925
Sen, S P, *The French in India* 2 vls, Calcutta 1947 1958
Sen Gupta K K, *Pabna Disturbances and the Politics of Rent 1873 1885* New Delhi 1974
Shrivastava, H, *The History of Indian Famines (1858 1918)* Agra 1971
Siddiqi, A, *Agrarian Change in a Northern Indian State Uttar Pradesh 1819 1833* Oxford, 1973
Singh G *The British Occupation of the Punjab* Amritsar Patiala 1955
Singh, K Singh, S, *Ghadar 1915 India's First Armed Revolution* New Delhi, 1966
Singh K *Prophet of Indian Nationalism A Study of Political Thought of Sri Aurobindo Ghosh 1893-1910* London, 1963
Singh Khushwant *The Sikhs* London 1953
Singh V B *From Naoroji to Nehru Six Essays in Indian Economic Thought* Delhi, 1975
Sinha H *Early European Banking in India* London 1927
Sinha L P *The Left Wing in India (1919 1947* Muzaffarpur 1967
Sinha N K *Economic History of Bengal from Plassey to the Permanent Settlement* 2 vls, Calcutta 1956 1962
Sinha, P B *Indian National Liberation Movement and Russia (1905-1917)* New Delhi 1975
Sinha, R N *Bihar Tenantry (1783 1833)* New Delhi 1968
Sitaramayya, B P, *The History of the Indian National Congress* 2 vls Bombay, 1946

Smıth W C *Modern Islam ın Indıa A Socıal Analysıs* London 1946
Socıalısm ın Indıa ed by B R Nanda Delhı 1972
State Polıtıcs ın Indıa ed by Naraın I Meerut 1967
State Polıtıcs ın Indıa ed by Weıner M, Prınceton 1968
Stokes E *The Englısh Utılıtarıans and Indıa* Oxford, 1959
Stokes E *The Peasant and the Raj Studıes ın Agrarıan Socıety Peasant Rebellıon ın Colonıal Indıa* Cambrıdge 1978
Strıke The Story of the Strıke ın the Indıan Navy ed by G Adhıkarı Bombay, 1946
Studıes ın the Bengal Renaıssance In Commemoratıon of the Bırth Centenary of Bıpınchandra Pal ed by Atulchandra Gupta Jadavpur 1958
Sundarayya P *Telengana People s Struggle and Its Lessons* Calcutta 1972
Tendulkar D G *Mahatma Lıfe of Mohandas Karamchand Gandhı* 8 vls, Bombay 1951-1954
Thakur G *Bhagat Sıngh The Man and Hıs Ideas* Bombay, 1953
Tılak and the Struggle for Indıa s Freedom ed by Reısner, I M and Goldberg N M New Delhı, 1966
Tımberg Thomas A *The Marwarıs From Traders to Industrıalısts* Delhı, 1978
Trıpathı A *The Extremıst Challenge ın Indıa between 1890 1910* Calcutta, 1967
Yajnık Indulal *Shyamajı Krıshnavarma (Lıfe and Tımes of an Indıan Revolutıonary)* Bombay, 1950
Wastı S R *Lord Mınto and the Indıan Natıonalıst Movement* Oxford 1964
Whıtcombe E *Agrarıan Condıtıons ın North Indıa* vol I New New Delhı 1971
Wolpert S A, *Morley and Indıa 1906-1910* Berkeley Los Angeles 1967
Wolpert S A *Tılak and Gokhale Revolutıon and Reform ın the Makıng of Modern Indıa* Berkeley Los Angeles 1962

—

पाठको से

प्रगति प्रकाशन को इस पुस्तक क अनुवाद और डिजाइन क सबध म आपकी राय जानकर और आपके अन्य सुझाव प्राप्त कर बडी प्रसन्नता होगी। अपने सुझाव हम इस पत पर भेज

प्रगति प्रकाशन
१७ जुबोव्स्की बुलवार
मास्को सोवियत सघ।